काव्यमाला. ६९.

श्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

# बृहत्कथामञ्जरी ।

BHARATIYA VIDYA BHAVAN
S. N.
LIBRARY

जयपुरमहाराजाश्रितमहामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसाददारक-
केदारनाथकृपाङ्गीकृतशोधनकर्मणा महामहोपाध्याय-
पण्डितशिवदत्तशर्मणा, मुम्बापुरवासिपरबोपाह्व-
पाण्डुरङ्गात्मजकाशीनाथशर्मणा च
संशोधिता ।

द्वितीयसंस्करणम् ।

सा च
मुम्बय्यां निर्णयसागराख्ययन्त्रालये तदधिपतिना मुद्राक्षरैरङ्कयित्वा
प्राकाश्यं नीता ।

१९३१

मूल्यं ३॥ सपादत्रयं रूप्यकत्रयम् ।

BH S N. ...
LIBRARY

# बृहत्कथामञ्जर्या विषयानुक्रमणिका


| | पृष्ठे । |
|---|---|
| कथापीठाख्यप्रथमलम्बकारम्भः | १ |
| कथावतारः | १ |
| पाटलिपुत्रकथा | ७ |
| उपकोशाख्यायिका | १२ |
| योगनन्दमत्स्यहासकथा | १६ |
| आदित्यवर्मकथा | १९ |
| योगनन्दपुनशापमोक्षौ | २१ |
| वररुचिशापमुक्तिः | २४ |
| गुणाढ्यकथा | २५ |
| पुष्पदन्तमाल्यवान्नामकथा | २९ |
| कथापीठनामकप्रथमलम्बकसमाप्तिः | ३२ |
| कथामुखाख्यद्वितीयलम्बकारम्भः | ३३ |
| श्रीदत्ताख्यायिका | ३३ |
| सहस्रानीककथा | ४४ |
| चण्डमहासेनकथा | ४५ |
| लोहजङ्घाख्यायिका | ५१ |
| देवस्मिताख्यायिका | ५६ |
| विनष्टाख्यायिका | ६५ |
| कथामुखाख्यद्वितीयलम्बकसमाप्तिः | ६७ |
| लावानकाख्यतृतीयलम्बकारम्भः | ६८ |
| परहिताख्यायिका | ६८ |
| वहिःकाख्यायिका | ६९ |
| देवसेनाख्यायिका | ७० |
| परिव्राडाख्यायिका | ७१ |
| पुण्यसेनाख्यायिका | ७२ |
| सुन्दोपसुन्दाख्यायिका | ७३ |
| पद्मावतीविवाहः | ७४ |
| उर्वश्याख्यायिका | ७७ |
| विहितसेनाख्यायिका | ७८ |
| सोमप्रभाख्यायिका | ७९ |
| अहल्याख्यायिका | ८१ |
| विदूषकाख्यायिका | ८१ |
| देवदासाख्यायिका | ९१ |
| श्रीवत्सेशदिग्विजयः | ९३ |
| हलभूताख्यायिका | ९४ |
| लावानकाख्यतृतीयलम्बकसमाप्तिः | १०२ |
| नरवाहनजन्माख्यचतुर्थलम्बकारम्भः | १०२ |
| देवदत्ताख्यायिका | १०२ |
| ब्राह्मणीसमागमकथा | १०५ |
| जीमूतवाहनाख्यायिका | १०५ |
| सिंहविक्रमाख्यायिका | १११ |
| नरवाहनजन्माख्य-चतुर्थलम्बकसमाप्तिः | ११३ |
| चतुर्दारिकाख्यपञ्चमलम्बकारम्भ | ११४ |
| शक्तिदेवसमागमकथा | ११४ |
| शिवमाधवाख्यायिका | ११६ |
| हरस्वाम्याख्यायिका | ११९ |
| शक्तिदेवप्रवहणभङ्गकथा | १२० |
| अशोकदत्ताख्यायिका | १२२ |
| देवदत्ताख्यायिका | १२८ |
| शक्तिदेवकथा | १३५ |
| चतुर्दारिकाख्यपञ्चमलम्बकसमाप्तिः | १३६ |
| सूर्यप्रभाख्यषष्ठलम्बकारम्भः | १३६ |
| कालकजापकाख्यायिका | १३६ |
| गुणशर्माख्यायिका | १४५ |
| सूर्यप्रभाख्यषष्ठलम्बकसमाप्ति | १५६ |

| | पृष्ठे। |
|---|---|
| मदनमञ्चुकाख्यसप्तमलम्बकारम्भः | १५७ |
| रत्नदत्ताख्यायिका ... ... | १५७ |
| विप्रचाण्डालाख्यायिका ... ... | १६० |
| शिष्याख्यायिका ... ... ... | १६२ |
| विक्रमसिंहाख्यायिका ... ... | १६२ |
| क्षमावदानम् ... ... .. | १६५ |
| वैराग्यवदानम् ... ... ... | १६६ |
| सुलोचनाख्यायिका ... ... | १६७ |
| राजपुत्राख्यायिका ... ... | १६९ |
| पिशाचाख्यायिका ... ... | १७१ |
| स्वयंप्रभाख्यायिका ... ... | १७३ |
| कीर्तिसेनाख्यायिका ... ... | १७६ |
| हरिशर्माख्यायिका ... ... | १७९ |
| तेजोवत्याख्यायिका ... ... | १८६ |
| मूर्खाख्यायिका ... ... ... | १८६ |
| रूपण्याख्यायिका... ... ... | १९२ |
| श्रुतसेनाख्यायिका ... ... | १९५ |
| मार्जाराख्यायिका ... ... | १९७ |
| प्रसेनजिदाख्यायिका ... ... | १९९ |
| कलिङ्गसेनामदनवेगसमागमः ... | २०० |
| पतिव्रताख्यायिका ... ... | २०० |
| मदनमञ्चुकाजन्मकथा ... ... | २०३ |
| पद्माख्यायिका ... ... ... | २०३ |
| यौवराज्याभिषेको विद्याधरार्थप्रान्तिश्च ... ... | २०४ |
| योगनन्दाख्यायिका ... ... | २०४ |
| मातुमाराख्यायिका :.. ... ... | २०६ |
| मदनमञ्चुकोद्वाहकथा ... ... | २०७ |
| मदनमञ्चुकाख्यसप्तमलम्बकसमाप्तिः | २०९ |
| वेलाख्याष्टमलम्बकारम्भः ... | २०९ |
| [illegible] ... ... | २०९ |
| [illegible] ... | २१४ |
| वेलाख्याष्टमलम्बकसमाप्तिः ... | २१५ |
| शशाङ्कवत्याख्यनवमलम्बकारम्भः | २१५ |
| कुञ्जराख्यायिका ... ... | २१५ |
| ललितलोचनालापकथा ... ... | २१८ |
| मन्त्रगुप्ताख्यायिका ... ... | २२० |
| विनयवत्याख्यायिका ... ... | २२५ |
| श्रुतधिसमागमः ... ... ... | २२६ |
| पारावताक्षशापः ... ... ... | २३२ |
| संसारचक्रम् ... ... ... | २३४ |
| हंसावलीकथा ... ... ... | २३५ |
| भीमपराक्रमसमागमः ... ... | २४८ |
| गुणाकरसमागमः ... ... | २४९ |
| दानपारमिता ... ... ... | २५१ |
| शीलपारमिता ... ... ... | २५७ |
| क्षान्तिपारमिता ... ... ... | २५८ |
| धैर्यपारमिता ... ... ... | २५८ |
| ध्यानपारमिता ... ... ... | २५९ |
| प्रज्ञापारमिता ... ... ... | २६० |
| विनीतमत्याख्यायिका ... ... | २६१ |
| भगवतीस्तोत्रम् ... ... ... | २६२ |
| भूनन्दाख्यायिका... ... ... | २६८ |
| विचित्रकथासमागमः श्रीदर्शनाख्यायिका च ... | २७२ |
| प्रचण्डशक्तिसमागमः भीमभटाख्यायिका च ... | २७८ |
| प्रथमवेतालकथा ... ... ... | २८७ |
| द्वितीयवेतालकथा ... ... | ३०० |
| पुरन्दुष्टाख्यायिका ... ... | ३०२ |
| धीदुष्टाख्यायिका... ... ... | ३०५ |
| तृतीयवेतालकथा ... ... | ३०८ |
| चतुर्थवेतालकथा ... ... ... | ३०८ |
| पञ्चमवेतालकथा ... ... ... | ३१५ |
| षष्ठवेतालकथा ... ... ... | ३१७ |

| | पृष्ठे । |
|---|---|
| सप्तमवेतालकथा... ... ... | ३१७ |
| अष्टमवेतालकथा... ... ... | ३२१ |
| नवमवेतालकथा ... ... ... | ३२६ |
| दशमवेतालकथा ... ... ... | ३२७ |
| एकादशवेतालकथा ... ... | ३३२ |
| द्वादशवेतालकथा... ... ... | ३३४ |
| त्रयोदशवेतालकथा ... ... | ३४१ |
| चतुर्दशवेतालकथा ... ... | ३४३ |
| पञ्चदशवेतालकथा ... ... | ३४५ |
| षोडशवेतालकथा ... ... | ३४९ |
| सप्तदशवेतालकथा ... ... | ३६३ |
| अष्टादशवेतालकथा ... ... | ३६६ |
| एकोनविंशवेतालकथा ... ... | ३६९ |
| विंशवेतालकथा ... ... ... | ३७३ |
| एकविंशवेतालकथा ... ... | ३७६ |
| द्वाविंशवेतालकथा... ... ... | ३७९ |
| त्रयोविंशवेतालकथा ... ... | ३८० |
| चतुर्विंशवेतालकथा ... ... | ३८२ |
| पञ्चविंशवेतालकथा ... ... | ३८४ |
| मन्दारवत्याख्यायिका ... ... | ३८५ |
| कुसुमायुधाख्यायिका ... ... | ४०२ |
| केसटाख्यायिका ... ... ... | ४०५ |
| कलिङ्गसेनालाभवर्णनम् ... ... | ४०६ |
| शशाङ्कवत्युद्वाहकथा ... ... | ४०७ |
| शशाङ्कवत्याख्यनवमलम्बकसमाप्तिः | ४११ |
| निषमशीलाख्यदशमलम्बकारम्भः | ४११ |
| टेण्टाकरालाख्यायिका ... ... | ४११ |
| खण्डकापालिकवधकथा ... ... | ४२१ |
| यक्षिणीसमागमकथा ... ... | ४२१ |
| कन्याचतुष्टयप्राप्तिकथा ... ... | ४२३ |
| शबरराजपुत्रीलाभकथा ... ... | ४२४ |
| गजवराहशापमुक्तिकथा ... ... | ४२६ |
| राजपुत्रीद्वयलाभकथा ... ... | ४२६ |
| केसटाख्यायिका ... ... ... | ४२७ |
| मूलदेवकथा ...... ... ... | ४३० |
| निषमशीलाख्यदशमलम्बकसमाप्तिः | ४३४ |
| मदिरावत्याख्यैकादशलम्बकारम्भः | ४३५ |
| द्विजपुत्रकथा ... ... ... | ४३५ |
| मदिरावत्याख्यैकादशलम्बकसमाप्तिः | ४४० |
| पद्मावत्याख्यद्वादशलम्बकारम्भः | ४४१ |
| ब्रह्मदत्ताख्यायिका ... ... | ४४१ |
| विद्युद्ध्वजवधकथा ... ... | ४४३ |
| मुक्तकेतुशापकथा ... ... | ४४७ |
| पद्मावत्युद्वाहादिकथा ... ... | ४४८ |
| पद्मावत्याख्यद्वादशलम्बकसमाप्तिः | ४५० |
| पञ्चाख्यत्रयोदशलम्बकारम्भः ... | ४५० |
| सावित्र्याख्यायिका ... ... | ४५० |
| वेगवतीप्राप्तिकथा... ... ... | ४५१ |
| गन्धर्वदत्ताख्यायिका ... ... | ४५५ |
| भगीरथयशःप्राप्तिकथा ... ... | ४५६ |
| प्रभावतीप्राप्तिकथा ... ... | ४५७ |
| अजिनावतीप्राप्तिकथा ... ... | ४६२ |
| गोमुखकथा ... ... ... | ४६२ |
| मरुभूतिकथा ... ... ... | ४६६ |
| हरिशिखकथा ... ... ... | ४६७ |
| मानसवेगाधिवधकथा ... ... | ४६७ |
| पञ्चाख्यत्रयोदशलम्बकसमाप्तिः ... | ४६९ |
| रत्नप्रभाख्यचतुर्दशलम्बकारम्भः... | ४६९ |
| सत्त्वशीलाख्यायिका ... ... | ४६९ |
| महासत्त्वाख्यायिका ... ... | ४७१ |
| रत्नप्रभाख्यायिका ... ... | ४७३ |

| | पृष्ठे। |
|---|---|
| शीलवत्याख्यायिका ... ... | ४७७ |
| निश्चयदत्ताख्यायिका ... ... | ४८० |
| मदनमालाख्यायिका ... ... | ४८८ |
| रूपशिखाख्यायिका ... ... | ४९१ |
| अजराख्यायिका... ... ... | ४९५ |
| नागार्जुनाख्यायिका ... ... | ५०० |
| इन्दीवरसेनाख्यायिका ... ... | ५०१ |
| वज्रधराख्यायिका. ... ... | ५०५ |
| अर्थलोभाख्यायिका ... ... | ५०५ |
| कर्पूरमञ्जर्युद्वाहकथा ... ... | ५०८ |
| रत्नप्रभाख्यचतुर्दशलम्बकसमाप्तिः | ५०९ |
| अलंकारवत्याख्यपञ्चदशलम्बकारम्भ. | ५१० |
| रामाख्यायिका ... ... ... | ५१० |
| रूपलताख्यायिका ... ... | ५१४ |
| अनङ्गप्रभाख्यायिका ... ... | ५१५ |
| कार्पटिकाख्यायिका ... ... | ५२३ |
| वीरवराख्यायिका... ... ... | ५२५ |
| नारायणदर्शनकथा ... ... | ५२५ |
| बाहुशालाख्यायिका ... ... | ५२६ |
| धन्तराख्यायिका... ... ... | ५२८ |
| धमराख्यायिका ... ... ... | ५३० |
| दुग्धाख्यायिका ... ... ... | ५३० |
| हिरण्यवर्माख्यायिका ... ... | ५३१ |
| अनन्तनैलाख्यायिका ... ... | ५३३ |
| बन्धुमलाख्यायिका ... ... | ५४० |
| अलंकारवत्याख्यपञ्चदशलम्बकसमाप्तिः ... | ५४० |
| [illegible]नामदशलम्बकारम्भः | ५४१ |
| [illegible]ख्यायिका ... ... ... | ५४१ |
| [illegible]ख्यायिका ... ... | ५४३ |
| [illegible]ख्यायिका ... ... ... | ५४७ |
| [illegible]ख्यायिका... ... ... | ५५० |

| | पृष्ठे। |
|---|---|
| देवदासाख्यायिका ... ... | ५५१ |
| वज्रसाराख्यायिका ... ... | ५५२ |
| सिंहबलाख्यायिका ... ... | ५५३ |
| सुमानसाख्यायिका ... ... | ५५४ |
| वानराख्यायिका ... ... ... | ५६१ |
| काकबकाख्यायिका ... ... | ५६२ |
| शशकाख्यायिका... ... ... | ५६४ |
| यूकाख्यायिका ... ... ... | ५६५ |
| चण्डरवाख्यायिका ... ... | ५६५ |
| उष्ट्राख्यायिका ... ... ... | ५६६ |
| कच्छपमत्स्यटिट्टिभाख्यायिका ... | ५६७ |
| चतुराख्यायिका ... ... ... | ५६८ |
| सूचीमुखाख्यायिका ... ... | ५७० |
| वणिक्पुत्रबकाख्यायिका... ... | ५७० |
| लोहतुलाख्यायिका ... ... | ५७१ |
| सिंहरूपाख्यायिका ... ... | ५७२ |
| जम्बुकाख्यायिका ... ... | ५७२ |
| मूषककाककूर्मकच्छपाख्यायिका... | ५७५ |
| रासभाख्यायिका... ... ... | ५७६ |
| नागशराख्यायिका ... ... | ५७७ |
| मार्जाराख्यायिका ... ... | ५७८ |
| छागाख्यायिका ... ... ... | ५७९ |
| दमिताख्यायिका... ... ... | ५८० |
| चौरराक्षसाख्यायिका ... ... | ५८० |
| रथकाराख्यायिका ... ... | ५८१ |
| मूषिकाख्यायिका ... ... | ५८१ |
| मण्डूकाख्यायिका... ... ... | ५८२ |
| हंसाख्यायिका ... ... ... | ५८३ |
| काष्ठोलूकाख्यायिका ... ... | ५८३ |
| घण्टाख्यायिका ... ... ... | ५८३ |
| शशाख्यायिका ... ... ... | ५८४ |
| शलाख्यायिका ... ... ... | ५८५ |

| | पृष्ठे। |
| --- | --- |
| वानरशिशुमाराख्यायिका ... | ... ५८६ |
| घटाख्यायिका ... ... | ... ५८६ |
| नापिताख्यायिका ... ... | ... ५८७ |
| नकुलाख्यायिका ... ... | ... ५८७ |
| अनेकमूर्खाख्यायिका ... | ... ५८८ |
| श्रीधराख्यायिका ... ... | ... ५८९ |
| लक्ष्मीसेनाख्यायिका ... | ... ५९२ |
| शक्तियशोनामकपोडशलम्बकसमा. | ५९४ |
| महाभिषेकाख्यसप्तदशलम्बकारम्भ | ५९४ |
| महाभिषेककथा ... ... | ... ५९४ |
| महाभिषेकाख्यसप्तदशलम्बकसमा. | ५९९ |
| सुरतमञ्जर्याख्याष्टादशलम्बकारम्भः | ५९९ |

| | पृष्ठे। |
| --- | --- |
| शूरसेनाख्यायिका ... | ... ५९९ |
| वत्सेश्वरमृगुपतनकथा ... | ... ६०१ |
| गोपालसन्यासकथा ... | ... ६०२ |
| कुरङ्गाख्यायिका ... ... | ... ६०७ |
| धीवराख्यायिका ... ... | ... ६११ |
| चौराख्यायिका ... ... | ... ६१२ |
| सुरतमञ्जरीकथा ... ... | ... ६१४ |
| तारावलोकाख्यायिका ... | ... ६१५ |
| सुरतमञ्जर्याख्याष्टादशलम्बकसमाप्ति. | ६१७ |
| उपसंहारारम्भः ... ... | ... ६१७ |
| लम्बकसमहः ... ... | ... ६१९ |
| ग्रन्थसमाप्तिः ... ... | ... ६२० |

BHARAT
S. N.........
LIBRARY

# काव्यमाला ।

## काश्मीरिकमहाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता बृहत्कथामञ्जरी

### कथापीठनामा प्रथमो लम्बकः ।

प्रथमस्तरङ्गः ।

उमाप्रणामसंक्रान्तचरणालक्तकः शशी ।
संध्यारुण इवाभाति यस्य पायात्स वः शिवः ॥ १ ॥

सरस्वतीविभ्रमदर्पणानां सूक्तामृतक्षीरमहोदधीनाम् ।
सन्मानमोल्लाससुधाकराणां कवीश्वराणां जयति प्रकर्षः ॥ २ ॥

दोषालोकननिपुणाः पुरुषगिरो दुर्जनाश्च घूकाश्च ।
दर्शनमपि भयजननं येषामनिमेषपिशुनानाम् ॥ ३ ॥

ओजोरञ्जनमेव वर्णरचनाश्चित्रा न कस्य प्रिया
नानालंकृतयश्च कस्य न मनःसंतोषमातन्वते ।
काव्ये किं तु सतां चमत्कृतिकृतः सूक्तिप्रबन्धाः स्फुटं
तीक्ष्णाग्रा झटिति श्रुतिप्रणयिनः कान्ताकटाक्षा इव ॥ ४ ॥

एवं किल पुराणेषु सर्वागमविधायिषु ।
विश्वशासनशालिन्यां श्रुतौ च श्रूयते कथा ॥ ५ ॥

अस्ति विद्याधरवधूविलासहसितद्युतिः ।
जाह्नवीनिर्झरोष्णीषः शर्वाणीजनको गिरिः ॥ ६ ॥

निशाकरकरस्लेखुपारुचिरत्विषा ।
आशा धनपतेर्येन विभात्यनिशचन्द्रिका ॥ ७ ॥

यः शुभ्रशिखरो भाति शिवमौलीन्दुदर्शनात् ।
तरङ्गालिङ्गिताभ्रश्रीः क्षीरार्णव इवोत्थितः ॥ ८ ॥

---

१. 'स्तर' स.

य: प्रांशुरश्मिनिर्वहैर्विदधाति मुहुर्मुहुः ।
त्रिदिवोद्यानहंसानां मृणालकवलभ्रमम् ॥ ९ ॥
यस्याश्मकूटसंघट्टविशीर्णपतनोत्थिताः ।
मुहूर्तं तारकायन्ते व्योम्नि गङ्गाम्बुराशयः ॥ १० ॥
फेनहासविलासिन्यः फुल्लकुवलयेक्षणाः ।
विभान्ति कटके यस्य तरङ्गिण्यो महीभृतः ॥ ११ ॥
उत्तरे तस्य कैलासनाम्नि स्फाटिकशेखरे ।
विजहार हरो हारगौरे गिरिसुतासखः ॥ १२ ॥
नीलोत्पलद्युतिमुषा यस्य कण्ठविषत्विषा ।
मुहुर्गौरीकपोलेन्दो. क्रियेत लाञ्छनच्छविः ॥ १३ ॥
विभाति भूषाभुजगैः खण्डेन्दुविष(श)शङ्कया ।
कपालकलहंसैर्यः संत्यक्तैरिव सै(शै)वलैः ॥ १४ ॥
यस्यामरसरित्तुङ्गतरङ्गालिङ्गितः शशी ।
धत्ते मूर्ध्नि सुधासिन्धुगर्भस्थितिसुखं सदा ॥ १५ ॥
ताण्डवे यस्य दोर्दण्डमण्डलोद्धूतभस्मभिः ।
छन्नास्तुहिनशैलेन स्पर्धां बिभ्रति भूभृतः ॥ १६ ॥
यस्यालोक्य घनच्छायं कण्ठं स्कन्दशिखण्डिनि ।
मुहुः प्रनृत्ते हाराहिर्व्याजिह्माक्षं व्यचेष्टत ॥ १७ ॥
कपालकुहरावर्तक्षुभ्यद्गङ्गाम्बुबिन्दुभिः ।
यः शेखरशशिप्रीत्या नक्षत्रैरिव सेव्यते ॥ १८ ॥
यस्यातिहासाः क्षुभितक्षीराब्धिधवलश्रियः ।
कर्णचामरतां यान्ति कैलाससुरदन्तिनः ॥ १९ ॥
तं कदाचिद्गिरिसुता रहः प्रणयमन्थरम् ।
प्राह यत्राम्बुजाकृष्टभ्रमरारावविभ्रमम् ॥ २० ॥
देवाखिलजगत्सर्गस्थितिसंहारकारण ।
यस्य भेदः समुन्मेष यत्र त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥ २१ ॥

---

'निवहै' पा. १. 'शीकरा' पा.

त्वन्मायामयनिर्माणजगद्वैचित्र्यसंकथाम् ।
अनन्याकर्णितां चेतः श्रोतुमुत्कण्ठते मम ॥ २२ ॥
इति प्रियावचः श्रुत्वा हर्षव्याकोशलोचनः ।
प्राह कृत्वा कुरङ्गाक्षीमङ्के शीतांशुशेखरः ॥ २३ ॥
किं तवाविदितं देवि चित्तसागरचन्द्रिके ।
त्वं हि पीयूषसहिते जीवितं नो बहिश्चरम् ॥ २४ ॥
अनन्तरूपं मां द्रष्टुं पुरा हरिचतुर्मुखौ ।
पातालमन्तरिक्षं च जग्मतुः कौतुकाकुलौ ॥ २५ ॥
अनासाद्यैव पर्यन्तं महतो महसो मम ।
महादेवोऽयमित्युक्त्वा चक्राते तौ तपस्ततः ॥ २६ ॥
मदेकभक्तिर्मद्वाक्यादभूत्पूज्यतमो हरिः ।
सुतं मामीहमानोऽभूदपूज्य[श्च?] प्रजापतिः ॥ २७ ॥
सैव त्वं मम लोलाक्षि दयिता वैष्णवी तनुः ।
मम धाम सहस्रांशुः शशी तव शुचिस्मिते ॥ २८ ॥
सुभ्रु दक्षस्य तनया पुरा भूत्वा मम प्रिया ।
देहं पितुर्निकारेण त्यक्तवत्यसि भामिनि ॥ २९ ॥
स हि यज्ञे सुरगणं समानाय्य प्रजापतिः ।
तदा महोत्सवं चक्रे प्रीणिताशेषबान्धवः ॥ ३० ॥
तत्र प्रनृत्तगीर्वाणललनागीतनादिते ।
अहं कपालमालीति पित्रा ते न निमन्त्रितः ॥ ३१ ॥
त्वत्कोपादिष्टमार्गेण मम क्रोधभुवा मखः ।
गणेनाकारि दक्षस्य कथाशेषमहोत्सवः ॥ ३२ ॥
यत्परीवादकोपेन त्यक्त्वा दक्षभवां तनुम् ।
सुता तुहिनशैलस्य जातासि यशसां निधेः ॥ ३३ ॥
शंभोः शरीरार्धहरा भवानीयं तवात्मजा ।
इति शुश्राव शैलेन्द्रो नारदाज्जनकस्तव ॥ ३४ ॥

---

१. 'दील' ख.
२ पु० मं०

ततस्त्वां यौवनारम्भविभ्रमोद्यानमञ्जरीम् ।
सपर्यायै तपस्यस्य दिदेश हिमवान्मम ॥ ३५ ॥
अत्रान्तरे तारकेण वन्दीकृतजयश्रियः ।
शुश्रुवुस्त्रिदशास्त्राणं भाविनं त्वयि मे सुतम् ॥ ३६ ॥
तदर्थमथ शक्रेण प्रेषितो रतिवल्लभः ।
तपोवनं समनुपत्समायो मधुना सह ॥ ३७ ॥
ततः कुसुमहासिन्यो विलोलालिकुलालकाः ।
कणद्विहङ्गवलया हारिण्यो विबभुर्लताः ॥ ३८ ॥
कान्ताकपोलसच्छाये प्रौढतां याति चम्पके ।
अशोके गाढरागे च कामिनामिव चेतसि ॥ ३९ ॥
नेत्रप्रभाकुवलयव्यासङ्गिकुसुमाञ्जलिम् ।
क्षिपन्तीं प्रणतां देवि त्वामपश्यमहं पुरः ॥ ४० ॥
ततोऽहं निशिताग्रस्य कर्णान्तपरिसर्पिणः ।
लक्ष्यतां त्वत्कटाक्षस्य यातः स्मरशरस्य च ॥ ४१ ॥
हर्षान्मे त्वन्मुखाम्भोजभृङ्गाली त्वयि सोत्सुका ।
दृष्टिः पपात लावण्यकल्लोलाकुलिताधरम् ॥ ४२ ॥
प्रणिधाय मनः पश्चादपश्यं कुसुमायुधम् ।
मौर्वीमधुकरारावतारझङ्कारकार्मुकम् ॥ ४३ ॥
तदकारि मम क्रोधादथ लोचनवह्निना ।
अङ्गनापाङ्गवसतिर्येनानङ्गोऽभवत्स्मरः ॥ ४४ ॥
मानमक्षोभपवने प्लुष्टे मकरकेतने ।
भयकम्पकृपाशोकव्याकुले तव चेतसि ॥ ४५ ॥
दग्धोऽन्यकाङ्क्षया रोषात्स्मरस्तत्रास्मि कारणम् ।
इति ध्यात्वा तपस्तीव्रं तपस्यत्यसि पार्वति ॥ ४६ ॥
मयि प्रसादसुमुखां ज्ञात्वा ते निश्चितां मतिम् ।
मातः प्रार्थयतां देवि वराय प्रणयाज्जनः ॥ ४७ ॥

S N ...५... LIBRARY.

गेहे ततो हिमवतस्त्वद्विवाहमहोत्सवे ।
ते तारकवधैकामा ननन्दुर्नन्दनौकसः ॥ ४८ ॥
एवं त्वमनवद्याङ्गि प्रेमामृततरङ्गिणि ।
प्राप्ता मया विप्रत(म)मूः सरसंजीवनौषधिः ॥ ४९ ॥
दिव्यमानुषसंबद्धां शृणु चित्रां कथामिमाम् ।
यया मनसि वर्तन्ते निर्भरानन्दसंपदः ॥ ५० ॥
इत्युक्त्वा विविधाश्चर्या विद्याधरधराभुजाम् ।
कथामकथयद्देवः सप्तानां चक्रवर्तिनाम् ॥ ५१ ॥
अत्रान्तरे समायातः पुष्पदन्तो गणाग्रणीः ।
मानी महेश्वरं द्रष्टुं नन्दिना द्वार्यवार्यत ॥ ५२ ॥
न कदाचिन्निषिद्धोऽहं किमेतदिति कौतुकात् ।
वायुभूतः प्रविश्यातः स्वैरं शुश्राव तां कथाम् ॥ ५३ ॥
जया नाम प्रतीहारी देव्याः केलिकला सखी ।
कथां तामेव दयितात्पुष्पदन्तादथाशृणोत् ॥ ५४ ॥
आश्चर्यश्रवणानन्दफुल्लद्वदनपङ्कजा ।
तामेवाकथयन्मुग्धा पृष्ठा गिरिजया जया ॥ ५५ ॥
श्रुत्वैव कुपिता देवी बभाषे शशिशेखरम् ।
अनन्याकर्णिता चित्रा त्वया मे कथिता कथा ॥ ५६ ॥
पश्यैतां कथयन्त्येता रहःक्रीडासु योषितः ।
इत्युक्त्वा कपटस्मेरच्छलकोपाकुलाभवत् ॥ ५७ ॥
कोपहासत्विषा तस्याः प्रणामानतशेखरः ।
शंकरः क्षिप्रमभवद्विगराङ्क(?)कलाधरः ॥ ५८ ॥
पुष्पदन्तः प्रविश्यान्तर्वायुभूतः कथामिमाम् ।
शुश्राव नापराधो मे प्रियामित्याह धूर्जटिः ॥ ५९ ॥
पुष्पदन्तमथाहूय भ्रुकुटीधूमविभ्रमम् ।
शशाप शैलतनया दधती कोपपावकम् ॥ ६० ॥

मर्त्यलोके पत क्षिप्रमिति तस्या समीरिते।
कारुण्यदैन्यसंत्रासविपण्णे गणमण्डले॥ ६१॥
नहि निर्वहणं यान्ति प्रभूणामाश्रिते रुपः।
प्रसीद देवि मित्रार्थे माल्यवानित्यभापत॥ ६२॥
वयस्यशापनिर्वाणयाच्ञाप्रणतशेखरम्।
क्रुद्धा तमपि रुद्राणी शशाप गणशेखरम्॥ ६३॥
यक्षो धनदशापेन विन्ध्याटव्यां पिशाचताम्।
अवाप्तः श्रोष्यति त्वत्तः कथाचोर कथामिमाम्॥ ६४॥
काणभूतिर्यदा शापनिर्वाणं लप्स्यते तदा।
पुनस्तामेव च कथां कथितां काणभूतिना॥ ६५॥
श्रुत्वैव माल्यवानेष शापस्यान्तमवाप्स्यति।
इति तद्याचितं देवी शापस्यान्तमकल्पयत्॥ ६६॥
अवाङ्मुखौ चलन्मौलिमालाव्याकुलषट्पदौ।
ततः शापाक्षरव्रातैस्तौ कृष्टाविव पेततुः॥ ६७॥
तयोश्चिरस्य शापेन वसुधामवतीर्णयोः।
तद्वृत्तान्तं गिरिजया पृष्टः प्राह त्रिलोचनः॥ ६८॥
कौशाम्बीवासिनः सुभ्रु पुत्रनामममजन्मनः।
प्रयातः सोमदत्तस्य पुष्पदन्तो महीतले॥ ६९॥
कात्यायनः श्रुतधरस्तथा वररुचिश्च सः।
गुणिनामग्रणीर्लोके नामभिस्त्रिभिरुच्यते॥ ७०॥
प्रतिष्ठानपुरे जातो माल्यवान्दक्षिणापथे।
गुणाढ्य इति यो लोके विश्रुतो गुणगौरवात्॥ ७१॥
इति गिरिशवचो निशम्य देवी किमपि बभूव कृपाविषण्णचित्ता।
रतिविरहदृशा समागमाय प्रयतधिया च जया मनश्चकार॥ ७२॥

कथावतारः॥ १॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां कथापीठलम्बके प्रथमस्तरङ्गः।

द्वितीयस्तरङ्गः ।

अवतीर्य धरां शापात्पुष्पदन्तो गणाग्रणीः ।
चिरं भूत्वा महामात्यो योगनन्दस्य भूपतेः ॥ १ ॥
मुहुर्निःसारसंसारकलनां कलयन्धियः ।
कात्यायनाभिधो द्रष्टुं प्रययौ विन्ध्यवासिनीम् ॥ २ ॥
तपसा दर्शनं प्राप्य देव्यास्तद्वचसा गुहाम् ।
गत्वापश्यन्महाभूतं पिशाचनिचयाचितम् ॥ ३ ॥
काणभूतिं तमासाद्य पूजां प्राप्य द्विजोचिताम् ।
पप्रच्छ विकटाकारमटवीवासकारणम् ॥ ४ ॥
स पृष्टः प्राह यक्षोऽहं पापमित्रनिषेवणात् ।
शप्तो धनाधिपतिना घोरां प्राप्तः पिशाचताम् ॥ ५ ॥
इदं निरुदकं स्थानं शुष्ककण्टकिपादपम् ।
शापोपनतमत्युग्रं पापेनाधिष्ठितं मया ॥ ६ ॥
भविता शापमोक्षो मे पुष्पदन्तसमागमात् ।
श्मशानवासिनः शंभोः श्रुतं कथयतो मया ॥ ७ ॥
निशम्येति वचस्तस्य शनैः कात्यायनः कथाम् ।
सस्मार पुष्पदन्तोऽहमिति संविदमास्थितः ॥ ८ ॥
काणभूतिस्ततस्तस्माच्छुश्रावाश्चर्यशालिनीम् ।
कथां विद्याधरेन्द्राणां सप्तानां चक्रवर्तिनाम् ॥ ९ ॥
स्वामभ्येत्य यदा मौनी ब्राह्मणो दक्षिणापथात् ।
गुणाढ्यः श्रोष्यति त्वचः कथामेतां मयोदिताम् ॥ १० ॥
तदागमान्तमासाद्य [1]भवान्स च गमिष्यतः ।
इति कात्यायनः प्राह कथान्ते तमुदारधीः ॥ ११ ॥
[2]महवमं तमालक्ष्य तपसा मर्त्यविग्रहम् ।
पप्रच्छ जन्मवृत्तान्तं काणभूतिः कुतूहलात् ॥ १२ ॥

---

१. 'भवांस्तम गमिष्यति' क. २. 'लघुकामं तमालक्ष्य सहसा' ख.

स तेन पृष्टोऽकथयन्निजाश्चर्यमयीं कथाम् ।
द्रष्टुमभ्युत्सुकः शंभुमवाप्य निजसंविदम् ॥ १३ ॥
कौशाम्ब्यामभवद्विप्रः सोमदत्तापराभिधः ।
अग्निसोमः श्रुतेः क्षेत्रं पवित्रचरितव्रतः ॥ १४ ॥
तस्याहं वसुदत्तायां जातः श्रुतधराभिधः ।
कात्यायनो वररुचिश्चेत्यन्वर्थकृताह्वयः ॥ १५ ॥
बालस्य मम कालेन याते पितरि पञ्चताम् ।
प्रतिश्रयार्थिनौ पान्थावस्माकं विशतुर्गृहम् ॥ १६ ॥
व्याडीन्द्रदत्तनामानौ तौ मे मतिमतां वरौ ।
ततो यदृच्छयायातनटनृत्यानुकारिणम् ॥ १७ ॥
यथा दृष्टघनातोद्यगीताभिनयकोविदम् ।
विस्मयं जग्मतुर्वीक्ष्य ज्ञानग्रहणधारणैः ॥ १८ ॥
अतीव विस्मितौ क्षिप्रं महर्षोत्फुल्ललोचनौ ।
विज्ञाय नामधेयं मे मन्मातरमवोचताम् ॥ १९ ॥
ब्राह्मणौ वेतसपुरे वशिष्ठकुलसंभवौ ।
करम्भो देवसोमश्च श्लाघ्यमानौ बभूवतुः ॥ २० ॥
भ्रातुस्तयोः सुतनयौ भ्रान्तौ विद्यार्थिनौ महीम् ।
पुरं पाटलिपुत्राख्यं कार्तिकेयवरादृतौ ॥ २१ ॥
नित्या वर्षद्विजे सन्ति प्राप्येति स्कन्दशासनम् ।
प्रहृष्टवदनौ तत्र प्रविष्टौ वर्षमन्दिरम् ॥ २२ ॥
निवेद्य निजवृत्तान्तं वर्षोपाध्यायगेहिनी ।
आवाभ्यां गुरुवृत्तान्तं पृष्टा प्राह प्रियंवदा ॥ २३ ॥

---

१. 'कथामाश्चर्यकथाम्' ग. २. 'मप्यु' ख. ३ 'प्रायश्चित्ता' ख. ४. 'पान्थौ पान्थौ विविशतुर्गृहम्' इति ख पुस्तके पाठः, परंतु 'द्वारस्थगृहमेधका' इति कथासरित्सागरसंवादतो 'द्वौ मो विविशतुर्गृहम्' इति पाठः साधीयान् प्रतीयते. यद्वा 'कस्याहं विश्रान्तौ गृहम्' इत्यपि साधीयान्, स्वयोगे लङः साधुत्वात्. ५. 'स्म' ख. ६. 'दासि' ख. ७. 'विस्मित विस्मयौ' ग. ८. 'व्याघातौ' ख.

शंकरस्वामिनामाभूद्ब्राह्मणो वेदपारगः ।
वर्षोपवर्षौ तस्येमौ तनयावतनुत्विषः ।
संप्राप्य विद्यामतुलां विश्रुतौ लोकपूजितः ॥ २४ ॥
कनीयानुपवर्षोऽस्य मम भर्तुर्महाधनः ।
ज्येष्ठश्चासावविज्ञातो मौर्ख्याद्दारिद्र्यमन्दिरम् ॥ २५ ॥
ततःकदाचिद्धिमवोन्मत्ता सरलचेतसे ।
उपवर्षस्य दयिता स्वयं वर्षाय निस्त्रपा ॥ २६ ॥
भक्ष्यं जघनमुद्राङ्कं पिष्टोद्वर्तननिर्मितम् ।
ददौ प्रहृष्टस्तत्प्राप्य स च मह्यं न्यवेदयत् ॥ २७ ॥
स्नानमयासचकिता रजसो विनिवृत्तये ।
कुर्वन्ति शीतकालेषु स्त्रियस्तद्विगतत्रपाः ॥ २८ ॥
समालोक्यास्मि निर्विण्णा त्यक्त्वा थूत्कृत्य भूतले ।
हा हता मूर्खभार्याहमित्यशोचमधोमुखी ॥ २९ ॥
विमृश्य लज्जितः क्षिप्रं गत्वा चक्रे ततस्तपः ।
वर्षो येनास्य भगवानभवद्वरदो गुहः ॥ ३० ॥
देयं श्रुतधरायेदं ज्ञानमित्याप्तशासनः ।
सर्वज्ञतामवाप्यासौ पुनः प्राप्तः स्वमन्दिरम् ॥ ३१ ॥
इत्युपाध्यायिनीवाक्यं श्रुत्वावां प्रणतौ गुरोः ।
आज्ञां श्रुतधराह्वाने प्राप्य भ्रान्तौ महीतलम् ॥ ३२ ॥
कालेन त्वद्गृहे मातर्दृष्टोऽसौ तनयस्तव ।
यथार्थनामा मतिमानयं श्रुतधरः शिशुः ॥ ३३ ॥
आवां वररुचिश्चायं त्वदत्तो वर्षमन्दिरम् ।
विद्यार्थिनः स्वस्तिमन्तो गच्छामः शाधि नः शिवम् ॥ ३४ ॥
ताभ्यामभ्यर्थिता माता कथंचिदथ मां शिशुम् ।
आदिदेशाश्रुवदना मत्यप्रविहितव्रतम् ॥ ३५ ॥

१. 'शंव' ख. २. 'ततो मामाभ्यद्रागतं कथंचिद्वरगापया' इति कथासरित्सागरे.

हृष्टस्तदनुगः प्राप्य वर्षवेश्म शनैरहम् ।
तस्मात्प्राप्याखिलान्वेदान्विद्यानामाश्रयोऽभवम् ॥ ३६ ॥
ततः कदाचिदेकान्ते सुकान्ते समवस्थितः ।
पृष्टः पाटलिपुत्रीयामुत्पत्तिं प्राह मे गुरुः ॥ ३७ ॥
अनावृष्टिहते काले भ्रातरो ब्राह्मणास्त्रयः ।
भार्यास्तिस्रः परित्यज्य पुरा जग्मुर्दिगन्तरम् ॥ ३८ ॥
अजीजनत्सुतं काले तासामेकैव गर्भिणी ।
हेमलाभः सदा तस्य मूर्ध्नि गौरीपतेर्वरात् ॥ ३९ ॥
प्रत्यहं खलु लब्धेन सहस्रेण स बालकः ।
कालेन पुत्रकाभिख्यः प्राप्य राज्यं जनप्रियः ॥ ४० ॥
तस्मिन्हराचर्चनरते दातरि व्यक्तिमागते ।
भ्रान्त्वा दिगन्तानाजग्मुर्भिक्षार्थं ते द्विजास्त्रयः ॥ ४१ ॥
विज्ञाय जननीवाक्यात्पुत्रकस्तान्महीपतिः ।
पितरं च पितृव्यौ च सदा हृष्टोऽभ्यपूजयत् ॥ ४२ ॥
सुखोषितास्ते शनकैः संभोगाद्दृप्ततां ययुः ।
कं वा नाभिनवा लक्ष्मीर्वारुणीव विमोहयेत् ॥ ४३ ॥
तेषां बुद्धिरभूद्रूढमस्मिन्पुत्रे निपातिते ।
स्वयं राज्यमवष्टभ्य तिष्ठाम इति निश्चिताः ॥ ४४ ॥
ते विन्ध्यवासिनीपूजामपदिश्यात्मजं नृपम् ।
निन्युर्गृहं समाधाय तद्वधाय महाभटान् ॥ ४५ ॥
तद्विज्ञाय गुरूणां स प्रतीकारपराङ्मुखः ।
विन्ध्याटवीं विवेशैकस्त्यक्तराज्योऽथ पुत्रकः ॥ ४६ ॥
पुत्रके त्यक्तराज्येऽथ जाते तेषां द्विजन्मनाम् ।
राज्यं हृतं कातराणां शत्रुभिर्लब्धवैरैः ॥ ४७ ॥
पुत्रकोऽप्यटवीं प्राप्य निर्जनां धैर्यसागरः ।
अमर्त्योचितसंचारमवाप गिरिकन्दरम् ॥ ४८ ॥

१. 'गुरुपुरमव' ग. २. 'दृष्ट' ग. ३. 'गूढ' ग. ४. 'गूढं' ग.

आत्रोरसुरयोः पैत्रे धने विवदमानयोः ।
धावतोरधिको वेगो यः स स्वामी धने पितुः ॥ ४९ ॥
इति तद्वचसा वेगगमने द्रुतयोस्तयोः ।
उपानहौ च यष्टिं च प्राप्य पात्रं च तत्र सः ॥ ५० ॥
यष्टिं समस्तनिर्माणे नभोगत्यामुपानहौ ।
पात्रं निखिलभोगेषु स प्राप्येप्सितसिद्धिदम् ॥ ५१ ॥
साकञ्जिकपुरीं गत्वा गूढं वृद्धा गृहे वसन् ।
सेव्यमानस्तया प्राज्ञः सततं काञ्चनप्रदः ॥ ५२ ॥
महेन्द्रवर्मणो राज्ञस्तनयां रूपशालिनीम् ।
विश्रुतां तत्र शुश्राव पाटलां पाटलाधराम् ॥ ५३ ॥
उपानहौ समादाय रात्रावुत्पत्य खेचरः ।
आकाशमन्दिरगतां तत्प्रविश्य ददर्श सः ॥ ५४ ॥
शयानां शयने स्वच्छे निजकान्त्युत्तरच्छदे ।
नभोगतिः स तां सुप्तामैन्दवीमिव देवताम् ॥ ५५ ॥
लावण्यसलिलस्मेरस्मरकल्लोलिनीमिव ।
खचरैरिव विन्यस्तां मानसाकर्षणौषधिम् ॥ ५६ ॥
यौवनोद्यानसंरूढां विलासलतिकामिव ।
तां विलोक्य स्फुरद्रत्नकपिशालोकमन्दिरम् ॥ ५७ ॥
सहसा बोधयाम्येनां सुखसुप्तामहं कथम् ।
चित्रन्यस्त इव क्षिप्रमिति ध्यानपरोऽभवत् ॥ ५८ ॥
चिन्तादोलायिते तस्मिन्बहिःकश्चित्प्रसङ्गतः ।
यामिको यामिकं प्राह स्वैरं निजकथान्तरे ॥ ५९ ॥
निद्रामुद्रितलोललोचनरुचिभ्राजिष्णुकर्णोत्पला-
मर्धाधृतनिमेषहुंकृतिपदां जृम्भाभिरामां मुहुः ॥

१. 'द्रुतपादयो.' ख. २. 'आयसिक' ख. 'आकर्षिकाख्याम्' इति कथासरित्सागरे. ३. 'प्रहं' ख. ४. कथासरित्सागरे तु 'पाटलीम्' इति पाठः. ५. 'आकाशे मन्दिरगताम्' क. ६. 'ता प्रविश्य' क. ७. 'कपिशालोकमन्दिरे' क. ८. 'चित्रन्यस्तमिव' ख.

यः प्राप्येन्दुमुखीं स्वयं न सहसा कण्ठे समालम्बते
स प्रायः किंनु पापदग्धविधिना सृष्टः शिलापुत्रकः ॥ ६० ॥
इत्याकर्ण्य प्रहृष्टः स पुत्रकः प्राह विस्मितः ।
मामिवोद्दिश्य साधूक्तमहो केनापि धीमता ॥ ६१ ॥
इत्युक्त्वा पाटलां कण्ठे जग्राह मदनाकुलः ।
नवोत्कम्पिकुचन्यस्तहस्तस्खलितकञ्चुकाम् ॥ ६२ ॥
सा तेन त्रासविचलल्लोचनव्याकुलोत्पला ।
क्रान्तानताननाम्भोजा गजेनेव सरोजिनी ॥ ६३ ॥
श्यामेव विस्फुरच्छिन्नहारमौक्तिकतारका ।
स्मरसमयभयभ्रान्तिभाजनं सहसाभवत् ॥ ६४ ॥
एवं प्रतिनिशं श्यामा संगमानङ्गभङ्गिना ।
तेन कान्तवसन्तेन स्वैरं सा पुष्पिताभवत् ॥ ६५ ॥
कालेन स परिज्ञातो राज्ञा प्रच्छन्नकामुकः ।
आदाय पाटलां व्योम्ना प्रययौ जाह्नवीतटम् ॥ ६६ ॥
सुखोषितस्तत्र तया सेव्यमानोऽथ पुत्रकः ।
चकार नगरं यष्टिलेखाभिर्हेममन्दिरम् ॥ ६७ ॥
पाटला वचसा राज्ञा पुत्रकेणाथ निर्मितम् ।
पुरं पाटलिपुत्राख्यमिदं विद्यानिवेशनम् ॥ ६८ ॥

पाटलिपुत्रकथा ॥ १ ॥

इति श्रुत्वा गुरोर्विद्याः प्राप्य सर्वाः सुखोषितः ।
अवापमुपकोशाख्यामुपवर्षगुरोः सुताम् ॥ ६९ ॥
उपकोशामवाप्याहं नीलनीरजलोचनाम् ।
स्मरसाम्राज्यमभजं भाजनं गुणसंपदः ॥ ७० ॥
व्याडीन्द्रदत्तसहिते सर्वज्ञे मयि विश्रुते ।
पाणिनिर्नाम वर्षस्य शिष्यः पूर्वं जडाशयः ॥ ७१ ॥

---

१. 'पानतप' ग. २. 'तदा तस्य वचनं प्राह विस्मितः' ख. ३. 'छिद' ख. ४. 'देश [illegible]म्' ग. ५. 'मगधम्' ग.

तपसा शंकरात्प्राप्य नवं व्याकरणं वशी ।
दिनान्यष्टौ विवादे मे प्रतिवादी च मेऽभवत् ॥ ७२ ॥
मया जिते ततस्तस्मिन्हुंकारेण विमोहयन् ।
जहार नो हरः कोपादैन्द्रव्याकरणस्मृतिम् ॥ ७३ ॥
सहसा विस्मृते तस्मिंस्तपसे कृतनिश्चयः ।
द्रष्टुं स्मरहरं भर्गं वरदं पार्वतीपतिम् ॥ ७४ ॥
हिरण्यगुप्तनाम्नोऽथ वणिजः प्रतिवेश्मनः ।
हस्ते गृहव्ययधनं विनिक्षिप्य गते मयि ॥ ७५ ॥
उपकोशा विरहिणी नवयौवनशालिनी ।
श्रुतज्ञा प्रोषिता योग्यं व्रतं चक्रे पतिव्रता ॥ ७६ ॥
याति काले कदाचित्तां हारिणीं हंसगामिनीम् ।
तनुस्वच्छाम्बरस्मेरस्फारफेनविलासिनीम् ॥ ७७ ॥
विस्तीर्णश्रोणिपुलिनां श्यामां नेत्रनवोत्पलाम् ।
सततस्नायिनीं गङ्गां व्रजन्तीं यमुनामिव ॥ ७८ ॥
युवा लक्ष्मीमदोन्मत्तः क्ष्मापतेर्दण्डवासिकः ।
पुरोहितश्च मन्त्री च ददृशुः स्मरमञ्जरीम् ॥ ७९ ॥
तां वीक्ष्य मन्मथावेशात्स्थितेष्वथ पृथक्पृथक् ।
तेषु मन्त्रिसुतः प्राह प्रथमं भज मामिति ॥ ८० ॥
स्नानात्प्रतिनिवृत्ता सा वीक्ष्य संध्यामुपस्थिताम् ।
भीता तमभ्यधादस्तु तृतीयेऽह्नि निशागमे ॥ ८१ ॥
समागमस्तव मया वञ्चयित्वेति तं ययौ ।
तस्मात्प्रतिनिवृत्ताथ पुरोहितमुवाच सा ॥ ८२ ॥
द्वितीययामे यामिन्यास्तृतीयेऽह्नि वशास्मि ते ।
उक्त्वेति तस्मादुत्तीर्णा दण्डवासिकमभ्यधात् ॥ ८३ ॥
तृतीयेऽह्नि तृतीयांशे शर्वर्यां वशगास्मि ते ।
इति संविदमाधाय स्वैरं त्यक्त्वा तानविशद्गृहम् ॥ ८४ ॥

---

१. 'समोऽभवत्' ग. २. 'त्वयि' ग. ३. 'मुक्त्वा येन' ग.

कीर्णोत्पला इव दृशो विधाय चकितेक्षितैः ।
प्रस्तुतापह्नवापाया निजभर्तृधनार्थिनीम् ॥ ८५ ॥
हिरण्यगुप्तोऽपि गृहे तामयाचत संगमम् ।
तृतीयेऽह्नि निशाशेषे स्वाधीना तेऽस्मि का क्षतिः ।
इत्युक्त्वा तं परिजने कथामेतां न्यवेदयत् ॥ ८६ ॥
ततः प्राप्ते तृतीयेऽह्नि तस्या मन्त्रिसुतो गृहम् ।
विनष्टदीपं साकम्पो विवेश विवशो निशि ॥ ८७ ॥
उपकोशा तमवदत्स्नाते त्वयि मे रतिः ।
इति तस्या गिरा स्नातुं विवेशान्धगृहोदरम् ॥ ८८ ॥
तत्रोद्वर्तनमादाय मसृणं तैलकज्जलम् ।
लिलिपुश्चेटिकास्तस्य चिरं गात्राणि कामिनः ॥ ८९ ॥
अथान्यस्मिन्निशायामे तूर्णं प्राप्ते पुरोहिते ।
मञ्जूषरूपं संदर्श्य विवृतं दारुकोष्ठकम् ॥ ९० ॥
प्रविश प्रविश क्षिप्रमसौ प्राप्तो गृहाधिपः ।
इत्युक्त्वा कोष्ठके ज्येष्ठमुपकोशा न्यवेशयत् ॥ ९१ ॥
दत्वा लोहार्गलं तस्मिन्पुरोहितमुवाच सा ।
नास्नातोऽर्हसि मां स्प्रष्टुमिति सोऽपि तथा कृतः ॥ ९२ ॥
तस्मिंस्तैलमषीलिप्ते तृतीयोऽपि समाययौ ।
सत्यं स्मरविदग्धेन मुग्धः को न विडम्बितः ॥ ९३ ॥
पुरोहितेऽपि विन्यस्ते तत्रैव भयविह्वले ।
सोऽपि क्रमेण तेनैव पिशाचसदृशः कृतः ॥ ९४ ॥
हिरण्यगुप्ते संप्राप्ते रात्रिशेषे वणिग्वरे ।
दारुभाण्डे तथैवासौ निहितो दण्डवासिकः ॥ ९५ ॥
अथोपकोशा वणिजमुपविष्टं वरासने ।
कोष्ठकाभिमुखी प्राह निक्षेपो दीयतामिति ॥ ९६ ॥

---

१. 'विधाय चकितेक्षणैः' ख. २. 'तदाधीनास्मि का क्षतिः' ख. ३. 'मन्त्रिवर' ख. ४. 'अथान्यस्मिन्दिनाद्यंशे' ख. ५. 'स्थितम्' ख.

हिरण्यगुप्तस्तामाह भज मां चारुलोचने ।
तव भर्त्रा विनिक्षिप्तं विद्यते सुतनो धनम् ॥ ९७ ॥
सा श्रुत्वेत्यवदच्चारं शृण्वन्तु गृहदेवताः ।
मृतानि साक्षिणः सन्तु विद्यतेऽस्मिन्धनं मम ॥ ९८ ॥
इत्युक्त्वा स्नानकूटेन कृत्वा तमपि कज्जलैः ।
दुष्प्रेक्ष्यमब्रवील्लीणा क्षपा गच्छेति सत्वरम् ॥ ९९ ॥
वणिर्वेसंतर्जनभयात्प्रययौ संवृताननः ।
भक्ष्यमाणो लुब्धकानां कृतकोलाहलैः श्वभिः ॥ १०० ॥
इति रक्षितचारित्रा गते तस्मिन्मनस्विनी ।
प्रातर्नन्दस्य नृपतेः सर्वास्थानसमां ययौ ॥ १०१ ॥
उपवर्षस्य दुहिता भार्या वररुचेः सती ।
प्राप्तेत्यावेदिता तत्र मानिता नृपमुजावदत् ॥ १०२ ॥
निहुतं वणिजा राजन्मम भर्तुर्धनं बहु ।
न्यासं हिरण्यगुप्तेन प्रमाणमधुना नृप ॥ १०३ ॥
ततस्तस्मिन्समाहूते प्राप्ते वितथवादिनि ।
उपकोशावदद्देव साक्षिणः सन्ति मे गृहे ॥ १०४ ॥
आनीयन्तां मम गृहाद्देवताः कोष्ठकस्थिताः ।
ता वक्ष्यन्ति यथातथ्यमित्युक्त्वा विरराम सा ॥ १०५ ॥
नृपाज्ञया समानीते मञ्जूषाकोष्ठके नरैः ।
विन्यस्ते च समामध्ये पुनराह पतिव्रता ॥ १०६ ॥
भो भो सततपूजार्हाः सत्यं मे ब्रूत देवताः ।
क्षिप्रं दहामि मञ्जूषां साक्ष्ये चेन्मौनमाहितम् ॥ १०७ ॥
श्रुत्वेति भीतास्ते प्राहुः सत्यमस्त्येव ते धनम् ।
हस्ते हिरण्यगुप्तस्य साक्षिणोऽत्र त्रयो वयम् ॥ १०८ ॥

---

१. 'दामिनि' ख. २. 'शुभ्रु मे' ख. ३. 'प्रातर्ज' ख. ४. 'हस्यमानाम्बरो मार्गे कृतकोलाहलो जनैः' ख. 'लज्जमानो निजं गृहम्' इति कथा०. ५. 'पूजार्हा' ख. ६. 'भर्त्रा मे धनम्' क.

इत्याकर्ण्याद्भुतं सर्वे विस्मितास्ते समासदः।
ददृशुस्तां समुद्राढ्यं मषीलिप्तान्दिगम्बरान् ॥ १०९ ॥
ततो विदितवृत्तान्तस्तान्निगृह्य महीपतिः।
धनेन धर्मभगिनीमुपकोशामपूजयत् ॥ ११० ॥
अत्रान्तरे वराच्छंभोः स्मृतव्याकरणोऽप्यहम्।
श्रुत्वा निजगृहोदन्तं प्रहृष्टो गुरुमभ्यगाम् ॥ १११ ॥

उपकोशाख्यायिका ॥ २ ॥

प्रतिश्रुत्य गुरोस्तत्र हेमकोटीश्चतुर्दश।
व्याडीन्द्रदत्तसहितः प्रयातो नन्दभूपतिम् ॥ ११२ ॥
एकोनं जातरूपस्य यस्य कोटीशतं गृहे।
तस्याथ नन्दनृपतेरेककोट्यर्थिनः शनैः ॥ ११३ ॥
प्रतिष्ठानपुरं हृष्टा यस्मिन्नेव दिने गताः।
तस्मिन्नेव दिने दैवात्स भूपालो व्यपद्यत ॥ ११४ ॥
अकालाशनिसंकाशं तच्छ्रुत्वा दुःखिता वयम्।
दिनैकजीवने राज्ञो लोमान्मन्त्रं समाश्रिताः ॥ ११५ ॥
अथेन्द्रदत्तः संमन्त्र्य संत्यज्य निजविग्रहम्।
विवेश राज्ञो योगेन शरीरमनिलोपमः ॥ ११६ ॥
तस्मिन्प्रविष्टे सहसा समुच्छ्वसौ स भूपतिः।
व्याडिं निधाय रक्षार्थमिन्द्रदत्तकलेवरे ॥ ११७ ॥
अभ्येत्य याचितो राजा स मया गुरुदक्षिणाम्।
इन्द्रदत्तसमाविष्टः सुप्तोत्थित इवाथ सः।
मन्त्रिणं शकटालाख्यं दीयतामित्यभाषत ॥ ११८ ॥
तेनाप्याविष्टदेहोऽयमिति निश्चित्य बुद्धिमान्।
अदाहयन्मन्त्रिवरः सोऽन्विष्य प्रेतविग्रहान् ॥ ११९ ॥

१. 'त्वम्' ख. २. 'प्रविश्य नगरे' क. ३. 'वयम्' ख. ४. 'मन्त्रम्' ख.

ततो नन्दशरीरस्थो दग्धदेहोऽतिदुःखितः ।
इन्द्रदत्तो रहः प्राह मां व्याडिं चाश्रुगद्गदः ॥ १२० ॥
द्विजो भूत्वा कथं लोभादस्मिन्शूद्रकलेवरे ।
स्थास्यामि शकटालेन निर्दग्धनिजविग्रहः ॥ १२१ ॥
इति दुःखाकुलं व्याडिरहं च नृपतिं शनैः ।
वीतशोकं समाधाय तद्राज्ये मन्त्रितां श्रितौ ॥ १२२ ॥
गूढं निबद्धमूलोऽपि विनाशभयशङ्कितः ।
सततं नृपतिर्वैरं शकटाले व्यचिन्तयत् ॥ १२३ ॥
योगनन्दोऽथ कालेन मन्त्रयित्वा चिरं मया ।
बद्धान्धकूपे चिक्षेप शकटालं सुतैः सह ॥ १२४ ॥
बद्धः पुत्रशतं प्राह प्राप्यैकं पुरुषाशनम् ।
सोऽश्नातु यः प्रतीकारे शक्तो भूमिपतेरिति ॥ १२५ ॥
अशक्ता वयमित्युक्ते तैः स तद्भुक्तवांस्तदा ।
उपवासकृशाङ्गाश्च तत्र ते निधनं ययुः ॥ १२६ ॥
योगनन्दोऽपि संप्राप्य विभूतिं रतिमाययौ ।
कुम्भेषु च करीन्द्राणां कुचेषु च मृगीदृशाम् ॥ १२७ ॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा विमुखो भव संततेः ।
व्याडी विरक्तहृदयः समामन्त्र्य विनिर्ययौ ॥ १२८ ॥
इति नन्दस्य साचिव्यं प्राप्तस्य मम जाह्नवी ।
भक्त्या बभूव वरदा सदा हेमशतप्रदा ॥ १२९ ॥
ततः कालेन करुणाकूणितेन मया नृपम् ।
विबोध्य शकटालोऽपि तमःकूपाद्विमोक्षितः ॥ १३० ॥
पुनर्मन्त्रिपदं प्राप मदेकशरणः सदा ।
प्रदध्यौ मनसा वैरं शकटालो महीपतेः ॥ १३१ ॥
कदाचिदथ गङ्गायां करपञ्चनिजाङ्गुलीः ।
दर्शयन्तं ततो दृष्ट्वा मामपृच्छत्सकौतुकः ॥ १३२ ॥

१. 'ततः' ख.

अदर्शनं करं नीत्वा संदर्श्य स्वाङ्गुलिद्वयम्।
द्वावप्यभेद्यौ तिष्ठन्तु पश्चेत्यहमथाभ्यधाम्॥ १३३॥
इति मे बुद्धिविभवं दृष्ट्वा विस्मयमाययुः।
राजा च शकटालश्च ये चान्ये तत्र संगताः॥ १३४॥
एवं नन्दशरीरस्थः संभोगासक्तमानसः।
इन्द्रदत्तो विसस्मार ब्राह्मण्यं कोपमाश्रितः॥ १३५॥
तस्य लक्ष्मीमदान्धस्य संभोगासक्तचेतसः।
ईर्ष्यालोर्ददृशुर्नैव मरुतोऽपि वधूजनम्॥ १३६॥
स कदाचित्प्रियां शुभ्रवलभीशिखरस्थितः।
तिथिप्रश्ने द्विजन्मानं भाषमाणां प्रियं वचः॥ १३७॥
विलोक्य क्रोधविवशो भ्रुकुटीकुटिलाननः।
ब्राह्मणस्य वधं क्षिप्रं दण्डवासिकमभ्यधात्॥ १३८॥
स तीव्रशासनेनाशु राज्ञादिष्टः पुराधिपः।
निनाय निग्रहस्थानं ब्राह्मणं संभ्रमाकुलम्॥ १३९॥
कृष्यमाणं महाकायैर्द्विजमालोक्य वर्त्मनि।
जहास विक्रयन्यस्तो मत्स्यो विगतजीवितः॥ १४०॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं निवृत्तो दण्डवासिकः।
न्यविज्ञपन्महीपालं राज्ञा पृष्टा वधं च तत्॥ १४१॥
शकटालप्रभृतिषु क्ष्मापतेः क्षणमन्तिके।
विस्मयध्यानमूकेषु ध्यात्वा पृष्टोऽहमभ्यधाम्॥ १४२॥
निवार्यतां मद्वचसा ब्राह्मणो वधसाहसात्।
मैवकास्म्यद्भुतं मातर्मत्स्यहासस्य कारणम्॥ १४३॥
इत्युक्त्वाहं त्रिपथगां गत्वा निशि निशातधीः।
अपृच्छं मत्स्यहासस्य हेतुं पृष्टाब्रवीच्च सा॥ १४४॥

---

१. 'च संदर्श्याङ्गुलिद्वयम्' ख. २. 'द्वौ मुख्य' ख. ३. 'क्रौर्यं' ख. ४. 'शेखर' ख. ५. 'स्थितां प्र' ख. ६. 'च घातताम्' ख. ७. 'विधुरो' ख. ८. 'पुराद्बहिः' ख. ९. 'मयदाम्यद्ध' ख.

योऽयं शिशिरसंकाशशापावलयसंकुलः ।
करालस्तालविटपी च्छन्नोऽत्र श्रोप्यसि स्थितः ॥ १४५ ॥
इत्यहं तद्गिरा गूढं स्थितस्तालतरोरधः ।
अर्धरात्रे महाकायामपश्यं रजनीचरीम् ॥ १४६ ॥
कृतानुयात्रां विकटाकारराक्षसपुत्रकैः ।
दीप्तोर्ध्वकेशनयनां कालरात्रिमिवापराम् ॥ १४७ ॥
ततो मातुः प्रणयिनां निविडाडिम्भरक्षसाम् ।
भोजनं देहि देहीति तेषामशृणवं गिरः ॥ १४८ ॥
प्रातर्विशसिता पुत्राः स विप्रो राजशासनात् ।
दिनमेकं परित्रातो मन्त्रिणा मत्स्यहासतः ॥ १४९ ॥
तस्यैव मांसैः षण्मासांस्तृप्तिं यास्यथ बालकाः ।
मातुः श्रुत्वेति पप्रच्छुस्ते मत्स्यस्मितकारणम् ॥ १५० ॥
साब्रवीदीर्ष्यया राजा मूर्खो द्विजवधे विभुः ।
अन्तःपुरेषु स्त्रीरूपान्न वेत्ति पुरुषान्स्थितान् ॥ १५१ ॥
एतन्मत्स्येन हसितं श्रुत्वैतद्राक्षसीवचः ।
प्रातर्विदितवृत्तान्तो नरेन्द्रमवदं रहः ॥ १५२ ॥
अन्तःपुरेषु स्त्रीरूपाः स्थितास्ते मा द्विजे क्रुध ।
अजातश्मश्रवो देवदेवीनां दयिता नराः ॥ १५३ ॥
मत्स्यस्य हसिते हेतुरयमेव नरेश्वर ।
श्रुत्वेति तान्नरान्राजा निजमाह प्रियाश्च ताः ॥ १५४ ॥

योगनन्दमत्स्यहासकथा ॥ ३ ॥

अथ कालेन भूपाले सर्वोत्थानसभास्थिते ।
प्रतिज्ञां चित्रवैचित्र्ये कृत्वा चित्रकरोऽविशत् ॥ १५५ ॥
स चिन्तयित्वा चित्रज्ञो राजानं दयितासखम् ।
लिलेख लेखकुशलः प्रतिबिम्बमिवाम्बुनि ॥ १५६ ॥

---

१. 'सितरी' ख. २. 'प्रतिमां चि' ख.

ततः कदाचित्तं राज्ञः प्रतिमापट्टमद्भुतम् ।
अपश्यमहमेकान्ते नूतनान्तःपुरे स्थितम् ॥ १५७ ॥
तत्र सर्वगुणोपेतां दृष्ट्वा नरपतेस्तनुम् ।
विद्युद्द्योतामिधां देवीं विलोक्य स्फुटलक्षणाम् ॥ १५८ ॥
मानोन्मानप्रमाणज्ञश्चित्रवैचित्र्यसिद्धये ।
ध्यात्वाहं तिलकं तस्या गुह्यदेशे न्यवेशयम् ॥ १५९ ॥
ततः संपूर्णलावण्यां कदाचिदवलोक्य ताम् ।
चित्रस्थां महिषीं राजा चुकोपेर्ष्याविनष्टधीः ॥ १६० ॥
जघने लक्षणं देव्याः केनेदमुपपादितम् ।
नादृष्ट्वा विहितं मन्ये प्राहेत्यन्तःपुराश्रयात् ॥ १६१ ॥
देव कात्यायनेनेदं न्यस्तं मधिवरेण ते ।
इति वर्षधराच्छ्रुत्वा शकटालमुवाच सः ॥ १६२ ॥
पापो वररुचिः क्षिप्रं हन्यतामिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्यैव मामेत्य शकटालो गृहेऽवदत् ॥ १६३ ॥
राजा तव वधो दिष्टश्चित्रे तिलककारिणः ।
*कर्ता नास्मि च तद्वाक्यं त्वं हि देवो न मानुषः ॥ १६४ ॥*
अयत्नेन समर्थस्त्वं निहन्तुमपकारिणम् ।
इति मत्वा मया भीत्या रक्षितोऽसि न गौरवात् ॥ १६५ ॥
दुर्नीत्याभिहतो राजा ध्रुवमेव विनङ्क्ष्यति ।
नौरिवाकर्णधारा श्रीर्मन्त्रिहीना हि सीदति ॥ १६६ ॥
असमीक्षितकारित्वाच्छोच्यो नन्दस्त्वया विना ।
आदित्यवर्मणो राज्ञः किं कथा न श्रुता त्वया ॥ १६७ ॥
इत्युक्त्वा शकटालो मां धृत्वा गूढं समन्दिरे ।
हतो मयेति राजानं चौरं हत्वा व्यजिज्ञपत् ॥ १६८ ॥
निगृहीतं तु मां राजा ज्ञात्वा पुरनिवासिनः ।
शुशुचुर्दुःखसंतप्ता बन्धुहीना इवानिशम् ॥ १६९ ॥

१. 'मेखाभो' ग. २. 'विद्युद्द्योताभि' ख. ३. 'दुर्नीत्याहतो' ख. ४. 'च्छोच्यो' ख.

प्रच्छन्नचारी सौहार्दात्ततोऽहमवदं निशि ।
शकटालः सखे धार्ष्ट्यात्त्वबुद्ध्या रक्षितस्त्वया ॥ १७० ॥
अस्ति मे राक्षसो मित्रं स हन्ति मम हिंसकान् ।
भवता रक्षितो ह्यात्मा वर्तमानेन मद्धिते ॥ १७१ ॥
इत्युक्त्वा दीप्तनयनं ध्यानमात्रादुपस्थितम् ।
करालाकारविस्फारं राक्षसं तमदर्शयत् ॥ १७२ ॥
ततस्तद्दर्शनाद्भीतः शकटालोऽभ्यभाषत ।
कथान्तरे मया पृष्टः कथामादित्यवर्मणः ॥ १७३ ॥
आदित्यवर्मणो राज्ञः पुरा रैवती प्रिया ।
अप्राप्तसंगमा भर्त्रा गर्भमाधत्त निस्त्रपा ॥ १७४ ॥
स तां विनष्टचारित्रां ज्ञात्वान्तःपुररक्षिणाम् ।
वचसा शिववर्माख्यं महामात्यमशङ्कत ॥ १७५ ॥
तं वयस्यस्य नगरं नृपतेर्भोगवर्मणः ।
गूढलेखोदितवधं बद्धमूलं विसृष्टवान् ॥ १७६ ॥
भोगवर्माणमासाद्य शिववर्माथ शङ्कितः ।
गूढलेखोदितं राजा विवेद वधमात्मनः ॥ १७७ ॥
सोऽब्रवीद्भोगवर्माणं तूर्णं छिन्धि शिरो मम ।
न चेत्प्रभुहितोद्युक्तः स्वयं छेत्स्यामि मस्तकम् ॥ १७८ ॥
श्रुत्वेति विस्मितेनाशु पृष्टो राज्ञाब्रवीत्पुनः ।
पतामि यत्र निहतस्तत्रावृष्टिभयं भवेत् ॥ १७९ ॥
इत्याकर्ण्य भयाद्राजा विवेच्य सह मन्त्रिभिः ।
सुरक्षितं प्रयत्नेन स्वपुरं विससर्ज तम् ॥ १८० ॥
अत्रान्तरे वधूरूपं स्थितमन्तःपुरे नरम् ।
आदित्यवर्मा विज्ञाय पश्चात्तापं समाययौ ॥ १८१ ॥

आदित्यवर्मकथा ॥ ४ ॥

इत्येवं कर्णचपला मदान्धा राजकुञ्जराः ।
विशृङ्खला विनश्यन्ति पतिताः स्मरशासने ॥ १८२ ॥

---

१. 'भवान्' ख. २. 'मतिमानेनमीक्षते' ग. ३. 'वै रेवती' ख.

कंचित्कालं भवानास्तां प्रच्छन्नो मद्गृहे सुखम्।
विशुद्धं भवतो भावं नृपो ज्ञास्यति सानुगः॥ १८३॥
कथं ते राक्षसो मित्रमभवत्कौतुकं मम।
इत्येवं शकटालेन पृष्टो विश्रब्धमभ्यधाम्॥ १८४॥
नन्दस्य राज्ञो नगरे प्रत्यहं दण्डवासिके।
भक्षिते रक्षसा पूर्वं वृतोऽहं तत्पदे क्रमात्॥ १८५॥
दण्डाधिपत्यमासाद्य राज्ञाहं स्वयमर्थितः।
रक्षसा कालरूपेण तेनैव निशि संगतः॥ १८६॥
स मामुवाच चकितं चञ्चनायोग्रविग्रहः।
रूपेणाभ्यधिका नारी का सत्यं कथ्यतामिति॥ १८७॥
या यस्याभिमता लोके सा तस्याधिकरूपिणी।
स निशाम्येति मद्वाक्यं संतुष्टो मित्रतामगात्॥ १८८॥
इत्युक्त्वा शकटालस्य वचसा प्रयताशयः।
प्रध्यातमात्रां सहसा साक्षाद्गङ्गामदर्शयम्॥ १८९॥
सा धूर्जटिजटाजूटमालिका जननीव माम्।
समाश्वास्य ययौ तूर्णं हारवल्ली नभश्रियः॥ १९०॥
कदाचिदथ नन्दस्य हरिगुप्ताभिधः सुतः।
वनं तुरङ्गमाकृष्टो विवेश मृगयारसात्॥ १९१॥
तस्मिन्प्रमालगहने गजगण्डालिमण्डलैः।
मूर्च्छांतलनिरालोके तस्य रात्रिरवर्तत॥ १९२॥
ततो वनेचरभयादारुह्य तरुमास्थिते।
राजपुत्रे समभ्यायादृक्षः सिंहभयाद्रुतः॥ १९३॥
तमेव तरुमारुह्य तमुवाच वनेचरः।
न भेतव्यं त्वया भ्रातर्वत्स्यामो रजनीमिह॥ १९४॥

१. 'वर्तिष्ट' ख. २. 'त' ख. ३. 'मूर्च्छितेव निरालोका' ख.

करालकेसरसटः क्रुद्धदष्टांशुसंचयैः ।
विपाटयन्निव तमः शार्दूलोऽयमधः स्थितः ॥ १९५ ॥
निद्रां भजस्व रात्र्यर्धं रक्ष्यमाणः सखे मया ।
त्वयि प्रबुद्धे रात्र्यर्धमहं स्वपिमि निर्भयः ॥ १९६ ॥
इति तद्वचसा तत्र सुप्ते राजसुते हरिः ।
ऋक्षमाह प्रसुप्तोऽयं नरो मे त्यज्यतामिति ॥ १९७ ॥
सोऽवदद्धन्त निःसत्त्वो हरिणाधिपते भवान् ।
न हि मित्रद्रुहः पापं शाम्येज्जन्मशतैरपि ॥ १९८ ॥
इत्युक्त्वा सोऽपि सुष्वाप प्रतिबुद्धे नृपात्मजे ।
राजन्यमाह सिंहोऽथ त्यजैनं त्वं सुहृन्मम ॥ १९९ ॥
इति सिंहवचः श्रुत्वा मित्रं सुप्तमशङ्कितम् ।
उत्सङ्गन्यस्तमूर्धानं राजसूनुरपातयत् ॥ २०० ॥
सहसा पातितस्तेन नखैर्विष्टभ्य पादपम् ।
उत्तीर्णो बलवद्दैवाद्दुःखा हि खलसंगतिः ॥ २०१ ॥
शशाप कुपितोऽभ्येत्य तमृक्षो विगतत्रपम् ।
यो ज्ञास्यति कथामेतां स ते त्राणमिति ब्रुवन् ॥ २०२ ॥
उन्मत्तोऽथ स तच्छापाद्गत्वा प्रातर्निजां पुरीम् ।
प्रविश्य विगतच्छायः शोकदः क्ष्मापतेरभूत् ॥ २०३ ॥
पुत्रमुन्मादविधुरं योगनन्दो विलोक्य तम् ।
सस्मार मां विपत्प्राप्तः शकटालस्ततोऽवदत् ॥ २०४ ॥
देव जीवत्यसौ मन्त्री हितः कात्यायनस्तव ।
श्रुत्वेति नृपतिः पुत्रं प्राहिणोत्तं मदन्तिकम् ॥ २०५ ॥
ऋक्षसिंहकथाभिज्ञो मोचयित्वा नृपात्मजम् ।
ततोऽहमगमं द्रष्टुं योगनन्दं ह्रिया नतम् ॥ २०६ ॥
कथं ज्ञातस्त्वया शापः पृष्टोऽहमिति भूभुजा ।
यया ते तिलकं बद्धा बुद्धं चैतन्म्यधामहम् ॥ २०७ ॥

योगनन्दपुत्रशापमोक्षौ ॥ ५ ॥

---

१. 'दष्टदंष्ट्रांशु' ख. २. 'अथ' ग. ३. 'स्वप्स्यामि' ख.

अथ राजानमामन्त्र्य राजकार्यविरक्तधीः ।
प्राप्तोऽस्मि पाटलिपुरीमश्रौषं गृहचेष्टितम् ॥ २०८ ॥
योगनन्देन निहते दिक्षु व्यार्क्कि गते त्वयि ।
माता ते स्वर्ययौ शोकादुपकोशाग्निमाविशत् ॥ २०९ ॥
उपवर्षेण कथितं श्रुत्वेत्यशनिदारुणम् ।
अगमं तपसा द्रष्टुं निःसङ्गो विन्ध्यवासिनीम् ॥ २१० ॥
वियोगदावदग्धानां तृष्णार्सतप्तचेतसाम् ।
सुखाय सर्वसंन्यासः संतोषामृतनिर्झरः ॥ २११ ॥
ततस्तपोवनस्थोऽहं योगनन्दपुरोहितम् ।
वार्तां यदृच्छयायातमपृच्छं कौतुकाकुलः ॥ २१२ ॥
स प्रोवाच मया पृष्टस्त्वयि याते स भूपतिः ।
प्रज्ञया शकटालेन स पुत्रो विनिपातितः ॥ २१३ ॥
चरणाघातकोपेन मूलोद्धृतकुशं पथि ।
स दृष्ट्वा कोपनं विप्रं मत्वा श्राद्धे महीपतेः ॥ २१४ ॥
न्यवेशयन्मुक्तशिखं चाणक्यं नाम दुःसहम् ।
उपविष्टमधः पङ्क्त्यां शकटालस्तमब्रवीत् ॥ २१५ ॥
राज्ञावमानितोऽसीति स च जज्वाल तद्गिरा ।
चाणक्यनाम्ना ते नाथ शकटालगृहे रहः ।
कृत्यां विधाय सहामात्यसपुत्रो निहतो नृपः ॥ २१६ ॥
योगनन्दे यशःशेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः ।
चन्द्रगुप्तो धृतो राज्ये चाणक्येन महौजसा ॥ २१७ ॥
एवमन्तर्ज्वलद्वैरः शकटालो महीपतिम् ।
निपात्य सानुगं बुध्या तपसे स ययौ वनम् ॥ २१८ ॥
श्रुत्वेति फेनिलकल्लोलसंसारार्णवविभ्रमम् ।
रुद्राणीमगमं द्रष्टुं जरामरणवारिणीम् ॥ २१९ ॥

१. 'भ्यगात्' ख. २. 'कल्लिलोलसंसारापारविभ्रम' ख.

ततो देवीप्रसादेन दृष्टस्त्वं शापमुक्तये।
स्वस्ति तेऽस्तु तनुं त्यक्त्वा प्रयास्येष निजं पदम्॥ २२०॥
संगतस्त्वं गुणाढ्येन न चिरात्प्राप्स्यसि श्रियम्।
उक्त्वेत्यामन्त्र्य संहृष्टः काणभूतिर्ययौ वनम्॥ २२१॥
महर्षिभिर्मोक्षकथाः श्रुत्वा दृष्ट्वाथ पार्वतीम्।
सर्वत्र ज्ञाननिर्धूतविकारः स्वपदं ययौ॥ २२२॥
इति वररुचिरुग्रशापमुक्तो घनपटलादिव निर्गतः शशाङ्कः।
अविकलनिजबोधदुर्गसिन्धुः शिवपदमेत्य बभूव निस्तरङ्गः॥ २२३॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां कथापीठलम्बके वररुचिमुक्तिर्नाम
द्वितीयो गुच्छः।

---

तृतीयो गुच्छः।

माल्यवान्पार्वतीशापादवतीर्य महीतलम्।
अमात्यः सुचिरं भूत्वा शातवाहनभूपतेः॥ १॥
गुरुर्गुणवतां लोके गुणाढ्य इति विश्रुतः।
काणभूतिं समासाद्य शापबन्धादमुच्यत॥ २॥
जातिस्मरः स पृष्टोऽथ कथान्ते काणभूतिना।
उवाच निजवृत्तान्तं कथां श्रुत्वा हरोदिताम्॥ ३॥
अभूतां दाक्षिणात्यस्य द्विजातेः सोमशर्मणः।
वत्सगुल्माभिधौ पुत्रौ श्रुतार्था कन्यका तथा॥ ४॥
गते सभार्ये कालेन त्रिदिवं सोमशर्मणि।
श्रुतार्था यौवनवती भ्रात्रोश्चिन्तावहाभवत्॥ ५॥
कदाचिदथ कन्या सा गर्भिणी दु खदा तयोः।
बभूव पाण्डुरमुखी गर्भजृम्भास्खलद्गतिः॥ ६॥
परस्परं शङ्कितयोर्भ्रात्रोः सा प्राह लज्जिता।

---

१. 'स्वाभि' ख. २. 'ग्य' ख. ३. 'भवीति' ख. ४. 'यावे' ख. ५. 'सा पाण्डु-
खी' ख.

स्वयं वृताहं नागेन ततो मे गर्भसंभवः।
इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय ताभ्यां नागमदर्शयत् ॥ ७ ॥
सोऽब्रवीद्वासुकिभ्रातृपुत्रोऽहं दयिता च मे।
शापाद्विद्याधरवधूः कन्येयं युवयोः स्वसा ॥ ८ ॥
गणावतारः पुत्रोऽस्या भविष्यति गुणाधिकः।
उक्त्वेत्यदर्शनं याते भुजङ्गे मामसूत सा ॥ ९ ॥
मज्जन्मावधिशापौ च वररुचिगुरुर्यौ निजं ततः।
प्राप्तौ विद्याधरपदं कालेन जननी च मे ॥ १० ॥
ततो निखिलविद्यानामाश्रयो वेदपारगः।
शातवाहनभूपालं द्रष्टुं यातोऽस्मि तत्पुरम् ॥ ११ ॥
तत्राशृणवमाश्चर्यं कलाविद्याश्रयाः पथि।
कथाः पण्यगृहद्यूतगीतवाद्यादिजीविनाम् ॥ १२ ॥
कश्चिदाह घनातोद्यर्तेतवाद्येऽस्मि कोविदः।
कश्चित्प्राह प्रगल्भोऽहमेक एव धनार्जने ॥ १३ ॥
उवाच कश्चिद्विक्रीय गतासुं मूषकं पुरा।
चणकैर्हेमकोटीनां प्रभुरस्मि भूरिदः ॥ १४ ॥
कश्चित्प्रोवाच विक्रीय धनिनो मुग्धकामुकान्।
वेश्यागृहेषु मतिमान्दातातीव भजेऽस्मि तम् ॥ १५ ॥
शृण्वन्निति गिरस्तत्र नृपं वैश्रवणोपमम्।
प्रविश्य शिष्यैः सहितो दृष्ट्वाहं मन्त्रितां श्रितः ॥ १६ ॥
तत्र मन्त्रिपदं प्राप्य द्रष्टुमुद्यानमुत्तमम्।
मया गोदावरीतीरे कात्यायिन्या विनिर्मितम् ॥ १७ ॥
इति श्रुत्वा कथामध्ये काणभूतिरुवाच तम्।
स शातवाहनाभिख्यां कथं प्राप्तो नरेश्वरः ॥ १८ ॥
इति पृष्टो गुणाढ्यस्तं प्रोवाच विकचद्युतिः।
दीपकर्णाभिधो राजा दरपूजारतोऽभवत् ॥ १९ ॥

---

१. 'भ्रातुः पुत्रो' ख. २. 'द्यूतपाद' ख. ३. 'सट' ख.

तस्य शक्तिमती देवी वल्लभाभूच्छुचिस्मिता ।
यस्याः कटाक्षबाणेन जजृम्भे विजयी स्मरः ॥ २० ॥
ततः कदाचिदानन्दसिन्धौ मधुपबान्धवे ।
आमोदमन्दरे काले कलिकालंकृते मधौ ॥ २१ ॥
देवीकुचस्थले राजा प्रफुल्लकुचस्थले ।
विजहार मरोदारः स्वैरं हारिणि हारिणी ॥ २२ ॥
राजपुत्री रतश्रान्ता स्रस्तकर्णोत्पला ततः ।
अवाप निद्रामुद्याने बालानिलचलालका ॥ २३ ॥
सुखप्रसुप्तामभ्येत्य तां भुजङ्गोऽदशत्करे ।
रम्यं छिनत्ति सहसा पापः कालकुठारिकः ॥ २४ ॥
स तया रहितो राजा विरहक्षामविग्रहः ।
ब्रह्मचर्यव्रतः स्वप्ने ददर्श वरदं शिवम् ॥ २५ ॥
सिंहाधिरूढो विपिने सप्तवर्षः शिशुः स्थितः ।
अपुत्रस्य स ते पुत्रो भविष्यति वरान्मम ॥ २६ ॥
इत्युक्तवानयमालोक्य प्रणतः शंकरं नृपः ।
अपश्यत्काननं गत्वा बालं केसरिवाहनम् ॥ २७ ॥
डिम्भे च नलिनीखण्डक्रीडाडम्बरतत्परे ।
जिघृक्षुर्भूमिपालस्तं जघानैकेषुणा हरिम् ॥ २८ ॥
शार्दूलो निहतस्तेन यक्षो भूत्वा वराकृतिः ।
त्वत्प्रसादादहं मुक्तः शापादित्यभ्यधात्नृपम् ॥ २९ ॥
शांतनामास्मि यक्षः श्रम्बनदानुचरो वने ।
मुनिभिः कन्यकाकामी शप्तः सिंहत्वमागतः ॥ ३० ॥
सिंहीभूत्वा च सा कन्या शिशुं हरिणलोचनम् ।
अजीजनदिमं काले मत्त एव महाबलम् ॥ ३१ ॥

---

१. 'पुष्टेष मधुन्मय' ख. २. 'वर्षस्थितः शिशुः' ग. ३. 'शान्तो' ख. ४. 'नृप' ग.

तस्यां विमुक्तशापायामहं विधुतवालकः।
स्वच्छरायोतनिर्मुक्तशापः प्राप्तो निजां श्रियम्॥ ३२॥
इति वादिनमामन्त्र्य शातयक्षं नरेश्वरः।
शातवाहनमासाद्य पुत्रं प्रायान्निजां पुरीम्॥ ३३॥
इत्यन्वर्थान्वितः काले दीपकर्णसुतो नृपः।
ररक्ष वसुधां धन्वी धैर्यभूः शातवाहनः॥ ३४॥
स कदाचिद्वरोद्याने विमाने पुष्पधन्वनः।
वसन्ते कामिनीकान्तो जलकेलिरतोऽभवत्॥ ३५॥
निषिञ्चन्कङ्कणमणिच्छायाशबलवारिणा।
तरुणीनां स्तनतटे विजहार स्मरोपमः॥ ३६॥
तत्रैका महिषी राज्ञा हता सावेगमम्बुना।
मामोदकेन राजेन्द्र ताडयेत्यभ्यधान्नृपम्॥ ३७॥
श्रुत्वेति मूर्खो भूपालः क्षिप्रमाहृत मोदकः।
मा वारिणेति देव्यास्तद्वचो श्रुत्वा ह्रियं ययौ॥ ३८॥
शब्दज्ञाभिः स देवीभिर्भृत्यैश्च श्रुतशालिभिः।
सान्तर्हासं मैनाग्दृष्टो बभूव भृशखेदितः॥ ३९॥
अस्पृष्टतीर्थसलिलैरजापैरतपस्विभिः।
त्रिलोचनमनाराध्य कथं विद्याधिगम्यते॥ ४०॥
सोऽथ शोकाग्निसंतप्तः समुत्सारितसेवकः।
अविज्ञातामयोऽविद्यैस्तस्थौ मौनी दिवानिशम्॥ ४१॥
कालेन शर्ववर्माख्यो मन्त्री सह मया नृपम्।
प्रोवाच राजन्स्थाने कोऽयं शोकमहस्तव॥ ४२॥
त्वयं शिक्षितया किं ते विद्यया चक्रवर्तिनः।
विबुधास्त्वां निषेवन्ते पश्य शक्रमिवेश्वरम्॥ ४३॥

१. 'सर्विलक' ख. २. 'पात्रपर्यन्त' ग. ३. 'मिथ.' ख. ४. 'स्कन्धवा पन्दैन्दः' ख. ५. 'गणाढ्यो' ख. ६. 'दु खि' ख.

अथाहमवदं ध्यात्वा गुणाढ्योऽहं यथार्थवाक् ।
पण्डितं त्वां विधास्यामि पञ्चभिर्वत्सरैरिति ॥ ४४ ॥
ततोऽब्रवीच्छर्ववर्मा मासैः षड्भिर्बहुश्रुतम् ।
अहं नृपं करिष्यामि विश्राम्यन्तु भवद्विधाः ॥ ४५ ॥
इति श्रुत्वा विहस्याहं कुपितस्तारमभ्यधाम् ।
भाषात्रये भविष्यामि[3]मौनीपारंगते त्वयि ॥ ४६ ॥
शर्ववर्माब्रवीदस्मि वोढा द्वादशवत्सरान् ।
त्वत्पादुके प्रतिज्ञैषा यदि मे न फलिष्यति ॥ ४७ ॥
प्रतिज्ञायेत तपसा विलोक्य वरदं गुहम् ।
स कातन्त्रेण नृपतिं मासैश्चक्रे बहुश्रुतम् ॥ ४८ ॥
ततः पराजितो मौनी नृपेण स्नातुमर्थितः ।
शिष्याभ्यां सहितो दुःखार्त्तोऽहं दिशमुत्तराम् ॥ ४९ ॥
तपसा तत्र रुद्राणीं दृष्ट्वा तद्वचसा ततः ।
त्वामासाद्य गते शापे मया जातिः स्मृता सखे ॥ ५० ॥
ज्ञात्वा देवीप्रसादेन त्यक्तभाषात्रयोऽप्यहम् ।
पैशाचिमपभ्रंशसंस्कृतप्राकृतां श्रितः ॥ ५१ ॥

गुणाढ्यकथा ॥

गुणाढ्येनेति कथितं श्रुत्वा संहृष्टमानसः ।
काणभूतिः पुनः प्राह मुमुक्षुः शापबन्धनात् ॥ ५२ ॥
त्वदागमनमद्यैव मन्त्रिणा कथितं निशि ।
मम दिव्यदृशा धन्यं रक्षसा भूतिवर्मणा ॥ ५३ ॥
इदं कथय तावत्त्वं विपुलं कौतुकं हि मे ।
त्वं कथं माल्यवान्नाम्ना पुष्पदन्तः कथं च सः ॥ ५४ ॥
इति पृष्टः पिशाचेन गुणाढ्यः प्राह दिव्यधीः ।
द्विजाग्रहारे जाह्नव्यास्तीरे बहुसुवर्णके ॥ ५५ ॥

१. 'नृ' ख. २. 'गमि' ख. ३. 'मौनं' ख. ४. 'मित्रेण' ख.

विप्रो गोविन्ददत्ताख्यो बभूव श्रुतिपारगः ।
पञ्चासंस्तस्य तनयाः सुरूपाः शास्त्रवर्जिताः ॥ ५६ ॥
मूर्खान्विनष्टमर्यादांस्तान्दृष्ट्वाभ्यागतो द्विजः ।
वैश्वानराभिधस्तेषां निनिन्द पितरं क्रुधा ॥ ५७ ॥
गोविन्ददत्तोऽप्यभ्येत्य प्रसाद्य क्रुद्धमग्रजम् ।
शुशोच तनयान्मौनी चण्डालानिव वर्जयन् ॥ ५८ ॥
ततः कनीयाञ्ज्येष्ठश्च पुत्रकौ तस्य लज्जया ।
जग्मतुस्तपसा द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् ॥ ५९ ॥
विचित्रमाल्यैर्वलयैरर्चयित्वा महेश्वरम् ।
तद्वरान्माल्यवान्नाम योऽभवत्सोऽहमग्रजः ॥ ६० ॥
धन्योऽपरश्च यत्तर्पीवरं प्राप्य महेश्वरात् ।
कालेन भुक्तसंभोगो गणतां प्राप्स्यतीति सः ॥ ६१ ॥
चन्द्रमौलेर्वरं प्राप्य विद्यार्जनरतो महीम् ।
भ्रान्त्वा गुरुं वेदकुम्भमवाप श्रुततत्परम् ॥ ६२ ॥
स कदाचिच्छ्रियं नाम भूपतेर्वसुवर्मणः ।
ददर्श यौवनवतीं तनयामतनुद्युतिम् ॥ ६३ ॥
सापि स्मरेणाभिहता तेन रूपवशीकृता ।
संज्ञां दन्तेन पुष्पाणि खण्डयन्ती मुहुर्व्यधात् ॥ ६४ ॥
संज्ञानभिज्ञो विवशः पुष्पचापशिलीमुखैः ।
तदन्वर्थमुपाध्यायाद्विवेद सरलाशयः ॥ ६५ ॥
उद्याने पुष्पदन्ताख्ये गूढं संविच्चया कृता ।
गुरोः श्रुत्वैव तत्रैव प्रयातस्तामवाप्तवान् ॥ ६६ ॥
तामासाद्य सुधासिक्तशरीर इव कातरः ।
जग्राह कण्ठे सोत्कण्ठमुत्कण्ठसरलालसः ॥ ६७ ॥
सा बभाषे तमानन्दमन्दिरं स्मितसुन्दरी ।
कथं ज्ञाता त्वया संज्ञा पृष्ट इत्यब्रवीच्च सः ॥ ६८ ॥

१. 'दत्त' ख. २. 'य' ख. ३. 'गर्भ' ख. ४. 'सुतमद्युति.' ख. ५. 'तदर्थेऽर्थं' ख

संतते मयि विज्ञातमुपाध्यायेन धीमता ।
श्रुत्वेति सा नृपं मेने तं विषाणविवर्जितम् ॥ ६९ ॥
ततो मयापदेशेन त्यक्त्वा तं हंसगामिनी ।
प्रययौ मुग्धमनसं रमन्ते न हि योषितः ॥ ७० ॥
लज्जावमानविधुरस्तद्वियोगाग्नितापितः ।
स मुमोहेन्दुवदनाध्यानस्तिमितलोचनः ।
अत्रान्तरे व्रजन्व्योम्ना भगवान्पार्वतीपतिः ॥ ७१ ॥
तं विलोक्य कृपाविष्टो देव्या च स्वयमर्थितः ।
दिदेश पञ्चचूडाख्यं गणं तद्वाञ्छिताप्तये ॥ ७२ ॥
स धूर्जटिसमादिष्टः समेत्य ब्राह्मणान्तिकम् ।
तं समाश्वास्य विहितब्रह्मवेषो ज्वलन्निव ॥ ७३ ॥
द्विजं कृत्वा वधूवेषं वसुवर्माणमभ्यगात् ।
तमुवाच महीपालमिमां रक्ष स्नुषां मम ॥ ७४ ॥
चिरं यातसुतं यावद्भ्रान्त्वा द्रक्ष्यामि भूतले ।
इत्युक्तो न्यासभूतां तां ततो जग्राह भूपतिः ॥ ७५ ॥
कन्यकान्तःपुरे राज्ञो धृत्वा तां ब्राह्मणो ययौ ।
स राजपुत्रीमालिङ्ग्य वधूवेषः शनैर्निशि ॥ ७६ ॥
सुवे किं नासि विज्ञातस्त्वया प्रज्ञासमन्विते ।
पुरा संज्ञानभिज्ञोऽहं मूर्खोऽसीति विटम्बितः ॥ ७७ ॥
त्वया स्मरशरैः सुभ्रु सदा सर्वो विमुह्यति ।
उक्त्वेति स्मरमञ्जर्या सुन्दर्या संगतस्तया ॥ ७८ ॥
यथावल्लक्षितः प्रातर्द्विजवेषधरं गणम् ।
गणोऽपि तं समादाय तरुणं जर्जराकृतिः ॥ ७९ ॥
उवाच गत्वा राजानं प्राप्तोऽयं तनयो मया ।
स्नुषां देहीति तच्छ्रुत्वा राजा ज्ञात्वा च तां गताम् ॥ ८० ॥

१. 'चन्द्र' क. २. 'भीतो' ख. ३. 'भाद' ख. ४. 'सज्ञामदक्षते' ख. ५. 'स्व-संवरे' ख. ६. 'सुतं' ख. ७. 'कृ' क.

श्येनरूपेण शक्रेण शिबिर्नरपतिः पुरा।
परीक्षितो भ्रमन्त्येवं देवा इति भयान्नृपः॥ ८१॥
द्विजं प्रसाद्य प्रणतो निजां दुहितरं ददौ।
एवं गणप्रभावेन प्राप्य राजसुतां द्विजः॥ ८२॥
तस्यामुत्पाद्य तनयं महीपालं महीधरम्।
पुष्पदन्तो गणः सोऽभूत्त्यैवोद्यानसंज्ञया॥ ८३॥

पुष्पदन्तमाल्यवान्नामकथा॥

श्रुत्वा गुणाढ्यकथितं काणभूतिरुवाच तम्[1]।
शोणितेन लिख क्षिप्रं सप्तानां चक्रवर्तिनाम्॥ ८४॥
कथां विद्याधरेन्द्राणां कथयामि स्थिरो भव।
इति श्रुत्वा लिलेखाशु सप्तलक्षाण्यनन्यधीः॥ ८५॥
प्राहिणोत्तां लिखित्वा च शातवाहनभूभुजे।
स च लक्ष्मीमदोन्मत्तो नामन्यत विशृङ्खलः॥ ८६॥
पैशाचीवाग्मषीरक्तं मौनोन्मत्तश्च लेखकः।
इति राजाब्रवीत्का वा वस्तुसारविचारणा॥ ८७॥
बुद्ध्या त्यजन्त्यनासाद्य मूर्खाश्चाचर्वणक्षमाः।
श्रोतारो नाप्रसिद्धेषु राजतां[3] क्व सुभाषिताम्॥ ८८॥
अवमानावधूतां तां कृत्वा मौनी बृहत्कथाम्।
व्याख्याय शिष्यसहितो गुणाढ्योऽवाचयत्स्वयम्॥ ८९॥
गुहावासी महाकोपः पत्रं पत्रमनारतम्।
तस्मिन्व्याख्यातरि कथां निःशेषमृगपक्षिणः॥ ९०॥
त्यक्ताहाराः समभ्येत्य शुश्रुवुः[4] साश्रुलोचनाः।
ततस्तच्छुष्कमांसाशी नृपतिर्भृशमातुरः॥ ९१॥
विवेद लुब्धकगिरा मृगाणां शोषकारणम्।
द्रष्टुं सुमहदाश्चर्यमाययौ शातवाहनः॥ ९२॥

---

१. 'रुषं' ग. २. 'विरक्तिः' ख. ३. 'तं' ख. ४. 'तस्थुः' ख.

लक्षैकशेषामासाद्य ततो राजा बृहत्कथाम् ।
शुशोच चर्वणासक्तप्रेक्षमाणः पदं पदम् ॥ ९३ ॥
सदा पूर्णः क्व शीतांशुः क्व दृष्टममृतं बहु ।
क्व वा हरमुखोद्गीर्णा लभ्यते निखिला कथा ॥ ९४ ॥
श्रुत्वा गुणाढ्यादखिलं वृत्तान्तं कौतुकाकुलः ।
ययौ तच्छिष्यसहितः समादाय नृपः कथाम् ॥ ९५ ॥
गुणाढ्योऽपि परिज्ञानवह्निनिर्दग्धविग्रहः ।
माल्यवत्पदमासाद्य विजहार हरप्रियः ॥ ९६ ॥
राजापि तच्छिष्यसमर्पितश्रीरवाप्य पूर्वाभ्यधिकप्रभावः ।
कथां त्रिनेत्राननपद्मसूतिं सौभाग्यपूतां कथयञ्जहर्ष ॥ ९७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे कथापीठनामा प्रथमो लम्बकः समाप्तः ॥

---

## कथामुखनामा द्वितीयो लम्बकः ।

### प्रथमो गुच्छः ।

गुणाढ्येनेति लिखितां शातवाहनभूपतिः ।
बृहत्कथामकथयद्विदुषां सुहृदां पुरः ॥ १ ॥
महेश्वरात्पुष्पदन्तः काणभूतिरिमां ततः ।
तस्माद्गुणाढ्यस्तस्माच्च श्रुतवाञ्शातवाहनः ॥ २ ॥
कान्ताकटाक्षवपुषे नमः कुसुमधन्वने ।
जायते येन सच्छायो विरसोऽपि भवद्रुमः ॥ ३ ॥
भुजङ्गभङ्गिसुभगा कंदर्पजयशालिनी ।
कौशाम्बी श्यामेवीव श्रीरस्ति स्वस्तिमती पुरी ॥ ४ ॥
नीलरत्नमहासौधरश्मिवल्लिवितानके ।
यत्र रात्रिषु कुर्वन्ति तारकाः कुसुमभ्रमम् ॥ ५ ॥

---

१. 'तां बृहत्कथां' ख. २. 'म्भ' ख. ३. 'शातवाहनभूपतिः' ख. ४ 'पुरर्द्धि' ख.

अर्जुनाभिजने जातो जनमेजयसंभवः।
शतानीकोऽभवत्तत्र राजा राजेन्द्रशेखरः॥ ६॥
बभार चन्दनार्द्रेण यो गङ्गानिर्झरोज्ज्वलम्।
भुजेन भूमिवलयं मुक्ताहारं च वक्षसा॥ ७॥
संपूर्णचन्द्ररुचिरा मुक्तानिकरहारिणी।
सकीर्तिरिव यस्य श्रीः कीर्तिः श्रीरिव सा बभौ॥ ८॥
अद्वितीयगुणोदारं यस्य सुच्छायमुन्नतम्।
छत्रं यश इव स्वच्छं यशश्छत्रमिवामलम्॥ ९॥
सारसालंकृतिर्यस्य रणे कुवलयाश्रयः।
वंशे स्फारामलच्छायः कृपाणः कमलाकरः॥ १०॥
यो वसन्त इव क्ष्माभृन्मौली न्यस्तशिलीमुखः।
कलिकालंकृतं सर्वमशोकं रुचिरं व्यधात्॥ ११॥
बभूव तस्य राज्याब्धेः कर्णधारो महामतिः।
मन्त्री युगंधरो नाम शक्रस्येव बृहस्पतिः॥ १२॥
सेनानीः सुप्रतीपश्च विप्रः शास्त्रार्थवित्तथा।
स्वैरेच्छानर्मसचिवस्तथाभूद्वल्लभो विभोः॥ १३॥
तस्य विष्णुमती नाम विष्णोः श्रीरिव वल्लभा।
बभूव विभ्रमभूमी जैत्रमस्त्रं मनोभुवः॥ १४॥
स मृगव्यप्रसङ्गेन कदाचिन्निर्गतो वनम्।
ददर्श तेजसां राशिं मुनिं शाण्डिल्यमाश्रमे॥ १५॥
नामाभिजनमावेद्य तं प्रणम्य महीपतिः।
अवाप तस्मादुचितं पुत्रलाभवरं च सः॥ १६॥
स राज्ञो वरदः श्रीमान्कौशाम्बीमेत्य सादरम्।
पुत्रेष्ट्या पुत्रकामस्य याजकोऽभून्महाद्युतिः॥ १७॥

१. 'सारलेषा' ख. २. 'शरम्' ख.

ततो मुनिप्रसादेन राजा दशरथोपमः ।
ईष्ट्वा राममिव प्राप सहस्रानीकमात्मजम् ॥ १८ ॥
संपूर्णकान्तवपुषि प्रौढिं याते कलापतौ ।
तस्मिन्स्मितसुधाधाम्नि प्रोल्ललास नृपाम्बुधिः ॥ १९ ॥
स यौवराज्ये तनयं विधाय विधिना नृपः ।
पीयूषविम्बित इव प्रालेयकरणोऽभवत् ॥ २० ॥
अत्रान्तरे सुरपतिं दृष्टुं युद्धाय सानुगः ।
आँगतस्तब्धशिरसा यमदंष्ट्रो महासुरः ॥ २१ ॥
वर्तमाने दिवि महाँसंगरे सुररक्षसाम् ।
आनिनाय शतानीकं साहाय्ये तं पुरंदरः ॥ २२ ॥
नीतो मातलिनाभ्येत्य सादरं स धनुर्धरः ।
विधाय प्रेक्षकान्देवाञ्जघान दितिजान्रणे ॥ २३ ॥
हतदैत्याधिपः सोऽथ निहतः संमुखे दिवि ।
जहासेवाम्रविश्रान्तखड्गलग्नेभमौक्तिकैः ॥ २४ ॥
ततः शक्रस्य वचसा शरीरं तस्य मातलिः ।
नीत्वा महीतलं चक्रे तनयेन यथोचितम् ॥ २५ ॥
महिष्या सह भूपाले संप्राप्ते कीर्तिशेषताम् ।
मेजे राज्यं शतानीकतनयो मन्त्रिणां गिरा ॥ २६ ॥
याति काले महेन्द्रेण स नन्दनमहोत्सवे ।
निमन्त्रितस्तत्कथितां भाविनीमशृणोत्कथाम् ॥ २७ ॥
स्वर्योषिदलम्बुषः शापादयोध्यायामलम्बुषा ।
जाता मृगावती कन्या भूपतेः कृतवर्मणः ॥ २८ ॥
विधूमो नाम च वसुः स्वर्लोकललनां पुरा ।
तामेव ब्रह्मभुवने दृष्ट्वानिलहृतांशुकाम् ॥ २९ ॥

---

१. 'यज्वा.' ख. २. 'सौ' ख. ३. 'महायातस्थूलशिरसा' ख. ४. 'समरे' ख.

सारातीं मदनाक्रान्त शापान्मर्त्यत्वमागत ।
सैव ते ललना राजन्भाविनी नो वरादिति ॥ ३० ॥
श्रुत्वा तदुत्सुकमना समामन्त्र्य शचीपतिम् ।
कौशाम्बीं प्रस्थितो दृष्ट स तिलोत्तमया पथि ॥ ३१ ॥
सस्मेर किमपि ता भाषमाणामनन्यधी ।
ध्यायञ्शतक्रतुवचो ना ञ्लोके महीपति ॥ ३२ ॥
सा शशाप नृप सुभ्रूरनादरतिरस्कृता ।
सौभाग्यमत्ता मानिन्यो न सहन्ते च धीरणाम् ॥ ३३ ॥
चतुर्दशसमा भूयाद्भिमयोगो हृदिस्थया ।
तव राजन्निति तया शप्त प्रायान्निजा पुरीम् ॥ ३४ ॥
तत कालेन तनया क्ष्मापते कृतवर्मण ।
तामाससाद दयिता सर्वस्व पुष्पधन्वन ॥ ३५ ॥
मृगावतीं समासाद्य विलासतरुवल्लरीम् ।
विभ्रमाम्भोधिलहरीं ननन्द मदनद्युति ॥ ३६ ॥
सा तस्माद्गर्भमाधाय भवानीवेन्दुशेखरात् ।
पाण्डिम्ना शशिलेखेव पीयूषक्षालिता बभौ ॥ ३७ ॥
अत्रान्तरे मन्त्रिवर सेनानीश्च महीपते ।
द्विजो नर्मवयस्यश्च पुत्रान्प्राप कुलोचितान् ॥ ३८ ॥
सुतो युगधरस्यासीन्मन्त्रीमान्यौगन्धरायण ।
रुमण्वान्सुप्रतीकस्य द्विजस्य च वसन्तक ॥ ३९ ॥
सुन्दरी दौहृदव्यक्तेरथ पौरंदरीव दिक् ।
रराज राजमहिषी रजनीकरगर्भिणी ॥ ४० ॥
पत्यौ सर्गारितहृतिलिरच्छया मतिरधयौ ।
तस्या रक्तसर स्नाने तथामन्यत भूपति ॥ ४१ ॥

१ 'दक्षिणा' ख. २ 'न विरति' ख. ३ 'भावयन्ती' ख.

कौसुम्भसलिलस्थाने विहिते सरसि क्षणात् ।
सरोमृगदशाधीमान्को हि दैवे पराङ्मुखे ॥ ४२ ॥
ततस्तामामिषधिया सुपर्णकुलसंभवः ।
जहार विकटः पक्षी मुग्धां दग्धविधेर्वशात् ॥ ४३ ॥
नीत्वा विहायसा दूरं स तामचलसंनिभः ।
तत्याज मोहविवशामुदयाचलकन्दरे ॥ ४४ ॥
लब्धसंज्ञा शनैः कम्पविलोलतनुवल्लरी ।
कीर्णोत्पला इव दिशश्चकार चकितेक्षणैः ॥ ४५ ॥
तस्याः शोकानिलोत्कम्पिकुचपर्यन्तपातिनी ।
असूत्रहारतां प्राप क्षणमश्रुकणावली ॥ ४६ ॥
हा राजन्मन्दपुण्याहं क नु द्रक्ष्यामि ते मुखम् ।
इत्युक्त्वा गजसिंहानां पुरोऽभूद्वधकाङ्क्षिणी ॥ ४७ ॥
सा स्वयं केसरिगजैस्त्यक्ता न निधनं ययौ ।
विपद्विसंकटे काले मरणं लभ्यते कुतः ॥ ४८ ॥
तस्याः करुणमाकर्ण्य क्रन्दितं साश्रुलोचनाः ।
मृगा विच्छिन्नरोमन्थनिःस्पन्दगतयोऽभवन् ॥ ४९ ॥
ततो यदृच्छया यातस्तां विलोक्य तथा स्थिताम् ।
निर्नाय करुणासिन्धुर्मुनिपुत्रस्तपोवनम् ॥ ५० ॥
सुतेवाश्वासिता तत्र कृपया जमदग्निना ।
असूत तनयं काले सेनान्यमिव पार्वती ॥ ५१ ॥
तस्याकाशभवा वाणी चकारोदयनाभिधाम् ।
निजवंशशशाङ्कस्य भविष्यच्चक्रवर्तिनः ॥ ५२ ॥
आश्रमे स मुनीन्द्रेण कृतचूडादिकस्ततः ।
ववृधे बालकशशी सह मातुर्मनोरथैः ॥ ५३ ॥

१. अत्र किंचित्त्रुटितं भवेत्. २. 'कणा' इति भवेत्. ३. 'नाथःकृतपु' ख. ४. 'राज' ख. ५. 'सर्प' ख. ६. 'धा' ख. ७. 'त्र' ख.

विद्याकलाकलितधीर्युवा नयननन्दनः ।
सोऽपश्यन्मृगयासक्तो व्याधबद्धं भुजङ्गमम् ॥ ५४ ॥
दीनमालोक्य भुजगं शबराय धनार्थिने ।
अमोचयत्स्वजननीदत्तं दत्वा स्वकङ्कणम् ॥ ५५ ॥
स सर्पो मोचितस्तेन नागो भूत्वा कृताञ्जलिः ।
सख्यं विधाय पातालं निनाय तमुदारधीः ॥ ५६ ॥
स किन्नराभिधो नागो धृतराष्ट्रसुतः प्रियम् ।
पाताले प्रेमविनतस्तं वयस्यमपूजयत् ॥ ५७ ॥
भगिनीं ललितामिख्यां ददावुदयनाय सः ।
यस्या मुखशशिद्योतैर्जाता पातालकौमुदी ॥ ५८ ॥
तद्गर्भाधानपर्यन्तशापा सापि भुजङ्गमी ।
ययौ विद्याधरपदं स्वयमामन्त्र्य वल्लभम् ॥ ५९ ॥
ताम्बूलीस्रजमम्लानां वीणां घोषवतीमपि ।
अवाप राजतनयः फणीन्द्रात्स्वाश्रयं ययौ ॥ ६० ॥
मुनीन्द्राश्वास्यमानां स जननीं शोककर्शिताम् ।
समेत्यानन्दमुदितां चक्रे नय इव श्रियम् ॥ ६१ ॥
अत्रान्तरे स शबरः कौशाम्ब्यां वणिजं ययौ ।
सहस्रानीकनामाङ्कमणिकङ्कणविक्रयी ॥ ६२ ॥
आदाय रत्नकटकं स विभीतो महीभुजे ।
निवेद्य शबरोपेतः प्रणम्य स ययौ वणिक् ॥ ६३ ॥
मृगावतीवियोगाग्निदह्यमानतनुर्नृपः ।
बद्धाङ्कुवल्लरीसद्मसुधार्द्रं प्राप्य कङ्कणम् ॥ ६४ ॥
नीलकण्ठ इवोत्कण्ठो नूतनाम्बुदनिन्दितः ।
श्रुत्वा वल्लयप्राप्तिकथां कृत्वा पुरोगमम् ॥ ३५ ॥
नगरं तां दिशं हृष्टः प्रतस्थे सह मन्त्रिभिः ।
यत्रेन्दुमास्करयुगो लभते सहसोदयम् ॥ ६६ ॥

१ 'ऊवित्' ग.

स व्रजन्गजसिन्दूरसंध्यायितदिगन्तरः ।
कंचिन्मार्गं समुल्लङ्घ्य तस्थौ विश्रान्तसैनिकः ॥ ६७ ॥
तस्मिन्विनिद्रे दयितासंगमध्यानतत्परे ।
कथां संगमकामिन्यः कथकोऽकथयन्निशि ॥ ६८ ॥
भविष्यत्यचिरादेव तव देव्या समागमः ।
विस्तीर्णे दुःखजलधौ भद्रमेवाप्यते यथा ॥ ६९ ॥
अभूतां मालवे विप्रौ कालनेम्यभयामिधौ ।
गुणाभिजनशीलाढ्यौ निर्विण्णौ कृतचेतसौ ॥ ७० ॥
विष्णुवक्षस्थलनभश्चन्द्ररेखामथ श्रियम् ।
यत्र होमव्रतपरः कालनेमिरतोषयत् ॥ ७१ ॥
विभूतिं प्राप्य तनयं श्रीदत्ताख्यमवाप स ः ।
पृथिवीनाथ तां यस्य जन्मनि श्रीरभाषत ॥ ७२ ॥
प्राप्तो विक्रमशक्तेः स राजसूनोर्वयस्यताम् ।
रूपविद्यागुणोपेतो ललास द्विजपुत्रकः ॥ ७३ ॥
वयस्या बहवोऽप्यासन्बाहुशालिपुरोगमाः ।
तैर्युतं राजतनयो न सेहे तं बलाधिकम् ॥ ७४ ॥
तस्मिन्गूढवधोद्युक्त श्रीदत्तो दूरदेशगः ।
अपश्यदङ्गनां गङ्गातरङ्गौघहृतां पुरः ॥ ७५ ॥
वनजाकेन्दिनीं त्रातुं तामम्भसि विगाह्य सः ।
शीघ्रानुसारी बलवान्भ्रमामनुममज्ज च ॥ ७६ ॥
जलान्तरे ततोऽपश्यद्रक्तपुष्पकृतार्चनम् ।
शंकरं तत्पुरः पूजाव्यग्रां तामेव चाङ्गनाम् ॥ ७७ ॥
कृतपूजां मणिगृहं निजं प्राप्तां सखीवृताम् ।
तामपृच्छत्स यत्नेन निषण्णां शोककारणम् ॥ ७८ ॥

१ 'विष्टौ' ख. २ 'भवान्' ख. ३. इदं पदं ख पुस्तके नास्ति. ४. 'कदाचित्तीर्थयात्राया' ख. ५. 'करुणा' ख.

साब्रवीद्विष्णुना दग्धः पितास्माकं विरोचनः ।
सिंहेन तत्प्रयुक्तेन संनिरुद्धं पुरं च नः ॥ ७९ ॥
श्रुत्वेति ललनावाचं स जघान महाहरिम् ।
खड्गरत्नं ददौ तस्मै शापमुक्तोऽथ केसरी ॥ ८० ॥
असुरेन्द्रसुता चाग्र्यं विततारङ्गुलीयकम् ।
विषापहारं तत्प्राप्य स प्रायात्प्रार्चितस्तया ॥ ८१ ॥
स्नातुं मग्नः पुनर्गङ्गाकूलादेवोन्ममज्ज सः ।
वयस्यात्तत्र शुश्राव नृपेण पितरं हतम् ॥ ८२ ॥
भावी नृपः सुतोऽस्येति श्रुत्वा विक्रमशक्तिना ।
श्रुत्वेत्युज्जयिनीं गन्तुं प्रस्थितो भृशदुःखितः ॥ ८३ ॥
वयस्येन सहाटव्यां ददर्शाक्रन्दिनीं स्त्रियम् ।
मा भैषीरिति तामुक्त्वा तयैव सहितो निशि ॥ ८४ ॥
प्रविश्य शून्यनगरीं तामपश्यन्निशाचरीम् ।
तयैव भक्षितं दृष्ट्वा वयस्यं कोऽपि कम्पितः ॥ ८५ ॥
धीरो जग्राह केशे तां कङ्कालोच्चालितायुधाम् ।
सा गृहीता दृढं तेन प्राप्य शापान्तमभ्यगात् ॥ ८६ ॥
कौशिकेनास्मि शप्ता प्राक् तपसो विघ्नकारिणी ।
त्वत्करस्पर्शपर्यन्तः शापोऽयं विगतो मम ।
इत्युक्त्वा निष्ठुरं नाम तद्वयस्यमजीवयत् ॥ ८७ ॥
ततो व्रजन्पथि पुनः श्रीदत्तोऽन्यान्वयस्यकान् ।
प्राप्य स्वैरं गृहे तस्थौ सुहृदो बाहुशालिनः ॥ ८८ ॥
ततः कदाचिन्मधालिमालिताशोकचम्पके ।
वसन्ते सखिभिः सार्धमुद्याने विजहार सः ॥ ८९ ॥
तत्रापश्यन्नृपसुतां चामरालोलितालकाम् ।
निर्वृतिमिव रूपस्य विभ्रमस्येव संपदम् ॥ ९० ॥
लक्ष्मीमिव शशाङ्कस्य कुसुमेषोरिव श्रियम् ।

१. 'नगदत्त' ग. २. 'स्नानाय प्रविशंस्तदा' ग.

समृद्धिमिव दर्पस्य शृङ्गारस्येव देवताम् ।
निर्वर्णयन्स तां कान्तां रागान्मूढ इवाभवत् ॥ ९१ ॥

स्फूर्जद्विशालविषवह्निकरालदंष्ट्रा-
नाशीविषान्वशमुपेत्य नयन्ति धीराः ।
सिंहांश्च केसरसटाविकटाट्टहासा-
न्कन्दर्पदर्पदलने न तु कश्चिदीशः ॥ ९२ ॥

सा मृगाङ्कवती दृष्ट्वा भूपतिर्बिम्बकेः सुताम् ।
श्रीदत्तं मन्मथोदारं ययौ पञ्चेषुलक्ष्यताम् ॥ ९३ ॥
मनोभववनारम्भविभ्रमव्यग्रमानसाम् ।
भुजङ्गः कदलीकेलिलोलां तामदशत्करे ॥ ९४ ॥
जातः स्मरविकारेण सुहृदा प्रेरितस्ततः ।
निजाङ्गुलीयं दत्त्वैव श्रीदत्तस्तामजीवयत् ॥ ९५ ॥
आशीविषविषोन्मुक्ता ततः सा लब्धजीविता ।
मनोभवभुजङ्गेन मुमोह मुहुरर्दिता ॥ ९६ ॥
ततो विदितवृत्तान्ता सखी भावनिकाभिधा ।
स्मरार्तयैनं श्रीदत्तं तस्याः संतापमभ्यधात् ॥ ९७ ॥
सुहृद्भिरयमामन्त्र्य विरहक्षामविग्रहः ।
वह्निदाहापदेशेन स जहार नृपात्मजाम् ॥ ९८ ॥
वयस्यैस्तां पुरो नीत्वा स्वयं गत्वान्यवासरे ।
ददर्श शरनिर्भिन्नां दीनां भावनिकां पथि ॥ ९९ ॥
किमेतदिति पृष्टाथ निखिलान्सचिवांस्तव ।
शरैर्विदार्याभिमुखान्क्षत्रियैर्मे हृता सखी ॥ १०० ॥
श्रुत्वेत्यशनिसंकाशं सुहृदो वीक्ष्य विक्षतान् ।
जवेन स तुरङ्गस्थः क्षत्रियान्कुपितोऽन्वयात् ॥ १०१ ॥
भुजगेन सखड्गेन कीर्तिनिर्मोकशालिना ।
व्यसून्विधाय सहसा राजन्यान्प्राप तां प्रियाम् ॥ १०२ ॥

रणाचुरंगमादाय विपुलाघातपीडितम् ।
प्रययौ हर्षसंपूर्णं समारुह्य प्रियासखः ॥ १०३ ॥
विकटामटवीं प्राप्य तुरगे पञ्चतां गते ।
अध्वश्रमार्ता दयितं कान्ता जलमयाचत ॥ १०४ ॥
तृष्णार्तां तां तरुतले निधाय स जलाशयान् ।
खड्गद्वितीयोऽरण्येऽथ बभ्रामोद्भ्रान्तमानसः ॥ १०५ ॥
अत्रान्तरे सहस्रांशौ पद्मिनीविरहादिव ।
प्रविष्टे जलधौ सान्द्रतमांस्यनुजजृम्भिरे ॥ १०६ ॥
तमालतालव्यालोलमत्तालिकुलमांसलैः ।
स विससार तद्वर्त्म तमोभिर्दुर्नयैरिव ॥ १०७ ॥
हा प्रिये क्व नु लप्स्यामि शोचन्निति ससंभ्रमम् ।
नाससाद वनस्यान्तं व्यसनस्येव दुर्मतिः ॥ १०८ ॥
ततः प्रभाते दयितावियोगविधुराशयः ।
न्यग्रोधमधिरुह्याशु विलोक्य विललाप सः ॥ १०९ ॥
वृक्षमूलधृतं खड्गं तस्य तोयजिघृक्षया ।
जहार शबराधीशो दुःखं दुःखे हि वर्धते ॥ ११० ॥
स तमाह प्रिया नूनं तव पल्लीनिवासिभिः ।
मद्भृत्यैरेत्य या नीता तामन्विष्य स्वयं व्रज ॥ १११ ॥
ततः प्रतिनिवृत्तस्य खड्गं दास्यामि ते सखे ।
श्रुत्वेति सह तद्भृत्यैर्ययौ पल्लीं स्खलद्गतिः ॥ ११२ ॥
तत्र भ्रान्तश्चिरं श्रान्तः क्षणं निद्रावशं गतः ।
भक्तैर्दुर्गोपहाराय निबद्धो बाहुशृङ्खलैः ॥ ११३ ॥
तैतो नेत्रोत्पलच्छाया जितकर्णशिखण्डिका ।
शबरेन्द्रसुता वीक्ष्य तं स्मरव्याकुलाभवत् ॥ ११४ ॥
स बिम्बाधरशोणांशुव्यक्तगुञ्जाफलस्रजम् ।
पुलिन्दसुन्दरीं भेजे तां कान्तारांगमागया ॥ ११५ ॥

१. 'मण्डित' ख. २. 'स्त' ग. ३. 'ततो नेत्रोत्पला श्यामा' ग. ४. 'वद'

ततः सा [1]दोहदव्यक्तगर्भजृम्भालसा शनैः ।
अमोचयत्तं दयिता पुनर्दर्शनसंविदा ॥ ११६ ॥
तया श्रीदण्डसुतया सुन्दर्या मुक्तबन्धनः ।
मत्सङ्गो जनकाद्भावस्यामित्युक्त्वा विनिर्ययौ ॥ ११७ ॥
स मृगाङ्कवतीमेव विचिन्वन्कानने चिरम् ।
चचार विश्लथगतिर्यूथभ्रष्ट इव द्विपः ॥ ११८ ॥
अपि कष्टदर्शनामार्गे प्रिया दृष्टेति वादिनम् ।
तं वृद्धशबरोऽभ्येत्य जगदे जीवयन्निव ॥ ११९ ॥
शोचन्ती त्वामदुःखार्हा सा मया तव वल्लभा ।
दृष्टा श्रीदत्तकृपया रक्षिता च सुता यथा ॥ १२० ॥
सा शशाङ्कमुखी मुग्धा तरुणी पल्लिवासिभिः ।
[3]क्रान्त्वेति माथुरं ग्रामं नीता नागस्थलं मया ॥ १२१ ॥
साधोर्द्विजन्मनो गेहे विश्वदत्तस्य मानिनी ।
न्यस्ता तत्र स्वयं गच्छेत्युक्त्वा तं शबरो ययौ ॥ १२२ ॥
तच्छ्रुत्वा मारुतजवो विश्वदत्तं समेत्य सः ।
देहि प्रियामिति प्राह स च प्रीतस्तमभ्यधात् ॥ १२३ ॥
अमात्यः शूरसेनस्य नृपतेरभयाभिधः ।
द्विजन्मा तस्य सा गेहे मया न्यस्ता तपस्विनी ॥ १२४ ॥
श्रुत्वेति गन्तुकामोऽथ स्नातुं यातः स दीर्घिकाम् ।
चौरबद्धमहाहारं व्यत्ययात्प्राप कर्पटम् ॥ १२५ ॥
तं तु दृष्ट्वा राजार्हं मुक्ताहारं महत्यपि ।
अवासो राजपुरुषैर्भर्त्स्यमानो व्यकृप्यत ॥ १२६ ॥
तं वधाय समाकृष्टं राजडिण्डिमघोषणैः ।
निर्गता ब्राह्मणीमध्ये ददर्श निजवल्लभम् ॥ १२७ ॥

---

१. 'सगमव्य' ग. २. 'स' ख. ३. 'भ्रात्वेति' ग. ४. 'मन' ख. ५. 'वै' ख.

सा गत्वा दुःखसंत्रासदारितेवामुनाथ तम्।
अमात्यतः प्रियतमं वधबन्धादमोचयत्॥ १२८॥
रक्षितः सोऽभयाख्येन मन्त्रिणा प्राप्य तां प्रियाम्।
ज्ञात्वा तमेव च शनैः पितृव्यं प्राप निर्वृतिम्॥ १२९॥
यक्षाङ्गनाराधनतः प्राप्य तां महतीं प्रियाम्।
स पितृव्यो ददौ तस्मै विवाहं च तयोर्व्यधात्॥ १३०॥
ततस्तैः संगतो मित्रैः शूरसेनसुतामपि।
पितृव्यस्य धिया प्राप सह हस्त्यश्वसंपदम्॥ १३१॥
कदाचिदथ कालेन संनिरुद्धः स वर्त्मनि।
दस्युभिर्दस्युसेनान्यमवधीद्विक्रमोर्जितः॥ १३२॥
शक्तिघाताकुलं पश्चाच्छिन्युस्तं शबरा बलात्।
चण्डिकायतनं घोरं नररक्ताक्तवेदितम्॥ १३३॥
श्रीदण्डतनयां तत्र ददर्शार्चितचण्डिकाम्।
वीरसेनाभिधं पुत्रं तस्यां जातमवाप सः॥ १३४॥
खड्गरत्नं प्रियां तां च रुचिरां शबरार्जिताम्।
कल्पितां कीर्तिशेषेण श्रीदण्डेन पुरा स्वयम्॥ १३५॥
पुंलिन्दवाक्यमासाद्य विम्बकः श्रियमाप्य च।
हत्वा विक्रमशक्तिं च पापं पितृवधक्रुधा॥ १३६॥
अवाप्य दयितास्तिस्रः पृथ्वीराज्यमवाप्तवान्।
श्रीदत्तेनेति दुःखाब्धिमुत्तीर्याप्ताः सुखश्रियः॥ १३७॥
इति श्रीदत्ताख्यायिका॥ १।
श्रुत्वेति संगमकतः कथकादद्भुतां कथाम्।
निनाय राजा रजनीं राजपुत्रीं व्यचिन्तयत्॥ १३८॥
ततः कालेन ककुभं प्राप्य जम्भारिपालिताम्।
जामदग्न्याश्रमं प्राप निर्वैरहरिकुञ्जरम्॥ १३९॥

१. 'सा हत्वा दुःखसंत्रासं तस्या एवानुशासनात्। अमात्यस्य प्रियतमा दुःख... धादमोचयत्॥' इति ख-पुस्तकस्थः पाठः. २. 'दस्यवो' ख. ३. 'राज्यं तस्य समासा' ख. ४. 'शर्वं' ख. ५. 'रक्षिता' ख.

मुनिना पूजितस्तत्र दयितां विरहार्दिताम् ।
लेभे हर्षविशोकाश्रुस्तनयं चातनुद्युतिः ॥ १४० ॥
अयं त्वत्तो नरपते मृगावत्यां यशोनिधिः ।
जातः श्रीमाञ्छुभो जेता धनंजय इवापरः ॥ १४१ ॥
उक्त्वेति मुनिना दत्तं गृहीत्वोदयनं नृपः ।
प्रियासहायः स्वपुरीं प्रतस्थे मन्त्रिभिर्वृतः ॥ १४२ ॥
ततः प्रविश्य कौशाम्बीं तनयाय ददौ नृपः ।
पुत्रान्युगंधरादीनां पौरराज्यश्रिया सह ॥ १४३ ॥
यौगन्धरायणो मन्त्री रुमण्वान्वाहिनीपतिः ।
वसन्तको नर्मसुहृद्राजसूनोरभूत्ततः ॥ १४४ ॥
ततो विहृत्य सुचिरं दयिताकेलितत्परः ।
सहस्रानीकनृपतिः कीर्त्येव जरया स्तुतः ॥ १४५ ॥
पवनाकम्पिकदलीदललोलां भवस्थितिम् ।
वियैव कलयन्प्रायात्सहामात्यो महापथम् ॥ १४६ ॥
राामा न कस्य रतये मदनाभिरामा
कस्यामृतं न धनयौवनकेलिबैन्धाः ।
सर्वात्मना विषयसंगम एष कस्तु
भृङ्गोत्तरङ्गकरिकर्णविशाललोलः ॥ १४७ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां कथामुखलम्बके सहस्रानीककथा-
नाम प्रथमो गुच्छः ।

---

द्वितीयो गुच्छः ।

कुलोचितपदं याते पार्थवंश्ये महीपतौ ।
प्रियासहायस्तत्सूनुश्चक्रे शास्त्रोदितां क्रियाम् ॥ १ ॥
क्रमागतं समासाद्य राज्यं वत्सेश्वरस्य च ।
किरीटिरचिताश्चर्ये जनं चक्रे कथादरम् ॥ २ ॥

---

१. 'चापि तद्युतिम्' ख. २. 'न्सुतो' ग. ३. 'तत्त्वम्' ख. ४. 'संगमुखं च किं तु' ग. ५. 'विलासलोलम्' ग.

यौगन्धरायणन्यस्तराज्यचिन्तापरोऽनयत्।
कालं वीणाविनोदेन स मृगव्यामसेवत ॥ ३ ॥
अत्रान्तरे कथारम्भं तं ज्ञात्वोज्जयिनीपतिः।
चक्रे चण्डमहासेनस्तज्जयार्थं ततं मनः ॥ ४ ॥
कन्या वासवदत्तेयं तद्योग्यैव सुता मम।
निसर्गशत्रुर्नार्थ्यो मे मानी स च न याचते ॥ ५ ॥
बहुदुर्गो महाकोशो रक्तामात्यो विशालधीः।
उपायैर्नैव शक्योऽसौ मृगयाच्छद्मना विना ॥ ६ ॥
इत्येवं नृपतिर्ध्यात्वा चिरं वत्सेश्वरस्थले।
तुष्टाव दुर्गामुद्यानं गत्वा पुष्पकरण्डकम् ॥ ७ ॥
इच्छासिद्धिवरं प्राप्य भगवत्यास्ततो नृपः।
विविच्य धीमान्सुचिरं बुधदेवेन मन्त्रिणा ॥ ८ ॥
बध्नाति कुञ्जरानित्यं वीणानादहृतान्वने।
ग्राह्यः स कूटनागेन विधायेति धियं पुरः ॥ ९ ॥
दिदेश दूतं कृतकप्रणयोपायनैः सह।
वत्सेश्वराय संदेशमप्यधाच्च दृढाशयः ॥ १० ॥
स्वप्रकाशश्रिया स्फारमिन्दोरिव कलानिधेः।
मानसोल्लासिनियते प्रसूता कीर्तिकौमुदी ॥ ११ ॥
पुत्री मे कुलसर्वस्वमियं गान्धर्ववेदिनः।
वीणायां श्रुतितत्त्वज्ञशिष्यतां तव वाञ्छति ॥ १२ ॥
तदेह्युज्जयिनीं देव प्रणयाद्दुहितुर्मम।
सन्तोऽर्थनासु महतां निषेधं न हि शिक्षिताः ॥ १३ ॥
इत्युक्त्वा प्रेषितो दूतः कौशाम्बीं त्वरितो ययौ।
तत्रोदयनमासाद्य यथादिष्टं न्यवेदयत् ॥ १४ ॥

१. 'मार्गणमनः' ख. २. 'स्तन' ख. ३. 'मिलदा' ख. ४. 'प्रस्तुता' ख. ५. 'वदत्युज्जयिनीभर्ता देव प्रणयतस्त्व' ख.

वीणां वासवदत्तासौ[1] ज्ञातुमभ्येत्य[2] मत्पुरीम् ।
शिष्यो गुरुगृहं याति न हि शिष्यगृहं गुरुः ॥ १५ ॥
इति प्रतीपसंदेशं प्राप्य दूते गते नृपः ।
यौगन्धरायणो मन्त्री चुकोपावन्तिभूभुजे ॥ १६ ॥
स प्राह भ्रुकुटीधूमव्यक्तकोपानलाकुलः ।
यौगन्धरायणो [3]वीरः संरम्भाकम्पिकुण्डलः ॥ १७ ॥
पै[4]रस्य राजपथोर्दर्पं संमोहाभ्रान्तचेतसः ।
अस्मदाह्वानसंदेशो निष्कम्पस्य प्रगल्भता ॥ १८ ॥
बध्वाहं सानुबन्धं तं मिथ्याप्रणयवादिनम् ।
यास्यामि कोपजलधेः पारं सेना विधीयताम् ॥ १९ ॥
श्रुत्वेत्याह महामन्त्री राजन्सत्यमुच्यते ।
अवज्ञामन्थरा वाचो न सहन्ते मनस्विनः ॥ २० ॥
स्वाच्छन्द्यं सुखसक्तेन रतिपेशलतेजसा ।
देव त्वया स्वयं नीतः प्रतापो दिक्षु शीतताम् ॥ २१ ॥
भवन्तं मृगयासक्तं विज्ञायाङ्कुरितानयम् ।
मन्येऽहं प्रतिसामन्तैः किंचिदुच्चैः कृतं शिरः ॥ २२ ॥
प्रणयेनैव लक्ष्म्यो विनयेनैव कीर्तयः ।
नरनाथ विनश्यन्ति कुनयेन नृपश्रियः ॥ २३ ॥
महेन्द्रवर्मणो नप्ता जयसेनसुतो नृप ।
[5]चण्डीवरान्महासेनः स चण्डा[6]र्हनृपोऽभवत् ॥ २४ ॥
राजा चण्डमहासेनः स निर्जेतुं न शक्यते ।
यस्मै ददौ स्वयं देवी कृपाणं विन्ध्यवासिनी ॥ २५ ॥
नडागिरिर्गिरीन्द्राभो गजेन्द्रस्तस्य विद्यते ।
मन्ये यस्य[7] मदामोदैर्वैमुख्यं यान्ति दिग्द्विपाः ॥ २६ ॥

१. 'तेयं' ख. २. 'ज्ञातुमायातु मे पुरीम्' ख. ३. 'धीरः' ख. ४. 'तस्य' ख. ५. 'चण्डवीरा' ख. ६. 'ख्ये' ख. ७. 'स' क.

मृगयानिर्गतो हत्वा स दैत्यं क्रोडरूपिणम्।
अङ्गारकाख्यं पाताले ततः प्राप तदात्मजाम्॥ २७॥
तामङ्गारवतीं प्राप्य रूपलावण्यशालिनीम्।
गोपालपालकौ पुत्रौ तस्यां प्राप सुतां तथा॥ २८॥
पुत्री वासवदत्ताख्या स्वप्ने वासवसूचिता।
श्रूयते तनयो भावी यस्यां विद्याधरेश्वरः॥ २९॥
यौगन्धरायणस्येति श्रुत्वा राजसुतां नृपः।
प्रदध्यौ मनसा हृष्टः स्मरो हि ज्ञानलोचनः॥ ३०॥
अत्रान्तरे प्रतिवचो दूतादाकर्ण्य निःस्पृहम्।
ध्यायंश्चण्डमहासेनः किमपि व्याकुलोऽभवत्॥ ३१॥
व्याधैरम्भःकृतपदं कृत्वा मन्त्रं महागजम्।
विन्ध्याटव्यां ससर्जाशु सशैलमिव जङ्गमम्॥ ३२॥
तं विलासालसगतं विलोलश्रवणार्णवम्।
व्याधैः सुरगजाकारं विवेदोदयनो नृपः॥ ३३॥
दृष्ट्वा तं तुरगप्रायं सैन्यं कृत्वाटवीमुखे।
गजेन्द्रबन्धकुशलो विवेशैको महद्वनम्॥ ३४॥
तत्रापश्यन्महानागमहंकारमिवोन्नतम्।
संसारमिव निःसारमैश्वर्यमिव चञ्चलम्॥ ३५॥
अशीलमिव दुःखान्तं कुमन्त्रमिव निष्फलम्।
स्त्रीचित्तमिव दुर्लक्ष्यमज्ञानमिव मोहदम्॥ ३६॥
अधर्ममिव मायाढ्यं मनोरथमिवायतम्।
वेश्यारागमिवासत्यमनङ्गमिव हारिणम्॥ ३७॥
दुर्बुद्धिमिव दुःसाध्यं निरङ्कुशमिवेश्वरम्।
पयोदमिवामन्द्रमदानं लोभसंनिभम्॥ ३८॥

---

१. 'वाधैरम्भः' ख. २. 'सोपैरन्तःशूनाघार्थं यन्त्रं यन्त्रमहागजम्' ख. ३. 'न्त' ख. ४. 'न्वितं' ख. ५. 'तं पितामहमिवोन्नतम्' ख.

कृतकुञ्जरमालोक्य वीणामधुरगीतिभिः ।
स जिघृक्षुर्मुधा तस्थौ सेवाभिरिव दुर्जनम् ॥ ३९ ॥
क्व यन्त्रकृत्रिमो हस्ती वीणया क्व च तद्ग्रहः ।
प्रायेण व्यसनासक्तिर्मोहाय महतामपि ॥ ४० ॥
तस्मिन्वीणापरवतीव्यग्रे योधाः कुञ्जरनिर्गताः ।
अभ्यायुः सुसंरब्धाः सहसा तं जिघृक्षवः ॥ ४१ ॥
स तानशङ्कितो दृष्ट्वा धैर्यनिष्कम्पमानसः ।
मण्डलोच्चालचरणो जघान सुभटान्रणे ॥ ४२ ॥
हतशेषैः सहाभ्येत्य महाकालवरोर्जितः ।
एको वीरवरः पश्चाज्जग्राह छद्मना नृपम् ॥ ४३[१] ॥
तच्छ्रुत्वा स्वयमेत्याह पुनरुज्जयिनीपतिः ।
वत्सेश्वरं समासाद्य स विवेश निजां पुरीम् ॥ ४४ ॥
पौरैरभ्यर्थितोऽभ्येत्य स क्रूरविजयी नृपः ।
लज्जया मार्दवं प्राप विरराम च तद्वधात् ॥ ४५ ॥
ततः प्रणम्य वत्सेशं सह पौरैर्व्यजिज्ञपत् ।
मान्योऽसि मम राजेन्द्र न हि मे किल्बिषं त्वयि ॥ ४६ ॥
इत्युक्त्वा तनयामस्मै न्यवेदयदमन्दधीः ।
वीणागेयकलाज्ञाने शिष्येयं भवतामिति ॥ ४७ ॥
तां ददर्श ततो राजा नीलनीरजलोचनाम् ।
शृङ्गारमोहताधूतसराग्वेर्लहरीमिव ॥ ४८ ॥
भ्रूलतावीचिरचनां हारडिण्डीरपाण्डुराम् ।
छद्मग्राहं च मानाभिनिर्वापणनदीमिव ॥ ४९ ॥
दधतीं त्रिवलीकान्तिर्वर्णालीलोमवल्लरीम् ।
हारहंससमुत्सृष्टां सेवाललतिकामिव ॥ ५० ॥
शोणाधरां ससिन्दूरकुचकुम्भाभिरागिणीम् ।
सितांशुचामरोदारां कन्दर्पकरिणीमिव ॥ ५१[२] ॥

१. 'सागरोद्भूतां निरायल' ख. २. 'कल्लोले' ख.

विलोक्य राजतनयां स कम्पतरलोऽभवत्।
कान्तिकल्लोलिनीकूले शशाङ्क इव विम्बितः ॥ ५२ ॥
राजपुत्री तमालोक्य लज्जानतमुखी बभौ।
मेखलारत्नकिरणैर्धृतेवोर्ध्वविकाशिभिः ॥ ५३ ॥
स्वेदवारिपरामृष्टकपोलगुरुपत्रिका।
चकम्पे करुणार्द्रेण साहृतेव मनोभुवा ॥ ५४ ॥
प्रेमप्रणयशालिन्या सेव्यमानस्तया नृपः।
राज्यस्थितिं विसस्मार सुधयेवामरीकृतः ॥ ५५ ॥
श्रुत्युत्कर्षापकर्षेण स्वरैः स्थाननिपातिभिः।
मूर्छनाव्यञ्जनोदारतालच्छिन्नायतिक्रमैः ॥ ५६ ॥
निर्विशेषं प्रियतमा ततस्तरललोचना।
प्रावीण्यं प्राप वीणायामवन्तीनृपतेः सुता ॥ ५७ ॥
अत्रान्तरे तथाभूतं कृत्वा वत्सनरेश्वरम्।
संमन्त्र्य सेनापतिना सह पौरैश्च दुःखितः ॥ ५८ ॥
यौगन्धरायणो धीमान्निर्ययौ योगकोविदः।
विपद्वल्लीकुठारो हि सत्सहायसमागमः ॥ ५९ ॥
व्रजन्विन्ध्याटवीं प्राप्य स्वैरितस्तरुमालिनीम्।
प्लवत्कपिकुलालोलव्यासहिन्तालपल्लवाम् ॥ ६० ॥
शल्लकीकवलोद्गारिकरकुञ्जरसंकुलाम्।
जृम्भमाणमहासिंहदंष्ट्रांशुवलयोज्ज्वलाम् ॥ ६१ ॥
तामतीत्याचलोपान्ते पल्लीपतिमुदारधीः।
पुलिन्दकाभिधं प्राप वसन्तकसखः पथि ॥ ६२ ॥
सुहृदं वत्सराजस्य तं सर्वशबरेश्वरम्।
सहायः कार्यशेषे त्वमित्यामन्त्र्य ययौ रहः ॥ ६३ ॥
दिनैर्दशभिरासाद्य योगेनोज्जयिनीं ततः।
महाभयं महाकालश्मशानभयसंनिधि ॥ ६४ ॥

---

१. 'क्राए' ख. २. 'मारणाधिप' ख. ३. 'घटशमदनाभ्युदयम्' ख.

कपालशकलाकीर्णं चटत्कारचितानलम् ।
वेतालोच्चालकङ्कालकेशिकोलाहलाकुलम् ॥ ६५ ॥
तत्र योगेश्वराख्येन मित्रतां ब्रह्मरक्षसा ।
प्राप्य रूपपरावृत्तिं योगं लेभे महामतिः ॥ ६६ ॥
क्षणाद्बभूव खल्वाटः पञ्चचूडो महाहनुः ।
लम्बोदरस्तनुग्रीवः ककुदी जरसार्दितः ॥ ६७ ॥
वसन्तः सोऽपि तेनैव नीतः क्षिप्रं विरूपताम् ।
बभूव विकटाकारो हस्त्यायतनमात्मनः ॥ ६८ ॥
यौगन्धरायणः प्राप्य राजमार्गं स्खलद्गतिः ।
गायन्हसन्पठन्धावन्नृत्यञ्जनमहासयन् ॥ ६९ ॥
सबालकरतालाङ्कफेलीकलकलाकुलः ।
कन्यकान्तःपुरोपान्ते नितान्तोन्मत्तकोऽभवत् ॥ ७० ॥
कौतुकात्तत्र नारीभिर्नीतो गान्धर्वशालिकाम् ।
कन्यागुरुं ददर्शाथ नृपं पुनरिवार्जुनम् ॥ ७१ ॥
सुसंयतं समालोक्य रुरोद विगतज्वरम् ।
रहो युक्तं समासाद्य योगेनान्तर्हितोऽभवत् ॥ ७२ ॥
वत्सेश्वरोऽपि संप्राप्य योगं यौगन्धरायणात् ।
ददर्श मन्त्रसंकेतविपरीतं वसन्तकम् ॥ ७३ ॥
तेन मन्त्रिविदग्धेन रञ्जिता राजकन्यका ।
जहर्ष श्रीयुताः सर्वं विपरीतेषु सादराः ॥ ७४ ॥
धुर्यः कथाविदामस्मि ब्रुवाणमिति तां कथाम् ।
पप्रच्छ राजतनयापृष्टोऽथाह वसन्तकः ॥ ७५ ॥
मथुरेत्यस्ति नगरी यदग्रे न गरीयसी ।
सापि शक्रपुरी रम्या रुक्मिणीव हरिप्रिया ॥ ७६ ॥
पौरकीर्तिसुधाधौतरत्नभ्राजिष्णुमन्दिरे ।
श्वेतद्वीपधिया यत्र साक्षात्संनिहितो हरिः ॥ ७७ ॥

बभूव रूपिणी नाम तत्र वारविलासिनी ।
वशीकरणचूर्णेन निर्मितेव मनोभुवा ॥ ७८ ॥
सुरालयगतापश्यत्सा कदाचिन्मनोरमम् ।
द्विजं साङ्गमिवानङ्गं साकारमिव यौवनम् ॥ ७९ ॥
दृष्टकामुकलोकापि तं विलोक्य जहर्ष सा ।
करोति कं न वशगं साभिलाषं प्रियो जनः ॥ ८० ॥
ततस्तं लोहजङ्घाख्यं भूत्वा प्रसभमर्थिनम् ।
निजं निनाय सा गेहं रत्नांशुकपिशोदरम् ॥ ८१ ॥
तेन बालकुरङ्गाक्षी रममाणा घनस्तनी ।
ललामरुचिरं तत्र निषिद्धाशेषकामुका ॥ ८२ ॥
ततो मकरदंष्ट्राख्या जननी हरिणीदृशः ।
अनेककामुकच्छिन्ननासा श्रवणभीषणा ॥ ८३ ॥
सदा कलहनिर्लूननिःशेषकचसंचया ।
अतीतकामुकव्रातकेशाघातव्रणान्विता ॥ ८४ ॥
भयदा कालरात्रीव वज्रधारेव कुट्टिनी ।
घोरा चिताग्निमालेव कङ्कालीव नराशिनी ॥ ८५ ॥
विलोक्य निर्धनं पुत्र्या वल्लभं शुचिरस्मितम् ।
कपालमांसरसिका राक्षसी साऽब्रवीत्सुताम् ॥ ८६ ॥
अहो विभूतिरहितं पुत्रि गेहं न राजते ।
शुष्कवीथीव वेश्या हि पूर्यन्ते लोकयात्रया ॥ ८७ ॥
परशुर्दारिद्यसाहाय्यं सतीनामेव शोभते ।
अस्माकं तु धनव्रातैः सदा नवनवोत्सवः ॥ ९८ ॥
अभ्यागमरहिता विद्या निरुद्योगा नृपश्रियः ।
वेपथोपाध्य रागिण्यो हास्यायतनमङ्गने ॥ ८९ ॥

---

१. 'न ह्ययं गाढिपर्यं वपुः' ख. २. 'दृष्ट्वा' ख. ३. 'हिमाद्रिणा' ख. ४. 'लौमपश्न' ख.

इदं हि यौवनं बाले तरङ्गजवगत्वरम्।
अस्मिन्नयाते वृद्धानां को ददाति कपर्दिकाम् ॥ ९० ॥
दृष्टिच्छटेव तीक्ष्णा तां कुटिला भ्रूलतेव या।
स्तनस्थलीव कठिना वेश्या सर्वस्वहारिणी ॥ ९१ ॥
निष्कामाः कामचारिण्यो भोगिन्यो न कुलादराः।
नित्योपहारहारिण्यो जृम्भन्ते वारयोषितः ॥ ९२ ॥
विचित्रमायाबहुला वेन्दुकी मोहिनी नृणाम्।
अस्मद्विधा हि सरले संवृतावपि संवृतिः ॥ ९३ ॥
घनेनाल्पोपचारेण हरन्ति द्रविणं बहु।
विदग्धपण्यललनाः कर्णोदकमिवाम्भसा ॥ ९४ ॥
स्मितं नृत्यं प्ररुदितं रागो रुदितधारता।
स्वप्नदृष्टमिवारोपमसत्यं वारयोषिताम् ॥ ९५ ॥
कामुके नूतनासङ्गगाढालिङ्गनकातरे।
गणिका गेहगणनां करोति ध्यानमास्थिता ॥ ९६ ॥
धनाय यत्नेन परा भव पुत्रि महीभुजाम्।
वेश्यानां चार्थहीनानां तृणेनापि न विक्रयः ॥ ९७ ॥
पतन्ति खड्गधारासु विशन्ति मकराकुरम्।
किं न कुर्वन्ति सुभगे कष्टमर्थार्थिनो नराः ॥ ९८ ॥
पुत्रि धन्या वयं यासां संभोगेन धनार्जनम्।
करं शिरो वा विक्रीय धनं मुग्धे न लभ्यते ॥ ९९ ॥
त्यजैनं निर्धनं विप्रं मा रूपवशगा भव।
न हि दारुमयो हस्ती करोति समरक्रियाम् ॥ १०० ॥
इति मातुर्वचः श्रुत्वा रूपिणी कोपकम्पिता।
मैवं वादीः पुनरिति प्रोवाच दृढरागिणी ॥ १०१ ॥

१. 'गगमङ्गरम्' ख. २. 'वेश्यानां' ख. ३. 'अधमाः' ख. ४. 'भद्र मं' ख. ५. 'कान्' ख. ६. 'पानन्' ख. ७. 'य' ख.

गूढं मकरदंष्ट्राथ राजपुत्रं स्वमन्दिरे ।
निधाय निर्धनं श्रद्धा निरास सपदि द्विजम् ॥ १०२ ॥
स निरस्तोऽर्धचन्द्रेण ताडितो लगुडैर्भृशम् ।
क्षिप्तश्च कर्दमे प्रायादटवीं रवितापितः ॥ १०३ ॥
रागावसानसंतापदुःखदैन्यभ्रमाकुलः ।
छायार्थी शुष्ककरिणः प्रविवेश कलेवरम् ॥ १०४ ॥
अरण्ये जम्बुकत्यक्ते कीटनिष्कुषितान्तरे ।
स निद्रामाययौ तस्मिन्नन्ध्रवातगतागतैः ॥ १०५ ॥
अत्रान्तरे समुत्तस्थौ मेघस्तापिच्छसच्छविः ।
यद्वृष्टिपूरैः ककुभो बभूवुर्जलसंकुलाः ॥ १०६ ॥
महौघेन हृतः सोऽथ सरिद्वारिगतो गजः ।
समुद्रमाससादाशु तरङ्गालिङ्गितो मुहुः ॥ १०७ ॥
तार्क्ष्यवंशस्ततः पक्षी तमादायामिषाशया ।
मीतस्तत्याज लङ्कायां दृष्ट्वा तं निर्गतं नरम् ॥ १०८ ॥
निःसृतोऽथ गजाद्विप्रः शनैः प्राप विभीषणम् ।
अवाप्यातिथिसत्कारं तत्र राघवगौरवात् ॥ १०९ ॥
पृष्टो विभीषणेनार्थं प्राहाहं मथुराश्रयः ।
विसृष्टो विष्णुना साक्षाद्रत्नार्थं भवदन्तिकम् ॥ ११० ॥
विभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा विष्णोर्देयमुपायनम् ।
शङ्खचक्रगदारत्नमित्युक्त्वास्मै ददौ विभुः ॥ १११ ॥
तदाज्ञयैव सौवर्णवाहनं प्राप्य पक्षिणम् ।
रत्नानि च महार्हाणि प्रययौ मथुरां क्षणात् ॥ ११२ ॥
तत्र दिव्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
शङ्खचक्राङ्कितो रम्यो रूपिण्या संगतः पुरः ॥ ११३ ॥
रूपिणी विष्णुना साक्षात्कामिताहमिति स्फुटम् ।
उवाच लक्ष्मीसौभाग्यमदातरलमानसा ॥ ११४ ॥

---

१. 'रो' ख. २. 'द्वीपि' ख. ३. 'प्य तस्मात्' ख. ४. 'द्यो' ख. ५. 'प' ख.
६. 'गर्वमरणमा' ख.

नो वक्ति द्विज संतापे देवताहमिति स्थिता ।
कथंचिज्जननीं वक्ति सा पटान्तरिताकृतिः ॥ ११५ ॥
एवं प्रतिनिशं तस्यां संगते देवविग्रहे ।
यत्नान्मकरदंष्ट्रा तां यत्रैकान्ते व्यलोकयत् ॥ ११६ ॥
ततः प्रणम्य तनयां रूपिणीं सा व्यजिज्ञपत् ।
सशरीरा दिवंगन्तुं···· तेनाहमर्थये ॥ ११७ ॥
इति मातुर्गिरा प्राह सा प्रियं विष्णुविग्रहम् ।
माता मे त्वत्प्रसादेन स्वर्गं गन्तुं समीहते ॥ ११८ ॥
तच्छ्रुत्वा केशवाकारस्तथेत्युक्त्वा दिदेश ताम् ।
लिप्तार्धा पञ्चचूला च प्रातः कार्येत्यनारदात् ॥ ११९ ॥
तदादेशादथ कृता कुट्टिनी पञ्चचूलिका ।
सिन्दूरलिप्तैककुचा मसीन्यस्तत्रिपुण्ड्रिका ॥ १२० ॥
एकादश्यां संनिधिर्मे माथुरेऽसिन्सुरालये ।
उक्त्वेति नम्रा सहसा निनाय खगवाहनम् ॥ १२१ ॥
ततस्तां तोरणस्तम्भे निधायैकादशीव्रते ।
उवाच लिपि देवाग्रे संगतान्ब्राह्मणांल्लघु ॥ १२२ ॥
मारी पतिष्यति क्षिप्रमद्य वो मीपणाकृतिः ।
रक्षा विधीयतां काचिदित्युक्त्वा रक्षतां ययौ ॥ १२३ ॥
आकाशभाषितं श्रुत्वा ते द्विजास्त्रासविह्वलाः ।
शान्तिस्वस्तिकमध्वाङ्कस्तोत्रैश्चक्रुर्महारवम् ॥ १२४ ॥
कुट्टिन्यपि चिरन्यस्ता तत्र शीतानिलार्दिता ।
हा हा पतामीति भयाद्विरराव खरस्वरम् ॥ १२५ ॥
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणा भीता मा पतेत्यार्तवादिनः ।
मारि मारि नमस्तुभ्यं त्वं त्राणमिति चुक्रुशुः ॥ १२६ ॥
साब्रवीन्निपताम्येषा कम्पमाना पुनः पुनः ।
मा मा पतेति चात्यन्तभीताः प्राहुर्द्विजातयः ॥ १२७ ॥

१. 'निषिद्धजनसंलापा' ख. २. 'च' ख. ३. 'स्थि' ख. ४. 'सर्व'. ख.

पतामि मा पतेत्येवं तस्याक्षेपां च सा निशा ।
प्रययौ क्रन्दतामेव शतसंवत्सरोपमा ॥ १२८ ॥
सद्वृद्धबालनगरे संप्राप्ते कौतुकाकुले ।
प्रातर्दूरात्परिज्ञाता द्विजेनैकेन कुट्टिनी ॥ १२९ ॥
लोहजङ्घेन चरितं हास्यमेतदिति द्विजाः ।
विज्ञाय कुट्टिनीं वैरे प्रसिद्धं ददृशुश्च तम् ॥ १३० ॥
सरूपं लोहजङ्घोऽपि विज्ञाय बहुरत्नदः ।
रूपिणीं भूपयित्वा च धृतिं स प्राप पुष्कलाम् ॥ १३१ ॥
इति लोहजङ्घाख्यायिका ॥ १ ॥

श्रुत्वेति राजतनया कथामद्भुतशालिनीम् ।
अमन्दानन्दनिस्पन्दशीतधौतमुखी बभौ ॥ १३२ ॥
अथ राजानमभ्येत्य स्वैरं यौगन्धरायणः ।
विमुक्त्युपायं संमन्त्र्य योगं दत्त्वा ययौ पुनः ॥ १३३ ॥
प्ररूढगाढविश्रम्भां प्रेमबन्धवशीकृताम् ।
राजपुत्रीं नृपो ज्ञात्वा योगस्फाटिकबन्धनः ॥ १३४ ॥
भद्रां भद्रवतीं नाम करिणीं लक्षणोचिताम् ।
आधायाषाढकं कृत्वा दानैर्हस्तिपकं वशे ॥ १३५ ॥
वसन्तकेन सहितः सार्धं वासवदत्तया ।
तत्सख्या प्रेमविश्वाससमुवा काञ्चनमालया ॥ १३६ ॥
निशि सर्वायुधोपेतो हत्वा नगररक्षिणः ।
ययौ करेणुकावेगधृतहारतरङ्गितः ॥ १३७ ॥
प्रयाते वत्सनृपतौ प्रभुद्योज्जयिनीपतिः ।
मिथःसमस्तसुभटप्रातकोलाहलः पुरे ॥ १३८ ॥
नडागिरिं समारुह्य पालकः कुपितोऽथ तम् ।
हस्तोऽभिगमौरेकस्त्वग्न्यात्यावन्तिपोऽब्रवीत् ॥ १३९ ॥

---

१. 'शतसंवत्सरोपमा' ग. २. 'वाक्यमैतत्' ग. ३. 'हा' ग. ४. 'सित' ग.
५. 'बलेश्वर स' ग.

कोपनः पालकः शूरो मान्यो वत्सेश्वरश्च नः ।
गच्छ गोपाल तद्युद्धं निवारय जवादिति ॥ १४० ॥
पितुर्नियोगादारुह्य सुग्रीवाख्यं तुरङ्गमम् ।
गोपालः प्रययौ तूर्णं ततो भ्रातृनिवर्तने ॥ १४१ ॥
वत्सेश्वरोऽपि निविडध्वान्तलीने निशामुखे ।
नक्षत्रराज भ्राजिष्णुतारहारांशुसूचितः ॥ १४२ ॥
अथोज्जगाम ललनाकपोलललितद्युतिः ।
रजनीराजतनयाकर्पूरतिलकः शशी ॥ १४३ ॥
मुष्टिग्राह्ये निशाकान्तकान्तिपूरे प्रसर्पति ।
अकस्मादाननिर्घोषमज्यमानेव भूभृत् ॥ १४४ ॥
कल्पान्तोद्भ्रान्तचण्डीशलटङ्कमरुत्कोद्भवम् ।
आपाढकः समाकर्ण्य शब्दं राजानमभ्यधात् ॥ १४५ ॥
एष देव महामेघघोरघोषो नडागिरेः[४] ।
शब्दो रुणद्धि विश्व·················॥ १४६ ॥
उक्त्वेति विरते वसिन्नदृश्यत नडागिरिः ।
मेघं संसर्गमलिनः सुरद्विप इवापरः ॥ १४७ ॥
तदाज्ञया विना नैव मम सा स्वपदस्थितिः ।
इति वागस्त्यमन्वेष्टुमायातो विन्ध्यभूधरः ॥ १४८ ॥
सिन्दूरपूरारुणितं घण्टाभ्यां तद्वपुर्बभौ ।
उदयास्तस्थितार्केन्दुबिम्बं सांध्यमिवाम्बरम् ॥ १४९ ॥
करेणुदन्तमुसलच्छायैर्मूत्रेण शोभितः ।
सेवार्हते विशेषेण मा पीडय महीमिति ॥ १५० ॥
मौं कदाचिद्धि साकारकरं तारापतिं हरेत् ।
इति नक्षत्रमालाभिः सेव्यमान इवाभितः ॥ १५१ ॥

. 'ममाम्य च' ख. २. 'शदत' ग. ३. 'द्रुमनि' ग. ४. 'रिः' ख. ...नाग्रे' ग. ६. 'तुरेण द्वे' ग. ७. 'ष' ग.

स पालकेन कृतिना युद्धसज्जेन कुञ्जरः ।
प्रेरितोऽपि विकोपोऽभूद्दृष्ट्वा च भगिनीं पुरः ॥ १५२ ॥
आकर्णाञ्चितकोदण्डमण्डलोच्चण्डसायकः ।
आलोक्य भगिनीमग्रे विरराम च पालकः ॥ १५३ ॥
राजापि निर्दयोद्धूतधन्वा धैर्यनिधिर्युधि ।
चिच्छेद पालकस्यापि चक्रतोमरकार्मुकम् ॥ १५४ ॥
खड्गखण्डैर्निपतितैस्तस्य सग्रामभूरभूत् ।
जयश्रीरतिशय्येव कीर्णकर्णोत्पलच्छदैः ॥ १५५ ॥
अत्रान्तरे समभ्येत्य गोपालो जवनैर्हयैः ।
निनाय स्वपुरीमेव पालकं पितुराज्ञया ॥ १५६ ॥
निवृत्ते राजपुत्रेऽथ नलागिरिबलोत्कटे ।
द्रुतं याति च वत्सेशे प्रययौ यामिनी शनैः ॥ १५७ ॥
अन्येद्युरथ मध्याह्ने प्रचण्डकिरणे रवौ ।
तृष्णार्ता करिणीत्याह नृपमापाढको वने ॥ १५८ ॥
ततस्तडागमासाद्य पीत्वा भद्रवतीजलम् ।
विपद्दूषितमाकण्ठमवतीर्य न्यपतत् ॥ १५९ ॥
अहं मायावती नाम विद्याधरवधूर्नृप ।
त्वत्सेवया मुक्तशापा भविष्याम्युपकारिणी ॥ १६० ॥
भाविनस्तव पुत्रस्य सर्वविद्याधरप्रभोः ।
इति पञ्चत्वमापन्ना प्राह भद्रवती दिवः ॥ १६१ ॥
ततो वसन्तकेनाशु समाहूय पुलिन्दकम् ।
तत्पुरीं प्रययौ राजा हत्वा दस्युगणं पथि ॥ १६२ ॥
यौगन्धरायणेनाथ निजवेशवता नृपः ।
ननन्द संगतस्तैस्य समं वासवदत्तया ॥ १६३ ॥

---

१ 'भद्रवती पुरः' ग. २. 'यद्ध' ख. ३. 'तत्र' ग.

अत्राभ्येति समादाय रत्नाश्ववरकुञ्जरान् ।
गोपालकस्त्वद्विवाहे विसृष्टोऽवन्तिभूभुजा ॥ १६४ ॥
इति पान्थवणिग्वाक्यं ज्ञात्वा राजा प्रियासखः ।
विसृज्य दूतान्स्वपुरीं ससैन्याय व्यलम्बत ॥ १६५ ॥
मनोविनोदनं किंचित्कथयेत्यथ सादरम् ।
विवाहोत्सुकया देव्या पृष्टः प्राह वसन्तकः ॥ १६६ ॥
अभवत्ताम्रलिप्तायां धनगुप्ताभिधो वणिक् ।
ब्राह्मणान्पुत्रकामोऽसावपृच्छत्तेऽप्यथोचिरे ॥ १६७ ॥
एकपुत्रः पुरा राजा सोमको यागपावके ।
जन्तूनामयुतं हुत्वा पुत्राणां शतमाप्तवान् ॥ १६८ ॥
एवं श्रुत्वा स पुत्रेष्टया पुत्रं प्राप कुलोचितम् ।
गुहसेनाभिधं यस्य कन्दर्पो लज्जते पुरः ॥ १६९ ॥
धनगुप्तोऽथ कालेन सपुत्रो रत्नविक्रयी ।
समुद्रं यानपात्रेण प्रययौ धनदोपमः ॥ १७० ॥
धनिनो धर्मगुप्तस्य तत्र वर्बरवासिनः ।
सोऽयाचत स्वपुत्राय कन्यां लावण्यशालिनीम् ॥ १७१ ॥
दूरे देशे प्रियापत्यः पिता तां न ददौ भिया ।
वणिक्पुत्रं समालोक्य सा स्वैरमूदभिलाषिणी ।
सख्यावेदितवृत्तान्ता तद्गेहमगमत्स्वयम् ॥ १७२ ॥
देवस्मिताभिधानां तामादाय स्वयमागताम् ।
ताम्रलिप्तां समभ्येत्य पुत्रस्योद्वाहमादधे ॥ १७३ ॥
गुहसेनस्तया तत्र बालसारङ्गनेत्रया ।
संगतोऽनङ्गसुभगः सुधासिक्त इवाभवत् ॥ १७४ ॥
कालेन त्रिदिवं याते धनगुप्ते स तत्पदे ।
प्रतिष्ठां प्राप्य यात्रायां चक्रे बन्धुगिरा धियम् ॥ १७५ ॥

---

१. 'अभ्येष्यति' ख. २. 'नि' ग. ३. 'वणिजो धर्मगुप्तस्य' ख. ४. 'तद्गता-भि' ख. ५. 'धनगुप्तसुतश्चान्या शोभया' ग.

उद्यतः स ततो गन्तुं समुद्रं धनवृद्धये ।
विवेश वल्लभां द्रष्टुं वियोगभयकातराम् ॥ १७६ ॥
दोलाविलोलहृदयस्तां पपौ सुचिरं दृशा ।
रागो निर्भरतामेति विरहो हि भविष्यति ॥ १७७ ॥
प्रियं सुदयितं ज्ञात्वा सावदत्साञ्जनाश्रुभिः ।
प्रौढा प्रावृडिव श्यामा श्यामीकृतपयोधरा ॥ १७८ ॥
ध्रुवं सौभाग्यनिधयस्त्वां यौवनसुरद्रुमम् ।
दृढबन्धं करिष्यन्ति दिगन्तेषु मृगीदृशः ॥ १७९ ॥
इति प्रणयिनीवाक्यं स निशम्य सराकुलः ।
स्वप्ने ददर्श वरदं सभार्यं पार्वतीपतिम् ॥ १८० ॥
वियोगे रतिमन्यत्र युवयोर्यः प्रयास्यति ।
म्लानिमेष्यति मद्दत्तं हस्ते तस्येदमम्बुजम् ॥ १८१ ॥
इति रक्ताम्बुजयुगं स्वप्ने ताभ्यां ददौ शिवः ।
तदादाय प्रबुद्धेव दम्पती तौ ननन्दतुः ॥ १८२ ॥
ततो यातः प्रशस्तेऽह्नि दिगन्तं सचिवैः सह ।
कटाहद्वीपमासाद्य तस्थौ बहुलविक्रयः ॥ १८३ ॥
वणिग्भिः संगतस्तत्र तत्रत्यैर्मदमोहितैः ।
पृष्टो रक्ताम्बुजं दृष्ट्वा तत्कथामब्रवीच्च सः ॥ १८४ ॥
युवानस्तत्र तां ज्ञात्वा प्रियां देवस्मिताभिधाम् ।
गूढाश्चे ताम्रलिप्तायां ययुस्ते संगमाशया ॥ १८५ ॥
तद्गृहान्वेषणपरास्ते तु भ्रान्त्वाखिलां पुरीम् ।
तापसीं विजने प्रापुर्वृद्धां योगकरण्डिकाम् ॥ १८६ ॥
तया संजातविश्वासा निजागमनकारणम् ।
निवेद्य तस्यै कामार्ताश्चिरं तस्थुस्तदाश्रमे ॥ १८७ ॥

१. 'दिव्यतुं दयितं' ख. २. 'मन्मथंस्त्वां सौन्दर्येषु' ख. ३. 'ढं' ख. ४. 'शोप' ख. ५. 'वृद्धां च' ख.

देवस्मितार्थिनां तेषां साहाय्ये प्रतिपन्नधीः ।
मन्त्रप्रयोगचतुरा तानुवाच हि तापसी ॥ १८८ ॥
गुहसेनस्य दयितां तामहं भवतां वशे ।
करिष्याम्यस्ति मे शिष्या सर्वविज्ञानशालिनी ॥ १८९ ॥
सा हि सिद्धिकरी नाम पुरा देशान्तरागतम् ।
मन्त्रैर्वशगं चक्रे वणिजं पालिताभिधम् ॥ १९० ॥
तस्य भूरिधनं हृत्वा मणिकाञ्चनमौक्तिकम् ।
प्रययौ छद्मयोगेन सर्वसर्वस्वहारिणी ॥ १९१ ॥
धनभारानतां मार्गे हन्तुकामोऽथ भीषणः ।
दृष्टुः श्वपाको विजने शनैरनुससार ताम् ॥ १९२ ॥
क्रूरं यमागमं दृष्ट्वा सा प्रोवाच धनार्थिनम् ।
भर्त्रा निरस्ता क्रुद्धेन प्राप्ताहं शरणार्थिनी ॥ १९३ ॥
अस्मिन्न्यग्रोधविटपे सज्जीकुरु कृपानिधे ।
पाशानि.शेषशोकाग्निशान्तये प्रणयादिति ॥ १९४ ॥
अयत्नोपनतं दृष्ट्वा वराकस्तद्धनं बहु ।
तूर्णं विधाय वृक्षाग्रे पाशं तामभ्यभापत ॥ १९५ ॥
सज्जीकृतं मया मातः क्षिप्रमारुह्यतामिति ।
साब्रवीन्नम शिष्यायै दर्शयैवं ह्रुतं सखे ॥ १९६ ॥
इति तद्वचसा मूढो लम्बे द्रविणाशया ।
कण्ठे तदुपदेशाय पाशं कृत्वा सुवेष्टितम् ॥ १९७ ॥
इत्थं विधीयतां कण्ठे तूर्णं तमिति वेष्टितम् ।
पादेन सा चकर्षाशु स च कृष्टोऽभवद्यसुः ॥ १९८ ॥
श्वपाकमिति हत्वा सा प्रस्थितैकाकिनी पथि ।
पालितानुचरैर्दृष्टा क्रुद्धैर्धनिधनहारिणी ॥ १९९ ॥
सा तान्दृष्ट्वा समारुह्य वृक्षं तस्थौ लतान्तरे ।
तन्मध्यादधिरोहैकः शनकैरामसाद ताम् ॥ २०० ॥

---

१. 'दुर्दि' ख. २. 'शाणैर्ह' ख. ३. 'वदितम्' ख.

सात्रवीत्साभिलापाहं त्वय्येव सततं विभो ।
धनं त्वदर्थमेवेदं शपथं कुरु चुम्ब माम् ॥ २०१ ॥
इत्युक्त्वा चुम्बनं चक्रे निवेश्य दशनैस्ततः ।
जिह्वां चिच्छेद सा तस्य लं[1]ल्लल्लेति भाषिणः ॥ २०२ ॥
ततो निपतिते तस्मिन्रक्त[2]ष्ठीविनि भूतले ।
भूतग्रस्तोऽयमित्युक्त्वा शेपास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥ २०३ ॥
इति तद्वञ्चनावाप्तं धनं मह्यं न्यवेदयत् ।
सा शिष्या विश्वविश्वासच्छद्महेतु[3]र्महाशया ॥ २०४॥
समागतैव सा मन्ये मम साहाय्यकारिणी ।
देवस्मिता संगमं वो लीलयैव विधास्यति ॥ २०५ ॥
तस्यामित्युक्तवत्यां सा सहसाभ्याययौ कुटीम् ।
शिष्यां सिद्धिकरीं तां च दृष्ट्वा सर्वे ववन्दिरे ॥ २०६ ॥
ततो विदितवृत्तां तां कृत्वा योगकरण्डिका ।
शिष्यां देवस्मितागेहं तयैव सहिता ययौ ॥ २०७ ॥
गुहसेनगृहं प्राप्य द्वारपालमुपेत्य सा ।
कण्ठे जग्राह सोत्कण्ठं कृत्वा च[4] पटसंग्रहे ॥ २०८ ॥
त्वं मे जन्मान्तरसुहृन्नेत्राभ्यां विनिवेदितः ।
इत्युक्त्वा मोदकांस्तस्मै दत्त्वा तद्वचसाविशत् ॥ २०९ ॥
गुहसेनजनन्या च पूजिता मध्यमन्दिरम् ।
प्रविश्य विरहक्षामां प्राप्य[5] देवस्मितां सतीम् ॥ २१० ॥
अदृष्टां भास्करेणापि दृष्ट्वा तां गुप्तमन्दिरे ।
प्रणतां [6]वीक्ष्य चाशीर्भिरभिनन्द्याश्रमं ययौ ॥ २११ ॥
अन्येद्युर्मांसशकलं प्रभूतमरिचं करे ।
कृत्वा सशिष्या प्रययौ पुनर्देवस्मितान्तिकम् ॥ २१२ ॥

---

१. 'लल्लेतिराविण.' ख. २. 'रर' ख. ३. 'छद्म' ख. ४. 'कपटसंभ्रमम्' ख. ५. 'प' ख. ६. 'शिरसार्दी' ख.

तृप्तां मरिचमांसेन कृत्वा वेश्माग्रगां शुनीम्।
पूजितासनपुष्पाद्यैः सशिष्या समुपासत ॥ २१३ ॥
अथाश्रुवर्षिणीं दृष्ट्वा शुनीं मरिचतापिताम्।
रुरोद तापसी तां च सा पप्रच्छ वणिग्वधूः ॥ २१४ ॥
तापसी प्राह पुत्राथ पुत्री जन्मान्तरे मम।
पतिव्रता सपत्नीयं बभूवातिप्रिया शुनी ॥ २१५ ॥
अहमेषा च विप्रस्य भार्ये देशान्तरस्थिते।
लावण्ययौवनोपेते प्राप्ते निर्दिश्यतां पुरा ॥ २१६ ॥
अहं नवनवोदारवल्लभा सुभगाभवम्।
इयमासीच सततं सती नियमदुर्भगा ॥ २१७ ॥
मन्यामहे न हि वयं पापीयांसमतः परम्।
यः संरुद्धेन्द्रियो मोहात्क्षतघ्नं शोषयेन्मनः ॥ २१८ ॥
निर्गलेन्द्रियसुखा नित्यानन्दोपयोगिनी।
अहं योगिपदं प्राप्ता सा सर्वजनकामिनी ॥ २१९ ॥
भक्त्या तु मे सपत्नीयं पुत्रि जातिस्मरा शुनी।
तिर्यग्भावमियं प्राप्ता साध्वी मौनसदूषिता ॥ २२० ॥
सैषा चिरेण मां दृष्ट्वा रोदिति स्मृतवल्लभा।
श्रुत्वैतत्तापसीवाक्यं निनिन्द मनसा सती ॥ २२१ ॥
किंस्विपं मानसगतं तस्या द्रष्टुं समुद्यता।
साब्रवीचदि धर्मोऽयं कंचिदानय मे प्रियम् ॥ २२२ ॥
इति देवस्मितावाक्यं श्रुत्वा योगकरण्डिका।
प्राहाश्रमे मे चत्वारो युवानो वणिजः स्थिताः ॥ २२३ ॥
सह मोदिष्यसे तैस्त्वमित्युक्त्वा तत्कृते ययुः।
देवस्मिताप्यनुचरीं बभाषे कोपकम्पिता ॥ २२४ ॥

१. 'स्थितत्' ख. २. 'दें' ख. ३. 'निर्गलेन्द्रियग्रामनित्यनव्योपभोगिनी' ख. ४. 'संयमद्' ख. ५. 'श्रुत्वेति ता' ख.

ध्रुवं देशान्तरस्थेन मद्भर्त्रा वणिजां पुरः।
कथिता मधुदंत्तेन मत्कथा पद्मकौतुके ॥ २२५ ॥
तथैव नूनं वणिजस्तस्मिंस्तत्र चिरस्थिते।
मदर्थमागतास्तेषां करिष्यामि यथोचितम्।
इत्युक्त्वात्मनिभां कृत्वा दासीं निजपदे व्यधात् ॥ २२६ ॥
ततो वणिजमानीय तापसी रत्नभूषितम्।
निशि सिद्धिकरीवेषं ययौ विन्यस्य तद्गृहे ॥ २२७ ॥
स प्रविश्य निजं रूपमासाद्य स्मरमोहितः।
दासीं देवस्मितावेषां ननन्द प्राप्य सुन्दरीम् ॥ २२८ ॥
ततो धत्तूरकोपेतं पीत्वा मधु तदाहृतम्।
बभूव स्रस्तवसनः कान्तः काष्ठोपमाकृतिः ॥ २२९ ॥
निश्चेष्टं तं ललाटाग्रे गृहीताभरणाम्बरा।
अङ्कं कृत्वा स्वपादेन चिक्षिपुः कर्दमे स्त्रियः ॥ २३० ॥
प्रभाते प्रतिबुद्धोऽथ पट्टिकाच्छादितालिकः।
गत्वा परानुवाचाहं हृतो दस्युगणैरिति ॥ २३१ ॥
इति क्रमेण तेनैव सर्वे ते तत्पदाङ्किताः।
स्वदेशं प्रययुर्गूढा निन्दन्तो निजदुष्कृतम् ॥ २३२ ॥
तेनैव मधुना मत्तां कृत्वा योगकरण्टिकाम्।
कर्णनासाविरहितां तच्छिष्यां च वणिग्वधूः ॥ २३३ ॥
प्रतस्थे वचसा तस्या गुहसेनाश्रितां दिशम्।
मा कदाचिन्मम पतिं हन्युस्ते लज्जिता इति ॥ २३४ ॥
व्रजन्ती प्राह सा श्वश्रूं गत्वा रक्षाम्यहं प्रियम्।
शक्तिमत्या यथा पूर्वं परित्रातः पतिर्धिया ॥ २३५ ॥
मणिभद्रालये पूर्वं निरुद्धो दण्डवासिना।
वणिक्सागरदत्तास्यो जारः सह परस्त्रिया ॥ २३६ ॥

---

१. 'मत्तं' ख. २. 'काष्ठलोष्टसमाकृ-' ख. ३. 'अङ्कयित्वा' ख.

बद्धं विज्ञाय तं जाया तस्य शक्तिमती सती ।
प्रविश्य पूजाव्याजेन निशि तस्थौ सुरालये ॥ २३७ ॥
तामसाध्वीं प्रियां भर्तुर्निजाभरणवाससा ।
आत्मतुल्यां विधायाशु विससर्ज ह्रिया नतान् ॥ २३८ ॥
ततः प्रभाते भूपालसभां नीत्वा वणिग्जनैः ।
दृष्टः स्वभार्यासहितस्ततो राजा विचारणैः ॥ २३९ ॥
मिथ्या बद्धोऽयमित्युक्त्वा कुपितो दण्डवासिकान् ।
बबन्धेति पुरा तस्या रक्षितः साहसात्ततः ॥ २४० ॥
गत्वाहमपि भर्तारं रक्षामीत्यभिधाय सा ।
वणिग्वेषाङ्घ्रितुर्यीयं ददर्श निजवल्लभम् ॥ २४१ ॥
विधाय पौरुषं वेषं तत्र राजानमेत्य च ।
व्यजिज्ञपत्प्रभो पत्युर्दासा मे हारिता इति ॥ २४२ ॥
गृहाणैतान्सभामध्ये विचिन्त्य सकलं जनम् ।
इति राज्ञा समादिष्टा ताञ्जगाह वणिग्वरान् ॥ २४३ ॥
मयाङ्किताः स्वपादेन प्रतिज्ञायेति संसदि ।
तच्छिरःपदमुद्घाट्य सा प्रत्यक्षमदर्शयत् ॥ २४४ ॥
ततो विदितवृत्तेन तस्यै दत्ता महीभुजा ।
वणिजो मोक्षिता दासादनेन निजबन्धुभिः ॥ २४५ ॥
इति भूरि धनं लब्ध्वा गुहसेनमवाप्य च ।
ताम्रलिप्तीं समभ्येत्य सा ननन्द चिरं सती ॥ २४६ ॥

इति देवस्मिताख्यायिका ॥ २ ॥

वसन्तकेन कथितं निशम्येति नृपात्मजा ।
ननन्द साध्वी चरितैस्तुष्टे च सतीजनः ॥ २४७ ॥
अत्रान्तरे प्रतीहारो महासेनमहीपतेः ।
वत्सेश्वरं समभ्येत्य समासीनं व्यजिज्ञपत् ॥ २४८ ॥

---

१. 'हिया' ख. २. 'सा' ख. ३. 'पुरः' ख. ४. 'पदा' ख. ५. 'भृतान्व-यं' ख. ६. 'तच्छिरः' ख. ७. 'वि' ख. ८. 'सेन' ख.

देव चण्डमहासेनसमादिष्टः समेष्यति ।
गोपालकस्त्वद्विवाहयोग्यरत्नाश्वसंपदा ॥ २४९ ॥
श्रुत्वेति हृष्टः सेनानीः सज्जीकृतबलाम्बुधिः ।
राजा विवेश कौशाम्बीं कौतुकाकुलतां गताम् ॥ २५० ॥
अथ गोपालके प्राप्ते प्रवृत्ते च महोत्सवे ।
विवाहवसुधां राजा देव्या सह समाविशत् ॥ २५१ ॥
तयोर्बभौ विवाहश्रीः कुसुमायुधजीविनी ।
प्रवृत्तसंहृष्टगणा पुनरीश्वरयोरिव ॥ २५२ ॥
देवी प्रदक्षिणा वृत्तताराहारा रराज सा ।
सुधाकल्लोलवलिता कमलेव नवोदिता ॥ २५३ ॥
सा भेजे कीर्णकर्पूरपूरस्मेराम्बरोज्ज्वला ।
क्षीरक्षालितबिम्बस्य चन्द्रस्येव सितच्छटा ॥ २५४ ॥
विक्षिप्तलाजकुसुमा तद्विवाहमही बभौ ।
देवीमुखशशिप्रीत्या नक्षत्रैरिव सेविता ॥ २५५ ॥
संपूर्णोद्वाहसुभगे नृपे मन्त्री चमूपतिः ।
समस्तजनसत्कारे तस्थतुः प्रभुशासनात् ॥ २५६ ॥
रुमण्वानमथोवाच ध्यात्वा यौगन्धरायणः ।
विनियुक्तौ नृपेणावां दुष्करे बत कर्मणि ॥ २५७ ॥
को हि भोजनसंमानैरवलेपधनं जनम् ।
समर्थः संगुलीकर्तुमस्मिन्राजमहोत्सवे ॥ २५८ ॥
भोजने याति विपुलं कोपं बालोऽथ पूजितः ।
अवमानकथां पूर्वां कृतं बालेन कौतुकम् ॥ २५९ ॥
देव सेनामहारेऽभूद्रुद्रशर्माभिधो द्विजः ।
विनष्टकास्यस्तस्यासीन्मात्रा हीनः कृशः सुतः ॥ २६० ॥

१. 'दुःखितानन' ख. २. 'ति' ख. ३. 'व' ख. ४. 'सि' ख. ५. 'रा' ख. ६. 'णम्' ख. ७. 'उपालम्भनम्' ख. ८. 'दया' ख.

अपरा तस्य जननी निरादरधिया सदा ।
तस्य शीर्णरसं चक्रे स्नेहाच्छादनभोजनम् ॥ २६१ ॥
स्वपुत्रपोषणरतां क्रुद्धां तां वीक्ष्य बालकः ।
कदाचित्प्राह पितरं द्वितीयोऽस्ति पिता मम ॥ २६२ ॥
इत्यव्यक्ताक्षरां वाचं श्रुत्वा तस्यामवद्विजः ।
शङ्कितो निजदारेषु सहसा भृकुटीमुखः ॥ २६३ ॥
तदैवं सततं बाले ब्रुवाणे परिभर्त्सिता ।
भर्त्रा तं दारकं प्राह रहः सा भृशदुःखिता ॥ २६४ ॥
स्वसुताभ्यधिकस्त्वं मे किं त्वया कोपितः पिता ।
इति श्रुत्वाब्रवीद्बालः क्रुद्धोऽस्म्यवमाननार्दितः ॥ २६५ ॥
प्रसादितोऽथ प्रणयाचया पितरमागतम् ।
निर्दिश्य दर्पणं प्राह द्वितीयोऽयं पिता मम ॥ २६६ ॥
श्रुत्वेति प्रत्ययं प्राप्य रुद्रशर्मा धृतिं ययौ ।
इत्यसंमानितः कोपं याति बालोऽपि भोजने ॥ २६७ ॥

इति विनष्टाख्यायिका ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा भूमिपालानां नानादेशनिवासिनाम् ।
पौराणां च व्यधात्पूजां विवाहोत्सवसङ्गिनाम् ॥ २६८ ॥
वत्सेश्वरं समामन्त्र्य गोपाले शासनास्थितुः ।
प्रयाते स्वपुरीं राजा विजहार प्रियासखः ॥ २६९ ॥
ततो रोमाकुलोदारकटाक्षनवपल्लवः ।
विलासहासकुसुमो देव्याः स्मरतरुर्बभौ ॥ २७० ॥
गूढं रजनिकाकामी राजा तां च विकारतः ।
इति गोत्रापराधेषु सा ब्रुवाणा रुषं ययौ ॥ २७१ ॥
अयं नरेन्द्रस्य शरीरतुल्यः सौवस्तिकावर्गचक्रवर्ती ।
उक्त्वेति दासीभिरनङ्गदूतं वसन्तकं भूमिपतेर्वयस्य ॥ २७२ ॥

१. 'मन्द' ख. २. 'भृग' ख. ३. 'वर्त्ति' ख. ४. 'रं' ख. ५. 'सन्नाहना-सि' ख. ६. 'दि' ख. ७. 'पाण्डुरो' ख. ८. 'रमति हि' ख.

सा कृत्वा यत्पथविरचिता तापसीना विदग्धा
तैस्तै [1]श्लेषप्रणयवचनैस्त्यक्तकोपा विधाय ।
राज्ञश्चक्रे स्वयमविलसत्प्रेमकण्ठावलम्बा
लक्ष्मीमिन्दोरिव जलधरच्छेदलब्धप्रसादाम् ॥ २७३ ॥
देवी तत स्मितविभक्तकपोलकान्ति-
र्मुक्त्वा वसन्तकमवाप्य रुष चकार ।
राजा ननन्द च तदाननपद्मभृङ्ग
कोपप्रसादसुभगो रतये हि काम ॥ २७४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे कथामुखनामा द्वितीयो लम्बक समाप्त ।

---

## लावानकनामा तृतीयो लम्बकः ।

### प्रथमो गुच्छ ।

सानन्दनन्दिहृतपुष्करनिर्भराणि
हेरम्बकण्ठहसितानि चिर जयन्ति ।
कुर्वन्ति यानि घनशङ्किकुमारबर्हि-
नृत्यैर्विचित्ररुचिभाञ्जि दिगन्तराणि ॥ १ ॥
तत प्रियतमाकेलिविलासरसतत्पर ।
शनैर्बभूव वत्सेश प्रजाकार्ये पराङ्मुख ॥ २ ॥
रमण्वानमथाहूय निशि यौगन्धरायण ।
अचिन्तयत्प्रभुहित मन्त्रिमूला हि सपद ॥ ३ ॥
सोऽब्रवीदेष नृपतिर्हृतो मकरकेतुना ।
न पश्यति निजा लक्ष्मीं निपातभयदुःखिताम् ॥ ४ ॥
मन्दमन्थरसचारा विलासालसदर्शिन ।
सत्य स्मरेण बध्यन्ते राजान कुञ्जरा इव ॥ ५ ॥
वीतंय कुहृतेनेव व्यसनेनेव बुद्धय ।
सहसैव विनश्यन्ति दुर्नयेन नृपश्रिय ॥ ६ ॥

१ 'श्लेष' ख. २ 'र' ख. ३ 'मघ' ग. ४ 'दृष्टो' ख. ५. 'मद' ख

महासेनाभिधो राजा पुरा शत्रुवशं गतः ।[1]
शोकाग्निना दह्यमानो गुल्मव्याधिमवाप्तवान् ॥ ७ ॥
मूलपूर्वं गतच्छायं दृष्ट्वा परहिताभिधः ।
वैद्यः कूटमिथ्याजालसंदेहाकुलितोऽभवत् ॥ ८ ॥
स प्राह्याभ्येत्य नृपतिं वल्लभा तव पञ्चताम् ।
यातेति तत्समाकर्ण्य भूपालो न्यपतद्भुवि ॥ ९ ॥
तस्य वेगान्निपतनः स्फुटिते गुल्मबन्धने ।
शरीरमाययौ स्वास्थ्यमिति सन्त्येव युक्तयः ॥ १० ॥

इति परहिताख्यायिका ॥ १ ॥

युक्त्यैव नाशयिष्यामि नृपतेर्व्यसनामयम् ।
मन्त्रिभिः परिरक्ष्यन्ते सोन्मदा हि नरेश्वराः ॥ ११ ॥
मगधाधिपतेः पुत्रीं यदि पद्मावतीं नृपः ।
प्राप्नोत्यस्मत्प्रयत्नेन तदेषा नः सहायता ॥ १२ ॥
श्रुत्वेति मन्त्रिवचनं सेनापतिरभाषत ।
चक्रवर्तिवधूः सा हि भाविनीति श्रुतं मया ॥ १३ ॥
न हि वासवदत्तायां सक्तायास्मै महीभुजे ।
ददाति मगधाधीशो याचितोऽपि प्रियां सुताम् ॥ १४ ॥
इत्याकर्ण्याब्रवीन्मन्त्री दग्धा देवीति कृत्रिमम् ।
कृत्वा प्रयोगं सावश्यं लभ्यते मगधात्मजा ॥ १५ ॥
श्रुत्वेति सेनाधिपतिः प्राह साहसशङ्कितः ।
कथं नु सहते राजा दग्धा देवीति दुर्वचः ॥ १६ ॥
वियोज्यते नृपो देव्या यदेतच्छलङ्घनम् ।
संशयाय वियोगो हि यूनोर्बद्धानुरागयोः ॥ १७ ॥
विशाम्बिन्तेन वणिजा मथुरावासिना पुरा ।
वहिलकाभ्यः सचिवौ निरस्तौ रत्नविक्रये ॥ १८ ॥

---

१. 'दं पुमर्थं' ख. २. 'कुन्द' ख. ३. 'क्रिया' ख. ४. 'वासवमा' ख.

तेनादिष्टः स निपुणे युवजानिर्धनार्जने ।
ययौ प्रिया समामन्त्र्य संस्तम्य विरहव्यथाम् ॥ १९ ॥
सापि तस्मिन्गते द्वारकपाटालम्बिनी चिरम् ।
तद्वर्त्म वीक्ष्य शनकैर्बभूव गजजीविता ॥ २० ॥
निवर्तितोऽथ तद्भर्ता दृष्ट्वा तां च तथागताम् ।
[1]शोचन्व्यसुरभूदेवं दुःसहो विरहानलः ॥ २१ ॥

इति वहिल्लकाख्यायिका ॥ २ ॥

सत्यमस्त्[2]युदयायैव किन्तु मह्यं न रोचते ।
अन्यद्विधत्ते पुरुषः करोति विधिरन्यथा ॥ २२ ॥
देवसेनाभिधो राजा योऽवन्त्यामभवत्पुरा ।
स कदाचित्समासीनो विज्ञप्तो वणिजा[3]भवत् ॥ २३ ॥
देवास्ति यौवनवती तनया मम रूपिणी ।
उन्मादिनीति सत्याख्या सुधेव स्मरजीविनी ॥ २४ ॥
तव योग्येत्यनावेद्य न दत्तासौ मया क्वचित् ।
श्रुत्वेति तद्वचो राजा द्रष्टुं तां प्राहिणोद्द्विजान् ॥ २५ ॥
विलोक्योन्मादिनीं विप्राः स्मरोन्मादवशीकृताम् ।
अनया संगतो राजा ध्रुवं रागाद्विनश्यति ॥ २६ ॥
संचिन्त्येति नृपं प्राहुः कन्या दुर्ल[4]लितेति च ।
तद्वाक्याद्विमुखे राज्ञि सेनापतिरवाप ताम् ॥ २७ ॥
याति काले स भूपालो हर्म्यस्थां कुञ्जरे स्थितः ।
ददर्श कान्तितटिनीं तामेवोत्पललोचनाम् ॥ २८ ॥
निरीक्ष्य लोचनसुधां चित्तकैरवकौमुदीम् ।
स संततोऽभवत्तस्य विपरीतगतिः स्मरः ॥ २९ ॥
दशमीमन्ययावस्थामीयुषि क्ष्मापतौ दिनैः ।
सेनानीर्भीतवृत्तान्तमभ्युवाच ततो रहः ॥ ३० ॥

---

१. [illegible] ग. २. 'स्युदयायैवम्' ग. ३. 'भवात्' ग. ४. 'क्षयेति' ग.

मम देव धनं दाराः प्राणाश्च किमतः परम् ।
सर्वमेव तवायत्तं गृहाणोन्मादिनीं प्रभो ॥ ३१ ॥
नृपः श्रुत्वेति तद्वाक्यं न जग्राह परस्त्रियम् ।
लोकस्थितौ हि राजानः प्रमाणं धर्मसेतवः ॥ ३२ ॥
सुरालये विधास्यामि नर्तकीं तामतो भज ।
इति सेनापतिवचः श्रुत्वा कोपाकुलोऽभवत् ॥ ३३ ॥
भार्यामदोषां संत्यक्तुं नार्हसीत्यरुणेक्षणाम् ।
इति निर्भर्त्स्य तं भूभृन्नूनं अविचलाशयः ॥ ३४ ॥
स विसृष्टश्रमं याते ततः संतापमूर्च्छितः ।
त्याजितो जीवितं राजा मन्मथेन प्रमाथिना ॥ ३५ ॥

इति देवसेनाख्यायिका ॥ ३ ॥

पुरीं विवेश भिक्षार्थं कस्यचिद्वणिजो गृहम् ।
परिव्राड् प्रयतो मौनी किंचिन्मीलितलोचनः ॥ ३६ ॥
भिक्षादानोद्यतकरां स ददर्श वणिक्सुताम् ।
कल्पितामिव कामेन मनःसारङ्गवागुराम् ॥ ३७ ॥
तां दृष्ट्वा मन्मथाविष्टस्त्यक्त्वा मौनमनन्यधीः ।
हा कष्टं कष्टमित्याह तच्छ्रुत्वा निर्ययौ वणिक् ॥ ३८ ॥
सोऽब्रवीत्कौतुकाविष्टो भगवन्सहसैव किम् ।
परित्यक्तं त्वया मौनमिति पृष्टोऽभ्यधाच्च सः ॥ ३९ ॥
दुर्भगा तव कन्येयं शरीरधनहारिणी ।
त्यजैनां निशि गङ्गायां मञ्जूषे सुपिधानके ॥ ४० ॥
मूर्ध्नि प्रदीपं विन्यस्य ततस्त्वं मोक्ष्यसे भयात् ।
इत्युक्त्वा स्वाश्रमं प्रायात्परिव्राट् तदनन्तरम् ॥ ४१ ॥
दीपाङ्कितेऽथ मञ्जूषे तां त्यक्तां वणिजा भयात् ।
गङ्गाकूलम्बिनः कोऽपि प्राप राजकुमारकः ॥ ४२ ॥

---

१. 'ग.' ख. २. 'म निगृह्य च भूपालः स्वस्थता' ख. ३. 'री' ख. ४. 'मूर्ध्नि' . ५. 'त्यक्तां' ख.

तां प्राप्य राजतनयो धीमान्सततकोपनम् ।
मञ्जूषा वानरं धृत्वा ययौ वेश्म तया सह ॥ ४३ ॥
अत्रान्तरे निजाञ्शिष्यान्परिव्राडब्रवील्लघुः ।
गङ्गामन्विष्य मञ्जूषा तूर्णमानीयतामिति ॥ ४४ ॥
तैराहृतां समादाय स कन्यारतिलम्पटः ।
तान्प्राहोत्कण्ठतो वाञ्छन्पातुं निर्मक्षिकं मधु ॥ ४५ ॥
युष्माभिर्न प्रवेष्टव्यं श्रुत्वापि वचनानि मे ।
इत्युक्त्वार्गलितद्वारां विवेशैको निजां कुटीम् ॥ ४६ ॥
उद्धाटितेऽथ मञ्जूषे क्रुद्धो निर्गतवानरः ।
कर्णनासाविरहितं तं चकार स्मरातुरम् ॥ ४७ ॥
कपिचीत्कारमिश्रेण तस्य हाहारवेण ते ।
नाश्रमं विविशुः शिष्यास्तदाज्ञाभङ्गभीरवः ॥ ४८ ॥
ततस्तच्चरितं ज्ञात्वा जहास सुचिरं जनः ।
इति दैवगतिश्चित्रा पुरुषैस्स न लक्ष्यते ॥ ४९ ॥

इति परिव्राडाख्यायिका ॥ ४ ॥

सेनापतेरिति श्रुत्वा प्राह यौगन्धरायणः ।
किमेतच्छङ्कसे मिथ्या वत्सेशः श्रियमेष्यति ॥ ५० ॥
न हि दाशरथी रामो जानकीविरहातुरः ।
संयातः पञ्चतां वीरो दशकण्ठकुलान्तकः ॥ ५१ ॥
अमात्ययुक्तिभिर्भूपाः प्राप्नुवन्त्येव संपदः ।
सन्मन्त्रिणो हि भूपानां श्रीरक्षापरिखाचलाः ॥ ५२ ॥
पुण्यसेनाभिधो राजा निरुद्धो विषये पुरा ।
शत्रुभिर्मन्त्रिणां बुद्ध्या गूढमिथ्यामृतः कृतः ॥ ५३ ॥

---

१. 'स्वमत्र' ख. २. 'निर्गत वानरः' ख. ३. 'पेय' ख. ४. 'विरहातुर' ५. 'हि' ख.

तं विनाय यशःशेषं हृष्टास्तस्य तयोऽरयः ।
विसृष्टसेना निःशङ्कास्तदामात्यैर्धिया हताः ॥ ५४ ॥

इति पुष्यसेनाख्यायिका ॥ ५ ॥

मन्त्रयित्वेति विश्रब्धं बहु यौगन्धरायणः ।
गोपालमानिनायाशु स्वपुरीं नृपसेवने ॥ ५५ ॥
कृत्वा विदितवृत्तान्तं तं नरेन्द्रहिते रतम् ।
कूटं वासवदत्ताया दाहे निश्चयमाप्तवान् ॥ ५६ ॥
स लावानकयात्रायां चक्रे भूपतिमुत्सुकम् ।
देवी च को हि जानीते चरितं प्रौढमन्त्रिणाम् ॥ ५७ ॥
अत्रान्तरे नरपतौ सर्वास्थानसमाश्रिते ।
विवेश नारदः श्रीमान्दीप्तः पिङ्गरिताम्बरः ॥ ५८ ॥
प्रणम्य पूजितो राज्ञा सह वासवदत्तया ।
देवर्षिरभ्यधाद्दिक्षु निरन्दशनचन्द्रिकाम् ॥ ५९ ॥
त्वां च वासवदत्तां च दृष्ट्वा राजीवलोचनाम् ।
स्मरामि पाण्डुपुत्रस्य कृष्णामाप्य मृगीदृशः ॥ ६० ॥
वृत्तान्तं कथितं तस्य मया सुन्दोपसुन्दयोः ।
रक्षता भ्रातृजं भेदं द्रौपदीवरणे पुरा ॥ ६१ ॥
सुन्दोपसुन्दावसुरावभूतां बलिनौ पुरा ।
निदाघीकृतहेमन्तौ दिवापि कृतचन्द्रिकौ ॥ ६२ ॥
तत्पराक्रमवित्रस्तदेवैरभ्यर्थितस्ततः ।
वेधा विनिर्ममे कान्तां सुरनारीं तिलोत्तमाम् ॥ ६३ ॥
सा विलासरसावासरासविभ्रमशालिनी ।
मत्तालिकोकिले काले विजहार तयोः पुरः ॥ ६४ ॥
तां दृष्ट्वा पृथुलश्रोणीं वायुनोचालितांशुकाम् ।
ममैवेयं ममैवेयमिति तौ भेदमापतुः ॥ ६५ ॥

---

१. 'प' ख. २. 'विलासैर्निर्मिता तेन सा च विभ्रमशालिनी' ख.

ततस्तौ समरोत्तालौ करालभुजशालिनौ ।
कृतान्तातिथितां याताविति भेदोपपत्तये ॥ ६६ ॥

इति सुन्दोपसुन्दाख्यायिका ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा नारदो देवीं विलोक्य प्रणतां पुरः ।
विद्याधरेन्द्रजननीं भाविनीत्याह दिव्यधीः ॥ ६७ ॥
तिरोहिते ततस्तस्मिन्राजा लावानकं ययौ ।
सेनापिहितदिक्चक्रः सह वासवदत्तया ॥ ६८ ॥
आगतं वत्सनृपतिं ज्ञात्वा दूतेन मागधः ।
शङ्कया संभृतस्त्रासौ मन्त्रिवर्गवलोचमैः ॥ ६९ ॥
वत्सराजोऽपि दयितासंभोगामृतनिर्भरः ।
लावानकपुरोद्याने विजहार स्मरोपमः ॥ ७० ॥
अथ तस्मिन्मृगयायां क्रीडायै विपिनं गते ।
यौगन्धरायणोऽभ्येत्य सार्धं गोपालकादिभिः ॥ ७१ ॥
कृत्वा ज्ञातकथां देवीं प्राणैः पत्युर्हितैषिणीम् ।

सा च पद्मावतीं दृष्ट्वा तां च पद्मावती मुहुः ।
परस्परमहो रूपमित्यासक्तमवोचताम् ॥ ७८ ॥
अवन्तिकाभिधानां तां छन्नां वीक्ष्य द्विजन्मनाम् ।
मागधी देवतां मेने रूपलावण्यराशिभिः ॥ ७९ ॥
उवाच छन्नयोगेन दमयन्ती नलप्रिया ।
कृष्णा च पाण्डववधूस्तद्विधेयं भविष्यति ॥ ८० ॥
ध्यात्वेत्युपचचारैतां प्रणता देवतामिव ।
ततः पद्मावतीमाता तां दृष्ट्वा विस्मितावदत् ॥ ८१ ॥
कुन्ती भोजस्य तनया पुरा दुर्वाससं मुनिम् ।
आराध्य पितुरादेशादवाप प्रवरं वरम् ॥ ८२ ॥
तस्मादवन्तिकापुत्री दिव्योचितमनः सती ।
यत्नादाराधनीयेयं सत्सेवा हि महाफला ॥ ८३ ॥
इति मातुर्नियोगेन तां सिषेवे नृपात्मजा ।
मन्दीकृत्य शुचं किंचित्सहायमिव चेष्टितैः ॥ ८४ ॥
विरहानलसंतापमूर्च्छितापि मुहुर्मुहुः ।
संकल्पोल्लिखितैमयोदर्शनेन धृतिं ययौ ॥ ८५ ॥
अत्रान्तरे मृगक्रीडानिवृत्तो वत्सभूपतिः ।
देवीं लावानके दग्धामश्रौषीत्सवसन्तकाम् ॥ ८६ ॥
श्रुत्वैव स पपाताशु विस्फुरत्कटको भुवि ।
हारांशुनिर्भरस्मेरो वज्रहत इवाचलः ॥ ८७ ॥
तुषारचन्दनजलैर्विबुद्धो विलपन्प्रियाम् ।
तत्सपत्नीति भीत्येव मुमोचालिङ्गितां महीम् ॥ ८८ ॥
स समाश्वास्यमानोऽपि यौगन्धरायणादिभिः ।
औत्सुक्यात्प्राप धृतिं राजा नयहीन इव श्रियम् ॥ ८९ ॥

---

१. 'वीरभिः' ग. २. 'तनु.' ग. ३. 'र' ग. ४. 'तत्र' ग. ५. 'प्रायात्' ग.
६. 'मता' ग. ७. 'नाग' ग.

ततस्तौ समरोत्तालौ करालभुजशालिनौ।
कृतान्तातिथितां यातावितिति भेदोपपत्तये॥ ६६॥

इति सुन्दोपसुन्दाख्यायिका॥ ६॥

इत्युक्त्वा नारदो देवीं विलोक्य प्रणतां पुरः।
विद्याधरेन्द्रजननीं भाविनीत्याह दिव्यधीः॥ ६७॥
तिरोहिते ततस्तस्मिन्राजा लावानकं ययौ।
सेनापिहितदिक्चक्रः सह वासवदत्तया॥ ६८॥
आगतं वत्सनृपतिं ज्ञात्वा दूतेन मागधः।
शङ्कया सभृतस्तस्थौ मन्त्रिवर्गबलोद्यमैः॥ ६९॥
वत्सराजोऽपि दयितासंभोगामृतनिर्भरः।
लावानकपुरोद्याने विजहार स्मरोपमः॥ ७०॥
अथ तस्मिन्मृगयायाः क्रीडायै विपिनं गते।
यौगन्धरायणोऽभ्येत्य सार्धं गोपालकादिभिः॥ ७१॥
धृत्वा ज्ञातकथां देवीं प्राणैः पत्युर्हितैषिणीम्।
गूढं वसन्तकोपेतां निनाय मगधान्क्षणात्॥ ७२॥
तस्य योगेन तरुणी साभवद्ब्राह्मणी तदा।
वसन्तकः काणवटुः स्वयं वृद्धद्विजश्च सः॥ ७३॥
तेषु यातेषु मगधान्गोपालोऽपि रमण्वता।
सह लावानकं दग्ध्वा गूढमन्त्रधरोऽभवत्॥ ७४॥
मन्त्री वृद्धद्विजाकारः प्रविश्य मगधापतेः।
कन्यकान्तःपुरं प्राह प्रौढां पद्मावतीं शनैः॥ ७५॥
राजपुत्रि सुतेयं मे रूपिणी तनयोऽप्ययम्।
अन्वेष्टुमस्या गच्छामि चिरविप्रोषितं पतिम्॥ ७६॥
निक्षिप्तेयं त्वयि मया सुतश्चायं प्रियंवदः।
इत्युक्त्वा प्रययौ मन्त्री तथेत्यभिहितस्तया॥ ७७॥

१ 'आगम' ख. २ 'प्राप' ख.

सा च पद्मावतीं दृष्ट्वा तां च पद्मावती मुहुः ।
परस्परमहो रूपमित्यासक्तमवोचताम् ॥ ७८ ॥
अवन्तिकाभिधानां तां छन्नां वीक्ष्य द्विजन्मजाम् ।
मागधी देवतां मेने रूपलावण्यराशिभिः ॥ ७९ ॥
उवाच छन्नयोगेन दमयन्ती नलप्रिया ।
कृष्णा च पाण्डववधूस्तद्विधेयं भविष्यति ॥ ८० ॥
ध्यात्वेत्युपचचारैतां प्रणता देवतामिव ।
ततः पद्मावतीमाता तां दृष्ट्वा विस्मितावदत् ॥ ८१ ॥
कुन्ती भोजस्य तनया पुरा दुर्वाससं मुनिम् ।
आराध्य पितुरादेशादवाप प्रवरं वरम् ॥ ८२ ॥
तस्मादवन्तिकापुत्री दिव्योचितमनः सती ।
यत्नादाराधनीयेयं सत्सेवा हि महाफला ॥ ८३ ॥
इति मातुर्नियोगेन तां सिषेवे नृपात्मजा ।
मन्दीकृत्य शुचं किंचित्सहायमिव चेष्टितैः ॥ ८४ ॥
विरहानलसंतापमूर्च्छितापि मुहुर्मुहुः ।
संकल्पोल्लिखितैर्भर्तुर्दर्शनेन धृतिं ययौ ॥ ८५ ॥
अत्रान्तरे मृगक्रीडानिवृत्तो वत्सभूपतिः ।
देवीं लावानके दग्धामश्रौषीत्सवसन्तकाम् ॥ ८६ ॥
श्रुत्वैव स पपाताशु विस्फुरत्कटको भुवि ।
हारांशुनिर्भरस्रोतो वज्राहत इवाचलः ॥ ८७ ॥
तुषारचन्दनजलैर्विबुद्धो विलपन्प्रियाम् ।
तत्स्पर्शेति भीत्येव मुमोचालिङ्गितां महीम् ॥ ८८ ॥
स समाश्वास्यमानोऽपि यौगन्धरायणादिभिः ।
आससाद धृतिं राज्ञा नयहीन इव श्रियम् ॥ ८९ ॥

१. 'धीरमं:' ख. २. 'तद्.' ख. ३. '२' ख. ४. 'ता' ख. ५. 'आनाद्' ख. ६. 'गता' ख. ७. 'नाथ' ख.

विद्याधरेन्द्रजननीभाविनीति मुनेर्वचः ।
स्मृत्वार्थारोऽभवत्किंचिदाशालम्बितजीवनः ॥ ९० ॥
गोपालमग्रिणौ दृष्ट्वा मन्दशोकौ मुखत्विषा ।
इङ्गितज्ञः शुचं त्यक्त्वा विचारपदमाययौ ॥ ९१ ॥
किंचित्प्रतनुशोकेऽथ विरहार्तमहीपतौ ।
देवी दग्धेति संलापे दिक्चक्रे परिसर्पति ॥ ९२ ॥
प्रद्योतो मगधाधीशो दूतेनाभ्यर्थ्य भूभुजे ।
दातुं पद्मावतीमैच्छत्पार्वतीमिव शूलिने ॥ ९३ ॥
प्रियं प्राप्स्यति तां प्राप्य शुद्धेति सचिवाग्रणीः ।
अमन्यत निजोद्वाहं विरहानलदुःसहः ॥ ९४ ॥
ततस्तुरगसैन्येन मागधीं प्राप्य भूपतिः ।
विवाहवसुधां भेजे राजपुत्र्या सहोचिताम् ॥ ९५ ॥
वह्निप्रदक्षिणे तत्र प्राह यौगन्धरायणः ।
प्रदत्तां देहि मे वाचं पूर्वदिग्विजये प्रभो ॥ ९६ ॥
इति मन्त्रिगिरा तेन वत्सराजजयं प्रति ।
निबद्धवचने स्वैरं विवाहश्रीरवर्तत ॥ ९७ ॥
अवन्तिकाविरचितां तिलकं मालिकां तथा ।
अम्लानां वीक्ष्य भूपालो वर्णयित्वा धृतिं ययौ ॥ ९८ ॥
कथं जीवति मे देवी मान्या वेत्ति तथा विना ।
मालिका तिलकं चेदमिति ध्यात्वा जहर्ष सः ॥ ९९ ॥
पद्मामिव समासाद्य ततः स पुरुषोत्तमः ।
पद्मावतीं ययौ ध्यायन्देवीमेव निजां पुरीम् ॥ १०० ॥
प्रविश्यान्तःपुरं तत्र नववध्वापि संगतः ।
न ननन्द स्मरन्कान्तां कामकेलिकुमुद्वतीम् ॥ १०१ ॥
ततः मगधवादिन्यः पद्मावत्या वशान्विताः ।
अवन्तिकांशुकच्छन्नरथेनानु समाययौ ॥ १०२ ॥

१. 'दी' ख. २. 'मितः' ख. ३. 'दग्धे' ख. ४. 'म्लानां वीक्ष्य ध' ख.

गोपालान्तःपुरं प्राप्तां ततस्तां वत्सभूपतिः ।
वल्लभां स्वां परिज्ञाय मुमोह विरहाकुलः ॥ १०३ ॥
राजानं विह्वलं दृष्ट्वा देवीं चोज्जृम्भितां शुचा ।
पापोऽसि कारणमिति प्राह यौगन्धरायणः ॥ १०४ ॥
अथाश्रुकणसंदिग्धतारहारस्तनस्थली ।
उवाच देवी निःश्वासग्लपिताधरपल्लवा ॥ १०५ ॥
आर्यपुत्रहितायैषा तीर्णा गूढस्थितिर्मया ।
स्वस्त्यस्त्विदानीं वक्ष्यामि वह्नौ दुःखालयां तनुम् ॥ १०६ ॥
श्रुत्वेति वचनं देव्याः सह गोपालकादिभिः ।
पद्मावती च राजा च मन्त्री च रुरुदुः पृथक् ॥ १०७ ॥
धन्योऽसि वत्सनृपते महेश्वर इवापरः ।
यस्य वासवदत्तेयं सती हृदयवल्लभा ॥ १०८ ॥
इत्याकाशभवा वाणी सतीभावविशुद्धये ।
उच्चचार नृपस्तां च श्रुत्वाभूत्स मदाकुलः ॥ १०९ ॥
ततः प्रहृष्टाः पीयूषसिक्ता इव परस्परम् ।
प्रशंसन्तो मुमुदिरे ते वर्धितमहोत्सवाः ॥ ११० ॥
देवीविलोचनच्छायानीलोत्पलदलं मधु ।
पद्मावतीस्मितस्मेरकुसुमाङ्कं पपौ नृपः ॥ १११ ॥

इति पद्मावतीविवाहः ॥ ७ ॥

देव्योर्मध्ये स भूपालो रतिप्रीत्योरिव स्मरः ।
विराजमानः प्रोवाच महामात्यं कथान्तरे ॥ ११२ ॥
त्वत्प्रसादभवोऽयं मे हर्षः प्रीणाति मानसम् ।
वियोगदुःखप्रशमे प्रसीदन्ति सुखश्रियः ॥ ११३ ॥
पुरा पुरूरवा नाम राजा राज्ययशःशशी ।
बभूव भूमिकन्दर्पः शत्रुनाशनशासनः ॥ ११४ ॥

---

१. 'अन्य' ख. २. 'घनस्तनी' ख. ३. 'त्स' ख. ४. 'मधुप्रिय.' ख. ५. 'मुख' ख.

सुरवारवधूरासीदुर्वशी तस्य वल्लभा।
जातः शोकादिवापाण्डुर्यन्मुखाब्जजितः शशी ॥ ११५ ॥
स कदाचित्सुरपुरीमारूढो दैत्यसंयुगे।
सहायः सुरराजस्य ददर्श विजयोत्सवम् ॥ ११६ ॥
तत्र प्रवृत्ते शक्रस्य पुरा नृत्ते सुराङ्गनाम्।
जहासाभिनयच्छेदे वैदग्ध्यादुर्वशीप्रियः ॥ ११७ ॥
हासेन कुपितस्तस्य प्राह क्रुद्धः शतक्रतुः।
वियोगस्ते सहोर्वश्या भूयादिति शशाप तम्।
प्रार्थितो नरराजेन स तच्छापान्तमभ्यधात् ॥ ११८ ॥
पर्यटन्पृथिवीमेष उर्वशीविरहातुरः।
बदर्याश्रममासार्थं भगवद्दर्शनादिति ॥ ११९ ॥
ततो वियोगमासाद्य स्मरपावकतापितौ।
उर्वशी च नरेन्द्रश्च तस्थतुर्निधनाशया ॥ १२० ॥
तस्याहारलतापाशवत्त्वाद्योगोऽभवत्पुनः।
मोहो निःसहता कम्पश्चेति जीवितहेतवः ॥ १२१ ॥
याति काले स भूपालो मदनोन्मत्तमानसः।
बदर्याश्रममासाद्य दुःसहं शापमत्यजत् ॥ १२२ ॥
उर्वश्या संगतो राजा विजहार ततः सुखी।
इति दुःखानलस्यान्ते भवन्ति सुखसंपदः ॥ १२३ ॥
इत्युर्वश्याख्यायिका ॥ ८ ॥

अवन्तिराजतनया श्रुत्वेति नृपतेर्वचः।
विरहे निधनं नास्ति यातेत्यासीद्विलज्जिता ॥ १२४ ॥
वैलक्ष्याविनतां देवीं दृष्ट्वा यौगन्धरायणः।
धीमानुवाच राजानं युक्तिज्ञः श्रूयतामिति ॥ १२५ ॥

१. 'नाट्याचार्यो हि तुम्बरुः' ख. २. 'शु' ख. ३. 'गा' ख. ४. ख-पुस्तकेऽग्रेऽत्र 'शापस्यान्तमवाप्स्यसि । इत्युक्तो दुःखितः प्रायाद्राजधानीं निजां ततः ॥ विमुक्तः स तया दुःखी बभ्राम विवशो महीम् ॥' इत्यधिकमस्ति.

राजा विहितसेनाख्यः कपिलायामभूत्पुरा ।
तस्य तेजोवती नाम बभूवाभिनवा वधूः ॥ १२६ ॥
स कदाचिज्ज्वराक्रान्तो वारितोऽपि भिषग्वरैः ।
न मुमोच प्रियां पार्श्वाच्चन्मुखन्यस्तलोचनः ॥ १२७ ॥
ततः संमन्त्र्य दुःखार्ता भिषग्भिः सह मन्त्रिणः ।
चक्रुर्मिथ्या मृतां देवीं गूढमारोग्यकाङ्क्षिणः ॥ १२८ ॥
तया विरहितो राजा दुःखितः स्वास्थ्यमाययौ ।
मुक्तामयश्च तां प्राप स्मितमुक्तामयच्छविः ॥ १२९ ॥
सहन्ते दुःखमित्येवं साध्व्यो भर्तृहिते रताः ।
पत्युरभ्युदयं कृत्वा जीविताल्म्बनं हृदि ॥ १३० ॥

इति विहितसेनाख्यायिका ॥ ९ ॥

श्रुत्वेति मन्त्रिवचनं राजा स्वज्ञानतोऽभवत् ।
आयासितं मनो देव्या किं मयेति विमर्शधीः ॥ १३१ ॥
अहो सततदुःखाय कर्कशाय त्रिवृत्तयः ।
निर्वेदमाययौ ध्यायन्निति यौगन्धरायणः ॥ १३२ ॥
रतिमानय वत्सेशो मनोभव इवापरः ।
ननन्द यौवनोद्याने देव्योर्मध्ये महोत्सवे ॥ १३३ ॥
वत्सराजमणयिनीं कृत्वा दूतेन मागधः ।
सुतां प्रेमपदं पत्युः सपत्न्याश्च धृतिं ययौ ॥ १३४ ॥
संत्यक्तवटुवेषोऽथ हासयन्पूर्वचेष्टितैः ।
कथां वसन्तकः पृष्टः प्राह देवीं विनोदिनीम् ॥ १३५ ॥
अभयद्धर्मगुप्ताख्यो वणिक्पाटलिपुत्रके ।
तस्य सोमप्रभा नाम तनयाभूत्सितस्मिता ॥ १३६ ॥
उवाच जातमात्रैव सा स्फुटार्थपदान्वयम् ।
दातव्यास्मि न कस्मैचिदिति विचोदितवत्सरा ॥ १३७ ॥

---

१. 'सगुचिम्नि' ग.

गूढं पित्रा विनिहिता नास्ति पुत्रीति वादिना।
सा प्राप्य यौवनं काले वसन्तमिव माधवी ॥ १३८ ॥
तां शक्रोत्सवयात्रायां दैवाद्वातायनस्थिताम्।
गुहसेनसुतोऽपश्यद्गुहचन्द्राभिधो वणिक् ॥ १३९ ॥
विलोक्य मन्मथशरासारजर्जरितस्मृतीः।
सोऽभवद्दीर्घनिःश्वासस्तत्पक्षपवनैरिव ॥ १४० ॥
गुहसेनः सुतं दृष्ट्वा स्मरोन्मादवशीकृतम्।
ययाचे ज्ञातवृत्तान्तो धर्मगुप्तसुतां स्वयम् ॥ १४१ ॥
न ददौ नास्ति पुत्रीति यदा तां जनकोऽभ्यधात्।
तदा तदर्थसाहाय्ये चक्रे रत्नप्रदो नृपम् ॥ १४२ ॥
ततो राजबलाक्रान्तो धर्मगुप्तः सुतां ददौ।
स्पर्शे न दूषणीयेयमित्याभाष्य भयाकुलः ॥ १४३ ॥
वणिक्पुत्रः कृतोद्वाहः श्वश्र्व्यायां वचसा पितुः।
तां प्राप्य मुदितोऽपश्यद्भीमभ्रुकुटिविभ्रमान् ॥ १४४ ॥
क्रोधोच्चालाङ्गुलिभ्रान्त्या तया क्षिप्रं निपातितः।
जनको गुहचन्द्रस्य भस्मीकृत इवाग्निना ॥ १४५ ॥
ततस्तां सानुगो गेहे प्रौढामग्निशिखामिव।
नालुलोके न पस्पर्श नानुमेने च सोऽनिशम् ॥ १४६ ॥
शत्रुसेनामिव ध्यायन्वर्जयन्पन्नगीमिव।
तां वणिक्तनयस्तस्थौ गेहे दुःखानलाकुलः ॥ १४७ ॥
ततः कदाचिदासाद्य मित्रैरभ्यागतं द्विजम्।
अतोषयद्व्रतपरः सहोत्रा हव्यवाहनम् ॥ १४८ ॥
अग्निजो दिव्यपुरुषो द्विजवेषधरो गृहे।
क्षपामुवास भुक्त्वैकां तस्य वाञ्छितसिद्धये ॥ १४९ ॥

१. 'पुंग' ख. २. 'भिया' ख. ३. 'स्वजायां' ख. ४. 'स्प्रष्टुं' ख. ५. 'मन्त्रप्रदानमाद्रिमात्' ख. ६. 'च हेतोर्दं' ख. ७. 'सु' ख.

विधाय भ्रमराकारं तमात्मानं च स द्विजः ।
देवतासंगतां रात्रौ तस्य जायामदर्शयत् ॥ १५० ॥
ततो विप्रवितीर्णेन मन्त्रेणास्याभवत्प्रिया ।
सा निषिद्धापि ललना स्वयं कण्ठावलम्बिनी ॥ १५१ ॥
इत्येवं संगतो देव्या स ननन्द तया वणिक् ।
देवताभिर्भवन्त्येव धन्यानामिति संगमाः ॥ १५२ ॥

इति सोमप्रभाख्यायिका ॥ १० ॥

अवन्तिराजतनयो देवताभ्यां ध्रुवं व्रते ।
त्वया संपद्मावत्या च धन्यो वत्सनरेश्वरः ॥ १५३ ॥
सत्कृतैरेव सुकृतैरीदृशी प्राप्यते स्थितिः ।
आपदुःखभयक्लेशान्सहन्ते तु विपर्यये ॥ १५४ ॥
पुरा मार्जाररूपेण प्रियां शक्रेण धर्षिताम् ।
अहल्यां गौतमो ज्ञात्वा प्रोवाच ज्ञानलोचनः ॥ १५५ ॥
आश्रमे कः प्रविष्टोऽत्रे श्रुत्वेति प्राह तद्वधूः ।
मार्जार इत्यपभ्रंशगिरा तैत्परिरागिणी ॥ १५६ ॥
इत्युक्त्वा कुपितस्याशु तस्य शापेन वृत्रहा ।
अभूद्योनिसहस्राङ्गः शिला च मुनिकामिनी ॥ १५७ ॥
तिलोत्तमां सहस्राक्षो दृष्ट्वाहल्या च राघवम् ।
अवाप्स्यतः शापशान्तिमित्याह मुनिपुंगवः ॥ १५८ ॥
इत्यापदो भवन्त्येव महतामपि दुष्कृतैः ।
वसन्तकस्येति वचः श्रुत्वा देव्यौ ननन्दतुः ॥ १५९ ॥

इत्यहल्याख्यायिका ॥ ११ ॥

पद्मावतीमुखाम्भोजमधुपो नृपतिस्ततः ।
ललासावन्तितनयावदनेन्दुसुधाम्बुधिः ॥ १६० ॥
ईर्ष्याविरहसंतापतापितापि मुहुर्मुहुः ।
इदं मया कृतमिति भापावन्तिसुता धृतिम् ॥ १६१ ॥

---

१. 'पतीना' ख. २. 'मे' ख. ३. 'जम्भारिरा' ख. ४. 'ढः' ख. ५. 'हर्षं' ख. 'ह्रा' ख.

तनये प्रेयसः प्रेम प्रौढमालम्बनं रतः ।
आवन्त्यमागधौ ज्ञात्वा दूतैर्निर्वृतिमापतुः ॥ १६२ ॥
कदाचिदथ राजानं सर्वास्थानसमागतम् ।
व्यजिज्ञपद्द्विजोऽभ्येत्य प्रतीहारेण सूचितः ॥ १६३ ॥
एकपुत्रस्य पुत्रो मे देव गोपैर्मदोद्धतैः ।
अटव्यां निग्रहीतोऽयमश्रुताक्रन्दितो जनैः ॥ १६४ ॥
इति ब्राह्मणविज्ञप्त्या समाहूता वनेचराः ।
ऊचुर्दृष्टो वने देव गोपालो देवसैनिकः ॥ १६५ ॥
राजासीत्याहितक्रीडः सदास्माभिः प्रणम्यते ।
वयमाज्ञाधरस्तस्य स्वयं प्रभुपदस्थितः ॥ १६६ ॥
अयं यदृच्छयायातः प्रणनाम न तं द्विजः ।
ततोऽस्माभिस्तदादिष्टैर्निकृत्तचरणः कृतः ॥ १६७ ॥
इति वाक्यान्महीपाले किंचिदाकुञ्चितभ्रुवि ।
यौगन्धरायणः प्राह विमृश्य क्षणविस्मितः ॥ १६८ ॥
महता कारणेनात्र भवितव्यं नरेश्वर ।
स्वयं तत्रैव गच्छामो यत्र मेञ्जो नृपः स्थितः ॥ १६९ ॥
इत्यामन्त्र्य गिरा राजा तुरगं प्राह सैनिकः ।
गत्वाससाद विपुलामटवीं गोपदर्शिताम् ॥ १७० ॥
यौगन्धरायणस्तत्र भुवमाधाय यत्नवान् ।
ध्यानं विधाय शनकैर्महानिधिमदर्शयत् ॥ १७१ ॥
क्षयं नीलशिलाकारं पूजयित्वावनिस्थितम् ।
यौधिष्ठिरं घनचयं सिंहासनमवाप च ॥ १७२ ॥
पृथुरत्नासनं प्राप्य निधानं च नरेश्वरः ।
स्वयं प्रविश्य कौशाम्ब्यामादिदेश महोत्सवम् ॥ १७३ ॥

---

१. 'ऊनद्धः' ग. २. 'गोप' ग. ३. 'मारट' ख. ४. 'दर्शिनाम्' ख. ५. 'मा: मन्त्रवान्' ग. ६. 'ध्यानं विधाय शनकैः' ग. ७. 'तानि' ख.

युधिष्ठिरस्य साम्राज्यविजयावाप्तमासनम्।
विलोकयन्नरपतिः प्राह यौगन्धरायणम्॥ १७४॥
इदं दिग्विजयप्राप्तराजसूयस्य भूपतेः।
अनिर्जितदिगन्तेन लङ्घ्यते कथमासनम्॥ १७५॥
तौ प्रद्योतमहासेनौ त्वया बुद्ध्यैव वञ्चितौ।
वशीकृतौ यत्नवशात्तदद्यापि दुनोति माम्॥ १७६॥
वत्सराजवचः श्रुत्वा महामात्योऽवदत्पुनः।
यथार्थं देव निखिलं सत्यमेव न संशयः॥ १७७॥
देव पूर्वां दिशं पूर्वं जेतुमर्हसि संभृतः।
दिशमेतां समाक्रम्य सर्वाशामरणे रविः॥ १७८॥
हस्तिनापुरमासाद्य भव सर्वजयी नृप।
जिता हि ककुभः सर्वास्तत्रस्थैस्त्वत्पितामहैः॥ १७९॥
निशम्येति नृपः प्राह किं क्रमेण दिशां जये।
विजये सत्त्वसाराणामुत्साहे हि न कल्पते॥ १८०॥
श्रूयतां सत्त्वसारस्य कथेत्यामाप्य मन्त्रिणम्।
देवी गोपालसेनानीसुहृदामब्रवीत्पुरः॥ १८१॥
आदित्यसेन इत्यासीत्सार्वभौमनरेश्वरः।
विभाति भुवनोद्याने फुल्ला यत्कीर्तिमालिनी॥ १८२॥
नानादिगन्तभूपालमौलिलालितशासनः।
स्फुटस्फटिकसौधायामुज्जयिन्यामुवास सः॥ १८३॥
कुलीनस्तस्योपान्तनिलयोऽभ्येत्य तं स्वयम्।
कदाचिच्छिवधर्मास्यः समासीनं व्यजिज्ञपत्॥ १८४॥
कन्यारत्नं मम गृहे विद्यते नयनामृतम्।
पात्रं त्वं देव रत्नानां प्रमाणमधुना नृपः॥ १८५॥

१. 'दाय' ख. २. 'ल' ख. ३. 'ल' ख. ४. 'लते' ख. ५. 'खुले' ख. ६. 'द्रुणवर्मा' ख.

उक्त्वेत्यदर्शयत्कन्यां देहवद्धामिव श्रुतिम्।
विवाहेनार्थं तां भेजे राजा राजीवलोचनाम्॥ १८६॥
साथ तेजोवती नाम तमासाद्य नरेश्वरम्।
जहार कान्तिं रोहिण्यास्तारापतिसमागमे॥ १८७॥
तदाननसुधापानमदमन्थरमानसः।
न रात्रिं न दिवं मेने स संत्यक्तनृपक्रियः॥ १८८॥
आक्रन्दितेन पौराणां मन्त्रिणां वचने न च।
भेजे संमुखतां किंचित्प्रजानां प्रत्यवेक्षणे॥ १८९॥
ततः कदाचिदुद्योगयात्रायां तुरगोत्तमम्।
आरुरोह वशे गत्वा भ्रष्टं रविरथादिव॥ १९०॥
सहायः पार्ष्णिसंस्पर्शरोपाद्व्योमपतन्निव।
जवाज्जहार राजानमाप्रोप्य प्रसरत्खुरः॥ १९१॥
स हृतोऽश्वेन सहसा व्यसनेनेव विप्लुतः।
निशि विप्रमठोपान्तमवापोद्भ्रान्तमानसः॥ १९२॥
तत्र प्रतिश्रयाकाङ्क्षी स निषिद्धो मठद्विजैः।
रात्रौ सशानरक्षोऽयमिति वेदजडात्मभिः॥ १९३॥
तेषामेको महासत्त्वः शूरोऽभिजनभूषणः।
विदूपकाभिधो वह्निवरावाप्तासि दुःसहः॥ १९४॥
रत्नभ्राजिष्णुकटकं राजानं दीप्तकुण्डलम्।
तं सिषेवे निशि स्वैरं स्नानसंमानभोजनैः॥ १९५॥
तस्योपचारमाचारनिधिः सोऽमन्यतामृतम्।
अल्पाप्युपकृतिर्याति विस्तारं विषमस्थितौ॥ १९६॥
ततः प्रभाते भूपालः प्रणम्यारुह्य वाजिनम्।
जातिस्मरो राजधानीं ययौ वेगधुतांशुकः॥ १९७॥
तूर्णं प्रत्यागते राज्ञि कल्पिते नगरोत्सवे।
देवी तेजोवती कन्यामसूत कुलचन्द्रिकाम्॥ १९८॥

१. 'दिनाथ' ख. २. 'य' ख. ३. 'विरूपका' ख.

अथ सादरमाहूय नरनाथो विदूषकम् ।
प्रीत्या पुरोहितं चक्रे ददौ ग्रामांश्च तन्मठे ॥ १९९ ॥
प्राप्य ग्रामान्महीपालाद्दर्पान्धास्तेऽभवन्द्विजाः ।
नानामताः स्वयं चक्रुः स्वाम्यं खलु विशृङ्खलाः ॥ २०० ॥
अहं प्रभुरहं स्वामी ममैवेदं ममाखिलम् ।
इति तेषां समालापो बभूव ग्रामलुण्ठने ॥ २०१ ॥
उत्सादिते मठे तस्मिंस्तृष्णैस्तैर्बर्बरद्विजैः ।
एकश्चक्रधरो नाम धिग्युष्मानग्रकण्टकान् ॥ २०२ ॥
पदे पदेऽश्वनिश्वासकशानिक्षिप्तकुण्डिकाः ।
विदूषकप्रसादेन ता भिक्षा वोऽद्य विस्मृताः ॥ २०३ ॥
सह्याः कुम्भधृता विषोल्बणरुचः क्रुद्धा वरं पन्नगाः
कल्लोलाकुलकूलनीलसलिले ग्राहास्तथोग्रग्रहाः ।
न त्वेते मठपुष्टदुष्टवपुषः षण्डाः स्वयं स्वामिनः
कष्टं पेटकचेटकोत्कटनटीवाचाटगोष्ठीहठाः ॥ २०४ ॥
स्त्रीनायकं वरं स्थानमथ वा बालनायकम् ।
अनायकं वरं यावन्न चैव बहुनायकम् ॥ २०५ ॥
अद्यैव शूले निहताः श्मशाने पुरुषास्त्रयः ।
यस्तेषां नासिकां रात्रौ छित्त्वादाय समेष्यति ॥ २०६ ॥
अयुनेकः स नः स्वामी स्पर्धा हि मठनाशिनी ॥
इति क्रुद्धद्विजगिरा तत्र ते प्राहुरग्रजाः ॥ २०७ ॥
श्मशानगमनं ध्यात्वा ते प्रभीताः ससंभ्रमाः ।
विदूषको ययौ खड्गी कवची चोन्मुखो निशि ॥ २०८ ॥
सोऽपश्यद्राक्षसोद्दामभ्रमतिफेत्कारभीषणम् ।
उद्दण्डताण्डवोच्चण्डभूतमण्डलमण्डितम् ॥ २०९ ॥

---

१. 'लैखदद्या' ख. २. 'लोल' ख. ३. 'षण्ढा.' ख. ४. 'निष्ठुरचेटकोत्कटटी-वाटगोष्ठीभरा.' ख. ५. 'करवीरेभ्यु' ख. ६. 'मारी' ख.

कपालकुहरभ्रान्तिक्षिप्तहुंकारमारुतम्।
कङ्कालकलितोत्तालवेतालवलयाकुलम् ॥ २१० ॥
सृक्कारिमेदोविकटचितानलचयाचितम्।
निशीथमिव नाशस्थितारमङ्गारमेचकम् ॥ २११ ॥
विन्ध्याचलमिवालोलपलाशितरुसंश्रयम्।
बहुपुण्यजनव्याप्तं महापथमिवायतम् ॥ २१२ ॥
संग्राममिव निःसत्त्वजनजीवितखण्डनम्।
वेश्याचित्तमिवानेकनरसंहारदारुणम् ॥ २१३ ॥
दारिद्र्यमिव दुःखानां प्रत्यग्राणां निकेतनम्।
स्मशानं तत्र दृष्ट्वासौ न चकम्पेऽप्यनाकुलः ॥ २१४ ॥
तेषां शूलनिविष्टानां त्रासकारिविकारिणाम्।
आदाय नासिकां तूर्णं परिव्राजं ददर्श सः ॥ २१५ ॥
तं घोरमठकासीनं ध्यानस्तिमितलोचनम्।
पश्यन्स कौतुकस्थानं तच्छायायामलक्षितम् ॥ २१६ ॥
परिव्राट् सर्षपान्प्रेतनाभिमध्यसमुद्धृतान्।
आदाय प्रेतकारूढो ययौ शून्यसुरालयम् ॥ २१७ ॥
प्रणम्य चण्डिकां तत्र तदाज्ञां प्राप्य देहि मे।
आदित्यसेनतनयामुपहारमिति स्फुटम् ॥ २१८ ॥
छायेवानुगतस्तस्य सर्वं श्रुत्वा विदूषकः।
प्रदध्यौ स्वामितनयापरित्राणकृतेक्षणः ॥ २१९ ॥
साधकोऽपि क्षणेनेव तां कन्यां राजमन्दिरात्।
आनिनाय महामायः क्रन्दन्तीं प्रेतवाहनः ॥ २२० ॥
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा कृपाकोपकरम्बितः।
जहारास्य शिरश्छित्वा त्रस्तां भूपतिकन्यकाम् ॥ २२१ ॥
पितुः पुरोहितं दृष्ट्वा किंचिन्दुमीलितेक्षणा।
गाढं जग्राह तं कण्ठे साकम्पतरलाकृतिः ॥ २२२ ॥

१ 'दारुचितचिता' ख. २. 'दारसंकुलम्' ग.

आगन्तव्यं पुनरिति स शुश्रावाशरीरिणीम् ।
वाणीमभ्युद्यतो गन्तुं निशि व्याकोशलोचनः ॥ २२३ ॥
तान्सिद्धसर्षपान्प्राप्य राजपुत्रीं विहाय सा ।
नीत्वा विदूषकः क्षिप्रं चिक्षेपान्तःपुरान्तरे ॥ २२४ ॥
जनालोकनभीत्या तं गन्तुमभ्युद्यतं निशि ।
नृपात्मजा न तत्याज बिभेमि सुतरामिति ॥ २२५ ॥
तन्मन्दिरस्थिते तस्मिञ्श्रमनिद्रावशं गते ।
सौविदल्लाः प्रविविशुः प्रातः कञ्चुकिभिः सह ॥ २२६ ॥
ते शयानं तमालोक्य कोपादेत्य व्यजिज्ञपत् ।
आदित्यसेनः सोऽप्याशु तमाहूयाब्रवीत्क्रुधा ॥ २२७ ॥
किमेतदिति पृष्टोऽथ तद्वृत्तान्तं निवेद्य सः ।
अदर्शयन्नरपतेः साधकं कृतमस्तकम् ॥ २२८ ॥
राजा प्रत्ययमासाद्य हृष्टस्तस्मै ददौ सुताम् ।
श्रियं चोपकृतिप्रीत्या किमदेयं महात्मनाम् ॥ २२९ ॥
स तया संगतोऽनङ्गसाङ्गीकरणविद्यया ।
राजपुत्र्या नृपोद्याने रराम रतिलालसः ॥ २३० ॥
ततः कदाचित्कालेन स्मारितः प्रियया रहः ।
तामाकाशगिरं मोहान्मायात्सैन्यां विदूषकः ॥ २३१ ॥
भद्रां नाम ततः प्राप्य पूर्वां रचितसंविदाम् ।
विद्याधरीं यया नीतः सरो निःशङ्कमह्नताम् ॥ २३२ ॥
स तां पञ्चेषुविजयद्विपकुम्भोपमस्तनीम् ।
उद्भूतयौवनसरःसरोजललितेक्षणाम् ॥ २३३ ॥
फुल्लकान्तिलतासक्तभ्रमराकारकुन्तलाम् ।
आसाद्य सुरतासक्तो विसस्मार नृपात्मजाम् ॥ २३४ ॥
याति काले पितुर्भीत्या मर्त्यसङ्गापराधतः ।
तामामन्त्र्योदयगिरिं सा ययौ सिद्धरक्षितम् ॥ २३५ ॥

१. 'श्रमनिद्रा' ख. २. 'नं' ख. ३. 'चण्डी' ख.

तस्यां गतायामुन्मत्तस्त्यक्त्वा भूमिपतेः सुताम्।
हा भद्रेत्यसकृत्वारं विलपंस्तत्र पर्यगात्॥ २३६॥
व्रजन्नथ दिशं प्राचीं निःश्वासग्लपिताधरः।
स पुण्ड्रवर्धनं नाम पुरं प्राप स्मरातुरः॥ २३७॥
तत्र विप्रगृहे वृद्धा तमाह ब्राह्मणी ततः।
पुत्र सर्वं मम धनं गृहाणाभिमतोऽसि मे॥ २३८॥
यतः स्वपुत्रविरहात्प्रियं त्यक्ष्यामि जीवितम्।
दुःखलब्धाभिधा पुत्री देवसेनस्य भूपतेः॥ २३९॥
इहास्ति येन येनासौ वृता याति स पञ्चताम्।
चौरगृहाद्गृहाचस्य नीयन्ते पुरुषाः सदा॥ २४०॥
क्षयं यातेष्वनेकेषु मम पुत्रोऽद्य नीयते।
तद्विनाशे विनङ्क्ष्यामि तुभ्यं सर्वं तदाप्यतः॥ २४१॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य करुणार्द्रो विदूषकः।
अहं तत्र गमिष्यामि न नङ्क्ष्यामीत्युवाच ताम्॥ २४२॥
तया कृच्छ्रेण मुक्तोऽथ प्राप्य भूपालमन्दिरम्।
तत्र शय्यासनस्मेरं कन्यान्तःपुरमाविशत्॥ २४३॥
अथाययौ राजपुत्री तारहारा सुहासिनी।
राहुग्रस्तस्य शशिनः सखेव श्रीः सतारका॥ २४४॥
स तां केनापि न स्पृष्टां दृष्ट्वा यौवनशालिनीम्।
उद्दामसौरभमरां श्वभ्रजातां लतामिव॥ २४५॥
अनासादितपर्याणां काम्बोजतुरगीमिव।
कौतुकाकुलितस्तस्यौ द्वारान्तर्निभृतो निशि॥ २४६॥
ततः करिकराकारं कर्कशं घोरराक्षसः।
भुजं प्रविष्टं द्वारेण ददर्शोत्क्रान्तमन्तिके॥ २४७॥

---

१. 'सतुरङ्गमगात्' ग. २. 'पाण्ड्ववर्धनं' ख. ३. 'लब्धाख्या' ख ४. 'दीप्त' ग.

दृष्ट्वैव दीप्तनेत्रस्य जीर्णाजगरसंनिभम् ।
आग्नेयेनासिना चाहुं तस्य दीर्घं चकर्त सः ॥ २४८ ॥
मृणालनालनिर्लूने पतिते दोष्णि भूतले ।
दुद्राव विसवद्रक्तस्ततो निशि निशाचरः ॥ २४९ ॥
प्रातस्तत्कर्मतुष्टोऽथ देवसेनो नृपः सुताम् ।
विदूषकाय प्रददौ लक्ष्मीं चाद्भुततेजसे ॥ २५० ॥
दिव्यनारीमिवारण्यभोगप्राप्तां सुरद्विपा ।
स तां नेत्रोत्पलं प्राप्य सविलाससुखाम्बुजाम् ॥ २५१ ॥
किंचित्कालं नृपगृहं स्थित्वा राजसुतां प्रियः ।
प्रययौ संस्मरन्भद्रामनिद्रो विद्रुताशयः ॥ २५२ ॥
समुद्रतीरमासाद्य तरङ्गगणभीषणम् ।
स्कन्ददासेन वणिजा प्राप्तसख्यं प्रियंवदः ।
आरुरोह प्रवहणं तस्योर्ध्वैतपताकिनः ॥ २५३ ॥
ततो महाम्बुधे मध्ये विचचाल न चेटकः ।
कर्णधारेण विधृतो व्याधवातगतागतः ॥ २५४ ॥
तस्मिन्रुद्धे प्रवहणे साक्रन्दे सार्थधर्मिणि ।
स्कन्ददासोऽवदन्सास्रं शोचन्स विपुलं श्रियम् ॥ २५५ ॥
बलेन यः प्रवहणं प्रेरयेद्द्रविणादिहँ ।
अर्धं तस्मै प्रदास्यामि कन्यां चायतलोचनाम् ॥ २५६ ॥
विदूषकोऽथ कारुण्याद्विहस्य घनदायिनम् ।
ममज्ज मथितो रज्ज्वा मकराकरवारिणि ॥ २५७ ॥
निमज्य प्राणिसधायां रुग्मां ग्रन्थिममोचयत् ।
तस्मिन्विमुक्ते स वणिक्छित्त्वा रज्जुलतां ययौ ॥ २५८ ॥

---

१. 'दृष्ट्वा प्रदीपः सहसा जी' ख. २. 'वापीमिवानन्यगजगुप्तां सुरद्विप.' ख. ३. 'प्र' ख. ४. 'तस्मिन्महाम्बुधेर्मध्ये' ख. ५. 'रचितः प्रस्तावस्तुश्रुता गत.' ख. ६. 'विरुद्धे वणिजामाक्रन्दे व्योमसर्पिणाम्' ख. ७. 'ददम्' ख. ८. 'ममज्ज रज्जुग्रथितो करालयवारिणि' ख.

वणिजा धनलुब्धेन स च्छिन्नालम्बनो ययौ ।
निकृत्तपाणिजङ्घाग्रः समारूढोऽम्बुधेस्तटम् ॥ २५९ ॥
मनसो विषयं प्राप्य पथि शुश्राव भूपतेः ।
नित्यं हृतैकपुरुषां तनयामार्यवर्मणः ॥ २६० ॥
प्रविश्य पूर्ववत्तत्र राक्षसं हन्तुमुद्यतः ।
सख्यं तेनार्थितः प्राप्य ध्यातो यः स्थानसंविदा ॥ २६१ ॥
आर्यवर्मा ददौ पुत्रीं तस्मै तां सह संपदा ।
स्थित्वा तु सुरतासक्तः किंचित्कालं पुनर्ययौ ॥ २६२ ॥
स्मरन्विद्याधरसुतां सोऽवमेने नृपात्मजाम् ।
पारिजातलताभृङ्गो न हि जातीषु सादरः ॥ २६३ ॥
अगम्यां भूमिमासाद्य ध्यातस्तेन स राक्षसः ।
सुहृत्स यमदंष्ट्राख्यस्तमुवाह महाजवः ॥ २६४ ॥
अथोदयाद्रिपर्यन्ततटे सिद्धनिषेविते ।
त्यक्तः स रक्षसा तस्थौ न ततो रक्षसां गतिः ॥ २६५ ॥
तत्र पुष्करिणीतीरस्थितं दिव्याङ्गनाजनम् ।
ददर्श रत्नकलशैर्जलाहरणतत्परम् ॥ २६६ ॥
ताः पृष्टाः कौतुकात्तेन प्राहुर्विद्याधरात्मजाः ।
भद्रा नाम पितुर्भीत्या तिष्ठतीह सुलोचना ॥ २६७ ॥
मर्त्यशक्ता पुरा साभूत्तेमोमोहनिवारणे ।
जलाहृतैरियं नित्यमस्माकं कमलेक्षणा ॥ २६८ ॥
इति श्रुत्वामृतेनेव सिक्तो रत्नाङ्गुलीयकम् ।
भद्रयैव पुरा दत्तं चिक्षेप कलशे लघु ॥ २६९ ॥
तत्प्राप्य ततः स्नाता विश्राम्य सहसादरात् ।
भद्रा तामिस्त्रमानाय्य तत्याज विरहव्यथाम् ॥ २७० ॥
अथ तत्सुरतारम्भे स्थिरा विद्याधरी क्षणात् ।
विसस्मार निजां विद्यां भद्रा मर्त्यानुरागिणी ॥ २७१ ॥

१. 'धर्मोदधि' ख. २. 'समस्त भूपा' ख. ३. 'च' ख. ४. 'तदामोद'

ततो वाहनमादाय राक्षसं सहितस्तया।
व्रजन्गृहीत्वा तनयां नृपतेरार्यवर्मणः॥ २७२॥
स्कन्ददासस्य वणिजो हृत्वा सह धनैः सुताम्।
दुःखलब्धां समादाय देवसेनसुतामपि॥ २७३॥
अवाप्योज्जयिनीं हृष्टः सत्त्वोदारो विदूषकः।
आदित्यसेनतनयां भेजे लक्ष्मीं च पुष्कलाम्॥ २७४॥

इति विदूषकाख्यायिका॥ १२॥

इत्येवं सत्त्वमहतां शूराणां विजयः करे।
इति वत्सेश्वरवचः श्रुत्वा सर्वे मुदं ययौ॥ २७५॥
स गृहीतजयोद्योगस्तपसा त्रिपुरान्तकम्।
अतोषयदसाध्यं हि किं शिवस्मरणान्नृणाम्॥ २७६॥
विद्याधरेश्वरो भावी तनयाद्विजयश्च ते।
इति शर्वाद्वरं प्राप त्रिरात्रोपोषितो नृपः॥ २७७॥
नृपवृत्तानुवृत्ते च देव्यौ दृष्ट्वा पतिव्रते।
हृष्टो वसन्तकः प्राह प्रशंसस्तद्विचेष्टितम्॥ २७८॥
पुरा शर्यातितनया सुकन्या च्यवनं मुनिम्।
लोपामुद्रा तथागस्त्यं तपसैवमतोषयत्॥ २७९॥
इति गोपालकादीनां पुरो जल्पन्वसन्तकः।
पद्मावतीं व्रतक्षामां नर्मोक्तिभिरहासयत्॥ २८०॥
अन्येद्युरथ भूपाले जयोद्योगकथान्तरे।
पौरुषं दैवसफलं प्राह यौगन्धरायणः॥ २८१॥
अवश्यं पृथिवीपाल भूभुजां विजयः श्रियः।
भवत्युत्साहनित्यानामिहामुत्र च सिद्धये॥ २८२॥
अवाप्यते शुभफलं सुकृतैः पूर्वसंचितैः।
यदयाचिन्तितमेवासं त्वया यौधिष्ठिरं धनम्॥ २८३॥

बभूव पाटलिपुरे देवदासाभिधो वणिक् ।
महाधनकुले जातो द्यूताद्दुर्गतिमागतः ॥ २८४ ॥
स ध्वस्तवदनच्छायो नगरे पुण्ड्रवर्धने ।
श्वशुरस्य गृहं प्रायात्कन्थालम्बिपटाम्बरः ॥ २८५ ॥
श्वशुरावसथोपान्तमवाप्याचिन्तयत्क्षणम् ।
कथं दीनो गतच्छायः प्रविशामीति लज्जितः ॥ २८६ ॥
धन्यः शवो निरुच्छ्वासो दीर्घनिद्रातिशीतलः ।
सावज्ञः करुणापात्रं बन्धूनां न तु दुर्गतः ॥ २८७ ॥
दावाग्निश्चन्दनं तस्य विषपानं मधूत्सवः ।
विश्रान्तिर्मरणं चास्य स्वजनो येन याच्यते ॥ २८८ ॥
शूरो विदग्धः सुजनोऽभिमानी विद्वान्कुलीनः कुशलः कलावान् ।
तावद्यशस्वीह विभाति पुंसां यावन्न देहीति वचोऽभ्युपैति ॥ २८९ ॥
देवदासो विचिन्त्येति निशि प्राप्य प्रतिश्रियम् ।
केनापि वणिजादिष्टो भाण्डशालां पुरःस्थिताम् ॥ २९० ॥
अपश्यत्तत्र वणिजो लल्नां स्वैरमागताम् ।
निजजायां परिज्ञाय तामेवाभूत्सुदुःखितः ॥ २९१ ॥
रतान्ते साप्युपपतिं प्राह मद्भर्तृमन्दिरे ।
तत्पूर्वपुरुषन्यस्तं निधानं विद्यते प्रिय ।
स्नुषाणामेव तत्कर्णे पारम्पर्यक्रमात्स्थितम् ॥ २९२ ॥

निधानोत्पाटनमनाः क्रीडामूल्येन तद्गृहम् ।
दृष्ट्वा शून्यं महाखातं मूल्यमेवान्वयाचत ॥ २९६ ॥
विवादे नृपतिपुरो देवदासो यथाश्रुतम् ।
निवेद्य निजवृत्तान्तं तामाहूयासतीं वधूम् ॥ २९७ ॥
परदाररते राज्ञा निगृहीते स तामपि ।
कर्णनासाविरहितां कृत्वा तामात्यवान्वधूम् ॥ २९८ ॥
इत्थं पितामहधनैर्देवदासोऽभवत्सुखी ।
इति पुण्यवतां दैवात्स्वयमायान्ति संपदः ॥ २९९ ॥
इति देवदासाख्यायिका ॥ १३ ॥

श्रुत्वेति मन्त्रिवचनं राजा विजयलालसः ।
दिदेश दिग्जयोद्योगे सेनान्यमपि तद्द्युतिः ॥ ३०० ॥
ततो भ्रातरमाहूय पद्मावत्या नरेश्वरः ।
विदधे सिंहवर्माणं चेदिराज्ये बलाधिकम् ॥ ३०१ ॥
गोपालकं च विदशाराज्ये धृत्वा जयोत्सुकः ।
कृत्वा मन्त्रिगिरा दत्तं वाराणस्यां महीपतिम् ॥ ३०२ ॥
ब्रह्मदत्तं स संहृष्टसर्वसामन्तमण्डलम् ।
जेतुं सज्जगजानीकतुरगोत्खातभूतलः ।
ययौ सुभटसंमर्दव्यालोलितदिगन्तरः ॥ ३०३ ॥
पाण्डुरेणातपत्रेण यात्रायां विबभौ विभुः ।
क्षीरक्षोभसमुत्थेन शशाङ्केनेव मन्दरः ॥ ३०४ ॥
पार्थिवस्यास्य तस्याग्रे गिरिवर्णा गजा बभुः ।
सेवान्नतमिवापन्ना मेघाः खाण्डववर्जिताः ॥ ३०५ ॥
तस्य सैन्ये मदाघूता विबभौ खड्गमण्डली ।
पातालवासिभीत्येव संप्राप्ता भुजगावली ॥ ३०६ ॥
कापालिकप्रणिधिभिर्देवजन्यज्ञैरपि ।
आचकर्ष रिपोर्मन्त्रं गूढं यौगन्धरायणः ॥ ३०७ ॥

1. 'भ्रान्त्येव' ख.

ब्रह्मदत्तस्य सचिवो धीमान्योगकरण्डिकः।
व्यधाद्वत्सेश्वरस्याम्भो घासं च विषदूषितम् ॥ ३०८ ॥
उल्कासंदर्शनं घोरं मायास्ताश्च सुदुःसहाः।
यौगन्धरायणस्तस्य प्रतियोगैरिवाभवत् ॥ ३०९ ॥
व्यर्थं चकार सकलं मायानिर्माणडम्बरम्।
ततो बद्धाञ्जलिर्धीमान्रत्नोपायनसंयुतः ॥ ३१० ॥
ब्रह्मदत्तं स जित्वैव सर्वाशाविजयी नृपः।
न्यवेशयत्सूर्य इव प्रतापं मूर्ध्नि भूभृताम् ॥ ३११ ॥
ततः समस्तसामन्तमस्तकन्यस्तशासनः।
पूजितोऽवन्तिराजेन मागधेन च सानुगः ॥ ३१२ ॥
देवीभ्यां सहितः श्रीमांल्लावानकपुरं ययौ।
पौरनारीमुखाम्भोजविकासनवभास्करः ॥ ३१३ ॥

इति श्रीवत्सेशदिग्विजयः ॥ १४ ।

चक्रवर्तिश्रियं प्राप्य हेमरत्नाम्बरप्रदम्।
भेजे शृङ्गारसाम्राज्यं कान्ताकेलिकलो नृपः ॥ ३१४ ॥
ततः कदाचित्सचिवं प्राह वत्सेश्वरो जयी।
भवन्मतिप्रभावोऽयमहो मद्विजयश्रिये ॥ ३१५ ॥
पश्य मे भ्रूलताक्षेपैरुत्खातप्रतिरोपिताः।
जाता नराधिपाः पादचुम्बिचूडामणित्विषः ॥ ३१६ ॥
मन्येऽहं ब्रह्मदत्तोऽसौ नितान्तं कुटिलाशयः।
वशं नीतोऽपि यत्नेन दर्पान्धो विचलिष्यति ॥ ३१७ ॥
संमानितस्त्वया देव स राजा न चलिष्यति।
शुभं शुभकृतादेव विपरीताद्विपर्ययः ॥ ३१८ ॥
स्वच्छासनद्विपस्तस्य ध्रुवं श्रीर्नभविष्यति।
अग्निदत्तोऽभवद्विप्रः पञ्चाख्ये विषये पुरा ॥ ३१९ ॥

1. 'सर्वाकारप्रदान.' ख.

सोमदत्तोऽभवत्तस्य पुत्रः शास्त्रविवर्जितः।
वैश्वानराभिधश्चान्यः श्रुतः श्रुतिविदां वरः॥ ३२०॥
अग्निदत्तस्तयोः कृत्वा विवाहं प्रययौ दिवम्।
सोमदत्तस्ततो मौर्ख्यात्सदाचारविवर्जितः॥ ३२१॥
राज्ञोऽपि निग्रहपदं ययौ दुर्जनचेष्टितैः।
भ्रात्रा संरक्षितोऽप्येत्य विदुषा नृपशासनात्॥ ३२२॥
त्यक्त्वाग्रहारं सुकृशो जग्राह कृषिजीविकाम्।
वटवृक्षं पृथुच्छायं पूजयन्सततं न्यधात्॥ ३२३॥
क्षेत्रकर्माभवर्धेन प्रवृद्धः सभ्यसंपदा।
हलभूतिरिति प्राप संज्ञां स कृषितत्परः॥ ३२४॥
ततः परधनायत्तैः क्षणेनाथ विनाशिता।
सा तस्य श्रीर्विधौ वामे पौरुषं हि कदर्थिता॥ ३२५॥
स शोकव्याकुलो रात्रौ नष्टनिद्रो वटान्तिके।
शुश्रावाकाशवचनं सभार्यः साश्रुलोचनः॥ ३२६॥
[3]मिहारो नाम यक्षोऽहं प्रसन्नस्ते सदार्चनात्।
वेदानामुहि मद्वाक्याद्विपुलां श्रियमाप्स्यसि॥ ३२७॥
आदित्यप्रभमासाद्य श्रीकण्ठविषये नृपम्।
गृहे गत्वा सदा कार्येष्वपृष्टः पृष्ट एव वा॥ ३२८॥
.........तत्त्वं मया दिष्टमपठत्स च तत्पुरः।
शुभं शुभकृतादेव विपरीताद्विपर्ययः॥ ३२९॥
इत्याकर्ण्य स तद्वाक्यं तस्य राजा स्मितप्रियः।
ददौ सुविपुलां लक्ष्मीं तस्मै विस्मयकारिणीम्॥ ३३०॥
ततः कदाचिद्भूपालस्तेन विश्रम्भसाक्षिणा।
ययौ मृगव्यां पौरस्त्रीकटाक्षोत्पलमालितः॥ ३३१॥

---

१. 'क्षेत्रकर्मरतेस्तस्य' ख. २. 'वलापातैः' ख. ३. 'मिहिरो' ख. ४. 'बहिर्गं' ग. ५. 'धारिणा' ख.

चिरात्प्रतिनिवृत्तोऽयं कान्तां कुवलयावलीम्।
द्रष्टुं हृष्टोऽविशद्द्रष्टुमेक एव नरेश्वरः ॥ ३३२ ॥
रुद्धप्रवेशो नृपतिर्दीर्घमन्तःपुरे ततः।
गवाक्षान्तरितोऽपश्यद्योगमण्डलपङ्कजे ॥ ३३३ ॥
दिगम्बरां मुक्तकेशीं रक्तचन्दनचर्चिताम्।
ददर्श तत्र दयितामभिचारोचितस्थितिम् ॥ ३३४ ॥
प्रविष्टो विस्मयक्रोधशङ्काकुलितमानसः।
ततस्तया नरपतिर्दृष्टश्चकितनेत्रया ॥ ३३५ ॥
संत्रासतरलाकारा कम्पमाना घनस्तनी।
अमर्यं दीयतां देव कथयामीत्यभाषत ॥ ३३६ ॥
दत्ताभया नृपतिना कथामकथयन्निजाम्।
अस्मि देव पितुर्गेहे पुराहं कन्यका सती ॥ ३३७ ॥
नानादेशसमायातसखीमण्डलमण्डिता।
मधौ मधुरसंलापकोकिले कलिकाकुले ॥ ३३८ ॥
मलयानिललोलालिकुलाकुलितचम्पके।
उद्यानमगमं लीलानिलयं पुष्पधन्वनः ॥ ३३९ ॥
तत्र मामवदन्सख्यः सखि देवः प्रणम्यताम्।
अ………………ऊर्ध्वरेतसि संनिधिः ॥ ३४० ॥
श्रीमान्स हि…………विभाधिपो विभुः।
विवाहविजयोद्योगेष्वेको लोकेषु पूज्यते ॥ ३४१ ॥
श्रुत्वेति ता मया पृष्टास्तत्प्रभावं बभाषिरे।
ऊर्ध्वरेतसि चण्डीशे गौरी पुत्रार्थिनी पुरा ॥ ३४२ ॥
प्रदध्यौ तच्च विज्ञाय हृष्टोऽभूत्पाकशासनः।
ध्रुवं देव्याः सुतोऽस्माकं भविष्यति जयश्रिये ॥ ३४३ ॥

१. 'दयितान्त.' ख. २. 'मामवदन्नी च द' ख. ३. 'अदूरसंनिधिः श्रीमा विभाधिपो विभु' इति ख-पुस्तके पाठः.

ध्यात्वेति शक्रः पञ्चेषुं दिदेश मधुना सह ।
स गत्वा शंकरमनःक्षोभायाक्षयसायकः ।
चक्रे तपोवनं शंभोरकालमधुमण्डितम् ॥ ३४४ ॥
सहसोत्फुल्लकुब्जाशोककेसरकिंशुके ।
तत्र त्रिलोचनं कामो विव्याधोन्माद्नेषुणा ॥ ३४५ ॥
विकारं मनसो दृष्ट्वा कुपितस्त्रिपुरान्तकः ।
स्मृतिशेषं स्मरं चक्रे भाललोचनवह्निना ॥ ३४६ ॥
तद्दुःखात्साश्रुनयनां देवीं पुत्रार्थिनीं हरः ।
उवाच देवि विघ्नेशः पुत्रार्थं नार्चितस्त्वया ॥ ३४७ ॥
इत्युक्ते भगवान्देवैरर्थ्यमानो मनोभवम् ।
चकार मानसावासं द्विगुणोत्साहदर्पणम् ॥ ३४८ ॥
अथ तारकवित्रस्तैस्त्रैदशत्राणमात्मजम् ।
स्रष्टुं सतीरतक्रीडां भेजे शीतांशुशेखरः ॥ ३४९ ॥
सहस्रं दिव्यवर्षाणां शंकरे रतितत्परे ।
त्रुटद्गिरिचरोद्धूतसागरा विचचाल भूः ॥ ३५० ॥
ततो भीतैः सुरैः सर्वैः परमेष्ठिगिरानलः ।
त्रिनेत्ररतिविघ्नार्थमन्विष्टो न व्यदृश्यत ॥ ३५१ ॥
शुकभेकगजैर्ज्ञात्वा मच्छन्नोऽग्निर्निवेदितः ।
यदा जिह्वापरावृत्तिः शापं तेभ्यो ददौ तदा ॥ ३५२ ॥
याचितोऽथ सुरेन्द्रेण शर्वस्य सुरतोत्सवे ।
विवेश सूक्ष्मवेषाग्निर्विरराम ततः शिवः ॥ ३५३ ॥
विरतो रेतसो वेगं चिक्षेपाग्निमुखे हरः ।
को हि माहेश्वरं तेजो विनाग्निं धर्तुमीश्वरः ॥ ३५४ ॥
ततो गिरिसुता कोपाच्छशाप सुरमण्डलम् ।
मा वः सदृशसंसर्गजन्मा कस्य सुतोऽस्त्विति ॥ ३५५ ॥

1. 'धमला' ख.

पुत्रार्थं न त्वया देवि पूजितो विघ्ननायकः।
इति पत्युर्गिरा गौर्या प्राप्ते विघ्नेऽर्चितोऽथ सः ॥ ३५६ ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते श्रमार्तो हव्यवाहनः।
तत्याज गर्भं गङ्गायां साप्यधत्त तमुत्कटम् ॥ ३५७ ॥
जाह्नवी तारकत्रस्ता तं शंभोर्धैर्यचसात्यजत्।
सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे सहस्रांशुसितद्युतिम् ॥ ३५८ ॥
कृत्तिकारक्षितः श्रीमान्रक्षितो हरकिंकरैः।
षण्मुखस्तेजसा चक्रे सज्वालाजटिला दिशः ॥ ३५९ ॥
नारदस्य गिरा ज्ञात्वा दृष्ट्वा च तमतिप्रभम्।
सहस्राक्षो मुमोचाशु तस्मै वज्रं पुनः पुनः ॥ ३६० ॥
वज्रप्रहारैस्तनया बभूवुस्तस्य दुर्मदाः।
शाखो विशाखः सुमुखश्चेति शक्रद्वानलाः ॥ ३६१ ॥
अथोत्थिते कार्तिकेयडिम्भे समरदुर्मदे।
वासवस्तम्भितकरे दुद्रावैरावणो रणे ॥ ३६२ ॥
ततस्त्रिलोचनोऽभ्येत्य सुरेन्द्रकृपया शिशुः।
सान्त्वितः सह पार्वत्या शक्रे प्रीतिं च लम्भितः ॥ ३६३
ततोऽभिषेके पृतनापत्ये तस्याशु कल्पिते।
हरेः सकुलिशो बाहुः स्तम्भतां विघ्नतो ययौ ॥ ३६४ ॥
अथ शर्वस्य वचसा पूजिते गणनायके।
विघ्नप्रशान्त्या शक्रस्य बाहुः स्तम्भादमुच्यत ॥ ३६५ ॥
हेरम्बेणाभिषिक्तोऽथ स्वयं सेनामवाप्य सः।
दिव्यकान्त्या महासेनो न्यवधीत्तारकासुरम् ॥ ३६६ ॥
एवं महाप्रभावोऽयं प्रणम्यो विघ्ननायकः।
सर्गानामित्यहं वाक्यार्थतत्त्वमगमं मुदा ॥ ३६७ ॥
गणेन्द्रमध्वरपर्वतले पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्गीनां सदसापश्यमाकारोन गतागतम् ॥ ३६८ ॥

१. 'गम' ख. २. 'वर्धित.' ख. ३. 'द्रन्द्रुतम' ख. ४. 'द' ख. ५. 'दर्शाप

तद्दृष्ट्वा विस्मितात्यन्तमपृच्छं कौतुकेन ताः ।
सख्यः कथं वो नभसा गतिरित्यूचिरे च ताः ॥ ३६९ ॥
महाकालप्रसादाच्च पूजनाच्च गणप्रभोः ।
महामांसाशनाच्चेयमस्माकं सिद्धिरुत्तमा ॥ ३७० ॥
छन्ना वयं च टाकिन्यः काप्यूर्ध्वव्यापिनी च नः ।
अस्त्यसौ कालरात्रीति सा चाहूता समेष्यति ॥ ३७१ ॥
ततो मदुपदेशाय समाहूता समाययौ ।
कालरात्री सखीमिर्मे कुम्भलम्बोदरस्तनी ॥ ३७२ ॥
अहं तद्दीक्षया क्षिप्रं महामांसाशनेन च ।
दृष्ट्वा देवं महाकालमभवं योगिनी ततः ॥ ३७३ ॥
मायारूपपरावृत्तिर्दृष्टिबन्धाभिचारके ।
मारणोच्चाटनाकर्षे जाताहं तद्गुणाधिका ॥ ३७४ ॥
तस्याः प्रच्छन्नडाकिन्याः कालरात्र्याः पतिर्द्विजः ।
विष्णुस्वामीत्युपाध्यायः श्रोत्रियोऽस्ति बहुश्रुतः ॥ ३७५ ॥
तस्य सुन्दरको नाम शिष्यो रूपेण सुन्दरः ।
कालरात्र्या युवा स्वैरं याचितो रतिदक्षिणाम् ॥ ३७६ ॥
जननी गुरुभार्या मे त्वं पुत्रोऽहं तवानघे ।
इति सुन्दरकः प्राह प्रार्थ्यमानस्तयाऽसकृत् ॥ ३७७ ॥
ततः क्षिप्रं स्तनखैः सा विदार्य निजं वपुः ।
कृतं सुन्दरकेणेदमित्याह कुपिता पतिम् ॥ ३७८ ॥
उपाध्यायस्ततः क्रुद्धस्तं शिष्यं शिष्यसेनया ।
लगुडैर्जर्जरतनुं विधाय बहिरत्यजत् ॥ ३७९ ॥
स रात्रौ निर्जने त्यक्तश्चिरेणावाप्तजीवितः ।
उत्थाय शून्यं गोवाटमविशच्छङ्किताशयः ॥ ३८० ॥
ततोऽर्धरात्रे निर्यातामपश्यड्डाकिनीवृताम् ।
कालरात्रीमुपाध्यायदयितां भीषणाननाम् ॥ ३८१ ॥

---

१. 'प्युमप्याविनी च' ख. २. 'योगिनीह' ख. ३. 'रवा' ख. १० हृ० मं०

तदुत्पतनमन्त्रेण दिवमुत्पतिते गृहे ।
सगोवाटे स जग्राह तन्मन्त्रं धीमतां वरः ॥ ३८२ ॥
भ्रान्त्वा प्रतिनिवृत्तायां पुनस्तस्याः क्षपाक्षये ।
सत्रशालाश्रितः सोऽथ पुनरेत्यार्थितस्तया ॥ ३८३ ॥
अद्यापि मन्मथरुचे भज मां स्वयमागताम् ।
उपाध्यायवधूं याहि देहि जीवितदक्षिणाम् ॥ ३८४ ॥
इत्युपाध्यायिनीवाक्यं श्रुत्वा कर्णौ पिधाय सः ।
जगाम धर्ममर्यादां लङ्घयन्ति न साधवः ॥ ३८५ ॥
प्रत्याख्यानं रुषाभ्येत्य विष्णुस्वामी पुनस्तया ।
त्वच्छिष्येण हतास्मीति गिरा कोपाकुलः कृतः ॥ ३८६ ॥
उपाध्यायोऽथ तत्कोपादविज्ञाय तदाशयम् ।
तस्य भोजनमभ्येत्य सत्रशालां न्यवारयत् ॥ ३८७ ॥
स चोत्पतनमन्त्रज्ञः पँवन्संत्रासमाययौ ।
पुनस्तमेव गोवाटं तत्रापश्यच्च तां निशि ॥ ३८८ ॥
तासामुत्पतितानां च स्थितः प्रच्छन्नवाटके ।
मूलकानां चयं प्राप महार्थं दूरदेशगः ॥ ३८९ ॥
तद्विक्रये प्रभातेऽथ स तदाहृतिसंगतैः ।
[3]नीतो विवादो नृपतेः पुरस्तादवदच्च सः ॥ ३९० ॥
प्रासादमधिरुह्येमं देवं विज्ञापयाम्यहम् ।
इति प्रासादमारुह्य मन्त्रेणोत्पत्य दूरगः ॥ ३९१ ॥
द्वितीयं नृपमभ्येत्य प्राहाहं धूर्जटेर्गणः ।
दीयतां हेमरत्नानि मह्यं माहेश्वरो ह्यसि ॥ ३९२ ॥
इत्युक्त्वा विपुलैश्वर्यं तस्मादासाद्य हर्म्यगः ।
यदृच्छोपगतां सिद्धिं प्राप्य मन्त्रं निपातितम् ॥ ३९३ ॥

---

१. 'पातमन्त्रार्थमा' ख. २. 'अलंकारान्स्वयं प्राप महार्घ्यान् दूरदेशगः' ख. ३. 'नरविवादं' ख.

8263



कापालिककथां राज्ञे सर्वामेत्य न्यवेदयत् ।
राजा तत्त्वं परिज्ञाय तस्या निग्रहमभ्ययात् ॥ ३९४ ॥
सा ततोऽन्तर्हिताभ्येत्य स्थिता चान्तःपुरे मम ।
इत्येतत्कथितं तुभ्यं याथातथ्यं मया विभो ॥ ३९५ ॥
एहि सिद्धिं भज क्षिप्रं प्रयोगे समर्थो भव ।
मुङ्क्ष्व वीर महामांसं निर्विकल्पपदं श्रय ॥ ३९६ ॥
इति देवीगिरा राजा घृणाघूर्णितमानसः ।
तथेति चक्रे कृच्छ्रेण बहुशो बोधितस्तया ॥ ३९७ ॥
त्वयाकृष्टः पशुः कोऽत्र पृष्टेति जगतीभुजा ।
हलभूतिरिति प्राह स्वैरं कुवलयावली ॥ ३९८ ॥
तद्विमं स समाकर्ण्य देव्या च भृशमर्थितः ।
राजा दोलायितमनाश्चिरेण प्राप निश्चयम् ॥ ३९९ ॥
ततः साहसिकं नाम सूदमाहूय दंपती ।
तमूचतुः समभ्येत्य यो वक्ष्यति महानसे ॥ ४०० ॥
राजयोर्न्यां वसुमतीं कुरुष्वेति त्वमेव तम् ।
हत्वा तन्मांससूपिष्टं तूर्णं भोजनमानय ॥ ४०१ ॥
इति संविदमाधाय स समामण्टपं पुनः ।
हलभूतिं नृपः प्राह भोज्यं मे क्रियतामिति ॥ ४०२ ॥
तूर्णं तदाज्ञया गन्तुं प्रस्तुतं तं महानसम् ।
ऊचे चन्द्रप्रभोऽभ्येत्य राजसूनुस्त्वराकुलः ॥ ४०३ ॥
मत्कुण्डलो हृतो गच्छ श्रुत्वेत्याह च स द्विजः ।
राजभोजनमादिश्य सूदमेष्याम्यहं क्षणात् ॥ ४०४ ॥
इति राजसुतः श्रुत्वा हलभूतिमभाषत । .
अहं महानसं गत्वा सूदं वक्ष्यामि ते वचः ।
व्रज मत्कुण्डलार्थं त्वमित्युक्तौ जग्मतुः पृथक् ॥ ४०५ ॥

---

१. 'चन्द्रवापरपादान' ख. २. 'तावूचतुः' ख. ३. 'महानसे.' ख. ४. 'रमवतीं' ख. ५–६. 'फलभूतिम्' इति कथासरित्सागरे.

राजपुत्रमथायान्तं दृष्ट्वा श्रुत्वा च तद्वचः।
हत्वा यथोक्तमकरोत्सूदः समययन्त्रितः ॥ ४०६ ॥
तन्मांसभोजनं राजा भुक्त्वा स्वैरं वधूसखः।
प्रातर्विदितवृत्तान्तः पपात विलपन्भुवि ॥ ४०७ ॥
सुपुत्रं निहतं ज्ञात्वा हलभूतिं विलोक्य च।
शुभं शुभकृतादेव ससारेति स तद्गिरः ॥ ४०८ ॥
हलभूतिं नृपपदे धृत्वानुशयतापितः।
ब्राह्मणेभ्यो महादानं वितीर्य यमुनातटे ॥ ४०९ ॥
निकृत्तनिजमांसेन हुत्वा वह्निं ससंभ्रमः।
सभार्यः प्रययौ स्वर्गं सत्त्वनिर्धूतकल्मषः ॥ ४१० ॥
शुभं शुभकृतादेव हलभूतिरवाप्तवान्।
न हि कश्चिच्छुभकृतस्तव राजा चलिष्यति ॥ ४११ ॥
इति हलभूत्याख्यायिका ॥ १५

यौगन्धरायणवचो निशम्येति जनाधिपः।
एवमेतदिति प्राह विस्मयाविष्टचेतनः ॥ ४१२ ॥
ततः प्रियतमाकेलिविलासरसिको नृपः।
परित्यक्त इवाभ्येत्य रराज विजयश्रिया ॥ ४१३ ॥
कौशाम्बीमथ सौधसङ्गितरुणीनेत्रांशुनीलोत्पल-
स्रग्दामाभरणाधिवाससुभगः कान्तासहायो नृपः।
आकर्णायतकामकार्मुकलतार्त्तिकारतारैर्मुहुः
प्रत्यग्रोत्सवलोलपौरललनाकाञ्चीरवैः पूरिताम् ॥ ४१४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे लावानकनामा तृतीयो लम्बकः समाप्तः।

## नरवाहनजन्मनामा चतुर्थो लम्बकः।

### प्रथमो गुच्छः।

ललाटलोचनं पायात्प्रदीप्तं त्रिपुरद्विषः।
कुमाररक्षासिन्दूरं वितरन्किरणैरिव ॥ १ ॥

१. 'दर्शिपा भेजे' ख. २. 'गांधितका' ख.

स सार्वभौमविभवं प्राप्य भूमिपुरंदरः ।
बभार वल्लभा कान्तिनलिनी राजहंसताम् ॥ २ ॥
सभास्थानसमासीनमभ्येत्यावाप्तसत्कृतिः ।
जगाद नारदो दन्तद्युत्या धवलयन्दिशः ॥ ३ ॥
अपि राजेन्द्र कार्येषु प्राप्य लक्ष्मीं न मुह्यसि ।
ऐश्वर्यमदमत्ता हि न पश्यन्ति नृपद्विपाः ॥ ४ ॥
अपि संकोचमायाति न श्रीर्व्यसनवारिदैः ।
जडीकृतप्रतापस्य हेमन्ते नलिनीवने ॥ ५ ॥
स पाण्डुः पृथिवीपालस्तव पूर्वपितामहः ।
मृगयाव्यसनासक्तो मुनिं हरिणरूपिणम् ।
निर्गमं नाम बाणेन जघान रतिमोहितम् ॥ ६ ॥
तस्मात्स रतिपर्यन्तजीवितं शापमाप्तवान् ।
इति राज्ञां विनाशाय व्यसनं महतामपि ॥ ७ ॥
कुलाधिकं पदं वीर संप्राप्तोऽसि किमुच्यते ।
सर्वविद्याधराधीशो भविष्यति तवात्मजः ॥ ८ ॥
कुमारजनकं देवमाराध्य शशिशेखरम् ।
देवी वासवदत्तेयं जनयिष्यति तं सुतम् ॥ ९ ॥
हरनेत्राग्निनिर्धूतः स्मरः सोऽवतरिष्यति ।
रतिप्रतैः प्रसन्नेन शंकरेण विनिर्मितः ॥ १० ॥
उक्त्वेति नारदमुनौ क्षिप्रमेव तिरोहिते ।
वत्सराजोऽभवच्चैवममन्दानन्दमानसः ॥ ११ ॥
ततः कदाचिद्दारिद्र्यविध्वस्ता यमजौ सुतौ ।
गृहीत्वा शरणं प्रायाद्ब्राह्मणी वत्सभूपतिम् ॥ १२ ॥
विसृष्टान्तःपुरं राजा सा कृपापूर्णचेतसा ।
न्यस्तेव संपदामङ्गीकृता वासवदत्तया ॥ १३ ॥

१. 'प्य सत्कृतिम्' ख. २. 'किंदमं' ख. ३. 'त्रिपुरारातिविमुष्टः' ख. ४. 'त्वै-र' ख. ५ 'मेदुरः' ख. ६. 'आदाय' ख.

पुत्रीणां बत धन्यासि निजां कथय मे कथाम् ।
देव्या पृष्टेति सा स्वैरं ब्राह्मणी प्राह निर्वृता ॥ १४ ॥
कृच्छ्रेण महता देवि दारिद्र्ये रक्षितं मया ।
न हि धर्तुं समायाति शीलं प्रोषितयोषिताम् ॥ १५ ॥
उत्तरस्यां दिशि पुरा जयदत्तोऽभवन्नृपः ।
[3]देवदत्ताभिधस्तस्य पुत्रो दुश्चरितः कुले ॥ १६ ॥
स राजा पवनालोलकदलीदलचञ्चलाम् ।
नृपश्रियमिति ज्ञात्वा वणिजां चाक्षयां श्रियम् ॥ १७ ॥
महाधनवणिक्पुत्र्या पुत्रस्योद्वाहमादधे ।
धनकाञ्चनरत्नौघैः प्राप व्याकोशकोशताम् ॥ १८ ॥
ततः कालेन भूपाले दिवं याते तदात्मजः ।
स गोत्रशत्रुविजितो जीवशेषो ययौ निशि ॥ १९ ॥
स मात्रा प्रेरितो दुःखाद्गच्छ श्वशुरमन्दिरम् ।
महाधनः स हि वणिक्त्वां ध्रुवं पूरयिष्यति ॥ २० ॥
इति मातुर्गिरा गत्वा पुरं पाटलिपुत्रकम् ।
श्वशुरावसथं प्राप्य न विवेश ह्रिया नतः ॥ २१ ॥
स पान्थसत्रशालायां शयानस्तद्गृहान्तिके ।
निजजायां ददर्शाथ निशि केनापि संगताम् ॥ २२ ॥
तां चौर्यसुरताकम्पक्वणन्मुखरमेखलाम् ।
दृष्ट्वापि दुर्गतिं ध्यायन्न चकम्पे चुकोप वा ॥ २३ ॥
ततः सा रतिसंमर्दभ्रष्टं हेमविभूषणम् ।
नाज्ञासीन्मणिताटङ्कं रागान्धः को हि पश्यति ॥ २४ ॥
तद्रत्नमणिसंछन्नं प्राप्य कर्णविभूषणम् ।
ययौ लक्ष्मीं कृतारम्भो राजपुत्रोऽप्यलक्षितः ॥ २५ ॥

१. 'पत्या विहीना या देवी चारित्र्यं र' ख. २. 'देवद' ख. ३. 'जयद' ख. ४. 'विभिन्न गेषदं राज्ञाम्' ख. ५. 'येन काञ्चनरत्नौघैः' ख. ६. 'धनम्' ख. ७. 'सुरतोत्मर्दभ्रष्टं' ख.

धन्ये निधाय बहुना द्रविणेन तदुत्तमम्।
क्रीत्वा तुरङ्गान्राजानं परमेश्वरमभ्यगा(या)त्[1] ॥ २६ ॥
तदुपाश्रित्य बलिनं हत्वा शत्रुगणान्युधि।
पितृपैतामहं राज्यमवाप विमलद्युतिः ॥ २७ ॥
ततोऽन्यां राजतनयां परिणीय कुलोचिताम्।
वणिजः प्राहिणोत्क्षिप्रं ताटङ्कं दुहितुश्च्युतम् ॥ २८ ॥
तदालोक्यैव सा भर्त्रा प्रहितं रत्नभूषितम्।
स्मृत्वा दुर्विनयं भीता सहसा पञ्चतां गता।
इति विप्रोषितं स्त्रीभिः शीलं दुःखेन रक्ष्यते ॥ २९ ॥

इति देवदत्ताख्यायिका ॥ १ ॥

अहं शंकरदेवस्य जाया देवि द्विजन्मनः।
ब्राह्मणी पिङ्गला नाम दैवाद्वैधव्यमागता ॥ ३० ॥
हृते[2] कुलाग्रहारे मे सगोत्रैर्बलचरैः।
देवरे च विदेशस्थे चिरं शान्तिकराभिधे ॥ ३१ ॥
पुत्राविमौ समादाय यातास्मि शरणं नृपम्।
भर्तारं तव[3] संततसुजनताशुरपादपम् ॥ ३२ ॥
श्रुत्वैव राजमहिषी तद्वृत्तान्तं कृपावती।
पुरोहितं शान्तिकरं तस्या विज्ञाय देवरम् ॥ ३३ ॥
संमानमधिकं चक्रे हेमरत्नाम्बरप्रदा।
सापि तं देवरं प्राप्य भर्तृदुःखं शशंस तम् ॥ ३४ ॥
संपूजिता देवरेण राज्ञा देव्या च सादरम्।
सा तस्थौ ब्राह्मणी तत्र बालसंवर्धनप्रता ॥ ३५ ॥

इति ब्राह्मणीसमागमकथा ॥ २ ॥

कदाचिदथ दृष्ट्वैव देवी वातायनस्थिता।
कुम्भकोर्याः सुतान्पञ्च प्रदध्यौ दुःखिता क्षणम् ॥ ३६ ॥

१. 'अयद' ख. २. 'दत्तस' ग. ३. 'हते' ख. ४. 'संप्राप्त' ख. ५. 'दासाः' ख.

अपि पामरनारिभ्यो विधिः पुत्रान्प्रयच्छति ।
ननु मे मन्दभाग्यायास्तनयावाप्तिसंकथा ॥ ३७ ॥
इत्युदश्रुमुखीं देवीं विलोक्य प्राह पिङ्गला ।
समरश्रीरिव जयं देवि पुत्रमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
रथ्याशूकरतुल्यानां पापिनां बहुलोऽन्वयः ।
दैवात्तु सत्त्वमहतां जन्म पुण्यवतां क्वचित् ॥ ३९ ॥
ब्राह्मणीवचसा किंचिदवाप्ता शोकतानवम् ।
स्वयं वत्सेश्वरोऽभ्येत्य देवीं चक्रे धृतेः पदम् ॥ ४० ॥
साथ पुत्रार्थिनी देवमाराध्य तपसा शिवम् ।
स्मरावतारं तनयं प्राप्स्यसीत्याप तद्वरम् ॥ ४१ ॥
स्वप्ने च शुभ्रमहसा जटामण्डलधारिणा ।
दत्तं दिव्यफलं प्राप्य राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥
अथादत्तशुचिच्छाया गर्भं भूपालवल्लभम् ।
चन्द्रं क्षीरोदवेलेव जाह्नवीव षडाननम् ॥ ४३ ॥
सा व्यक्तदौहृदा चेन्दुमुखी जृम्भालसंस्थितिः ।
बभार भग्नत्रिवलीलेखारम्यतरं वपुः ॥ ४४ ॥
तस्या दौहृदसंकल्पो बभूवोन्नतिसूचकः ।
आकाशगमनोत्साहे तस्यामन्यत भूपतिः ॥ ४५ ॥
विधाय यन्त्ररचितं विमानं जवनैर्हयैः ।
व्यधाद्वासवदत्ताया नभःक्रीडारतिं नृपः ॥ ४६ ॥
विद्याधरकथाश्चर्यश्रवणे जातकौतुकाम् ।
यौगन्धरायणोऽभ्येत्य तामाह नृपसंनिधौ ॥ ४७ ॥
अवदद्युक्ततावारमत्त्वं पुत्रमवाप्स्यसि ।
पुनोऽन्यया व्योमगतौ शुभाख्याने च ते मतिः ॥ ४८ ॥

---

१. 'शुनय' ख. २. 'पाण्डुम' ग. ३. 'म' ग. ४. 'मन.' ख.
५. 'र' ग.

शृणु विद्याधरकथां हर्षपीयूषवर्षिणीम् ।
भावी कल्याणवंसुधे फलितं त्वन्मनोरथैः ॥ ४९ ॥
अस्ति साधुमनःस्वच्छस्फटिको हिमभूभृतः ।
विद्याधराणां वसतिः कैलासो नाम शेखरः ॥ ५० ॥
जीमूतकेतुरभवत्तत्र विद्याधरेश्वरः ।
वंशे कल्पतरुर्यस्य संपूरितमनोरथः ॥ ५१ ॥
जीमूतवाहनस्तस्य पुत्रोऽभूत्सत्त्वसागरः ।
यद्यशश्चन्द्रिकाधौतमद्यापि भुवनत्रयम् ॥ ५२ ॥
पित्रा दत्ताभिषेकोऽसौ विततार सुरद्रुमम् ।
हेमवर्षणमर्थिभ्यः करुणापूर्णमानसः ॥ ५३ ॥
दत्तकल्पतरोस्तस्य पापा राज्यजिहीर्षवः ।
विद्याधराधिपास्तस्थुः संहताश्छद्मनिश्चयाः ॥ ५४ ॥
जीमूतवाहनो ज्ञात्वा तेषां कुटिलचेष्टितम् ।
स्वयं शक्तोऽपि तत्याज राज्यं वैरपराङ्मुखः ॥ ५५ ॥
स पित्रा सहितः प्रायाद्विरक्तो मलयाचलम् ।
मरुत्ताण्डवितोद्दण्डश्रीखण्डतरुमण्डलम् ॥ ५६ ॥
तत्र निर्झरहुङ्कारिरमणीयशिलातले ।
आसीनः संददर्शाग्रे दिव्यं सिद्धकुमारकम् ॥ ५७ ॥
विलोक्य कौतुकाविष्टस्तं पप्रच्छ महाद्युतिम् ।
कस्त्वं कस्य सुतो वेति स च पृष्टोऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥
विश्वावसोः सिद्धपतेरहं मित्रावसुः सुतः ।
स्वसा मलयवत्यस्ति मम लावण्यकौमुदी ॥ ५९ ॥
जाने विद्याधरेन्द्रं त्वां देव जीमूतवाहनम् ।
योग्यां तवैव तां मन्ये रतिं रतिपतेरिव ॥ ६० ॥
इति प्रियं वचः श्रुत्वा प्राह जीमूतवाहनः ।
स्मरामि पूर्वभार्यासौ दयिता तव चेत्स्वसा ॥ ६१ ॥

---

१. 'तनये' ख. २. 'रम्य' ख. ३. 'ता मे तव स्वसा' ख.

श्रृणु जन्मान्तरकथां ममेमां तत्समागमे।
निर्माल्योल्लङ्घनाच्छंभोः पुरा मानुषतां गतः॥ ६२॥
महाधनस्य वणिजः संप्राप्तः पुत्रतामहम्।
वसुदत्ताभिधानोऽहं विसृष्टो द्रविणार्जने॥ ६३॥
पित्रा विन्ध्याटवीं घोरामविशं शवराकुलाम्।
तत्र दस्युबलैर्वध्या नीतोऽहं चण्डिकागृहे।
दृष्टः शवरराजेन तद्वन्धाच्च विमोक्षितः॥ ६४॥
ततः प्रतिनिवृत्तोऽहं पित्रे सर्वं निवेद्य तत्।
स्थितस्तत्प्रत्युपकृतिध्यानस्तिमितमानसः॥ ६५॥
ततः कदाचिद्बलिनो राज्ञस्तं वशमागतम्।
कृतोपकारं शवरं धनेनाहममोचयम्॥ ६६॥
स वधान्मोचितो यत्नात्कृतज्ञः शवरो मया।
कन्या दृष्टा मया भद्र प्रतिकर्तुं ममाह च॥ ६७॥
ततोऽहं स्वयमुत्ताल्तमालसरलाकुलम्।
नीतः प्रालेयशैलेयच्छायाशबलिताम्बरः॥ ६८॥
तत्र यामाह शवरः पुरा दृष्टेह कन्यका।
मया मदनमाङ्गल्यमालिकालोचनामृतम्॥ ६९॥
सिंहाधिरूढा गौरीव हराराधनसंगता।
सोत्सुका धनमभ्येत्य मया स्वत्कथया कृता॥ ७०॥
इत्युक्त्वा नलिनीखण्डमण्डितोपान्तमादरात्।
सोऽदर्शयत्तदा चारु मम शंभुनिकेतनम्॥ ७१॥
ध्रुवं शिवार्चनरता न चिरादेष्यतीत्यहम्।
ध्यात्वा चिरं स्थितस्तत्र कृतस्नानहरार्चनः॥ ७२॥
अथ पञ्चाननारूढामागतां तत्र कन्यकाम्।
दर्शितां शवरेणाराद्पश्यं मन्मथोत्सवम्॥ ७३॥

१. 'कन्या दृष्टा पुरा तस्मै प्रतिकर्तुं ममोचत.' ख. २. 'दर्शयत्तदा गिरीशेन्दुमन्दिरम्' ख.

शीतांशुशुभ्रवसनां तारहारकरोज्वलाम् ।
तुषारशिखरीन्द्रस्य प्रत्यक्षामिव देवताम् ॥ ७४ ॥
अयाचं तामहं कान्तां पूर्वं रचितसंविदम् ।
शबरेण कुरङ्गाक्षीमचिरेण मनोवतीम् ॥ ७५ ॥
तामादाय ततः कान्तां गत्वा निजपुरीं शनैः ।
अभजं शबरोपेतः कायं विभ्रमवान्श्रियम् ॥ ७६ ॥
ततः स सिंहः सहसा भूत्वा विद्याधराकृतिः ।
उवाच नष्टशापो मे दिष्ट्या युष्मत्समागताम् ॥ ७७ ॥
अहं चित्राङ्गदो नाम जवादुल्लङ्घ्य नारदम् ।
तच्छापात्सिंहतां यातः पुरा विद्याधराधिपः ॥ ७८ ॥
इयं मनोवती नाम तनया मम सुन्दरी ।
तव भार्या चिरं स्पृष्टा धृता केसरिणा मया ॥ ७९ ॥
यदा तव सुतां कश्चित्परिणेष्यति मानुषः ।
तदा विमोक्ष्यसे शापान्मामुवाचेति नारदः ॥ ८० ॥
तदेतन्मुक्तशापोऽहं गच्छामीत्यभिधाय सः ।
प्रययौ भूषणमणिच्छायाशबलिताम्बरः ॥ ८१ ॥
[ततोऽहमपि कालेन भुक्त्वा मर्त्यसुखश्रियम् ।
हिरण्यदत्तमासाद्य पुत्रं वंशविवर्धनम् ॥ ८२ ॥][1]
मनोवतीसखो गत्वा पुण्यं कालंजरं गिरिम् ।
शबरानुगतो ध्यात्वा शंकरं तनुमत्यजम् ॥ ८३ ॥
जीमूतवाहनः सोऽहं कन्या मलयवत्यपि ।
प्रिया मनोवती सैव शबरस्त्वं स मे सुहृत् ॥ ८४ ॥
इति मित्रावसुः श्रुत्वा विद्याधरपतेर्वचः ।
मित्रे निवेद्य वृत्तान्तं विवाहं विदधे स्वसुः ॥ ८५ ॥
अवाप्य सिद्धतनयां मानसोल्लासचन्द्रिकाम् ।
लावण्यविभ्रममहीं मनोरथशतोचिताम् ॥ ८६ ॥

---

1. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

सरसंभोगसुभगस्तद्विलासरसाकुलः ।
अमन्दानन्दसंदोहं भेजे जीमूतवाहनः ॥ ८७ ॥
ततः कदाचिद्विहरन्स मित्रावसुना सह ।
ददर्श दुःखनिभृतध्यानं फणिकुमारकम् ॥ ८८ ॥
स तेन शङ्खचूडाख्यः पृष्टः प्राह भयाकुलः ।
कद्रूश्च विनता चेति कश्यपस्य प्रिये पुरा ॥ ८९ ॥
वालधौ भास्कराश्वानां सितासितविवादतः ।
पणं दास्याय चक्राते प्रतिज्ञाकृतनिश्चये ॥ ९० ॥
कृष्णवालान्विधायाश्वान्कद्रूपुत्रैर्भुजंगमैः ।
दास्यं निनाय विनतां व्याजाद्गरुडमातरम् ॥ ९१ ॥
तस्या निशम्य दास्यं तत्पीयूषाहरणावधिः ।
वैनतेयो बहुत्रागान्मातुर्दास्यमवारयत् ॥ ९२ ॥
जयात्पीयूषमाहृत्य जित्वा शक्रं खगेश्वरः ।
प्रदाय काद्रवेयेभ्यो दासभावादमुच्यत ॥ ९३ ॥
धृतं पीयूषकलशं कुशेष्वभ्येत्य वासवः ।
जहार तत्क्षणाद्रींश्च लिलिहुः पन्नगाः कुशान् ॥ ९४ ॥
ततो द्विजिह्वतां प्राप्ताः खरदर्भावलेहनैः ।
विष्णोर्वरात्सुपर्णस्य भक्ष्यतां पन्नगा ययुः ॥ ९५ ॥
ततः कुलक्षयभयात्त्वसौ वारेण कल्पितः ।
नागो वासुकिना नित्यं स वारोऽद्य मम क्रमात् ॥ ९६ ॥
इत्याकर्ण्यैव करुणापूर्णो जीमूतवाहनः ।
अहं तार्क्ष्यं भवद्वेषो गच्छामीत्यभ्यभाषत ॥ ९७ ॥

निर्वैरिता विनयता प्रियवादिता च
प्राणैरपि प्रणयिनां प्रियपूरणं च ।
इत्युत्तमोहमदमानविषोल्बणस्य
संसारघोरजलधेरमृतच्छटेव ॥ ९८ ॥

मित्रावसुं विसृज्याथ व्यपदेशेन सत्वरः ।
शङ्खचूडं च सत्त्वस्थे वैनतेयशिलां ययौ ॥ ९९ ॥
तत्र नागास्थिसंघाते निर्यद्भूरिवसाकुले ।
गरुडागमनाकाङ्क्षी तस्थौ विगतसंभ्रमः ॥ १०० ॥
ततः प्रलयसंभ्रान्तकल्पान्तपवनाकुलम् ।
[अकम्पत जगत्तुङ्गतरङ्गोत्तुङ्गसागरम् ॥ १०१ ॥],
अथादृश्यत मार्तण्डमण्डलोद्दण्डतेजसा ।
गरुत्मान्काञ्चनमयीः कुर्वन्निव दिशो दश ॥ १०२ ॥
स चण्डचञ्चुचरणाघातविश्लिष्टविग्रहम् ।
जीमूतवाहनं चक्रे सहसा पतगेश्वरः ॥ १०३ ॥
अभ्रष्टवदनच्छायं तमालोक्य निराकुलम् ।
धुर्यः सत्त्ववतां कोऽयमिति तार्क्ष्यो व्यचिन्तयत् ॥ १०४ ॥
पृष्टः कोऽसीति वृत्तान्तं स्वयं तस्मै न्यवेदयत् ।
तुष्टश्च वरदोऽसीति तमाह भुजगान्तकः ॥ १०५ ॥
हतानामस्थिभूतानां जीवितं फणिनां ततः ।
नागाशननिवृत्तिं च सोऽप्याचत वरं वरम् ॥ १०६ ॥
पतगेन्द्रे तथेत्युक्त्वा गते सिक्त्वा सुधारसैः ।
पित्रा मलयवत्या च संगतो बान्धवैरपि ॥ १०७ ॥
विद्याधरैः समभ्येत्य प्रार्थितस्तुहिनाचले ।
चक्रवर्तिपदं भेजे निजं जीमूतवाहनः ॥ १०८ ॥
श्रुत्वेति राजमहिषी विद्याधरकथाद्भुता ।
बभूव हर्षसंपूर्णा ध्यायन्ती तस्य चेष्टितम् ॥ १०९ ॥

इति जीमूतवाहनाख्यायिका ॥ ३ ॥

पुनः कदाचित्सस्पृहे देवीं संसदि भूपतिः ।
यौगन्धरायणपुरः प्रोवाच श्रवणामृतम् ॥ ११० ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. २. 'स्वस्थे' ख. ३. 'आनन्दन्दरसुखी बभौ प्रातरिवाब्जिनी' ख.

देवि मामवदत्स्वप्ने भस्मसेरो जटाधरः।
गजेन्द्रकृत्तिवसनः श्यामकण्ठस्त्रिशूलधृक् ॥ १११ ॥
सर्वविद्याधराधीशं स्मरं जन्मान्तरागतम्।
जनयिष्यसि लोलाक्षि पुत्रं वंशविभूषणम् ॥ ११२ ॥
प्रातर्वत्सेश्वरपुरो दम्पत्योर्भविता मिथः।
विवादस्तत्र पुरुषो निष्पापो न तु तद्वधूः ॥ ११३ ॥
उक्त्वेत्यदर्शनं याते तस्मिन्हर्षवशादहम्।
प्रबुद्धा मागधवधूवृन्दमङ्गलगीतिभिः ॥ ११४ ॥
इत्युक्तवत्यां भूपालवल्लभायां नरेश्वरम्।
प्रविश्य प्रणतोऽभ्येत्य प्रतीहारो व्यजिज्ञपत् ॥ ११५ ॥
देव द्वारि स्थिता कापि योषिद्बन्धुजनावृता।
भर्त्रा विवादं भर्तव्यं यात्रायां समुपागता ॥ ११६ ॥
सपुत्रया तया क्रुष्टस्तद्बन्धुजनताडितः।
स वक्ति पुरुषः सर्वं दत्तमस्यै मया धनम् ॥ ११७ ॥
न किंचिदिति योषिच्च प्रमाणमधुना नृपः।
इति प्रतीहारवचः श्रुत्वा मन्त्रीत्यवोचत ॥ ११८ ॥
साक्ष्यं साक्षात्त्रिनेत्रेण देव्याः स्वप्ने प्रमापितम्।
निष्पापः पुरुषस्तावत्तथाप्यन्विष्यतां पुनः ॥ ११९ ॥
तस्यै दत्तं न दत्तं वा ज्ञातव्यं चेति साक्षिभिः।
लोकप्रत्ययसारा हि महतां प्रभुविष्णुता ॥ १२० ॥
उक्त्वेत्यमात्ये विरते तयोर्विवदमानयोः।
स्वयं श्रुत्वा नृपश्चक्रे साक्षिदोषं विनिर्णयम् ॥ १२१ ॥
ततो वसन्तकः प्राह तां कथावसरे हसन्।
अन्यासक्तेव योषैषा सती द्वेष्टि निजं पतिम् ॥ १२२ ॥
वाराणस्यां पुरा वीरो बभूव नृपसेवकः।
रूपाभिजनसंपन्नो नाम्ना सिंहपराक्रमः ॥ १२३ ॥

भार्या कलहकार्याख्या तस्यासीत्परुषाक्षरा ।
धनमत्तोऽपि स तया शोषितः कलहाग्निना ॥ १२४ ॥
स विन्ध्यवासिनीं गत्वा तपसा प्राप तद्वरात् ।
निधानं हेमसंपूर्णं रत्नपात्रं च निर्मलम् ॥ १२५ ॥
चक्षुस्तस्मिन्समाधाय पात्रे यो यः प्रतीक्षते ।
लोकेऽस्मिंस्तस्य तद्द्वारा पूर्वजातिर्विलोक्यते ॥ १२६ ॥
इति देवीगिरा ज्ञात्वा पात्रे कृत्वा स लोचने ।
प्राजातौ सिंहमात्मानं जायामृक्षीं च दृष्टवान् ॥ १२७ ॥
त्यक्त्वा जातिविरुद्धं च तत्कलत्रं रुषः पदम् ।
समानजातिसुभगां तेनैवालोक्य कन्यकाम् ।
[२]………………सिंहात्मा न जायकाम् ॥ १२८ ॥
रत्नगुप्तस्य वणिजो भेजे सिंहवतीं सुताम् ।
निरस्य योषितं हीनां प्राणिजातविरोधिनीम् ॥ १२९ ॥
इत्येवं पूर्वसाजात्यविरोधात्क्रमतोऽपि या ।
नृणां भार्यासुहृत्पुत्रैर्जायते कलहानलः ॥ १३० ॥
इति सिंहपराक्रमाख्यायिका ॥ ४ ॥
वसन्तकस्येति गिरं श्रुत्वामृहिस्मितो नृपः ।
साक्षिवादजितां तां च निराश्चकुर्वधूं पुरात् ॥ १३१ ॥
अत्रान्तरे सुतं प्राप तुल्यं यौगन्धरायणः ।
मरुभूतिकनामानं निधानमिव संपदाम् ॥ १३२ ॥
पुत्रं हरिशिखाख्यं च रमण्वान्समवाप्तवान् ।
नित्योचितः प्रतीहारो लेभे पुत्रं च गोमुखम् ॥ १३३ ॥
एते सहाया वत्सेशसूनोर्विद्याधरप्रभोः ।
भविष्यन्ति गिरं जातेष्वेषु देवी तमम्बरात् ॥ १३४ ॥
अथ पुण्यकृतां योग्ये मुहूर्ते शुभदैवते ।
असूत तनयं देवी मुरारिमिव देवकी ॥ १३५ ॥

१. 'ह' ख. २. त्रुटितमिदं तु पुस्तकद्वयेऽपि वर्तते. ३. 'गर्भस' ग.

सा तेन स्फारमहसा द्यौरिवामृतरोचिषा।
बभौ देवी कुमारेण कुमारेणेव पार्वती ॥ १३६ ॥
ततो महोत्सवोत्साहप्रमोदाकुलतां गतम्।
बभूव नगरं हर्षादालिङ्गितमिव श्रिया ॥ १३७ ॥
अथोच्चचार गगनात्पुष्पवर्षपुरःसरा।
दिव्यवाणी नृपस्याग्रे पीयूषादिव निर्गता ॥ १३८ ॥
अयं विद्याधरनृपश्चक्रवर्ती तवात्मजः।
नरवाहनदत्ताख्यो जातः कामो महीपतौ ॥ १३९ ॥
इति शङ्खस्वराविद्धं दिव्यं दुन्दुभिसंभृतम्।
श्रुत्वाप्सरोगीतियुतं ननन्द वसुधाधिपः ॥ १४० ॥
मरुभूतिप्रभृतिभिर्मन्त्रिसेनाधिपात्मजैः।
सेव्यमानः स ववृधे सह लोकमनोरथैः ॥ १४१ ॥
जातेनोदयभूभृताथ महसा तेन प्रवृद्धश्रिया
हर्षोल्लासकलाकलापनिधिना नेत्रामृतस्यन्दिना।
आनन्दस्फुटचन्द्रिकामृतसुधाकान्तेन बालेन्दुना
सर्वाशापरिवेशभूषणतुलामासाद्य वन्द्योऽभवत् ॥ १४२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे नरवाहनजन्मनामा चतुर्थो लम्बकः समाप्तः।

---

## चतुर्दारिकानामा पञ्चमो लम्बकः।

### प्रथमो गुच्छः[1]।

त्वङ्गद्गङ्गमुदग्रचन्द्रदुशकलं वेल्लत्कपालाकुलं
पायाद्वः श्वसदङ्गदोरुभुजगं चण्डीपतेस्ताण्डवम्।
यस्योद्भ्रान्तभुजप्रबन्धचलनाघातोत्सलत्सागर-
स्फाराम्भःपटलैः पुरं पटमिवासक्तं समातन्वत[2] ॥ १ ॥
अथ हृष्टं महीपालं प्राह यौगन्धरायणः।
सुरोचितगुणाढ्याया देव दिष्ट्या विवर्धसे ॥ २ ॥

---

१ 'ः' ख. २. 'तन्वते' ख.

रक्षायै तव पुत्रस्य स्वयमेत्य पिनाकिना ।
नियुक्तः स्तम्भको नाम दुरितस्तम्भको गणः ॥ ३ ॥
अवतीर्णं प्रभुं ज्ञात्वा सर्वे विद्याधराधिपाः ।
वर्तन्ते भवतः सूनोरभिषेकप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥
इति नारदनिर्दिष्टं निवेद्यामात्यपुंगवः ।
विदधे राजपुत्रस्य विद्याविनयसंपदम् ॥ ५ ॥
प्रकृष्टानन्तसामन्तमौलिमालास्खलन्मां सभाम् ।
अध्यासीनेऽथ नृपतौ हिमवर्षमभूत्नभः ॥ ६ ॥
ततोऽवतीर्य नभसा सभां विद्याधरोऽविशत् ।
शक्रचापशतैः कुर्वन्भूषणांशुशतैर्दिशः ॥ ७ ॥
गण्डताण्डवितानीलरत्नकुन्तलकान्तयः ।
मुखेन्दौ चक्रिरे तस्य लक्ष्म लेखा शशभ्रमम् ॥ ८ ॥
श्यामलाकारखड्गांशुभूषितः स बभौ मुहुः ।
वदन्नमिव बिभ्राणो नीलोत्पलदलस्रजम् ॥ ९ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य विस्मयालिंभृतो नृपः ।
लोलहारः समुत्तस्थौ संरम्भरणिताङ्गदः ॥ १० ॥
प्राप्तपूजासने तस्मिन्राज्ञा सह समासदः ।
तन्मुखन्यस्तनयना बभूवुर्लिखिता इव ॥ ११ ॥
पृष्टः कोऽसीति स प्राह शुभ्रदन्तांशुसंचयः ।
कैलासवासिप्रीत्येव रचयन्स्फाटिकीं सभाम् ॥ १२ ॥
नेत्रोत्सवं श्रुतिसुखं कल्याणानां च संपदम् ।
किरन्ति दर्शनालापसंगतानि भवादृशाम् ॥ १३ ॥
शक्तिदेवाभिधानोऽहं देव विद्याधरेश्वरः ।
कैलासवासस्तत्पूर्वं स्वामिनं द्रष्टुमागतः ॥ १४ ॥

---

१. 'व' ख. २. 'हिमविभ्रम' ख. ३. 'पाङ्क्तिः' ख. ४. 'मृगभ्र' ख. ५. 'मिपो' ख. ६. 'सुधा' ख. ७. 'वेग' क.

सर्वविद्याभृतामेष चक्रवर्ती भविष्यति ।
हरप्रसादादाकर्ण्य सरः साक्षात्तवात्मजः ॥ १५ ॥
इत्याकर्ण्य सुधाधारसिक्ताङ्ग इव भूपतिः ।
अदर्शयत्सुतं तस्मै देव्या उत्सङ्गभूषिणम् ॥ १६ ॥
ततः पृष्टो निजकथां भूपालेनाभ्यभाषत ।
प्रणम्य राजतनयं शक्तिदेवः कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥

इति शक्तिदेवसमागमकथा ॥ १

राजा परोपकारीति वर्धमानपुरेऽभवत् ।
तस्य हेमप्रभा नाम वल्लभाभूदनङ्गभूः ॥ १८ ॥
कन्या कनकलेखाख्या तस्यां तेन महीभुजा ।
उपपादि जगन्नेत्रयात्रा लक्ष्मीर्मनोभुवः ॥ १९ ॥
कनकाख्या ननु पुरी दृष्टा येन स मे पतिः ।
इत्युद्वाहविधौ चक्रे सा मतं दृढनिश्चया ॥ २० ॥
पुत्र्याः प्रतिज्ञां विज्ञाय प्रौढयौवनसंपदः ।
अज्ञातां च पुरीं मत्वा नृपः शोकाकुलोऽभवत् ॥ २१ ॥
दृष्टा कनकपुर्याख्या येन लक्ष्मीं सुतां स मे ।
संप्राप्स्यतीति विदधे नृपः पटहघोषणम् ॥ २२ ॥
न दृष्टा न श्रुता वापि सा पुरीति महीतले ।
वचो निशम्य लोकानां राजाभूद्भृशदुःखितः ॥ २३ ॥
अत्रान्तरे शक्तिदेवो द्विजन्मा धूतकर्मृषा ।
भूपालमब्रवीदेत्य मया दृष्टेति सा पुरी ॥ २४ ॥
इति ब्रुवाणं तं राजा नीरवा स्वतनयान्तिकम् ।
अनेन पुत्रि सा दृष्टा पुरीति प्राह सादरम् ॥ २५ ॥
क सा कथं वा दृष्टेति पृष्टः कनकलेखया ।
पुरीमकथयन्मिथ्या वर्णनानिपुणोऽथ सः ॥ २६ ॥

१. 'वेग' क.

असकृद्बहुजल्पोऽयमिति मिथ्यावचः क्षुधा ।
स तया भ्रुकुटिभ्रान्त्या चेटिकाभिस्तिरस्कृतः ॥ २७ ॥
स निरस्तोऽवमानाग्निलुष्टो दुर्गतिपीडितः ।
कनकाख्यां पुरीं द्रष्टुं प्रययौ कृतनिश्चयः ॥ २८ ॥
तं समुत्सारितं कृत्वा चिन्तासंतापितो नृपः ।
शुशोच तनयां पश्यन्फुल्लयौवनशालिनीम् ॥ २९ ॥
[1]........................................................ ।
........................................................ ॥ ३० ॥
अथासकन्यकारत्ने पुरोहितमनुस्थितम् ।
यत्कौसलेन नगरे धनवान्को न वञ्चितः ॥ ३१ ॥
ततो महाधनं ज्ञात्वा भूमिपालपुरोहितम् ।
[2]निर्जरे रत्नमालेव कथं दुःखा [च] मे सुता ॥ ३२ ॥
किं निरस्तस्त्वया पुत्रि स दृष्टा येन सा पुरी ।
पितुः श्रुत्वेति सा प्राह कन्या कमललोचना ॥ ३३ ॥
धूर्तः स कितवो देव न तत्त्वं किंचिदुक्तवान् ।
साधुभ्रान्त्या हि मुष्णन्ति धूर्ताः सरलवञ्चकः ॥ ३४ ॥
पुरा रत्नपुरे धूर्तावभूतां शिवमाधवौ ।
उज्जयिन्यां पृथग्वेषौ जग्मतुर्वञ्चनोद्यतौ ॥ ३५ ॥
पूर्वं शिवः समभ्येत्य स्वैरं दम्भव्रतं श्रितः ।
शिप्रातीरे जपरतस्तस्थौ विश्वासयञ्जनम् ॥ ३६ ॥
विभूष्टराजवंशेन धूर्तश्च स हि माधवः ।
तं पुरोहितमभ्येत्य दत्तोपायनमभ्यधात् ॥ ३७ ॥
त्वया सौहार्दमाधाय सेवे राजानमुत्तमम् ।
इति शंकरदत्ताख्यः श्रुत्वा वाचं पुरोहितः ॥ ३८ ॥
अहं स्वदेशविभ्रष्टो राजपुत्रो महाधनः ।
तथेत्युक्त्वास्य विदधे राजसिंहेन संगमम् ॥ ३९ ॥

१. इदं त्रुटिचिह्नं पुस्तकद्वयेऽपि. २. ख-पुस्तकेऽधिकः पाठ उपलभ्यते.

सेवमानो नरपतिं पुरोहितगृहस्थितः ।
स कदाचिदनिर्देश्य रोगान्मिथ्यातुरोऽभवत् ॥ ४० ॥
अस्वस्थमथ विज्ञाय दुःखाक्रान्तः पुरोहितः ।
पुनः पुनः समभ्येत्य तमपृच्छदनामयम् ॥ ४१ ॥
सोऽब्रवीद्राजयोग्यं मे विद्यते रत्नभूषणम् ।
पात्रमानय यस्मै तद्दत्त्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४२ ॥
यियासोः पञ्चतां पुंसः सुहृदां भिषजां पुरः ।
दीर्घान्धकारे पततो दानमेव परा गतिः ॥ ४३ ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सरलात्मा पुरोहितः ।
आनिनाय बहून्विप्रान्स च तान्नाभ्यमन्यत ॥ ४४ ॥
ततः शिप्रातटस्थं तं जपव्रतपरायणम् ।
पुरोहितः शिवं गत्वा प्राह मित्रमनोगतम् ।
किं धनैरगृहस्थस्य मामेत्यामीलितेक्षणम् ॥ ४५ ॥
अथोपपत्तिवचनैस्तमभ्यर्च्य पुरोहितः ।
प्रियां पुत्रीं प्रदायास्मै प्रतिग्रहमदापयत् ॥ ४६ ॥
माधवस्तद्गिरा तस्मै काचकृत्रिमभूषणम् ।
प्रतिपाद्याभवत्स्वस्थो मूर्तां मायामिवात्मनः ॥ ४७ ॥
विक्रीणानन्ततो ज्ञात्वा प्राह जामातरं शिवम् ।
पुरोहितो न कालेऽस्मिन्योग्यस्ते रत्नविक्रयः ॥ ४८ ॥
गृहाण मे धनं सर्वं मय्येवार्पय भूषणम् ।
इत्युक्त्वा तौ पराधृत्य धनलेखं न चक्रतुः ॥ ४९ ॥
शिवस्तद्धनमादाय माधवेन सहानिशम् ।
प्रमोदं प्राप्य संभोगसुधासंसिक्तमानसः ॥ ५० ॥
पुरोहितोऽपि कालेन क्रीतकृत्रिमभूषणः ।
नितः स्वहस्तलेखेन विवादे भूपतेः पुरः ॥ ५१ ॥
त्वया व्याजादिदं दत्तमिति पृष्टः सभासदैः ।
माधवोऽप्याह दत्तं यत्तत्फलं समुपेष्यति ॥ ५२ ॥

इति भ्रमन्ति कूटेन धूर्ता वञ्चयितुं जनम् ।
कस्तेषां हि वशे धीमान्विश्वासं याति मायिनाम् ॥ ५३ ॥

इति शिवमाधवाख्यायिका ॥ २ ॥

श्रुत्वेति वचनं पुत्र्याः प्राह शोकाकुलो नृपः ।
पुत्रि त्वया प्रतिज्ञाय संशये जनिता वयम् ॥ ५४ ॥
त्वां यौवनवतीमाह कन्यकैव सुमध्यमे ।
अप्रत्ययश्च लोकोऽयं न जाने किं भविष्यति ॥ ५५ ॥
अन्यं भर्तारमासाद्य कल्पिताश्चर्यवादिनः ।
नरास्त्यक्तस्वकर्माणो मोदन्ते साधुनिन्दया ॥ ५६ ॥
परापवादं संहृष्टा गुणलेशासहिष्णवः ।
लीलयोत्पादयन्त्येव मिथ्यादोषं सतां खलाः ॥ ५७ ॥
कुसुमाख्ये पुरे पूर्वं तपस्वी नियतेन्द्रियः ।
उवास ब्राह्मणवरो हरस्वामी गुणाधिकः ॥ ५८ ॥
ततः कदाचिज्जनिता मध्ये तद्गुणसस्तवे ।
उवाच दुर्जनः कश्चिदुष्माभिः किं तु न श्रुतम् ॥ ५९ ॥
बाला दुरात्मनानेन भक्षिता निखिलाः पुरे ।
इति तत्पथे वाक्यमेकद्वित्रिचतु क्रमात् ॥ ६० ॥
हा हरस्वामिना कृत्स्ना बालका भक्षिताः पुरे ।
प्रवाह इति सर्वत्र बभूव निरवग्रहः ॥ ६१ ॥
ब्रह्मोत्तरे जनपदे तद्विवासनसंगते ।
निजापवादनिर्विण्णो हरस्वामी सभां ययौ ॥ ६२ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य सामर्षभयविह्वला ।
चकम्पे भक्षणभयात्कृतान्तालोकनादिव ॥ ६३ ॥
ततो व्यजिज्ञपत्सर्वान्हरस्वामी कृताञ्जलिः ।
दारका भक्षिताः कस्य मया भूतां स संसदि ॥ ६४ ॥

१. 'पतिता' ख. २ 'न' ख.

कियन्तस्ते कियन्तस्ते पुत्राः सन्तीति तान्क्रमात् ।
पप्रच्छ भक्षितास्तेभ्य कियन्तश्चेति गण्यताम् ॥ ६५ ॥
श्रुत्वेति तस्य वचनं गणयित्वा निजान्सुतान् ।
निर्विकारा वयमिति प्रययुर्लज्जिता द्विजाः ॥ ६६ ॥
इत्यनालोक्य सद्भावं वदन्त्येके तथा परे ।
पशूनामिव यूथोऽयं गतानुगतिको जनः ॥ ६७ ॥
इति हरस्वाम्याख्यायिका ॥ ३ ॥

पितुः श्रुत्वेति वचनं न चचाल समीहितान् ।
वज्रलेपादपि दृढो मानिनीनां हि निश्चयः ॥ ६८ ॥
अत्रान्तरे शक्तिदेवः प्रययौ दक्षिणां दिशम् ।
द्रष्टव्या काञ्चनपुरी मर्तव्यं चेति [1]संपदा ॥ ६९ ॥
ततो विन्ध्याटवीं प्राप्य तालहिन्तालमालिताम् ।
ददर्श सूर्यतपसं मुनिं मुनितपोवने ॥ ७० ॥
पृष्टः क्व प्रस्थितोऽसीति मुनिना विगतक्लमः ।
गच्छामि काञ्चनपुरीं क्व च सास्तीत्यभाषत ॥ ७१ ॥
प्रयासि नैव जानासि विचित्रं [2]चेतवेप्सितम् ।
अहं तात न जानामि चिरायुरपि तां पुरीम् ॥ ७२ ॥
[3]काम्पिल्लेऽस्ति मम भ्राता स्थितो दीर्घतपा मुनिः ।
अपि जाने स जानाति न चेदन्यो न विद्यते ॥ ७३ ॥
इति तस्य गिरा गत्वा काम्पिल्ले मुनिसत्तमम् ।
पप्रच्छ तं स च प्राह न जानामीति तां पुरीम् ॥ ७४ ॥
दासराज्ञोऽस्ति जलधावुत्स्थलद्वीपसंश्रयः ।
मन्ये सत्यव्रताख्योऽसौ वृद्धो जानाति तां पुरीम् ॥ ७५ ॥
श्रुत्वेति दीर्घतपसः शक्तिदेवो मुनेर्वचः ।
तूर्णमुत्स्थलद्वीपं प्रतस्थे कृतनिश्चयः ॥ ७६ ॥

---

१ 'गतिदा' ख. २ 'संपदा' ख. ३ 'तव चेप्सितम्' ख. ४ 'तावत' ख.
५ 'इतो विदूरे भ्राता मे स्थितो दीर्घतपा मुनिः' इति पुस्तकेऽन्यः पाठः.

स गच्छन्नाससादाब्धौ वणिजं द्वीपगामिनम्।
समुद्रमल्पनामानं निधिनाथमिवापरम्॥ ७७॥
आरुह्य तत्प्रवहणं सौहार्देन निषेव्य तम्।
ददर्श पयसां राशिं गम्भीरावर्तभीषणम्॥ ७८॥
ब्रह्माण्डं मण्डपस्फारस्फटिकस्तम्भविभ्रमैः।
उत्तुङ्गविपुलाभोगतरङ्गैर्लङ्घिताम्बरम्॥ ७९॥
घनगर्जितविस्फूर्जन्मरुज्ज्वनितोर्जितम्।
[1]अताण्डवचलच्चण्डवीचिदोर्दण्डमण्डलैः॥ ८०॥
आसेव्यमानमभितो पृथुपर्जन्यसंचयैः।
मैनाकरक्षासंजातप्रणयैरिव भूधरैः॥ ८१॥
संसारमिव दुष्पारमायासमिव दुःसहम्।
मायाजालमिवानन्तं मूर्खं खलमिवोद्धतम्॥ ८२॥
तत्र प्रवहणारूढः सोऽपश्यन्निखिला दिशः।
स्फारकल्लोलपटलीदुकूलवलिता इव॥ ८३॥
अथोदतिष्ठद्व्योमश्रीः कालागुरुविशेषकः।
मेघस्तमालमलिनबालसूकरविभ्रमः॥ ८४॥
वातः स वृद्धिं सहसा दुर्जनव्यसनोपमः।
चक्रे लोकं निरालोकं विमोह इव मानवम्॥ ८५॥
ततस्तस्य[2]प्रबोद्भूतवात्यावलयसंप्लवैः।
ययौ जलधितां व्योम व्योमतां च महोदधिः॥ ८६॥
तस्मिंस्तरङ्गसंघट्टस्फोटिताशेषदिक्तटे।
उद्भूतप्रलयोद्भ्रान्तपुष्करावर्तकध्वनिः॥ ८७॥
ततस्तडिति साटोपत्रुटिताशेषबन्धनैः।
अभज्यत प्रवहणं वणिजां हृदयैः सह॥ ८८॥
तस्मिन्निगीर्णे[3] मत्स्येन विशालवपुषा ततः।
शक्तिदेवः परिपतन्गीर्णस्तूर्णं सरंहसा॥ ८९॥

---

१. 'स ताण्डवितमुद्दण्डवीचिदोर्दण्डमण्डलैः' ग. २. 'रभसरुद्ध' ख. ३. 'मग्ने' ख.

वणिग्वरः फलहकासादनाप्राप्तजीवितः ।
मत्स्योऽप्यसावुत्पलकद्वीपबद्धो निषादकैः ॥ ९० ॥
धीवरैर्विनिकृत्तोऽथ मत्स्यो दासपतेः पुरः ।
स विप्रो निर्ययौ जीवन्दुर्विज्ञेया विधेर्गतिः ॥ ९१ ॥
घोरान्धकारान्निर्मुक्तः शक्तिदेवोऽथ विस्मयात् ।
पृष्टो दासाधिपतिना प्राहागमनकारणम् ॥ ९२ ॥
कनकाख्यां पुरीं द्रष्टुं भ्रान्तोऽस्मि पृथिवीमिमाम् ।
न सा दृष्टा श्रुता वापि ततः पृष्टो मया मुनिः ॥ ९३ ॥
स मामुवाच दासानामस्ति सत्यव्रतः पतिः
तं पृच्छेति निशम्याहं संप्राप्तो मकराकरम् ॥ ९४ ॥
तत्र प्रवहणे भग्ने निगीर्णोऽहं जलौकसा ।
दैवाद्भुवमिमां प्राप्तः कर्मबन्धो हि नान्यथा ॥ ९५ ॥
इत्याकर्ण्याब्रवीद्दासः कौतुकाकुलितो द्विजम् ।
सत्यव्रतोऽहमेवासौ न दृष्टा नगरी मया ॥ ९६ ॥
यत्नादन्विष्य वक्ष्यामि विश्रान्तिं भज निर्वृतः ।
इति तस्य गिरा तस्थौ तत्र रात्रिं द्विजाश्रमे ॥ ९७ ॥

इति शक्तिदेवप्रवहणभङ्गकथा ॥ ४ ॥

ततस्तु संगतो दैवाच्चिराद्द्वीपान्तमाश्रितः ।
विज्ञातो मातुलेयेन भ्राता निजकथान्तरे ॥ ९८ ॥
स प्राह विष्णुदत्ताख्यः शक्तिदेवं मुदान्वितः ।
काकतालीययोगेन दिष्ट्या मे बन्धुसंगमः ॥ ९९ ॥
इत्युक्त्वा तत्कथां श्रुत्वा स विनिद्रः श्रमातुरम् ।
तं समाश्वासयद्वीरं कथामकथयन्निशि ॥ १०० ॥
गोविन्दस्वामी नामाग्रब्राह्मणो यमुनातटे ।
निजपार्श्वोपदत्ताख्यौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥ १०१ ॥

१. 'दर्पशालिना' ख. २. 'दीनचित्तं' ख. ३. 'दन्तीर' ख. ४. 'दक्षिणापथे' ख.

दुर्भिक्षोपहतैस्त्यक्त्वा स कदाचिन्निजां पुरीम् ।
प्रययौ काशिनगरीं सपुत्रः सह भार्यया ॥ १०२ ॥
ततः प्रयागमासाद्य पुण्यं दृष्ट्वा महावटम् ।
कपालमालाभरणं सोऽपश्यद्व्रतिनं पुरः ॥ १०३ ॥
स पृष्टो ब्राह्मणं प्राह वियोगस्ते भविष्यति ।
क्षिप्रं विजयदत्तेन भविता च समागमः ॥ १०४ ॥
श्रुत्वेत्युवाच शर्वर्यां शून्यदेवालयान्तरे ।
समार्यः ससुतो विप्रः सदूराध्वश्रमाकुलः ॥ १०५ ॥
अशोकदत्तः सहसा ब्राह्मणी च निरन्तरम् ।
निद्रामवापतुः सर्वदुःखनिःसरणावधिम् ॥ १०६ ॥
ततो विजयदत्तोऽभूद्भृशं शीतज्वरार्दितः ।
फुल्लोत्फुल्लतनुः क्षिप्रं जले मत्स्य इवाभितः ॥ १०७ ॥
गाढं पित्रावगूढोऽपि शीतं तत्याज नैव सः ।
यत्नात्स्नेहान्न तत्याज यथार्थमिव दुर्जनः ॥ १०८ ॥
ययाचे वह्निनेवासौ पितरं दीनया गिरा ।
मध्ये श्मशानमालोक्य दूरादेव चितानलम् ॥ १०९ ॥
पुत्र वित्रासजनकश्चिताग्निः स्पर्शदूषकः ।
अमङ्गलो न सेव्योऽयमिति प्रोवाच तं पिता ॥ ११० ॥
दन्तवीणास्फुरद्वक्त्रो रोमाञ्चोद्धुतविग्रहः ।
शीतज्वरार्तस्तं वह्निं पुनःपुनरयाचत ॥ १११ ॥
पुत्रस्नेहाभिभूतोऽथ समाहर्तुं चितानलम् ।
गोविन्दस्वामिनि गते दारकोऽप्यन्वयाद्रुतम् ॥ ११२ ॥
समाप्य तापविकटां विकीर्णास्थिचितां चिताम् ।
आलिङ्गन्निव सावेगः शनैर्निर्वृतिमासदत् ॥ ११३ ॥
ततः प्रोवाच पितरं ततेदं परिवर्तुलम् ।
द्विजस्य सूनुः श्रुत्वेति काष्ठाग्रेण जघान तम् ॥ ११४ ॥

1. 'तां स' ख. 2. 'फालोफालत' ख. 3. 'त' ख.

प्रदीप्ततरमाभाति वह्नौ रक्ताम्बुजोपमम् ।
श्रुत्वेति तनयं प्राह ब्राह्मणो वीक्ष्य तत्पुरः ।
येन तत्स्फुटनोद्गीर्णवसासिक्तमुखोऽभवत् ॥ ११५ ॥
आस्वाद्यैव समादाय तत्कपालसमाकुलः ।
पीत्वा वसां महाकायो बभूवातिभयंकरः ॥ ११६ ॥
सोऽभूत्प्रकटदंष्ट्राढ्यो विकटो निशि राक्षसः ।
यस्याट्टहासेन दिशश्चक्रन्दुः स्फुटिता इव ॥ ११७ ॥
तस्मिन्वेगात्समाकृष्य पितरं हन्तुमुद्यते ।
मा कृथाः साहसमिति प्रादुरासीद्वचो द्विजः ॥ ११८ ॥
त्यक्त्वा जनकमाकाशं प्रययौ स्फोटकं जवात् ।
कपालस्फोटनामाथ समाहूतः स राक्षसैः ॥ ११९ ॥
प्रातः सुतवियोगार्तिदह्यमानतनुर्द्विजः ।
सभार्यो विललापोच्चैः कारुण्याद्वीक्षितो जनैः ॥ १२० ॥
समुद्रदत्तनाम्नाथ वणिजा दुःखकर्शितः ।
समाश्वस्य गृहं नीत्वा कृतो निजधने विभुः ॥ १२१ ॥
स्मरन्महामतिवचः पुत्रसंगमलालसः ।
स तस्थौ वणिजो गेहे मनोरथशताकुलः ॥ १२२ ॥
अशोकदत्तः शस्त्रास्त्रकलाविद्याविशारदः ।
द्वितीयोऽथ द्विजसुतः प्रख्यातो नगरेऽभवत् ॥ १२३ ॥
अत्रान्तरे नरपतिः प्रतापमुकुटाभिधः ।
समायाते महामल्ले तद्युद्धाय जुहाव तम् ॥ १२४ ॥
अशोकदत्तस्तं भूपपुरो बलवतां वरम् ।
दाक्षिणात्यं महामल्लं मायाविनमपातयत् ॥ १२५ ॥
तत्कर्मतुष्टोऽथ नृपस्तं चक्रे भाजनं श्रियः ।
विचित्रकर्माभिनयैः किमलभ्यं महात्मभिः ॥ १२६ ॥
सेनानियुक्तः स सदा युक्तालापो दिवानिशम् ।

१. 'म' ख. २. 'शस्त्रार्थकलावि' ख. ३. 'सेनाधिपः स तदा यु' ख.

छायेव तस्थौ नृपतेरलक्ष्योचितसंनतिः ॥ १२७ ॥
अथ कालेन भूपालः शिवार्चायै विनिर्गतः ।
दूरात्प्रदोषसंध्यायां शुश्राव विजने गिरम् ॥ १२८ ॥
राजन्नल्पापराधोऽहं शत्रुप्रेरणया सकृत् ।
दण्डपालेन निक्षिप्तः शूले निर्घृणचेतसा ॥ १२९ ॥
दिनमद्य चतुर्थं मे शूलस्थस्यैव जीवतः ।
प्राणाः सुखेन निर्यान्ति नहि दुष्कर्मकारिणाम् ॥ १३० ॥
भृशं मां बाधते तृष्णा तां निवारय भूपते ।
श्रुत्वैव राजा कारुण्याद्दिदेशाग्रे स्थितं द्विजम् ॥ १३१ ॥
अशोकदत्तोऽप्यादिष्टः क्ष्माभुजा निशि धैर्यभूः ।
ययौ कलशमादाय श्मशानं भीरुयन्त्रनम् ॥ १३२ ॥
स तत्र शूलप्रोतस्य ददर्शाधःस्थितां वधूम् ।
दिव्याभरणरोचिष्णुमगमां सिद्धिमिवात्मनः ॥ १३३ ॥
सा प्राह वल्लभोऽयं मे राज्ञा शूले समर्पितः ।
व्यथते चातिकृपणः पश्य प्राणान्न मुञ्चति ॥ १३४ ॥
अस्यैाहं मरणोद्युक्ता स्थिताहं विजने निशि ।
तृषितो याचते वारि मामयं व्यथते मुहुः ॥ १३५ ॥
शूलप्रोतोद्धृतग्रीवं दैवान्नवमिवेश्वरम् ।
नास्मि प्रापयितुं शक्ता जलमेवमधःस्थिता ॥ १३६ ॥
अशोकदत्तः श्रुत्वेति करुणाब्धिरुवाच ताम् ।
मातर्मे स्कन्धमारुह्य देह्यस्मै शीतलं जलम् ॥ १३७ ॥
श्रुत्वेति नवैपृष्ठांसं सा पद्भ्यामारुरोह तम् ।
प्रत्यग्रं निपतद्भूमौ रुधिरं च ददर्श सः ॥ १३८ ॥
उन्नाम्य वदनं दृष्ट्वा भक्ष्यमाणं तयैव तम् ।

१. 'निहित' ख. २. 'मर्माणि याति' ख. ३. 'त्वमरणोद्युक्तास्थिताहं' ख. ४. 'पाययितुं' ख. ५. 'नवपुष्पं' ख. ६. 'उत्तानवदनो दृष्ट्वा' ख.

अशोकदत्तो जग्राह तस्याः पादस्य नूपुरम् ॥ १३९ ॥
सा त्यक्त्वा नूपुरं मायाद्बहुरक्तं विहायसा ।
द्विजात्मजस्तमादाय प्रययौ च नृपान्तिकम् ॥ १४० ॥
तद्वीरचरितं ज्ञात्वा ददौ तस्मै महीपतिः ।
सुतां मदनलेखाख्यामनालेख्यामिव श्रियम् ॥ १४१ ॥
कदाचिदथ तं दिव्यनूपुरं वीक्ष्य भूपतिः ।
तुल्योऽस्यान्यः कुतः प्राप्य इत्याहोत्कलिकाकुलः ॥ १४२ ॥
अभिप्रायं नरपतेर्विज्ञाय कृतनिश्चयः ।
सशानं नूपुराहारी स पुनः प्रययौ द्विजः ॥ १४३ ॥
विक्रीणानो महामांसं मन्त्राकृष्टमहाशवः ।
गृह्णाणेत्युच्चया वाचा वंचने श्रावयन्दिशः ॥ १४४ ॥
तत्र राक्षसकन्याभिः संगतः सत्त्वसागरः ।
तत्स्वामिनीं समासाद्य प्रत्यभिज्ञानमाप्तवान् ॥ १४५ ॥
ममैवासौ त्वया नीतः पुरा वीरेन्द्र नूपुरः ।
गृहाण रत्नरुचिरं द्वितीयमपि नूपुरम् ॥ १४६ ॥
इत्युक्त्वा नूपुरं तस्मै सा सुतां प्रददौ प्रियाम् ।
यत्पुरः कान्तिदारिद्र्याद्विनिद्रो निशि चन्द्रमाः ॥ १४७ ॥
विलासालंकृतमदां मदालंकृतविभ्रमाम् ।
विभ्रमालंकृतानङ्गामनङ्गालंकृताकृतिम् ॥ १४८ ॥
विद्युत्केशीसुतां प्राप्य स तां विद्युत्प्रभाभिधाम् ।
हेमाब्जं नूपुरं तं च पुनः प्राप नृपान्तिकम् ॥ १४९ ॥
राजाप्रतापमुकुटो नूपुरप्राप्तिनन्दितः ।
कमलोत्कलिकमलाकारं प्राप्य तदम्बुजम् ॥ १५० ॥
राज्ञा शंकरपूजार्थं ज्ञातान्यकमलार्थिताम् ।
अशोकदत्तः प्रययौ पुनर्नक्तंचरीं प्रति ॥ १५१ ॥

१. 'परं वन्नूपुरम्' ख. २. 'घवराघा' ख. ३. 'कामिनी स' ख. ४. 'पुरा' ख. ५. 'रचना' ख. ६. 'आकारा' ख. ७. 'तत्र पुनः प्रायात्' ख. ८. 'राजा साद' ख. ९. 'एता' ख.

तं याचमानहेमाब्जं सा श्वश्रूः प्राह राक्षसी ।
त्रिघण्टनाम्नि हिमवच्छिखरेऽस्ति पतिर्मम ॥ १५२ ॥
लम्बजिह्व इति ख्यातस्तेन तत्प्रासमम्बुजम् ।
प्रभोः कपालविस्फोटनाम्नो राक्षसभूपतेः ॥ १५३ ॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नय मां राक्षसप्रभोः ।
तस्य हेमाम्बुजसरो जगादेति द्विजात्मजः ॥ १५४ ॥
तया विहायसा नीतस्ततस्तत्काञ्चनं सरः ।
जघान रक्षारक्षांसि स मारुतिरिवापरः ॥ १५५ ॥
स्वयं कपालस्फोटोऽथ निहताशेषराक्षसम् ।
तं ददर्श सरस्तीरे शापं दृष्ट्वैव सोऽत्यजत् ॥ १५६ ॥
शापमुक्तः स विज्ञाय भ्रातरं संमदाकुलः ।
भ्रातर्विजयदत्तोऽहमित्याह प्रणनाम च ॥ १५७ ॥
अभवं राक्षसपतेरहं सेनापतिश्चिरम् ।
गन्धर्वैर्निहते तस्मिन्नवापं तत्पदं ततः ॥ १५८ ॥
अधुना मुक्तशापोऽहं श्रुत्वेत्यनुजभाषितम् ।
अशोकदत्तः स्वजनैः संगतः प्राप निर्वृतिम् ॥ १५९ ॥
प्रज्ञप्तिकौशिकाभिख्यो विद्याधरपतिस्ततः ।
तावभ्यधाद्युवां पूर्वं विद्याधरकुमारकौ ॥ १६० ॥
गालवस्य मुनेः कन्यां दृष्ट्वा कामवशं गतौ ।
तच्छापान्मर्त्यजन्माद्य युवयोः क्षपितं च तत् ॥ १६१ ॥
गृहीतमधुना विद्यामित्युक्त्वा वितताार सः ।
ततो विद्याधरपदं प्राप्य तौ सह बान्धवैः ॥ १६२ ॥
गोविन्दकूटनामानं दिव्यं व्योमगमं पुरम् ।
ननन्दतुस्त्वमप्येवं भ्रातः शङ्के श्रियः पदम् ॥ १६३ ॥

इत्यशोकदत्ताख्यायिका ॥ ५ ॥

---

१. 'प्राशाब्धि' क. २. 'रक्षो रक्षोऽपि' ख. ३ 'चा' ख. ४. 'परिज्ञाय' ख. ५. 'प्रज्ञप्तिकौशिकाभिख्यो' ख. ६. 'च व्योमगं' ख. ७. 'प्रात' ख.

श्रुत्वेति मातुलसुतादपरेद्युरुपेत्य तम् ।
सत्यव्रतं दासपतिं शुश्राव निजवाञ्छितं ॥ १६४ ॥
रैलकूटाह्वयद्वीपे समुद्रेण प्रतिष्ठितः ।
विष्णुस्तद्वादशीयात्रासमाजे बहुसंगमैः ।
सर्वद्वीपागतजने[3] शङ्के सा ज्ञायते पुरी ॥ १६५ ॥
श्रुत्वेति दाससहितः शक्तिदेवोऽम्बुधिं ययौ ।
व्रजन्पोतेन जलधौ द्विजं दासाभिधो(धिपो)ऽभ्यधात् ॥ १६६
इदमावर्तसंघट्टं महावेगतरङ्गिभिः ।
वडवाग्नौ प्रवहणं पातितं मे महानिलैः ॥ १६७ ॥
अयं महावटतरुर्जले दिव्यमहीरुहः ।
शाखामस्यावलम्बस्व नाहं शक्तो जरान्वितः ॥ १६८ ॥
इत्युक्त्वा विटपालम्बितनौ तस्मिन्ममज्ज सः ।
धन्यः पुण्यवतामेव परार्थे जीवितव्ययः ॥ १६९ ॥
ततस्तरुलतासक्तो निशि शोकानलाकुलः ।
ददर्श तं महावृक्षं महाकायैः खगैर्वृतम् ॥ १७० ॥
तेषामेको गिरीन्द्राभो जटायुरिव जर्जरः ।
अवदन्मानुषगिरा गत्वा गमकथान्तरे ॥ १७१ ॥
यूयं युवानो गन्तारः प्रातर्गेगादिशो दश ।
गन्तव्या काञ्चनपुरी वृद्धेन तु मया कैचित् ।
अपि गन्तुं न शक्या सा तद्यूयं यात मा चिरम् ॥ १७२ ॥
श्रुत्वेति दाशनिधनप्रशोकोऽपि जहर्ष सः ।
पुंसां स्वकर्मवैचित्र्यान्न दुःखं न सुखं सदा ॥ १७३ ॥
ततः प्रविश्य तद्गरुः पक्षान्तविवरोदरे ।
तद्वेगयातात्प्रत्यूषे तां प्राप स पुरीं क्षणात् ॥ १७४ ॥
ततस्तां काञ्चनपुरीं काञ्चनस्तम्भतोरणाम् ।

---

१. 'दिरे' ख. २. 'से' ख. ३. 'नैः' ख. ४. 'गा' ख. ५. 'दासासहलम्ब[illegible] स्थमसफोऽहं न्यधिन.' ख. ६. 'पलद्दिपन्' ख. ७. 'विशन्' ख.

कौतुकानां कुलगृहं निधानं सर्वसंपदाम् ॥ १७५ ॥
मनोरथैरप्यगम्यामप्राप्यां पवनैरपि ।
प्रमोदनिर्भरो दृष्ट्वा ददर्श ललिताङ्गनाः ॥ १७६ ॥
नीतः प्रियंवदस्ताभिः संभाव्य मणिमन्दिरम् ।
विद्याधरेन्द्रतनयां ददर्शानङ्गमङ्गलाम् ॥ १७७ ॥
लीलाशिखिशिखण्डाभनेत्रच्छायावतंसकाम् ।
पुनः श्रीकण्ठशबरानुवृत्तामिव पार्वतीम् ॥ १७८ ॥
तारुण्यकुञ्जरारूढां विलासकर्मलाकुलाम् ।
मूर्तामिव मनोजस्य त्रैलोक्यविजयश्रियम् ॥ १७९ ॥
विद्रुमद्रुमलावण्यलुण्टाकैरधरांशुभिः ।
बालातपैरिव स्पृष्टां कामकेलिवनस्थलीम् ॥ १८० ॥
अदभ्रविभ्रमभ्रूहीं नेत्रामृततरङ्गिणीम् ।
विलोक्य शक्तिदेवस्तां विस्मयादिति चिन्तयन् ॥ १८१ ॥
विभ्रमाभरणं रूपं लावण्याभरणं वपुः ।
अहो बालकुरङ्गाक्ष्या विलासाभरणा स्थितिः ॥ १८२ ॥
निवेदितात्मवृत्तेन प्राप्तसत्कारसंपदा ।
पृष्टां निजकथां तेन सा बभाषे शुचिस्मिता ॥ १८३ ॥
पिता मे शशिखण्डाख्यः श्रीमान्विद्याधराधिपः ।
चतस्रस्तनयास्तस्य ज्येष्ठा तासामहं विभो ॥ १८४ ॥
अहं चन्द्रप्रभा नाम चन्द्रलेखा ममानुजा ।
शशिप्रभा च सुमते शशिलेखा च सुप्रभा ॥ १८५ ॥
शापादथोग्रतपसो मुनेर्मर्त्यत्वमागताः ।
जातिस्मरा भगिन्यो मे बभूवुः शोकदाः पितुः ॥ १८६ ॥
तद्दुःखात्त्यक्तराज्येऽथ याते ताते तपोवनम् ।

---

१. 'मधु' ख. २. 'मकर' ख. ३. 'त्रिश' ख. ४. 'शशिरेखा तृतीया च तुर्या च शशिप्रभा' इति क्रमः कथासरित्सागरे.

इह स्थिताहमेकैव भगिनीसंगमाशया ॥ १८७ ॥
गौरी पुरा मामवदन्मनुष्यस्ते भविष्यति।
पतिर्विद्याधराधीशपदं प्राप्यानुजाश्च ते ॥ १८८ ॥
भवानेनाभिरुचितो जनस्यास्य मनःप्रभुः।
पित्रे निवेदयाम्येतत्स्वाधीना न हि कन्यकाः ॥ १८९ ॥
त्वत्संगमे गुरोराज्ञां प्राप्तुं गच्छाम्यहं वनम्।
विनोदयेथा हृदयं त्वमिहैव क्षणान्तरम् ॥ १९० ॥
ऊर्ध्वमन्दिरपाली च द्रष्टव्या नैव तु त्वया।
इत्युक्त्वा प्रययौ कान्ता लिम्पन्ती कान्तिभिर्नभः ॥ १९१ ॥
कौतुकाकुलितः सोऽथ प्रविष्टो मन्दिरावलीम्।
ददर्श योषितस्तिस्रः शयाना गलजीविताः ॥ १९२ ॥
पृथग्देशेषु पर्यङ्के स्वच्छचीनपटावृताः।
सजीवा इव हारिण्यश्चित्रस्था इव निश्चलाः ॥ १९३ ॥
पूर्वमंशुकमुद्धाट्य ददर्शैकां सुमध्यमाम्।
जित्वा जगत्स्मृतिभुवा न्यस्तां चापलतामिव ॥ १९४ ॥
स्वयं कन्दर्पगुरुणा प्रतिष्ठार्थमंशंसिनीम्।
अधिवाम इव न्यस्तां शयने कान्तिदेवताम् ॥ १९५ ॥
ततः कनकलेखां तां परिज्ञाय महीपतेः।
परोपकारिणः पुत्रीं मदध्यौ विस्मितः क्षणम् ॥ १९६ ॥
विरहौर्वानलालोलप्रवासव्यसनाम्बुधौ।
यत्कृतेऽहं निपतितः सैवेषा मन्मथौषधिः ॥ १९७ ॥
इन्द्रजालमिदं किंस्विदथ या सारवञ्चना।
ध्यात्वेति शक्तिदेवोऽथ क्रमेणान्यां ददर्श च ॥ १९८ ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टो मन्दिरेभ्योऽवरुह्य सः।

१. 'प्राप्यानुजाश्च ते' इति भवेत्. २. 'मनोगतः' ख. ३. 'मचेतसु' ख. ४. 'स्वयं' ख. ५. 'कनकरेखां' ख.

अपश्यद्दिव्यतुरगं मार्तण्डस्येव विस्मृतम् ॥ १९९ ॥
खुरेणोत्सारितस्तेन पतितः सरसीजले ।
वर्धमानपुरोपान्तादुन्ममज्ज ससंभ्रमः ॥ २०० ॥
स्वमदृष्टमिवाशेषं मन्यमानोऽतिदुःखितः ।
भ्रान्त्वा नगरवीथीषु राजद्वारमवाप्तवान् ॥ २०१ ॥
दृष्टा हेमपुरी येन लप्स्यते स नृपात्मजाम् ।
पुनः श्रुत्वेति पटहं प्रतीहारमुवाच सः ॥ २०२ ॥
सा मया काञ्चनपुरी दृष्टा राज्ञे निवेद्यताम् ।
इति तस्य प्रतीहारो वचः क्ष्मापं व्यजिज्ञपत् ॥ २०३ ॥
न्यस्तः कनकलेखाग्रे शक्तिदेवोऽथ भूभुजा ।
मया दृष्टा पुरी सा च सम्याः सप्रविभाविकम् ॥ २०४ ॥
असत्यवादी धूर्तोऽयं पुरास्माभिर्निरस्कृतः ।
परोपकारितनया प्राहेति क्षणमेन्मिता ॥ २०५ ॥
शक्तिदेवोऽवदत्सुभ्रु दृष्टाश्चन्द्रनभानुजाः ।
तिस्रः कनकपुर्यौ त्वं तासां मध्ये निरीक्षिता ॥ २०६ ॥
जातिस्मरा निशम्येति राजपुत्री कृतादरा ।
श्रुत्वा हेमपुरीवार्तां विस्तरेण तदोदिताम् ॥ २०७ ॥
ययौ विद्याधरी भूत्वा तां पुरीं सा विहायसा ।
अनुसर्तुमशक्तोऽसौ बभूव भृशदुःखितः ॥ २०८ ॥
पुनरध्यवसायैकसहायः पुरसंचयात् ।
ग्रामारण्यनदीशैलाँल्लङ्घयन्प्रययौ शनैः ॥ २०९ ॥
विटङ्कपुरमासाद्य तमेव वणिजं पुनः ।

---

१. 'भास्करस्येव विस्मितम्' ख. २ 'वर्धमानः सुरावाता' ख. ३. 'सा द्द स्तान्प्रत्रिमोचिकम्' ख. ४. 'दुःखिता' ख. ५. 'मयेक्षिता' ख. ६. 'तस्याज गात्रं देहं निर्मोकमिव पन्नगी । प्रयातां काञ्चनपुरीं तां विलोक्य विहायसा' ख. ७. 'गन्तुं' ख. ८. 'बभूवशार' ख.

समुद्रमत्स्यनामानं ददर्शात्यन्तविस्मितः ॥ २१० ॥
तीर्णः फलहकेनाहं भग्नपोतस्तदाम्बुधौ ।
पित्रा यदृच्छयासेन वीक्षितो द्वीपगामिना ॥ २११ ॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कथयित्वा निजां कथाम् ।
तत्कल्पितप्रवहणः शक्तिदेवोऽम्बुधिं ययौ ॥ २१२ ॥
द्वीपमुत्पलकं प्राप्तो दृष्टः सत्यव्रतात्मजैः ।
अनेन नः पिता नीतो हतो वेत्यभिभर्त्सितः ॥ २१३ ॥
तद्वाक्यात्पितरं ज्ञात्वा वडवाग्निपतङ्गताम् ।
यातं ते च क्रुधा विप्रं यागे पशुमकल्पयन् ॥ २१४ ॥
स गाढनिगडाबद्धः स्वमे कात्यायिनीवरात् ।
कृत्वा विद्याधरीं गूढां भेजे सत्यव्रतात्मजाम् ॥ २१५ ॥
विमुक्तबन्धनः प्राप कन्यां बिन्दुमतीं सतीम् ।
गोमांसभारनम्रांसं ददर्श श्वपचं पथि ॥ २१६ ॥
दासपुत्री च तं दृष्ट्वा हर्म्यस्था प्राह वल्लभम् ।
गवां विकारलेशेन जातास्म्यनुचिते कुले ॥ २१७ ॥
गोमांसभक्षणात्पापान्न जाने यान्ति कां गतिम् ।
धेनुस्नायुमयी तन्त्री मया दन्तेन खण्डिता ॥ २१८ ॥
वीणाविनोदेनात्पापादियं मे दाससंगतिः ।
श्रुत्वेति तां कथां पृष्टा शक्तिदेवेन सावदत् ॥ २१९ ॥
भविष्यत्यपरा भार्या तव तद्धर्मपाटकः ।
यदि स्यात्तत्कथागेतां भवं शास्यसि वल्लभे ॥ २२० ॥
इति बिन्दुमतीवाक्यं श्रुत्वा विप्रः सकौतुकः ।

१. 'समुद्रदत्त' इति कथासरित्सागरे १२८ पृष्ठे. २. 'मभूता' ग. ३. 'गोभि' ख. ४. 'उत्पलकं' इति कथासरित्सागरे १२८ पृष्ठे. ५ 'दृष्ट्वा' ख. ६. 'वेगवद' ख. ७. 'धेनुर्नोदितरूपाणां' ख. ८. 'गवामुरगलेशेन' ग. ९. 'दे सदा' ख. १०. 'दंदशूकाक्ष' ख. ११. 'स्मति' ख. १२. 'मा' ख.

बहिः कलकलं श्रुत्वा निर्ययौ सज्जकार्मुकः[1] ॥ २२१ ॥
ततः पुञ्जीकृतजनं दंष्ट्रिणं कज्जलच्छविम्।
सेन्दुलेखमिव ध्वान्तमपश्यत्सूकरं पुरः ॥ २२२ ॥
तं जघान हतानेकजनं तीक्ष्णेन पत्रिणा।
स च तच्छरनिर्भिन्नो विवेश विपुलं बिलम् ॥ २२३ ॥
क्रोडानुसारी सहसा शक्तिदेवो रसातलम्।
प्रविश्य तस्य नगरीं वापीं कन्यां च दृष्टवान् ॥ २२४ ॥
तमाह कन्यका दैत्यः शूकरोऽयं त्वया हतः।
अद्यैवास्मि हृता तेन राजपुत्री सुरद्विषा ॥ २२५ ॥
प्रभो गृहाण मे पाणिं तुल्योऽसि मम वल्लभः।
इत्युक्तवाक्यां तां प्राप्य स जगाम यथागतम् ॥ २२६ ॥
ततस्तां बिन्दुलेखाख्यां कालेनालोक्य गर्भिणीम्।
ज्येष्ठा बिन्दुमती प्राह शक्तिदेवं रहःस्थिता ॥ २२७ ॥
तस्याः पाटय गर्भं त्वमिति श्रुत्वा विकूणितः।
स समेत्याचिरत्कान्तामभूद्ध्यानपरायणः ॥ २२८ ॥
तावदस्मिन्नमालोक्य दयिता संनतानना।
प्रिय पाटय गर्भं मे बिन्दुमत्या वचः कुरु ॥ २२९ ॥
श्रुत्वेति बिन्दुलेखायाः शक्तिदेवोऽतिविस्मितः।
सर्वज्ञां मन्यमानस्तामुवाच रचिताञ्जलिः ॥ २३० ॥
नृशंसं कर्म पापिष्ठं कथमसद्विधो जनः।
कुर्याद्वचः कथं ज्ञात्वा तत्पापमनुमन्यसे ॥ २३१ ॥
इति प्रियतमेनोक्ता बिन्दुलेखावदत्पुनः।
नैतदश्रेयसे कर्म शृणु चित्रां कथामिमाम् ॥ २३२ ॥
कञ्चुकस्थाननिलयो देवदत्तः पुरा जितः।

---

१. 'पूर्वं' ख. २. 'जन' ख. ३. 'अस्याः' ख. ४. 'परां' ख. ५. 'दयितं स्थिता' ख. ६. 'कम्बुक' इति कथासरित्सागरे १३० पृष्ठे.

द्यूतापहारिताशेषधनो बभ्राम भूतले ॥ २३३ ॥
महाव्रतिनमासाद्य जालपादाभिधं ततः ।
तेनार्थितो बभूवासौ तन्मन्त्रोपरिसाधकः ॥ २३४ ॥
तेनादिष्टस्ततो गत्वा स्मशानं वटशाखिने ।
पूजां कुसुमधूपार्घबलिपूर्वां प्रयच्छति ॥ २३५ ॥
निष्पन्नसिद्धिः कालेन प्रविश्य स वटान्तरम् ।
लेभे यक्षसुतां कान्तां सिद्धिं मूर्तिमतीमिव ॥ २३६ ॥
हिरण्यवर्षनाम्नस्तां तनयां यक्षभूपतेः ।
विद्युन्मतीं समामन्त्र्य जालपादान्तिकं ययौ ॥ २३७ ॥
जालपादोऽथ तं प्राह सिद्धिज्ञो हर्षसंप्लुतः ।
गच्छ गर्भं समुत्पाट्य तस्यास्तूर्णमिहानय ॥ २३८ ॥
महाव्रतिवचः श्रुत्वा गत्वा यक्षसुतान्तिकम् ।
स पापकर्मनिर्विण्णो नीचै किंचिदधोमुखः ॥ २३९ ॥
विज्ञाततदभिप्राया प्राह यक्षसुता द्विजम् ।
क्षिप्रं पाटय मे गर्भं मा स भूः संशयाकुलः ॥ २४० ॥
तच्छ्रुत्वा सोऽतिकारुण्यान्न चकार नृशंसताम् ।
यदा तदासै सा गर्भं पाटयित्वा स्वयं ददौ ॥ २४१ ॥
प्राप्यते भक्षयित्वेमं विद्याधरगतिः प्रभो ।
इत्युक्तः सहसा गत्वा तद्गर्भं व्रतिने ददौ ॥ २४२ ॥
जालपादोऽपि विधिना भुक्त्वा तद्गर्भमात्मना ।
विद्याधरपदं प्राप देवैं एवान्यवञ्चक. ॥ २४३ ॥
वञ्चितो देवदत्तोऽथ निःशेषचरुभक्षणात् ।
जालपादेन गृमिस्थस्तं ददर्श नभोगतिम् ॥ २४४ ॥
वञ्चितोऽहं कृतघ्नेन ध्यायन्निति मुहु स्थितः ।

१. 'त्यक्त' ख. २. 'पूर्णां' ख. ३. 'वर्णां' ख. ४. 'विद्युत्प्रभा' इति कथासरित्सा १११ पृ? ५. 'य' ख. ६. 'यं' ख. ७. 'दद्' ख. ८. 'स तदा' ख. ९. '' ख. १०. 'एक' ख.

दत्वा समांसं विदधे वीरो वेतालसाधनम् ॥ २४५ ॥
वेतालवाहनो गत्वा देवदत्तो विहायसा ।
विद्याधरपदं प्राप्य जालपादमवासवान् ॥ २४६ ॥
यक्षजातिविमुक्तां च प्रासां विद्याधरीपदम् ।
विद्युन्मतीमवाप्यासौ जालपादमपातयत् ॥ २४७ ॥
वेतालबलविभ्रष्टे महाव्रतिनि स द्विजः ।
विद्याधरो बभूवैवं तवाप्यस्ति पुरः शुभम् ।
श्रुत्वैवं शक्तिदेवोऽपि प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥ २४८ ॥

इति देवदत्ताख्यायिका ॥ ६ ॥

क्षिप्रं पाटय मे गर्भं नैतदश्रेयसे तव ।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य शुश्राव नभसो गिरम् ॥ २४९ ॥
शक्तिदेवाचिरादेव गर्भं पाटय पाटय ।
राजा कनकपुर्यां त्वं व्योमचारी भविष्यसि ॥ २५० ॥
इत्युक्तस्तद्विभायासौ त्यक्तदेहां प्रियां पुरः ।
आकाशगामिनीं दृष्ट्वा गगनादशृणोत्पुनः ॥ २५१ ॥
कण्ठे पीडय गाढं त्वं गर्भमेनं विनिःसृतम् ।
श्रुत्वेति मुष्टिना गाढं तं जग्राह महाशयः ॥ २५२ ॥
स तेन पीडितो गर्भः खड्गोऽभूद्भुजगच्छविः ।
फुल्लोत्पलवनानीव यत्प्रभाभिरभून्नभः ॥ २५३ ॥
यातायां विन्दुलेखायां प्राह दाससुता पतिम् ।
अयं खड्गस्त्वया प्राप्तो विद्याधरगतिप्रदः ॥ २५४ ॥
अहं कनकलेखाख्या विन्दुलेखा च या त्वया ।
शयने विगतप्राणा दृष्टा वल्लभ ता वयम् ॥ २५५ ॥
स्थिता कनकपुर्यां सा ज्येष्ठा चन्द्रप्रभा मम ।
क्षिप्रं तदेहि गच्छाव शापोऽसौ विगतोऽद्य नः ॥ २५६ ॥

१. 'विचार्यैव' ख. २. 'जीर्णां' ख.

इति तद्वचसा व्योम समुत्पत्य तया सह ।
शक्तिदेवो ययौ खड्गी पुरीं तां कनकाह्वयाम् ॥ २५७ ॥
चतस्रः कन्यकाः प्राप्य सरसागरचन्द्रिकाः ।
तत्र विद्याधरो भूत्वा नवनन्दानन्दविभ्रमः ॥ २५८ ॥
शशिखण्डश्रियं प्राप्य शक्तिदेवो महाशयः ।
शक्तिवेगाभिधां लेभे खड्गविद्याधरेश्वरः ॥ २५९ ॥
इत्याससाद विभवं वत्सेश्वर चिराय यः ।
सोऽहमेवागतो द्रष्टुं त्वत्पुत्रं नरवाहनम् ॥ २६० ॥
सर्वविद्याभृतां नाथो दृष्टोयं तनयस्तव ।
स्वस्त्यस्त्विदानीं गच्छामि पुनरस्तु समागमः ॥ २६१ ॥

इति शक्तिदेवकथा ॥[1]

इति गिरममृतौघस्यन्दिनीं वत्सराजः
प्रियसचिवसहायस्तस्य रम्यां निशम्य ।
अभवदतुलहर्षस्मेरकान्तिप्रतापे-
प्रकटितनिजसूनुः स्वच्छ[3]कान्तिप्रवाहः ॥ २६२ ॥

आमन्त्र्य राजानमदीनसत्त्वो विद्याधरेन्द्रो दिवमुत्पपात ।
कुर्वन्मुहुः कुण्डलताण्डवेन मार्तण्डमालाभरणा इवाशाः ॥ २६३

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे चतुर्दारिकानामा पञ्चमो लम्बकः समाप्तः ।

---

## सूर्यप्रभनामा षष्ठो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

देवो भवः स भवतां भवताद्विभूत्यै
यस्यावहन्त्यसितभूषणभोगिभोगः ।
नेत्रानलाकलितकालकलेवरोत्थ-
पर्यत्सुधूमपटलीवलना[5]विनोदम् ॥ १ ॥

---

1. 'नवनन्दविभ्रमः' ख. 2. 'न' ख. 3. 'कीर्ति' ख. 4. 'भवेद्भति' ख.
5. 'विलासम्' ख.

ततः कदाचिद्वत्सेशे सर्वास्थानसभास्थिते ।
तप्तकाञ्चनसच्छायमपश्यत नभस्तलम् ॥ २ ॥
गगनादवतीर्णोऽथ स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
द्वितीय इव मार्तण्डः सभां विद्याधरोऽविशत् ॥ ३ ॥
स नेत्रानन्दसंदोहश्यशाङ्को रुचिराम्बरः ।
पूजितो वत्सराजेन पृष्टः प्राहाश्रितासनः ॥ ४ ॥
राजञ्शेषभुवनोद्यानचन्द्रोदयश्रिया ।
त्वत्कीर्त्या मानसोल्लासः कस्य नाम न जायते ॥ ५ ॥
सर्वविद्याधरेन्द्राणां चक्रवर्ती तवात्मजः ।
भविता शंकरादिष्टस्तमहं द्रष्टुमागतः ॥ ६ ॥
अय भाविनिर्नौत्साहमेनं वन्दामहे वयम् ।
जनैरभ्यधिकानन्दैर्बालेन्दुरभिनम्यते ॥ ७ ॥
शिखरे वज्रकूटाख्ये तुषारधरणीभृतः ।
राजा वज्रप्रभाख्योऽहं विद्याभिर्नेत्रविग्रहः ॥ ८ ॥
विद्याधरश्रियं पूर्णां शासतः शिवसेविनः ।
समभावात्प्रणमतो जाता कल्पत्रयी मम ॥ ९ ॥
त्वत्पुत्रोऽस्मत्प्रभुः कल्पं चक्रवर्ती भविष्यति ।
नरवाहनदत्तोऽसौ पुरा सूर्यप्रभो यथा ॥ १० ॥
इति श्रुत्वा प्रहृष्टेन सादरं वत्सभूभुजा ।
पृष्टः सूर्यप्रभकथां प्राह विद्याधराधिपः ॥ ११ ॥
देवीभ्यां सहितो देवः सुहृद्भिर्मन्त्रिभिस्तथा ।
शृणु प्राप्ता मनुष्येण यथा विद्याधरेन्द्रता ॥ १२ ॥
मद्रेषु शाकलपुरे राजा चन्द्रप्रभोऽभवत् ।
इन्द्रस्थाने सुरस्त्रीभिर्गीयते यत्पराक्रमः ॥ १३ ॥
सर्वभोगसमृद्धेन मोक्षराज्यं ज्वलिताग्निना ।
यज्ञेनाथर्वणोक्तेन यो रुद्रं समतोषयत् ॥ १४ ॥

---

१. 'शां' ख. २. 'शनः' क. ३. 'या' ख. ४. 'प्राज्याज्य' ख.

तस्य कान्तिमती नाम कान्तिकल्लोलिनी प्रिया।
रुचिभ्रमभ्रमद्वीचिरभूत्सौभाग्यवारिधी: ॥ १५ ॥
तस्य स्कन्द इवेशस्य जयन्त इव वज्रिणः।
सूर्यप्रभोऽभवत्सूनुः प्रतापाक्रान्तभूधरः ॥ १६ ॥
बभूवुः सचिवास्तस्य समग्रगुणदर्पणाः।
महार्थश्च प्रभावश्च भासः सिद्धार्थकस्तथा ॥ १७ ॥
चन्द्रप्रभो ददौ तस्मै यौवराज्यं मुदान्वितः।
स्वयमेवार्पिता धर्म्यैरन्वये श्रीर्विलोक्यते ॥ १८ ॥
ततः कदाचित्स्थाने स पुत्रं तं नगरेश्वरम्।
दानवाधिपतिः श्रीमान्मयः कार्यार्थमाययौ ॥ १९ ॥
तमालश्यामलः शुभ्रदंष्ट्रांशुशबलच्छविः।
बलाकावलयव्याप्तः प्रावृषेण्य इवाम्बुदः ॥ २० ॥
स्फुरत्कुण्डलकेयूरमौलिरत्नांशुसंचयैः।
नृत्यच्छिखण्डिसंचयो नीलाद्रिरिव जङ्गमः ॥ २१ ॥
स पूजितो नृपतिना भेजे स्फाटिकमासनम्।
गजेन्द्र इव विस्फारं तुषारगिरिकन्दरम् ॥ २२ ॥
नम्रेण भूभुजा पृष्टः प्राहागमनकारणम्।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषो विवर्षिषुरिवाम्बुदः ॥ २३ ॥
राजन्महेश्वरादिष्टः पुत्रं सूर्यप्रभं तव।
प्राप्तः समस्तविद्यानां नेतुं भाजनतामहम् ॥ २४ ॥
विजित्य श्रुतिशर्माणमेष विद्याधरेश्वरम्।
विद्याभृतां चक्रवर्ती भविता शिवशासनात् ॥ २५ ॥
पक्षे स्थिताः सुराः सर्वे सैंहकाः श्रुतिशर्मण्ः।
वयं च तव पुत्रस्य दानवाः पक्षमाश्रिताः ॥ २६ ॥

१. 'भ्रमि' ख. २ 'धे' ख. ३. 'न्यै' ख. ४. 'ततः कदाचिदास्थाने । तं नरेश्वरम्' ख. ५ 'शाशात्' ख. ६. 'यैः' ख. ७. 'शिखण्डयो' ख. ८. 'वी' ९. 'दम्' ख. १०. 'शक्रस्य' ख.

इति तद्वचसा राजा हर्षपीयूषनिर्भरः ।
उवाच त्वत्प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥ २७ ॥
धन्यः सुतो मे यस्य त्वं श्रेयसे स्वयमुद्यतः ।
त्वादृशां दर्शनेनापि भवन्तीप्सितसिद्धयः ॥ २८ ॥
इति ब्रुवाणं भूपालं तमथामन्त्र्य तद्गिरा ।
सूर्यप्रभं स सुचिरं पातालमनयत्प्रभुः ॥ २९ ॥
तत्र तस्मै ददौ विद्यां सानुगाय यथाविधिः ।
भूतासनं विमानं च स्वयमेव विनिर्मितम् ॥ ३० ॥
प्राप्तविद्यो विमानेन तूर्णमेत्य रसातलात् ।
ववन्दे राजतनयो जननीं जनकं तथा ॥ ३१ ॥
ईतस्ततो विमानेन विचरन्पितुराज्ञया ।
दिक्षु स्वराकृतिः प्राप्य स कन्याः स्वयमागताः ॥ ३२ ॥
गान्धर्वेण विवाहेन भेजे पूर्वं सुलोचनाम् ।
लावानकपतेः पुत्रीं पौरवस्य महीभुजः ॥ ३३ ॥
राज्ञो वीरभटाख्यस्य ताम्रलिप्तापतेः सुताम् ।
लेभे मदनसेनाख्यां मदनोद्यानमञ्जरीम् ॥ ३४ ॥
चीनकोट्टाधिनाथस्य सुरम्भाख्यस्य चात्मजाम् ।
संपूर्णचन्द्रवदनां विद्युन्मालामवाप्तवान् ॥ ३५ ॥
सुमटाख्यस्य तनयां कौङ्कणाधिपतेस्तथा ।
आससाद सुधासिदिसौन्दर्यां चन्द्रिकावतीम् ॥ ३६ ॥
जनमेजयपुत्रीं च कौशाम्बीं हरिणेक्षणाम् ।
परपुष्टाभिधां प्राप जित्वा विग्रार्थमुद्यताम् ॥ ३७ ॥
खेचरं हरिणा साक्षात्समरे परिपालितम् ।
दामोदराभिधं वीरं मायावंपुरवासिनम् ॥ ३८ ॥

१. 'नभसा' ख. २. 'नमः' ख. ३. 'सोऽनुनाथ' क. ४. 'धरात्रले' ख. ५. 'तवसेन' ख. ६. 'ज़ित्वा' कथासरित्सागरे. ७. 'सुरोदस' कथासरित्सागरे. ८. 'सन्दि' ख. ९. 'वर' ख.

राज्ञो रम्भाभिधानस्य सुतां वज्रपुरप्रभोः।
प्राप तारावलीं नाम श्यामां शीतांशुसुन्दरः॥ ३९॥
तेषां महीभुजां गत्वा सानुगो गगनाग्रगः।
पुराणि क्रमतो भेजे ताभिः परिणयोत्सवम्॥ ४०॥
स ताभिः सह कान्ताभिः संनिवृत्तोत्सवोऽमितः।
भेजे निजां पुरीं प्राप्य वाहिनीभिरिवाम्बुधिः॥ ४१॥
ततः कदाचिदास्थानसभां पित्रा समाश्रिताम्।
समेत्य पूजितः प्राह श्रीमान्मयमहासुरः॥ ४२॥
राजपुत्र रिपुध्वंसे किमद्यापि विलम्बसे।
प्रतापः कुण्ठतां सत्यं यात्यनुद्योगमन्थरः॥ ४३॥
मानिनां सत्त्वमहतां वीराणां शौर्यवर्तिनाम्।
उत्साहारम्भमात्रेण वर्धन्ते सर्वसंपदः॥ ४४॥
इति तद्वचसा क्षिप्रं राजसूनुर्जयोन्मुखः।
नृपेभ्यः प्राहिणोद्दूतं तूर्णमागम्यतामिति॥ ४५॥
राज्ञास्विष्टेषु दूतेषु सुहृत्संबन्धिबन्धुषु।
सूर्यप्रभः सहामात्यो बभूव समरोत्सुकः॥ ४६॥
अत्रान्तरे सुरमुनिः प्रभापिञ्जरिताम्बरः।
तां सभां नारदोऽप्यायाद्विसृष्टः शतमन्युना॥ ४७॥
स प्रविश्यासत्सत्कारः संप्राप्य कनकासनम्।
शनैरुवाच राजानं दानवाधिपसंनिधौ॥ ४८॥
अभिधत्ते सहस्राक्षः क्ष्मापते त्वां प्रमादिनम्।
रुद्रयज्ञोद्धतः किं त्वं ममाप्यप्रियमीहसे॥ ४९॥
कुलक्रमागतो राज्ञा श्रुतशर्मा महाबलः।
विद्याधराणां तस्य त्वं प्रतिपक्षदशां श्रितः॥ ५०॥

---

१. 'भां' ग. २. 'स्मारशोभोपदीशिन.' ग. ३ 'रेजे' ग. ४. 'द.' ५. 'गद स्थितम्' ग. ६. 'इति वै' क. ७. 'प्राहिणो' ग. ८. 'जायन्ते' ९. 'क्षिप्र' ग. १०. 'प्रमपक्ष' ग. ११. 'ऽप्याकं' ग.

तस्य सर्वे वयं युद्धे विजयाशंसिनः स्वयम् ।
रुद्रयत्नकृताश्वासः किं वृथा नृप माद्यसि ॥ ५१ ॥
एकयत्नोद्धतो राजन्सहस्रशतयायिभिः ।
स्पर्धां दधानस्त्रिदशैः कथमेको न लज्जते ॥ ५२ ॥
वस्त्वद्भिर्विरोधो हि हास्यायैव न सिद्धये ।
विफलो दुर्गतस्येव धनिकस्पर्धयोत्सवः ॥ ५३ ॥
नारदेनेति कथिते जातक्रोधे च भूपतौ ।
मयः प्राह स्फुरत्कोपकम्पव्याकुलकुण्डलः ॥ ५४ ॥
भगवन्न परिज्ञाय शौर्यसत्त्वबलाबलम् ।
संदिष्टं सुरराजेन रुद्रयत्नावमानिना ॥ ५५ ॥
सहस्राक्षमुखा यस्य गीर्वाणाः पक्षमाश्रिताः ।
स खेचरश्रियं भुङ्क्ते श्रुतशर्मा किमद्भुतम् ॥ ५६ ॥
किं नु सूर्यप्रभजये स रुद्रः स्वयमुद्यतः ।
यदिच्छामात्रसंपत्तिर्जगतः सृष्ट्यादयः ॥ ५७ ॥
शक्रः क्रतुशतावासगर्वस्त्वः सत्यं तदुच्यते ।
तत्र ब्रूमः क्रतुर्नाम बाह्यद्रविणडम्बरः ॥ ५८ ॥
किं यज्ञैर्विपुलायासैः किं व्रतैः कायशोषणैः ।
निर्व्याजसेवा सुभगा भक्तिर्येषां महेश्वरे ॥ ५९ ॥
पक्षपाते स्थिता यूयमलङ्घ्यारिकुलेषु यत् ।
तत्र शक्रास्पदं युष्मत्स्वभावो विदितो हि नः ॥ ६० ॥
छलेन वञ्चितो यद्वै बलिस्तत्कस्य मानसम् ।
प्रीणाति यच्च तेनैव ते वृत्रप्रमुखा हताः ॥ ६१ ॥
मयस्येति वचः श्रुत्वा समामन्त्र्य नृपं ययौ ।
भगवान्नारदो व्योम्ना चन्द्रराशिरिवोज्ज्वलः ॥ ६२ ॥

१. 'फल' ख. २. 'बान्धवः' ख. ३. 'च' ख. ४. 'शौरिन्येनवद्' ख. ५. 'स्व दुष्कृत' ख. ६. 'न्र' ख. ७. 'पुनर्मस्तेन वृत' ख.

ततश्चन्द्रप्रभो राजा दूतैः संबन्धिनो नृपान् ।
आनिनाय मयेनोक्तः पुत्रस्य जयसिद्धये ॥ ६३ ॥
सुरम्भः पौरवो वीरः प्रभटो जनमेजयः ।
रम्भोदयश्च ते वीरास्ततस्तूर्णं समाययुः ॥ ६४ ॥
सूर्यप्रभं हरादिष्टः सानन्दं नन्दिकेश्वरः ।
समेत्याह स दिव्यां त्वं स्वां श्रियं प्राप्स्यसीत्यथ ॥ ६५ ॥
इरावतीचन्द्रभागासंगमे व्रतदीक्षितम् ।
कृत्वा चन्द्रप्रभं हृष्टः सपुत्रमवदन्मयः ॥ ६६ ॥
भार्याः सूर्यप्रभस्यैता भूपते जनकैः सह ।
तिष्ठन्त्विहैव पातालं प्रविशामो वयं नृप ॥ ६७ ॥
इति दानवनाथेन निर्दिष्टो वसुधाधिपः ।
चन्द्रप्रभस्तथा कृत्वा सभार्यः ससुतोऽविशत् ॥ ६८ ॥
सूर्यप्रभे प्रविष्टेऽथ पित्रा सह रसातलम् ।
श्रुतशर्मा समभ्यायान्नभसा गुटिकाधरः ॥ ६९ ॥
स राजपुत्रदयितास्ता जहार बहिः स्थितः ।
मायया मोहयित्वाशु तान्नृपान्युद्धसंमुखान् ॥ ७० ॥
सुतावियोगशोकेन व्याकुला वसुधाधिपाः ।
ते भर्तुमुक्ताम्तत्र शुश्रुवुर्नभसो वचः ॥ ७१ ॥
रक्षिताः शंकरेणास्ता राजपुत्रस्य वल्लभाः ।

चन्द्रप्रभादयस्तेऽपि सानुगाः सममोज्ज्वलम् ।
पातालगृहमासाद्य शुश्रुवुर्मयभाषितम् ॥ ७५ ॥
यूयं विपुलसत्त्वाद्यां पृथक्कर्मसहं वपुः ।
मेजस्वं वज्रकठिनं तुल्यं दानवभूभुजाम् ॥ ७६ ॥
अत्र भावोऽमुसदेहः स्मृत्याहं भावविभ्रमे ।
इयं देहपरावृत्तिर्वेन्द्रावरणसंनिभा ॥ ७७ ॥
वासनानुगतो देही गृहाद्गृहमिवागतः ।
शरीरान्तरमासाद्य भुङ्क्ते कर्म शुभाशुभम् ॥ ७८ ॥
देहान्तरे स्वदेहे वा नायं नश्यति सर्वदा ।
धेनुस्वर्णादिदानानां फलभोगः कुतोऽन्यथा ॥ ७९ ॥
जपध्यानमयं योगं राजेन्द्र भज सांप्रतम् ।
भोगापवर्गसंकल्पकल्पवृक्षो यतो जपः ॥ ८० ॥
अत्रैव श्रूयतां राजन्पौराणीं जैपिनः कथाम् ।
बभूव कालको नाम द्विजातिर्जपतत्परः ॥ ८१ ॥
वरं गृहाणेत्यवदत्तं कालेन प्रजापतिः ।
भूत्वा स निश्चलध्यानो जप इत्यवदच्च सः ॥ ८२ ॥
तस्मान्यवरसंमुस्यात्प्रवृद्धे जपिनः फले ।
भीताः शतक्रतुमुखास्त्रिदिवं समचिन्तयन् ॥ ८३ ॥
तत्प्रभावाग्निसंतप्तैरपि देवैः पुरस्थितैः ।
पुनः पुनः प्रार्थ्यमानो नाग्रहीत्प्रचचाल सः ॥ ८४ ॥
ततस्तदर्थितं मायातुहिनाचलकन्दरम् ।
भवन्तु मन्दसंतापास्त्रिदशा इति शीतलम् ॥ ८५ ॥
जपन्तं तत्र भूपालो ब्रह्मणा प्रेरितोऽथ तम् ।
उवाचेक्ष्वाकुरभ्येत्य गृहाण द्विज मद्वरम् ॥ ८६ ॥

---

१. 'गर्भ' ख. २. 'भवता' ख. ३ 'समोह' ख. ४ 'वज्राभरण' ख.
५. 'न्वेतत्प्ययं भावो' ख. ६. 'त्रापि' ख. ७. 'जपिन' ख. ८. 'व्रत' ख.
९. 'भूपाल' ख. १०. 'ब्राह्मणा' ख.

भवान्ददातु वा मह्यमिति श्रुत्वा स जापिकः।
मानी राजानमवदद्ददाम्येवास्मि तद्वरम् ॥ ८७ ॥
इति विप्रवचः श्रुत्वा सहसा क्षितिपोऽभ्यधात्।
प्रयच्छ मे जपस्यार्धमित्युक्त्वानुशयं ययौ ॥ ८८ ॥
सहस्रांशुकुले जातः कथं नु पृथिवीपतिः।
उत्तानपाणिर्निर्लज्जः सहे याचकतामिति ॥ ८९ ॥
ततो यदृच्छयायातौ विवादाकुलितौ द्विजौ।
तत्रैव न्यायमिक्ष्वाकुनृपं पप्रच्छतुर्मिथः ॥ ९० ॥
एकः प्रपच्छ नृपतिं गौरनेन समर्पिता।
प्रतिप्रदत्तां गृह्णाति नायमित्युद्धताशयः।
दत्तं नैव पुनर्ग्राह्यमित्यन्योऽप्यवदद्द्विजः ॥ ९१ ॥
अत्र न्यायं नृप पृष्टो विचार्येक्ष्वाकुरब्रवीत्।
दीयमानं न गृह्णीयात्स तु दुर्नयवानिति ॥ ९२ ॥
ततो देवा नृपं प्राहुस्त्वमप्येवंविधो नृप।
दत्तं यो नैव गृह्णाति जपस्यार्धं द्विजन्मनः ॥ ९३ ॥
परोपदेशे सर्वो हि सदा भवति पण्डितः।
इति राजा सुरगिरा जपार्धं फलमग्रहीत् ॥ ९४ ॥
ततो दिव्यविमानेन प्रययौ शिवमच्युतम्।
धाम भूमिपतिर्वन्द्यं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ९५ ॥
व्यर्थीकृतं च सपूर्यं जपस्यार्धमथ द्विजः।
स बभूव द्रुतं क्षिप्रं तेन परममाश्रितः ॥ ९६ ॥
इत्येवं जपयोगेन दुर्लभं प्राप्यते नृप।
तस्माद्भवानपि क्षिप्रं जपतां जपमुत्तमम् ॥ ९७ ॥

इति पारक्रापकाख्यायिका ॥ १

---

१ द्विजन्म ख. २ 'नैवाव' ख. ३ 'न्यायमप्यु' ख. ४ 'दि
५ 'गृह्णन्त्यस्य' ख. ६ 'भव' ख.

मयस्येति गिरा राजा पुत्रेण सचिवैस्तथा ।
महिष्या कान्तिमत्या च सह प्राप्यासुरालयम् ॥ ९८ ॥
विस्तीर्णाकारमालोक्य दैत्यमुत्तानशायिनम् ।
उपविश्य जजापाशु निश्चलध्यानधारणः ॥ ९९ ॥
सुनीथो नाम तनयो मयस्य सुमहाबलः ।
केनापि हेतुना तत्र सुप्तुप्तेः पदमास्थित ॥ १०० ॥
चन्द्रप्रभोऽथ नृपतिर्वीर्यवं करणोत्तमम् ।
कृत्वा देहं परित्यज्य सुनीथतनुमाविशत् ॥ १०१ ॥
ततः सुप्तोत्थित इव सुनीथे दैत्यपुंगवे ।
ननन्दुर्मयमुख्यास्ते यथार्हविहितोत्सवाः ॥ १०२ ॥
मयभार्या सुतं दृष्ट्वा तं चिरात्प्राप्तजीवितम् ।
लीलावती हर्षसुधापूर्णनेत्राम्बुजाभवत् ॥ १०३ ॥
सूर्यप्रभमथ प्राह मयस्तज्जननी पुरः ।
अयं सुनीथपुत्रो मे ययौ चन्द्रप्रभात्मताम् ।
सुमण्डीकरनामा च त्वमस्यैव पुरानुजः ॥ १०४ ॥
एते महार्थपुंगवाः सचिवास्तस्य दुर्मदाः ।
अवतीर्णाः क्षितिं वीराः कार्यार्थं दानवोत्तमाः ॥ १०५ ॥
इति ब्रुवाणे दैत्येन्द्रे हृष्टास्तूर्णं समाययुः ।
प्रह्लादप्रमुखा दैत्याः सर्वे बलिपुरोगमाः ॥ १०६ ॥
ततः समाभ्ययाच्छक्रो दानवाभ्युदये रतः ।
पूज्यमानो नर्मचूडारत्नपिण्डैः सुरारिभिः ॥ १०७ ॥
रत्नासनोपविष्टेषु तेषु तत्र यथाक्रमम् ।
सूर्यप्रभस्य विजये बद्धोत्साहेषु सर्वदा ॥ १०८ ॥

---

१. 'सि' ख. २. 'वहिर्वं' ख. ३. 'सुमण्डीको परः स वै । पुत्रः पुत्रोऽस्य पुत्रस्य ततः सूर्यप्रभोऽप्ययम्' कथा०. ४. 'हित' ख. ५. 'प्रमुखाः सचिवास्तस्य' ख. ६. 'उपहासेषु' ख. ७. 'इन्द्र' ख. ८. 'चण्डा' ख.

नारदः शक्रवचसा समेत्यावाप्तसत्कृतिः ।
उवाच सर्वे शृण्वन्तु भवन्तः शक्रभाषितम् ॥ १०९ ॥
वैरं यदभवत्पूर्वं भवद्भिः सह नैश्चिरम् ।
शान्तं तदधुना मन्ये धर्म्यमासाद्य सत्पदम् ॥ ११० ॥
वैरिणो मित्रतां यान्ति मित्राण्यायान्ति शत्रुताम् ।
कालस्य परिणामेन सर्वं हि परिवर्तते ॥ १११ ॥
दीर्घः कालः प्रयातोऽसौ प्राप्तो नो किंचिदस्ति नः ।
वर्तामहे मिथः स्नेहं न कलिः कारणं विना ॥ ११२ ॥
किंत्वद्य श्रुतशर्माणं विद्याधरधराधिपम् ।
यूयं जेतुं समुद्युक्ताः सुरपक्षसमाश्रयम् ॥ ११३ ॥
सूर्यप्रभो मनुष्योऽयं स च खेचरसत्तमः ।
स्पर्धानयोः कथं नाम युष्मत्पक्षे न चेद्भवेत् ॥ ११४ ॥
मनुष्यमात्रसौहार्दान्मा संरूढं यदृच्छया ।
ऐकात्म्यं दानववरा विनाशयत निर्जरैः ॥ ११५ ॥
इति श्रुत्वा बलिर्वीरोऽवददानवशेखरः ।
यथात्थ भगवान्सर्वं सत्यमेतदसंशयम् ॥ ११६ ॥
नैतन्न विदितं लोके यदस्माकं स वृत्रहा ।
वर्तते परया प्रीत्या मिथो जानाति वामनः ॥ ११७ ॥
वैरस्य कारणं शान्तं यदेतदभिधीयते ।
तत्सत्यं भवतां लक्ष्मीः कदा नास्मत्सुखप्रदा ॥ ११८ ॥
विद्याभृतां चक्रवर्ती श्रुतशर्मा निजां श्रियम् ।
युष्मत्समाश्रयो भुङ्क्ते विमतिर्नास्तिकस्य चित् ॥ ११९ ॥
किं तु सूर्यप्रभस्यार्थे स्वयं देवस्त्रिलोचनः ।
उपनम्रिदसाः सर्वे यदिच्छामास्मनुनयः ॥ १२० ॥

---

१. 'मम' ग. २. 'निश्चिरम्' ग. ३. 'एवं' ग. ४. 'ये तु' ५. 'युष्मा' ग.

तदाज्ञया वयं सर्वे यदि सूर्यप्रभोदये ।
निविष्टास्तत्किमस्माभिः सुराणामप्रियं कृतम् ॥ १२१ ॥
मोहाल्लक्ष्मीमदाद्वापि प्रमादाद्वा शचीपतिः ।
अनालोच्यैव यद्वक्ति तत्कस्य हृदयं स्पृशेत् ॥ १२२ ॥
अथवा भगवन्सर्वं त्वमेव शिवशासनम् ।
जानीषे ब्रूहि नस्तत्त्वं विचार्य यदिहोचितम् ॥ १२३ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनौ याते निरुत्तरे ।
सूर्यप्रभो दानवेन्द्रैः पूज्यमानोऽवसत्सुखम् ॥ १२४ ॥
ततो दनुजमुख्यास्ते चिरादेकत्र संगताः ।
भोगान्बुभुजिरे दिव्याल्लानारसनिरन्तरान् ॥ १२५ ॥
अनेकयोजनायाममण्डलेषु मयादयः ।
स्वच्छैर्विविधच्छायैर्जाङ्गलैः शूल्यकुट्टकैः ॥ १२६ ॥
दिव्यौषधिकृतैः शाकैः सघृतैः शुचिशालिभिः ।
त्वगेलाकेसररजःसुगन्धिदधिखाण्डवैः ॥ १२७ ॥
मलेहैर्वेसवारैश्च भक्ष्यमण्डकमोदकैः ।
पानकैर्माजिताभिश्च दुग्धपिण्डैः सशर्करैः ॥ १२८ ॥
भुक्त्वा प्रासादमारुह्य प्राप्तमाल्यविलेपनाः ।
मिथो गृहीतताम्बूलाः कर्पूरागुरुधूपिताः ॥ १२९ ॥
ददृशुर्नयनानन्दि नृत्तं दानवयोषिताम् ।
पातालवासिनो दैत्या वेणुवीणालसनोचितम् ॥ १३० ॥
ततः सूर्यप्रभं तत्र दैत्यकन्याः सुलोचनाः ।
स्मरार्ताः स्वयमायाता भेजुः संभोगलालसाः ॥ १३१ ॥
ततस्ताः कन्यकाः कान्ताः सप्त पातालवासिनाम् ।
अथापोद्वाहविधिना क्रमेण जनकार्पिताः ॥ १३२ ॥

---

१. 'दर्प' ख. २. 'मदोदयाः' ख. ३. 'सम्पूरकैः' ख. ४. 'शुभ्र' ख.
'प' क. ६. 'पयसैर्मिश्रमाभिश्च' ख. ७. 'सुगन्धैः' ख. ८. 'मानसाः'
९. 'तः स क' ख.

सुतां हेमीलकाख्यस्य दितिसूनोः कलावतीम् ।
पुत्रीं च मृगशावाक्षीं प्रह्लादस्य महल्लिकाम् ॥ १३३ ॥
कान्तां कुमुदिकामिख्यां दुरारोहस्य चात्मजाम् ।
तरुणीं तन्तुकच्छस्य तनयां च मनोवतीम् ॥ १३४ ॥
संपूर्णचन्द्रवदनां सुन्दरीं च बलेः सुताम् ।
एताश्चान्याश्च ता बह्वीः परिणीय सुलोचनाः ।
नवसंभोगसुभगो भेजे सूर्यप्रभो रतिम् ॥ १३५ ॥
ततो मयेन सहितः समुत्थाय रसातलात् ।
जयोद्योगकृतारम्भः स गत्वा कश्यपाश्रमम् ॥ १३६ ॥
दितिं दनुं चादितिं च कश्यपं च तपोनिधिम् ।
ववन्दे विपुलानन्दो वीरः प्राप तदाशिषम् ॥ १३७ ॥
अथ शक्रः समभ्येत्य वज्रांशुज्वलिताङ्गदः ।
प्रणम्य कश्यपं तत्र मयं प्राह रुषा ज्वलन् ॥ १३८ ॥
असत्पक्षाश्रयस्यापि वीरस्य श्रुतशर्मणः ।
वार्यमाणोऽतिकौटिल्याद्विप्रिये त्वं समुद्यतः ॥ १३९ ॥
उक्त्वेति वेगात्सावेगं वज्रमुद्यम्य जृम्भहा ।
मयं ससार कोपेऽपि निर्विकारस्मिताननम् ॥ १४० ॥
कश्यपेन सभार्येण भर्त्सिते विरते हरौ ।
मयो जहास निःशङ्कं संरम्भेऽपि प्रियंवदः ॥ १४१ ॥
शक्रे प्रयाते दैत्येन्द्रो मयः प्राप्य वरान्वरान् ।
सभार्यात्कश्यपमुनेः सूर्यप्रभसखो ययौ ॥ १४२ ॥
इरावतीचन्द्रभागासंगमे प्राप्य तत्पुनः ।
संबन्धिनो भूमिपालानश्रृणोदथ विप्रियम् ॥ १४३ ॥
सूर्यप्रभो महिष्यस्ता हृता शत्रुभिरेरिति ।
तद्दुःखपावकज्वालं मयस्तं प्राह सस्मितः ॥ १४४ ॥

१. 'अमीष इति दैत्येन्द्रो' कथा॰ २. 'कुमुदावती' कथा॰. ३. 'क्रु' ख. ४. 'तदाशिषम्' ख. ५ 'कोप' ख. ६. 'शुभो' ख. ७. 'म…हता ...विप्रियम्' ख.

अपि शत्रुकरं प्राप्ता मया तव जयेप्सुना ।
माययैता हृता वत्स निगद्येति स ता ददौ ॥ १४५ ॥
ततः सूर्यप्रभो हृष्टः सोत्कण्ठः प्राप्य वल्लभाः ।
भेजे निजपुरं गत्वा सभोगसुभगाः श्रियम् ॥ १४६ ॥
ताभ्यो नरेन्द्रपुत्रीभ्यः स कालेन ततः सुतान् ।
दैत्यान्सप्राप्य शौर्यश्रीकुलाचारगुणोचितान् ॥ १४७ ॥
ततो रत्नप्रभं नाम सुतं राज्ये जनप्रियम् ।
अभिषिच्य जयारम्भे व्यग्रसैन्यो विनिर्ययौ ॥ १४८ ॥
भूतासनं समारुह्य विमानं वल्लभासखः ।
तेनैव दत्तविद्यैश्च सह सर्वैर्नरेश्वरैः ॥ १४९ ॥
सुनीथो मयनिर्दिष्टं हिमवत्पार्श्वमेत्य सः ।
सुमेरुं नाम सुहृदं चक्रे विद्याधराधिपम् ॥ १५० ॥
आप्त सुवाससं नाम शमोस्तेजोयैमाकृतिम् ।
कुमारं रणसाहाय्ये लेभे सूर्यप्रभस्ततः ॥ १५१ ॥
तस्याभूत्कटकानन्धो गजवाजिरथाकुलः ।
अशीतियोजनायामो नरखेचरसंकुलः ॥ १५२ ॥
वल्मीकाख्यं समासाद्य दिव्यदेशं क्रमेण सः ।
त्रिकटाजगराकारच्छन्नं तूणमवाप्तवान् ॥ १५३ ॥
अक्षयं तूणमासाद्य धनुर्दिव्यं च तद्विधम् ।
विमानं च महापद्मं भास्वरां सस चौषधीः ॥ १५४ ॥
मृतसंजीवनीमुख्या गुहागर्भोज्जयोत्सुकः ।
श्रुतशर्माणमाकर्ण्य दूतवाक्याद्रणोन्मुखम् ॥ १५५ ॥
प्रतस्थे समरारम्भदुन्दुभिस्वनमन्थरैः ।
सैन्यैर्गजघटाघण्टागम्भीरस्वनविभ्रमैः ॥ १५६ ॥

---

१ 'क्रमो' ख. २ 'अद्य' ख. ३ 'मया' ख. ४ 'भेजे' ख. ५ 'स्वरान्स' ख. ६ 'मैं' ख. ७ 'प्या' ख.

प्रस्थित त समभ्येत्य सुवासा खेचरैर्वृत ।
प्राह सूर्यप्रभ यैलाच्चिष्ठन्तु तव सैनिका ।
देवासुराणा समर सुघोरोऽयमुपस्थित ॥ १५७ ॥
[2]पीयूषमथने पूर्वं प्राप्तश्रीचन्द्रकौस्तुभे ।
पीयूषलुब्धैरमरैर्दैत्यानामभवत्कलि ॥ १५८ ॥
सदा वैंदुच्छला देवा दैत्यांना कूटयोधिनाम् ।
ते सहासिन्रणे तावदप्रमर्द विधेहि न ॥ १५९ ॥
एव सुवाससो वाक्य श्रुत्वा मूर्ध्नाभिवन्द्य च ।
त्रिकूटकटके प्राप नगरीं श्रुति(त)शर्मण ॥ १६० ॥
ततो विनिर्ययौ कोपात्सज्जीकृतनलाम्बुधि ।
श्रुति(त)शर्मा सहामात्यैर्विमानेन धनुर्धर ॥ १६१ ॥
अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रवृत्ते समरोत्सवे ।
आययुस्त्रिदशा सर्वे व्योम्ना शक्रपुरोगमा ॥ १६२ ॥
प्रह्लादबलिमुख्याश्च दैत्यवीरा मयानुगा ।
समाययु सप्रहारे सूर्यप्रभजयैषिण ॥ १६३ ॥
ततो विद्याधरेन्द्राणा द्वन्द्वयुद्धमभून्मिथ ।
संप्रहारविस्फूर्जत्स्फुलिङ्गवल्याकुलम् ॥ १६४ ॥
मैंकारैश्चापदण्डाना पृषत्काना च फूत्कृतै ।
रणितैश्च कृपाणाना व्योमरन्ध्रमपूर्यत ॥ १६५ ॥
अर्धच द्राग्रनिर्लूनैर्विद्याधरमहीभुजाम् ।
यत्रैर्वभासे वसुधा विकासिकमलैरिव ॥ १६६ ॥
दामोदरादयस्तस्य सचिवा श्रुति(त)शर्मण ।
चक्रु सूर्यप्रभानीक शरजालनिरन्तरम् ॥ १६७ ॥
अथापरेऽद्रि रविनश्चक्रव्यूहरणे परे ।
सूर्यप्रभगिरा वीरा कुमारास्तूर्णमाविशन् ॥ १६८ ॥

---

१ 'मेंर तस्माच्च' ग. २ 'क्षीरोद' ग. ३ 'वद' ख. ४ 'कुटिग' ५ 'ना' ख. ६ 'न' ख. ७ 'गांडिवमग्नाण' ग. ८. 'धनुर' ग

तस्मिन्विदारिते व्यूहे द्विपतां त्रिदिवौकसाम् ।
सूर्यप्रभादयः सर्वे विविशुः शात्रवं बलम् ॥ १६९ ॥
महावीरक्षये तत्र कृतान्तविततोत्सवम् ।
युद्धं विद्याधरेन्द्राणां निर्मर्यादमवर्तत ॥ १७० ॥
तेषां सेनासमुद्राणामेचलैः कुञ्जरादिभिः ।
क्षोदितानां बभुः सन्नाः कालकूटच्छटा इव ॥ १७१ ॥
ससर्ज धवलोष्णीषच्छत्रवंशौघपाण्डुराः ।
खड्गमीनगजग्राहा रणे रक्ततरङ्गिणीः ॥ १७२ ॥
ततो दिनान्ते विपुलव्यायामश्लथकण्टकाः ।
अवहारं मिथश्चक्रुः समरे गुलिकाधराः ॥ १७३ ॥
निशि सूर्यप्रभो वीररसोत्साहपरायणः ।
लेभे न निद्रामासन्नविवाह इव बालकः ॥ १७४ ॥
विनोदिनीं कथां कांचित्कथयेत्यथ सादरम् ।
पृष्टः सूर्यप्रभेणाह सुहृद्वीतभयाभिधः ॥ १७५ ॥
उज्जयिन्यां महासेनो बभूव वसुधाधिपः ।
तस्याशोकवती नाम सुन्दरी दयिताभवत् ॥ १७६ ॥
गुणशर्माभिधो विप्रः सचिवश्च गुणाधिकः ।
विद्यानां च कलानां च केलिसौध इवोन्नतः ॥ १७७ ॥
तं कदाचित्सविश्रम्भो राजा भार्यासखो रहः ।
प्राह दर्शय मे नृत्तं नृत्यज्ञोऽसीति सादरम् ॥ १७८ ॥
सोऽब्रवीद्राजसंहर्षीपुरः कथमहं विभो ।
निर्लज्जो नर्तक इव प्रभवामि त्वदीप्सिते ॥ १७९ ॥
अहं सर्वकलाभिज्ञः पश्य मे कौतुकं परम् ।
नृत्यं हि ललितं वस्तु योषितामेव शोभते ॥ १८० ॥

---

१. 'ववल्गु' ख. २. 'संवर्तेत्' ख. ३. 'किनो' ख. ४. 'तस्य योक्ता' क.

वदन्निति नरेन्द्रेण सनिर्बन्धं पुनः पुनः।
प्रार्थ्यमानः शनैर्नृत्तं कलाश्च समदर्शयत् ॥ १८१ ॥
कैशिकीकोमलं लास्यं वीरोदारं च ताण्डवम्।
सर्वरागानुगं गीतं वीणां च मृदुमूर्च्छनाम् ॥ १८२ ॥
ततस्तस्य समालोक्य पुष्पेषोरिव मन्त्रिणः।
तत्र शोकवती देवी स्मरार्द्रहृदयाभवत् ॥ १८३ ॥
अभिलाषरसावेशं निगृह्य नृपमब्रवीत्।
सा स्वेच्छावत्प्रणयिनं तत्कालोचितविभ्रमा ॥ १८४ ॥
अभ्यर्थयैनं येनार्य देव शिक्षयति क्षणात्।
मां मञ्जुभाषिणीं वीणां स्वरश्रुतिविचक्षणः ॥ १८५ ॥
इति देवीगिरा राज्ञा गुणशर्मार्थितश्चिरम्।
प्रातः शिक्षयितास्मीति निगद्य स्वगृहं ययौ ॥ १८६ ॥
स्निग्धां दृष्टिं समालक्ष्य शङ्कितो राजयोषितः।
विवेशान्तःपुरे प्रातर्वीणां शिक्षयितुं स्वयम् ॥ १८७ ॥
अङ्के वीणां समाधाय तत्पुरः सा स्मराकुला।
शशंसाक्षिविकारैश्च भ्रूविलासैश्च हृद्गतम् ॥ १८८ ॥
विदग्धानां नखाग्रेण संज्ञां मन्मथकारिताम्।
गुणशर्मा जगादैनां देवि संवृणु दुर्नयम् ॥ १८९ ॥
प्रभुभार्या त्वमस्माकं मा कृथा गर्हितां मतिम्।
इति सा तद्वचः श्रुत्वा भज मामित्युवाच सा ॥ १९० ॥
कम्पमानस्तनी लीलासंरम्भगलितांशुका।
कर्णौ पिधाय यातेऽथ तामनादृत्य सुन्दरीम् ॥ १९१ ॥
तस्मिन्नरेन्द्रमहिषी बभूव विरहातुरा।
अत्रान्तरे नरपतेः प्रविश्याहारमण्डपम् ॥ १९२ ॥

---

१. 'निर्बन्धात्त' ख. २. 'हृषिण.' ख. ३. 'नी' ख. ४. 'तारणो' ख. ५. ' ख. ६. 'स्तजम्' ख. ७. 'संभ्रमान्मायुपाय तम्' ख.

विषदानोद्यतं सूदं गुणशर्मा व्यलोकयत् ।
सूदं नष्टमुखच्छायं सकम्पं गद्गदस्वरम् ॥ १९३ ॥
स ताडयित्वा पप्रच्छ भूपतिद्रोहकारणम् ।
सोऽब्रवीन्मालवेन्द्रेण राज्ञा विक्रमशंकिना ॥ १९४ ॥
विषदाने नियुक्तोऽहं वैरिणास्य महीपतेः ।
इत्युक्तवति तत्कोपात्सूदे तस्मिन्निपातिते ॥ १९५ ॥
कालेन मालवाधीशः स्वयं योद्धुं समाययौ ।
दुर्जयं तं महानीकं ज्ञात्वा शूरं नराधिपम् ॥ १९६ ॥
मन्त्रेणान्तर्हितः प्रायाद्गुणशर्मा तदन्तिकम् ।
स कूटसिद्धो भूत्वा तं दिवः प्राह महीपतिम् ॥ १९७ ॥
मा कृथा विग्रहं राजन्महासेनेन भूभुजा ।
प्रणमैनं महीपालं श्रेयसीं प्राप्स्यसि श्रियम् ॥ १९८ ॥
उक्त्वेत्यलक्षिते याते गुणशर्मणि विद्यया ।
मालवेन्द्रो महासेनं प्रसाद्य प्रणनाम तम् ॥ १९९ ॥
कृतसख्ये प्रयातेऽथ स्वपुरीं मालवेश्वरे ।
गुणशर्मकृतां मायां प्रशशंसुश्च पार्थिवाः ॥ २०० ॥
ततः कदाचिद्गङ्गायां जलक्रीडारतं नृपम् ।
महासेनं महाग्राहो जग्राह गजसंनिभः ॥ २०१ ॥
गुणशर्मा समभ्येत्य स्वामिनं प्रोज्जहार तम् ।
ग्राहं विधाय दलशः शस्त्रेण विपुलाशयः ॥ २०२ ॥
पुनर्दष्टं भुजङ्गेन मन्त्रज्ञस्तमजीवयत् ।
इत्यनेकोपकारोऽसौ स्नेहार्द्रं नृपतिं व्यधात् ॥ २०३ ॥
कदाचिदथ निःशङ्कं प्राप्तमन्तःपुरं द्विजम् ।
तं सा भूपाल्महिषी भजस्वेत्यभ्यधात्पुनः ॥ २०४ ॥

१. 'शालिना' ख. २. 'म्वे' ख.

अनादृत्यैव भूयोऽपि याते तस्मिन्नृपप्रिया ।
लज्जाकोपस्मराक्रान्ता सा निशश्वास भामिनी ॥ २०५ ॥
रहः क्ष्मापं समभ्येत्य सावदत्साश्रुलोचना ।
गुणशर्मा तवात्यन्तं प्रियो देव किमुच्यते ॥ २०६ ॥
पुरा विषप्रदः सूदो हतो यत्नेन तच्छृणु ।
एककार्यनिविष्टौ तौ ततो भेदस्तयोरभूत् ॥ २०७ ॥
भवत्प्रसादाद्व्यचलल्लक्ष्मीमदतरङ्गिणा ।
अहं तेनाद्य विजने याचिता सुरतं सती ॥ २०८ ॥
बलाद्विवसनां कृत्वा क्रोशन्तीं काममोहितः ।
पाणिना मां स पस्पर्श स्तनयोर्जघने तथा ॥ २०९ ॥
श्रुत्वेति मोहं प्रमयावीर्ष्यासंमूर्च्छितो नृपः ।
तयैवाश्वासितः संज्ञां प्राप्य कोपादकम्पत ॥ २१० ॥
स सभामण्डपं गत्वा निर्लज्जो जनसंसदि ।
उवाच गुणशर्माणं देवीवृत्तान्तमाकुलः ॥ २११ ॥
परिशुद्धिवचस्तस्य क्रोधान्धो वसुधाधिपः ।
अशृण्वन्नेव तं शस्त्रैः सानुगो हन्तुमुद्ययौ ॥ २१२ ॥
कृतश्रमो वञ्चयित्वा स राजानं भटांश्च तान् ।
ययावलक्षितो वेगाद्गुणशर्मा विधेर्वशात् ॥ २१३ ॥
दक्षिणापथमासाद्य ब्राह्मणस्य निवेशनम् ।
अग्निदत्ताभिधानस्य स विवेश सुदुःखितः ॥ २१४ ॥
वेदवेदान्तसारज्ञः पृष्टस्तेन द्विजन्मना ।
गुणशर्मा निजां जातिं जातखेदं जगाद तम् ॥ २१५ ॥
अहं सुगेमिनाख्यायां पुरे यज्वद्विजन्मनः ।
आदित्यशर्मणो जातो गुणशर्माभिधः सखे ॥ २१६ ॥

---

१. 'पिता' ख. २. 'कोपवशात्प्रकम्पित' ख. ३. 'ते' ख. ४. 'भा' 'शर्मा' ख. ६. 'कर्म' ख. ७. 'शोभ' ख.

गुह्यकीजनसंपर्काद्धनदस्य गृहे स्थितम् ।
यदृच्छयागतः शक्रः प्राह मज्जनकं रुषा ॥ २१७ ॥
प्रणमत्सु समस्तेषु यक्षेषु मयि सादरम् ।
व्यग्रस्त्वं न प्रणमसि भूयो मामवमन्यसे ॥ २१८ ॥
लोकपालपुरादस्मात्पत क्षिप्रं महीतले ।
इति ब्रुवाणो देवेन्द्रो मत्पित्राथ प्रसादितः ॥ २१९ ॥
तं प्राह त्वत्सुतो भूमिं यात्वात्मैव सुतो यतः ।
इति शापान्महेन्द्रस्य यतोऽहं वसुधातलम् ॥ २२० ॥
अविस्मृतानेकविधः प्राप्तो भूपतिमन्त्रिताम् ।
महासेनाभिधानेन मिथ्या तेन महीभुजा ॥ २२१ ॥
भार्यादूषितचित्तेन निरस्तोऽहमकिल्बिषः ।
अग्निदत्तो निशम्येति कथितं गुणशर्मणा ॥ २२२ ॥
उवाच गुणिने तस्मै दातुमभ्युद्यतः सुताम् ।
श्रीमतः कार्तिकेयस्य जैयिनस्तारकद्विषः ॥ २२३ ॥
गृहाण मन्त्रमेतेन जहि तं पार्थिवाधमम् ।
रुद्रस्य देवीसुरते विघ्नोऽभूत्सुरशासनात् ॥ २२४ ॥
वदेस्तद्वानने वीर्यं तत्याज च महेश्वरः ।
जाते वर्षसहस्रेऽथ तदुद्गीर्णं कृशानुना ॥ २२५ ॥
जज्वाल सलिलान्तस्थं गङ्गायां वत्सरायतम् ।
मन्दाकिन्या समुत्सृष्टे शार्वे तेजसि दुःसहे ॥ २२६ ॥
जातः शरवणे तस्मिन्कृत्तिकावर्धितः शिशुः ।
षडाननः समास्ताय सुरेन्द्रेणार्थितो भयात् ॥ २२७ ॥
सेनापतिपदं प्राप्य तारकं निजघान सः ।
तस्यैनं प्रवरं मन्त्रं त्वं गृहाण जयश्रिये ॥ २२८ ॥

१ 'वे' ख. २. 'मिमः' ख. ३. 'व्यग्रो' ख. ४. 'डे' ख. ५. 'र्थितः' ख. ६. 'वडि' ख. ७. 'धमु' ख. ८. 'मुप्या' ख.

उक्त्वेति विधिवन्मन्त्रं तस्मै विप्रवरो ददौ ।
सुतां च सुन्दरीं नाम सौन्दर्यशशिचन्द्रिकाम् ॥ २२९ ॥
तां कान्तां गुणशर्मा च प्राप्यायतविलोचनाम् ।
जित्वा नृपं महासेनं तद्राज्यं समवाप्तवान् ॥ २३० ॥

इति गुणशर्माख्यायिका ॥ २ ॥

इति वीतभयाख्येन कथितां सुहृदा कथाम् ।
सूर्यप्रभो निशम्यैव प्रीतो निद्रां समाययौ ॥ २३१ ॥
ततः प्रभाते संनद्धः स्नातः कृतजयोचितः ।
अवाप्य संग्रामभुवं दिव्यं व्यूहमकल्पयत् ॥ २३२ ॥
अथ स्वयं शक्रमुखास्त्रिदशा दैत्यदानवैः ।
अयुध्यन्त सुसंरब्धाः श्रुतिशर्मजयैषिणः ॥ २३३ ॥
ततो विनिहताः पेतुर्विद्याधरवरा भुवि ।
रत्नांशुभासुराकाराः क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥ २३४ ॥
स्वयं सूर्यप्रभस्तत्र ध्यात्वा देवं पिनाकिनम् ।
व्यधात्पाशुपतं घोरं शस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ २३५ ॥
तेन बद्ध्वा सहामात्यं श्रुति(त)शर्माणमाहवे ।
हरहुंकारविध्वस्तान्देवान्सूर्यप्रभोऽजयत् ॥ २३६ ॥
ततः शिवाज्ञया सख्यं विधाय श्रुति(त)शर्मणा ।
स जयश्रियमासाद्य ननन्द सह दानवैः ॥ २३७ ॥
प्रह्लादतनयां तत्र कामचूडामणिं ततः ।
परिणीयाभिषेकाय स प्रायादृषभाचलम् ॥ २३८ ॥
साक्षाद्विलोक्य हेरम्बं प्रणतो विघ्ननायकम् ।
गौरीपतिं च सानन्दो लेभे निर्वृतिमुत्तमाम् ॥ २३९ ॥
सुमेरुप्रमुखैस्तत्र विद्याधरधराधिपैः ।
प्रह्लादिभिः सुरवरैर्मयमुख्यैर्महासुरैः ॥ २४० ॥
मुनिभिः कश्यपमुखैरभिषिक्तो यथाविधि ।

---

१. 'भूत्वा' ख. २. 'मान्यवैः' ख.

सूर्यप्रभश्चक्रवर्तिश्रियं भेजे सुहृद्वृतः ॥ २४१ ॥
कान्ताभिः सह सर्वाभिः संभोगसुरतोत्सवे ।
कृतकृत्यो रतिं प्राप साक्षादिव स मन्मथः ॥ २४२ ॥
इति सूर्यप्रभेणाप्ता विद्याधिश्चक्रवर्तिता ।
त्वत्पुत्रोऽप्यधिकं देव लप्स्यते नरवाहनः ॥ २४३ ॥
अवाप्तविद्यमचिराद्विजितारातिमण्डलम् ।
एवं पुनः समेष्यामीत्युक्त्वा सूर्यप्रभो ययौ ॥ २४४ ॥
सूर्यप्रभस्येति निशम्य वृत्तं वत्सेश्वरो हर्षसुधाभिषिक्तः ।
देवीमुखाम्भोजनिविष्टदृष्टिः पस्पर्श पुत्रस्य करं करेण ॥ २४५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे सूर्यप्रभो नाम षष्ठो लम्बकः ।

---

## मदनमञ्चुकानामा सप्तमो लम्बकः ।

### प्रथमो गुच्छः ।

भ्रूलेखाधनुरानतं विचलितो लीलाकटाक्षः शरो
हासस्तरसितपुङ्खपक्षरचना मौर्वी च पक्ष्मच्छविः ।
ॐकारः कलपञ्चमाश्रयिवचो यस्येत्थमासूच्यते
जैवं तन्नमनारतं युवतिभिः कामाय तस्मै नमः ॥ १ ॥
सूर्यप्रभकथां श्रुत्वा वत्सराजः प्रियासखः ।
पुत्रप्रभावं कलयन्नभूवानन्दनिर्भरः ॥ २ ॥
अत्रान्तरे स्मरं ज्ञात्वा नरवाहनरूपिणम् ।
अवतीर्णं वराच्छंभोर्भुवं रतिरवातरत् ॥ ३ ॥
दैयितानुव्रता साथ तपसा पार्वतीवरात् ।
कान्ता यत्र यथा जाता तदिदानीमिहोच्यते ॥ ४ ॥
अस्ति संतोषजननी निर्विकारसुखस्थितिः ।
वितस्ता मोक्षवीथीव सिद्धसेव्या महानदी ॥ ५ ॥

---

१. 'भृत्' ख. २. 'संसारः' क. ३. 'यदि ना' ख.

यस्यास्तुषारनिकरसरशीकरमारुतैः ।
पुंसां (भवन्मरुक्रान्ति)तैपापाये च का कथा ॥ ६ ॥
तस्यास्तक्षशिला नाम तीरेऽस्ति रुचिरा पुरी ।
यत्सौधकान्तिभिर्व्योम्नि जायते दिनैकौमुदी ॥ ७ ॥
तस्यां कलिङ्गदत्तोऽभूद्भूपालो धर्मभूषणः ।
त्रिजगद्व्यापिनी यस्य पुण्या कीर्तिसरस्वती ॥ ८ ॥
शशिप्रभापराभिख्यः स विहारशतैर्भुवम् ।
लोकनाथः प्रविदधे परामिव सुँखावतीम् (?) ॥ ९ ॥
करुणापूर्णहृदयो नानायुक्तिनिदर्शनैः ।
संदेशनाभिश्च जनं व्यधात्सुगतभाजनम् ॥ १० ॥
वितस्तादत्ततनयस्तस्य राज्ञः पुरे वणिक् ।
बभूव रत्नदत्ताख्यो विमुखो जिनशासने ॥ ११ ॥
भिक्षुभ्यः प्रणतं नित्यं दातारं पितरं युवा ।
सोऽवदद्वेदवाक्यानां धिक्त्वां निपतितं वशे ॥ १२ ॥
जात्याचारविहीनानां दम्भमीलितचक्षुषाम् ।
भिक्षूणां धूर्तधुर्याणां धीमान्को नाम विश्वसेत् ॥ १३ ॥
इति पुत्रवचः श्रुत्वा दुःखितो नृपतिं यँयौ ।
सन्मार्गे मत्सुतं देव स्थापयेत्यब्रवीद्वचः ॥ १४ ॥
नृपोऽप्याहूय तत्पुत्रं स प्रत्यक्षनिदर्शनैः ।
लोकलोकोत्तरान्धर्मानुँपदेष्टुं प्रचक्रमे ॥ १५ ॥
तदादेशश्रुतिपरो न बभूव वणिक्ततः ।
भ्रूभङ्गभीषणक्रोधस्तमुवाच महीपतिः ।
अयं नराधमः क्षिप्रं हन्यतां हन्यतामिति ॥ १६ ॥

---

१. धनुर्मध्यगतः पाठः क-पुस्तके नास्ति. २. 'तापे पापे' ख. ३. 'निशि' ख. ४. 'सुखावतीम्' ख. ५. 'ति:' ख. ६. 'जगौ' ख. ७. 'ति वणिग्वरः' ख. ८. 'र्ने' ख. ९. 'यौ' ख.

ततः स भ्रान्तहृदयो वेपमानः कृताञ्जलिः ।
भीतः प्रसादयामास जनकस्तस्य भूपतिम् ॥ १७ ॥
तद्वाक्यान्नृपतिस्तस्य चक्रे मासद्वयावधिम् ।
वधे तद्वासरारम्भमुहूर्तगणनार्थुपः ॥ १८ ॥
भयाद्विगतनिद्रोऽथ विवर्णो निःसुखः कृशः ।
मरणं प्रत्यहं ध्यायन्सोऽकम्पत वणिक्सुतः ॥ १९ ॥
कङ्काल इव निर्मांसः सोऽस्थिशेषतया नरः ।
जाते मासद्वये मेने कृतान्तं शिरसि स्थितम् ॥ २० ॥
ततो राज्ञा समाहूतो वधायावधिवासरे ।
दृष्टश्चिन्ताज्वरग्रस्तः स भीतो वणिजः सुतः ॥ २१ ॥
तमाह राजा चकितं कृशोऽसि वत निष्प्रभः ।
दृश्यसे स्नायुशेषाङ्गो ध्यायन्मरणजं भयम् ॥ २२ ॥
मासद्वयावधेर्भीतो मूर्ख किं परितप्यसे ।
मरणस्यावधिर्नास्ति मुहूर्तमपि देहिनाम् ॥ २३ ॥
एवंविधं भयं नृणां सर्वदैवोपपद्यते ।
को हि निद्रां समायाति मृत्युदन्तान्तरे स्थितः ॥ २४ ॥
ज्ञात्वेति धर्मपन्थानं श्रय दुःखौघशान्तये ।
धर्म एव प्लवः पुंसां संसारमकराकरे ॥ २५ ॥
श्रुत्वेति वणिजा पृष्टः कथं मुक्तिरिति प्रभुः ।
प्राह लोकोत्तरं धर्मं वक्ष्यामीति नरेश्वरः ॥ २६ ॥
ततस्तृतीयेऽह्नि पुनर्भूमिपालस्तमभ्यधात् ।
आदायोत्सवयात्रायां संपूर्णं तैलभाजनम् ॥ २७ ॥
प्रदक्षिणीकुरु पुरीं बिन्दुमात्रमपातयन् ।
पतेद्यदि ततो बिन्दुर्हन्यसे खड्गपाणिभिः ॥ २८ ॥

---

१. 'परः' ख. २. 'निर्विण्णो' ख. ३. 'पो भयातुरः' ख. ४. 'महं' ख. ५. 'नीतो' ख. ६. 'ततस्तं' ख.

मत्प्रदिष्टैरिति श्रुत्वा पात्रहस्तो ययौ वणिक् ।
समुद्यतासिभिर्भीमैः पौत्रपातप्रहारिभिः ॥ २९ ॥
तैलभाजनमादाय बभ्राम निखिलां पुरीम् ।
भ्रान्त्वा नृपान्तिकं प्राप भयादच्युतभाजनः ॥ ३० ॥
हृष्टः प्रोवाच राजानं देवादेशः कृतो मया ।
न दृष्टं न श्रुतं किंचिदुत्सवेऽस्मिन्महाजने ॥ ३१ ॥
ध्यानैकाग्र्येण पात्राग्रे न्यस्तं नेत्रद्वयं मया ।
निशम्येत्यवदद्राजा मोक्षवर्त्मैतदेव यत् ॥ ३२ ॥
सर्वतो विनिवृत्तस्य ध्यानैकाग्र्ये मनोगतैः (म्) ।
इत्याग्रहेण वणिजश्चकारानुग्रहं नृपः ॥ ३३ ॥

इति रत्नदत्ताख्यायिका ॥ १ ॥

एवं स सर्वजनतातारणेऽमूक्तोद्यमः ।
तारादत्ताभिधानास्य बभूव नृपतेः प्रिया ।
क्षमेवोत्तमसत्त्वस्य करुणेवार्द्रचेतसः ॥ ३४ ॥
अत्रान्तरे सुरेन्द्रेण यात्राया विबुधाङ्गना ।
शप्ता सुरभिदत्ताख्या विद्याधररता दिवि ॥ ३५ ॥
सा शक्रशापपतिता जनैर्न गर्भमाविशत् ।
राज्ञः कलिङ्गदत्तस्य जायाया स्वप्नसूचिता ॥ ३६ ॥
दोहदापाण्डुरमुखी रजनीवेन्दुमण्डिता ।
तारादत्ताभवत्प्रीत्यै नितरामथ भूपतेः ॥ ३७ ॥
ततः सा रत्नदीपस्य शिखयेवान्तराश्रिता ।
ददर्श राज्ञी निखिलां प्राग्जन्मस्थितिमात्मनः ॥ ३८ ॥
जातिस्मरा नृपं प्राह पुरा मे जननी विभो ।
नागलक्ष्मी प्रियं प्राह धर्मदत्तं महीपतिम् ॥ ३९ ॥

---

१ 'गोऽनुयात' ख. २ 'दृष्ट' ख. ३ 'ति' ख. ४ 'म' ख. ५ 'यत' ख. ६ 'नु' ख. ७ 'दृष्टैव देवी विभ्रम्य माधवाख्यस्य कस्यचित्, 'गृहेऽहमभवं दासी सुव्रता पूर्वजन्मनि' कथा॰

LIBRARY

अन्यस्मिञ्जन्मनि विभो कुम्भदासी वणिग्गृहे ।
अभवं देवदासश्च भर्ताभून्मम मद्विधः ॥ ४० ॥
तदावां सर्वदुर्भिक्षे परपिण्डोपजीविनौ ।
याचितावर्थिनाभ्येत्य क्षुत्क्षामेन द्विजन्मना ।
दत्त्वा समशनं तस्मै तच्छेषकृतभोजनौ ॥ ४१ ॥
तदा मम पतिः शोकान्निधनं समवाप्तवान् ।
तस्यानुमरणादस्मि जाता जातिस्मरा विभो ॥ ४२ ॥
इति कोशलभूपालः श्रुत्वा जायावचो रहः ।
देवदासोऽहमेवेति जातिं सोऽप्यस्मरन्निजाम् ॥ ४३ ॥
जातिं स्मृत्वा तयोर्दिव्यं धाम धर्म्यं प्रपन्नयोः ।
पितृभ्यामथ हीनाहं मातुः स्वस्रा विवर्धिता ॥ ४४ ॥
कन्ययैव ततः कश्चिन्मुनिरभ्यागतो मया ।
आराधितः पुरा कुन्त्या पार्थजन्मभुवा यथा ॥ ४५ ॥
तद्वरात्त्वां वरं देव लोकनाथशिरःस्थितम् ।
अभितानमवाप्याहं प्राप्ता सीमन्तिनीपदम् ॥ ४६ ॥
इत्याकर्ण्य नृपः प्राह देवीं सत्त्ववतां मतिः ।
अमोघामृतसूः कामधेनुरन्येषु जन्मसु ॥ ४७ ॥
त्वत्पिता सुगतिं प्राप्तः सत्त्वादेव प्रियासखः ।
सत्त्वप्रकाशाद्वसतिः सतां हि दिवि शाश्वती ॥ ४८ ॥
गङ्गाकूले पुरा विप्रश्चण्डालश्च जलार्थिनौ ।
चक्राते त्यक्तुमात्मानं निषेव्यानशनव्रतम् ॥ ४९ ॥
नियमस्थौ ददृशतुस्तौ निषादर्जनं ततः ।
प्रत्यग्रदृष्टमत्स्यौघभोजनव्यग्रमग्रतः ॥ ५० ॥
द्विजस्तान्वीक्ष्य मत्स्यादांल्लौल्यादन्नोदकाकुलः ।
तस्यावनशनक्षामो निगिरन्निव सस्पृहम् ॥ ५१ ॥

१. 'मागध.' ख. २. 'तोऽहं सर्वं' ख. ३. 'चान्तरा' ख. ४. 'रान्वितौ' ख. ५. 'विचिन्त्य' ख. ६. 'गणेरेह' ख.

चण्डालोऽपि विलोक्यैव कुत्सयन्मत्स्यघातकान्।
पुष्णाति प्राणिभिः प्राणान्धिगेतानित्यचिन्तयत्॥ ५२॥
चिन्तयित्वेति तौ यातौ त्रिदिवं तीर्थसेवया।
जन्मान्तरे क्षेत्रफलाज्जातिस्मरपदं श्रितौ॥ ५३॥
पर्यन्तभावसदृशं प्रापतुश्च कुलं पृथक्।
द्विजोऽभूद्धीवरसुतश्चण्डालश्च द्विजात्मजः।
शुद्ध्यशुद्धी हि चित्तस्य जन्तूनां सुखदुष्कृतेः॥ ५४॥

इति विप्रचण्डालाख्यायिका॥ २॥

उपाध्यायो द्विजः कश्चित्कुण्डिने नगरे पुरा।
सप्तभिः सहितः शिष्यैर्दुर्भिक्षे क्षुधितोऽभवत्॥ ५५॥
गत्वा मच्छ्वशुराचूर्णं गामानयत पुत्रकाः।
तत्क्षीरेणास्तु नो वृत्तिरिति शिष्यानुवाच सः॥ ५६॥
शिष्यास्तदाज्ञया गत्वा गुरुश्वसु(शु)रमन्दिरम्।
गामादाय परावृत्ताः प्राप्य गां विषमेऽध्वनि।
निराहारा निपतिताः श्वासशेषा व्यचिन्तयन्॥ ५७॥
अस्मिन्मरुतटे प्राप्तो मृत्युरस्माभिरुत्कटे।
अस्मिद्विनाशे गौरेषा विनङ्क्ष्यति गुरुस्तथा॥ ५८॥
तदेनं सविधानेन गामेतां याजिनो वयम्।
भुक्त्वा प्राणानवाप्स्यामस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥ ५९॥
चिन्तयित्वेति बहुशो विशस्य विधिनैव गाम्।
तथागशेषं भुक्त्वा ते शिष्या गुरुगृहं ययुः॥ ६०॥
यथावृत्तं निवेद्यास्मै निःसन्नाः सत्यवादिनः।
जातिस्मरास्तद्दशाचे शिष्याः प्रापुः परां गतिम्॥ ६१॥

इति शिष्याख्यायिका॥ ३॥

इति सत्त्वविशुद्धानां सतामायान्ति संपदः।
त्यजन्ति सत्त्वहीनां स्तु दारा अपि निरादराः॥ ६२॥

---

१ 'ज्म्य' ख. २. 'अ' ख.

अस्ति गौरीव नगरी चन्द्रचूडस्य वल्लभा ।
श्रीमदुज्जयिनी नाम जननी जनसंपदाम् ॥ ६३ ॥
तस्यां विक्रमसिंहोऽभूद्भूमिपालो महाबलः ।
निःशेषविजितारातिर्यस्य युद्धे मनोरथः ॥ ६४ ॥
दर्पकण्डूलदोर्दण्डं तं युद्धगतमानसम् ।
उवाचामरगुप्ताख्यः कदाचिन्मन्त्रिपुंगवः ॥ ६५ ॥
देव बाणोऽसुरः पूर्वं महस्रभुजदुर्मदः ।
ययाचे त्रिपुरारातिं योद्धा मे दीयतामिति ॥ ६६ ॥
ततो नियुद्धसंबन्धयुद्धसंनद्धचेतसा ।
माधवेन निकृत्तास्य चक्रेण भुजमण्डली ॥ ६७ ॥
अभिमानोऽवमानाय दृप्तानामिह भूभुजाम् ।
युद्धप्रतिनिधिर्देव मृगयास्ति नृपोचिता ॥ ६८ ॥
मुनीनां प्रातिकूल्येन प्रमादाद्वरवाजिनाम् ।
राज्ञामतिप्रसङ्गाच्च मृगया दुःखदायिनी ।
तस्मान्मृगरणक्रीडां भज व्यसनवर्जितः ॥ ६९ ॥
इति मन्त्रिगिरा राजा सानुगः प्रययौ वनम् ।
कुञ्जरक्रोडशरभद्वीपिकेसरिसंकुलम् ॥ ७० ॥
ततः कृतश्रमोऽभ्येत्य लीलाहतवनेचरः ।
विनिवृत्तो ददर्शाग्रे कथासक्तौ मिथो नरौ ॥ ७१ ॥
एकान्ते चिरसंलापौ तौ दृष्ट्वा शङ्कितो नृपः ।
चौराविति तदाह्वाने प्रतीहारमचोदयत् ॥ ७२ ॥
प्रतीहारसमाहूतौ सर्वास्थानं महीपतेः ।
ततस्तौ ब्राह्मणौ प्रातः प्रविष्टौ भयकम्पितौ ॥ ७३ ॥
दत्ताभये नरपतौ स्ववृत्तं कथ्यतामिति ।
तयोरेकोऽब्रवीद्राजञ्श्रूयतां नौ विचेष्टितम् ॥ ७४ ॥

---

१. 'युद्ध' ख. २. 'मभि' ख. ३. 'ले' ख. ४. 'सा' ख. ५. 'ल' क.
. 'कथ्यतामिति वादिनि' ख.

पितृभ्यां विप्रयुक्तोऽहं बालो विप्रः पुरा नृप।
नियुद्धशास्त्रकुशलो द्यूतक्रतुर्मदोऽभवम् ॥ ७५ ॥
याति काले नवोढ्वाहामपश्यं पथि योषितम्।
युग्याधिरूढां प्रत्यग्रमङ्गलाबद्धकङ्कणाम् ॥ ७६ ॥
अत्रान्तरे महावेगः स्फोटितालानशृङ्खलः।
तां विवाहमहावाद्यकुपितः कुञ्जरोऽभ्ययात् ॥ ७७ ॥
त्यक्त्वा तां द्विरदत्रासात्प्रयातेष्वनुयायिषु।
गजो जिघृक्षुस्तां प्राप मुखाब्जां नलिनीमिव ॥ ७८ ॥
दृष्ट्वाहमतिकारुण्यान्नादेनाहूय वारणम्।
वञ्चयित्वा श्रमाभ्यासाद्विह्वलां ताममोचयम् ॥ ७९ ॥
तस्मान्महाभयान्मुक्ता सावदन्मां सुलोचना।
वल्लभस्त्वं जनस्यास्य प्राणानामधुना विभुः ॥ ८० ॥
त्यक्तासि येन संत्रासाद्धिग्धिक्तं कातरं नरम्।
नाहं संदूपिता तेन न च स्प्रक्ष्यामि तं जडम्।
प्रच्छन्नानुगतस्त्वं मामचिरात्समवाप्स्यसि ॥ ८१ ॥
इति मे संविदं कृत्वा संगता स्वजनेन सा।
ययौ भर्तृगृहं तन्वी मय्येवार्पितमानसा ॥ ८२ ॥
तामेवानुप्रयातोऽहं प्रेमपाशवशीकृतः।
प्रच्छन्नवृत्तिर्बद्धाशः शून्यदेवगृहे स्थितः ॥ ८३ ॥
तत्रापश्यमिमं विप्रमहं प्रच्छन्नकामुकम्।
तस्या भर्तुः स्वसुर्गूढरूढरागैकभाजनम् ॥ ८४ ॥
अनेन जातसौहार्दस्ततस्तां कामिनीमहम्।
कृत्वा गूढमयं प्रासस्थापनिर्वापणौषधिम् ॥ ८५ ॥
जामिं च तस्याः प्राप्यायं सुहृन्मे निर्वृतोऽभवत्।
तदर्थे देव संलापः शून्येऽमुचिरमावयोः ॥ ८६ ॥

१. 'पुरा' क. २. 'त्रैशा' ख. ३. 'तु न' ख. ४. प्रौढ' ख. ५. 'दीर्घ' ख.

श्रुत्वेति तद्वचो राजा तुष्टः सत्यनिवेदनात् ।
ताभ्यां वसु ददौ को हि सद्भावेन न तुष्यति ॥ ८७ ॥
इत्येवं सत्त्वसारेण भार्या कान्ता द्विजन्मना ।
क्लीबेन सत्त्वहीनेन कातरेण तु हारिता ॥ ८८ ॥

इति विक्रमसिंहाख्यायिका ॥ ४ ॥

राज्ञः कलिङ्गदत्तस्य श्रुत्वेति वचनं प्रिया ।
तारादत्ता वैरानन्दमुत्सिद्धवदना बभौ ॥ ८९ ॥
अथ कालेन संपूर्णदोहदाहृतिशालिनी ।
असूत सा सुतां देवी द्यौः शशाङ्ककलामिव ॥ ९० ॥
जातां पुत्रीं नृपः श्रुत्वा बभूव विमना इव ।
चिन्ता मूर्तिमती कन्या कस्य प्रीणाति मानसम् ॥ ९१ ॥
स चिन्ताखिमितो गत्वा विहारं शंसुमन्दिरे ।
शुश्राव धर्मं[3] भिक्षूणां तत्र मोहप्रशान्तये ॥ ९२ ॥
अहिंसा परमो धर्मः संन्यासः परमं धनम् ।
कारुण्यं परमः कामो मोक्षश्च परमः क्षमा ॥ ९३ ॥
क्षमैव सर्वसत्त्वानां पुण्यपीयूषवाहिनी ।
मैत्री च सर्वभूतेषु संसारमरुवारिदः ॥ ९४ ॥
पुरा तपोवनोपान्ते राजपुत्रः प्रियासखः ।
विललासानिलालोलबालचूतलतावने ॥ ९५ ॥
रतिश्रान्त्याथ सुतास्ताः कुतूहलविनिश्चलाः ।
चपला राजपुत्र्यस्ता विचेरुः केलिकानने ॥ ९६ ॥
तदुपान्ते मुनिं ध्यानमीलिताक्षं विलोक्य ताः ।
तस्थुर्मञ्चा विलासिन्यः कुतूहलविनिश्चलाः ॥ ९७ ॥

१ 'पद' ख. २. 'सुधाद' ख. ३. 'मंथवगे' ख. ४. 'निन्दा' ग. ५. 'समारे मधुवारिदम्' ख. ६. 'रतिश्रान्तेऽय सुप्ते ता' इति भवेत्; 'रतिश्रान्ते मधुमदालसिभिद्रावशंगते' ख.

राजपुत्रः प्रबुद्धोऽपि भिया दृष्ट्वा मुनेः पुरः ।
तं जघानेर्ष्यया ग्रस्तः खड्गेन निरवग्रहः ॥ ९८ ॥
तेनाहतोऽपि बहुशः शस्त्रेण न चुकोप सः ।
सत्यं सुहृदि शत्रौ च शमिनां सदृशा दृशः ॥ ९९ ॥
निर्दग्धुमुद्यताः पापं तं तपोवनदेवताः ।
अवारयत्कृपापूर्णः[3] स क्षमामागतो मुनिः ॥ १०० ॥
खड्गप्रहारनिर्लूनगात्रोऽपि मुनिसत्तमः ।
तथैव देव्या संस्पृष्टो बभूव स्वच्छविग्रहः ॥ १०१ ॥

इति क्षमावदानम् ॥ ५ ॥

कुमार्यः सप्त रूपिण्यो भूपालस्य हुंकेः सुताः ।
ययुः श्मशानं वैराग्यात्यक्तसंसारवासनाः ॥ १०२ ॥
स्वजनैर्नार्थिताः प्राहुस्ताः शरीरमिदं हि नः ।
अस्थिमांसशिराचर्मसंवीतमपि कुत्सितम् ॥ १०३ ॥
अस्मिन्काये श्मशाने च को विशेषः प्रदृश्यते ।
पच्यन्ते सततं यत्र वह्निना सप्त धातवः ॥ १०४ ॥
विरक्तो राजपुत्रः प्राड्वियतो भिक्षुकव्रतः ।
दृष्टः प्रविष्टो भिक्षायै कयाचिद्गृहयोषिता ॥ १०५ ॥
तं रूपमिव रूपस्य यौवनस्येव यौवनम् ।
विलोक्य कामवशगा भिक्षादानोद्यताभवत् ॥ १०६ ॥
अहो सुभग रूपं ते मानसामृतदीधितेः ।
वर्षतीयामृतं दृष्टिस्तव राजीवलोचन ॥ १०७ ॥
इति लोचनसौन्दर्यविचाराधिकसस्पृहाम् ।
तां वीक्ष्य निजमुत्पाट्य लोचनाब्जमुवाच सः ॥ १०८ ॥

---

१. 'तां' ग. २. 'तां' ग. ३. 'वं' ख. ४. 'क्षमासागरो' ख. ५. 'वध' ख. ६. 'कवेः' ग. कथासरित्सागरे तु 'इतनाम्नो महीपतेः' इत्येव पाठः. ७. 'रूपवान्पौ-' ग.

चर्मावनद्धं पश्येदं वारि लोकं न लोचनम् ।
अस्मिन्मनोहरं भावः किं कुत्सितशरीरके ॥ १०९ ॥
इति तस्य गिरा सापि विरक्ता जिनशाय(शास)नम् ।
प्रपेदे जन्मसंतानमरणवारणम् ॥ ११० ॥

इति वैराग्यावदानम् ॥ ६ ॥

कलिङ्गदत्तः श्रुत्वेति बुद्धः सद्धर्मदेशनम् ।
अशृणोद्ब्राह्मणवचः कन्यकाजन्मदुःखितः ॥ १११ ॥
कुमारीजन्मना राजन्किं वृथा परितप्यसे ।
पुत्रैरशक्यं यत्कर्तुं तत्सुताभिरवाप्यते ॥ ११२ ॥
सुषेणे[3] इति नृपालश्चित्रकूटाचलेऽभवत् ।
कर्पूरकर्णपूरोऽभूद्यशः सुरयोषिताम् ॥ ११३ ॥
कान्तावर्गसमारम्भः प्रिया तस्य गुणाधिका ।
न विना चन्द्रिकां लक्ष्मीश्चन्द्रे कान्ते प्रसीदति ॥ ११४ ॥
स निर्ममे नवोद्यानं विमानमिव गां गतम् ।
संकेतसद्म कान्तस्य वसन्तमिव कल्पितम् ॥ ११५ ॥
रममाणः सदा तस्मिन्स नानाकुसुमोज्ज्वले ।
ननन्द नन्दनगतः शतक्रतुरिवापरः ॥ ११६ ॥
कदाचिच्चयनानन्दनिस्पन्दमधुवाहिनी ।
गीर्वाणनर्तकी रम्भा तं ददर्शाथ तां च सः ॥ ११७ ॥
सा तं विलोक्य तच्छायं शृङ्गाररसमादधत् ।
सर्वातिशायिनिर्माणपुण्याहमिव वेधसः ॥ ११८ ॥
स च तां वीक्ष्य पूर्णेन्दुनवलावण्यचन्द्रिकाम् ।
कौशिकीरसिकस्येव कान्तस्य रतिभूमिकाम् ॥ ११९ ॥
बभूवतुः स्मरशरासारसंनिमग्नानसौ ।
तत्सङ्गपवनेनेव सरोमोद्गमवेपथू ॥ १२० ॥

१. 'निज' ख. २. 'बहुधो धर्मदेशनः' ख. ३. 'सेन' ख. ४. 'तटे' ख. ५. 'कान्तावर्गे स नारेभे प्रियां तुल्यगुणां विना' ख. ६. 'न्त्वेनैव' ख. ७. 'शालिनिकां' ख.

सा मानुषतनुर्भूत्वा तमुपेत्य घनस्तनी।
गङ्गेव शंतनुं भेजे सुषेणं नाककामिनी॥ १२१॥
कासीति प्रच्छनीयाहं न राजन्निति संविदा।
तां प्राप्य भूमिपालोऽभूत्स्मरसाम्राज्यदीक्षितः॥ १२२॥
रममाणः सह तया रतिमानिव मन्मथः।
मधुमास इव श्रीमान्नवोद्यानमभूषयत्॥ १२३॥
ततः सा गर्भमासाद्य कालेन वसुधाधिपात्।
असूत तनयां कान्तिसंतानजितचन्द्रिकाम्॥ १२४॥
सावदन्नृपतिं नाथ स्वस्ति गच्छाम्यहं दिवम्।
रम्भामवेहि मां देव देवीं देवविलासिनीम्॥ १२५॥
सुताप्रसवपर्यन्तं संगमो मे भुवि त्वया।
पुनः पुण्याः प्रभावान्मे भविता संगमस्त्वया॥ १२६॥
इत्युक्त्वा प्रययौ व्योम्ना तडित्स्फुरितविभ्रमा।
कृत्वा भुजङ्गी नृपतिं वियोगविषमूर्च्छितम्॥ १२७॥
ततः सुलोचना नाम सा कन्या विभ्रमा विधिः।
प्रियासमागमायैवं ववृधे नृपतेः शनैः॥ १२८॥
तां यौवनवसन्तेन संगतां स्तबकस्तनीम्।
श्यामामपश्यद्द्युतिमान्काश्यपो मुनिपुत्रकः॥ १२९॥
अभिलाषवतीं दृष्ट्वा स तां हरिणलोचनाम्।
युवा ययाचे नृपतिं स्मरतप्तः सुलोचनाम्॥ १३०॥
याचितो मुनिना सोऽथ प्रोवाच वसुधाधिपः।
रम्भावृत्तान्तमावेद्य शनैर्विरहनिःसहः॥ १३१॥
समागमे मे रम्भायास्तनया संभविष्यति।
अनीश्वरोऽस्मि दानेऽस्या मुने तत्संगमावधि॥ १३२॥

१. 'वदि' ख. २. 'घे' ख. ३. 'सतम.' ख. ४. 'सयं' ख. ५. 'अरस्मेरः' ग. ६. 'सर्वे' ख. ७. 'समागमाय' ख.

श्रुत्वेति वचनं राज्ञो बभाषे मुनिपुत्रकः ।
अहं सप्तपर्णोऽ[1]शेन सशरीरस्य ते दिवि ।
रम्भासमागमं कर्ता देहि राजन्सुलोचनाम् ॥ १३३ ॥
पुरा प्रमद्वरां जायां भृगुवंशभवो रुरुः ।
आयुषोऽर्धेन दुष्टाहिदष्टामेवमजीवयत् ॥ १३४ ॥
इत्युक्त्वा संगमं राज्ञो विदधे रम्भया दिवि ।
सुलोचनां मुनिः प्राप स्मरामृततरङ्गिणीम् ॥ १३५ ॥
इति कन्याप्रभावेण प्राप्नुवन्तीप्सितं नराः ।
शापादिकारणाद्देव्यो मर्त्येष्ववतरन्ति च ॥ १३६ ॥

इति सुलोचनाख्यायिका ॥ ७ ॥

इति विप्रगिरा राजा चिन्तां तत्याज निर्वृतः ।
कलिङ्गसेनां तनयां पश्यन्नयनचन्द्रिकाम् ॥ १३७ ॥
सा पितुर्मन्दिरे बाला केलिलीलाविलासिनी ।
दृष्टा सौधस्थिता व्योम्ना कदाचिद्दैत्यकन्यका(या) ॥ १३८ ॥
मयस्य तनया तन्वी साथ सोमप्रभाभिधा ।
कृत्वा मर्त्योचितं वेषं सख्यं चक्रे तया सह ॥ १३९ ॥
तयोर्विश्रम्भसद्भावप्रेमप्रणयपद्धता ।
संसिक्ता स्नेहपीयूषैर्ववृधे प्रेमवल्लरी ॥ १४० ॥
ततो मयसुता प्राह तां विश्रब्धकथान्तरे ।
राजपुत्रि सुगुप्तोऽयं संगमो मे प्रियस्त्वया ॥ १४१ ॥
नास्मिन्राजगृहे स्थातुं शक्ता प्रकटिता त्वया ।
आशीविषगुहाघोरं राजगेहं सुदुःसहम् ॥ १४२ ॥
नगर्यां पुष्करावत्यां गूढसेनो नृपात्मजः ।
मित्रं वणिक्सुतं चक्रे प्रणयेनार्थितं पुरा ॥ १४३ ॥
संगतो राजपुत्रेण स्नेहसंमानकारिणा ।

१. 'सोऽर्धेन' ख. २. 'विमान दृष्टोषिता' ख. ३. 'र्विश्रम्भ' ख. ४. 'प्रीति' ख. ५. 'घोर' ख. ६. 'दृष्टा' ख.

मनसा स प्रियहितव्रतः सोऽभूद्वणिक्सुतः ॥ १४४ ॥
राजपुत्रोऽपि जन्यर्थयात्रायां मित्रसंवृतः ।
उदयाद्रिरिव प्रायात्सितच्छत्रेन्दुमण्डलः ॥ १४५ ॥
स व्रजन्पथि विश्रान्तः सैनिकैः सुहृदा सह ।
विवाहोत्कण्ठितो धीतनिद्रो धात्रीमभाषत ॥ १४६ ॥
शृणु प्रहर्षजननीं कथामाश्चर्यशालिनीम् ।
इत्युक्त्वैवाभवत्क्षीबो भेजे निद्रां समाकुलः ॥ १४७ ॥
धात्र्यामपि प्रसुप्तायामेक एव वणिक्सुतः ।
विनिद्रो निशि शुश्राव [2]वाणीमाकाशयोषिताम् ॥ १४८ ॥
अहो नु राजपुत्रेण कथिता नैव सा कथा ।
कौतुकाद्वयमायाताः सुप्तश्चैष मदाकुलः ॥ १४९ ॥
आभाष्य कथयामीति मूर्खो यो याति मूकताम् ।
कौतुकाच्छ्रोतु[3]मायातास्तं शपन्त्यनु देवताः ॥ १५० ॥
हारं वर्त्मनि संप्राप्य यदा कण्ठे करिष्यति ।
तदा तेनैव पाशेन कृतान्तमयमेष्यति ॥ १५१ ॥
भक्षयित्वाम्रवृक्षस्य फलान्येष विनङ्क्ष्यति ।
अथ वासोपरिगृहं क्षिप्रमेव पतिष्यति ॥ १५२ ॥
क्षुतशब्दशते नास्य जीवशब्दशतं न चेत् ।
कश्चिद्दास्यति तेनैव प्रयास्यत्येष पञ्चताम् ॥ १५३ ॥
अस्य शापप्रतीकारं यः कुर्यात्पशुचेतसः ।
सोऽपि व्यसनमासाद्य संशये निपतिष्यति ॥ १५४ ॥
श्रुत्वेति शापान्देवीभिर्वितीर्णान्सुहृदो मिथः ।
वज्रपातसंनद्धः स बभूव वणिक्सुतः ॥ १५५ ॥
प्रभाते कृतयात्रोऽथ राजपुत्रः सहानुगः ।

१. 'धनतं तन्निध' ख. २. 'भाषि' ख. ३. 'त्वच्छ' ख. ४. 'पापेन' ख. 'वा' ख. ६. 'दस्य' ख. ७. पातं ख.

यथोक्तमेव देवीमिहारं प्राप्य फलानि च ॥ १५६ ॥
वणिक्पुत्रेण सहसा निषिद्धो नाग्रहीत्स तम् ।
महागृहनिपाताच्च तेनैवाभ्येत्य रक्षितः ॥ १५७ ॥
ततः स विहितोद्वाहो नवकान्तासमागमः ।
उवास राजतनयः श्वशुरावसथे सुखम् ॥ १५८ ॥
वणिक्पुत्रोऽपि रक्षायां तस्यासीच्छन्नविग्रहः ।
क्षुतो(सुप्तो) विनिद्रः शुश्राव क्षुतशब्दशतं निशि ॥ १५९ ॥
जीव जीवेति शब्दानां स स्वैरं शतमभ्ययात् ।
इत्यस्य शापनिर्वाणं विदधे स सुहृद्वरः ॥ १६० ॥
ततः प्रभाते वि(प्र)च्छन्नो निर्गतोऽन्तःपुराद्वणिक् ।
दृष्टो राजसुतेनाशु क्रोधव्याकुलचेतसा ॥ १६१ ॥
अयमन्तःपुरे पापश्छन्नो निशि करोति किम् ।
इत्युक्त्वा भ्रुकुटीभ्रान्त्या दिदेशास्य वधं क्रुधा ॥ १६२ ॥
स राजपुत्रवचसा गाढबद्धः पुरःसरैः ।
अचिन्तयदहो कष्टा नृणां राजकुले स्थितिः ॥ १६३ ॥
व्यालाः सुखेन सेव्यन्ते वातोद्धूताश्च वह्नयः ।
न तु नित्यमदाघ्माता राजानः कुटिलाशयाः ॥ १६४ ॥
ध्यात्वेति दुःखसंतप्तो राजपुत्रमुपेत्य सः ।
हितं यथा कृतं सर्वं तत्त्वनस्मै न्यवेदयत् ॥ १६५ ॥
ततस्तत्त्वविचारेण राजपुत्रो वणिक्सुतम् ।
हितैषिणं प्रियं मित्रं प्रसाद्य मुदितोऽभवत् ॥ १६६ ॥
इत्येवं राजभिः सख्यं सखि दुःखेन रक्ष्यते ।
को हि सुखेन सिंहेन कृतकण्ठग्रहः स्वपेत् ॥ १६७ ॥

इति राजपुत्राख्यायिका ॥ ८ ॥

कलिङ्गदत्ततनया निशम्येति सखीवचः ।
उवाच सत्यमेवैते कृतघ्नाः सखि भूमिपाः ॥ १६८ ॥

---

१. 'सैव' ख. २. 'अन्त पुरे स' ख.

शून्याशयाः प्रिया घोरा दुःखसाध्या विकारिणः ।
मित्रविद्वेषिणो ज्ञेया पिशाचा इव भीषणाः ॥ १६९ ॥
कथां शृणु पिशाचानां राजपुत्रानुकारिणाम् ।
पुरा यज्ञस्थलग्रामे ब्राह्मणोऽल्पधनोऽभवत् ॥ १७० ॥
कदाचित्स कुठारेण भिन्दन्काष्ठाग्रमक्षमः ।
अपाटयन्निजां जङ्घां तेनाभूत्परमातुरः ॥ १७१ ॥
सर्वोपायपरिक्षीणैः सँ(त)तस्त्यक्तश्चिकित्सकैः ।
नाडीव्रणार्तो मित्रस्य स वाक्याद्युक्तिमाप्तवान् ॥ १७२ ॥
पिशाचं साधयेत्येवं मित्रवाक्यार्थतत्परः ।
अतोषयन्निशि महापिशाचं बलिपुष्पदः ॥ १७३ ॥
ततो वरात्पिशाचस्य तद्दत्तैरौषधिव्रजैः ।
स्वस्थः स्वच्छन्दसंचारो विजहार सुखं द्विजः ॥ १७४ ॥
रूढनाडीव्रणं काले तमुवाच पिशाचकः ।
रोहत्येवं मया दृष्टं द्वितीयं दर्शय व्रणम् ॥ १७५ ॥
अपरं चेद्व्रणं विप्र न मे दर्शयसि स्फुटम् ।
मया क्रोधानलज्वालैस्त्वं नीतो नैव भविष्यसि ॥ १७६ ॥
पिशाचवाचं श्रुत्वेति पुनश्चिन्ताभितापितः ।
प्रदध्यौ स्वगृहं गत्वा निश्वासग्लपिताधरः ॥ १७७ ॥
ग्रस्त एवास्मि पापेन कुतो नाडीव्रणी जनः ।
इति ध्यायन्स सुतया दृष्टो नष्टधृतिस्मृतिः ॥ १७८ ॥
दृष्ट्वा विज्ञाय वृत्तान्तं सा चण्डी निखिलं पितुः ।
नाडीव्रणं पिशाचाय दर्शयामीत्यभाषत ॥ १७९ ॥
स पिशाचः समाहूतो हृष्टेनाथ द्विजन्मना ।
विदग्धां विजने प्राप तत्सुतां दुर्मदाकुलः ॥ १८० ॥
वराङ्गं विवृतं कृत्वा सा पिशाचमभाषत ।

. 'भ्रग.' ख. २. 'चिर' ख. ३. 'इत' ख. ४. 'द' ख. ५. 'रुद्ध' ख.

सखे नाडीनगम्यास सनद्धो मन रोहणे ॥ १८१ ॥
इति श्रुत्वा पिशाचोऽस्मा मुग्मस्तद्वचन मृदु ।
यन्नाह्नापमत्रातिस्तलर क्षशता ययौ ॥ १८२ ॥
प्रभवन्ति यतो लोका प्रलय यान्ति येन च ।
समारचेत्र विश्रान्त क पिधातु तदीश्वर ॥ १८३ ॥
तत पिशाच सनिश्चिश्चिरालुण्ठक्रियात्म ।
भयात्सन्त्याज्य प्रययौ गर्हयनिजदुर्ग्रहम् ॥ १८४ ॥
इत्येव दुर्ग्रहालीन पिशाचा राजयोनय ।
सदा कलुषचिताश्च राजपुत्रास्ततोऽधिका ॥ १८५ ॥
मुहूर्तनद्धसौहार्दा विलज्जा वहु सेविता ।
लुन्या नृपाश्च वेश्याश्च दूरस्था एव शोभना ॥ १८६ ॥

इति पिशाचाख्यायिका ॥ ९ ॥

वच कलिङ्गसेनाया श्रुत्वेत्यसुरकन्यका ।
उवाच चन्द्रवदना वीक्ष्य सत्वरगा नम ॥ १८७ ॥
अय कमलिनीकान्त प्राप्तोऽस्ताचलमौलिताम् ।
गच्छामि पुनरेष्यामि पन्था मे षष्टियोजन ॥ १८८ ॥
इत्युक्त्वाक्राशमानिश्य तूर्णं सोमप्रभा ययौ ।
विधाय वदनोद्योतैर्नहु सोमप्रभ नभ ॥ १८९ ॥
तत तस्या प्रयाताया राजपुत्री व्यचिन्तयत् ।
केय विद्याधरी देवी मुनङ्गी वा सखी मम ॥ १९० ॥
श्रूयते मानुषै सख्य भजन्ति किल देवता ।
पृथ्वीपते पृथो पूर्वं पुत्र्या सख्यमरुन्धती ॥ १९१ ॥
मेने नयनमार्गेण प्रीतिर्हि विशति स्वयम् ।
वांसिष्ठनेनु तद्वाक्यादानिनाय च भूतलम् ॥ १९२ ॥

१ 'प ख २ 'वम ननन ख ३ 'ध्माता' ख. ४ 'जद्वुद्दय' ख.
५. 'यत्र' ख. ६ 'कन्या' ख ७ जन' ख. ८ 'नामिव' ख ९ न्व' ख.
१० 'स्पृशुरानाय भू' ख.

अमृतं तत्पयो दिव्यं ददौ तस्यै सुदुर्लभम् ।
गावोऽवतीर्णा लोकेऽस्मिंस्तत्प्रभृत्येव पावनाः ॥ १९३ ॥
तदेषा कापि मे देवी सखी पुण्यैः समागता ।
कलिङ्गसेना ध्यात्वेति निनाय रजनीं शनैः ॥ १९४ ॥
अथापरेद्युरादाय विचित्रा यन्त्रपुत्रिकाः ।
सखीं समभ्ययाचूर्णं सोत्कण्ठा मयपुत्रिका ॥ १९५ ॥
सा बभाषे तया पृष्टा सुताहमसुरप्रभोः ।
मयस्य मायावैचित्र्यधाम्नः सोमप्रभाभिधा ॥ १९६ ॥
स्वयंप्रभा मे भगिनी सौख्ये पातालमन्दिरे ।
हनूमत्प्रमुखैर्दृष्टा सीतान्वेषगतैः पुरा ॥ १९७ ॥
कुबेरतनयः श्रीमान्भर्ता मे नलकूबरः ।
यच्छापात्स दशास्योऽपि नाभूत्परवधूविभुः ॥ १९८ ॥
इत्युक्त्वा यन्त्रवैचित्र्यात्सजीवा यन्त्रपुत्रिका ।
करण्डिकां समुद्धाट्य ददौ सख्यै प्रिया यतः ॥ १९९ ॥
ततो गूढसखीसक्तां त्यक्ताहारां सुतां नृपः ।
अस्वस्थां मन्यमानस्तां वैद्यं पप्रच्छ दुःखितः ॥ २०० ॥
वैद्योऽवदद्राजपुत्र्या राजन्व्याधिर्न लक्ष्यते ।
प्रेमातिहर्षसंपूर्णा नाभिनन्दति भोजनम् ॥ २०१ ॥
ततो विज्ञाय वृत्तान्तं दुहितुस्तां च तत्सखीम् ।
कलिङ्गदत्तो देवी च परां मुदमवापतुः ॥ २०२ ॥
पित्रा विदितवृत्तेन दत्तानुज्ञा च सा तदा ।
सोमप्रभां सविश्रम्भमियेष प्रकटां सखीम् ॥ २०३ ॥

---

१. 'मतः प्रगति' ख. २. 'सजीवा' ख. ३. 'यासौ' ख. ४. 'जानकीमार्गणैः' ख. ५. 'इव' ख. ६. 'ता' ख. ७. 'मुग्धां त्यक्तभोज्यां मोहितां वीक्ष्य भूपतिः' ख. 'राज्ञा' ख.

सा तत्र राजभवने पूजिता तेन भूभुजा ।
विजहार समं सख्या विहारे तीरहारिणी ॥ २०४ ॥
सा यन्त्रपुत्रिकानीतदिव्यकाञ्चनपङ्कजैः ।
विहारपूजनं चक्रे ततोऽभूद्विस्मितो नृपः ॥ २०५ ॥
अनुज्ञाता ततः पित्रा सहान्तःपुररक्षिभिः ।
मायायन्त्रविमानेन तां निनाय मयात्मजा ॥ २०६ ॥
नीता स्वयंप्रभां द्रष्टुं ज्येष्ठां स्वभगिनीं तया ।
पुरं ददर्श वैचित्र्यचित्रकर्मेव वेधसः ॥ २०७ ॥
तत्रापश्यज्जटापुञ्जविराजिवदनां वधूम् ।
नलिनीमिव शैवालजटालोत्फुल्लपङ्कजाम् ॥ २०८ ॥
स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण विराजितकराम्बुजाम् ।
करप्रसुतलावण्यबिन्दुमालाङ्कितामिव ॥ २०९ ॥
उच्छूनकुचपर्यङ्क(न्त)पर्यस्तधवलांशुकाम् ।
चक्रवाकयुगन्यस्तफेनवेगामिवापगाम् ॥ २१० ॥
विलोक्य तां राजपुत्रीं प्रणनाम नतानननाम् ।
अस्र(श्य)त्कर्णोत्पलरजोरेखासंवलितस्तनीम् ॥ २११ ॥
स्वयंप्रभा राजपुत्रीं तां विलोक्य सुलोचनाम् ।
नामाभिजनमाकर्ण्य फलान्यस्यै स्वयं ददौ ॥ २१२ ॥
जरानिवारणान्याशु भुक्त्वा तानि फलानि सा ।
बभूव बाला पीयूषक्षालितेवाधिकद्युतिः ॥ २१३ ॥
ततो विचित्रमुद्यानं दिव्याभिप्रायनिर्मितम् ।
वापीं च काञ्चनाम्भोजां दृष्ट्वा प्रीतिमवाप सा ॥ २१४ ॥
स्वयंप्रभामथामन्त्र्य सा सोमप्रभया सह ।
ययौ यन्त्रविमानेन पितुस्तक्षशिलां पुरीम् ॥ २१५ ॥

---

१. 'तत्र' ख. २. 'भ्रा' ख. ३. 'तनुप्रसूतं' ख. ४. 'उद्वृत्त' ख. ५. 'त्री' ख. ६. 'ना' ख. ७. 'रां' ख. ८. 'संभ्रान्तां' ख. ९. 'ततो' ख.

अन्तःपुरगता तत्र कदाचिदशृणोद्वचः ।
सोमप्रभाया विश्रम्भकथासु मृगलोचना ॥ २१६ ॥
सखि मन्ये यदा कश्चिद्वरस्त्वां परिणेष्यति ।
तदा नौ सहवासोऽयं ध्रुवं दूरीभविष्यति ॥ २१७ ॥
प्रवेक्ष्यामि कथं स्वैरं सखि भर्तृगृहं तव ।
जामिश्वश्रूजनायत्तं विषमं भर्तृमन्दिरम् ॥ २१८ ॥

इति स्वयंप्रभासमागमः ॥ १० ॥

शृणु श्वश्रूकृतैर्दुःखैर्यथाप्ता कीर्तिसेनया ।
विपत्स्वबुद्ध्या च यथा निस्तीर्णा व्यसनोदधिम् ॥ २१९ ॥
वनपालित इत्यासीद्वणिक्पाटलिपुत्रके ।
कीर्तिसेनाभवत्तस्य कन्या लावण्यवाहिनी ॥ २२० ॥
तां यौवनवतीं काले स सारङ्गविलोचनाम् ।
देवसेनाय वणिजे मगधावासिने ददौ ॥ २२१ ॥
सा भर्त्रा लालिता स्वैरं श्वश्र्वा कलहपीडिता ।
उवास गेहे श्रीखण्डवने सर्पाकुले यथा ॥ २२२ ॥
ततः कदाचिद्वलभीं प्रस्थितो द्रविणार्जने ।
देवसेनः प्रियावेश्म विवेशामन्त्रणोद्यतः ॥ २२३ ॥
तमब्रवीत्कीर्तिसेना त्वयि याते ध्रुवं विभो ।
भर्त्सयिष्यति मां श्वश्रूः कलहेन निरन्तरम् ॥२२४ ॥
इति प्रियावचः श्रुत्वा संस्तभ्य विरहव्यथाम् ।
ययौ मातरमामन्त्र्य वर्तयेथाः स्नुषामिति ॥ २२५ ॥
तस्मिन्गते तज्जननी सततं क्रोधमूर्छिता ।
वियोगदुःखितां प्राह कीर्तिसेनां नताननाम् ॥ २२६ ॥
शुक्ले नित्यरुदिते दुर्भगे मङ्गलोज्झिते ।
यान्तं ते पितुरेवास्तु पुत्रो जीवतु मे चिरम् ॥ २२७ ॥

---

१. 'मा' ख. २. 'वणिग्घोनाख्या' ख. ३. 'वेगेनेष्यती' ख. ४. 'पा' ख. ५. 'संरुधि' ख. ६. 'नदन' ख. ७. 'स्नाह' ख.

उक्त्वेति तत्परिजनं निरस्य सहसा गृहम् ।
भयात्प्रसन्नवदनां पुनराह परेऽहनि ॥ २२८ ॥
हासशीले तव पतिर्भयाद्देशान्तरं गतः ।
त्वं नु वेश्येव निःस्नेहा विलासेनेक्षसे जनम् ॥ २२९ ॥
इति नानाविधोद्वेगैः सावेगक्रोधदुःसहैः ।
वाक्सायकैस्तामसकृज्जघान विरहेऽपि सा ॥ २३० ॥
संमन्त्र्य तद्वधोपायं तामथान्धगृहोदरे ।
रक्षेऽहं भर्तृद्रविणं समित्युक्त्वा न्यवेशयत् ॥ २३१ ॥
श्वश्र्वा च पिहिते तत्र न्यस्ता सा निविडार्गले ।
सदाशनचतुर्भागं लेभे भग्नशरावके ॥ २३२ ॥
शरावकर्परेणाथ सा चखान गृहं शनैः ।
दैवात्प्राप्तेन च पुनः खनित्रेण महाबिलम् ॥ २३३ ॥
तेनैव निशि निर्गम्य गृहीतकनकाम्बरा ।
विधाय पौरुषं वेषं वलभीप्रमुखं ययौ ॥ २३४ ॥
पथि सार्थपतिं प्राप्य कृतराजसुताकृतिः ।
प्रययौ पुरुषस्पर्शपरिहारपरैव सा ॥ २३५ ॥
ततस्तस्मिन्महासार्थे पपाताशनिवन्निशि ।
चौरसेना विधौ वामे लुब्धन्त्यालम्बनान्यपि ॥ २३६ ॥
सा चौरभयवित्रस्ता सार्थे निःशेषतां गते ।
उवास गूढां रजनीं तृणे भूकुहरान्तरे ॥ २३७ ॥
प्रातस्ततो विनिर्गत्य प्रविष्टा विकटाटवीम् ।
सिंहव्यालैर्न निहता सतीतेजोऽतिदुःसहम् ॥ २३८ ॥
राजपुत्राकृतिं दृष्ट्वा तामथ श्रमतापिताम् ।
कारुण्यात्सलिलैः शीतैर्वितृष्णामकरोन्मुनिः ॥ २३९ ॥
तिरोहिते मुनिसुते निशीथे प्रत्युपस्थिते ।
सा तस्थौ दस्युचकिता सुपिरद्रुमकोटरे ॥ २४० ॥

---

१. 'रेशा' ख. २. 'साह' ख. ३. 'त्वां निवेश्यति' ख. ४. 'णोऽपि' ख.

ततोऽर्धरात्रे संप्राप्ते राक्षसीं सह पुत्रकै ।
छायामिव कृतान्तस्य ददर्शालिखि(लक्षि)ता पुर ॥ २४१ ॥
भोजन याच्यमानासौ तनयास्तानभाषत ।
महाकालेन निर्दिष्ट भोजन नो भविष्यति ॥ २४२ ॥
वसुदत्ताभिधो राजा वसुदत्तपुराधिप ।
शतपद्या समाक्रान्त कर्णरन्ध्रप्रविष्टया ॥ २४३ ॥
तत्प्रसूतै शतपदीशतैर्व्याप्तशिरोन्तर ।
अविज्ञातामयो वैद्यैर्भविता पूर्णभोजनम् ॥ २४४ ॥
श्रुत्वेति कौतुकाविष्टै सा पृष्टा राक्षसै सुतै ।
नृपस्य जीवितोपाय वीतशङ्कमभाषत ॥ २४५ ॥
घृताभ्यक्त स मध्याह्नतापे सततपायसे ।
उपलिप्त शिर कृत्वा श्रवणे वेणुनालिकाम् ॥ २४६ ॥
स्थापयेन्नालिकाप्रान्ते कुम्भ यदि सुशीतलम् ।
ततोऽस्मिन्नि सरन्त्येव शतपद्यो न सशय ॥ २४७ ॥
निर्गमेनाथवासाक यातु राजा स पञ्चताम् ।
असत्सत्तृप्तये तूर्णमित्युक्त्वा राक्षसी ययौ ॥ २४८ ॥
कीर्तिसेना निशम्यैव प्रातर्न्न प्रययौ नृपम् ।
अदूरवासिन क्षिप्र वैद्यवेषोपलक्षिता ॥ २४९ ॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुख श्रीमानेक इवाश्विनो ।
सुकुमारारविन्दाक्षो वैद्यो देशान्तरागत ॥ २५० ॥
नृप स्वस्थ विधास्यामि द्वारप प्रति दर्शयन् ।
प्रविष्ट इति राजान प्रतीहारो व्यजिज्ञपत् ॥ २५१ ॥
तत क्षिप्र समाहूय राज्ञा देव्या च पूजिता ।
वैद्यवेषाविशत्क्षिप्र कीर्तिसेना नृपालयम् ॥ २५२ ॥
ददर्श नृपतिं तत्र क्षयक्षीणमियोडुपम् ।
शोषित घूणगंधेन छायाद्रुममिवार्दितम् ॥ २५३ ॥

---

'प्रविष्टमपि' क १ 'दृष्ट्वा' ग १ 'क्षयम्' ख

देवीकरतलन्यस्तकपालो वीक्ष्य तं नृपः ।
निभृतोऽभूच्छुभप्राप्तौ मनः पूर्वं[1] प्रसीदति ॥ २५४ ॥
ततो यथोक्तं राक्षस्या सा विधाय महीपतेः ।
चकर्ष शिरसो व्याधिं येन स्वस्थोऽभवत्क्षणात् ॥ २५५ ॥
व्याधिमुक्तोऽथ नृपतिर्वैद्यवेषामुवाच ताम् ।
राज्यं ममाश्वरत्नाढ्यं गृहाणेति प्रसन्नधीः ॥ २५६ ॥
साब्रवीन्न्यासभूतं मे संप्रति त्वयि तिष्ठतु ।
याचितो दास्यसीत्युक्त्वागूढा तस्थौ तदालये[2] ॥ २५७ ॥
ततः कालेन स वणिग्देवसेनः समाययौ ।
महाभाण्डघनाभोगपूरिताशेषपत्तनः ॥ २५८ ॥
राज्ञा निवारितं गन्तुं[3] शुल्कायत्वमुपेत्य सा ।
चिरसंगमपीयूषप्लाव्यमानाभवन्मुहुः ॥ २५९ ॥
देवसेनः स[4] विज्ञाय कीर्तिसेनां सकौतुकः ।
दृष्ट्वा निशम्य वृत्तान्तं बभूव प्रमदाकुलः ॥ २६० ॥
भूपालोऽपि तदाश्चर्यं विदित्वा निखिलं ततः ।
उवाच धर्मभगिनी ममेयं त्वं स्वसुः पतिः ॥ २६१ ॥
वैद्यवेषं विधायैषा जीवितं[5] विततार मे ।
इत्युक्त्वा वणिजे राजा राज्यार्धं मुदितो ददौ ॥ २६२ ॥
इति श्वश्र्वा सुविपुले पातिता शोकसागरे ।
कीर्तिसेना स्वधैर्येण[6] तारिता प्राप वल्लभम् ॥ २६३ ॥
इति कीर्तिसेनाख्यायिका ॥ ११ ॥
कलिङ्गसेनतनया निशम्येति सखीवचः ।
सतीचरितमाश्चर्यं प्रदध्यौ मनसा सती ॥ २६४ ॥
ततोऽह्नि तनुतां याते वयस्यां गन्तुमुद्यताम् ।
कलिङ्गसेना प्रोवाच सखि दर्शय मे निजम् ॥ २६५ ॥

१. 'विष्टवीं' क. २. 'सुरा' क. ३. '... प्रज्ञाय वं' ख. ४. 'परि' ख.
५. 'संप्राप्ता जीविताय' ख. ६. 'धर्मे' ख.

सुतं धनाधिनाथस्य भर्तारं नलकूबरम्।
इति सोमप्रभा श्रुत्वा राजपुत्रीमभाषत ॥ २६६ ॥
त्वं यौवनवती कान्ता स युवास्ति विशृङ्खलः।
परस्परविरुद्धं हि दर्शनं तव तस्य च ॥ २६७ ॥
ईर्ष्याकोपेन नौ तत्र सौहार्दं नङ्क्ष्यति ध्रुवम्।
नदीकूलद्रुमस्येव स्नेहस्ते नो विपत्तये ॥ २६८ ॥
उक्त्वेति प्रययौ दिक्षु तन्वाना कान्तिकौमुदीम्।
हर्म्ये कलिङ्गसेना च तस्थौ व्योमावलोकिनी ॥ २६९ ॥
ततो यदृच्छयायातो विद्याधरधराधिपः।
युवा मन्दरवेगाख्यस्तां ददर्श नभोगतिः ॥ २७० ॥
तां वीक्ष्य सरसौन्दर्यविभ्रमाणां समागमम्।
अमृताहरणे शौरेः शिष्यां कान्ताकृतामिव ॥ २७१ ॥
सोऽभवन्मन्मथशरासारजर्जरितस्मृतिः।
तया दृष्टिविषेणेव भुजङ्ग्या मुहुरर्दितः ॥ २७२ ॥
स धैर्यं क्षिप्रमास्थाय कथं विद्याधरस्य मे।
मानुषी मोहयेच्चित्तमिति ध्यानपरोऽभवत् ॥ २७३ ॥
ततो विवेद प्रज्ञप्तिविद्यया गुलिकाधरः।
स तामप्सरसः शापादवतीर्णां शतक्रतोः ॥ २७४ ॥
कृत्वेति तद्गतमना कालंजरगिरौ निजाम्।
राजधानीं समभेत्य तस्थौ सुखपराङ्मुखः ॥ २७५ ॥
स हेमकदलीकुञ्जे किंनरीगीतनादिनि।
तां राजतनयां ध्यायन्न लेभे तत्र निर्वृतिम् ॥ २७६ ॥
चिन्तयंस्तन्मुखाम्भोजं भेजे नान्तःपुरे रतिम्।
मन्दारमालामालोक्य मालत्यां को हि सादरः ॥ २७७ ॥

१. 'पतिं' ख. २. 'तनयं' ख. ३. 'मदनवे' ख. ४. 'गत.' ख. ५. 'ताङ्गतिः' ख
६. 'धैं' ख. ७. 'शात्वेति' ख. ८. 'कालकूटगिरौ' ख. ९. 'ते' ख.

रावणस्येव तस्यामूच्छापः स्त्रीहरणे बलात् ।
यन्नितस्तेन सहसा कर्तुं तां नाकरोन्मतिम् ॥ २७८ ॥
सोऽभवद्विरहायासपाण्डुरः खण्डिताशयः ।
पौर्णमासीविरहितः शशीव क्षामविग्रहः ॥ २७९ ॥
किं विद्याधरराज्येन कान्तारसदृशेन मे ।
यत्र नेत्रामृतं कान्ता न सा कण्ठावलम्बिनी ॥ २८० ॥
तपसा वरदं देवमाराध्य गिरिजापतिम् ।
ध्रुवं कान्तामवाप्स्यामि तामायतविलोचनाम् ॥ २८१ ॥
अनुकूलः सुहृद्दानमानिताश्रीः सितं यशः ।
मनोरमा च दयिता नातुष्टे पार्वतीपतौ ॥ २८२ ॥
इति ध्यात्वा हरं देवं त्र्यम्बकं तपसे ययौ ।
संकल्पकल्पविटपी कस्य नाम न शंकरः ॥ २८३ ॥
अथ तस्य गिरेः शृङ्गे तपसा तस्य धूर्जटिः ।
तुष्टः प्रोवाच तं कन्यां तामवाप्स्यसि युक्तितः ॥ २८४ ॥
कलिङ्गसेनतनया वत्सराजं स्वयंवरे ।
यावन्नैति पुरं गत्वा तद्रूपेण स्वमाव्रुहि ॥ २८५ ॥
इत्यवाप्य वरं शंभोर्विद्याधरपतिर्ययौ ।
तत्संगमाशया क्षिप्रं सुधयेव परिप्लुतः ॥ २८६ ॥
अत्रान्तरे नृपतयस्तनयां रूपशालिनीम् ।
कलिङ्गदत्तं नृपतिं दूतैः सर्वे ययाचिरे ॥ २८७ ॥
ततो विचार्य नृपतिः कुलाचारगुणैर्नृपान् ।
अमन्यत वरं योग्यं पुत्र्याः सेनाजितं नृपम् ॥ २८८ ॥
रहः कलिङ्गसेनाथ प्राह सोमप्रभां सखीम् ।
श्येनजिन्नाम भूपालः पितुर्मेऽभिमतो वरः ॥ २८९ ॥

---

१. 'सेवने' ख. २. 'हर्तुं' ग. ३. 'धवम्' ख. ४. मनरशुद्धा' ख. ५. 'रूप-भस्य' ग. ६. 'सुधासारपरि' ख. ७. 'श्येन' ख. ८. 'सेनाजि' क.

मयपुत्री निशम्येति प्राह साश्रुविलोचना ।
अहो नु दग्धविधिना न योग्यः संगमः कृतः ॥ २९० ॥
त्रैलोक्यसुन्दरीः सुभ्रूः प्रवयास्त्वथ पार्थिवः ।
मधुपोऽर्हति न प्रष्टुं बालां कल्पलतामिव ॥ २९१ ॥
वत्सेशोदयनो नाम कौशाम्ब्यामस्ति भूपतिः ।
स ते समुचितः कान्तवरो गौर्या इवेश्वरः ॥ २९२ ॥
तस्य वासवदत्तास्ति दयिता रूपशालिनी ।
सा लेभे तनयं तस्माद्भावि विद्याधरेश्वरम् ॥ २९३ ॥
इत्युक्त्वा वत्सराजस्य [१]वंशवृत्तान्तविक्रमान् ।
निवेद्य निखिलं सख्यै पुनराह नृपात्मजाम् ॥ २९४ ॥
त्वां वीक्ष्य वत्सराजोऽसौ ध्रुवं तां त्यक्ष्यति प्रियाम् ।
कमलाकमलं दृष्ट्वा नान्यदब्जं स्पृशत्यलिः ॥ २९५ ॥
उषाया चित्रलेखासौ बाणपुत्र्या यथा पुरा ।
[२]प्रद्युम्नि संगमं चक्रे करिष्यामि तथाद्य ते ॥ २९६ ॥
इत्याकर्ण्य सखीवाक्यं राजपुत्री जगाद ताम् ।
[३]अन्याभिः सखि भूपालः कान्ताभिः स निषेव्यते ॥ २९७ ॥
महासेनसुतासक्तो दुर्लभो[४]ऽन्यजनस्य [५]तु ।
अकामकामाः कामिन्यः सखि [६]गच्छन्ति हास्यताम् ॥ २९८ ॥
राजपुत्र्या निशम्येति प्राह सोमप्रभा पुनः ।
यत्नमत्र विधास्यामि [७]दैवायत्तास्तु सिद्धयः ॥ २९९ ॥
स्वयं श्येनजितं पूर्वं वीक्ष्य गौडमहीपतिम् ।
[८]संभ्रमावोदितारातिः प्रेक्षस्वोदयनं [९]पुनः ॥ ३०० ॥
लावण्यस्यास्य ते सुभ्रु सौभाग्यस्य कुलस्य च ।
ध्रुवं समुचितं सर्वं चन्द्रचूडः करिष्यति ॥ ३०१ ॥

१. 'एवं म गा' ख. २. 'वसु' ख. ३. 'श्रा' ग. ४. 'प' ख. ५. 'स्य जन' ग. ६. 'ग.' ख. ७. 'वत्सेश' ख. ८. 'मदनाग्नौरिरागतिः' ख. ९. 'नं ततः' ग.

राज्ञो विक्रमसेनस्य सुता तेजोवती पुरा ।
कंचिद्युवानमालोक्य बभूव स्मरतापिता ॥ ३०२ ॥
सख्या देवगृहे तेन कृत्वा संगमसंविदम् ।
निर्ययौ राजपुत्री सा स्तोकमूकविभूषणा ॥ ३०३ ॥
अत्रान्तरे राजपुत्रः स गोत्रवल्मीं पुनः ।
राजसंश्रयकामस्तद्देवायतनमभ्यगात् ॥ ३०४ ॥
अवाप तत्र तां दैवात्स राजतनयां युवा ।
अधन्यैराहृतं नाम कल्याणीमिरवाप्यते ॥ ३०५ ॥
सा तमासाद्य दयितं तोषमभ्यधिकं ययौ ।
भृङ्गी चम्पककामेव पारिजातसमागता ॥ ३०६ ॥
तत्संभोगसुधासिक्तः स राजानमवाप्य तम् ।
प्रातः समुचितां पूजां प्रपेदे गूढकामुकः ॥ ३०७ ॥
सुतां समुचितां दातुं तस्मै रतिरभूद्दृढा ।
कन्यावृत्तं च तत्सर्वं विवेद नृपतिः शनैः ॥ ३०८ ॥
तद्विज्ञाय क्षितिपतिर्निजामात्यानभाषत ।
सोमदत्ताय कन्येयं मनसा कल्पिता मया ॥ ३०९ ॥
स्वयं गान्धर्वविधिना पूर्वमेव वृतोऽनया ।
विधिरेव समाधानं यातं सदृशसिद्धये ॥ ३१० ॥
राज्ञः श्रुत्वेति वचनं प्रत्यभाषन्त मन्त्रिणः ।
दिष्ट्या सदृशयोगेन शोच्येयं न तवात्मजा ॥ ३११ ॥
स्वयं वृतोऽनया श्रीमान्राजपुत्रः कुलोचितः ।
देव दैवेन लिखितं प्रमार्ष्टुं कस्य कः क्षमः ॥ ३१२ ॥
हरिशर्मा पुरा विप्रो दारिद्र्याद्दासतां गतः ।
कुटुम्बिनो धनवतः सभार्यः सहपुत्रकः ॥ ३१३ ॥

१. 'विदतः' ख. २. 'यान्' ख. ३. 'द' ख. ४. 'राज्ञोऽपि स्वसुता दातुं तस्मै मतिरभू' ख. ५. 'जातं' ख. ६. 'द्वसतिं' ख.

गृहे कुटुम्बिनस्तस्य वैवाहिकमहोत्सवे ।
भक्ष्ये भोज्ये प्रवि[1]स्तीर्णे स ननन्द स्पृहाकुलः ॥ ३१४ ॥
दिनान्ते भोजनव्यग्रे [2]सर्वस्मिञ्जनमण्डले ।
विस्मृतः क्षुत्परिक्षामः प्रदध्यौ दुःखितः क्षणम् ॥ ३१५ ॥
अवमानावधूतस्य दारिद्र्योप[3]रतत्विषः ।
कथमादरमाधत्ते प्रसिद्धशरणो जनः ॥ ३१६ ॥
अहो विद्याविहीनोऽ[4]यं निर्धनः शोच्यतां गतः ।
[5]दीपपात्रमिवादीपालोकं दग्धदशाश्रयात् ॥ ३१७ ॥
क्षणं स चिन्तयित्वेति निजजायामभाषत ।
विस्मृतं पश्य मां दीनमस्मिन्नुत्सवभोजने ॥ ३१८ ॥
[6]इति दूरतरं नीत्वा जनस्थै[7]वास्य घोटकम् ।
छन्नं स्थापय विज्ञानी भविष्यामि [8]तम्मंत्रयन् ॥ ३१९ ॥
कूटज्ञानी हयप्राप्त्या प्रसिद्धिं परमां गतः ।
मावमानमवाप्स्यामि कल्पवल्ली हि धूर्तता ॥ ३२० ॥
इति भर्तृवचः श्रुत्वा नीत्वा सा तुरगं निशि ।
बबन्ध विजने धीरा जने मधुविमोहिते ॥ ३२१ ॥
[9]हारितोऽश्व इति प्रातर्जने कोलाहलाकुले ।
ब्राह्मणी प्राह भर्ता मे हरिशर्मा प्रणष्टवित् ॥ ३२२ ॥
ततः कुटुम्बिनाभ्येत्य प्रार्थितः प्राह स द्विजः ।
कृतकग्रहविज्ञानात्साङ्गुलीगणनापरः ॥ ३२३ ॥
नातिदूरे स्थितः सोऽश्वश्चौरैर्विरहितो वने ।
इति तद्वचसा लब्धे हये ख्यातो बभूव सः ॥ ३२४ ॥
ततः कदाचिद्द्रविणे हरिते राजवेश्मनि ।
प्रसिद्धः स समाहूतो मूर्खोऽसीति भयाकुलः ॥ ३२५ ॥

---

१. 'तने' ख. २. 'पंचन्धिज' ख. ३. 'द' ख. ४. 'दं' ख. ५. 'दीपमात्रमिवादीपं लोके दग्धदशाश्रयात्' ख. ६. 'इतो' ख. ७. 'सैकस्य' ख. ८. 'तदात्मं' ग. ९. 'हापितो' ख.

प्रातर्वक्तास्मि संचिन्त्य समामाप्येति भूपतिम् ।
निर्जने मन्दिरं तस्थौ स विप्रो ध्याननिश्चलः ॥ ३२६ ॥
अत्रान्तरे नरपतेर्जिह्वाख्या गर्भवाटिकाम् ।
तच्चौरी शङ्किता गत्वा तमपश्यदलक्षिता ॥ ३२७ ॥
सोऽपि दुःखाकुलः प्राह राजभीत्या वृथा मतिः ।
धिग्जिह्वे त्वां यया प्राणसंशयः स्वयमाहृतः ॥ ३२८ ॥
निजजिह्वामिति मुहुस्तस्य भर्त्सयतो वचः ।
श्रुत्वा सा चेटिका तूर्णं पादयोरपतद्भयात् ॥ ३२९ ॥
विज्ञाता भवता पापा साहं जिह्वेव तस्करी ।
इत्युक्तवार्चयतो ज्ञात्वा स दम्भमधिकं व्यधात् ॥ ३३० ॥
ततो राजानमभ्येत्य कृतकज्ञानगर्वितः ।
मुहुरावलितैकभ्रूर्दष्टाङ्गुलितलो मुहुः ।
चकार प्रकटं सर्वं धनं राज्ञाथ पूजितः ॥ ३३१ ॥
ख्यातिपूजासमुत्सृद्धे तस्मिन्नभ्येत्य मन्त्रिणः ।
धूर्तोऽयं चौरसंकेती मूर्ख इत्यूचिरे नृपम् ॥ ३३२ ॥
राजाथ तत्परीक्षायै मण्डूकं पिहिते घटे ।
निधायास्मिन्किमस्तीति प्राह तं मन्त्रिसंसदि ३३३ ॥
पुनः स दुःखितश्चिन्ताध्याननिश्चललोचनः ।
हा मण्डूक हतोऽसीति जगादोच्चैर्भयाहतः ॥ ३३४ ॥
मण्डूकेत्यभिधा तस्य बाल्ये मात्रा कृताभवत् ।
ज्ञातं ज्ञातमिति प्राहुर्जनास्तं विस्मयाकुलः ॥ ३३५ ॥
ततो नरपतिस्तस्मै यथेष्टं विभवं ददौ ।
इत्येवं दैवविहितं स्वयं भवति सिद्धये ॥ ३३६ ॥
इति हरिशर्माख्यायिका ॥ १२ ॥

---

१. 'गृहचेटिकाम्' ख. २. 'निजां जिह्वा' ख. ३. 'वयां तां ख. ४. 'स्खलितैः' ख. ५. 'स्तिमितलो' ख.

श्रुत्वेति मन्त्रिणां वाक्यं राजा तेजोवतीं ददौ ।
राजपुत्राय गान्धर्वविधिना पूर्वसंगताम् ॥ ३३७ ॥
इत्येवं किल सौभाग्यरूपाचारकुलोचितम् ।
तेजोवती पतिं प्राप त्वमप्येवमवाप्स्यसि ॥ ३३८ ॥
इति तेजोवत्याख्यायिका ॥ १३ ॥

अथार्चयित्वा श्रीकण्ठं विधिना पार्वतीपतिम् ।
नभसा जग्मतुः सख्यौ ते विमानेन भास्वता ॥ ३३९ ॥
वृद्धवर्षधरोपेता राजपुत्री मनोजवम् ।
यन्त्रचक्रविमानं तद्भेजे दोलाविलासवत् ॥३४० ॥
नृपं श्येनजितं द्रष्टुं वत्सराजं च सुन्दरी ।
प्रस्थिता गमनं चक्रे राजपुत्री सुधामयम् ॥ ३४१ ॥
श्रावन्तीं नगरीं प्राप्य विमानादधिरुह्य सा ।
सख्या श्येनजितं दूराद्दर्शितं नाभ्यमन्यत ॥ ३४२ ॥
श्रीमानपि स राजेन्द्रस्तस्या नाभिमतोऽभवत् ।
पद्माकर इवोत्फुल्लसरत्पूर्णशशित्विषः ॥ ३४३ ॥
अलक्षिता तमालोक्य प्राह सोमप्रभां ततः ।
सखि वत्सेश्वरं द्रष्टुं त्वरते मम मानसम् ॥ ३४४ ॥
इत्युक्त्वा यन्त्ररचितं विमानमधिरुह्य सा ।
क्षणादवाप कौशाम्बीं विलाससदनं श्रियः ॥ ३४५ ॥
अवतीर्य वरोद्याने तत्र सख्या सहोचिते ।
तस्थावलिकुलालोललताजालतिरोहिता ॥ ३४६ ॥
अत्रान्तरे नवोद्याने विलासरसतत्परः ।
वत्सेश्वरः समभ्यायाचं देशमतुलद्युतिम् ॥ ३४७ ॥
तमालुलोके सानन्दं कम्पमानघनस्तनी ।
कलिङ्गसेना स्वेदाम्बुक्षाल्यमानविशेषका ॥ ३४८ ॥

---

१. 'णो' ख. २. 'गुणो' ख. ३. 'श्रावस्तीं' ख. ४. 'द' ख. ५. 'विहार' ख.

स तत्र मानसोल्लासपूर्णचन्द्रोदयो नृप ।
चकारोत्कलिकालोलमहार्णवकेलिडम्बरम् ॥ ३४९ ॥
सहसा तद्दर्शनानिर्बभूव लिखितेव सा ।
पुरश्चन्द्रमालोक्य कमलेव नवोदिता ॥ ३५० ॥
गम्भीरधीरलक्ष्मि तं विलोक्य स्पर्शे ना ।
धृतमन्त्रोचिताकार हर्षैरादिव स्मरम् ॥ ३५१ ॥
सोत्कम्पा तन्वीं दृष्ट्वा नरेन्द्रगजगामिनाम् ।
उवाच सखि तिष्ठेह पुनर्मत्सङ्गमावधिम् ॥ ३५२ ॥
त्वद्ध्यानानिद चक्षुर्नेष्टमाश्वसनीव मे ।
प्रियैव तन्नामाख्यान कर्तव्या नाधृतिस्त्वया ॥ ३५३ ॥
यौगन्धरायणगिरं विनायाति नरेश्वर ।
स तथानुगतो नित्यमभीष्टेऽतिप्रवर्तते ॥ ३५४ ॥
तदायत्तत्वाद्विलम्बानि तत्र वत्सेश सङ्गतिम् ।
गच्छामि त्वद्विनाभावा विलम्बस्वेह सुन्दरि ॥ ३५५ ॥
इत्युक्त्वा दैत्यतनया प्रययौ व्योमगामिनी ।
तस्यां कलिङ्गनाथाय कन्याराजाभिलाषिणि ॥ ३५६ ॥
भ्राम्यन्ती मन्मथाक्रान्ता तत्र कञ्चुकिनं निजम् ।
प्राहिणोद्वत्सराजाय दूतं सा वाञ्छितागमे ॥ ३५७ ॥
राजन्विराजमानं त्वां वरयत्री महीपतिम् ।
सुता कलिङ्गदत्तस्य प्राहैषीत् स नृपतिम् ॥ ३५८ ॥
श्रुत्वा विद्युल्लावण्यां स्वयमायातां नृपात्मजाम् ।
हर्षादमन्यतात्मानं धन्योऽस्मीति नरेश्वर ॥ ३५९ ॥
ततो रहः समाहूय हृष्टो यौगन्धरायणम् ।
राजेन्द्रचन्द्रः प्रोवाच विदितवृत्तान्तविस्तरम् ॥ ३६० ॥
राजन् कलिङ्गदत्तस्य तनया रूपविश्रुता ।
वरयित्री त्वया प्राप्ता मानय मदनावनि ॥ ३६१ ॥

---

१. 'व्योदैवत्वनेष्यति' ख  २. 'मम्' ख  ३. 'ध' ख. ४ 'ति' ख.

विधीयतां समारम्भस्तद्विवाहमहोत्सवे।
तूर्णं दुर्लभलाभेषु बहुविघ्ना हि सिद्धयः॥ ३६२॥
श्रुत्वेति भूपतिवचः प्रदध्यौ मन्त्रिकुञ्जरः।
अमेयपङ्केऽस्मिन्व्यसने भूपतिर्मा पतत्विति॥ ३६३॥
को ह्यसामान्यसौन्दर्यलावण्यतरलभ्रुवाम्।
मुच्यते वशमासाद्य स्वभावरसिको जनः॥ ३६४॥
अमात्यश्चिन्तयित्वेति नीतिज्ञो गणकैर्व्यधात्।
विवाहलग्नव्याजेन कालहारं महीपतेः॥ ३६५॥
नृपोऽथ रत्नरुचिरं वरोद्यानमुदारधीः।
ददौ कलिङ्गसेनायै गृहं परिणयोत्सुकः॥ ३६६॥
यौगंधरायणोऽप्यस्य सार्धं वासवदत्तया।
पद्मावत्या च संमन्त्र्य कालहारमचिन्तयत्॥ ३६७॥
सोऽब्रवीद्देवि संस्तम्भ्य कोपमीर्ष्यासमुत्थितम्।
कुर्वाथां भूपतिपुरः कृतकः स्वस्थमानसम्॥ ३६८॥
नवोद्वाहे नरपतेर्वर्तते भृशमादरम्।
स धर्तुं प्रातिकूल्येन शक्यः केनानिलोपमः॥ ३६९॥
जडा विपर्ययायैव विषमेषु तरङ्गिताः।
संनद्धा विनिवर्तन्ते नदीवेगा इवेश्वराः॥ ३७०॥
आनुकूल्येन युक्त्यैव सेविता यान्ति मार्दवम्।
वेगोत्सृष्टा हि शाम्यन्ति ज्वराकाला इवेश्वराः॥ ३७१॥
कालहारेण नहुषो वञ्चितः प्रार्थनापरः।
शच्या चारित्ररक्षायै शक्रे विमोचिते पुरा॥ ३७२॥
इति संविदमाधाय मन्त्री वासवदत्तया।
मित्रं सस्मार कार्यार्थे यौगेशं ब्रह्मराक्षसम्॥ ३७३॥
तं ध्यातमात्रमायातं गूढं ज्ञातुं न्यवेशयत्।
गूढं कलिङ्गसेनाया मन्दिरे युक्तिकोविदः॥ ३७४॥

---

१. 'उद्भव.' ग. २. 'असमविलासतरलभ्रुवाम्' ग. ३. 'ध्यते' ग.

अत्रान्तरे मयसुता समभ्येत्य विहायसा ।
कलिङ्गसेनां सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह सादरम् ॥ २७५ ॥
चिरायाता सखीवृत्तं विज्ञाय ज्ञानचक्षुषा ।
प्राह सोमप्रभा सौमप्रभा[1]वचनशालिनी ॥ २७६ ॥
त्वयं मयि प्रयातायां किमात्मा वत्सभूपतेः ।
त्वया प्रकाशितः सत्यमधीरं ललनामनः ॥ २७७ ॥
मन्मतं समतिक्रम्य [3]रभसा हृतसाहसम् ।
कृतं [4]सुष्ठु त्वया मौग्ध्यान्मूर्खाः साधुमतद्विषः ॥ २७८ ॥
अन्तर्वेद्यां द्विजग्रामे वसुदत्तसुतो द्विजः ।
विष्णुदत्तोऽभवद्विद्यानघृचिभ्रमदर्पणः ॥ २७९ ॥
स मित्रैः सप्तभिर्मूर्खैः सह गन्तुं [5]भृशोत्थितः ।
वलिभिस्त्वरयाविष्टैरनक्षत्रे विनिर्ययौ ॥ २८० ॥
दुर्निमित्तं समालोच्य तेन ते भ्रातुमर्थिताः ।
अज्ञानदुर्ग्रहग्रस्ता न व्यलम्बन्त सत्वराः ॥ २८१ ॥
अपि यत्नेन शक्यन्ते धर्तुं प्रलयमारुताः ।
निरुद्धाश्च नदीवेगा न तु मूर्खा हितद्विषः ॥ २८२ ॥
स गत्वा सह तैर्दूरं वन्यां शपथसन्निभम् ।
निशि प्रतिश्रयाकाङ्क्षी विवेश पुरमन्दिरम् ॥ २८३ ॥
भुक्त्वा श्रमार्तास्ते तत्र मूर्खास्तस्यानुयायिनः ।
भृशं समाययुर्निद्रां स च जाग्रद्विचारवी ॥ २८४ ॥
महानिद्रा महाकोपा महामोहा महाशनाः ।
मूर्खाः पशूनां वा शिष्या मूर्खाणां पशवोऽथवा ॥ ८५ ॥
स निनिद्रस्ततोऽपश्यन्निशि तद्गृहयोषितम् ।
निम्नगामिव तारुण्यमहावेगतरङ्गिताम् ॥ २८६ ॥

---

१. 'धा' ख. २. 'विचक्षणा' ख. ३. 'साहवि' ख. ४ 'सुष्ठु' ख.
५. 'मूर्खार्थिन' ख.

प्रच्छन्नकामिनी यूना केनापि रतिसंगता ।
संकम्पाकुलनिःश्वासो विदधे तस्य कौतुकम् ॥ ३८७ ॥
रतिनिद्रापरीतायां तस्यां स्वगृहमाविशत् ।
गृहस्वामी समायातो[2] विसृज्य निजसेवकान् ॥ ३८८ ॥
स राजवंश्यः स्ववधूं दृष्ट्वा केनापि संगताम् ।
शिरश्चिच्छेद सुप्तस्य प्रियाचारित्रहारिणः ॥ ३८९ ॥
खड्गं तद्रक्तसंसिक्तं दीप्तं बिभ्रत्स पाणिना ।
तान्प्राह पान्थान्निर्गत्य जलमानीयतामिति ॥ ३९० ॥
विष्णुदत्तो विनिद्रोऽथ समुत्थाय ससंभ्रमम् ।
जलं तस्मै ददौ पाणिस्थि[3]तखड्गाय वारणम् ॥ ३९१ ॥
पाणिं[4] प्रक्षाल्य राजन्ये मोहान्निद्रामुपागते ।
प्रबुद्धा छिन्नशिरसं सापश्यन्नरमङ्गना ॥ ३९२ ॥
मनःप्रियं तमादाय निहतं लघुचारिणी ।
भस्मकूटे सुपिहितं रथ्योपान्ते न्यवेशयत् ॥ ३९३ ॥
तं निधाय प्रविश्याशु पत्युः सुप्तस्य मस्तकम् ।
चिच्छेदाकृष्य निस्त्रिंशं घोरं हि स्त्रीविचेष्टितम् ॥ ३९४ ॥
ततश्चुक्रोश सा तारमयं प्राणपतिर्मम ।
दस्युभिर्निहतो रात्रौ तच्छ्रुत्वा विविशुर्जनाः ॥ ३९५ ॥
तैर्गृहीतांशुकाः पान्थास्ते भृशं वेपविह्वलाः ।
चौरा इति वधूवाक्यान्मूर्खा नो किंचिदूचिरे ॥ ३९६ ॥
यथावृत्तं यथादृष्टं विष्णुदत्तस्ततोऽब्रवीत् ।
भस्मकूटान्तरघृतं तत्संदृश्य कलेवरम् ॥ ३९७ ॥
मत्वा यातैस्तथा मुक्तो दुर्निमित्तविनिर्गतान् ।
निन्दन्स्वयम्यान्प्रययौ विष्णुदत्तः स्वमन्दिरम् ॥ ३९८ ॥

१. 'गा कम्पाकुलनि श्वासा' ख. २. 'तान्' ख. ३. 'खड्गनिवारणे' ख. ४. 'णी' ख. ५. 'यावदत्' ख.

इत्येवमनिमित्तानि मूर्खैरगणितान्यपि ।
फलन्ति भेषजं तेषां साधुविद्वत्समागमः ॥ ३९९ ॥
इति मूर्खाख्यायिका ॥ १४ ॥

सखि तूर्णं त्वया मोहात्किमात्मा प्रकटीकृतः ।
सपत्नीनां प्रयत्नो हि त्वद्विवाहविपर्यये ॥ ४०० ॥
रक्षणीयासि मे यत्नात्सपत्नीगोचरं गता ।
मायावतीनां वैरेण योषितां को हि मुच्यते ॥ ४०१ ॥
दृढवर्माभिधो राजा मृगयानिर्गतः पुरा ।
इक्षुमत्याः परिसरे हृतोऽश्वेनाविशद्वनम् ॥ ४०२ ॥
सोऽपश्यदनिलालोलशैलरम्ये तपोवने ।
तत्र कन्यां समासाद्य लावण्यललिताकृतिम् ॥ ४०३ ॥
तां विलोक्य मनःसिन्धुचन्द्रिकां क्षुभितो नृपः ।
प्रणम्य तस्या जनकं मुनिं पप्रच्छ मङ्क्षणम् ॥ ४०४ ॥
भगवन्कस्य कन्येयमस्मिन्नपि तपोवने ।
यत्कटाक्षकृतालम्बो मुष्णाति मदनो जनम् ॥ ४०५ ॥
श्रुत्वेति भूपतेः कन्यालाभलोलुपचेतसः ।
मुनिः प्रोवाच तां तस्मै दातुमभ्युद्यतः स्वयम् ॥ ४०६ ॥
ममैवाप्सरसो वीक्ष्य मेनकां धैर्यविप्लवात् ।
सुतेयं कदलीगर्भा कदलीगर्भसंभवा ॥ ४०७ ॥
गृहाणेमां शशिमुखीं पात्रमेवासि भूपते ।
दुष्यन्त इव कण्वेन पुरा दत्तां शकुन्तलाम् ॥ ४०८ ॥
उक्त्वेति प्रददौ तस्मै स कन्यामायतेक्षणाम् ।
अप्सरःकल्पितोद्वाहां योग्यकौतुकमङ्गलाम् ॥ ४०९ ॥
भूभुजा सह तां गन्तुं प्रस्थितां शासनात्पितुः ।
ऊचुरप्सरसः स्नेहाद्दत्त्वास्यै सिद्धसर्षपान् ॥ ४१० ॥

१. 'निवर्तने' ख. २. 'क' ख. ३. 'तइ' ख.

पुत्रि मूयाः सपत्नीषु सावधानात्मरक्षणे।
न सहन्ते हि मानिन्यः पत्युरन्यासमागमम् ॥ ४११ ॥
खिन्ना भर्तृगृहे सुभ्रु यदा पितरमेष्यसि।
तदा मार्गोपदेशाय तवेयं सर्षपावली: ॥ ४१२ ॥
इत्युक्ता साभिरगमत्सा पत्युरनपायिनी।
उदयाभ्युत्थितस्येव रक्ता भानुमतः प्रभा ॥ ४१३ ॥
सा राजधानीमासाद्य रुचिरोद्यानभूमिषु।
रममाणा चिरं तस्थौ प्रियप्रणयपालिता ॥ ४१४ ॥
तस्यामासक्तमालक्ष्य नृपं त्यक्ताखिलक्रियम्।
ज्येष्ठा नरेन्द्रमहिषी बभूव भृशदुःखिता ॥ ४१५ ॥
उवाच सासमेकान्ते सा समाहूय भूपतेः।
सचिवानेकसक्तोऽयं क्ष्मापतिर्धार्यतामिति ॥ ४१६ ॥
तदाकर्ण्याब्रुवन्देवीं स्वैरमालोक्य मन्त्रिणः।
वयं प्रणयिनि प्रेमच्छेदे न स्वामिनः क्षमाः ॥ ४१७ ॥
स्त्रियोऽत्र विनियुज्यन्ते भिक्षुकी वाथ तापसी।
मायाकुहककौटिल्यकलाकोशा हि योषितः ॥ ४१८ ॥
श्रुत्वेति लज्जितेवासौ कृत्वा तद्वचनं हृदि।
दम्भानै[1] युक्तमित्युक्त्वा तान्विसृज्य तथाकरोत् ॥ ४१९ ॥
गर्भदासं विसृज्यासौ समाहूय सुपूजिताम्।
सपत्नीपरिहाराय योजयामास तापसीम् ॥ ४२० ॥
गर्भपातनसंस्थानवश्याकर्षणमारणैः।
लब्धप्रतिष्ठा तत्कार्ये सा तथेत्याह पूजिता ॥ ४२१ ॥
तत्प्रतिज्ञाय सा पश्चात्तापं भेजे निजाश्रमे।
प्रदृप्ताः प्रभवन्त्येते कथं नृपगृहे[5] स्थितिः ॥ ४२२ ॥

---

१. 'ना' पा. २. 'ता' पा. ३. 'बाधुक' पा. ४. 'तेन' पा. ५. 'हे स्थिति' पा.

रत्नमन्त्रौषधिप्रीतसदैवज्ञपुरोहिते ।
महाराजपुरे युक्ता नश्यन्ति क्षुद्रसिद्धयः ॥ ४२३ ॥
ध्यात्वेति दुःखिता प्रायात्सुहृदं साथ नापितम् ।
यो मायाडम्बरस्थैर्यैर्धौर्त्यराशिरिवोत्थितः ॥ ४२४ ॥
तस्मै निवेद्य सा सर्वं राजपत्न्या विचेष्टितम् ।
कार्येऽस्मिंस्त्वं सहायो मे तत्प्रवाचेति तापसी ॥ ४२५ ॥
स तन्निशम्य मनसा प्रदध्यौ हर्षसंप्लुतः ।
अचिन्ते तमिदं तेन दिष्ट्याहं स्वयमर्थितः ॥ ४२६ ॥
दिष्ट्या पिवामः स्वादाभो वर्णयित्वा समञ्जसम् ।
पुण्यैरुपनमन्त्येव धूर्तानां जडबुद्धयः ॥ ४२७ ॥
चिन्तयित्वेति विश्रब्धं तां स सादरमभ्यधात् ।
स्थितोऽहमत्र निःशेषमायाकल्लोलसागरः ॥ ४२८ ॥
राजपत्न्या करिष्यामि सपत्नीविनिवारणम् ।
युक्तिज्ञः साधयिष्यामि सर्वं तव मनोगतम् ।
कर्णकौतुकमव्यग्रा मद्बुद्धिविभवं शृणु ॥ ४२९ ॥
दुःशीलनामा भूपालः पुरा मे वल्लभां रहः ।
सदा सिषेवे तद्दुःखादभवं शुष्कविग्रहः ॥ ४३० ॥
वमनक्षालनक्षीणं विधायाहं ततो वपुः ।
अवदं भूमिपालेन पृष्टो दौर्बल्यकारणम् ॥ ४३१ ॥
भार्या मे डाकिनी रात्रावाकृष्याङ्गानि भक्षति ।
गुदद्वारेण तेनाहं विवर्णो निष्प्रभः कृशः ॥ ४३२ ॥
सशङ्कमिति राजानं विधायाहं स्वमन्दिरे ।
अवोचं साश्रुनयनो निजजायामधोमुखः ॥ ४३३ ॥
गुदे राज्ञः समुत्पन्नं दंष्ट्रायुगलमुत्कटम् ।
क्षुरं छिनत्ति सततं तेन मे कर्मकारिणः ॥ ४३४ ॥

---

१. 'युगे' ख. २. 'श्वापि' ग. ३. 'अचिन्त्यत निधाने हि द' ख. ४. 'श्री' ख. ५ 'स निधय' ख. ६. 'कक्रम्' ख.

वृत्तिच्छेदाद्विनष्टोऽहं शस्त्रभाण्डक्षये सदा।
इति मद्वचसा साभूद्भूरिविस्मयकौतुका॥ ४३५॥
ततो रहः समेतस्य रतौ सा भूपतेर्निशि।
गुदं पस्पर्श हस्तेन सशङ्कस्य कुतूहलात्॥ ४३६॥
ततस्तां डाकिनीं मत्वा स पलाय्य ययौ जवात्।
इति युक्त्यैव दयिता मया धूर्तेन मोचिता।
वाढं देव्याः करिष्यामि निःसपत्नीभयं मनः॥ ४३७॥
उक्त्वेति तापसीं पृष्टः प्रदध्यौ नापितः क्षणम्।
राजद्रोहे न शक्तोऽहं किंतु जीवामि वर्णनैः॥ ४३८॥
विचिन्त्येत्यवदद्युक्तिं नृपस्यान्तःपुरान्तिके।
हस्तपादशिरःखण्डान्कांश्चित्क्षिपतु पौरुषान्॥ ४३९॥
विलोक्य जातशङ्कस्तां सापवादां मुनेः सुताम्।
दृढवैर्मा नृपः कोपाद्ध्रुवं त्यक्ष्यति वल्लभाम्॥ ४४०॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य तापसी राजमन्दिरे।
देवीहिताय तत्सर्वं चकारालक्ष्यचारिभिः॥ ४४१॥
तद्विलोक्य नृपो घोरां तां मत्वा शाकिनीं वधूम्।
सपत्नीरचितासत्यदोषां तत्याज मूढवत्॥ ४४२॥
पितुराश्रममासाद्य सर्पपादिष्टवर्त्मना।
न्यवेदयत्स्ववृत्तान्तमात्मनः क्षितिपस्य च॥ ४४३॥
विज्ञाय स हि तद्वृत्तं दिव्यधार्यङ्कणो मुनिः।
चकाराभ्येत्य यत्नेन संजातप्रत्ययं नृपम्॥ ४४४॥
इति माया सपत्नीनां दुर्लङ्घ्या नृपमानसे।
गच्छाम्यहं त्वया सुभ्रु स्थातव्यं सावधानया॥ ४४५॥

---

१. 'तद्' ख. २. 'प्रमग्ना' ग. ३. 'प' ख ४. 'विज्ञाय दुहितुर्वृत्तं दिव्यपीनेत्रो मुनिः' ख. ५. 'गृद्' ग.

वर्तमानां परगृहे त्वामहं समुपस्थिता ।
वारिता वल्लभेनाद्या सादयिष्यामि तं पुनः ४४६ ॥
इति सपत्न्याख्यायिका ॥ १५ ॥

इत्यामन्त्र्य सखी स्वैरं प्रयातायां विहायसा ।
सोमप्रभायां तत्सर्वमाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसः ॥ ४४७ ॥
योगेश्वरः समभ्येत्य मन्त्रिणे[२] दिव्यलोचनः ।
सख्योः परास्परालापं निवेद्य पुनराविशत् ॥ ४४८ ॥
वत्सेश्वरोऽपि तत्सङ्गदिनध्यानपरायणः ।
निनिन्द मनसा नित्यं गणकान्गणनापरान् ॥ ४४९ ॥
दृष्ट्वा वासवदत्तां स निर्विकारमवस्थिताम् ।
यौगंधरायणकृतां कांचिन्नीतिमशङ्कत ॥ ४५० ॥
तत्कारणं रहो राज्ञा पृष्टो यौगंधरायणः ।
प्राह देव मनस्विन्योर्द्वयोः कोपो न लक्ष्यते ॥ ४५१ ॥
यत्सहासं मुखं कोऽपि[५] स्त्रीणां मे नातिनिश्चितम् ।
मरणे व्यवसायस्य स कोपस्खलितः क्रमः ॥ ४५२ ॥
इत्यादियुक्तिवचनैर्विनिधाय प्रभोर्मनः ।
स विवाहमहोत्साहे श्वश्र्वादरमिवाकरोत् ॥ ४५३ ॥
वत्सराजस्ततो ध्यात्वा विमनाः प्राह मन्त्रिणम् ।
संदेहाकुलितो वाक्यं विलोल इव यद्वदः ॥ ४५४ ॥
भजमानां प्रणयिनीं यो मोहादवमन्यते ।
नमोऽस्तु पण्ढपशवे तस्मै कठिनचेतसे ॥ ४५५ ॥
व्यसत्पुराणपुरुषः सोऽपि धीमान्धनंजयः ।
स्वर्गे रम्भामनादृत्य तच्छापात्पाण्ढ्यमाप्तवान् ॥ ४५६ ॥
चिन्ताज्वरो दुःसहोऽयं त्यज्यते च नृपात्मजा ।
त्यक्त्वा लक्ष्मीं स्वयं प्राप्तामनुतापं भजेन्न कः ॥ ४५७ ॥

१. 'प्रसादयिष्यामि' ख. २. 'णो' ख. ३. 'न्या.' ख. ४. 'ध्या.' ख. ५. 'पि' ख. ६. 'रम्भ' ख. ७. 'क्लैब्यमा' ख.

इति वत्सेश्वरवचः श्रुत्वा मन्त्रीवरोऽवदत्।
कन्दर्परूपो नृपतिः श्रुतसेनाभिधोऽभवत्॥ ४५८॥
कदाचित्तीर्थपूतात्मा दृष्ट्वा सोमेश्वरं प्रभुम्।
अग्निशर्माभिधो विप्रस्तं यदृच्छागतोऽब्रवीत्॥ ४५९॥
पञ्चतीर्थे नृप स्नात्वा यत्र ताः सव्यसाचिना।
पूर्वमप्सरसो मुक्ता द्रष्टुं शर्वमहं गतः॥ ४६०॥
दृष्ट्वा सोमेश्वरं देवं सुराष्ट्रामृतवारिदम्।
भ्रान्तस्तालीवनालोलश्यामले जलधेस्तटे॥ ४६१॥
ततः कदाचिल्ललितामपश्यं राजकन्यकाम्।
राज्ञो वसन्तसेनस्य गुञ्जानस्तस्य मन्दिरे॥ ४६२॥
भल्लीं कुसुमचापस्य वल्लीं यौवनशाखिनः।
पल्लीं मदपुलिन्दस्य वीक्ष्य तां विस्मितोऽभवम्॥ ४६३॥
परां रतिमिवालोक्य तां त्वां स्मृत्वा स्मरोपमम्।
नृपतिः श्रुतसेनोऽस्या योग्य इत्यभ्यधां स्फुटम्॥ ४६४॥
स भवानेव तत्कन्यां भर्तुमर्हति नापरः।
इत्युक्त्वा तद्गिरा गत्वा तामयाचत तत्कृते॥ ४६५॥
द्विजदौत्यवितीर्णां तां पित्रा प्राप नृपः प्रियाम्।
विद्युद्द्योतां सरोद्यानविलाससरसिकोऽभवत्॥ ४६६॥
याति काले तयोः प्रौढं प्ररूढे प्रेमपादपे।
अपरा विश्रुतगणं वरयित्री समाययौ॥ ४६७॥
नवां नरेन्द्रतनयां प्राप्तां पत्युः स्वयंवरे।
सा ज्ञात्वा प्रियसंभोगभङ्गभीतामवव्यसुः॥ ४६८॥
तद्वियोगानलालीढो नृपोऽपि प्राप पञ्चताम्।
वरयित्री च मानिन्या संशयाय निपातिता॥ ४६९॥

इति श्रुतसेनाख्यायिका॥ १६॥

---

१. 'राज मन्दिरे' ख. २. 'न्यारतम' ख. ३. 'प्रेम' ख.

यौगंधरस्येति वचो निशम्य जगतीपतिः ।
[1]स्मृत्वा देव्यौ च कन्यां च तस्थौ दोलाविलोलधीः ॥ ४७० ॥
वीक्ष्य वासवदत्तां च सङ्गं तस्याः कथं नृपः ।
प्रसन्नवदनोदारमभूत्तस्य मनोरथः ॥ ४७१ ॥
ततो योगेश्वरोऽभ्येत्य मन्त्रिणो रजनीचरः ।
चारमावेदयामास समेत्यालक्षितो निशि ॥ ४७२ ॥
गोपालकेन [2]विदितश्चारः श्वशुरवेश्मणे ।
राज्ञा कलिङ्गदत्तेन पुत्रीवृत्तान्तमाहिताः ।
गूढव्यञ्जनसंचाराश्चारा दृष्टास्तथा मया ॥ ४७३ ॥
इति रक्षोवचः श्रुत्वा प्राह यौगंधरायणः ।
कलिङ्गसेनावृत्तान्तं यत्नेन ज्ञातुमर्हसि ॥ ४७४ ॥
त्वद्बुद्धिविभवेनाहं प्रभोर्व्यसनमागतम् ।
छेत्तुमिच्छामि राज्ञां हि दुश्चिकित्स्यः स्मरानलः ॥ ४७५ ॥
त्राणं नैसर्गिकी बुद्धिर्नृणामिति किमद्भुतम् ।
तिरश्चामपि निष्पन्ना व्यसनोच्छित्तये मतिः ॥ ४७६ ॥
न्यग्रोधमूल[3]पतितः पालितो नाम मूषकः ।
जाले लोमशमार्जारं ददर्श पतितं पुरः ॥ ४७७ ॥
बद्धे तस्मिन्गताशङ्कः स [4]निर्भिन्नस्वयमागतः ।
[5]भुजैर्बहिश्चरन्नाशु विलिखन्नखरैर्महीम् ॥ ४७८ ॥
ददर्श नकुलं तत्रोलूकं च विकृताननम् ।
तौ दृष्ट्वा प्राणसंदेहे मूषकः समचिन्तयत् ॥ ४७९ ॥
नकुलोलूकभीतोऽहं मार्जारं बलिनां वरम् ।
श्रयामि विषमस्थानां [6]संधिं स्थाने हि शत्रुणा ॥ ४८० ॥
चिन्तयन्निति तत्पाशं छेत्स्यामि बद्धसौहृदः ।

---

१. 'ध्यात्वा' ख. २. 'निहितौ चारौ' ख. ३. 'निलयः' ख. ४. 'ग्रँथपलाननः' ख. ५. 'भक्ष्यं बहिश्चचाराशु वि' ख. ६. 'संधिज्ञाणं' ख. ७. 'शच्छेदायोद्यतमानसः' ख.

मार्जारमवदन्नीलं काचकाञ्चनलोचनम् ॥ ४८१ ॥
अमित्रो मित्रतां याति मित्रं वा यात्यमित्रताम् ।
कालेन तस्य च्छेत्स्यामि पाशं ते बद्धसौहृदः ॥ ४८२ ॥
इति श्रुत्वा समधुरं मार्जारः सुहृदं व्यधात् ।
गाढमङ्के परिष्वज्य मूषकं विपदि स्थितः ॥ ४८३ ॥
तं दृष्ट्वा नकुलोलूकौ निराशावाखुभक्षणे ।
बभूवतुर्मन्दमुखौ तदुपाश्रयशङ्कितौ ॥ ४८४ ॥
ततः शनैः शनैराखुश्चिच्छेद स्नायुबन्धनम् ।
तूर्णमित्याह मार्जार विलम्बं चिरकारणम् ॥ ४८५ ॥
स्वार्थमुद्दिश्य लम्बन्ते स वा भक्तिभिरीश्वरम् ।
धूर्तस्तत्कार्यशेषेण यापयेत्कार्यकारणात् ॥ ४८६ ॥
इति ध्यात्वा धियैवाखुर्लुब्धकागमनावधि ।
एकपाशांशशेषं तं चकार नयकोविदः ॥ ४८७ ॥
कालाकारकरालेऽथ संप्राप्ते पाशजीविनि ।
चकर्त पाशशेषं तं छित्त्वैव बिलमाविशत् ॥ ४८८ ॥
भयान्मुक्तोऽथ मार्जारः कालेनाभ्येत्य मूषकम् ।
बिलद्वारस्थितः प्राह सखे निर्गम्यतामिति ॥ ४८९ ॥
तीक्ष्णवक्रोच्चदशनसश्मश्रुसूचीनिभाननम् ।
कक्षासंवृत्तचलाङ्गूलं जिघ्रन्तं बिलसौरभम् ॥ ४९० ॥
उच्चैकपादनिभृतं मीलितार्धविलोचनम् ।
पार्श्वावलोकिनं दृष्ट्वा मार्जारं मूषकोऽवदत् ॥ ४९१ ॥
सौहार्देनोपयुक्तः प्राक्तव चाहं भवांश्च मे ।
साम्प्रतं स गतः कालो न सुपरिबद्धसौहृदम् ॥ ४९२ ॥
यद्वान्मधुरं वक्ति मह्यं तन्नाद्य रोचते ।

१. 'मधुरिमं' ख. २. 'मंमयुखौ' ख. ३. 'तं तूर्णं तूर्णमित्याह मार्जारश्चिरकारिणम्' ख. ४. 'न्ते पैवाभ' ख. ५. 'मायवान्' ख. ६. 'शापशेषं' ख. ७. 'विभाननम्' ख.

यातस्ते कार्यकालोऽसावधुना नास्ति संगतिः ॥ ४९३ ॥
निजप्रयोजनापेक्षापेशलप्रेमभाषिणाम् ।[1]
दुर्लुब्धक्रूरमनसां धीमान्को नाम विश्वसेत् ॥ ४९४ ॥
कृतज्ञ भव मे मित्रं दूरादेवार्यचेतसाम् ।
न सङ्गोऽस्ति विरुद्धो हि भोग्यभोक्तुः समागमः ॥ ४९५ ॥
निरस्य बहुभिर्वाक्यैर्मार्जारमिति मूषकः ।
विलं तत्याज कालेन धूर्तं शत्रुं विलोक्य तम् ॥ ४९६ ॥
इति मार्जाराख्यायिका ॥ १७ ॥

इति बुद्धिमतां नीतिर्निगूढा कार्यसिद्धये ।
चित्तं हि नयनं प्राज्ञो पापस्यात्मनि संभृतम् ॥ ४९७ ॥
पुरा प्रसेनजिन्नाम श्रावस्त्यां वसुधाधिपः ।
सभायां ब्राह्मणोऽभ्येत्य विज्ञप्तः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४९८ ॥
दुःखार्जितं धनं देव हारितं त्वयि शास्तरि ।
वने नागवलावल्लीमूले विनिहितं मया ॥ ४९९ ॥
श्रुत्वेति राजा संचिन्त्य वैद्यानाहूय सर्वतः ।
अपृच्छदातुरेष्वद्य प्रयुक्तं किं किमौषधम् ॥ ५०० ॥
इति पृष्टेषु वैद्येषु प्राहैको वणिजो मया ।
दत्तो नागबलाक्वाथः प्रमाणमधुना नृपः ॥ ५०१ ॥
इत्याकर्ण्य तमन्विष्य खानिता येन सा लता ।
भेषजायाब्रवीद्राजा ब्राह्मणस्वं हृतं त्वया ॥ ५०२ ॥
इति वेत्रधराहूतः श्रुत्वा कम्पाकुलो नरः ।
राजभीतस्तथेत्युक्त्वा स विप्राय ददौ धनम् ॥ ५०३ ॥
इति राज्ञा स्वबुद्ध्यैव विप्रस्वं नष्टमाहृतम् ।
को हि नाम स संकल्पो धीमतां यो न सिद्ध्यति ॥ ५०४ ॥
इति प्रसेनजिदाख्यायिका ॥ १८ ॥

१. 'तम्' ख. २. 'दुर्वलक्रूर' ख. ३. 'निजं धूर्तविलोकितम्' ख. ४. 'प्रज्ञाया पश्यति सुसंमतम्' ख. ५. 'णेनैव' ख. ६. 'न' ख.

इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा प्रच्छन्नो ब्रह्मराक्षसः ।
कलिङ्गसेनाभवनं तत्प्रयुक्तः पुनर्ययौ ॥ ५०५ ॥
अत्रान्तरे स्मराकृष्टश्चिराच्च्यस्तमनोरथः ।
धीमान्मदनवेगाख्यो विद्याधरपतिः स्वयम् ॥ ५०६ ॥
वत्सेशवेषमाधाय निर्विशेषमवाद्भितः ।
कलिङ्गसेनाभवनं विवेश विशदद्युतिः ॥ ५०७ ॥
कलिङ्गसेना तं वीक्ष्य ध्यात्वा वत्सनरेश्वरम् ।
ससंभ्रमं समुत्तस्थौ रणन्नूपुरमेखला ॥ ५०८ ॥
लज्जानतमुखाम्भोजां कम्पमानां घनस्तनीम् ।
गान्धर्वोद्वाहविधिना हृष्टस्तामालिलिङ्ग सः ॥ ५०९ ॥
तं दृष्ट्वा तूर्णमासाद्य प्राह यौगंधरायणम् ।
राक्षसो वत्सराजेन राजपुत्री वृतेति सः ॥ ५१० ॥
असंभाव्यमिदं मन्ये नायं राजा विशृङ्खलः ।
ध्रुवं कश्चिदस तद्वेषो मन्त्री प्राहेति विस्मितः ॥ ५११ ॥
नृपं वासवदत्ताया मन्दिरे वीक्ष्य मन्त्रिणा ।
विसृष्टो राक्षसः प्रायाद्द्रष्टुं कपटकामुकम् ॥ ५१२ ॥
कलिङ्गसेनाभवने सोऽपश्यन्नृपरूपिणम् ।
विद्याधरेन्द्रं सुरतश्रमनिद्राविमोहितम् ॥ ५१३ ॥
इति कलिङ्गसेनामदनवेगसमागमः ॥ १९ ॥

ततो विज्ञाय निपुणो राजकन्याविचेष्टितम् ।
चक्रे विदितवृत्तान्तं नृपं यौगंधरायणः ॥ ५१४ ॥
कलिङ्गसेना केनापि वृता विद्याधरेण सा ।
इति वासवदत्तां च मन्त्री गूढमहर्षयत् ॥ ५१५ ॥
क्रोधशोकस्मराक्रान्तो गत्वा वत्सेश्वरः स्वयम् ।
कलिङ्गसेनां निःशङ्कां ददर्शाक्रान्तिनरकथाम् ॥ ५१६ ॥

१. 'म्म' ख. २. 'रि' ख. ३. 'व्याज' ख. ४. 'मन्येत' ख. ५. 'निपुणम्' ख. ६. 'शान्त' ख.

सा वत्सराजमालोक्य संभ्रमाद्गलितांशुका ।
स्तनद्वयं विदधती घनोल्लिखितमाबभौ ॥ ५१७ ॥
दृष्ट्वाभिनवसंभोगसंभावितमनोभवाम् ।
सौभाग्यविभ्रमोद्भिन्नां तां लतामिव पुष्पिताम् ॥ ५१८ ॥
वत्सराजो नियम्यान्तः कोपमन्मथविक्रियाम् ।
प्राह केनापि पापेन वञ्चितासीति निःश्वसन् ॥ ५१९ ॥
कलिङ्गसेना तच्छ्रुत्वा सद्यश्छिन्नमनोरथा ।
नेदानीं त्वं सपत्नी मे क्षमामितीव व्यलोकयत् ॥ ५२० ॥
ततो वत्सेश्वरे याते साक्षाद्विद्याधरेश्वरम् ।
वरं मदनवेगं सा ददर्श स्मरविभ्रमम् ॥ ५२१ ॥
कुलाभिजनमावेद्य मोक्षिता तेन मानिनी ।
नोवाच किंचिन्मनसा ववन्ध वसुनिर्वृतिम् ॥ ५२२ ॥
अथ वत्सेश्वरः स्वैरं स्मरानुशयतापितः ।
विद्याधरेन्द्ररहितां राजपुत्रीं समाययौ ॥ ५२३ ॥
स तामित्यावदल्लज्जानाल्लोचनकान्तिभिः ।
आगुल्फामिव निर्माणां नीलोत्पलदलस्रजम् ॥ ५२४ ॥
प्राप्ता मदर्थमेवासि भज मां शुभ्रु नास्ति ते ।
दोषो विशुद्धभावायाः प्रमाणं चात्र मे मनः ॥ ५२५ ॥
इति राजवचः श्रुत्वा साश्रुनीरमाश्रुलोचना ।
दुर्निमित्तं विलोक्यैवं सख्याहं वारिता पुरा ॥ ५२६ ॥
सोमप्रभावचः पथ्यमकृत्वा संशयं गता ।
प्रजापाल तवेदानीमगम्याहं पराङ्गना ॥ ५२७ ॥
इन्द्रदत्ताभिधो राजा चेदीनाममवत्पुरा ।
पापसूदनतीर्थे च चक्रे दिव्यं सुरालयम् ॥ ५२८ ॥

---

१. 'लिङ्गितांशु' ख. २. 'य' ख. ३. 'नामाभिज' ख. ४. 'सान्त्वितवा' ख.
५. 'च सतीधृतिम्' ख. ६. 'नव' ख.

स कदाचिद्वणिग्जायां तत्तीर्थे स्नातुमागताम्।
ददर्श कान्तिकल्लोलह्राव्यमानामिवाभितः॥ ५२९॥
तामन्विष्य स्वयं राजा समेत्य विजने निशि।
भजस्वेत्यवदत्को हि कामेन न खलीकृतः॥ ५३०॥
स्पृष्टा वह्निं विशामीति सा समाभाष्य भूपतिम्।
तत्याज दयिता प्राणान्विषमं हि सतीव्रतम्॥ ५३१॥
भूपतेरपि तत्तीव्रपापसंकुचितायुषः।
मन्ये तस्य कथास्पर्शाज्जिह्वेयं लज्जतीव मे॥ ५३२॥

इति पतिव्रताख्यायिका॥ २०॥

सुराङ्गना शक्रशापादहं प्राप्ता दशामिमाम्।
निन्द्यासि चपला यद्वा ममैषा भवितव्यता॥ ५३३॥
मनोरथशतास्पृष्टमप्राप्यान्यदवाप्यते।
विधातृविहितं को हि कदा लङ्घयितुं क्षमः॥ ५३४॥
इदं विद्याधरेन्द्रेण वितीर्णं मणिकाञ्चनम्।
अहं युष्मत्पुरे राजन्निवसाम्यनपायिनी॥ ५३५॥
श्रुत्वेति मदनार्तोऽपि विरराम नरेश्वरः।
सतां कलुषितं चेतः स्वयमेव प्रसीदति॥ ५३६॥
अथ कालेन संभुक्ता विद्याधरधराभुजा।
कलिङ्गसेना संतोषं गर्भमाधत्त सुप्रभा॥ ५३७॥
ततो विद्याधरपतिस्तामामन्त्र्य ययौ प्रियः।
गर्भाधानावधिः स्त्रीणां खेचरैर्हि समागमः॥ ५३८॥
स्मृतमात्रः समेष्यामि याते कृत्वेति संविदम्।
विद्याधरेन्द्रे सा तस्थौ दोहदापाण्डुरद्युतिः॥ ५३९॥
ततोऽसूत सुतां काले संपूर्णे पूर्णलक्षणाम्।
चित्राङ्गदोऽथ गन्धर्वनामदत्तां जहार या॥ ५४०॥

१. 'भ्यमम' ख. २. 'मग्नं' ख. ३. 'सं' ख. ४. 'नाम' ख.

अत्रान्तरे वराच्छंभोः साङ्गानङ्गार्थितां रतिः ।
प्रच्छन्ना मायया तन्वी न्यस्ता तत्सूतिकागृहे ॥ ५४१ ॥
नरवाहनदत्तस्य कामस्यापररूपिणः ।
भाविनी वल्लभा गर्भव्यत्ययात्तत्सुताभवत् ॥ ५४२ ॥
लावण्यकलिकाकारैस्तद्वपुःकान्तिसंचयैः ।
प्रापुर्विवर्णतां दीपा द्यूतकारान्नता इव ॥ ५४३ ॥
सुतां कलिङ्गसेनाया जातां श्रुत्वा महीपतिः ।
पुत्रोद्वाहे मतिं चक्रे भावज्ञो हि मनोरथः ॥ ५४४ ॥
इति मदनमञ्चुकाजन्मकथा ॥ २१ ॥

ज्ञात्वा वत्सेशसंकल्पं प्राह यौगंधरायणः ।
राजन्नयोनिजैवेयमुत्पन्ना कन्यका रतिः ॥ ५४५ ॥
गर्भयोर्व्यत्ययोर्वृत्तं श्रुतमस्माभिरित्यपि ।
त्वत्पुत्रायावतीर्णैषा साक्षान्मन्मथरूपिणे ॥ ५४६ ॥
विरूपाक्षाभिधो यक्षो धनदानुचरः पुरा ।
विज्ञप्तो निधिपालेन भूतलन्यस्तजानुना ॥ ५४७ ॥
देव पाशुपताचार्यः सहितो ब्राह्मणैस्त्रिभिः ।
निधानोत्पादने लग्नो मथुरायामपेतभीः ॥ ५४८ ॥
इति श्रुत्वा विरूपाक्षो हन्यतामित्यभाषत ।
तद्गिरा तं जघानासौ धनदस्तं निनिन्द च ॥ ५४९ ॥
कुबेरो ब्राह्मणवधाद्विरूपाक्षमथाशपत् ।
तच्छापाद्भुवि विप्रस्य पुत्रोऽभूत्सोग्रहारिणौ ॥ ५५० ॥
धनेशमर्थयित्वासौ तद्भार्यावततार च ।
अयोनिजा मत्सुतेति दास्या स्नेहेन वर्धिता ॥ ५५१ ॥
तां पूर्वभार्यामालोक्य सोऽपि द्विजकुमारकः ।
कण्ठे जग्राह नश्यन्ति न हि प्राग्जन्मवासनाः ॥ ५५२ ॥

---

१. 'नी' ख. २. 'शु' क. ३. 'य' ख. ४. 'त्तः' ख. ५. 'विवेद' ख. ६. 'णः' ख. ७. 'थ' ख.

ततस्तयोर्विवाहोऽभूत्पित्रा संचिन्त्य कल्पितः।
इत्येवं पूर्वसंबन्धात्संगमो देहिनामिह ॥ ५५३ ॥

इति यक्षाख्यायिका ॥ २२ ॥

इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा हृष्टो वत्सनरेश्वरः।
देव्या च पद्मावत्या च विजहार सरार्तधीः ॥ ५५४ ॥
नरवाहनदत्तोऽपि मात्रोरमृतनिर्झरः।
पितुर्मनोरथैः सार्धं पूर्यमाणतनुर्ववौ ॥ ५५५ ॥
ततो वासवदत्तायाः शासनात्तनयां प्रियाम्।
कलिङ्गसेना सानन्दा विससर्ज नृपान्तिकम् ॥ ५५६ ॥
नरवाहनदत्तस्तां दृष्ट्वा मदनमञ्चुकाम्।
स्फुटं जहर्ष बालोऽपि सिच्यमान इवामृतैः ॥ ५५७ ॥
उत्सङ्गलालिता धात्र्या तं राजतनयं विना।
मुहूर्तमपि नो तस्थौ सा कन्या कामकन्दली ॥ ५५८ ॥
ततो राजा प्रशस्तेऽह्नि सुतं संपूर्णविग्रहम्।
यौवराज्येऽभिषिच्याह मन्त्रिपुत्रान्क्रमागतान् ॥ ५५९ ॥
नरवाहनदत्तस्य यूयं मौला यथोचितम्।
भृत्या मया समादिष्टाः पितृपैतामहे पदे ॥ ५६० ॥
इत्युक्त्वा तनयायैतान्प्रददौ मन्त्रिपुत्रकान्।
यौगंधरायणसुतं मरुभूतिं महामतिम् ॥ ५६१ ॥
वसन्तकस्य पुत्रं चावर्णशीलं सुमद्गकम्।
[गोमुखाद्यांश्च सुहृदो वीरं हरशिखं तथा] ॥ ५६२ ॥
अत्रान्तरे मयसुता भर्तारं नलकूबरम्।
समामन्त्र्यान्तिकं सख्याः स्मृतमात्रा समाययौ ॥ ५६३ ॥
सा चक्रे दिव्यमुद्यानं व्योमगं भर्तृशासनात्।
योग्यं कलिङ्गसेनायाः पुत्रीपरिणयोत्सवे ॥ ५६४ ॥

---

१. 'सु' ख. २. 'च नर्मशीलं तपन्तकम्' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गत. पाठः ख-पुस्तके मुद्रित.. ४. 'व्योमगं योगाद्विमानं भर्तृ' ख.

वत्सराज सहामात्यस्तदालोक्यातिकौतुकात् ।
कलिङ्गसेना सानन्दमेते सर्वविदा धुरि ॥ ५६५ ॥
ततो रह स्थितो राजा रजनीतिलकानना ।
दृष्ट्वा वराङ्गना प्रह्वय पप्रच्छागमकारणम् ॥ ५६६ ॥
ता प्राहुर्भूपते सर्वा वय विद्या कलास्तथा ।
शरीर प्रविशामोऽद्य तत्र पुत्रस्य धीमत ॥ ५६७ ॥
तच्छ्रुत्वा वत्सराजस्ता सपूज्य प्रयत शुचि ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा बभूवानन्दनिर्भर ॥ ५६८ ॥
ततस्ता विविशुर्विद्या राजपुत्र कलाश्च ता ।
तदानिष्टश्च स बभौ सुधासिक्त इवोडुप ॥ ५६९ ॥

इति यौवराज्याभिषेको विद्याकलासङ्क्रान्तिश्च ॥ २३ ॥

नानाविद्याकलाकेलिकानन स नृपात्मज ।
सर्वज्ञ पितुरजासीद्वीणार्या लक्षण शुभम् ॥ ५७० ॥
नृपाज्ञया पुष्कराख्यो नृत्याचार्यो दिनैर्व्यधात् ।
कलिङ्गसेनातनया नृत्यगीतादिकोविदाम् ॥ ५७१ ॥
ता वीक्ष्य राजतनय सा च त स्मररूपिणम् ।
प्रापतु प्रेमवल्लर्या मधुमासविलासताम् ॥ ५७२ ॥
तयो परस्पर प्रेम्णि वर्धमाने मनोरथै ।
बभूव पुष्पचापस्य सफल कार्मुकश्रम ॥ ५७३ ॥
तत कदाचिदेकान्ते दृष्ट्वा गोमुखमभ्यधात् ।
कलिङ्गसेना वामाक्षुर्भाविन सुहृद प्रियम् ॥ ५७४ ॥
नरवाहनदत्तस्य सखेयुत्तव यशस्विन ।
दृष्टिबद्धानुरागा मे सुता मदनमञ्जुकाम् ॥ ५७५ ॥
सेय यदि वरारोहा याता तत्प्रीतिशालिनी ।
तटस्थो राजपुत्रश्च लज्जैषा केन सह्यते ॥ ५७६ ॥

१ 'न्द मेने सर्वविधना पद' ख २ 'दय' ख. ३ 'व्यासीत्' ख. ४ 'या लक्षणे गुरु' ख. ५ 'फल कार्मुकविक्रम' ख. ६ 'दृष्ट्वा' ख. ७ 'रय' ख. ८ 'जा' ख.

श्रुत्वेति गोमुखः प्राह मातर्युक्तं प्रभाषसे ।
यूनोर्हि सदृशी प्रीतिः कस्य नानन्ददायिनी ॥ ५७७ ॥
पुरा वररुचिः प्राह योगनन्दं महीपतिम् ।
भारिकं कुम्भकारं च पथि वीक्ष्य समागतौ ॥ ५७८ ॥
अनयोरुपरि प्रीतिः कीदृशी तव भूपते ।
इति श्रुत्वाब्रवीद्राजा हन्तुमिच्छामि भारिकम् ॥ ५७९ ॥
कुम्भकारं तु पश्यामि स्वबान्धवमिवागतम् ।
इति राजवचः श्रुत्वा गत्वा वररुचिः स्वयम् ॥ ५८० ॥
तौ बभाषे गतो राजा गैरं भक्ष्याद्य पञ्चताम् ।
तच्छ्रुत्वा भारिकः प्राह दिष्ट्या निष्कण्टकं जगत् ॥ ५८१ ॥
कुम्भकारोऽब्रवीत्सास्रं धिग्धिक् शून्याः कृताः प्रजाः ।
छन्नं श्रोतरि भूपाले श्रुत्वा कात्यायनोऽवदत् ॥ ५८२ ॥
श्रुतं देव यथैव त्वं चानयोर्वृत्तिरीक्षिता ।
तथैवैतौ त्वयि प्रायश्चेतश्चिरं हि पश्यति ॥ ५८३ ।
प्रीतिविस्फारनयना यथा मदनमञ्जुका ।
राजपुत्रे तथैवास्यां राजसूनुरसंशयम् ॥ ५८४ ॥
इत्युक्त्वा गोमुखः प्रायात्प्रहृष्टः स्वं निवेशनम् ।
कलिङ्गसेनापि सुताविवाहं समचिन्तयत् ॥ ५८५ ॥

इति योगनन्दाख्यायिका ॥ २४ ॥

कदाचिद्गोमुखं दृष्ट्वा काचित्पौरवणिग्वधूः ।
भजस्वेत्यवदत्सन्त्या स च तां नाभ्यमन्यत ॥ ५८६ ॥
सा लज्जितावधूता च क्रुद्धा च विदधे मतिम् ।
प्रच्छन्ना तद्वधोपायं मधुमिश्रविषादिभिः ॥ ५८७ ॥
पाने विषप्रदां बुध्वा तां प्रदध्यौ च गोमुखः ।
अहो निसर्गमलिनं कुटिलं स्त्रीविचेष्टितम् ॥ ५८८ ॥

---

१. 'योगनन्दोऽथ पथ' ख. २. 'अनयोर्वर्त्मगे दृशा' ख. ३. 'सा च क्रुद्धा च विदधे मारिणीं मतिम्' ख.

सोद्वेगा कलुषा वक्रा निम्नगा इव निम्नगा ।
अहो नु योषितो नाम कोऽपि दोषसमुच्चय ॥ ५८९ ॥
अप्यन्विष्टा न लभ्यन्ते सत्यक्ता न त्यजन्ति च ।
वासना इव संसारमोहनैककृता स्त्रियम् ॥ ५९० ॥
प्रहसन्ति निषादिन्यो हृष्टा शोचन्ति हेलया ।
रागिण्योऽपि पतिं घ्नन्ति कश्चिच्च वेत्ति योषिताम् ॥ ५९१ ॥
अथवा तथ्यमेतत्कथयन्ति कथाविद ।
शत्रुघ्ननामा पुरुषो यथामूद्बलिना वर ॥ ५९२ ॥
गूढमन्यनरासक्तां निजजायां ददर्श स ।
तां दृष्ट्वा त जघानाशु कुपित पारदारिकम् ॥ ५९३ ॥
यथानीत शव स्कन्धे विधाय बलगर्वित ।
अन्धकूपे स चिक्षेप वीक्ष्यमाणो नतानन ॥ ५९४ ॥
कूपे निरीक्ष्यमाण त पश्चादेत्य लघु क्रमात् ।
न्यपातयन्निजवधूरिति पापाशया स्त्रिय ॥ ५९५ ॥

इति शत्रुघ्नाख्यायिका ॥ २५ ॥

गोमुखश्चिन्तयित्वेति राजपुत्र समभ्ययात् ।
नरमूतिप्रभृतिभि सेव्यमान मन प्रियै ॥ ५९६ ॥
नानाकथान्तरे तत्र राजनीतिविदो मिथ ।
नरवाहनदत्ताग्रे ते प्राहु सेवका श्रुतम् ॥ ५९७ ॥
हंसा कष्टेन सिद्ध्यन्ति प्लवङ्गचपला नृपा ।
ये सेव्यमाना कुप्यन्ति प्रसीदन्ति च वञ्चिता ॥ ५९८ ॥
समस्तचित्तग्रहण सौहृद स्वामिवञ्चनम् ।
अहो व्रतमिद तीक्ष्ण योगिन सेवकस्य च ॥ ५९९ ॥

---

१ 'लब्ध्वा' ख २ दासमुच्चयमित्यथ ३ 'पुरा' ख ४ 'ना' ख ५ 'जना' ख. ६ 'ख चि' ख ७ 'महार्थो सेवकव्रतम्' ख ८ 'हं' ख ९ 'त्रि' ख १० 'सपसम्पाविवर्जने' ख.

एतद्धि परमं तत्त्वं सेव्यते यन्महीपतेः ।
समस्तग्रहणे राज्ञो मरुतां च क ईश्वरः ॥ ६०० ॥
राजा न संहताञ्जेतुं शक्नोति सरलाशयः ।
यस्तान्भिनत्ति यत्नेन तस्य लक्ष्मीर्विनश्वरी ॥ ६०१ ॥
मथुरायां पुरा राजा शूरसेनः सुसंहतान् ।
भृत्यान्विलोक्य भेदेन योजयामास योगवित् ॥ ६०२ ॥
दत्वा प्रसादमेकस्मै तीव्रं परमदण्डयत् ।
तमप्यदण्डयत्काले सर्वानेकैकशस्ततः ॥ ६०३ ॥
इति सन्ति नृपाः प्राज्ञाः सेव्यास्ते तत्त्वदर्शिनः ।
इत्यादि कथया तस्थौ वयस्यैर्नरवाहनः ॥ ६०४ ॥
अथ मानसवेगाख्यो विद्याधरपतिः स्वयम् ।
कलिङ्गसेनातनयालाभे चक्रे मनोरथम् ॥ ६०५ ॥
ततः कलिङ्गसेनाया वचसा वत्सभूपतिः ।
यौगंधरायणसखः पुत्रोद्वाहे समुद्ययौ ।
इत्यादिकथया तस्थौ वयस्यान्नरवाहनः ॥ ६०६ ॥
ततः कलिङ्गसेनाया वचसा वत्सभूपतिः ।
यौगंधरायणसखः पुत्रोद्वाहे समुद्ययौ ॥ ६०७ ॥
शस्ते मुहूर्ते विमले प्रवृत्ते देवतागणे ।
पुष्पवर्षे सुरैर्मुक्ते विवाहोचितकङ्कणा ॥ ६०८ ॥
विवेश भूषिता देवी कन्या मदनमञ्चुका ।
निजकान्तिवितानेन भूषयन्ती विभूषणम् ॥ ६०९ ॥
वह्निप्रदक्षिणे तस्याः पत्युः पार्श्वविलोकिनी ।
ननाम दृष्टिः पर्यस्ता स्रस्तेवोत्पलमालिका ॥ ६१० ॥
सकोपोऽभूत्तदा लक्ष्मीर्ध्वतेषां लग्नसंगमे ।
कल्पविद्याभृतां यस्याः प्रभावश्चक्रवर्तिता ॥ ६११ ॥

---

१. 'ग्रहणे मरुतां राज्ञां मनसां च क ईश्वरः' ख. २. 'राजान कुटिलैर्मूलैर्बाध्यन्ते कुटिलाशया.' ख. ३. 'वेदी' ख. ४. 'मस्ते' ख.

अथ नयनविलासस्मेरवक्त्रेन्दुभासा
स्फुटमिह हि स रत्या संगतः पुष्पचापः।
बत विधिविहितोऽयं कोऽपि नेत्रोत्सवो[1] नः
क्षणमिति दिवि चेरुस्तद्विवाहे प्रवादाः॥ ६१२॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे मदनमञ्चकाविवाहो नाम सप्तमो लम्बकः।

---

## वेलानामाष्टमो लम्बकः।

### प्रथमो गुच्छः।

हेतवे सर्वसिद्धीनां कल्मषक्षयकेतवे।
भवाब्धिसेतवे[2] तुभ्यं नमोऽस्तु वृषकेतवे॥ १॥
ततः कदाचिदुद्याने विहरन्नरवाहनः।
ददर्श राजतनयावश्विनाविव रूपिणौ॥ २॥
तौ दृष्ट्वा निश्चलदृशा स्मयसंतोषनिर्भरः।
कुतो युवामित्यपृच्छन्मुखेन्दुकृतचन्द्रिकौ॥ ३॥
उवाचैकः प्रणम्याथ देव त्वां द्रष्टुमागतौ।
आवां तुरङ्गकरिणीजवाधिक्यविवादतः॥ ४॥
अस्ति वैशालिका नाम नगरी संपदां निधिः।
नन्दनो नाम नृपतिस्तस्यामासीन्महायशाः॥ ५॥
तस्य स्वस्तनयौ लक्ष्मीसंक्रान्तिमणिदर्पणौ।
अहं रुचिरदेवाख्यः पोतश्चायं ममानुजः॥ ६॥
कन्या[3] जिनेन्द्रसेनाख्या स्वसा च मम सुन्दरी।
प्रकाशितं रत्नदीपशिखयेव कुलं यया॥ ७॥
अस्ति मे करिणी भद्रा केशिनी नाम विश्रुता।
निर्मिता जवशिक्षायै मरुतामिव वेधसा॥ ८॥
पोतस्याप्यस्ति तुरगो गरुत्मानिव रंहसा।
जगत्प्रदक्षिणीकर्तुं जवो मूर्तिमिवाश्रितः॥ ९॥

---

१. 'तत्रो' ख. २. 'संसारार्णवसेतवे' ख. ३. 'काचिज्जितेन्द्रसेना' ख.

तद्वेगजातविजये पणबन्धः कृतो मिथः ।
आवाभ्यां देव तत्र त्वं प्रमाता भव सर्ववित् ॥ १० ॥
तदेह्यसरपुरीं तावद्गच्छाम इति तद्गिरा ।
ययौ मनोरथजवं रथमारुह्य तत्परम् ॥ ११ ॥
तद्राजधानीमासाद्य कान्ताभिर्नयनोत्पलैः ।
अर्च्यमानः स्मरधिया तदन्तःपुरमाविशत् ॥ १२ ॥
ताभ्यां स पूजितस्तत्र भेजे रत्नासनं कृती ।
धाम्नां निधेरिवोदारमुदयाचलशेखरम् ॥ १३ ॥
अथायातां सपर्यायै तत्वसारं ददर्श सः ।
जिनेन्द्रसेनामुन्निद्रचन्द्रबिम्बनिभाननाम् ॥ १४ ॥
मुहुर्भङ्गाङ्गनाकृष्टकेतकाग्रदलत्विषा ।
कुर्वाणां दृष्टिभङ्गेन कृष्णसारप्रभा दिशः ॥ १५ ॥
लज्जावनतपक्ष्माग्रनेत्रांशुशबलस्तनीम् ।
प्रेमभ्रमरसंभारस्तबकामिव मञ्जरीम् ॥ १६ ॥
पुरः प्राप्तां प्रणामाय रणन्नूपुरमेखलाम् ।
संचारिणीं कलरणत्कलहंसामिवाब्जिनीम् ॥ १७ ॥
तां दृष्ट्वा पद्मवदनां विस्मितो नरवाहनः ।
हर्षमन्मथकम्पानां क्षणात्परिचितोऽभवत् ॥ १८ ॥
तत्क्षणामाकुला सापि बभौ कर्णोत्पलच्युतैः ।
केसरैरिव तत्कालं संजातपुलकाङ्कुरैः ॥ १९ ॥
स्थित्वा मुहूर्तं वचसा स तयो राजपुत्रयोः ।
सज्जीकृतां तां करिणीमश्वं च द्रष्टुमभ्यगात् ॥ २० ॥
विचार्य विपुले देशे तयोर्वाताधिकं जवम् ।
बबन्ध विजयोष्णीषं करिण्याः कुम्भमण्डले ॥ २१ ॥
जिते वाजिनि दन्तिन्या पुनरन्तःपुरं ययौ ।
प्रीत्या रुचिरदेवेन सेवितो नरवाहनः ॥ २२ ॥

१. 'दृष्टिभागेन' ख. २. 'न' ख.

अत्रान्तरे वत्सराज विज्ञप्तो लेखहारकः ।
देव त्वामीहते द्रष्टुमित्याह नरवाहनम् ॥ २३ ॥
श्रुत्वा रुचिरदेवस्तदुवाच रचिताञ्जलिः ।
देवं वत्सेश्वरो वेत्तु निजधामगृहे स्थितम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्प्रस्थानाभिमुखे तथा ।
राजपुत्रे पितुर्मीत्या स्तिमितेव सभाभवत् ॥ २५ ॥
सूचितोऽथ प्रतीहार्या प्रणामानतशेखरः ।
प्रविश्य चन्द्रसाराख्यः सार्थवाहस्तमभ्यधात् ॥ २६ ॥
देव यात्राभिधे देशे बभूव धनदोपमः ।
वणिक्कुसुमसाराख्यस्तस्याहं वल्लभः सुतः ॥ २७ ॥
अहं तदाज्ञया यातः कदाचिद्द्रविणार्जने ।
सार्धं सुवचनाख्येन सुहृदा सरितां पतिः ॥ २८ ॥
तत्रोद्धतमहावातैः प्रतीपं तटमागते ।
मम प्रवहणे राज्ञा बद्धोऽहं धनवाञ्छया ॥ २९ ॥
ततो महीधराख्येन परिज्ञाय कृपाजुषा ।
वणिजा कुलमित्रेण सेवितोऽहं नृपाज्ञया ॥ ३० ॥
संमानितो मृगभिक्षुणा तत्पुरे सुचिरं स्थितः ।
फुल्लवाल्लीजाले जाते मत्तालिकोकिले ॥ ३१ ॥
वणिजः शिखराख्यस्य पुत्रीं जैत्रीं विधुद्युतेः ।
अपश्यमहमुद्याने विलासललितेक्षणाम् ॥ ३२ ॥
तां दृष्ट्वा याचितोऽभ्येत्य ततस्तज्जनको मया ।
प्राह मां स न ते चैषा दातुं मे युज्यते स्वयम् ॥ ३३ ॥
ज्ञानिना भिक्षुणा पूर्वमहमुक्तो हितैषिणा ।
देया मातामहे नेयं नानुकूला तवात्मजा ॥ ३४ ॥

---

१. 'हे' ख. २. 'वर्धना' ख. ३. 'जन्' ख. ४. 'मैत्रीमिव द्युतेः'. ख. ५. 'पुन नैवैषा' ख.

इति तेन निषिद्धोऽहं न ददामि सुतां स्वयम्।
अद्यैव प्राहिणोम्येनां मातामहगृहे सखे॥ ३५॥
अब्धिना सिंहलद्वीपं तं देशं त्वमपि व्रज।
इत्युक्त्वा विससर्जाशु पुत्रीं प्रवहणेन सः॥ ३६॥
ततो बलवता तस्याः कर्मणेव नभस्वता।
अभज्यत प्रवहणं तद्विवेद च तत्पिता॥ ३७॥
पुत्रीवियोगदुःखार्ते तस्मिन्बन्धुजनैः शनैः।
आश्वासिते तद्विरहादभवच्छोककर्शितः॥ ३८॥
ततः सह वयस्येन सिंहलद्वीपगं क्षणात्।
आरुह्याहं प्रवहणं प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्॥ ३९॥
अथ प्रवहणे भग्ने ममापि मकराकरे।
अहं च फलकासक्तः प्राप्तो वेलावनावनिम्॥ ४०॥
तत्र भ्रान्तश्चिरं प्राप्य मतङ्गाश्रमकाननम्।
कन्यां शिवार्चनरतामपश्यं तटिनीतटे॥ ४१॥
नवतामिव कामस्य यौवनस्येव हसताम्।
पूर्णतामिव चन्द्रस्य रूपस्येव विचित्रताम्॥ ४२॥
तां दृष्ट्वा विस्मयजुषा तत्प्रविश्य तपोवनम्।
दृष्टा मया मतङ्गस्य तनया वृद्धकन्यका॥ ४३॥
यमुना नाम मां प्राह भाषा चित्रसरस्वती।
दन्तांशुभिः प्रोद्गिरन्ती मूर्तं पुण्यमिवोज्ज्वलम्॥ ४४॥
भग्ने प्रवहणे पुत्र मतङ्गमुनिना स्वयम्।
प्राप्ता वणिजः पुत्री शिखराख्यस्य सुन्दरी॥ ४५॥
सुतेव पालितास्माभिः शिवार्चनरता सदा।
समुद्रवेलालब्धेयमिह वेलेति विश्रुता॥ ४६॥
इति श्रुत्वा परिज्ञाता सा मया चारुहासिनी।
दर्पवेलाम्बरारम्भविलोलतनुवल्लरी॥ ४७॥

---

१. 'तं दिशम्' ख.

ततो दिव्यदृशा ज्ञात्वा मुनिपुत्री पुनः स्मितम्।
प्राह मां पूर्वभार्येयं तव पुत्र सुलोचना ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा वितवारासौ तां मह्यं स्वसुतामिव।
[1]तामहं प्राप्य दयितामशोषं मुनिभाषितम् ॥ ४९ ॥
इयं विद्याधरी पूर्वं जलकेलिविलासिनी।
मुनिनान्तर्जलस्थेन शप्ता मर्त्यपदं गता ॥ ५० ॥
आदिष्टं चापि योगोऽस्यास्त्वया सह सुदुःसहः।
[2]उत्कस्त्वैनैव दुःखान्तो नरवाहनदर्शनम् ॥ ५१ ॥
वैशालिके पुरवरे तुरङ्गकरिर्णीजवम्।
यो [3]ब्रवीति स विज्ञेयो भाविविद्याधरेश्वरः ॥ ५२ ॥
जन्मान्तरे तवाप्यस्ति शिवार्चा पुष्पहारिणः।
किल्बिषं [4]तच्चमेवाशु दृष्ट्वा सर्वं विनङ्क्ष्यति ॥ ५३ ॥
[5]इति श्रुत्वा ततो लब्धे तां प्राप्य हरिणेक्षणाम्।
प्रस्थितः स्वपुरीं वेलातटं प्राप्तो महोदधेः ॥ ५४ ॥
तत्रारोप्य प्रियां नावं यावदस्मि समुद्यतः।
तावत्सा कर्मयोगेन हृता नौर्मे महानिलैः ॥ ५५ ॥
ततो वियोगसंतप्तः प्रलापमुखराननः।
दिवापि तिमिराक्रान्तामिव भ्रान्तोऽस्मि मेदिनीम् ॥ ५६ ॥
स च प्रवहणभ्रष्टः प्राप्तः पथि यदृच्छया।
ततो विरहदग्धेन मया सुवचनः सुहृत् ॥ ५७ ॥
स मां प्रतापिनं प्राह दृष्टास्त्वामिख्व प्रिया।
समुद्रतीरे शोचन्ती स्फुटं तु न विभाषिता ॥ ५८ ॥
इति मित्रवचः श्रुत्वा प्राप्तोऽहं भवदन्तिकम्।
त्वद्दर्शनावधिः शापो मुनिनाभिहितो यतः ॥ ५९ ॥

१. 'ततोऽहं' ख. २. 'जन्मान्तरे तवाप्यस्ति नरवाह' ख. ३. 'द्रक्ष्यति स' ख. ४. 'तथ्यम्' इति भवेत्. ५. 'इत्यहं तद्वचः श्रुत्वा तां प्राप्य' ख.

अधुना क्षीणशापोऽहं द्रष्टुमिच्छामि तां प्रियाम्।
उक्त्वेति सार्थपः प्रायात्प्रणम्य नरवाहनम्॥ ६०॥

इति चन्द्रसाराख्यायिका॥ १॥

चन्द्रसारे प्रयातेऽथ संगते च मृगीदृशा।
वत्सेश्वरात्मजो हृष्टस्तत्कथाविस्मयाकुलः॥ ६१॥
दत्तां रुचिरदेवेन राजपुत्रीमवासवान्।
विद्याधराधिराज्याय पुरः सिद्धिमिवागताम्॥ ६२॥
जिनेन्द्रसेनां संप्राप्य कन्यापरिणयोत्सवे।
तामेवारुह्य करिणीं प्रययौ नरवाहनः॥ ६३॥
व्रजन्सर्वात्मना प्राप्य मगधाधिपतेः पुरीम्।
तेन संपूजितः प्रायात्कौशाम्बीं वल्लभासखः॥ ६४॥
तत्र प्रणम्य वत्सेशं दृष्ट्वा मदनमञ्चुकाम्।
ईर्षाकोपकषायाक्षीं प्रणामानतशेखरः॥ ६५॥
रहः प्रसादयामास विलासहसितावधिम्।
हृष्टकण्ठग्रहानन्दमुकुलीकृतलोचनाम्॥ ६६॥
तां सेवमानो लावण्यनदीं मदनमञ्चुकाम्।
नरवाहनदत्तोऽभूदभिषिक्त इवामृतैः॥ ६७॥
ततः कदाचित्प्रत्यूषे फुल्ले कमलकानने।
संध्यारागारुणे व्योम्नि तत्प्रभाभिरिवावृते॥ ६८॥
प्रभातवातनिःश्वासान्गाढं रक्तेऽशुमालिनि।
उदयाद्रिमिवारूढे वियुक्तां द्रष्टुमब्जिनीम्॥ ६९॥
शुश्राव राजतनयस्तारमन्तःपुरान्तिके।
अकाण्डे करुणारावं कीर्णशोकसशङ्कितः॥ ७०॥
किमेतदिति पृष्टोऽथ वयस्येन गोमुखः।
चिरादकथयद्भूमिं विलिखन्सासवीक्षितैः॥ ७१॥

१. 'शान्ता' ग. २. 'तः' ग.

हृता सा केन मूतेन देवी मदनमञ्चुका ।
अदृष्टमूर्तिना रत्नपर्यङ्कोत्सङ्गशायिनी ॥ ७२ ॥
श्रुत्वेति सुहृदो वाक्यं बभूव नरवाहनः ।
अवारितमहाशोकपूर्णनिःस्पन्दलोचनः ॥ ७३ ॥
स कोपशोकसंरुद्धो निष्प्रतीकारविक्रियः ।
हा प्रिये प्रेमसुभगे वचो देहीत्यभाषत ॥ ७४ ॥
अन्तःपुरे मदनमञ्चुकया वियुक्तो
लीलाशुकेषु न ददौ स दृशं सबाष्पाम् ।
ये तत्प्रसादनकला प्रणये बभूवु-
र्नर्मोक्तिभिर्विहितविभ्रमकेलिकाराः ॥ ७५ ॥
इति जिनेन्द्रसेनासमागमो मदनमञ्चुकापहारश्च ॥ २ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिते बृहत्कथासारे वेलानामाष्टमो लम्बकः ।

---

शशाङ्कवतीनामा नवमो लम्बकः ।

प्रथमो गुच्छः ।

सुवर्णगिरिकर्णिके तरलतारकाकेसरे
चलज्जलदषट्पदे स्फुटदिगन्तपत्रास्तृते ।
स वः प्रमथनायकः प्रदिशतु श्रियं यत्करः
करोति जगदम्बुजे चलितताललीलायितम् ॥ १ ॥
ततो विरहसंततः स्मरन्मदनमञ्चुकाम् ।
कान्तिमात्रावशेषोऽभून्निःसहो नरवाहनः ॥ २ ॥
स चन्द्रकान्तपर्यङ्के निषण्णः सखिभिर्निशि ।
प्रदध्यौ तप्तनिःश्वासैर्म्लापयन्मणिदीपकान् ॥ ३ ॥
कथंचिद्दैतनिद्रार्धमीलिताक्षं स्मरातुरा ।
तं जहार सपर्यङ्कं कापि विद्याधराङ्गना ॥ ४ ॥

---

१. 'केनापि' ख. २. 'ण्णो निशि निरसुख.' ३. 'दथ' ख.

ह्रियमाणस्तया स्वप्ने दृष्ट्वा तामेव सुन्दरीम् ।
प्रबुद्धस्तन्मुखाम्भोजे ददौ दृशमलक्षिताम् ॥ ५ ॥
स ददर्श विशालाक्षीं तामानन्दसुधानदीम् ।
कान्तिकल्लोलपटलैः क्षालयन्तीमिवाखिलम् ॥ ६ ॥
निःश्वाससौरभाकृष्टव्योमगङ्गाब्जषट्पदैः ।
वैद्धवेदीमिवाविद्धगतिव्यालोलवेणिकाम् ॥ ७ ॥
वीक्ष्यमाणां विचलितग्रीवं खेचरशङ्कया ।
मुहुस्त्रिकपरावृत्तिनिमज्जत्त्रिवलीलताम् ॥ ८ ॥
वेगोद्धतिविलोलेन तारहारेण भूषिताम् ।
क्षुभ्यत्क्षीराब्धिकल्लोलमीलितां कमलामिव ॥ ९ ॥
विलोक्य तां सरस्येव नगरीं व्योमचारिणीम् ।
सोऽभवन्निःसृतश्वासः क्षणं कृतकनिद्रया ॥ १० ॥
सा तमादाय नैभसा गत्वा मलयपैर्वतम् ।
अवतीर्योच्चशिखरे प्रहृष्टा निर्वृतिं ययौ ॥ ११ ॥
तत्र लैङ्कानिलालोलबालचन्दनपल्लवे ।
तस्थौ पर्यङ्कमारुह्य तदालिङ्गनलालसा ॥ १२ ॥
नवस्मररसावेशस्वेदधौतविशेषका ।
लज्जां भेजे मुहूर्तं सा कम्पमानघनस्तनी ॥ १३ ॥
बालामदृष्टसंभोगां मत्वा तां नरवाहनः ।
धूर्तो युक्तिमुपाश्रित्य प्राह निद्राकुलाक्षरम् ॥ १४ ॥
अयि कासि कुरङ्गाक्षि प्रिये मदनमञ्चुके ।
इति नाम समाकर्ण्य तदाकारं चकार सा ॥ १५ ॥
सविषया निर्विमेषं भूत्वा मदनमञ्चुका ।
गाढालिङ्गनसंनद्धा तस्थौ कुचपुरःसरा ॥ १६ ॥

---

१. 'वधरेण' ख. २. 'सहसा' ख. ३. 'भूधरम्' ख. ४. 'लङ्कानिलोल्लोलदले पल्लवपल्लवे' ख.

ततः सितस्मेरमुखः सानन्दं नरवाहनः ।
करकृष्टालकं तस्याश्चुचुम्ब वदनाम्बुजम् ॥ १७ ॥
हृते बलान्नीविबन्धे तस्यास्तेन विलासिना ।
चकम्पे चूतवल्लीव स्तनस्तबकिनीतनुः ॥ १८ ॥
हृतांशुकं यद्यदङ्गं स ददर्श मृगीदृशः ।
दृष्टयस्तत्र तत्रास्य न चेलुः कीलिता इव ॥ १९ ॥
ततस्तां गाढमालिङ्ग्य स प्राह मधुरस्मितम् ।
अहो रूपान्तराधाने वैदग्ध्यं तव सुन्दरि ॥ २० ॥
इति प्रियस्य वचनं श्रुत्वात्यन्तविलासिनी ।
सहसा निजमास्थाय रूपं भेजे रतोत्सवम् ॥ २१ ॥
ततः प्रियेण सा पृष्टा बभाषे दशनांशुभिः ।
ग्रश्नतीव गुणैर्हारं रतिनर्मविसूत्रितम् ॥ २२ ॥
हृदये मौक्तिकलता सुधासारे मनोरथे ।
कर्णे कर्पूरपूरश्च त्वद्यशः सुहृदां विभो ॥ २३ ॥
अहं त्वद्यशसाहृता तव प्रणयिनीपदम् ।
प्राप्ता गिरिसुतां मन्ये स्वसौभाग्यतिरस्कृताम् ॥ २४ ॥
इति विद्याधरीवाक्यं निशम्य नरवाहनः ।
प्रभाते तत्कथाकेलिर्हृष्टस्तामित्यभाषत ॥ २५ ॥
ब्रह्मसिद्धिरिति ख्यातो मुनिरासीन्महातपाः ।
तस्थौ तदाश्रमोपान्तगुहायां वृद्धजम्बुकी ॥ २६ ॥
दुर्दिनाभिहते काले कदाचित्सा क्षुधार्दिता ।
कथंचिदिव बभ्राम प्रस्खलद्गतिविक्लवा ॥ २७ ॥
ततः समाययौ गर्जन्मत्तालिवलयो गजः ।
सरत्करेणुकां यूथभ्रष्टां मलिनलोचनः ॥ २८ ॥

---

१. 'पतिरोधाने' ख. २. 'लज्जिता' ख. ३. 'मर्दनैः' ख. ४. 'प्रहृष्टस्तामभाषत' ख. ५. 'गुञ्जन्' ख. ६. 'मीलितलोचनः' ख.

तद्भयाद्विद्रुता साथ जम्बुकी शरणं मुनिम्।
ययौ तद्ध्यानयोगाच्च बभूव करिणी क्षणात् ॥ २९ ॥
स तया जातसंप्रीतिर्विजहार वने गजः।
उद्दण्डपुण्डरीकेषु काननेषु मदालसः ॥ ३० ॥
ततः प्रियार्थे पद्मार्थं सरःपङ्के ममज्ज सः।
तस्मिन्निमग्ने सा भेजे द्वितीयं गजयूथपम् ॥ ३१ ॥
तं पूर्वकरिणी दृष्ट्वा निमग्नं मर्तुमुद्ययौ।
मद्रजातिः कुलीनैर्हि प्रीतिः पर्यन्तनिश्चला ॥ ३२ ॥
करुणाब्धेर्मुनीन्द्रस्य स गजेन्द्रोऽप्यनुग्रहात्।
उन्मज्ज्य कृच्छ्रात्तत्याज सदाचार इवापदम् ॥ ३३ ॥
त्वद्विधाभिरिति प्रीतिरवसानेऽप्यनश्वरी।
जम्बुकी सा प्रयाता तु न स्थिरा खलसंगतिः ॥ ३४ ॥

इति कुञ्जराख्यायिका ॥ १ ॥

इति प्रियस्य वचनं श्रुत्वा विद्याधरात्मजा।
उवाच कान्यकुब्जेति रम्यास्ति नगरी विभो ॥ ३५ ॥
वामदत्ताभिधानोऽभूत्तस्यां यज्वा द्विजोत्तमः।
कदाचिद्ब्राह्मणः कश्चित्तद्गृहं मोक्तुमाविशत् ॥ ३६ ॥
उपविष्टस्ततस्तस्मिन्सज्जभोजनमण्डपे।
उत्थाय तूर्णं निर्गत्य वामदत्तोऽभ्ययात्पुनः ॥ ३७ ॥
भोजनान्तेऽर्थिना पृष्टः स निर्गमनकारणम्।
वामदत्तोऽवदत्स्वैरं श्रूयतां कौतुकं द्विज ॥ ३८ ॥
शशिप्रभेति भार्या मे बभूव सुमुखी पुरा।
तस्यास्तद्गृहभारोऽहं राजसेवापरोऽभवम् ॥ ३९ ॥
ततः कदाचिन्मामाह पितृव्यः साश्रुलोचनः।
वामदत्त निरोगात्ते भार्या गोपान्तरागिणी ॥ ४० ॥

१. 'कन्याकुब्जे' ग. २.-३. 'दत्त' ग. ४. 'प्रियेयं ते' ख.

इति तद्वचसा शङ्काकुलितोऽहमलक्षितः ।
स्थितः प्राकारमुल्लङ्घ्य फुल्लवल्लीनिकुञ्जके ॥ ४१ ॥
ततो महिषपालेन संगतां निजवल्लभाम् ।
अपश्यं प्रेमविश्वासकेलिलीलानिरर्गलाम् ॥ ४२ ॥
ततोऽहं भृशसंक्रुद्धो निहन्तुं पारदारिकम् ।
समुद्यतस्तया दृष्टो पार्श्वनिष्क्रान्त्या पुनः ॥ ४३ ॥
सा दृष्ट्वा मूर्ध्नि चिक्षेप धूलिमुस्तजलेन मे ।
किल्बिषापह्नवक्रौर्यधीरा नार्यो हि दुर्जयाः ॥ ४४ ॥
ततो महिषतां यातः सहसाहं महाकृतिः ।
कोपान्महिषपालेन तद्गिरा तेन ताडितः ॥ ४५ ॥
बद्धं महिषशालायां ततः कालेन मां वणिक् ।
कश्चिन्निनाय मूल्येन दूरमारातिवाहिकम् ॥ ४६ ॥
कदाचिदथ दूराध्वनिःसहं शुल्कविग्रहम् ।
कन्यकानुगतापश्यत्कापि मातुचनाङ्गना ॥ ४७ ॥
सा दिव्यदृष्टिः कारुण्यात्स्नातुं गङ्गाजलेन माम् ।
अनलस्येव महिषाकारं बन्धादमोचयत् ॥ ४८ ॥
ततः प्राप्तस्वरूपाय सा मह्यं तनयां ददौ ।
कान्तां कान्तिमतीं नाम सिद्धिं मूर्तिमतीमिव ॥ ४९ ॥
अथ स्वगृहमागत्य तद्दत्तैः सिद्धसर्षपैः ।
सा कुमार्या मया दूराद्दाहृता वडवाभवत् ॥ ५० ॥
सेयं स्थिता मन्दुरायां सततं लगुडैर्मया ।
ताड्यते पञ्चभिर्नित्यं तदर्थं चास्मि निर्गतः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वेति विस्मिते याते तस्मिन्नभ्यागते द्विजे ।
जननी योगसंसिद्धा कान्तिमत्याः समाययौ ॥ ५२ ॥
तच्छिक्षया वामदत्तः कौलसंकर्षणोऽसिनः ।

१. 'ष्टि वलेन' ख. २. 'लभावलोकन' ख. ३. 'च स्वां तन' ख. ४. 'द्वौ' ख.
५. 'काले संकर्षणी स्थितः' ख.

चिद्यां श्रीपर्वते ध्यात्वा खड्गविद्याधरोऽभवत् ॥ ५३ ॥
कान्तिमत्यामहं तस्य नाम्ना ललितलोचना ।
जाता विद्याधरेन्द्रस्य मलयाचलवासिनः ॥ ५४ ॥
साहं गौरीवराद्दिष्टा तव भार्या कुलोचिता ।
नास्म्ययोगकुलोत्पन्ना येनैतत्कथितं त्वया ॥ ५५ ॥
इति कान्तावचः श्रुत्वा विश्रब्धं नरवाहनः ।
विजहार तया बालश्रीखण्डतरुमण्डले ॥ ५६ ॥
तत्र लीलारतश्रान्तभुजङ्गमिथुनस्पृशः ।
चन्दनामोदसुभगा मरुतस्तं सिषेविरे ॥ ५७ ॥
पुन्नागचम्पकाशोकचूतकिंशुककेसरैः ।
मालतीषु रतिं लेभे तटेषु दयितासखः ॥ ५८ ॥

इति ललितलोचनालापकथा ॥ २ ॥

ततः पुष्पोच्चयक्रीडाव्यग्रां ललितलोचनाम् ।
दृष्ट्वा दिव्यसरः स्नातुं प्रययौ नरवाहनः ॥ ५९ ॥
कमलाकेलिसदने प्रफुल्लकमलाकरे ।
स्नात्वार्चयित्वा श्रीकण्ठमुपकण्ठं व्यलोकयत् ॥ ६० ॥
ततः ससार सहसा प्रियां मदनमञ्जुकाम् ।
रमणीयेषु यत्सत्यं सर्यते दयितो जनः ॥ ६१ ॥
वदनं शतपत्रेषु दृशं नीलोत्पलेषु च ।
वीचिषु भ्रूविलासं च स शुशोच मृगीदृशः ॥ ६२ ॥
कलहंसकुलक्वाणकमनीयां सरःश्रियम् ।
पश्यन्मदध्यौ दयितां लीलामुखरमेखलाम् ॥ ६३ ॥
मत्तालिमालावलयव्यालोलनलिनीतटे ।
स्मृत्वा केलिरतालोलालकां तां च मुमोह सः ॥ ६४ ॥
पिशङ्गजटनामाथ तमेत्य मुनिसत्तमः ।
मन्मथचन्दनरसैः सिषेच करुणानिधिः ॥ ६५ ॥

---

१. 'पंकोत्पल' ख. २. 'गै' ख. ३. 'दृष्टेषु' ख. ४. 'कार्यो कान्तां मुग्धो' ख.

लब्धसंज्ञः स विलपन्प्रियां मदनमञ्चुकाम् ।
महामुनिं पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम ह्रिया नतः ॥ ६६ ॥
तं पिशङ्गजटः प्राह धैर्याब्धे मा शुचः प्रियाम् ।
भवन्ति महतामेव दुःसहा दैवविक्रियाः ॥ ६७ ॥
उक्त्वेति तं निनायाशु स मुनिर्निजमाश्रमम् ।
मुनिकन्याकराकीर्णनीवारहरिणाकुलम् ॥ ६८ ॥
तत्रार्द्रचन्दनरसैरुपलिप्तो जटाङ्गणे ।
नरवाहनमासीनं मुनिमध्येऽभ्यधान्मुनिः ॥ ६९ ॥
नरवाहन सहस्वैतं दुःसहं विरहानलम् ।
अचिरात्प्राप्स्यसि मनःसुधां मदनमञ्चुकाम् ॥ ७० ॥
श्रूयतां राजपुत्रेण यथाप्ता वल्लभा पुरा ।
राजन्मृगाङ्कदत्तेन निस्तीर्य विरहोदधिम् ॥ ७१ ॥
अयोध्येत्यस्ति नगरी स्फाटिकैर्या महागृहैः ।
कैलासवासरसिकं हसतीव महेश्वरम् ॥ ७२ ॥
तस्याममरदत्ताख्यो बभूव वसुधाधिपः ।
यत्कीर्तिकौमुदी चित्रा लोकाम्बुजविकासिनी ॥ ७३ ॥
मृगाङ्कदत्तस्तस्यासीत्तनयः कान्तिभूषणः ।
यशःसरसि विस्फारं मृगाङ्क इव बिम्बितः ॥ ७४ ॥
शरीरतुल्यास्तस्यासन्विक्रान्ताः सचिवा दश ।
स्वच्छासु दिक्षु दशसु प्रथिता इव मूर्तयः ॥ ७५ ॥
स्थूलबाहुर्मेघबलस्तथा विक्रमकेसरी ।
व्याघ्रसेनो विमलधीर्दृढमुष्टिर्गुणाकरः ॥ ७६ ॥
चण्डशक्तिश्चित्रकथस्तथा भीमपराक्रमः ।
इति कर्मेरिताभिख्या बभूवुस्तस्य ते प्रियाः ॥ ७७ ॥
ईश्वरो भूतसुभगैः स तैर्दशभिरावभौ ।
एकादशात्मा संप्राप्तो रुद्रसाम्यदशामिव ॥ ७८ ॥

---

१. 'दैः स मूर्तिमानिव' ख.

ततः कदाचित्तं प्राह स्वैरं भीमपराक्रमः।
देव स्वप्ने मया दृष्टः श्रूयतां कौतुकं महत्॥ ७९॥
तमोभिरञ्जनशिलापुञ्जैरिव पुरस्कृतम्।
अपश्यं मत्तमातङ्गकपोलमलिनं जगत्॥ ८०॥
ततः शुभ्रनखश्रेणीविसूत्रिततमःपटः।
ज्वालाविलोलजिह्वाग्रो मृगेन्द्रोऽभिससार तम्॥ ८१॥
स मया कृष्टशस्त्रेण समाहूतो ययौ जवात्।
सरितः पारमुत्तालल्लाङ्गूलकपिकेसरः॥ ८२॥
अपरां निर्गतस्तस्य जिह्वां छित्त्वाहमागतः।
तथैवोत्तीर्य तटिनीं तदन्तिकमुपागतः॥ ८३॥
ततो वेतालतां यातं तमपृच्छं कुतूहलात्।
भार्या मृगाङ्कदत्तस्य का भवित्रीत्यलुसधीः॥ ८४॥
स प्राहास्ति सुरावासजयिन्युज्जयिनी पुरी।
तस्यां कन्दर्पसेनोऽस्ति राजा कन्दर्पदर्पजित्॥ ८५॥
उत्पन्ना च कलावत्यां कन्यास्ति कमलेक्षणा।
पुत्री शशाङ्कवत्याख्या प्रत्याख्यात्री शशिश्रियः॥ ८६॥
सुन्दरी सुरभिश्वासा सुधार्द्रसुभगस्वरा।
सुकुमारतरा यस्यास्तनुः सर्वेन्द्रियोत्सवा॥ ८७॥
विलासहासकुसुमा कटाक्षोद्भ्रान्तषट्पदा।
यौवनोपवने यस्याः फुल्ला विभ्रममञ्जरी॥ ८८॥
हाररत्नकरस्मेरत्रिवली मुष्टिमुद्रिता।
भाति रोमावली यस्याः कामदृष्टासिवल्लरी॥ ८९॥
हरप्रसादादहिता वल्लभासौ भविष्यति।
राज्ञो मृगाङ्कदत्तस्य निगद्येति तिरोदधे॥ ९०॥
श्रुत्वेति राजतनयः सुहृदः स्मरकौतुकम्।
कृत्वा विदितवृत्तान्तानुवाच सचिवान्पुनः॥ ९१॥

१. 'माम्' ख. २. 'हन्' ख. ३. 'तस्यामि' ख. ४. 'सेवासिवल्लरी' ख.

आश्चर्यं दृष्टवान्स्तेमे वत मीनपराक्रमः ।
मयाप्यत्रैव यद्दृष्टं सम्रं तच्च निशम्यताम् ॥ ९२ ॥
युष्माभिः सहितो गन्तुं प्रस्थितो विकटाटवीम् ।
अहं तृषापरिश्रान्तः प्राप्तः शीतजलां नदीम् ॥ ९३ ॥
वयं निषिद्धाः स्नानाग्रहस्तैस्तत्र ततो नरैः ।
यावत्क्रोधाकुलास्तावन्नदी सादृश्यतां ययौ ॥ ९४ ॥
ततस्तृष्णाभितप्तेन मया दृष्टः स्वयं शिवः ।
तत्र नेत्रात्रिनेत्रस्य पेतुरश्रुकणाः क्षितौ ॥ ९५ ॥
समुद्गतां स संप्राप्तः पीतः शर्वाज्ञया मया ।
रक्ताक्तेन कपालेन तन्मध्यान्मौक्तिकावली ॥ ९६ ॥
मया लब्धा प्रदर्शिता साथ कण्ठे निवेशिता ।
निशम्य राजपुत्रेण तत्सममिति वर्णितम् ॥ ९७ ॥
प्रशशंसुः प्रियावाप्तिं जयं चास्योत्तमं पुरः ।
नूतनाङ्कुरितोत्कण्ठः पुनः प्राह नृपात्मजः ॥ ९८ ॥
राजा कन्दर्पसेनोऽसौ सत्त्वसाध्यो महाबलः ।
याचितोऽपि न कन्यां स प्रयच्छति रणोत्कटः ॥ ९९ ॥
दुर्गाश्रयो महाकोशो रक्तामात्यो महामतिः ।
तस्मादुपायविच्छेदे धिया कार्यं विचिन्त्यताम् ।
सतां हि वस्तुसंदेहे बुद्धिरभ्युदयश्रिये ॥ १०० ॥
मगधाधिपतिः पूर्वं भद्रबाहुर्वराकृतिः ।
धर्मगोपस्य नृपतेः सुतां श्लाघ्यमयाचत ॥ १०१ ॥
अनङ्गलीलां न ददौ स तां वाराणसीपतिः ।
तस्मै दिग्गजतुल्येन गजराजेन गर्वितः ॥ १०२ ॥
भद्रबाहोर्महामात्यो मन्त्रगुप्ताभिधस्ततः ।

१. 'क्रान्तः' ख. २. 'गता' ख. ३. 'पतितोऽश्रुकणः' ख. ४. 'यै' ख.

युक्त्या वाराणसीं गत्वा सह शिष्यैरभूद्व्रती ॥ १०३ ॥
तत्र प्रसिद्धिमायातः सिद्धान्ताख्यानकोविदः ।
भ्रमन्निशि ददर्शार्थे स्त्रियं द्वित्रिनरानुगाम् ॥ १०४ ॥
साब्रवीचान्विमुञ्चन्तु मां भवन्तो मुहूर्तकम् ।
कुञ्जरेन्द्रं भोजयित्वा तूर्णमायाति मे पतिः ॥ १०५ ॥
इत्याकर्ण्य महामात्यो ज्ञात्वा तां गजपालिकाम् ।
व्रजन्तीं तां समादाय तेषां गृहमवैक्षत ॥ १०६ ॥
ततः प्रभाते दयितारहितो हस्तिपालकः ।
शोकाद्भुक्तविषो दृष्टस्तच्छिष्यैर्बान्धवाकुलः ॥ १०७ ॥
तस्य मित्रैरैन्वितास्ते हर्तुं विषविषूचिकाम् ।
तं गुरोर्व्रतिवेषस्य मन्त्रिणो निन्युरन्तिकम् ॥ १०८ ॥
स तं वीतविषं कृत्वा प्राह तं लप्स्यसे वधूम् ।
मद्वरादिति संभाष्य तस्मै चौरानदर्शयत् ॥ १०९ ॥
ततो हस्तिपकः शूरो हत्वा तान्प्राप्य तां प्रियाम् ।
प्रणम्य प्राह भोक्तुं मे गृहमर्हति मन्त्रिणम् ॥ ११० ॥
सोऽवदत्पुत्र नास्माकमुचितो गृहसंगमः ।
श्रुत्वेति हस्तिपः प्राह हस्तिशालामुपैहि मे ॥ १११ ॥
इति तेनार्थितो मन्त्री सशिष्यो नक्तभोजनः ।
प्रमुकार्यार्थमविशद्व्रतिवेषो गजालयम् ॥ ११२ ॥
कृष्णसर्पं समाधाय सुषिरे वेणुनालिके ।
तत्र शुक्तोत्तरं कर्णे विदधे तस्य दन्तिनः ॥ ११३ ॥
प्रसुप्ते मधुसंमत्ते गजपालकमण्डले ।
स गजः कृष्णसर्पस्य फूत्कारैर्विवशोऽपतत् ॥ ११४ ॥
ततः प्रभाते स ययौ मागधस्यान्तिकं प्रभोः ।
तापसव्यञ्जनो मन्त्री पूजां भेजे च भूभुजः ॥ ११५ ॥

---

१. 'रात्रौ' ख. २. 'तां समादाय यान्तीं तेषां गृहमवैक्षत' ख. ३. 'दयिता' ख. ४. 'महेति' ख. ५. 'गृहे तस्मिन् ययौ धीमान् मागधस्यान्ति' ख.

ययाचे सोऽथ दूतेन भद्रबाहुं नृपात्मजम् ।
गजं सर्पहृतं ज्ञात्वा राजा भीतश्च तां ददौ ॥ ११६ ॥
इत्येवं धीमतां बुद्ध्या भवन्त्यखिलसिद्धयः ।
पशूनामिव मूर्खाणां धीहीनं नु बलं वृथा ॥ ११७ ॥

इति भद्रगुप्ताख्यायिका ॥ ३ ॥

राजसूनोरिति वचः श्रुत्वा चित्रकथोऽब्रवीत् ।
अस्ति तक्षशिला नाम नगरी संपदां पदम् ॥ ११८ ॥
तस्यां चन्द्राक्षनामाभून्नृपतिर्धर्मभूषणः ।
मतिक्षीणः क्षमेवासीत्प्रिया तस्याचलप्रभा ॥ ११९ ॥
पुत्रकामः स नृपतिः शतपत्रशताष्टकम् ।
नित्यं ध्यात्वा श्रियं देवीं जुहावाग्नौ यतव्रतः ॥ १२० ॥
ततः कदाचिदेकोने प्राप्ते पद्मशताष्टके ।
अत्यन्तशूरो हृत्पद्मं विदार्य प्रददौ निजम् ॥ १२१ ॥
अथ श्रीस्तस्य वरदा खड्गधारानिवासिनी ।
तुष्टा दिदेश तनयं शेखरं सर्वभूभुजाम् ॥ १२२ ॥
स पुष्कराक्षनामाभूच्छ्रीवराचृपतेः सुतः ।
धृतः पित्रा निजपदे लक्ष्मीसंक्रान्तिदर्पणः ॥ १२३ ॥
स कदाचिन्मृगव्यायामुष्ट्रेण प्राप्तमन्तिकात् ।
ददर्श भोगिमिथुनं मीनं कारुण्यवादथीः ॥ १२४ ॥
उष्ट्रं जघान बाणेन स भुजङ्गभयप्रदम् ।
उष्ट्ररूपं परित्यज्य स च व्योमचरोऽभवत् ॥ १२५ ॥
सोऽब्रवीत्त्वत्प्रसादेन शापान्मुक्तः करोम्यहम् ।
प्रियं तवोपकारस्य पुष्कराक्ष यथोचितम् ॥ १२६ ॥
आसीत्तारावली नाम दयिता रत्नमालिनः ।
विद्याधरी खेचरस्य रोहिणीवामृतत्विषः ॥ १२७ ॥
स्वयंवरप्रिया पित्रा शप्ता साथ वियोगिनी ।
चचार चान्द्रहरिणी यूथहीनेव कानने ॥ १२८ ॥

१. 'मिन्द्र' ख. २. 'मनीषिणः' ख. ३. 'मौनो' ख. ४. 'कातरा' ख.

प्रियेण रहिता साथ ययौ सुरभिकाननम्।
विधाय भ्रमरीरूपं विलपन्तीव गुञ्जितैः ॥ १२९ ॥
तस्या दयितसंकल्पाद्बीजं जम्बूतरोः स्वयम्।
प्रस्कन्नं कुसुमे तेन तत्कुले कन्यकाभवत् ॥ १३० ॥
कालेन तत्फलाहारी विजितासुर्महामुनिः।
तां प्राप्य करुणासिन्धुः पुपोष तनयां शिवः ॥ १३१ ॥
ततो विनयवत्याख्या सा प्राप्तनवयौवना।
मुनेस्तस्याश्रमे दृष्टा मया ललितलोचना ॥ १३२ ॥
तां हर्तुमुद्यतं यैत्नान्मां शशाप मुनीश्वरः।
रूपमद्यो विरूपां त्वमुष्ट्रतामेष्यसीति सः ॥ १३३ ॥
निहतः पुष्कराक्षेण राज्ञा स्वां तनुमेष्यसि।
भर्ता विनयवत्याश्च स एव भविता नृपः ॥ १३४ ॥
इत्येवं मुनिना शप्तो मोचितोऽद्य त्वया विभो।
स्वस्त्यस्तु ते व्रजामीति स निगद्य दिवं ययौ ॥ १३५ ॥
स्वपुरीं पुष्कराक्षोऽथ प्रविश्य स्मरतापितः।
सचिवार्पितभूभारो ययौ प्राप्तुं मुनेः सुताम् ॥ १३६ ॥
गौरीवरात्समुत्तीर्य सोऽब्धिं सिद्धतपोवने।
विजितासुं मुनिं प्राप्य प्रणनाम स चाब्रवीत् ॥ १३७ ॥
तवैव पूर्वदयिता कन्या विनयवत्यसौ।
गृहाणेमां मया दत्तां वैजयन्तीं मनोभुवः ॥ १३८ ॥
ताम्रलिप्तां वणिक्पूर्वं धर्मसेनो वधूसखः।
चौरप्रहाररुग्णाङ्गो दीर्घरोगोऽग्निमाविशत् ॥ १३९ ॥
स हंसमिथुनं व्योम्नि दृष्ट्वा तन्न्यस्तलोचनः।
सभार्यः पञ्चतां प्राप्य भयातो राजहंसताम् ॥ १४० ॥

---

१. 'दीर्घं' ख. २. 'च' ख. ३. 'दर्शां' ख. ४. 'लहं' ख. ५. 'एवमुक्त्वा पुष्करोऽथ यावो गगनं ययौ' ख. ६. 'बन्धम्' ख.

पर्यन्तवृत्तिसंपत्त्या वियोगे देहजीवयोः ।
मनो निविशते यत्र तूर्णं याति तदात्मताम् ॥ १४१ ॥
स राजहंसः प्रेयसा सह फुल्लाब्जशोभिषु ।
सरोवरेषु लहरीकेलीदोलायितोऽभवत् ॥ १४२ ॥
कनकाम्बुजजालेषु लीलाकण्डूयनेन सः ।
विलास विलासिन्या क्षणं कुटिलकन्धरः ॥ १४३ ॥
मेघवातवियोगैश्च पुनर्दैवाच्च संगमैः ।
तयोर्दीर्घतरः कालो विषामृतमयो ययौ ॥ १४४ ॥
कदाचिज्जालबद्धं सा तं प्रियं वीक्ष्य सारसी ।
जहार राजपुत्रस्य कस्यचिन्मणिसूत्रिकाम् ॥ १४५ ॥
तदाशया परित्यज्य जालं यातेऽथ लुब्धके ।
(सुप्तं तरुतले दृष्ट्वा मर्कटं साथ चिन्तयत् ॥ १४६ ॥
भर्तुर्विमुक्त्युपायोऽयं प्राप्तो दिष्ट्या मयेत्यथः ) ।
दूरे रत्नावलीं त्यक्त्वा सा तुण्डेनादशत्कपिम् ॥ १४७ ॥
स मुसलाडितो नेत्रे जालं सपदि मर्कटः ।
चिच्छेद तारचीत्कारो वह्निदग्ध इवोत्पलम् ॥ १४८ ॥
छिन्नपाशे महाजाले सा हंसी प्रियसंगता ।
पद्माकरं जगामान्यं धिया वञ्चितलुब्धका ॥ १४९ ॥
लुब्धकोऽप्यथ तां प्राप्य रत्नमालां समागतः ।
दृष्टो राजसुतेनाराच्छङ्कितो विस्खलत्पदः ॥ १५० ॥
परिज्ञाय निजां रत्नसूत्रिकां राजसूनुना ।
निगृहीतो न वा कस्य लोभात्प्रार्तं विनश्यति ॥ १५१ ॥
कदाचिदथ हंसोऽसौ कमलं प्रियया सह ।
समादाय गतो व्योम्ना निषादेनेपुणा हतः ॥ १५२ ॥

१. 'न्यासाद्' ख. २. 'र' ख. ३. 'नाल्पेन' ख. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितो भवेत्. ५. 'निगृ' ख.

पद्मं तद्वदनभ्रष्टं गङ्गातीरे महामुनिः ।
कुण्डादस्यार्चने शंभुलिङ्गे छत्रमिवापतत् ॥ १५३ ॥
स च हंसो निपादेन भुक्तो हंसी च शूलिने ।
नैवेद्यं मुनिनानेन कल्पिता कर्मशक्तितः ॥ १५४ ॥
हंसस्त्वं भूपतिर्जातो पद्मपाताच्छिवार्चने ।
विद्याधरी च कन्येयं जाता शर्वनिवेदनात् ॥ १५५ ॥
इत्येवं पूर्वभावेन कन्या विनयवत्यसौ ।
पर्यायभावसदृशी प्राणिनां सततं गतिः ॥ १५६ ॥
नगर्यामेकलव्यायामेर्णकर्णाभिधो मुनिः ।
स्वयंभूशंभुनिलये तस्थौ जपपरायणः ॥ १५७ ॥
देवदासी ततोऽभ्येत्य मदलीलाविलासिनी ।
चक्रे रूपवती नाम शंभोर्विजयवीजनम् ॥ १५८ ॥
चामरानिलविर्त्रस्तो दह्यमानः क्रुधा मुनिः ।
सोऽभवद्भ्रुकुटीभीमस्ततस्तं प्राह नर्तकी ॥ १५९ ॥
भजस्व जपमेकाग्रो मुनीनां विक्रमागमः ।
शुभाशुभध्यानधिया भवत्येव भवभ्रमः ॥ १६० ॥
क्रोधधूमेन धवलं मा मनो ग्लानतां नय ।
जपयज्ञे स्थितो ह्यस्मिंस्तच्चित्तस्तन्मना भव ॥ १६१ ॥
तथा ह्यहं वणिक्पुत्री मुने जन्मान्तरे पुरा ।
(अकरं ब्रह्मचर्याय प्रतिज्ञां कन्यका सती) ॥ १६२ ॥
ततः कदाचित्सौधस्था नवयौवनशालिनी ।
कमलाकरनामानमपश्यं तरुणं द्विजम् ॥ १६३ ॥
तदेकाग्रा मनोजन्मशरश्रेणीवशीकृता ।
नात्यजं ब्रह्मचर्यैकसंकल्पं दृढनिश्चया ॥ १६४ ॥

१. 'नै.' ख. २. 'यांते' ख. ३. 'पर्यन्तभाव' ख. ४. 'टकर्णाभिधो' ख. ५. 'वामनो' ग. ६. 'भ्रवद्धभमालः क्षुधा' ख. ७. 'गतिभ्र' ख. ८. 'यो' ख. ९. एतश्लोकान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः.

स्मरयद्गमपरिक्षीणा ततोऽहं पञ्चतां गता ।
गन्धवत्याः परिसरे सरितः पितुराज्ञया ॥ १६५ ॥
पुण्यतीर्थफलादस्मि सर्वज्ञा स्मरचिन्तनात् ।
वेश्या यातेतिपर्यन्तचिन्ता तुल्यपुनर्भवा ॥ १६६ ॥
जातिस्मरायाः श्रुत्वेति वचस्तस्या महामुनिः ।
बभूव विस्मयप्रस्तविकल्पघनडम्बरः ॥ १६७ ॥
इत्युक्त्वा पुष्कराक्षस्य विजितासुः स्वयं ददौ ।
रङ्कुमालिनमाहूय तत्पुत्रीं तरलेक्षणाम् ॥ १६८ ॥
विद्याधरीं समासाद्य रथं च व्योमगामिनम् ।
गत्वा स्वां नगरीं भेजे पुष्कराक्षो निजां श्रियम् ॥ १६९ ॥
इति विनयवत्याख्यायिका ॥ ४ ॥

अस्त्येवं पूजिता देवाः पुण्यभाजामभीप्सितम् ।
मृगाङ्कदत्त कामं ते शनैः सर्वं विधास्यति ॥ १७० ॥
इति चित्रकथेनोक्तः श्रुत्वा राजसुतः स्मयात् ।
शशाङ्कवत्याः ख्यातेषु गुणेषु गणनां व्यधात् ॥ १७१ ॥
ततः कदाचिचाम्बूलगण्डूषं हर्म्यगोपुरात् ।
मृगाङ्कदत्तस्तत्याज स पपात सुमन्त्रिणि ॥ १७२ ॥
मन्त्री विनयवान्नाम विलोक्य तदशङ्कितम् ।
प्रदध्यौ निविटक्रोधो राजसूनोः प्रतिक्रियाम् ॥ १७३ ॥
मृगाङ्कदत्तोऽप्यालोच्य सचिवं गमने मतिम् ।
शशाङ्कवत्यामेकाग्रो विदधे ध्याननिश्चलः ॥ १७४ ॥
पुरीं सुरक्षितद्वारां मत्वा ते गुप्तगोपुराम् ।
महाव्रतिकवेषेण गन्तुं चक्रुर्विनिश्चयम् ॥ १७५ ॥
ततोऽस्थिकेशखट्वाङ्गकपालैर्वृतटम्बरम् ।
गुप्तमाहत्य विदधे गृहे भीमपराक्रमः ॥ १७६ ॥

---

१. 'रन्ती तं पतिं' ख. २. 'नम्रचिह्न' ख. ३. 'क्षाय' ख. ४. 'इत्येवं पूर्वत दैवात्पुण्यभा' ख. ५. 'म' ख.

अत्रान्तरे नरपतिं ज्ञात्वा लंग्नविसूचिकम्।
मन्त्री विनयवानेत्य सं राज्ञः स्वैरमभ्यधात्॥ १७७॥
राजपुत्रेण ते राजन्नायुरश्चिन्त्यते क्षितिः।
अभिचारं करोत्येष गृहे भीमपराक्रमः॥ १७८॥
ताम्बूलगण्डूषरुषा निगद्येति स दुःसहम्।
प्रत्यक्षतां निनायासौ तं कपालास्थिसंचयम्॥ १७९॥
क्षणादमरदत्तोऽथ क्रोधार्तो निजमात्मजम्।
पुरान्निर्वासयामास दशभिः सचिवैः सह॥ १८०॥
स हृष्टः प्रस्थितो गन्तुं परित्यज्य निजां पुरीम्।
वयस्यानाह "चित्तेऽन्तः स्वयं सिद्धो मनोरथः॥ १८१॥
अभिषिक्तोऽस्ति तातेन बाल एव सखा मम।
शक्तिरक्षितको नाम किरातेषु महीपतिः॥ १८२॥
वयं तस्य पुरीं गत्वा विश्रम्य कृतसंविदः।
शशाङ्कवत्याः सुभगां यास्यामो दक्षिणां दिशम्॥ १८३॥
इत्युक्त्वा राजतनयः प्रविवेश महाटवीम्।
प्रत्यग्रभिन्नरोगासृक्चक्रकेसरिसंकुलाम्॥ १८४॥
अथास्तशिखरं याते शशशोणितलोहिते।
नभःकृष्णभुजङ्गस्य फणरत्ने विवस्वति॥ १८५॥
ततस्तालतमालौघश्यामले व्योमकानने।
निशीथमत्तवेतालप्रस्तालोके दिगन्तरे॥ १८६॥
मृगाङ्कदत्तो दूराध्वश्रान्तस्तृष्णानिपीडितः।
सचिवैः सहितस्तस्थौ कीटशुष्कतरोरधः॥ १८७॥
ततो निद्रामथाभुक्ते क्षणं मुद्रितलोचनाः।
अर्धरात्रे प्रबुद्धाश्च ददृशुर्विमलं नभः॥ १८८॥

---

१ 'भानविषूचि' ग. २. 'चारु' ग. ३. 'स्मराङ्कदत्तोऽथ क्रोधान्धो' ग.
४ 'वैर्वेषामाण' ग. ५. 'विश्रं म.' ग. ६. 'स्वयं' ग. ७. 'नागाशक्तितके' ग.
८. 'वने' ग. ९. 'अत्र निशामथासाद्य क्षणं' ग.

शर्वरीशबरीकर्णकेतके तुहिनत्विषि ।
समुद्गते नभःकालकपालदलविभ्रमः ॥ १८९ ॥
स्फटिकस्तम्भसंभारडम्बरे रश्मिमण्डले ।
दिग्दन्तिदन्तविपुले जाते हरिणलक्ष्मणः ॥ १९० ॥
तस्य शुष्कतरोः सर्वे प्ररूढामङ्कुरश्रियम् ।
विलोकयन्पल्लविनं पुष्पहासं च ते शनैः ॥ १९१ ॥
ततः फलभरैर्नम्रः स बभूव महातरुः ।
सर्वाशापूरणसहो गुणैरिव कुलोद्गतः ॥ १९२ ॥
क्षिप्रं फलानि पक्वानि तस्य पेतुर्महीतले ।
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे ते चक्रुः प्राणवर्तनम् ॥ १९३ ॥
ततः स तैर्भुक्तफलो बभूव सहसा द्विजः ।
शुभ्रयज्ञोपवीताङ्गश्चन्द्रांशुभिरिवावृतः ॥ १९४ ॥
कौतुकादथ तैः पृष्टः सोऽब्रवीद्धेतुमात्मनः ।
आर्जवं ब्रह्मसुलभं दन्तांशुभिरिवोद्वमन् ॥ १९५ ॥
दमधिर्नाम विप्रोऽभूदयोध्यानिलयः पुरा ।
तस्य शान्तिमती नाम भार्यासीद्धर्मचारिणी ॥ १९६ ॥
अहं च श्रुतधिर्नाम पुत्रस्तस्य मनीषिणः ।
ततः कदाचिद्दुर्भिक्षे माता मे निजभोजनम् ॥ १९७ ॥
दत्वार्थिने क्षुधार्ताय धन्या तत्याज जीवितम् ।
ततः पिता मे बभ्राम क्लान्तः क्षुद्विकलः क्षितिम् ॥ १९८ ॥
दत्तं पुण्यवता प्राप केनापि फलपञ्चकम् ।
स मह्यं त्रीणि संकल्प्य फलानि द्वे तथात्मने ॥ १९९ ॥
ममज्जान्तर्जले तातः क्षणं जपपरायणः ।
ततः फलानि सर्वाणि लौल्यादहमभक्षयम् ॥ २०० ॥

---

१. 'तुलविकर्मे' ख. २. 'नि' ख. ३. 'व्यलो' ख. ४. 'द्रुतः' ख. ५. 'वैं' ख. ६. 'दृत' ख. ७. 'दन्' ख. ८. 'कि' ख. ९. 'स्नातुं' ख.

तत्कोपादस्मि शप्तश्च पित्रा शुष्कद्रुमोऽभवम् ।
युष्मत्फलोपभोगान्तः स च शापो गतोऽद्य मे ॥ २०१ ॥
शुभ्रशास्त्रेन्दुजलधिर्योग्योऽहं नृपसेवने ।
अधुना प्रतिपन्नोऽहं भवन्तं सेवितास्मि ते ॥ २०२ ॥

इति श्रुतधिसमागमः ॥ ५ ॥

श्रुतधेर्वचनं श्रुत्वा ते[1] निवेद्य निजां कथाम् ।
तेनैव सहिताः प्रातः प्रैययुर्दक्षिणां दिशम् ॥ २०३ ॥
करिमण्डितकं नाम ते प्रविश्य महद्वनम् ।
द्विजैर्निमन्त्रितास्तत्र त्रिफलार्सैस्तपायिभिः ॥ २०४ ॥
याता पञ्चशती तेषां वत्सराणां किलायुषः ।
आमन्त्र्य वज्रसाराङ्गास्तान्किरातपुरं ययुः ॥ २०५ ॥
सुहृदा संगतस्तत्र किरातपतिना ततः ।
कर्तव्यमानुकूल्यं मे[2] कार्येष्विति तमभ्यधात् ॥ २०६ ॥
शक्तिरक्षितकाख्येन सादरं तेन पूजितः ।
महाटवीं प्रविश्यारादपश्यद्वृद्धतापसम् ॥ २०७ ॥
स तैः पृष्टोऽब्रवीत्पूर्वं शुद्धकीर्तिरभूद्व्रती ।
तस्यास्मि शिष्यः पृथिवीं भ्रान्तस्तद्दर्शनोत्सुकः ॥ २०८ ॥
तत्र दृष्टो मया कश्चिद्भव्यो राजकुमारकः ।
स्वस्त्ववेषं समाधाय निधिसिद्धरसौषधीः ॥ २०९ ॥
स सर्वमुक्त्वा मामाह विन्ध्याटव्यां तृणावृते ।
नागः पारावताख्योऽस्ति भवने हंससूचिते ॥ २१० ॥
वैदूर्यकान्तिर्नामास्ति खङ्गस्तस्य महाप्रभः ।
सिद्धाधिपत्यं येनाशु पालिसत्केन लभ्यते ॥ २११ ॥
इत्याकर्ण्य प्रयातोऽहं मन्त्रोद्वेपोद्विमुच्य ताम् ।
माप्याटवीमिमां सिद्ध्यै सहायश्चिन्तितो मया ॥ २१२ ॥

१. 'वर्गाधिपत्यमिति' ख. २. 'कथयित्वा' ग. ३. 'रत्नै' ख. ४. 'तत्र' ख. ५. 'न' ख. ६. 'सुधन्' ख. ७. 'सिद्धिदर्शनोत्सुकः' ग. ८. 'पानीय' ख. ९. 'येन' ग.

चिरं ध्यात्वा न तु यदा योग्यं पश्यामि कंचन।
सुचिरं मृग्यसंतप्तस्तदाहं मर्तुमुद्यतः॥ २१३॥
मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति तमुवाच तपस्विनम्।
अहं सहायः सामात्यः स्थितस्ते भगवन्निति॥ २१४॥
पादलेपं ततस्तेभ्यस्तमस्वी मुदितो ददौ।
येन व्योमचराः सर्वे प्रापुर्विन्ध्याटवीं क्षणात्॥ २१५॥
तत्र नागेन्द्रभवनोपान्ते मन्त्रविधिव्रतः।
जुहाव शिंशिपामूले स तपस्वी हुताशनम्॥ २१६॥
खादिरैः कीलकैर्बद्धे दिक्चक्रे विनिधाय तान्।
मृगाङ्कदत्तप्रमुखांस्स बभौ दिक्पतीनिव॥ २१७॥
ततोऽदृश्यत मत्तालिलोलनीलोत्पलेक्षणा।
ललना स्मरसर्वस्वं बिभ्राणा नवयौवनम्॥ २१८॥
सा क्वणन्मेखलादामा मणिकङ्कणनूपुरा।
परिचर्यां चकारास्य होमोपकरणे पुरः॥ २१९॥
विलासवलिता तत्र व्यग्रा चटुलचारिणी।
अलक्षितं सा पस्पर्श स्तनेनाङ्गं तपस्विनः॥ २२०॥
तत्कुचस्पर्शसंहर्षविकारक्षुब्धचेतसः।
होमभाण्डं पपाताशु तस्य कम्पजुषः करात्॥ २२१॥
अत्रान्तरे समुत्तस्थौ मेघः स्थगितदिङ्मुखः।
विद्युन्निपातनिर्घातघोरघोषः फणीश्वरः॥ २२२॥
मृगाङ्कदत्तप्रमुखा वीक्ष्य नागं समुत्थितम्।
गम्भीरधीरसंरम्भखड्गहस्ताः समुद्ययुः॥ २२३॥
पारावताक्षः संनद्धान्दृष्ट्वा तानवदद्द्विषः।
युष्मद्दुर्विपन्नोऽयं वञ्चितो विप्रयोषिता॥ २२४॥
यूयमेकीकृता येन नियुक्ता मम विप्रिये।
वियोगस्तूर्णमेवास्तु भवतां विपिने मिथः॥ २२५॥

१. 'वेश' ख. २. 'सचिवं' ख. ३. 'किङ्कर' ख.

इति तद्वचसा सर्वे तिमिरेण तिरस्कृताः ।
ययुः संभ्रान्तमनसः सहसैव पृथक्पृथक् ॥ २२६ ॥
इति पारावताक्षशापः ॥ ६ ॥

मृगाङ्कदत्तः शोकार्तो ययौ श्रुतधिना मुहुः ।
आश्वास्यमानो यत्नेन ततो वज्रैरिवाहतः ॥ २२७ ॥
तत्संगमाशां हृदये विधायोज्जयिनी शनैः ।
निःसहः प्रस्थितो गन्तुं दृष्टो विमलबुद्धिना ॥ २२८ ॥
स साश्रुलोचनो गाढं परिष्वज्य नृपात्मजम् ।
उवाच दीर्घं निःश्वस्य हर्षशोककरम्बितः ॥ २२९ ॥
अस्याहं तेन नागेन क्षिप्तो विन्ध्यगिरेस्तटे ।
अपश्यं तेजसां राशिं ब्रह्मदण्डिं महामुनिम् ॥ २३० ॥
ततोऽपश्यं लल्नया वर्त्यमानं समन्ततः ।
कुलालचक्रमुद्भ्रान्तैर्भ्रमरैरभितो वृतम् ॥ २३१ ॥
तत्र स्थितौ वृषलरौ तयोः फेनं सितारुणम् ।
पीत्वा ते तत्पुरुर्वियां भृङ्गाः सुप्तां सितासिताम् ॥ २३२ ॥
सहसा तत्समुद्भूतांस्तन्तुकाराः सितत्विषः ।
असिताश्चासितोत्पन्नाश्चक्रुर्जालं सितासितम् ॥ २३३ ॥
तेन जालेन मधुपा बद्धा वर्णविभेदिनः ।
ययुर्विषलतामेके सिन्दुवारलतां परे ॥ २३४ ॥
ततो विपार्ताश्चक्रन्दुस्तच्छ्रुत्वाथ विषस्पृशः ।
चुक्रुशुः करुणं तत्र कश्चिन्मुनिरथाशृणोत् ॥ २३५ ॥
ललाटसमुत्थाग्निकणदग्धोग्रबन्धनाः ।
यंशजालेन निर्गत्य तेजसश्छत्रमाविशन् ॥ २३६ ॥
इत्यहं कौतुकं दृष्ट्वा पुनश्चापश्यमुन्नतम् ।
दग्धाहं महासिंहं सिंहैरनुवृतं वने ॥ २३७ ॥

१. 'अहं' क. २. 'श' ख.

विदार्य कुञ्जरान्मत्तान्पुंसा लम्बोदरेण सः।
दृष्टमार्गः[1] प्रियां प्राप केसरी धवलद्युतिः॥ २३८॥
इत्याश्चर्यं तदालोच्य ब्रह्मदण्डि महामुनिम्।
अपृच्छं सोऽपि मामाह भगवाञ्ज्ञानलोचनः॥ २३९॥
संसारचक्रसंसक्ता भृङ्गास्ते कामिनो नराः।
महामाया च सा योषिद्धर्गाधर्मौ वृषखरौ॥ २४०॥
विषं नरकदुःखं तस्मिन्दुवारं सुरालयः।
महेश्वरेण कृपया मुक्तास्ते ध्वस्तकिल्बिषाः॥ २४१॥
वंशेन ब्रह्मरन्ध्रेण यातास्तेजोमयं पदम्।
सिंहो मृगाङ्कदत्तस्य वयस्यस्तस्य वाहनः।
लम्बोदरप्रसादेन स कान्तां ध्रुवमाप्स्यति॥ २४२॥
इत्यहं तेन मुनिना प्रशान्तेन विबोधितः।
देवे त्वदन्तिकं[2] प्राप्तः प्रमाणमधुना शिवः॥ २४३॥

इति संसारचक्रम्॥ ७॥

मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति चित्रं श्रुतधिना सह।
विस्मयं परमं भेजे धृतिं धीरो बबन्ध च॥ २४४॥
स गच्छन्नर्मदां प्राप फेनहासविलासिनीम्।
माद्यद्विहङ्गवाचालमेखलां[3] नर्मदायिनीम्॥ २४५॥
ददर्श तत्र सलिले युवानं शबराधिपम्।
स्नानव्यग्रमहाग्राहैर्गृहीतं कुञ्जरोपमैः॥ २४६॥
मृगाङ्कदत्तस्तद्दृष्ट्वा ग्राहं छित्त्वा महासिना।
[4]वीरो मायाबटुं नाम शबरेन्द्रममोचयत्॥ २४७॥
ततः संजातसौहार्दस्तेनानीतो निजालयम्।
प्रणम्य पूजितो दूराचण्डालैः शबराधिपैः॥ २४८॥

---

१. 'दग्धकि' ख. २. 'देवात्त्वदन्तिकं' ख. ३. 'माद्यद्विहङ्गमालायां नर्मदामिव यामिनीम्' ख. ४. 'धीरो' ख.

तथा दुर्गपिशाचाद्यैः साक्षाच्छक्र इवागतः।
मायावटुगृहे प्रीतः किंचित्कालमुवास सः ॥ २४९ ॥
तत्र पर्जन्यनिर्घोषप्रनृत्तेषु शिखण्डिषु।
शबरेन्द्रप्रतीहारश्चण्डकेतुरभाषत ॥ २५० ॥
गृहे मम मयूरोऽस्ति योऽस्तं भानौ गते सदा।
अनपेक्षितपर्जन्यो नृत्यतीन्द्रायुधच्छविः ॥ २५१ ॥
इत्युक्त्वा शबरेन्द्रेण द्युतकेलिकलापिनम्।
न चिरादानयामीति चण्डकेतुरभाषत ॥ २५२ ॥
ततः सूर्येऽस्तमायाते वृतासु तिमिरैर्घनैः।
भिल्लपल्लीषु मायूरपिच्छकच्छादनैरिव ॥ २५३ ॥
नद्धासु दिक्षु सर्वासु कौञ्जरैरिव चर्मभिः।
आकाशे शबरीकेशयात्रासंकाशशोचिषि ॥ २५४ ॥
एको मृगाङ्कदत्तोऽथ व्रजन्केनापि ताडितः।
स्कन्धे स्कन्धे सतिमिरे तत्कोपादिदमभ्यधात् ॥ २५५ ॥
अरे दर्पोद्धतः कोऽयं मत्कोपाग्निपतङ्गकः।
श्रुत्वेत्याह प्रतीहारश्चण्डकेतुरलक्षितः ॥ २५६ ॥
चौरोऽहं नापराधो मे चन्द्रस्यैष व्यतिक्रमः।
यदालोकं विनालोकः सन्नेत्रोऽप्यन्धतां गतः ॥ २५७ ॥
दैवस्य वातिचारोऽयं येन त्रैलोक्यचक्षुषः।
तस्यापि भानोर्विहिताः संपदां परिवृत्तयः ॥ २५८ ॥
मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति चौरोऽहमितिवादिनम्।
तमवादीदहमपि स्तेन एव परस्वहृत् ॥ २५९ ॥
इति तावत्परिज्ञाय मिथः सौहार्दमाश्रितौ।
सस्रतुः पथि तौ श्यामातमःसंवीतविग्रहौ ॥ २६० ॥
मायावटोः प्रतीहारः स हि मच्छन्नकामुकः।
सदा तन्मदिर्षी रात्रौ भजते शूद्रागिणीम् ॥ २६१ ॥

१. 'न्दपोषेण ४' ख. २. 'इंदानीति' ग. ३. 'न' ख. ४. 'द्रुतः' ग.

ततो मृगाङ्कदत्तेन स तेनानुगतः क्षणात् ।
स चण्डकेतुरविशद्विलेनान्तःपुरोदरम् ॥ २६२ ॥
मायाबटुप्रियां तत्र स मञ्जुमतिकाभिधाम् ।
प्राप्य लेभे सररसात्तदालिङ्गननिर्वृतिम् ॥ २६३ ॥
अलक्षितो बिलच्छिद्रन्यस्तनेत्रो ददर्श तम् ।
मृगाङ्कदत्तो दुःशीलां तां च मायाबटोर्वधूम् ॥ २६४ ॥
ईर्ष्याविवादे स तया प्रतीहारो विरोधितः ।
चकर्ष शस्त्रं रागो हि खलानां कलहोदयः ॥ २६५ ॥
रतोत्सवे प्रस्तुतेऽपि संजाते शस्त्रसंभ्रमे ।
छिन्ना निवारणे तत्र दास्याः करतलाङ्गुलिः ॥ २६६ ॥
ततः क्रुद्धः स निर्गत्य निजवेश्म व्रजन्निति ।
मृगाङ्कदत्तमज्ञात्वा चण्डकेतुरभाषत ॥ २६७ ॥
तूर्णमेह्येहि गच्छाव· खिन्नौ दीर्घप्रजागरात् ।
निद्रां प्राप्त्वा निजगृहं विश्रब्धो यास्यसि प्रिय ॥ २६८ ॥
इत्युक्त्वा तेन नीतोऽहं स्वगृहं द्रोहचेतसा ।
दृष्टमच्चरितो वध्यो ममायमिति निश्चयात् ॥ २६९ ॥
मृगाङ्कदत्तस्तद्गेहं प्रविश्यालक्षितो निशि ।
प्रदिष्टस्तेन निद्रार्थं शून्यमन्दिरमाविशत् ॥ २७० ॥
प्रतीहारगृहे तत्र स्थितो दीपांशुमालिनि ।
केलीशिखण्डिनं दूराद्ददर्श रुचिरच्छविम् ॥ २७१ ॥
सुस्निग्धालोकिनस्तस्य बन्धोरिव गलस्थितम् ।
स गाढबन्धनं सूत्रं कृपयैव व्यमोचयत् ॥ २७२ ॥
कण्ठसूत्रे व्यपगते सोऽभूद्भीमपराक्रमः ।
मृगाङ्कदत्तस्तं दृष्ट्वा हृष्टः पप्रच्छ विस्मयात् ॥ २७३ ॥
सखे हर्षसुधासिन्धुसंभ्रमः किमयं कुतः ।
वृत्तं वा कथ्यतां सर्वं स एवासि यतः स्फुटम् ॥ २७४ ॥

---

१. 'छन्नानुग' ख. २. 'केतुना' ख. ३. 'ते' ख. ४. 'न्यवारयत्' ख. ५. 'ग' ख.

श्रुत्वेति तं परित्यज्य प्राह भीमपराक्रमः ।
अप्यहं नागशापेन प्रविष्टो विकटाटवीम् ॥ २७५ ॥
दर्भसूचीचितां घोरां दावाग्निप्लुष्टपादपाम् ।
उद्धूततप्तसंसिक्तां संजातमृगतृष्णिकाम् ॥ २७६ ॥
खिद्यद्वराहमहिषां ताम्यत्तप्तभुजङ्गमाम् ।
शुष्यत्कुरङ्गशशकां तृष्यच्छिखिकुलाकुलाम् ॥ २७७ ॥
तत्र भ्रान्तं चिरं श्रान्तं मूले शाल्मलिशाखिनः ।
प्राणत्यागे कृतोद्योगं मां वृद्धपथिकोऽब्रवीत् ॥ २७८ ॥
परिम्लानमुखच्छायो भद्र किं परितप्यसे ।
संसारदुःखसरणिर्वैक्लव्येन न लङ्घ्यते ॥ २७९ ॥
इत्युक्त्वा मत्कथां श्रुत्वा पुनराह महाद्युतिः ।
वृद्धपान्थो न शोकेन [3]धीराणां स्पृश्यते मनः ॥ २८० ॥
अवश्यं हि भवत्येव जीवतां संगमः पुनः ।
धैर्यं श्रय विपत्स्फारजलधेः सेतुरेव तत् ॥ २८१ ॥
कोशलायामभूद्भूपो विभूतेः प्रथमाकरः ।
तारापतिकराकारचरितो विमलाकरः ॥ २८२ ॥
कमलाकरनामाभूत्कमलाकमलाकरः ।
तनयस्तस्य राजश्रीविलासमणिदर्पणः ॥ २८३ ॥
साङ्गोऽयमपरोऽनङ्गः सोऽङ्गनापाङ्गसंगतिः ।
इत्यूचुर्यस्य यात्रासु तरुण्यो रूपविस्मिताः ॥ २८४ ॥
बन्दिमागधसूतेभ्यो वितरन्मणिकङ्कणान् ।
पठितां बन्दिवर्येण शुश्रावार्यां स विस्मितः ॥ २८५ ॥
भुवलयभूषणममलं गुणनिलयं कविसहस्रनिर्घुष्टम्[5] ।
हंसावलिः क रमते कान्तं कमलाकरं मुक्त्वा ॥ २८६ ॥

---

१. 'वरद' ख. २. 'मतिः' ग. ३. 'धीरा' ग. ४. 'रचितो कमलाकरः' ख. ५. 'घुष्टम्' ख.

तात्पर्योद्गदितां श्रुत्वा स मनोरथसिद्धिना।
किमेतदिति पप्रच्छ तं रहः कौतुकाकुलः॥ २८७॥
सोऽब्रवीदस्ति नगरी विदिशा नाम विश्रुता।
आवर्तमानया लक्ष्म्या विदिशेव समाश्रिता॥ २८८॥
मेघमालीति विख्यातस्तस्यामस्ति महीपतिः।
(यत्कीर्त्या विहिता""नामङ्कालिङ्गननिर्वृतिः)॥ २८९॥
तस्य हंसावली नाम तनयास्ति शुचिस्मिता।
मुक्तावलीव कामस्य विस्तीर्णगुणगुम्फिता॥ २९०॥
सुमुखी पल्लवकरी स्तनस्तबकशालिनी।
सचन्द्रपारिजातेव लहरी क्षीरवारिधेः॥ २९१॥
मन्मथायोपनीतेव वेधसा त्रिजगज्जये।
(नवलावण्यनिर्माणहस्तोपायनपुत्रिका)॥ २९२॥
यदृच्छया गतो रम्यां स कदाचित्पुरीमहम्।
न्यवसं दर्दुराख्यस्य नाट्याचार्यस्य वेश्मनि॥ २९३॥
अत्रान्तरे राजसुता नर्तकेन सुशिक्षिता।
पितुः पुरो नृत्यतीति प्रवादो नगरेऽभवत्॥ २९४॥
ततोऽहं कौतुकाविष्टो नाट्याचार्यसमाश्रयात्।
अविशं शार्जवं गर्जन्मुरजं नाट्यमण्डलम्॥ २९५॥
मूर्च्छद्वीणासमालापतालच्छन्नकलाविधौ।
संप्रवृत्ते ध्रुवं गाने वरयात्राविधायिनी॥ २९६॥
अत्रान्तरे विश्वसृजा राज्ञे दत्ता जगज्जये।
नवलावण्यनिष्पाणहस्तोपायनपुत्रिका॥ २९७॥
विवेश सत्त्वसंपन्ना सुधाभिनयशालिनी।
ततो हंसावली हेलाविकीर्णकुसुमाञ्जलिः॥ २९८॥

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख.-पुस्तके त्रुटितः. २. 'मोहनौषधी' ख. ३, एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ४. 'ऽपश्यं कदाचित्तां पुरीमहम्' ख. ५. 'सा शुभाङ्गी' ख. ६. 'मार्जनारागान्तु' ख. ७. 'स्थितक' ख. ८. 'सूत्राभि' ख.

मूर्तेव कौशिकी वृत्तिर्नाट्यसेवाधिदेवता ।
सामात्यस्य पितुस्तत्र चक्रे कमपि विस्मयम् ॥ २९९ ॥
विलासललितं तस्या विबभौ वदनाम्बुजम् ।
नान्दीश्रवणसंतोषाचन्द्रः साक्षादिवागतः ॥ ३०० ॥
सा बालानिलँलोलेव पेशला कल्पवल्लरी ।
संसारसरसालोकैर्भावामृतफलं ददौ ॥ ३०१ ॥
बालचूताङ्कुरस्वादकलकोकिलनिःस्वना ।
सा पपाठ विपञ्चीव पञ्चमानुगतस्वरा ॥ ३०२ ॥
जयति स नाभिसरोरुहमधुपटलैर्निवसिताकारः ।
शौरिः श्रीमुखचन्द्रे यत्कान्तिर्लाञ्छनच्छाया ॥ ३०३ ॥
इति ब्रुवाणा वक्त्राब्जसौरभाहूतषट्पदैः ।
सा बभौ मेर्क्षकोद्भूतसाधुवादाक्षरैरिव ॥ ३०४ ॥
ततो दिनान्ते सनयानाट्यदर्शननिर्वृते ।
अन्तःपुरं गते राज्ञि वृते सामाजिकोत्सवे ॥ ३०५ ॥
अचिन्तयमहं देव कन्येयं मृगलोचना ।
कमलाकरदेवस्य योग्यैवेति मुहुर्मुहुः ॥ ३०६ ॥
ततः कृतप्रवेशोऽहं युक्त्या राजनिकेतनम् ।
कन्यान्तःपुरचित्रे त्वत्तुल्याकारमलीलिखम् ॥ ३०७ ॥
विहितोन्मादवेषोऽथ वयस्यो मम दर्दुरः ।
चित्रस्थं प्रकटीकर्तुं त्वां तुष्टाव मुहुर्मुहुः ॥ ३०८ ॥
नामाभिजनमाकर्ण्य त्वदीयं तेन वर्णितम् ।
त्वदाकारैकविन्यस्तलोचना साभवच्चिरम् ॥ ३०९ ॥
ततो भावावतारेण स्मरेण रुचिरद्युतिः ।
सा बभूव वसन्तेन लतेवोत्कलिकाकुला ॥ ३१० ॥

१. 'लावण्यविलास च' ग. २. 'शृङ्गाररस' ख. ३. 'नेत्राग्र' ख. ४. 'भावभेद' ख. ५. 'दुर्दर' ख. ६. 'न' ग.

प्रतिपच्चन्द्रलेखेव ततः सा चारुहासिनी ।
मनोभवानलज्वालाकुलिता तनुतां ययौ ॥ ३११ ॥
क्षीणा ज्वरापदेशेन बिभ्रती स्मरविक्रियाम् ।
द्रष्टुं पित्राभ्यनुज्ञाता श्रेयसे श्रीपतिः स्वयम् ॥ ३१२ ॥
ततो दर्दुरकेणाहं विहितो ज्ञाततत्कथः ।
कृतप्रवेशस्तेनैव युक्त्या तं देशमाविशम् ॥ ३१३ ॥
तत्र हंसावली दृष्टा मया विरहनिःसहा ।
हंसावलीव नलिनीदलशय्याकृतस्थितिः ॥ ३१४ ॥
दृष्ट्वा तां विष्णुनिलये राजपुत्रीं स्मरातुराम् ।
अपठं स्तुतिमभ्येत्य शौरीं तन्न्यस्तलोचनः ॥ ३१५ ॥
जय कमलाकरलालितचरणसमाक्रान्तविश्व विश्वात्मन् ।
प्रकटसुदर्शनकान्ते पुरुषोत्तम पुण्डरीकाक्ष ॥ ३१६ ॥
इति प्रिया तामश्लिष्टां सा श्रुत्वा भगवत्स्तुतिम् ।
पुनः पुनः पठेत्याह मां हर्षाकोशलोचना ॥ ३१७ ॥
प्रत्यभिज्ञाय सा मह्यं ददौ चीनांशुकद्वयम् ।
तत्पल्लवे तया न्यस्ता गाथैषा रक्तचन्दनैः ॥ ३१८ ॥
सेयं तत्करन्यस्ता दृश्यतेऽंशुकपल्लवे ।
गाथा पुष्पशरस्येव दीक्षामन्त्राक्षमालिका ॥ ३१९ ॥
श्रुत्वेति राजतनयः सहसा मनसा दधौ ।
तामेव मन्मथाक्रान्तो दिव्यं हि नयनं मनः ॥ ३२० ॥
कदाचिदथ पित्रासौ दिग्जयाय महाभुजः ।
आदिष्टो निर्ययावब्धिवेलाविश्रान्तसैनिकः ॥ ३२१ ॥
तत्तुरङ्गखुरोद्धूतसान्द्रधूलिकदम्बकैः ।
दिग्वारणाः क्षणं तस्थुस्तदाघातसमुत्सुकाः ॥ ३२२ ॥
स राजतनयां ध्यायन्प्रययौ विजयोन्मुखः ।
संसरन्राजकदलीं मीलिताक्ष इव द्विपः ॥ ३२३ ॥

---

१. 'दृष्टा' ख. २. 'ति ययौ' ग. ३. 'स' ग. ४.–५. 'मत्' ख.

अङ्गराजं रणे जित्वा कुलमूर्तिं महाबलम्।
जीवग्राहं गृहीत्वा तं सं प्राहिणोन्नगरीं पितुः ॥ ३२४ ॥
भग्नासु शत्रुसेनासु समरे प्रतिबिम्बितम्।
खड्गान्तर्निजमेवैकं सोऽपश्यत्संमुखं सुखम् ॥ ३२५ ॥
क्षिप्त्वा यशो दिगन्तेषु सह भिन्नेभमौक्तिकैः।
कपोलपत्ररहिताः स चक्रे शत्रुयोषितः ॥ ३२६ ॥
विदिशां शनकैः प्राप्य तस्थौ वेत्रवतीतटे।
नर्तयन्गजगर्जाभिरुद्यानशिखिमण्डली ॥ ३२७ ॥
तत्र दूतेन भूपालं ययाचे मेघमालिनम्।
हंसावलीं सरावासनिजमानसवासिनीम् ॥ ३२८ ॥
ततः स्वयं समभ्येत्य मेघमाली प्रणम्य तम्।
उवाच कृतकृत्योऽहं त्वदाज्ञाकारणादिति ॥ ३२९ ॥
निर्दिष्टा विष्णुनैवैषा मत्सुता तव वल्लभा।
तत्करस्पृष्टशिरसां देहिनां शाम्यति ज्वरः ॥ ३३० ॥
वितीर्णा तनया तुभ्यं वत्स हंसावली मया।
प्रातः क्षपायां भविता युष्मत्परिणयोत्सवः ॥ ३३१
इत्युक्त्वा विदिशाधीशः प्रविश्यान्तःपुरं निजम्।
चक्रे विदितवृत्तान्तां तनयां वल्लभां तथा ॥ ३३२ ॥
हंसावली चित्रगतं ध्यायन्ती कमलाकरम्।
स एवान्योऽथवा कश्चिदिति दोलाकुलाभवत् ॥ ३३३ ॥
सा दिदेश सखीं स्वैरं कान्तां कनकमञ्जरीम्।
दृष्ट्वा राजसुतं तूर्णमेहीत्याहितसंशया ॥ ३३४ ॥
बद्धकूटजटाजूटा ततः कनकमञ्जरी।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गपीडितोच्चकुचस्थली ॥ ३३५ ॥

---

१. 'खड्गौ' ख. २. 'रहं युष्मत्सदोत्सुके' ख. ३. 'लक्षम्' ख. ४. 'प्रहृष्टा-' ख. ५. 'च' ख. ६. 'कंचुकावली' ख.

राहुग्रस्तस्य शीतांशोरिव मत्रजिता द्युतिः ।
द्रष्टुं तपस्विनीवेषा प्रययौ कमलाकरम् ॥ ३३६ ॥
रत्नोपायनहस्ता सा कान्तं दृष्ट्वा नृपात्मजम् ।
बभूव मन्मथाविष्टा तेन संभाविता क्षणात् ॥ ३३७ ॥
सा विस्मृतसखीस्नेहा तं निर्वर्ण्य स्मरोपमम् ।
तस्थौ तदुन्मुखा कस्य सिद्धये तरुणी सखी ॥ ३३८ ॥
ततो हंसावलीमेत्य साब्रवीन्मन्मथाहृता ।
उन्मत्तोऽसौ नृपसुतो दृष्टो मन्त्रिवृतो मया ॥ ३३९ ॥
भूतच्छायाभिभूतेन तेन ते नोचितः सखि ।
चूतवल्ल्या इवासङ्गः [2]कीटशुष्केण शाखिना ॥ ३४० ॥
इति राजसुता श्रुत्वा न सोऽयमिति चेतसा ।
निश्चित्योद्वाहविमुखी बभूव भृशदुःखिता ॥ ३४१ ॥
सखि त्वं मम वेषेण पाणिग्रहमहोत्सवे ।
भजैनं नहि मे चित्तमन्यत्र कमलाकरात् ॥ ३४२ ॥
इति हंसावलीवाक्यं श्रुत्वा कनकमञ्जरी ।
उवाच तद्वशास्मीति सानन्दकृतसंवृतिम् ॥ ३४३ ॥
स्थातव्यं नगरोपान्ते कूटशाल्मलिकोटरे ।
त्वया वृत्तविवाहाहं त्वां समेष्याम्यलक्षिता ॥ ३४४ ॥
हंसावलीमिति स्वैरमुक्त्वा कनकमञ्जरी ।
तदाभरणवासोभिस्तद्वेषां विदधे तनुम् ॥ ३४५ ॥
कृत्वा विदितवृत्तान्ता सखिद्रोहे निजाकृतिम् ।
हंसशोककरी नाम विवाहवसुधां ययौ ॥ ३४६ ॥
ततो महोत्सवव्यग्रसमग्रजनमण्डले ।
हंसावली गूढवेषा प्रायाच्छुष्कशाखिनम् ॥ ३४७ ॥
तत्कोटरं समालोक्य भीषणं मृदुमानसा ।
लताजालान्तरे तस्थौ बाला बकुलशाखिनः ॥ ३४८ ॥

---

१. 'सुख' ख. २. 'कोट' ख. ३. 'शाप्य' ख.

ततः कोलाहलोत्तालव्यालोलजनसंकुले।
तां कूटकन्यकां प्राप्य प्रययौ कमलाकरः॥ ३४९॥
स भजन्विजयस्तत्र यात्रायात इव स्मरः।
शाल्मलेः सविधं प्राप्य गर्जद्वजपटाकुलः॥ ३५०॥
सहसा तत्र कृतकोद्दामत्रासाकुलेक्षणा।
त्रायस्वेत्याह तं कम्पलोला कनकमञ्जरी॥ ३५१॥
किमेतदिति तेनोक्ता सावदद्देव शाल्मलेः।
अस्यान्तरे स्थिता स्वप्ने मया दृष्टा निशाचरी॥ ३५२॥
तया वित्रासितः कोऽपि ब्राह्मणो मामभाषत।
नादग्ध्वा शाल्मलिं तेऽद्य श्रेयोऽस्तीति कृपाकुलः॥ ३५३॥
आर्यपुत्रोऽधुना सर्वं जानातीति तयोदितः।
शाल्मलिं सेवकैस्तूर्णं राजसूनुरदाहयत्॥ ३५४॥
दह्यमानं समालोक्य ज्वालालीढनभस्तलम्।
हा सख्या वञ्चितासीति प्राह हंसावली मुहुः॥ ३५५॥
अहोऽनुरूपलोभेन सखी मां मुग्धमानसीम्।
दग्धुमभ्युद्यता पापा निःशङ्कसुखकाङ्क्षिणी॥ ३५६॥
अयं रतिपतेस्तुल्यः प्रत्यक्षं पुरुषोत्तमः।
नाधन्यया मया प्राप्तो दैवं वा केन लङ्घ्यते॥ ३५७॥
अहो कान्तिरहो लक्ष्मीरहो यौवनसंपदः।
अहो नु राजपुत्रस्य नेत्रसंवरणं तनुः॥ ३५८॥
अयं स चित्रलिखितः श्रीमान्पद्मदलेक्षणः।
मन्मानसकृतावासो विलासरससारसः॥ ३५९॥
विप्रलब्धास्मि दैवेन प्रविशामि हुताशनम्।
प्रियाप्राप्तिनिराशेन किं शरीरेण लोपिना॥ ३६०॥
इति संचिन्त्य शनकैः स्मृत्वा भगवतो वचः।
प्रतीकाराय सख्याश्च नात्यजत्सा निजां तनुम्॥ ३६१॥

---

१. 'वेरित.' ख. २. 'शोपिणा' ख.

कोशलामथ संप्राप्य प्रहृष्टः कमलाकरः ।
अन्तःपुरं नृपो गत्वा रेमे वल्लभया सह ॥ ३६२ ॥
तां मनोरथसिद्धिश्च दृष्ट्वा कनकमञ्जरीम् ।
हा वञ्चितो राजपुत्रश्चिन्तयित्वेत्यगाद्गृहम् ॥ ३६३ ॥
तत्र चिन्तापरो बन्दी तदन्वेष्टुं समुद्यतः ।
मात्रा निवारितो राजरहस्यं निर्दहेदिति ॥ ३६४ ॥
ततो हंसावली लोके दर्शनाशङ्किनी शनैः ।
विवेश निशि निःशेषशोकशालामिवाटवीम् ॥ ३६५ ॥
चिन्तामिव सनिर्वेदां खलसेवामिवापराम् ।
[1]जीवन्तीमिव विच्छायां दुर्दशामिव तापिनीम् ॥ ३६६ ॥
वेश्यामिव महातृष्णां चितामिव भयंकरीम् ।
मायामिव व्यसमानां डाकिनीमिव दुःसहाम् ॥ ३६७ ॥
राक्षसीभिः शतघ्नीभिर्निस्त्रिंशैः पिशिताशिभिः ।
शरजालैश्च निचितां युद्धभूमिमिवोत्कटाम् ॥ ३६८ ॥
घोरां प्रविश्य तां तन्वी बभ्राम तरलेक्षणा ।
हा तातेत्याशु ललितं विलपन्ती मुमोह सा ॥ ३६९ ॥
शनैः समाश्वास्य मनः पवनाकुलितालका ।
ददर्श शर्वरीं क्षीणां विरहार्तामिवाङ्गनाम् ॥ ३७० ॥
अथोदिते भगवति व्योमश्रीपतिकौस्तुभे ।
भास्करे चन्द्रविरहक्लान्ते कुमुदिनीगणे ॥ ३७१ ॥
शनैर्मज्जन्ती शोकार्ता सा बाला तरुसुन्दरम् ।
द्वितीयं काननं भेजे मञ्जुकूजद्विहङ्गमम् ॥ ३७२ ॥
अत्रान्तरे वसन्तर्तुविशदाः कुमुदश्रियः ।
विपादाः प्रोषितस्त्रीणां वनान्तेषु चकासिरे ॥ ३७३ ॥
व्याकोशिकिंशुकाशोकपलाशैर्विषमुर्दिशः ।
सरलोपरुषा स्फूर्जज्ज्वालाजालैरिवोद्गतैः ॥ ३७४ ॥

1. 'रजनीमि' ख. 2. 'वाच्यामिव व्यस्त' ख. 3. 'विप्रायन' ख.

चक्षुर्विरहिणीशोकतप्तनिःश्वाससोदराः ।
चूतचम्पककिञ्जल्कपिञ्जरा दक्षिणानिलाः ॥ ३७५ ॥
ततो हंसावली तत्र पूर्णपङ्कजिनीतटे ।
जले तीरलतापुष्पैर्नारायणमपूजयत् ॥ ३७६ ॥
अत्रान्तरे ज्वरार्तोऽभूत्स्वपुरे कमलाकरः ।
तज्ज्ञात्वाचिन्तयत्सर्वं खिन्ना कनकमञ्जरी ॥ ३७७ ॥
अहो परीक्षाकालोऽयं प्राप्तो मे कूटयोषितः ।
हंसावली ज्वरहरेत्येष वादो हि विश्रुतः ॥ ३७८ ॥
आहूता किं विधास्यामि भर्तुर्ज्वरनिवर्तने ।
बुद्ध्याशोककरी तावत्कदाचिद्भेदिनी भवेत् ॥ ३७९ ॥
सख्या द्रोहकराः सर्वा भवन्त्येव यथा ह्यहम् ।
पुरा भद्रशिवा नाम योगिन्युपदिदेश यत् ॥ ३८० ॥
शून्ये लिङ्गालये कृष्णच्छागासृक्पिशिताचनैः ।
वीरो नरोपहारेण भवति ज्वरहा ततः ॥ ३८१ ॥
तस्मात्तदेव कृत्वाद्य हत्वाशोककरीं सखीम् ।
ज्वरं च भेदशङ्कां च तुल्यमुन्मूलयाम्यहम् ॥ ३८२ ॥
इति निश्चित्य मनसा कृत्वा शोककरीं रहः ।
कार्ये विदितवृत्तान्तामुपहारकथां विना ॥ ३८३ ॥
द्वारपालान्समाज्ञाप्य राज्ञो रक्षाबलिक्रमे ।
यान्ति चायान्ति या नार्यो विध्या मोच्या न ता इति ॥३८४॥
गत्वा सखीं समादाय शून्ये लिङ्गनिकेतने ।
कृत्वा यथोदितं सर्वं खड्गाग्रेण जघान ताम् ॥ ३८५ ॥
अभ्याहता यथा तारं त्रायस्वेति कृतारवा ।
जवाद्विवेश शरणं सा राजद्वाररक्षिणः ॥ ३८६ ॥

---

१. 'पुत्र' ख. २. 'बाल' ग. ३. 'स्मेरे' ग. ४. 'माम्' ग. ५. 'धीरो' ग. ६. 'मा' ग. ७. 'मेगाम' ग.

मुक्तकेशीं खड्गहस्तां तस्याः पश्चात्समागताम् ।
राक्षसीति निजग्राहे ततः कनकमञ्जरीम् ॥ ३८७ ॥
अथाशोककरी तेभ्यस्तद्वृत्तान्तं न्यवेदयत् ।
विप्रलब्धः परिणये प्राग्यथा कमलाकरः ॥ ३८८ ॥
राजपुत्रोऽथ विज्ञाय तस्याः कपटचेष्टितम् ।
गृहाद्वन्दिनमानाय्य शुशोच मुषितो यथा ॥ ३८९ ॥
क सा हंसावली याता ममापुण्यघनोच्चयैः ।
अहो विधातुराश्चर्यं श्रमो निष्फलतां गतः ॥ ३९० ॥
अहो नु दग्ध्वा तां बालां वह्नौ कुसुमकोमलाम् ।
मन्ये संतापमतुलं न त्यक्ष्यति युगैरपि ॥ ३९१ ॥
हा हंसावलि मेंचित्तचन्द्रिके कासि देहि मे ।
वाचमित्यश्रुलुलितं विललाप नृपात्मजः ॥ ३९२ ॥
ततस्तमवदद्वन्दी देव मा विक्लवो भव ।
अवश्यं विष्णुना दिष्टां तां प्राप्स्यसि सुलोचनाम् ॥ ३९३ ॥
अविषादेन मोहस्य धैर्येण व्यसनस्य च ।
नयेन च प्रमादस्य मूलादुन्मूलनं क्षमम् ॥ ३९४ ॥
धीमतां सत्वशीलानां कृतिनां व्यवसायिनाम् ।
पुनः प्ररोहमायाति त्रुटितोऽपि मनोरथः ॥ ३९५ ॥
श्रुत्वेत्युचितमाख्यातं स मनोरथसिद्धिना ।
सह तेनैव दयितां विचेतुं प्रययौ स्वयम् ॥ ३९६ ॥
भ्रान्त्वा महीमविज्ञातो दैवात्तत्प्राप काननम् ।
अवश्यंभाविनो भावा यत्सत्यं मार्गदर्शिनः ॥ ३९७ ॥
तत्र फुल्ललताजाले लीनालिकुलसंकुले ।
स्त्रियं पुष्पसरस्येव सोऽपश्यत्स्तबकस्तनीम् ॥ ३९८ ॥
सेयं हंसावलीत्याराचां मनोरथसिद्धिना ।
दयितां पुण्डरीकाक्षपूजापरिकरोद्यताम् ॥ ३९९ ॥

---

१. 'लावण्य' ख. २. 'सूचितां' ख.

लावण्यपुण्यसरितं सिद्धिं रतिपतेरिव ।
यक्ष्मक्षयाय चन्द्रस्य सम्रतामिव रोहिणीम् ॥ ४०० ॥
अलकालिकुलां लीलावल्लरीं पाणिपल्लवाम् ।
पेशलामचिरावाप्तविप्रयोगविपल्लवाम् ॥ ४०१ ॥
तां वीक्ष्य हर्षपीयूषवर्षिणीं निर्वृतोऽभवत् ।
चिरान्मनोरथन्यस्तः कस्य लाभो हि नोत्सवे ॥ ४०२ ॥
सापि तन्मन्मथाशङ्काचकितायतलोचना ।
हृष्टा बन्दिगिरा ज्ञात्वा प्रियं लज्जानताभवत् ॥ ४०३ ॥
ततो निवेद्य संहृष्टौ विप्रलम्भकथां मिथः ।
तौ बन्दिना समं क्षिप्रं जग्मतुः कोशलां पुरीम् ॥ ४०४ ॥
मेघमालिनमाहूय विदिशाधिपतिं ततः ।
कृत्वा परिणयं भेजे तां कान्तां कमलाकरः ॥ ४०५ ॥
इत्येवं जीवतां तात भवन्ति शुभसंपदः ।
अवाप्स्यस्यचिरादेव वयस्यां मा कृशो भव ॥ ४०६ ॥

इति हंसावलीकथा ॥ ८ ॥

इति पान्थवचः श्रुत्वा संप्राप्योज्जयिनीं शनैः ।
प्रतिश्रयार्थं वृद्धायाः प्रविष्टोऽहं निवेशनम् ॥ ४०७ ॥
रूपकत्रयमादाय सा मे भोजनसिद्धये ।
दिदेश खट्वां श्रान्तस्य याचितां जीर्णजालकाम् ॥ ४०८ ॥
शयानस्तत्र जालेन तदुप्तां यवमुष्टिकाम् ।
अपश्यं तां च संजातां सहसा फलितामपि ॥ ४०९ ॥
तैर्यवैर्विहितान्सक्तून्मदर्थमुपकल्प्य सा ।
पुनरेवात्मनश्चान्यान्यवौ स्नातुं नदीतटम् ॥ ४१० ॥
तस्यां गतायामुत्थाय कांस्यपात्रद्वयस्थितान् ।
कृत्वा विनिमयेनाद तांस्तथैव पुनः स्थितः ॥ ४११ ॥

1. 'स प्रथयान्मम' ख. 2. 'पुराणानाम' ग.

सा समभ्येत्य दत्त्वा मे स्वयं मुक्त्वा विपर्ययात् ।
अमूच्छागलिका क्षिप्रं क्रमक्षुद्रो हि योषिताम् ॥ ४१२ ॥
निजव्याजनिबद्धां तां छागीमादाय सौनिकम् ।
ततो विक्रयकामोऽहं दृष्टः सौनिकयोषिता ॥ ४१३ ॥
सा प्राह मामहो पाप सखी मे वञ्चिता त्वया ।
द्रक्ष्यसीत्युद्धता क्रोधकम्पमानकराधरा ॥ ४१४ ॥
ततो दिनान्ते सुप्तोऽहं वृक्षमूले स्थितस्तया ।
कण्ठे बद्धेन सूत्रेण क्षिप्रं नीतो मयूरताम् ॥ ४१५ ॥
कालेन धीवरैर्बध्वा विक्रीतोऽहं विचित्ररुक् ।
अस्मिन्प्रतीहारगृहे स्त्रीणां केलिपदे स्थितः ॥ ४१६ ॥
अद्याहं त्वत्प्रसादेन मुक्तस्तिर्यङ्निबन्धनात् ।
भवत्सेवासुखं प्राप्तः प्रमाणमधुना भवान् ॥ ४१७ ॥
त्वामवश्यं प्रतीहारो रहस्ये भेदशङ्कितः ।
हन्ता प्रातः प्रतिनिशं को नाम न हतोऽमुना ॥ ४१८ ॥
इदमर्गलितद्वारं गृहं सुभयरक्षितम् ।
प्रभाते संशयश्चासौ न जाने किं भविष्यति ॥ ४१९ ॥
अथवा तेन सूत्रेण मुहूर्तं बर्हिरूपिणौ ।
निर्गच्छावो गवाक्षेणेत्युक्त्वा तौ चक्रतुस्तथा ॥ ४२० ॥

इति भीमपराक्रमसमागमः ॥ ९ ॥

ततः श्रुतधिना प्रातस्तथा विमलबुद्धिना ।
समेत्य तां कथां सर्वां राजपुत्रः समभ्यधात् ॥ ४२१ ॥
समां मायावटोः प्राप्य ते प्रभाते महात्मनः ।
बभूवुर्व्यग्रमनसो द्यूतकेलिकलाविधौ ॥ ४२२ ॥
अथोच्चैः श्रुतधिः प्राह नीलकण्ठोऽद्य नृत्यतु ।
अलं द्यूतेन नः सर्वैः प्रतीहारेण वर्णितः ॥ ४२३ ॥

१. 'वत्सव' ग. २. 'त्वं' ग.

इति श्रुतधिवाक्येन स मायावटुभूभुजा।
प्रतीहारोऽभ्यनुज्ञातस्तमाहर्तुं गृहं ययौ ॥ ४२४ ॥
स चौरो न मयाद्यापि हतः किं मन्दबुद्धिना।
इति ध्यात्वा गृहेऽपश्यन्न चौरं न च बर्हिणम् ॥ ४२५ ॥
गृहात्प्रतिनिवृत्यासौ प्राह मायावटोः पुरः।
गतो बर्हीति तच्छ्रुत्वा जहास श्रुतधिर्भृशम् ॥ ४२६ ॥
बर्ही चौरेण वा नीतश्चौरो वा बर्हिणा हृतः।
अहो त्वया न विज्ञातं चौरबर्हिविचेष्टितम् ॥ ४२७ ॥
इत्युक्त्वा श्रुतधिः सर्वां तत्कथां कौतुकस्पृशे।
निवेद्य शबरेन्द्राय दासीं कृताञ्जलीं च ताम् ॥ ४२८ ॥
नमः स्त्रिय इति प्राह निन्दन्मञ्जुमतीं मुहुः।
तत्त्वं मायावटुर्ज्ञात्वा प्रतीहारं जघान तम् ॥ ४२९ ॥
बधान्मृगाङ्कदत्तेन स्त्री न वध्येति रक्षिता।
ययौ मञ्जुमती क्वापि द्रोहः सत्यं विपत्फलम् ॥ ४३० ॥
कदाचिदथ यातेषु वासरेषु व्यजिज्ञपन्।
शबराः शबराधीशं वीरः प्राप्तो महानिति ॥ ४३१ ॥
[1]सार्थो दुःखोपहराय रुद्धोऽस्माभिः स सत्त्ववान्।
शतानि पञ्च वीराणां जघान जित[2]विक्रमः ॥ ४३२ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा मायावटुरसंभ्रमः।
[3]आनीयतामयं वीरो द्रष्टव्योऽयमुवाच तान् ॥ ४३३ ॥
तमागतं समालोक्य सङ्ग्रामक्षतविग्रहम्।
गुणाकरोऽयमित्यूचुस्ते परिज्ञाय विस्मिताः ॥ ४३४ ॥
ततः [4]क्षणं समाश्वस्तं निबद्धव्रणपट्टकम्।
मृगाङ्कदत्तः पप्रच्छ किमेतदिति सानुगः ॥ ४३५ ॥

इति गुणाकरसमागमः ॥ १० ॥

---

१. 'दुर्गायागोपहाराय' ख. २. 'धन' ख. ३. 'मृगाङ्कदत्तानुमतेस्तूर्णमेवानिनाय तम्' ग. ४. 'दानैस्समाश्व' ख.

सोऽब्रवीन्नागशापेन तदाहं देव मूर्च्छितः ।
विन्ध्याटव्यां परिश्रान्तः संप्राप्तो विन्ध्यवासिनीम् ॥ ४३६ ॥
ततो नरशिरःकेशग्रन्थिमहिषसंकुलम् ।
द्वारालम्बिमहानीलमुण्डमण्डलमण्डितम् ॥ ४३७ ॥
आक्रीडमिव कालस्य कङ्कगृध्रखगाकुलम् ।
क्षणं सन्ध्याम्बुदमिव प्रत्यग्ररुधिरारुणम् ॥ ४३८ ॥
वद्धैः[3] करालमायूरशरीरैः शबराहृतैः ।
उत्तम्भितैः कालरात्र्या भ्रूभङ्गैरिव भीषणैः ॥ ४३९ ॥
शुभ्रासिकूटसंघट्टैः स्पष्टीकृतदिगष्टकम् ।
मारीघण्टासमुल्लासैरट्टहासैरिवावृतम् ॥ ४४० ॥
दुर्गायतनमासाद्य स्वशिरश्छेत्तुमुद्यतम् ।
ददर्श मां तु विक्रान्तं वृद्धा कापि तपस्विनी ॥ ४४१ ॥
विराजिता मममग्रे कण्ठे स्फटिकमालया ।
स्वधियेवाश्रिता साक्षात्क्षीणरागकलङ्कया ॥ ४४२ ॥
सा मां निवार्य कृपया श्रुत्वा दीर्घां च मत्कथाम् ।
उवाच मा शुचः पुत्र ध्रुवं शुभमवाप्स्यसि ॥ ४४३ ॥
न विद्या न कुलं न श्रीर्धैर्यहीनस्य शोभते ।
करिणो रणभग्नस्य मदाङ्क इव डिण्डिमः ॥ ४४४ ॥
भ्रमराणामिवाद्रेश्च भ्रमतां भवकानने ।
शरीरिणामवश्यं हि भवत्येव समागमः ॥ ४४५ ॥
अभूदुदयतुङ्गस्य पञ्चालेषु महीपतिः ।
यशश्चन्द्रकलाधन्यं यानमेकातपत्रवान् ॥ ४४६ ॥
तस्याभवत्प्रतीहारः श्रीरक्षापरिखाचलः ।
कमलाक्षो मतिमतां धुर्यश्च नयनिश्रुतः ॥ ४४७ ॥
निर्जितमतिरित्यासीत्पुत्रस्तस्य गुणोचितः ।
वंशमुक्तामणेर्यस्य कान्तिकान्ता विभूषणम् ॥ ४४८ ॥

---

१ 'हतशिरः पत्रोन्नद्ध' ख. २. 'दा' ख. ३. 'दा' ख.

स कदाचिन्निजयशःशुभ्रचन्द्रकरोज्वले ।
शुश्राव विचरन्धन्वी निशीथे रुदितध्वनिम् ॥ ४४९ ॥
गत्वापश्यत्तरुतले कन्यां कमललोचनाम् ।
विषण्णां कुञ्जरक्षोभां नलिनीनामिव श्रियम् ॥ ४५० ॥
सा दुःखकारणं पृष्टा तेन प्राह सुमध्यमा ।
दन्तव्रातनवज्योत्स्नारचितानेकचन्द्रिका ॥ ४५१ ॥
पिता मे गन्धमालीति नागपाशेन वासुकेः ।
कालजिह्वाख्ययक्षस्य जिह्वभारिकतां गतः ॥ ४५२ ॥
भ्राता तस्य महावीर्यो विद्युज्जिह्वः प्रियासखः ।
यक्षो यक्षपतेः शापात्प्रयातश्चक्रवाकताम् ॥ ४५३ ॥
स्नेहाद्भ्रातुः सरोमध्ये स्थितस्य विहगाकृतेः ।
समीपे वसतिं चक्रे कालजिह्वो मदोत्कटः ॥ ४५४ ॥
(तत्र स्थितस्य पुष्पाणि मदाशापरियन्त्रितः ।
स मत्पिता गन्धमाली भारवाहो प्रयच्छति) ॥ ४५५ ॥
तद्दुःखाद्गिरिजा देवी नियतं सेविता मया ।
यक्षे विनीतमतिना जिते शापान्तमभ्यधात् ॥ ४५६ ॥
तदर्थं खड्गरत्नं मे वराश्वं च ददौ सती ।
तस्मात्स्यर्थ मयाहूतः करुणाक्रन्दमानया ॥ ४५७ ॥
इति श्रुत्वा तदादाय खड्गरत्नं सवाजिकम् ।
तदादिष्टेन मार्गेण तं यक्षं सोऽजयद्रणे ॥ ४५८ ॥
यक्षो विनीतमतिना वधयोग्योऽपि रक्षितः ।
रत्नाङ्गुलीयकं तस्मै ददावीतिनिबर्हणम् ॥ ४५९ ॥
ततो विमुक्तशापेन दत्तां नागनतां सुताम् ।
लब्ध्वा विजयवत्याख्यां स ययौ निजमन्दिरम् ॥ ४६० ॥
मातः कृतविवाहोऽथ राज्ञा पित्रा च स स्वयम् ।
नागकन्यासखो भेजे विनीतमतिरुत्सुकः ॥ ४६१ ॥

---

१. एतच्छ्लोकान्तर्गतः पाठः ख. पुस्तके त्रुटितः. २. 'नास्ति' ख. ३. 'स वीनरद्' ख.

अत्रान्तरे नरपतेः सुता विद्यासु कोविदा ।
दर्पादुदयवत्याख्या विजिग्ये वादिनां गणम् ॥ ४६२ ॥
जयेद्यो मां विवादेन स मे पाणिं ग्रहीष्यति ।
इति कृत्वा प्रतिज्ञां सा वादिवृन्दं समाह्वयत् ॥ ४६३ ॥
ततः पित्रा समादिष्टो विनीतमतिरेत्य ताम् ।
जित्वा दीर्घेण वादेन प्राप दत्तां महीभुजा ॥ ४६४ ॥
स तां बालमृगीलोलललितायतलोचनाम् ।
प्राप्य स्मरनरेन्द्रस्य यौवराज्यं समाप्तवान् ॥ ४६५ ॥
कदाचिदथ तं द्यूतविनोदव्यग्रमानसम् ।
ययाचे भोजनं विप्रः स च दासं तदादिशत् ॥ ४६६ ॥
दासोऽपि सिकतापात्रं तस्मै वस्त्रावृतं ददौ ।
अमन्दनिम्बकटुकदुष्टा हि नृपचेटकाः ॥ ४६७ ॥
अथ कालेन तं राजा धृत्वा राज्ये सुतार्पितम् ।
प्रज्वाल्य गुग्गुलुं मूर्ध्नि वृद्धो वृद्धां दयां ययौ ॥ ४६८ ॥
विनीतमतिरासाद्य प्राज्यं राज्यं प्रजाप्रियः ।
विदधे धर्मविधिना विबुधाराधनव्रतम् ॥ ४६९ ॥
अत्रान्तरे समभ्यायाद्वादिद्विरदकेसरी ।
रत्नचन्द्रमतिर्नाम भिक्षुरक्षणबौद्धधीः ॥ ४७० ॥
अद्यामिर्दिवसैस्तेन वादिना स जितो नृपः ।
जग्राह तत्क्षणे बद्धं सौबद्धं धर्मशासनम् ॥ ४७१ ॥
स विहारं प्रविदधे हारपुण्यं फलं श्रियः ।
लोकनाथसमायुक्तं भिक्षुसंघसमाचितम् ॥ ४७२ ॥
ततः परोपदेशार्थी रत्नचन्द्रमतेर्गिरा ।
स चकार धराधीशो विधिना स्नानसाधनम् ॥ ४७३ ॥
ज्वलितं सिकताकूटं सोऽपश्यत्स्नेतमूर्निगः ।
सुहृत्स्वेत्यभिहितः स्वप्ने विकटैर्दंष्ट्रपाणिभिः ॥ ४७४ ॥

---

१. 'सदा जयेत्' ख. २. 'मिताक्षरा' ख.

दत्तं माक्षिकतापात्रं धूतकेलिजुषा त्वया ।
ब्राह्मणाय क्षुधार्ताय तस्यायं फलसंचयः ॥ ४७५ ॥
दशकोटीः सुवर्णस्य दत्त्वामूद्धतकिल्बिषः ।
इति श्रुत्वा प्रबुद्धस्तु गुरवे स न्यवेदयत् ॥ ४७६ ॥
तद्वाक्यात्काञ्चनं दत्त्वा पुनः स्वप्नविधिं व्यधात् ।
भूयस्तदेव च स्वप्ने ददर्शोत्कम्पिताशयः ॥ ४७७ ॥
हृते विप्रस्य हेमांशे चौरैस्तदफलं गतम् ।
दशकोटीः पुनर्दत्त्वा हेम्नोऽभूद्धतकल्मषः ॥ ४७८ ॥
ततो बुद्धकथाजातं भिक्षुः स्वैरं तमभ्यधात् ।
नरेन्द्र दानं वीराणामुत्साहः सिद्धये सताम् ॥ ४७९ ॥
पुरा वराहरूपस्थो निधिसत्त्वः कृपानिधिः ।
धर्माय सिंहरूपाय स्वं वपुर्भोजनं ददौ ॥ ४८० ॥
हेलोच्चालानिलालोलजलकल्लोलचञ्चलैः ।
प्राणैः पुण्यवतामेव प्रणयिप्राणपूरणम् ॥ ४८१ ॥
इत्यादि बुद्धसंबद्धां कथामाकर्ण्य भूपतिः ।
स बभूवार्थिसार्थानां जङ्गमः कल्पपादपः ॥ ४८२ ॥
अथाभ्येत्य ययाचे तं विप्रः कोऽप्यङ्गुलीयकम् ।
रक्षामि राक्षसाविष्टं पुत्रमित्यनिवारितः ॥ ४८३ ॥
रक्षारत्नाङ्गुलीयं तस्माद्ददौ तस्मै स सत्त्वधीः ।
पूर्णरत्नार्थिनां सत्यं सन्ति चिन्तामणिश्रियः ॥ ४८४ ॥
राजपुत्रस्ततोऽभ्येत्य विनीतमतिमभ्यधात् ।
सगोत्रशात्रवाञ्जेतुं खड्गं साश्रमयाचत ॥ ४८५ ॥
तद्दत्तेनाथ खड्गेन राज्यं शत्रोर्जहार सः ।
हृतराज्यः परोऽभ्येत्य विनीतमतिमभ्यधात् ॥ ४८६ ॥

१. 'निद्रिमास्यपि' ख. २. 'बोधिसत्त्वः' ख. ३. 'बौ' ख. ४. 'नाम मूर्ता चिन्तामणिश्च यः' ख. ५. 'तमिन्दुकलशाभिधः' ख.

राजन्युष्मत्कृपाणेन हृता श्री शत्रुणा मम ।
श्रुत्वेति करुणासिन्धुस्तस्मै राज्यं निजं ददौ ॥ ४८७ ॥
त्यक्तराज्यः प्रविश्याथ सभार्यो विकटाटवीम् ।
स तपःपुण्यपीयूषैश्चक्रे नन्दनसंनिभम् ॥ ४८८ ॥
सोमश्रमाभिधं तत्र पुरुषं मर्तुमुद्यतम् ।
निवार्य दुःखार्तोऽपृच्छत्स च पृष्टस्तमभ्यधात् ॥ ४८९ ॥
पिता मे नागशूराख्यो जाते मयि पुराशृणोत् ।
चौरस्ते तनयो भावी न चिरादिति योगिनः ॥ ४९० ॥
ततो विद्याविदं चक्रे स मां यत्नेन वत्सलः ।
विद्या ह्यकृत्रिमो दीपः संमोहतिमिरे नृणाम् ॥ ४९१ ॥
ततोऽहमभवं चौरस्तद्द्विषा पतितो वशे ।
ललाटे कर्मपटे केन लिखितं को निवर्तयेत् ॥ ४९२ ॥
ज्ञातः कालेन राज्ञा हि निबद्धोऽहं च तत्क्षणात् ।
दैवाद्भिश्रष्टनागेन्द्रकल्लोलेन विमोचितः ॥ ४९३ ॥
गजकोलाहलव्यग्रं तीर्णोऽहं जनमण्डले ।
अथापगेत्य पितरौ मच्छोकात्त्यक्तजीवितौ ॥ ४९४ ॥
ततोऽहमपि तद्दुःखार्तो मर्तुमिदं वनम् ।
दृष्टः कारुण्यसपूर्णधिया देव्या वनश्रिया ॥ ४९५ ॥
विनीतमतिसंस्थानपुण्येऽस्मिन्पुत्र कानने ।
क्षीणं ते पातकं गच्छ तस्मात्पारमितां शृणु ॥ ४९६ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मया दृष्टो भवान्पुरः ।
भगवन्ब्रूहि मे पुण्यां सम्यक्पारमिताकथाम् ॥ ४९७ ॥
इत्याकर्ण्य कृपासिन्धुर्विनीतमतिराश्रमम् ।
नीत्वा तमवदज्ज्ञानलोचनालोकिताखिलः ॥ ४९८ ॥
विचार एव जन्तूनां सदा सन्मार्गदर्शकः ।
स च स्फुरति तत्त्वेन नहि मायाकृतात्मनाम् ॥ ४९९ ॥

---

१ 'नृप' ग. २ 'पर्पटे' ख. ३ 'कोलाहलविमो' ख.

पाञ्चालेष्वभवद्विप्रो देवभूतिरिति श्रुतः।
भोगदत्ताभिधानस्य भार्याभूद्धर्मचारिणी॥ ५००॥
पत्यौ स्नानाय निर्याते शाकावचयनिर्गता।
सापश्यत्खरमारामे रजकेन निवेशितम्॥ ५०१॥
स तया वारितो यष्ट्या भीतः श्वभ्र इवापतत्।
पततः स्फुटिता तस्य सशब्दा जानुनालिका॥ ५०२॥
रजकोऽपि तमालोक्य खरं खञ्जीकृतं तया।
तां मुष्टिभिर्जघानाशु लगुडैश्च घनेन सः॥ ५०३॥
च्युतो गाढप्रहारेण गर्भस्तस्याः सशोणितः।
द्विजोऽप्यागत्य तद्दृष्ट्वा नगराधिपतिं ययौ॥ ५०४॥
वृत्तं पुराधिनाथोऽसौ श्रुत्वा रजकविप्रयोः।
न्यायं विचार्य सुचिरं ततो वक्तुं प्रचक्रमे॥ ५०५॥
उभयोरयमन्यायो ब्राह्मण्या रजकस्य च।
खरो विडम्बितो यच्च गर्भो यत्पातितोऽमुना॥ ५०६॥
वस्त्रभारं वहत्वेषे खरस्यास्थ्यावधि द्विजः।
आधत्तां रजको गर्भं ब्राह्मण्यां यत्नमास्थितः॥ ५०७॥
इति न्यायविदो वाक्यं श्रुत्वा पुरपतेर्द्विजः।
सभार्यो विषपानेन बभूव सहसा व्यसुः॥ ५०८॥
स च राज्ञः पुरपतेर्निगृहीतो विनष्टधीः।
इत्येवं दुर्विनीतानां श्वभ्रपातः समे पथि॥ ५०९॥
तस्माद्विचारमास्थाय शृणु पारमितां कथाम्।
यया भवत्यमलधीर्न्यस्तसंसारवासनः॥ ५१०॥
मलयप्रभनामाभूत्कुरुक्षेत्रे महीपतिः।
श्रीमानिन्दुप्रभो नाम त्यागरत्नाकरः सुतः॥ ५११॥

१. 'पाथवोऽपि' ख. २. 'बलापुराधिनाथो' ख. ३. 'ऽनया प्रापितो यद्गर्भोऽस्याः पातितोऽमुना' ख. ४. 'पा खरस्त्वम्भो गर्वेद्विज.' ख. ५. 'चाराणां च नु यानं समे पथि' ख. ६. 'तावयाम्' ख. ७. 'स्फुटन्' ख. ८. 'पुरा मलयनामाभू' ख. ९. 'श्रव-णेन्द्रशो मा' ख. १० 'सु' ख.

स कदाचिज्जनपदं दुर्भिक्षेण निपीडितम् ।
[1]संतार्य त्यागसत्त्वाभ्यां व्रतैः शक्रमतोषयत् ॥ ५१२ ॥
तद्वरात्कल्पवृक्षोऽभूत्सर्वाशापूरणस्तदा ।
[2]तत्प्रसादाद्दिवं सर्वे कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ५१३ ॥
सशरीरा ययुः सत्यं सिद्धये स हि पादपः ।
इत्येवं दानशीलस्य चिरं कल्पतरुस्थितेः ।
तस्य कीर्तिः पताकेव विभात्येषा त्रिमार्गगा ॥ ५१४ ॥
[3]तापपीयूषजलदस्तिमिरध्वंसभास्करः ।
दानं हि नाम संसारे निदानं शुभसंपदाम् ॥ ५१५ ॥

इति दानपारमिता ॥ ११ ॥

विन्ध्ये शुकसहस्रान्तः शुको हेमप्रभोऽभवत् ।
तस्य चारुमतिर्नाम प्रतीहारोऽभवच्छुकः ॥ ५१६ ॥
कदाचित्तस्य निहता जालकैर्वल्लभा शुकी ।
स तद्वियोगसंतप्तः प्रतीहारः कृशोऽभवत् ॥ ५१७ ॥
तं वीक्ष्य विरहोन्मत्तं शीलवाञ्शुकभूपतिः ।
तस्यामलं सरो गत्वा प्रतिबिम्बमदर्शयत् ॥ ५१८ ॥
आत्मनः प्रतिबिम्बं च तस्य चान्तर्जले स्थितम् ।
निर्दिश्योवाच तं पश्य प्रियामन्येन संगताम् ॥ ५१९ ॥
एता मुहूर्तशालिन्यः क्रूराः संध्या इव स्त्रियः ।
दर्शयन्ति तमः पश्चात्प्रलयावर्तभीषणम् ॥ ५२० ॥
अहो नु सरलः पन्थाः कोऽप्ययं जडचेतसाम् ।
यद्गतानुगच्छन्ति मत्स्यपुच्छग्रहाः स्त्रियः ॥ ५२१ ॥
योषिद्भिर्विप्रलब्धानां शोचतां जनसंसदि ।
शीलं जैनभयेनेव दूरं यात्ययतात्मनाम् ॥ ५२२ ॥

---

१. 'स तपोऽभ्याससत्त्वा' ख. २. 'दिवं तदाज्ञया स' ख. ३. 'सोप्यपी' ख.
४. 'गताः' ख. ५. 'लज्जाम' ख.

सर्वे कङ्कणकेयूरकुण्डलप्रतिमा गुणाः।
शीलं त्वकृत्रिमालोके लावण्यमिव भूषणम् ॥ ५२३ ॥
इत्येवं शुकराजेन स शीले विनिवेशितः।
बभूव मनसा ध्यात्वा त्यक्तमन्मथविक्रियः ॥ ५२४ ॥

इति शीलपारमिता ॥ १२ ॥

अभूच्छुमनयो नाम मुनिः केदारकन्दरे।
चौरास्तदाश्रमोपान्ते नालमन्त हृतं धनम् ॥ ५२५ ॥
दाम्भिकोऽयं वृथा मौनी चौराणामपि चौर्यकृत्।
उक्त्वेति चक्रुस्ते कोपाच्च हीनचरणेक्षणम् ॥ ५२६ ॥
दस्युभिर्निगृहीतं तं नृपतिः शेखरद्युतिः।
शिष्यः प्राप्तः प्रणामाय ददर्श पतितं क्षितौ ॥ ५२७ ॥
चारचक्षुस्ततश्चौरांस्तानानीय्य स भूपतिः।
दिदेश तद्वधं क्रुद्धस्तथामन्यत नो मुनिः ॥ ५२८ ॥
यतात्मना ते च तेन रक्षिता राजशासनात्।
चौरा ययुः स च प्राप मुनिः सिद्धिमनुत्तमाम् ॥ ५२९ ॥
पुण्यतीर्थमनायासं क्लुप्तद्रव्यडम्बरः।
अशोषणं शरीरस्य क्षमा नाम परं तपः ॥ ५३० ॥
क्षेत्रं त एव पुण्यस्य भाजनं यशसां च ते।
प्ररूढा हृदये येषां क्षान्तिवल्ली महाफला ॥ ५३१ ॥

इति क्षान्तिपारमिता ॥ १३ ॥

शिशुर्मालाधरो नाम ब्राह्मणो दक्षिणापथे।
ददर्श नभसा यान्तं ज्वालिसिद्धकुमारकम् ॥ ५३२ ॥
तं दृष्ट्वा तालपक्षाभ्यां कृतवारमानं परिष्कृतम्।
आकाशे गमनाभ्यासं व्यधादुत्साहनिर्भरः ॥ ५३३ ॥

---

१. 'शुभं' ख. २ 'प्राणान्समादाय' ख. ३. 'साथ महीपतिः' ख. ४. 'यतात्मा-मना तेन' ख. ५. 'मनः' ख.

ततो यदृच्छया यातो भगवान्वरदो गुहः ।
तं दृष्ट्वा बालकृपया चकार व्योमगामिनम् ॥ ५३४ ॥
इति सोत्साहधैर्याणां स्वयं सिद्धिः प्रजायते ।
उत्साहो धर्मवीर्याणां मूलं सत्त्वमहातरोः ॥ ५३५ ॥

इति [1]धैर्यपारमिता ॥ १४ ॥

अभून्मलयमालीति वणिक्कर्णाटदेशजः ।
सुतां कदाचित्सोऽपश्यदिन्दुकेसरभूपतेः ॥ ५३६ ॥
अमन्दानन्दनिष्पन्दसुन्दरेन्दुनिभाननाम् ।
स तामिन्दुयशां नाम दृष्ट्वाभूत्स्मरपीडितः ॥ ५३७ ॥
दुर्लभेयमिति ज्ञात्वा चित्रकारेण सुन्दरीम् ।
कृत्वा तु फलके तुल्यां स तां नित्यमपूजयत् ॥ ५३८ ॥
स तद्ध्यानपरः सर्ववृत्तिनिर्वाणनिश्चलः ।
अवाप्तः कामपि सुखं तस्थौ रागपरायणः ॥ ५३९ ॥
तां ततो भावनाक्रान्तो वासनालिखितां पुरः ।
अपश्यत्परिसर्पन्तीं लतां वाताकुलामिव ॥ ५४० ॥
चन्द्रोदये नवोद्याने तां निधा[3]य जगाम सः ।
तदर्थं पुष्पमाहर्तुं कमलोर्चसभूषणम् ॥ ५४१ ॥
ततो यदृच्छया यातः [4]संगतो विनयद्युतिः ।
अदृश्यो वीक्ष्य तं मूढं सर्पं चित्रपटेऽलिखत् ॥ ५४२ ॥
स च पुष्पाण्यथादाय दृष्ट्वा सर्पं प्रियान्तिके ।
सत्त्वसंयुक्तां प्रदध्यौ तां पुरो लीलाभिसारिणीम् ॥ ५४३ ॥
निहतामथ सर्पेण पतितावयवां भुवि ।
विलोक्य निश्चलध्यानः स शुशोच सुलोचनाम् ॥ ५४४ ॥
हा प्रिये हा मनःसिन्धुचन्द्रिके क्व गतासि मे ।
विलप्येति स वृक्षाग्रादुत्ससर्ज निजां तनुम् ॥ ५४५ ॥

---

१–२. 'धी' ख. ३. 'ना' ख. ४. 'सु' ख.

रक्षितो बोधिसत्त्वेन तेनैव च विबोधित ।
असत्यभावनामात्र मूढोऽस्मीति विवेद स ॥ ५४६ ॥
यदेवानन्यमनसा ध्यान मुग्धाननाम्बुजे ।
तत्सधाम्नि यदि स्यात्तु भवेऽस्मिन्क पुनर्भवेत् ॥ ५४७ ॥
तत स शासन पुण्यमर्हता दर्शने स्थित ।
विरतेच्छाभयद्वेषो भेजे ससारशातनम् ॥ ५४८ ॥
स कदाचिन्नरपतेस्तामेवेन्दुयश सुताम् ।
दृष्ट्वा विरक्तस्ता माया स्मृत्वा साश्रुसुखोऽभवत् ॥ ५४९ ॥
तत पृष्टो नरेन्द्रेण तस्मै सर्व निवेद्य स ।
जगाम कानन ध्याननिवृत्त सह भूभुजा ॥ ५५० ॥
इत्येव ध्यानयोगेन भावित दृश्यते पुर ।
सर्वेन्द्रियसमापत्तिलीनाना ज्ञानसचयै ॥ ५५१ ॥

इति ध्यानपारमिता ॥ १५ ॥

सिंहलद्वीपवसतिश्चौरोऽभूत्सिंहविक्रम ।
स कालेन जरा प्राप्य पपात नरक निजम् ॥ ५५२ ॥
न शर्वविष्णुशक्राणा मद्भक्तिर्गणनास्पदम् ।
विचिन्त्येति सदा धीमाश्चित्रगुप्तमपूजयत् ॥ ५५३ ॥
त्रैलोक्यमस्सचारचीत्कारकृतलेखया ।
जगन्ति यैर्निवर्त्यन्ते कायस्थास्तान्नमेन्न क ॥ ५५४ ॥
विज्ञाय दृढभक्त त पुनर्ज्ञातु तदाशयम् ।
तद्गृह ब्राह्मणो भूत्वा चित्रगुप्तस्ततोऽविशत् ॥ ५५५ ॥
स तत्र भोजितस्तेन प्रीत स्वस्त्ययनोन्मुख ।
प्रार्थितो विप्रतुष्टो मे चित्रगुप्तो भवत्विति ॥ ५५६ ॥
तन परीक्ष्य बहुशो भार्यादानेऽप्यविक्रियम् ।
समायु क्षाममवदच्चित्रगुप्त स्वरूपधृत् ॥ ५५७ ॥
तुष्टोऽह तव कस्याण क्षीणमायुस्तु दुर्लभम् ।
तथापि युक्तिमाश्रित्य करिष्यामि हित तव ॥ ५५८ ॥

पारे समुद्रक्षेत्रस्य राजर्षेः शिवशासनात् ।
तपोवनतरङ्गिण्याः पारे मृत्युर्न बाधते ॥ ५५९ ॥
तदेहि वत्स तं देशमित्युक्त्वा तं निनाय सः ।
तत्र स्थितोऽसौ कालस्य दुर्लङ्घ्यो मनसाप्यभूत् ॥ ५६० ॥
याते वर्षसहस्रेऽथ कृतान्तो यत्नमास्थितः ।
विधाय मायाललनामाचकर्ष तमुत्सुकम् ॥ ५६१ ॥
तरङ्गिण्याः परं पारं प्राप्तं तं काममोहितम् ।
आकृष्य कालः पाशेन निनाय यममन्दिरम् ॥ ५६२ ॥
पृष्टोऽवदच्चित्रगुप्तो धर्मराजेन तद्गतिम् ।
भक्तो ममायमित्यन्तः कल्यंल्लेखिनीकरः ॥ ५६३ ॥
नरके नास्ति संख्यास्य दिनमेकं द्विजार्चनात् ।
स्वर्गभोगस्तु तत्पूर्वं स्वर्गं यात्वेष दुर्मतिः ॥ ५६४ ॥
इति तद्वचसा नाकं प्रयातस्तेन शिक्षितः ।
तत्र लिङ्गार्चनपरस्तस्थौ क्षपितकल्मषः ॥ ५६५ ॥
दग्धे शिवार्चनाच्चस्य पातके त्रिदिवस्थितेः ।
परिज्ञानसमाधानादभवो विभवोऽभवत् ॥ ५६६ ॥
इति प्रज्ञावता तेन चौरेण कुशलस्थितिः ।
प्राप्ता प्रज्ञामृते पुंसां बन्धुरन्यो न विद्यते ॥ ५६७ ॥

इति प्रज्ञापारमिता ॥ १६ ॥

इति पारमिताः श्रुत्वा विनीतमतिना स्वयम् ।
कथिताः सोमशूरोऽभून्मुनिस्तस्मिंस्तपोवने ॥ ५६८ ॥
अत्रान्तरे समभ्यायाद्विजितो भूमिपात्मजः ।
तेनेन्दुकलशाख्येन विनीतमतिकाननम् ॥ ५६९ ॥
स तत्र क्षुत्परिश्रान्तः सामात्यो निःसहोऽभवत् ।
वनं च निष्फलच्छायं तदभूदिन्द्रमायया ॥ ५७० ॥

---

१. 'द्विजः' फ.

ततः श्वभ्रे निपतितं कृत्वात्मानं महामृगम्।
विनीतमतिरर्थिभ्यस्तेभ्यो भोजनतामगात् ॥ ५७१ ॥
राजपुत्रेण भुक्ते वै मृगे तस्मिन्नशङ्कितम्।
वह्निं निपेततुस्तुल्यं विनीतमतिवल्लभे ॥ ५७२ ॥
तज्ज्ञात्वा राजपुत्रोऽपि सामात्योऽग्निं समाविशत्।
सोमशूरस्तु योगेन तनुमुत्सृष्टुमुद्ययौ ॥ ५७३ ॥
ततो मायाकृतं सर्वमित्युक्त्वा पाकशासनः।
पीयूषेणाखिलेषांस्तान्समस्तान्समजीवयत् ॥ ५७४ ॥
विनीतमतिरासाद्य जीवं बोधमथो ययौ।
दिव्यं तपोवनं श्रीमान्सर्वसत्त्वहितोद्यतः ॥ ५७५ ॥
इत्येवं संगताः पूर्वं पैत्रतामपि ते गताः।
किं चित्रं भविता व्यक्तं जीवतां वः समागमः ॥ ५७६ ॥

इति विनीतमत्याख्यायिका ॥ १७ ॥

जरत्पुलिन्दतापस्याः श्रुत्वेत्यहमवाप्तधीः।
नागशापकृतां मूर्च्छां शनैः किंचिदिवात्यजम् ॥ ५७७ ॥
ततो दुर्गां प्रणम्याहं प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्।
संप्राप्तः शबरैस्तैः समरे संप्रहारिभिः ॥ ५७८ ॥
क्षणेन निहतानेकपुलिन्दक्षतविग्रहः।
त्वत्पादमूलमानीतस्तैरहं सुकृतैरिव ॥ ५७९ ॥
मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति हृष्टः सचिवसंगमात्।
गन्तुमुज्जयिनीं चक्रे प्रस्थानाभिमुखं मनः ॥ ५८० ॥
त्वया दुर्गपिशाचो मे दातव्योऽस्मिन्समीहिते।
चण्डालराजः साहाय्ये सगामङ्गेति तत्पुरम् ॥ ५८१ ॥
मायावटुं सहामात्यो ययावुज्जयिनीं प्रति।
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं स शशाङ्कवतीं स्मरन् ॥ ५८२ ॥

---

१. 'पूरः' क. २. 'म त्वमेव चिते गमाः' क. ३. 'द्विलैः स' क. ४. 'शर' क.

(विन्ध्याटवीमथासाद्य दीर्घां वेणीमिवावनेः ।
तमालतालहिन्तालविशालसरलाकुलाम्) ॥ ५८३ ॥
पथि सुप्तोत्थिताः प्रातर्ददृशुस्ते पटावृतम् ।
शयानमेकं पथिकं दीर्घाध्वश्रमपीडितम् ॥ ५८४ ॥
ईषदंशुकमुद्घाट्य तं विचित्रकथं ततः ।
अपश्यन्नमृतास्वादतत्समागमनिर्वृताः ॥ ५८५ ॥
निवेद्य निजवृत्तान्तं स पृष्टस्तैरुवाच तान् ।
अप्यहं नागशापेन जवात्क्वापि निपातितः ॥ ५८६ ॥
ततोऽपश्यं पुरवरे मणिकाञ्चनमन्दिरे ।
वधूभ्यां सहितं दिव्यं पुरुषं रत्नभूषितम् ॥ ५८७ ॥
दुर्लभार्थिजने तत्र तेनाहं पूजितो भृशम् ।
मद्वृत्तान्तं समाकर्ण्य सान्त्वितः स्नानभोजनैः ॥ ५८८ ॥
तद्वधूवचसा ज्ञात्वा तमहं यक्षनायकम् ।
अपृच्छं शास्त्रनयनो वियोगव्याधिभेषजम् ॥ ५८९ ॥
स मामुवाच वातूलतूलावर्तनिवर्तिनाम् ।
नृणां भवे भवन्त्येव वर्त्म दिष्ट्या समागमाः ॥ ५९० ॥
अयमादेहपर्यन्तं कोऽपि व्याधिरभेषजः ।
वियोगसारे संसारे प्रेम प्रियजनेषु यत् ॥ ५९१ ॥
अस्मिन्वाराङ्गनाभङ्गिरिङ्गद्भ्रूभङ्गभङ्गुरे ।
कः संयोगवियोगाभ्यां नोन्मज्जति निमज्जति ॥ ५९२ ॥
यक्षेणापि मया पूर्वं वत्स मानुषजन्मनि ।
सुखदुःखपराधृचिरनुभूता सुदुःसहा ॥ ५९३ ॥
पवित्रधननामाभूत्त्रिगर्तविषये द्विजः ।
स निर्धनो वनं गत्वा भेजे मन्त्रेण यक्षिणीम् ॥ ५९४ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क. पुस्तके त्रुटितः. २. 'हम्य' क. ३. 'दृष्टनष्टाः न' क. ४. 'भ्य नि' क.

स संगतो मृगदृशा सौदामिन्याख्यया तथा।
लेभे श्रियं सुविपुलां रतिं च रतिलालसः॥ ५९५॥
स तां कदाचिदवदत्त्वत्प्रसादान्मम प्रिये।
संभोगसुभगः कोऽपि हर्षः प्रीणाति मानसम्॥ ५९६॥
संपूर्णसर्वसंकल्पं त्वत्तः पुत्रं सुलोचने।
प्राप्तुमिच्छामि पुण्यानां संतोषैकफलं फलम्॥ ५९७॥
इति भर्तुर्वचः श्रुत्वा सावदन्मञ्जुवादिनी।
रागं मूर्तमिवाधाय बिम्बाधररुचा पुरः॥ ५९८॥
अहं पृथूदराख्यस्य तमालवनवासिनः।
सुता सौदामिनी नाम यक्षेन्द्रस्य धनश्रियः॥ ५९९॥
अट्टहासाभिधानस्त्वं कान्तो यक्षकुमारकः।
वृतः पुरा मया हर्षनिर्भरः पितुराज्ञया॥ ६००॥
अत्रान्तरे धनपतेर्विधाय सदृशं वपुः।
भ्रात्रा दीप्तशिखाख्येन नलकूबररूपिणा॥ ६०१॥
लीलया रममाणं त्वां सोऽपश्यन्नलकूबरः।
स पितुः सदृशं कोपात्त्वां शशाप नभःस्थितः॥ ६०२॥
मर्त्यो भविष्यसीत्याशु प्रार्थितश्चाभ्यधात्पुनः।
दुर्वृत्तो मम रूपेण दर्पमूढो वेलापरः॥ ६०३॥
सौदामिन्यां यदा त्वं स्वं भ्रातरं जनयिष्यसि।
गर्भदीप्तशिखाभिख्यं स्वं रूपं लप्स्यसे तदा॥ ६०४॥
इति तद्वचसा क्षिप्रं त्वमिमां तनुमाश्रितः।
अहं चैतत्सखीवाक्याज्ज्ञात्वा त्वां शरणागता॥ ६०५॥
भविष्यत्यचिरादेव पुत्रः शापक्षयाय ते।
इत्युक्त्वा दीर्घकालेन प्रौढा सुतमसूत सा॥ ६०६॥

१. 'यं सकलं फलम्' ख. २. 'विवर्णजः' क. ३. 'था' क. ४. 'तत्त्वं' क. ५. 'त्वां मे दत्तं गता' क.

जाते सुते क्षीणशापः स संप्राप्तोऽट्टहासताम् ।
गूढं विप्रगृहे त्यक्त्वा पुत्रं भार्यासखो ययौ ॥ ६०७ ॥
हेमरत्नावलीपूर्णं विन्यस्तं तेन दारकम् ।
सुप्तोत्थितो द्विजः प्राप सभार्यो देवदर्शनः ॥ ६०८ ॥
वह्नेर्वराद्धर्मवता तेन दारिद्र्यदुःखिना ।
धनेन सह संप्राप्तः पुत्रः श्रीदर्शनाभिधः ॥ ६०९ ॥
कालेन सर्वविद्याभिः कलाभिश्च कृतास्पदः ।
शस्त्रास्त्रयुद्धकुशलो बभूव कृतिनां वरः ॥ ६१० ॥
कदाचिदथ जाह्नव्या यमुनाशबले जले ।
त्यक्त्वा तनुं दिवं याते संपुण्यैर्देवदर्शने ॥ ६११ ॥
दुःखाद्वह्निं प्रविष्टायां ब्राह्मण्यां बन्धुवर्जितः ।
श्रीदर्शनो द्यूतदोषादमूल्कालेन निर्धनः ॥ ६१२ ॥
स पांशुधूसराकारैः शून्यस्थण्डिलशायिभिः ।
बाहूपधानैर्दिग्वस्त्रैर्द्यूतकारैः समीकृतः ॥ ६१३ ॥
त्यक्ताहारो निरालम्बो मूकः श्रीदर्शनोऽभवत् ।
अनिशं निश्चलध्यानमास्तो योगिदशामिव ॥ ६१४ ॥
मर्तुकामं तमालोक्य सखा मुखरकाभिधः ।
उवाच बत धीरोऽपि विद्वानपि विमुह्यति ॥ ६१५ ॥
अहो विवेकिनः कोऽपि तवापि[1] हृदयभ्रमः ।
यत्त्वमर्थरजो लुब्धः शरीरं त्यक्तुमुद्यतः ॥ ६१६ ॥
अयमेव सदोपायो भाविकल्याणसंपदाम् ।
त्रिवर्गसाधनं देहं रक्षेदापत्सु यो बुधः ॥ ६१७ ॥
अनेनैव शरीरेण सखे किं नाम नाप्यते ।
सर्वार्थसिद्धिरत्नानां क्रयविक्रयभूरियम् ॥ ६१८ ॥
वितस्तेत्यस्ति तटिनी मोक्षश्रीहारवल्लरी ।
रिङ्गत्तरङ्गभ्रूभङ्गैस्तर्जयन्तीव कल्मषम् ॥ ६१९ ॥

१. 'प्राप्य' क. २. 'मं' क.

तयास्ति लोलल्लहरीक्षाल्यमानरजोव्रजम् ।
काश्मीरमण्डलं नाम मण्डलं सर्वसंपदाम् ॥ ६२० ॥
यस्मिन्नारीकपोलेषु कान्तिकन्दलितोर्मिषु ।
बिम्बागतः शशी धत्ते सुधागर्भसुखं पुनः ॥ ६२१ ॥
तीक्ष्णं तपति नोष्णांशुः करैः कुसुमकोमलैः ।
दैवेव यत्र लावण्यनवनीतेन निर्मिता ॥ ६२२ ॥
सूक्तापितारणत्कारहारनूपुरमेखलः ।
नृत्यतीव कवीन्द्राणां यत्र वक्त्रे सरस्वती ॥ ६२३ ॥
तत्र भूनन्दनामाभूद्भूपतिर्भूषणं भुवः ।
कर्पूरगौरो यद्बाहुरधाच्छेष इव क्षितिम् ॥ ६२४ ॥
कदाचिच्छर्वरीशेषे स द्वादश्यामुपोषितः ।
स्वप्ने नयनपीयूषां ददर्शासुरकन्यकाम् ॥ ६२५ ॥
प्रबुद्धस्तन्मयध्यानः सोऽभवन्मन्मथातुरः ।
संसारे संवृतिः स्वप्नो रागस्तेनापि रागिणाम् ॥ ६२६ ॥
सहसा निर्जिताशेषभुवनेन मनोभुवा ।
स नीतः काममपि दशां शोकदो मन्त्रिणामभूत् ॥ ६२७ ॥
आत्रेऽथ वसुनन्दाय राज्यं सचिवसंमते ।
दत्वा ययौ स तपसे विशोकां शोकनाशिनीम् ॥ ६२८ ॥
क्रमसाराभिधं यत्र पुण्यं विष्णुपदं सरः ।
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्राणां यत्र शैलात्मना स्थितिः ॥ ६२९ ॥
यत्र विष्णोर्बलिजये ताराकिङ्किणिकाकुलः ।
पादो गङ्गादुकूलाङ्कः प्रयातः केतुदण्डताम् ॥ ६३० ॥
स तत्र तीव्रतपसे निनाय नियतः समाः ।
एकादशीं दशामन्तःस्थायिनीं मान्मथीं दधत् ॥ ६३१ ॥
कदाचिदथ तं देशमायातः शंकरोपमः ।
तपस्वी भृगुजा तेन पृष्टः प्राह निजां कथाम् ॥ ६३२ ॥

१. 'वक्त्रोज' क.  २. 'विरति' क.

यजुषो दाक्षिणात्यस्य तनयोऽहं द्विजन्मनः ।
विभूतिवसुराचार्यपदं प्राप्तः शिवागमैः ॥ ६३३ ॥
श्रीपर्वते तपोयोगाद्दृष्टः साक्षादुमापतिः ।
मया प्रणम्य पृष्टश्च फलसिद्धिमुवाच सः ॥ ६३४ ॥
बाणयुद्धे पुरा वृत्ते प्राप्ता द्वारवतीमुखा ।
अनिरुद्धेन सहिता ल्लनोद्यानभूमिषु ॥ ६३५ ॥
उद्यानरसिकं ज्ञात्वा वल्लभं मत्तकामिनी ।
पातालोपवनं सा तं निनाय विधिनिर्मितम् ॥ ६३६ ॥
नीतं तया सुतं ज्ञात्वा प्रद्युम्नः पुत्रवत्सलः ।
पप्रच्छ कृष्णं भगवन्कानिरुद्ध इति स्मयन् ॥ ६३७ ॥
कैटभारिस्तमवदत्पातालोपवने स्थितः ।
अनिरुद्धः समं बाणपुत्र्या मन्मथलालसः ॥ ६३८ ॥
पुत्र पातालमार्गोऽस्ति काश्मीरेषु बिलद्वयम् ।
एकं वितस्तासलिले प्रकटं भुवि चापरम् ॥ ६३९ ॥
तत्राशु प्रकटद्वारि रक्षा काचिद्विधीयताम् ।
केलिसक्तोऽनिरुद्धोऽसावसुराश्च बहुच्छलाः ॥ ६४० ॥
ततः शौरेर्वचः श्रुत्वा प्रद्युम्नः प्राप्य तं बिलम् ।
पिधाय गिरिशृङ्गेण तुष्टाव त्र्यक्षवल्लभाम् ॥ ६४१ ॥
जयति प्रणतामर्त्यमौलिनीलमणित्विषा ।
भृङ्गपङ्क्त्येव कलितं देव्याः पादाम्बुजद्वयम् ॥ ६४२ ॥
जयत्यहर्निशं स्मेरा गौरी चिद्व्योमचन्द्रिका ।
विबोधकैरववनप्रकाशानन्दसुन्दरी ॥ ६४३ ॥
पादपातो विजयतां देव्यास्ताण्डवडम्बरे ।
यस्य नूपुरपर्यन्ते शोणरत्नायते रविः ॥ ६४४ ॥ ॥
मृडान्याः शूलदण्डोऽसौ जयत्यान्दोलितो मुहुः ।
भाति यः सर्वदैत्यासृक्पानक्षीबः स्खलन्निव ॥ ६४५ ॥

१. 'लाशो' फ. २. 'मय' फ. ३. 'द्दति' फ. ४. 'दण्डपादी' फ.

अट्टहासः स जयति काल्याः शुभ्रांशुमण्डलैः ।
येन भैरवतां नीतं मुण्डखण्डैरिवाम्बरम् ॥ ६४६ ॥
खड्गो जयति रुद्राण्या यस्य बिम्बात्मना रणे ।
छेत्तुमन्तः प्रविष्टानि वक्त्राणीव सुरद्विषाम् ॥ ६४७ ॥
जयत्युदञ्चद्ब्रह्माण्डं लड्डुमरुकोद्भटम् ।
क्रीडाकलितकङ्कालकरालं भैरवीवपुः ॥ ६४८ ॥
दुर्गा जयति यत्कोपे दंष्टः स महिषासुरः ।
तन्मुखेन्दुकरस्पृष्टस्तमःकूट इवामरैः ॥ ६४९ ॥
जयत्यतः कमलिनीकन्दकुण्डलिनी मुहुः ।
नादभ्रमरसंयुक्ता मधुबिन्दुविराजिता ॥ ६५० ॥
जयति ब्रह्मकङ्कालमालाकलितशेखरा ।
रुद्रस्यानेककल्पान्तगणनेव मनःप्रिया ॥ ६५१ ॥
भगवत्याः स्तोत्रम् ॥ १८ ॥

इति पुत्रस्य रक्षार्थं प्रद्युम्नेन स्तुता सती ।
चकार सारिकारूपा सहसा तस्य संनिधिम् ॥ ६५२ ॥
अद्यापि दृश्यते देवी शिलारूपेण सारिका ।
प्रद्युम्नशिखरे सिद्धैः सेव्यमाना सहानुगा ॥ ६५३ ॥
देवीं प्रणम्य प्रद्युम्ने याते द्वारवतीं ततः ।
कालेन मुनिशापाच्च क्षयं यातेषु वृष्णिषु ॥ ६५४ ॥
सहंसा दैत्यकान्ताभिरगा पातालमन्दिरे ।
स्थितेत्युक्त्वा त्रिनयनः सिद्धिं मे विपुलां ददौ ॥ ६५५ ॥
पञ्चभिः सहितः शिष्यैः प्रवेष्टुमहमुद्यतः ।
बिलं तदेहि राजेन्द्र मया ज्ञातं त्वदीप्सितम् ॥ ६५६ ॥
उक्त्वेति भूनन्दस्ततो गत्वा काश्मीरमण्डलम् ।
अवाप्य सारिकाकूटं संपूज्य च यथाविधि ॥ ६५७ ॥

१. 'कार्ये' क. २. 'द' क. ३. 'प्र' क. ४. 'ध्या' क. ५. 'न्न' क. ६. 'व' क. ७. 'हिम' क.

वितस्तासलिले बुद्ध्वा प्रयतो मन्त्रसर्षपैः ।
विवृतं सलिलद्वारमात्मना सप्तमोऽविशत् ॥ ६५८ ॥
घोरान्धकारं निस्तीर्य दिनैः पञ्चभिरश्रमः ।
पातालगङ्गां सोऽपश्यच्छेषच्छायामिवोज्ज्वलाम् ॥ ६५९ ॥
सदा प्रचण्डमार्तण्डतापाद्दुर्गमहीभृतः ।
मूलादिव स्रुतां स्फारस्फटिकस्यन्दवाहिनीम् ॥ ६६० ॥
कृष्णपक्षे क यातीन्दुर्नयनानन्दबान्धवः ।
इति पातालमन्वेष्टुं प्रविष्टामिव चन्द्रिकाम् ॥ ६६१ ॥
विलोक्य रावणत्रासाल्लक्ष्मीं कण्ठावलम्बिनीम् ।
आनन्दशायिनः शौरेर्लीलाहासच्छटामिव ॥ ६६२ ॥
स्नानाद्गतक्रमास्तस्यां गत्वा दूरं क्रमेण ते ।
अपश्यन्राजतं चारु सरो हेमाब्जभूषितम् ॥ ६६३ ॥
रत्नपादपसंछन्नं हेमपक्षिकृतारवम् ।
विधेरपूर्वनिर्माणचित्रपत्रावलम्बनम् ॥ ६६४ ॥
सुमेरुशिखरप्रख्ये प्रासादे तत्र काञ्चने ।
ते पूजयित्वा श्रीकण्ठं हेमाब्जैर्हाटकेश्वरम् ॥ ६६५ ॥
ददृशुर्विद्रुमतरुं हेमशाखं महाफलम् ।
हेरम्बं विघ्नसंघातैः स्थितं तत्र तदात्मना ॥ ६६६ ॥
तत्फलं भक्षयित्वैको वारितोऽपि तपस्विना ।
शिष्यः स्थावरतां यातो द्वितीयः फलतामपि ॥ ६६७ ॥
शेषान्निवार्य यत्नेन शिष्यान्भूमिभुजा सह ।
सोऽपश्यत्कनकोदारप्राकारप्रवरं पुरम् ॥ ६६८ ॥
विज्ञाय स समौ मेषौ स्थितौ द्वारि प्रहारिणौ ।
स हत्वा मन्त्रदण्डेन सानुगोऽविशदन्तरम् ॥ ६६९ ॥
रत्नभित्तिसमुत्कीर्णविराजच्छालभञ्जिके ।
वैडूर्यस्तम्भविन्यस्ततप्तहाटकजालिके ॥ ६७० ॥

दीप्तायुधसहस्रोग्रभटाधिष्ठितगोपुरे ।
तत्रोपविश्य माणिक्यवल्लीललितकानने ॥ ६७१ ॥
क्षणं बद्धसमाधानो विघ्नजातं निवार्य सः ।
अपश्यद्विवृतद्वारनिर्गतं चेटिकागणम् ॥ ६७२ ॥
ताभिः सप्रणयं दृष्टमार्गास्ते विविशुस्ततः ।
पुरं दानवकन्यानां रक्षाक्षेत्रं मनोभुवः ॥ ६७३ ॥
ददृशुस्तेऽथ दैत्येन्द्रकन्याः कमललोचनाः ।
मण्डलेषु मिथो यासां कपोलाः केलिदर्पणाः ॥ ६७४ ॥
स्वमहष्टमथापश्यद्भूनन्दो मृगलोचनाम् ।
कान्ताराच्छादनं यस्या रत्नभूषणसंचयः ॥ ६७५ ॥
कर्णोत्पलं कटाक्षश्रीर्हारो यस्याः स्मितच्छविः ।
लावण्यमङ्गरागश्च पुनरुक्तमतः परम् ॥ ६७६ ॥
तनुवल्ली वसन्तेन मदोद्यानशिखण्डिनाम् ।
विलासहंससरसा तारुण्येन तरङ्गिता ॥ ६७७ ॥
तां वीक्ष्य भूपतिः सोऽभूद्भूयैः प्रमदविस्मयः ।
अभिषिक्तः स्मरेणेव स्वेदवारिसुधारसैः ॥ ६७८ ॥
ततस्तमाह रम्भोरूः सा शनैर्मञ्जुवादिनी ।
दन्तांशुभिर्दर्शयन्ती नवप्रातालचन्द्रिकाम् ॥ ६७९ ॥
मदर्थं देव सुचिरं खिन्नोऽसि क्षम्यतां विभो ।
अथवा सापराधेऽपि सतां दृष्टिः प्रसादिनी ॥ ६८० ॥
इत्युक्त्वा भ्रूविलासेन निजदासीं दिदेश सा ।
तत्कालस्फालितेनेव कार्मुकेण मनोभुवः ॥ ६८१ ॥
इङ्गितज्ञा तदादेशात्संभ्रमाराविनूपुरा ।
दासी निनाय तं पानक्रीडायै नलिनीतटम् ॥ ६८२ ॥

---

१. 'यानं विनायकम्' क. २. 'न्ति' क. ३. 'मेनव' क. ४. 'रि' क. ५. 'दैर्शरा' क. ६. 'गु' क.

तत्रापश्यत्तरुलतालम्बिमर्त्यकलेवरैः ।
वापीं रुधिरसंपूर्णां वसाविपुलकर्दमाम् ॥ ६८३ ॥
रत्नपात्रेण तत्पानं सा गृहीत्वा पुनः पुनः ।
नृपं पिब पिबेत्याह न पपौ स च कूणितः ॥ ६८४ ॥
त्यजतो ध्रुवमश्रेयो भवतीति तयार्थितः ।
नाददे सा त्र तत्पात्रं तस्य मूर्ध्नि न्यपातयत् ॥ ६८५ ॥
नीत्वा च तं परां वापीं चिक्षेप विमले जले ।
निमग्नश्चोन्ममज्जासौ कूर्मसारसरस्तटे ॥ ६८६ ॥
स्वप्नदृष्टमिवाशेषं ततः स्मृत्वा शुशोच सः ।
फूत्कृत्येव विधिप्राप्तं पश्चात्तापमुपागतः ॥ ६८७ ॥
ततस्तस्यासुरपुरीसंक्रान्तामोदशालिनः ।
गात्रे शिलीमुखाः पेतुः स्मरचापच्युता इव ॥ ६८८ ॥
कामाग्निमलिनाङ्गारैरिव व्याप्तः स षट्पदैः ।
धूताग्रपाणिर्नो लेभे शर्म मर्माहतो यथा ॥ ६८९ ॥
अत्रान्तरे समभ्येत्य कश्चिन्मुनिकुमारकः ।
तमब्रवीत्कृपाविष्टो वैक्लव्यं नृप मा गमः ॥ ६९० ॥
कृष्णाजिनं गृहाणैतद्भृङ्गजालनिवारणम् ।
एकभक्तेन सततं न त्वया कारणत्रयी ।
आराधिता समदृशा तेन विघ्नस्तवोत्थितः ॥ ६९१ ॥
ब्रह्मोपेन्द्रत्रिनेत्राणामभेदाराधनान्नृप ।
अवाप्स्यसि चिरेणैव कान्तां तां दैत्यकन्यकाम् ॥ ६९२ ॥
मुनिसूनोरिति श्रुत्वा भूनन्दस्तन्मते स्थितः ।
विधाय सर्वं पातालं वीतविघ्नः पुनर्ययौ ॥ ६९३ ॥
तत्र पूर्णेन्दुवदनां प्राप्य तामसुराङ्गनाम् ।
भेजे मनोभवस्मेरः सविलासरसोत्सवम् ॥ ६९४ ॥

१. 'ग्रत' क. २. 'सुक ए' क. ३. 'निधि' क. ४. 'प्राप्य सुखप्रदैः' क. ५. 'धूताग्रिपा' क. ६. 'दत्त्व' क. ७. 'मदो' क.

इत्येवमविनष्टेषु शरीरेषु मनोरथाः ।
पूर्यन्ते वेधसा पुंसां सखे किं परितप्यसे ॥ ६९५ ॥
इति भूनन्दाख्यायिका ॥ १९ ॥

श्रुत्वा मुखरकस्येति लेभे श्रीदर्शनो धृतिम् ।
वैमल्यं मानसं याति सन्मतेः कतकैरिव ॥ ६९६ ॥
ततो भुक्त्वा तदानीतं मितं श्रीदर्शनो ययौ ।
तेनैव सह शर्वर्यां देशान्तरमलक्षितः ॥ ६९७ ॥
म्लाने माने धने याते स्वजने शत्रुतां गते ।
स्वदेशावस्थितिः पुंसां निदर्शनविडम्बना ॥ ६९८ ॥
अट्टहासोऽवदद्दूराददृश्यः श्रेयसे सुतम् ।
इतस्त्वं त्वरितं गच्छ श्रीसेनं मालवेश्वरम् ॥ ६९९ ॥
कितवेभ्यः कृतस्तेन सर्वकामप्रदो मठः ।
स्वयं स द्यूतकारोऽभूद्बाल्ये वयसि विश्रुतः ॥ ७०० ॥
परव्यथां न जानाति यो ह्यदृष्टस्ववेदनः ।
गृहे निधीकृतं भूमौ मातुस्ते रत्नभूषणम् ॥ ७०१ ॥
विद्यते तच्च पाथेयं गृहाण शुभमाप्स्यसि ।
इति पित्रा समादिष्टो यक्षेणादृष्टमूर्तिना ॥ ७०२ ॥
स व्रजन्बहुसस्याढ्यं ग्रामं प्राप सुहृद्वृतः ।
तृष्णाकुलस्तत्तडागतटं प्राप्तां सुलोचनाम् ॥ ७०३ ॥
सोऽपश्यत्कन्यकां कामकेलिकाननवल्लरीम् ।
सा पृष्टा कौतुकात्तेन बभाषे हरिणेक्षणा ॥ ७०४ ॥
सुताहं पद्मगर्भस्य पद्मिष्टाख्या द्विजन्मनः ।
भ्राता मुखरको नाम ममाभूद्गुणिनां वरः ॥ ७०५ ॥
द्यूतव्यसनसंतापाद्याते तस्मिन्दिगन्तरम् ।
मया सह समन्वेष्टुं भ्रान्तस्ततोऽखिलां भुवम् ॥ ७०६ ॥

१. 'नम्' क. २. 'व्यसनविप्लु' क. ३. 'धापितम्' क. ४. 'द्रुतः' क.

कालेनेमां महीं प्राप्तः स चौरेण हतो निशि ।
इहाखे चौरराजासौ वसुभूतिर्द्विजाधमः॥ ७०७ ॥
पुत्राय दातुं च हृता तेनाहं पापबुद्धिना ।
स च सार्थममेमाथाय मत्पुण्यैस्त्वत्सुतो गतः ॥ ७०८ ॥
अस्मिन्ससंशये स्थाने युवयोः किं भविष्यति ।
इत्यासदुःखादधिकस्तापो मे हृदि वर्तते ॥ ७०९ ॥
श्रुत्वेति तस्याः संकल्पं ज्ञात्वा तामेव सोदराम् ।
ययौ मुखरको मोहं पितृमल्यर्दुःखितः ॥ ७१० ॥
श्रीदर्शनेन सहसा संसिक्तः शीतवारिणा ।
संज्ञामवाप्य भगिनीं स तां बालामसान्त्वयन् ॥ ७११ ॥
विधाय कृतकास्वास्थ्यं ततः श्रीदर्शनो निशि ।
आनाय्य तस्मै चौरं च तत्सर्वं स्वधनं ददौ ॥ ७१२ ॥
मुमूर्षोः किं वधेनास्य येन मे कल्पितं धनम् ।
तस्मिन्मृते ग्रहीष्यामि चिन्तयित्वेति दस्युपः ॥ ७१३ ॥
प्रतिश्रयं गृहोपान्ते ददौ तस्य विधेर्वशात् ।
गृहीत्वा तौ च पद्मिष्ठां जग्मतुः सधनौ निशि ॥ ७१४ ॥
ततो महाटवीं प्राप्य भिक्षित्वा यक्षयोषितम् ।
अवाप्य भोजनं यातौ मालवाधिपतेः पुरम् ॥ ७१५ ॥
स्वसारमथ यद्दिष्टां प्रीतो मुखरको ददौ ।
श्रीदर्शनाय तौ दृष्ट्वा सानुरागौ परस्परम् ॥ ७१६ ॥
ततः प्रविश्य श्रीसेनपुरं वृद्धनिकेतने ।
श्रितास्ते शुश्रुवुर्भूपं यक्ष्मव्याधिनिपीडितम् ॥ ७१७ ॥
प्राप्तो मध्रपरस्तस्य क्षयव्याधिनिवृत्तये ।
उवाच सिद्धिर्नास्त्येव द्वितीयं साधकं विना ॥ ७१८ ॥
इत्युक्ते तेन सततं यत्नेनापि परीक्षितः ।
न लभ्यते यदा धीरस्तदा नृपतिरभ्यधात् ॥ ७१९ ॥

---

१. 'मोपाय' क. २. 'मोहितः' क. ३. 'तस्करः' क. ४. 'निक्षिप्ता' क. ५. 'म' क.

कश्चिदन्विष्यतां धीरो द्यूतकारो मठे मम।
सत्त्वसाहसधैर्याणां कितवः क्षेत्रमेव यत्॥ ७२०॥
अत्रान्तरे मठं प्राप्तः स राज्ञे विनिवेदितः।
श्रीदर्शनो मन्त्रसिद्ध्यै सहायो हेलयाभवत्॥ ७२१॥
सह मन्त्रधरेणाथ श्मशानं भीरुभञ्जनम्।
निशि प्राप्य चकर्षासौ मठकं तदनुज्ञया॥ ७२२॥
अपरः कोऽपि चाभ्येत्य तमेव चिरसाधकः।
बलादुल्लोठितनरस्त्वरितो नेतुमुद्ययौ॥ ७२३॥
ताभ्यामाकृष्यमाणोऽसौ रुराव विकृतं शवः।
(घोरारवेण तेनाभूत्त्यक्तासुः पूर्वसाधकः॥ ७२४॥
श्रीदर्शनः शवं प्राप्य हत्वादाय मृतं च तम्।
ययौ मन्त्रधराभ्याशं चितावलयभीषणम्॥ ७२५॥
विन्यस्ते तेन मठके तत्र यागस्थले क्षणात्।)
होता तदानने मन्त्री नरास्थ्यस्तकचौ व्यधात्॥ ७२६॥
ततो ज्वालाकुलमुखश्चक्रे कुहकहारवम्।
मठकस्तेन सहसा व्यसुर्मन्त्रधरोऽभवत्॥ ७२७॥
श्रीदर्शनोऽपि तं घोरं महावेतालसुत्थितम्।
दृष्ट्वा निगीर्णं तेनैव तं च मन्त्रधरं पुरः॥ ७२८॥
ततो गणैः समभ्येत्य तत्र निद्राकुलोऽथ सः।
नीतः स्वनगरीवेश्म संकल्पैरिव शीघ्रगैः॥ ७२९॥
प्रतिबुद्धः स्मरशरैरुत्सृजद्धैर्यविभ्रमः।
चक्रारूढमिवात्मानं मेने तां सुन्दरीं स्मरन्॥ ७३०॥
तामप्यभिनवानङ्गकम्पसंपत्तरङ्गिताम्।
तत्पिता ज्ञातवृत्तान्तो दृष्ट्वा चिरमचिन्तयत्॥ ७३१॥

१. 'भोजन' क. २. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः क. पुस्तके त्रुटितः. ३. 'करौ' क. ४. 'पर' क. ५. 'दर्शन' क.

([१]नामावली भूषणेषु यस्येयं परिदृश्यते ।
श्रीदर्शनः स नृपतिर्दूरस्थो ज्ञायते कथम् ॥ ७३२ ॥
ध्यात्वेति ब्रह्मसोमाख्यं व्रतिनं ज्ञानलोचनम् ।
पुत्र्याः समीहितप्राप्त्यै गूढं राजा व्यजिज्ञपत् ॥ ७३३ ॥
अन्येषु सर्वकार्येषु सिद्धिर्न) सततं भवान् ।
अस्मिन्समीहिते पुत्र्याः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७३४ ॥
इति भूमिपतेर्वाक्यात्क्षिप्रमेव स खेचरः ।
श्रीदर्शनपुरीं प्राप्य गणेशायतनं ययौ ॥ ७३५ ॥
तत्र प्रणम्य विघ्नेशं संपत्कमलिनीरविम् ।
स्तुतिं स चक्रे निर्यग्रमग्रतग्रस्तग्रवाक् ॥ ७३६ ॥
गजाननं नमाम्युग्रविघ्नवज्रनिबर्हणम् ।
[२]गजतुण्डाग्रभुजगावनद्धकटिमण्डलम् ॥ ७३७ ॥
मदाम्बुसिक्तदंष्ट्रांशुव्याप्तं स्तौमि गणेश्वरम् ।
जाह्नवीयमुनावारिक्रीडाशौण्डमिवानिशम् ॥ ७३८ ॥
नौमि फूत्कारविक्षिप्तकुम्भसिन्दूरसंचयम् ।
दैत्यक्षयाकालसंध्यां सृजन्तमिव शांकरीम् ॥ ७३९ ॥
नौमि क्षिपन्तं मधुपान्कर्णतालानिलैर्मुहुः ।
हेरम्बं दन्तचन्द्रांशुदीर्णध्यान्तकणानिव ॥ ७४० ॥
नमामि तं गणाधीशं क्रीडासु गलगर्जितैः ।
ताण्डवाडम्बराचार्यो यः षण्मुखशिखण्डिनः ॥ ७४१ ॥
इति स्तुत्वा गणपतिं ब्राह्मणोऽसौ यदृच्छया ।
प्राप्तमुन्मादवणिजं चकार स्वच्छविग्रहम् ॥ ७४२ ॥
राजधानीं प्रविश्याथ श्रीदर्शनमवाप्य सः ।
निवेद्य सर्वं वृत्तान्तं हंसद्वीपं निनाय तम् ॥ ७४३ ॥

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. २. 'जगन्निधानभुजगानुकारीकलमण्डलम्' ख.

तत्र पित्रा वितीर्णां तामवाप्यानङ्गमञ्जरीम्।
महोत्सवे स्मरस्मेरः कंचित्कालमुवास सः॥ ७४४॥
अतिना नभसा नीतः समार्यः स्वपुरं ततः।
आकृष्टखड्गस्तं हन्तुमुद्ययौ कोपकम्पितः॥ ७४५॥
प्रसाद्य च ददौ तस्मै वेतालः सितसर्षपान्।
श्रीदर्शनस्तैर्नृपतिं प्रातर्वीतक्षयं व्यधात्॥ ७४६॥
संदर्श्य तं मन्त्रधरं मठकस्योदरे मृतम्।
स्वस्थोऽथ नृपतिस्तस्मै सत्त्वसाहसशालिने॥ ७४७॥
यौवराज्यं ददौ स्वल्पदानलज्जानताननः।
सुराज्यसुखसंभोगसंभावितमनोभवः॥ ७४८॥
यद्दिष्टावदनाम्भोजषट्पदः सुखमौ तदा।
कदाचिदथ विचेशविभवो वणिजां वरः॥ ७४९॥
उपेन्द्रशक्तिनामा तं देशं सार्थैः समाययौ।
श्रीदर्शनाय स ददौ दर्शनार्थमुपायनम्॥ ७५०॥
समुद्रोर्मिसमुत्सृष्टं हेरम्बं हेमविग्रहम्।
तं प्रतिष्ठाप्य विधिवन्मन्त्रज्ञैः स द्विजन्मभिः॥ ७५१॥
प्रासादे रत्नरचिते चक्रे यात्रामहोत्सवम्।
साक्षात्संनिहितस्तत्र गणैः सह गणाधिपः॥ ७५२॥
(श्रीदर्शनश्रिये तोषाददिदेश गणान्नहः।
हंसद्वीपाधिनाथस्य तनयानङ्गमञ्जरी॥ ७५३॥
मद्वराद्भाविनी भार्या न चिराच्चक्रवर्तिनः।)
अयमेवास्तु दयितस्तस्या मद्विहितोदयः॥ ७५४॥
तद्विधाने गणास्तूर्णं वर्तध्वं सहिता इति।
रत्नपर्यङ्कसंसुप्तो निशि श्रीदर्शनः स तैः॥ ७५५॥
हंसद्वीपं क्षणान्नीतो ददर्शानङ्गमञ्जरीम्।
शशिनः क्षयरक्षायै निर्मितामिव वेधसा॥ ७५६॥

---

१. 'दि' क. २. 'य' क. ३. 'रपः' क. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

पीयूषवापीमम्लानवक्त्रनेत्रसरोरुहाम् ।
हारवल्लीमिव रतेर्विलासहसितोज्ज्वलाम् ॥ ७५७ ॥
कटाक्षशबलच्छायां रत्नमालामिव द्युतेः ।
कन्दर्पकेलिहरिणीमिव विस्तीर्णलोचनाम् ॥ ७५८ ॥
विलासालससंचारां शृङ्गारकरिणीमिव ।
अङ्गजां कान्तितटिनीममलां कान्तिकौमुदीम् ॥ ७५९ ॥
अबलां विजितानेकनाकनायककामिनीम् ।
वपुषा सौष्ठववपुषा हारिणीं हरिणीदृशम् ॥ ७६० ॥
लीलालकान्तां तां कान्तां वीक्ष्य सोऽभूदनङ्गभूः ।
तया स्वैरं समागम्य लीलाविनिमयं व्यधात् ॥ ७६१ ॥
निजनामाङ्कमाणिक्यभूषणो तां सविस्मयः ।
निखिलां पृथिवीं जित्वा चक्रवर्ती बभूव सः ॥ ७६२ ॥
कालेन साथ पञ्चिष्ठा सा च द्वीपेश्वरात्मजा ।
द्विजेन स्मारिते जातिं यक्षीरूपमवापतुः ॥ ७६३ ॥
पद्मदर्शननामानं तथैवानङ्गदर्शनम् ।
धृत्वा राज्ये सुतौ ताभ्यां वनं श्रीदर्शनोऽभ्यधात् ॥ ७६४ ॥
ततस्ताभ्यां समभ्येत्य यक्षीभ्यां काननस्थितिः ।
वल्लभः स्मारितो जातिं सोऽभवद्यक्षनायकः ॥ ७६५ ॥
अट्टहासानुजः सोऽहं यक्षो दीप्तशिखाभिधः ।
कृतानुयात्रे सर्वत्र ते चेमे मम वल्लभे ॥ ७६६ ॥
अस्मिन्नसारे संसारे सततं पुत्र देहिनाम् ।
भवन्ति सुखदुःखानि मा विषादे मनः कृथाः ॥ ७६७ ॥
इत्यहं तेन वात्सल्याद्वीतदुःखः शनैः कृतः ।
कालेन तदनुध्यानाद्बवद्धिश्च समागतः ॥ ७६८ ॥
विचित्रकथसमागमः । इति श्रीदर्शनाख्यायिका ॥ २० ॥

---

१. 'हारावली' क. २. 'रक्षायां' क. ३. 'भा' क. ४. 'एषा' क. ५. 'रतां' क.

विचित्रकथवृत्तान्तमिति श्रुत्वा सविस्मयः।
मृगाङ्कदत्तः परमां प्रीतिं प्राप सहानुगः॥ ७६९॥
ततस्तेन सहान्यैश्च स[1] विवेश महद्वनम्।
तमालतालवलयश्यामलीकृतदिङ्मुखम्॥ ७७०॥
उत्तुङ्गतरुसंघातरुद्धसूर्यांशुमण्डलम्[2]।
इन्द्रनीलशिलास्तम्भं तिमिरस्येव मन्दिरम्॥ ७७१॥
उत्फुल्लफुल्लशबलं खगभृङ्गीतरङ्गितम्।
बर्हिबर्हावलीनीलं केशपाशमिव क्षितेः॥ ७७२॥
तत्र सान्द्रलतापुञ्जनिकुञ्जे कुञ्जराधिपम्।
ददर्श मृगसंघानामिव संकेतमण्डपम्॥ ७७३॥
([3]मनुष्यवच्चित्रगिरा भाषमाणं पुरः स्थितम्।
नरमन्धं मुहुः प्रेम्णा समाश्वास्य फलाम्बुभिः॥ ७७४॥
अपूर्वमथ संलापं[4] श्रुत्वा गजमनुष्ययोः।)
मृगाङ्कदत्तः प्रोवाच सचिवान्विस्मयाकुलः॥ ७७५॥
अहो बत मनुष्योऽयमचक्षुः करिणासकृत्।
संभाष्यते बन्धुरिव प्रेम्णा दत्त्वा फलोदकम्॥ ७७६॥
प्रचण्डशक्तिसदृशः पुरुषो[6]ऽयं स एव वा।
[5]शृणुमस्तावदित्युक्त्वा किमेतद्वदतो मिथः॥ ७७७॥
मृगाङ्कदत्तवचनादिति तेषु लतान्तरे।
स्थितेषु गूढं स गजस्तमन्धं प्रणतोऽवदत्॥ ७७८॥
अहं जन्मान्तरे राजपुत्रो भ्रातृवधेच्छया।
कृतघ्नस्त्रिनेत्रस्य शापात्प्राप्तोऽद्य हस्तिताम्॥ ७७९॥
ब्रूहि तावत्स्ववृत्तान्तं पूज्यस्त्वमतिथिर्मम।
इति पृष्टो गजेन्द्रेण प्राहान्धो बाष्पगद्गदः॥ ७८०॥

---

१. 'प्रवि' ख. २. 'कदलीपुञ्जरुद्धसूर्यांशुमण्डलम्' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ४. 'परस्परायं' ख. ५. 'शृणुष्वमनयोस्तूर्णं किमेतौ वदतो मिथः' ख. ६. 'मि' ख.

अह मृगाङ्कदत्तस्य सचिवो वत्सम सवे ।
प्रचण्डशक्तिर्नागस्य शापाद्यातो दशामिमाम् ॥ ७८१ ॥
वृत्तान्तमात्मन सर्वं कथयत्यथ तेन स ।
(प्रार्थितो द्विरद प्राह नि श्वस्य पृथु पूत्कृतम् ॥ ७८२ ॥
राठायामभवद्भूप श्रीमानुग्रभटाभिध ।
अमून्मनोरथा नाम भार्या तस्य मनोरमा) ॥ ७८३ ॥
कदाचिदथ नानादिग्देशसंचारचञ्चुर ।
नर्तक कालको नाम त नृप द्रष्टुमाययौ ॥ ७८४ ॥
तत्सुता लासिका नाम तस्याग्रे वसुधापते ।
ननर्ताद्दितरैरुप्टवनिताकारभूमिका ॥ ७८५ ॥
अमृताहरण सत्यमनया तु कृत सुत् ।
कुतोऽन्यथा करोत्येषा लावण्यनयनामृतम् ॥ ७८६ ॥
इति संचिन्त्य ता राजा निदधे वल्लभापदे ।
एतदेव श्रिय सार यत्कामो न विमृश्यते ॥ ७८७ ॥
स तया कण्ठलग्निन्या लावण्योत्सवशील्या ।
मदावलेप शुशुभे हरीव वनमालया ॥ ७८८ ॥
ततो मनोरमाख्याया ज्येष्ठो भीमभटाभिध ।
लासिकाया च समरभट शार्यवता वर ॥ ७८९ ॥
इति पुत्रेष्टियोगेन पुत्रौ प्राप स पार्थिव ।
(स्पर्धानुबन्धसंनद्धौ भीमदुर्योधनाविव) ॥ ७९० ॥
कलाभि शस्त्रविद्याभिरमृद्भीमभटोऽधिक ।
सौभाग्यातिशयान्मातुर्द्वितीयस्तु पितु प्रिय ॥ ७९१ ॥
तत कीटानियुद्धेन भ्राता स्फोटितमस्तकम् ।
रक्ताक्त लासिका दृष्ट्वा पुत्र राज्ञे न्यवेदयत् ॥ ७९२ ॥

१. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठ क पुस्तके त्रुटित १. व धूर्त क. ३ 'निहत्य' क.
'एतत्कोष्टान्तर्गतपाठ' क पुस्तके त्रुटित ५. 'सुभग प्रि' क.

तत्कोपाकुलितो राजा निरस्यान्तःपुरात्सुतम्।
ज्येष्ठं कनीयसश्चक्रे राजपुत्रान्सहानुगान्॥ ७९३॥
पितुः प्रसादाद्दर्पान्धो राजपुत्रः स तैर्वृतः।
सोऽवमेनेऽग्रजं मूढो भस्मच्छन्नमिवानलम्॥ ७९४॥
मित्रं भीमभटस्यासीच्छद्मदत्ताभिधो द्विजः।
तच्चित्तदर्पणतले स्वचित्तमिव वि[2]म्बितम्॥ ७९५॥
ततो देशान्तरायातं वणिजस्तुरगोत्तमम्।
भीमो जग्राह मूल्येन जम्भारेरिव विस्मृतम्॥ ७९६॥
निजस[3]त्त्वमिवात्युच्चं संकल्पमिव शीघ्रगम्।
वडवाकामुकमिव प्राप्तं मार्तण्डमण्डलात्॥ ७९७॥
तुरङ्गरत्नमालोक्य भ्रातुस्तल्लासिकासुतः।
ममायमिति दर्पान्धो हर्तुमभ्याययौ बलात्॥ ७९८॥
तदर्थं सुभटान्हत्वा शद्मदत्तसखो युधि।
तस्यानुगं वधप्राप्तं न तं भीमभटोऽवधीत्॥ ७९९॥
ततो ययौ पितुर्भीत्या स रात्रौ सुहृदा सह।
मात्रा दत्तं समादाय रत्नभूषणसंचयम्॥ ८००॥
तुरगाभ्यां व्रजन्वेगाद्विवेश विषमं वनम्।
सुप्तसिंहगुहोपान्तसंकुचद्वरवारणम्॥ ८०१॥
तत्रोच्चखुरटङ्कारप्रबुद्धैर्हरिणारिभिः।
निहताश्वो ययौ पद्भ्यां सुहृदाश्वासितः शनैः॥ ८०२॥
जाह्नवीतटमासाद्य प्रभाते श्रमकर्षितः।
ददर्श नीलकण्ठाख्यं विप्रं व्रतिपदे स्थितम्॥ ८०३॥
युवा वृद्धोचिताचारः पृष्टो राजसुतेन सः।
उवाच धनवैकल्यात्स्थितो नाहं गृहाश्रमे॥ ८०४॥

१. 'प्रौढस्तस्थौ छन्नः शिवालये' क.　२. 'चिन्तितः' क.　३. 'वित्त' क.
४. 'वगाम्' क.　५. 'सुतो' क.　६. 'ययौ गत्वा भुजाक्षेपैर्विप्रं' क.

इति श्रुत्वाखिलं तस्मै दत्त्वा रत्नविभूषणम् ।
भीमो वयस्यसहितस्तुं गङ्गां समुचयौ ॥ ८०५ ॥
उत्फुल्लफेनपटलां साट्टहासामिवांसाम् ।
सताण्डवामिवोद्दण्डवीचिदोर्दण्डमण्डले ॥ ८०६ ॥
तौ प्रविष्टौ त्रिपथगां भुजाक्षेपैः ससर्पतुः ।
क्षिपन्तौ रत्नकटकच्छायागवलितं पयः ॥ ८०७ ॥
आन्दोलितं कुण्डलनीलरत्नविभा मुहुः ।
सेवालवल्लीजालं पर्यन्तानिव रेजतुः ॥ ८०८ ॥
ततः प्रालेयसकाशैः पुष्करावर्तशालिभिः ।
दूरं हृतः शङ्खदत्तः सलिलैर्बहुनिम्नैः ॥ ८०९ ॥
पारं भीमभटः प्राप्य मित्रेणाशु विनाकृतः ।
शोकान्धकारमग्नचक्रवाक इवातुरः ॥ ८१० ॥
संपत्सु केलिसदनं व्यसनेषु समाश्रयः ।
कोशो विश्रम्भचर्चासु किं नाम न सुहृत्नृणाम् ॥ ८११ ॥
स तद्वियोगसतप्तः शेमुमात्मानमम्भसि ।
समुद्ययौ प्रियभ्रंशो धीरैरपि न सह्यते ॥ ८१२ ॥
ततः साक्षाद्भगवती गङ्गा कान्तितरङ्गिता ।
तं प्राह साहसं पुत्र मा कृथा मित्रमाप्स्यसि ॥ ८१३ ॥
इमां च प्रतिलोमाख्यां दिव्यविद्यां गृहाण मे ।
यया भवन्ति सहसा यथेच्छा रूपवृत्तयः ॥ ८१४ ॥
इत्युक्त्वा दन्तकिरणैः क्षालयन्तीव दिक्तटीम् ।
ददौ सुरनदी विद्यां तस्मै स्वेच्छाकृतिप्रदाम् ॥ ८१५ ॥
ततो प्रवर्धधैर्यसारो निर्गोत्साहरतेः स्थितः ।
स लाटविषयं प्राप विषयं सर्वसंपदाम् ॥ ८१६ ॥

---

१ निराम्' ख  २ 'गुम्फारश्मी' ख  ३ मा ख  ४ शोवा' ख 'या ख  ६ 'प्रतिर मातुगमाभ्या दिव्यां विद्या गृ' ख  ७ य ख

तत्रासौ लाटललनाकटाक्षोत्पलदामभिः ।
[1]भूष्यमाण इवापश्यद्द्यूतशालां सकौतुकः ॥ ८१७ ॥
स्वजानुसंधिविन्यस्तकपोलैर्निश्चलेक्षणैः ।
पराजये हहाकारकराहतमहीतले ॥ ८१८ ॥
अधिक्षेपपरासक्तैः शपथाकोपकम्पिभिः ।
[2]वक्रानेकाङ्गविन्यासपरैः कलकलाकुलैः ॥ ८१९ ॥
भुजङ्गैरिव सोच्छ्वासैः पथिकैरिव धूसरैः ।
उन्मत्तैरिव दिग्वस्त्रैर्व्यसनैरिव [3]धिक्कृतैः ॥ ८२० ॥
कितवैर्हेलया तत्र द्यूतकेलिं विधाय सः ।
जित्वा धनं ददौ तेभ्यः परादानेष्वशिक्षितः ॥ ८२१ ॥
न वयं याचकतया पात्रं ते द्रविणार्पणे ।
इत्युक्त्वा तत्सुहृद्भूत्वा वसुदत्तोऽग्रहीद्धनम् ॥ ८२२ ॥
तेन संजातविश्रम्भं समपृच्छत्कथान्तरे ।
स्वैरं भीमभटो वृत्तं स च पृष्टोऽभ्यभाषत ॥ ८२३ ॥
बभूव शिवदत्ताख्यो द्विजन्मा हस्तिनापुरे ।
तस्याहं वसुदत्ताख्यस्तनयः प्राप्तदुर्नयः ॥ ८२४ ॥
स कदाचिन्मम पिता सदाकलहशीलया ।
गृहिण्या विहितोद्वेगो देशं [5]देहमिवात्यजत् ॥ ८२५ ॥
गते तस्मिन्मम वधूः सा निष्कारणकोपना ।
तैस्तैः [4]सपत्न्यालापैश्च मामत्यन्तदुःखिताम् ॥ ८२६ ॥
सद्भावोक्तिषु दौःशील्यं मौने [6]दर्पं श्रमे सुखम् ।
नये मायां भये दम्भं सपर्यायां च वञ्चनम् ॥ ८२७ ॥
वक्ति क्षपामविरतं दोषैरन्यस्तलोचना ।
तद्दुःखा साप्यगात्क्वापि कः सदा सहते व्यथाम् ॥ ८२८ ॥

१ 'भृष्य' ख. २ '[illegible]' ख. ३ 'दुष्टै' ख. ४ 'जाम्' ख. ५ 'गेहं' ख. ६ 'दजम्' ख.

अपरा सुहृदा वाक्यात्परिणीता मया पुनः ।
वृद्धा क्रमेण तेनैव सा निरासदुराशया ॥ ८२९ ॥
तृतीयोद्वाहविषये प्रार्थितोऽहं सुहृज्जनैः ।
गृहे दारुमयीं योषां मिथ्याभार्यामकल्पयम् ॥ ८३० ॥
कृतावगुण्ठनामन्तर्निहितामथ तां मया ।
एकाकिनीं समभ्येत्य चक्रे कलहसूचनम् ॥ ८३१ ॥
अनुत्तरामथालोक्य वधूगाम्भीर्यशङ्किता ।
कृत्वा रक्ताक्तमात्मानं चुक्रोश करुणस्वनम् ॥ ८३२ ॥
अबान्धवाहं क्षुपया निहतेत्युच्चवादिनी ।
मन्मित्रस्वजनैरेत्य पृष्टा कासौ वधूरिति ॥ ८३३ ॥
दूरात्तयैव निर्दिष्टा मया सह विलोक्यताम् ।
उद्घाट्य दारुललना जहसुस्ते सनिस्वनम् ॥ ८३४ ॥
इत्यहं दुःसहैर्मात्रा परुषैः शोषितः सदा ।
त्यक्त्वा स्वदेशमायातः स्वर्गभोगामिमां भुवम् ॥ ८३५ ॥
इह द्यूतेन विजिता पणबद्धा मयाङ्गना ।
एते चण्डभुजङ्गाद्याः कितवाः पृथुसाहसाः ॥ ८३६ ॥
इति भीमभटः श्रुत्वा तस्थौ तैः सह निर्वृतः ।
गुणिना भव्यवपुषा पृथिवीं निजमन्दिरम् ॥ ८३७ ॥
अत्रान्तरे प्रावृषेण्यपयःपूरतरङ्गिताम् ।
विपाशासलिलान्प्राप्तो मत्स्यो हस्तीव धीवरैः ॥ ८३८ ॥
ततः कोलाहलाकृष्टे प्राप्ते द्रष्टुं महाजने ।
ततो भीमभटोऽपश्यन्मीनं निर्दारितोदरम् ॥ ८३९ ॥
तन्मध्यादथ निर्यातं शङ्खदच्च विलोक्य सः ।
बभूवाचिन्तितप्राप्तेऽस्मिन्परिवृत्ते च जालिकैः ॥ ८४० ॥

१ 'सत्तोगुणा' क. २. 'त्र' क. ३ 'न पीयूषेणेव नन्दितः ॥ स तेन पृष्टः प्रोवाच निर्गीर्णोऽहं जलौकसा । अनेन मार्गेनास्मिन् कृताहारोऽन्तरास्थितः ॥ अथ

निस्तीर्णस्तामवाप्तोऽह धातु कि नाम दुर्घटम् ।
इत्युक्त्वा त परिष्वज्य तद्वृत्तान्त निशम्य च ।
शङ्कदत्तो नव सर्वं हर्षात्स्वर्गममन्यत ॥ ८४१ ॥
ततो भीमभटस्तत्र नागयात्रामहोत्सवे ।
कदाचित्सानुगोऽपश्यत्कन्यका स्नातुमागताम् ॥ ८४२ ॥
सुता हसावली नाम चन्द्रादित्यस्य भूपते ।
दासीसहस्रानुगता राका तारावृतामिव ॥ ८४३ ॥
विलोललोचनच्छायालेखनीभि स्मृताङ्कनै ।
जनस्य सकल्पपटे याभिरालिख्यते स्मर ॥ ८४४ ॥
मनोरथशताभ्यस्ता या यत्नशतसूत्रिता ।
घटितेव शशाङ्केन कान्तिस्फटिकपुत्रिका ॥ ८४५ ॥
ता विलोक्य स पञ्चेषुसरम्भाकुलितोऽभवत् ।
दुग्धाम्बुधिरिवास्फार चन्द्रकान्तितरङ्गित ॥ ८४६ ॥
सा च तद्दर्शनारम्भप्रौढोद्भिन्नमनोभवा ।
हसावली यथार्थाभूनलिनीदलशायिनी ॥ ८४७ ॥
तद्दूतीकृतसकेतो निशि भीमभटस्तत ।
कन्यकान्त पुर प्राप विद्याभ्यासादलक्षित ॥ ८४८ ॥
रत्नदीपांशुकर्पिशे दिव्यगन्धाधिवासिते ।
तत्र गान्धर्वविधिना भेजे ता चारुलोचनाम् ॥ ८४९ ॥
तत्र कम्पाकुला तत्र सा तेनालिङ्गिता मुहु ।
लज्जानिमीलनयना लेभे काममपि निर्वृतिम् ॥ ८५० ॥
आरभ्यमाणा तेनास्या मेखला मधुरध्वनिम् ।

---

'वादवाताऽस्मि परिरभ्येव जाग्रिवे । विदारितो देवयागारयामह समुपस्थित ॥ तत्र कन्यकावर्ग द्रष्टु प्राप्ता पुरोद्यमाम् । नायस्तम्भ्यगा राजतनयां स ददर्श ह ॥ स तां हंसावली नाम स्मरकेलिसराजिनीम् । विम्राणे जनसंकल्पपटे चोल्लिरयद स्मर ॥' एव घ पुस्तके पाठ

१ 'पद्मशत' घ.

चकार सुरतारम्भनाट्यप्रस्तावनामिव ॥ ८५१ ॥
तस्याः केलिकलास्रस्तकबरीकुसुमोत्थिताः ।
मञ्जुगुञ्जन्मधुकराः सीत्काराचार्यतां ययुः ॥ ८५२ ॥
धैर्यस्य यदनायत्तं लज्जाया यदगोचरम् ।
यदशिष्यं विचारस्य सुरतं तदभूत्तयोः ॥ ८५३ ॥
प्रातः प्रयाते भूपालसुते हंसावली शनैः ।
रैतारम्भसमुत्सृष्टनिद्रारुणविलोचना ॥ ८५४ ॥
विलोलिता गजेनेव नलिनी कम्पशालिनी ।
राज्ञे निवेदिता शङ्काकुलैरन्तःपुराधिपैः ॥ ८५५ ॥
राजापि यत्नादन्विष्य द्वितीयेऽह्नि समागतम् ।
परिज्ञाय ददौ तस्मै प्रियां पुत्रीं श्रिया सह ॥ ८५६ ॥
अपुत्रेण ततो राज्ञा श्रियं तेनै समर्पिताम् ।
लेभे भीमभटो लाटविषये पौरसंमतः ॥ ८५७ ॥
शङ्खदत्तादिभिः सार्धं संमन्त्र्य भ्रातुरन्तिके ।
प्राहिणोत्प्रतिराजस्य स दूतं विग्रहोत्सुकः ॥ ८५८ ॥
मिथो बलैरधिक्षेपे ज्वलन्मन्युमहानलौ ।
चक्रतुस्तौ बलाम्भोधिसज्जत्तङ्गोर्मिभीषणम् ॥ ८५९ ॥
ततो भीमभटः प्राप्य रौद्रां दृढविनिश्चयः ।
दिशश्चक्रे गजघटापुष्करावर्तसंकटाः ॥ ८६० ॥
तस्योच्चचार कल्पान्तविभ्रमो रणदुन्दुभिः ।
यत्कम्पात्पौरनारीणां चक्रन्दुरिव मेखलाः ॥ ८६१ ॥
ततः ससैन्यः समरभटो युद्धाय निर्ययौ ।
कुर्वन्खड्गप्रभाजालैर्नभो नीलाभ्रविभ्रमम् ॥ ८६२ ॥
क्षिप्रं निपेतुर्धरिपु स्वर्गसोपानमालिकाः ।

१. 'जृम्भा' ख. २. 'तन्द्रा' ख. ३. 'तस्य' ख. ४. 'राटा गुर्जेपु शोभायाम्' इति टिप्पणः. ५. 'नासीरे' ख.

लक्ष्मीकटाक्षशबलाः करवालपरम्पराः ॥ ८६३ ॥
वैरैर्वह्ना रणमुखे तेषां सुभटयज्वनाम् ।
विस्फारचापकेङ्कारमन्त्रा रेजुः करिस्वरैः ॥ ८६४ ॥
चक्रुः शिरांसि शूराणां पतितानि महीतले ।
जयश्रियो रक्तपङ्के पादन्यासोपलभ्रमम् ॥ ८६५ ॥
ततो भीमभटोऽभ्येत्य स्वयं समरशालिनः ।
रिपोश्चकर्त खड्गेन शिरो व्याकुलकुण्डलम् ॥ ८६६ ॥
विभ्राणस्तच्छिरो रेजे खड्गाग्रे क्षिप्रसंकटम् ।
दर्शयन्निव वीराणां निजवीर्यतरोः फलम् ॥ ८६७ ॥
निपातितेऽथ समरभटे भटशतानुगे ।
लेभे भीमभटो राज्यं राजमानः सुहृज्जनैः ॥ ८६८ ॥
मनोरमां प्रणम्याथ प्रहृष्टां तत्र मातरम् ।
प्रददौ शङ्खदत्ताय लाटराज्यमुदारधीः ॥ ८६९ ॥
स्वयं स्थितः स राढायां पञ्चगौडमहीपतिः ।
दिशो भीमभटः सर्वा जित्वा साम्राज्यमाप्तवान् ॥ ८७० ॥
ततः कदाचिदैश्वर्यविलासोद्यानकौमुदीम् ।
हंसावलीं सेव्यमाने तस्मिन्मधुमदाकुले ॥ ८७१ ॥
यदृच्छया समभ्यायादुग्रतेजसां निधिः ।
यद्गिरा सर्पसत्रेऽभूद्भुजङ्गानां कुलक्षयः ॥ ८७२ ॥
सदर्शनविलम्बेन राज्ञः कोपमुपागतः ।
मदद्विपो भवेत्याशु तं शशाप स रालयम् ॥ ८७३ ॥
ततः प्रसादितो यत्नान्मुनिर्भीमभटेन सम् ।
उवाच राजन्विपिने समाश्वास्य फलाम्बुभिः ॥ ८७४ ॥
मृगाङ्कदत्तसचिवं यदा त्वं तोषयिष्यसि ।

१. 'धैर्येव' क. २. 'चापे मेङ्कारप्रथमोङ्कारतां ययौ ॥ अभ्रष्टमालाहुलिकानलङ्कितमस्थगत् । भूस्पर्शसंकुचिताधन्त्रः खेचरान्तरणेरणव. ॥ तस्मिन्कोलाहले हेलायमुन्मीलित्सर्पनः । चक्रे शिरांसि धगगां' क. ३. 'समरभटे भटगुणानुगे' क. ४. 'वेगाशु' क. ५. 'स' क.

त्वंतया च निशम्यैव चक्षुष्मान्स भविष्यति ॥ ८७५ ॥
प्रचण्डशक्तिरुर्वीशं नागशापमहोदधिम् ।
आराधितस्त्वया भक्त्या पूर्वं चन्द्रार्धशेखरः ।
अतस्तवैषा शापान्ते शश्वद्गान्धर्वराजता ॥ ८७६ ॥
उक्त्वेत्यदर्शनं याते मुनीन्द्रे सोऽभवद्गजः ।
सोऽस्मेनेह कालेन त्वया पुण्यैः समागतः ॥ ८७७ ॥
कथयित्वेति नागेन्द्रो गन्धर्वः समभवत् ।
प्रचण्डशक्तिस्तद्वृत्तं श्रुत्वाभूच्च सुलोचनः ॥ ८७८ ॥
मृगाङ्कदत्तस्तच्छ्रुत्वा विलोक्य च महाद्भुतम् ।
प्रचण्डशक्तिमालिङ्ग्य प्रीतिं प्राप सहानुगः ॥ ८७९ ॥
तां शशाङ्कवतीं कान्तामचिरात्समवाप्स्यसि ।
मृगाङ्कदत्तमवदद्गन्धर्वः प्रणयादिति ॥ ८८० ॥
स्मृतमात्रः समेष्यामीत्युक्त्वा तस्मिंस्तिरोहिते ।
ध्यायन्मृगाङ्कदत्तोऽभूदानन्दामृतनिर्झरः ॥ ८८१ ॥

प्राग्जन्मपूजितमहेश्वरदिष्टदिव्य-
गन्धर्वभावसुभगेन निधाय तेन ।
सख्यं स तत्र सचिवान्समवाप्य हृष्टः
शेषाप्तये निपुणमत्र समं प्रतस्थे ॥ ८८२ ॥

प्रचण्डशक्तिसमागमः । भीमभटाख्यायिका ॥ २१ ॥

---

द्वितीयो गुच्छः ।

अथ नन्दविणाग्रा दयितानामिदर्शिणाम् ।
मृगाङ्कदत्तो विपिनं विवेश सचिवैः सह ॥ १ ॥
ततो भयाद्दृश्यमूर्तिः प्रचण्डशिखरे गिरौ ।
अनन्यजनितातीर्णैस्तप्यमान इवानिले ॥ २ ॥

---

१ 'तदा मन्त्रदृश्य शापात्स्तपद्वध नर' ख. २ 'दृश्यमान' ख.

पङ्कावगाहसनद्धमहिषे कोटरुञ्जरे ।
लोके प्रत्यग्रदिग्दाहधूमैरिव समावृते ॥ ३ ॥
जनार्दनकृतारम्भे तर्षार्जुनसमाकुले ।
कानने खाण्डव इव प्रौढदावानलाकुले ॥ ४ ॥
उपविष्ट क्षण तत्र राजपुत्रो व्यलोकयन् ।
नरेण विकृताकारेणोह्यमान नर दिवि ॥ ५ ॥
त दृष्ट्वा प्राह सचिवानेव विक्रमकेसरी ।
केनापि दूयते यत्र क्रियतामस्य मोचने ॥ ६ ॥
इति वादिनि सनद्धे स तस्मिन्स्वयमम्बरात् ।
(अवतीर्य ववन्दे तमानन्दस्यन्दसुन्दर ॥ ७ ॥
श्रुतधिप्रमुखान्सर्वान्परिष्वज्य मुदान्वित ।
सोऽथ त वाहननर प्रोवाच विकृताकृतिम्) ॥ ८ ॥
भो महासत्त्व गच्छ त्व पुनरेष्यसि मत्स्मृत ।
इति तेन विसृष्टोऽसौ जगामादर्शन क्षणात् ॥ ९ ॥
ततो मृगाङ्कदत्तस्त पप्रच्छ पृथुविस्मय ।
करालाकारविस्फार कुतोऽय सचिवस्तव ॥ १० ॥
इति तेनादरात्पृष्ट प्राह विक्रमकेसरी ।
मन प्रह्लादिर्ता दिक्षु दिशन्दशनचन्द्रिकाम् ॥ ११ ॥
अयि तस्या त्रियामाया तेन नागेन शापित ।
सर्मूच्छित परिक्षिप्त प्रांणै स्मृतमन शनै ॥ १२ ॥
तत्र पुष्करिणीतीरे तृष्णासतापपीडित ।
विश्रान्तोऽह क्षण पीत्वा जल शीतागुशीतलम् ॥ १३ ॥
ततोऽभ्येत्य भुजङ्गेन दष्ट कश्चिज्ज्वरद्विज ।
विषपर्यार्त सलिले त्यक्तुमात्मानमुद्यत ॥ १४ ॥

१. 'त्रा' ख २ 'दारा' ख. ३ एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठ ख पुस्तके त्रुटित ४. 'प्राणोऽस्म्युन्मर्षिणी' ख.

सुपर्णविद्यया सोऽथ रक्षितः कृपया मया ।
कृतज्ञः प्राह मां कोऽपि देवस्त्वं [1]सत्त्वसागरः ॥ १५ ॥
वेतालोत्थापिनीं विद्यां गृहाण त्वं मयार्पिताम् ।
अधीरे [2]तु मया [3]नैवं [4]सौपिता त्वं तु [5]धैर्यवान् ॥ १६ ॥
इति श्रुत्वाहमवदं वियुक्तस्य सुहृज्जनैः ।
विद्यया किं मम सखे ज्योत्स्नयेव [6]विवस्वतः ॥ १७ ॥
इत्यसौ मत्कथां श्रुत्वा विस्तीर्णां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
कियन्मात्रं सुहृत्सङ्गो विद्यया सर्वमाप्यते ॥ १८ ॥
श्रीत्रिविक्रमसेनोऽभूत्प्रतिष्ठानपुरे नृपः ।
रत्नाकरः प्रसूतिर्यो लक्ष्म्याः सत्त्ववतां वरः ॥ १९ ॥
यद्यशोदर्पणतले तारहारविभूषितैः ।
बिम्बितेव विभाति द्यौरिन्दुमार्तण्डकुण्डला ॥ २० ॥
रामाभिरामं तं द्रष्टुं श्रमणो नित्यमाययौ ।
इव सीताप्रहृच्छद्मप्रच्छन्नो लङ्कापतिः पुनः ॥ २१ ॥
क्षान्तिशीलाभिधानोऽसौ तस्मास्थाने ददौ सदा ।
फलं नरपतिस्तच्च कोशाध्यक्षकरेऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
इति संसेवमानस्य ययुर्भिक्षोः समा दश ।
कदाचित्तत्फलं राज्ञः प्राप केलिकपिः करात् ॥ २३ ॥
तद्दन्तदलिताचस्माद्दिव्यं रत्नं विनिर्ययौ ।
तत्कान्त्या स्फुरितः सर्वो बभूव स्नानमण्डपः ॥ २४ ॥
नृपः कोशेशमाहूय फलान्यन्यान्ययाचत ।
सोऽप्यदात्तद्रत्नचयं राज्ञे फलविनिर्गतम् ॥ २५ ॥
दत्त्वा कोशेश्वरायैव रत्नानि त्यागसागरः ।
पुनः श्रमणमायातं तं पप्रच्छ महीपतिः ॥ २६ ॥

---

१. 'धैर्यसा' क. २. 'प' क. ३. 'पा' क. ४. 'धि' क. ५. 'भूः' क.
६. 'विपक्षुरः' क.

क्षान्तिशीलव्यवसितं चित्रं ते प्रतिभाति मे ।
किं रत्नं पृथिवीमूल्यं प्राप्तुमिच्छस्यतः परम् ॥ २७ ॥
इति पृष्टो नृपतिना श्रमणः प्राह तं नरः ।
बद्धप्रतिज्ञमाधाय निजवाञ्छितसिद्धये ॥ २८ ॥
अनुल्लङ्घितमर्यादाः परायासासहिष्णवः ।
सेव्या न कस्य नृपते त्वादृशाः शौर्यसागराः ॥ २९ ॥
परार्थायोच्चैर्वपुषः सर्वाशापोषशालिनः ।
राजन्दुर्गतिमित्रस्य त्वादृशः को न याचकः ॥ ३० ॥
अस्यां कृष्णचतुर्दश्यां श्मशाने मन्त्रसाधना ।
ममास्ति काचित्तत्र त्वं द्वितीयो भव साधकः ॥ ३१ ॥
महावटतरोर्मूले स्थिते मयि निशि त्वया ।
आगन्तव्यं महावीर करवालविभूषिणा ॥ ३२ ॥
इत्याभाष्य तथेत्युक्त्वा क्ष्मापालेन प्रतिश्रुते ।
श्रमणः प्रययौ हृष्टः प्रवेष्टुं मन्त्रसाधनम् ॥ ३३ ॥
ततस्तस्यां निशि नृपः खड्गी रुचिरकुण्डलः ।
तं ययौ भूतलशशी यशोविशदचन्द्रिकः ॥ ३४ ॥
चलद्दुकूलांशुकटकच्छायाशबलिताम्बरः ।
किरीटमणिसच्छायो रत्नाद्रिरिव जङ्गमः ॥ ३५ ॥
तमालकलितोच्चसकालागरुविलेपनः ।
नीलांशुको गजच्छायायाताकार इवेश्वरः ॥ ३६ ॥
रराज नभस्तस्य तारहारकरो निशि ।
तत्कालोल्लासिवपुषा सत्त्वेनेव प्रकाशितम् ॥ ३७ ॥
कस्तूरीक्षोदलता गात्रे जयकुञ्जरता पुरः ।
मायूरच्छन्नता मूर्ध्नि मुहुस्तस्य ययौ तमः ॥ ३८ ॥
मौलिमालापरिमलव्यालीनालिकुलैर्बभौ ।
तथानागमने लक्ष्म्या सम्निवादार्थिरिव ॥ ३९ ॥

१ 'धमद्रुप' क. २ '°गतिमि' क. ३ 'वात' क.

ततः श्मशानं स प्राप निःशङ्को भूतसंकुलम् ।
सर्वापायमयं कायमिवायासशताश्रयम् ॥ ४० ॥
मस्तिष्कलिप्तशुभ्रास्थिप्रकरं लोहितासवम् ।
आक्रीडमिव कालस्य कपालचषकाकुलम् ॥ ४१ ॥
धूमान्धकारमलिनं वीरेन्द्रारावगर्जितम् ।
चञ्चच्चितामितटितं कालमेघमिवोत्थितम् ॥ ४२ ॥
गृध्रकृष्टाग्रमालाभिः कृतं प्रारम्भविभ्रमम् ।
काल्या इवोत्सवोन्मत्तकृचिकाप्रतकम्पतिम् ॥ ४३ ॥
जीर्णास्थिनलकच्छिद्रैः क्षिप्तविज्ञानमारुतम् ।
संचरद्योगिनीवृन्दनूपुरैरिव राणितम् ॥ ४४ ॥
दिक्षु प्रतिफलद्घोपस्फारहुंकारहुंकृतम् ।
त्रिजगत्प्रलयारम्भकृतोद्धारमिवान्तकम् ॥ ४५ ॥
मण्डितं मुण्डखण्डेन दुष्टकङ्कालमालिनम् ।
ज्वलच्चिताङ्गारनयनं द्वितीयमिव भैरवम् ॥ ४६ ॥
प्रत्यग्ररुधिरापूरसंपूरितवृकोदरम् ।
कर्णशल्योद्धृताराव दुःशासनवधाकुलम् ॥ ४७ ॥
संचरद्भीमपुरुषं द्वितीयमिव भारतम् ।
बहुच्छलं द्यूतमिव स्त्रीचित्तमिव दारुणम् ॥ ४८ ॥
अविवेकमिवानेकशङ्कातङ्कनिकेतनम् ।
सरोत्कटजनस्थानं घोरसर्पनखावृतम् ॥ ४९ ॥
दण्डकारण्यसदृशं मारीचरचितान्तरम् ।
आताकम्पनधूम्राक्षमेघनादविभूषणम् ॥ ५० ॥
लङ्कादाहमिवोद्भूतं जीवद्रवणविप्लवम् ।
सत्पदुःखनिलयं भूतसंपन्नदर्पणम् ॥ ५१ ॥

---

१. 'व्यसनगर्तं' क. २. 'वचविक्षमि' क. ३. 'निःशब्दसमाद' क. ४. 'डमड्डो-रक्षेरपारूपवं इतम्' क. ५. 'महोद' क. ६. 'पन्नगम्' क. ७. 'दर्शनम्' क.

बहुच्छिद्रं घनाश्लिष्टप्रेतराशिनिरन्तरम् ।
पलाशशतसंबाधं चितानिःशेषितद्रुमम् ॥ ५२ ॥
शिवाभिर्व्योमसमशिवं भ्रान्तान्तकमनन्तकम् ।
निकुम्भकुचकुम्भाभिर्विपुलश्रोणिभिर्मुहुः ॥ ५३ ॥
दिगम्बराभिर्नारीभिः कल्पिताकाण्डताण्डवम् ।
गृध्रगोमायुगहनं काककङ्ककुलाकुलम् ॥ ५४ ॥
प्रमत्तभूतवेतालं मालामेलकमालितम् ।
पिशाचशाकिनीयुक्तं लडड्डमरुमण्डलम् ॥ ५५ ॥
स्पष्टाट्टहासमर्कटं क्रीडच्चक्रेश्वरीचयम् ।
भयंकरं भयस्यापि विमोहस्यापि मोहनम् ॥ ५६ ॥
तमसोऽप्यन्धतमसं कृतान्तस्यापि कम्पनम् ।
दृष्ट्वा पितृवनं घोरं डाकिनीगणसेवितम् ॥ ५७ ॥
क्षान्तिशीलं वटतले सोऽपश्यत्कृतमण्डलम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य तं प्राह प्राप्तोऽहं करवाणि किम् ॥ ५८ ॥
इति श्रुत्वावदद्भिक्षुर्हर्षव्याकोशलोचनः ।
राजन्सत्त्ववतां धुर्य धैर्येणानेन तेऽधुना ॥ ५९ ॥
मन्ये समस्तधीराणां यशसां केतुराहितः ।
क्रोशमात्रमतिक्रम्य दक्षिणाशामुखः प्रभो ॥ ६० ॥
इतो गच्छ तमानेतुं शिंशिपोलम्बितं नरम् ।
इति तस्य गिरा राजा घोरे तमसि सोल्मुकः ॥ ६१ ॥
गत्वा ददर्श तं शुष्कं वृक्षं नीचमिवोद्धतम् ।
दरिद्रमिव विच्छायं पिशाचमिव भीषणम् ॥ ६२ ॥
कुकाव्यमिव विश्लिष्टं विशालं शिंशिपातरुम् ।
भुग्राननं चावनतं सरलस्तब्धदोर्युगम् ॥ ६३ ॥
दीर्घाग्रपादं तैस्याग्रे स चापश्यन्नृपः शवम् ।
भुवि पुण्यं मया नीतं हस्तेनाप्तं न किंचन ॥ ६४ ॥

१. 'भार' ख. २. 'सेतु' ख. ३. 'शाखाग्रे' ख. ४. 'प्राप्तं' ख.

विमुक्तहस्तं संतापादितीवाघोमुखं स्थितम् ।
तस्मात्स्थ वं मुक्त्वा कण्ठपाशमपातयत् ॥ ६५ ॥
पतितः सोऽथ चुक्रोश हा हतोऽस्मीति सव्ययन् ।
करुणाकूणितमना भूपालोऽप्यनुरुह्य तम् ॥ ६६ ॥
मुहुर्मुहुः परामृश्य निनिन्द निजसाहसम् ।
स च क्षणादट्टहासं मर्टको विकटं व्ययात् ॥ ६७ ॥
भूतानां समभूचेन स्पष्टं कण्टकिता तनुः ।
ततस्तूर्णमदृश्योऽसौ तस्मिन्नेव लतान्तरे ॥ ६८ ॥
तेनैव कण्ठपाशेन तथैवोल्लम्बितः स्थितः ।
वेतालमायां विज्ञाय पुनरारुह्य पादपम् ॥ ६९ ॥
तमादाय नृपः स्कन्धे जवेन महता ययौ ।
स्कन्धस्थितस्तमवदद्वेतालः शृणु भूपते ॥ ७० ॥
कथयामि कथां तुभ्यं दूरेऽध्वनि सुनन्दिनीम् ।
अस्ति वाराणसी नाम श्रीकण्ठदयिता पुरी ॥ ७१ ॥
गौरीकृताहिमगिरिस्फारैः स्फटिकमन्दिरैः ।
प्रतापमुकुटो नाम तस्यामासीन्महीपतिः ॥ ७२ ॥
यौर्यत्नतापमुकुटा सर्वस्यैवानिशं वभौ ।
तस्य भूमिपतेः प्राणप्रिया सोमप्रभाभवत् ॥ ७३ ॥
शक्तिः पुष्पशरस्येव त्रैलोक्यविजयोद्यमे ।
द्युतिमान्वज्रमुकुटस्तस्यां तेन सुतोऽजनि ॥ ७४ ॥
स्मरेन्दुनायता यस्य लज्जन्ते रूपसंपदा ।
तस्य बुद्धिशरीराख्यो मन्त्रिपुत्रः सखाभवत् ॥ ७५ ॥
अद्वितीयः सदा प्रेमलीलाविश्रम्भसंपदाम् ।
कदाचित्तेन सहितः स ययौ मृगयारसात् ॥ ७६ ॥
वनं कुरङ्गनागाङ्कशार्दूलशरभाकुलम् ।
स तत्र चापकेदारक्रूरकोपान्मृगेश्वरान् ॥ ७७ ॥

1. 'ट' क.

हत्वा विवेश व्याकोशकुलवल्लीयुतं वनम् ।
तस्याविदूरे फुल्लाब्जं ददर्श विमलं सरः ॥ ७८ ॥
स्फाटिकं वनदेवीनामिव विभ्रमदर्पणम् ।
तत्सरः स्नातुमायातां कन्यां दासीशतैर्वृताम् ॥ ७९ ॥
आलुलोके नृपसुतः शशिलेखामिवोद्गताम् ।
तस्याः कुवलयच्छायैः कटाक्षैश्चटुलांशुभिः ॥ ८० ॥
नृत्यच्छिखण्डिमालेव चकासे काननस्थली ।
अधरांशुभिराकाशे निबिडैर्बिम्बबन्धुभिः ॥ ८१ ॥
या बभारेव लावण्यजलधौ विद्रुमावलीम् ।
जातौ यस्याः कुचौ कान्तिवापीकमलकोरकौ ॥ ८२ ॥
ययोर्दोर्युगलं धत्ते बिसकाण्डकुटुम्बलाम् ।
उवाह या तनुलता भृङ्गालीं रोमवल्लरीम् ॥ ८३ ॥
पश्चाद्विपक्तां वैमल्याद्बिम्बितामिव वेणिकाम् ।
या हंसगामिनी रेजे निःक्वणन्मणिनूपुरा ॥ ८४ ॥
श्रीरिवाम्बुजसंचारलग्ना सिञ्जानषट्पदी ।
तां विलोक्येन्दुवदनां नयनानन्दकौमुदीम् ॥ ८५ ॥
सहसा राजपुत्रोऽभूत्किमप्युल्लासिमानसः ।
सापि तं वीक्ष्य कामस्य प्रतिमानं धनुर्धरम् ॥ ८६ ॥
बभौ बालानिलालोलवल्लीव ललिताकृतिः ।
लीलावती समादाय सा निजं शेखरोत्पलम् ॥ ८७ ॥
कर्णे चकार लोलाक्षी सचिवं लोचनश्रियः ।
अपनीय ततः कर्णान्मुहुर्दन्तैरखोदयत् ॥ ८८ ॥
सविभ्रमं च चिक्षेप खण्डितं पादयोस्तले ।
ततोऽप्याहृत्य सा कन्या निदधे तत्कुचस्थले ॥ ८९ ॥

---

१. 'नखकोटिदैः' क. २. 'किंचिदुल्लाघमान' ख. ३. 'खण्डय' क.

इति सराकुला चक्रे किमप्यात्योपसूचकम् ।
ततो महत्तराहूता सा ययौ वलितानना ॥ ९० ॥
विसृज्य राजपुत्राय दूतीं नेत्रप्रभामिव ।
ध्यायन्ती राजतनयं सा प्राप्य निजमन्दिरम् ॥ ९१ ॥
बभूव विरहक्षामा प्राचीव शशिनः कला ।
राजपुत्रोऽपि नगरीं प्रविश्य स्मरतापितः ॥ ९२ ॥
दिनैरेवाभवद्बालप्रवालशयनाश्रयः ।
ततो बुद्धिशरीरस्तं स्वैरं मन्त्रिसुतोऽब्रवीत् ॥ ९३ ॥
कोऽयं देव तवापायो धैर्यस्य धृतिसागरः ।
कासौ कास्ते सुता कस्य केति चिन्ताज्वरं सखे ॥ ९४ ॥
त्यज जानाम्यहं सर्वं तथैव प्राङ्निवेदितम् ।
कर्णे यदुत्पलं चक्रे तत्कर्णोत्पलभूपतेः ॥ ९५ ॥
पुरःस्थिता सा कालिङ्गः स प्रसिद्धो हि पार्थिवः ।
संग्रामवर्धनो नाम सचिवो दन्तघाटकः ॥ ९६ ॥
विश्रुतो दिक्षु तस्यास्ति तत्पुत्री सा ध्रुवं सखे ।
अत एवोत्पलं तत्र दन्तेन खण्डितं तया ॥ ९७ ॥
सा च पद्मावती नाम पादपद्माहितोत्पला ।
यद्घातच्च हृदये तत्तस्या वल्लभो भवान् ॥ ९८ ॥
तदेहि तावद्गच्छावो मृगयाच्छद्मना पुनः ।
इति श्रुत्वा नृपसुतस्तत्सखः प्रययौ क्षणात् ॥ ९९ ॥
कलिङ्गविषयं पृथ्वी विप्रसंध्या हि रागिणाम् ।
तत्र प्रविष्टौ वृद्धायाः प्रतिश्रयधिया गृहम् ॥ १०० ॥
पप्रच्छतुस्तावत्र त्वं जानीषे दन्तघाटकम् ।
इति ताभ्यां रहः पृष्टा सावदज्जर्जराकृतिः ॥ १०१ ॥

१. 'शय' क. २. 'लिखा' क. ३. 'पुत्रोऽपि प्रविश्य स्मरतापिताः' क. ४. 'सा क' क. ५. 'मय च' क. ६. 'वचः' क.

संग्रामवर्धनो मन्त्री राज्ञोऽसौ दन्तघाटकः ।
तस्य पद्मावती नाम तनयास्ति सुलोचना ॥ १०२ ॥
तद्गृहे गर्भदास्यस्मि सर्वं जानामि तत्कुले ।
इति वृद्धावचः श्रुत्वा निजवृत्तं निवेद्य तौ ॥ १०३ ॥
चक्राते दत्तसंकेतौ तस्यास्तामेव दूतिकाम् ।
सा तदन्तःपुरं गत्वा तस्यै सर्वं निवेद्य यत् ॥ १०४ ॥
पद्मावती च तच्छ्रुत्वा मिथ्याकोपाकुलाभवत् ।
आ वृद्धदासि दुःशीले बालां मामवमन्यसे ॥ १०५ ॥
उक्त्वेति कर्पूरकराभ्यां जघान कपोलयोः ।
ततो मग्नमुखी वृद्धा समभ्येत्य निजं गृहम् ॥ १०६ ॥
ताभ्यां सर्वं यथावृत्तं साश्रुनेत्रा न्यवेदयत् ।
राजपुत्रस्ततः प्राह निःश्वासग्लपिताधरः ॥ १०७ ॥
अहो मे पुण्यहीनस्य वृथा जातोऽयमुद्यमः ।
सखि तुभ्यं मम प्राणाः क्वापि गन्तुं समुद्यताः ॥ १०८ ॥
न सहे विरहं सद्यस्तया छिन्नो मनोरथः ।
इति मन्त्री वचः श्रुत्वा राजपुत्रेण भाषितम् ॥ १०९ ॥
रहस्यमवदद्धैर्यं भज सिद्धं समीहितम् ।
दशास्या गण्डयोः पश्य सकर्पूराः कराङ्गुलीः ॥ ११० ॥
तयोक्तं शुक्लपक्षस्य दश शेषा निशा इति ।
अलक्षितः कृष्णपक्षे ध्रुवं तां समुपैष्यसि ॥ १११ ॥
इति तेन कृताश्वासो राजपुत्रो व्यलम्बत ।
ततो दशसु यातेषु वासरेषु यदृच्छया ॥ ११२ ॥
कन्यकान्तःपुरं गत्वा वृद्धा पुनरुपाययौ ।
अलक्तकाङ्कमालोक्य हृदि तस्यास्त्रिचन्द्रकम् ॥ ११३ ॥
रहो मन्त्रिसुतः प्राह सोत्कण्ठं भूमिपात्मजम् ।
सरोऽस्या रजसा रात्रित्रयमावर्तते तनुः ॥ ११४ ॥

१. 'धारा' क. २. 'वचः श्रु' क. ३. 'पुण्ड्रकम्' क. ४. 'रजसला रात्रित्रयमा' क.

पश्यास्या हृदये न्यस्तं तया शोणाङ्गुलित्रयम् ।
इति श्रुत्वा पुनर्ध्यायन्स तामायतलोचनाम् ॥ ११५ ॥
सहस्रयामतां यातमनयद्यामिनीत्रयम् ।
ततो वृद्धा चतुर्थेऽह्नि गत्वा पुनरुपागता ॥ ११६ ॥
तामुवाचाद्य यातासि तया संपूजिता भृशम् ।
तत्कालं स्फोटितालाने निर्गते मत्तकुञ्जरे ॥ ११७ ॥
हर्म्येण रज्जुमालम्ब्य सा भीता विससर्ज माम् ।
इति वृद्धागिरं श्रुत्वा विसृष्टो मन्त्रिसूनुना ॥ ११८ ॥
तेनैव रज्जुपात्रेण स प्रापान्तःपुरं निशि ।
चेटिकाभिः समुत्क्षिप्तः प्रासादेन प्रविश्य सः ॥ ११९ ॥
न्यस्तस्फटिकपर्यन्तं विवेश मणिमन्दिरम् ।
दीपरत्नांशुकपिशे सुप्तकञ्चुकिमण्डले ॥ १२० ॥
पाताल इव तत्रासौ तां भुजङ्गीं व्यलोकयत् ।
प्रत्युद्गतां ह्रिया नम्रां तां राजतनयोऽवदत् ॥ १२१ ॥
सोत्कम्पकुचविन्यस्तहस्तमत्रस्तविभ्रमाम् ।
अयि मानसदुग्धाब्धिचन्द्रिके लज्जया नताम् ॥ १२२ ॥
उत्तानय दृशं सन्तु दिशः कुवलयाकुलाः ।
इत्युक्त्वा रत्नपात्रेण मालतीसितसुन्दरी ॥ १२३ ॥
अपाययत्तां माध्वीकं पपौ च घनसौरभम् ।
हठात्कण्ठग्रहानन्दमीलितार्धविलोचनाम् ॥ १२४ ॥
मदारुणकपोलां तां चुचुम्ब सरसं ततः ।
सा तेन कुञ्जरेणेव समाक्रान्ता सरोजिनी ॥ १२५ ॥
चकोरी निष्क्वणत्काञ्चीकलहंसकुलावली ।
अकृत्रिमविलासाढ्यमशिक्षितकलाक्रमम् ॥ १२६ ॥
अविभागाङ्गसुभगं बभूव सुरतं तयोः ।
एवं प्रतिनिशं श्यामा गूढं तेन समागता ॥ १२७ ॥

---

१. 'कण्ठविन्यस्तहस्तामस्त्रस्तवि' क. २. 'कम्पे' क. ३. 'मूढचित्तेन संगता' क.

अभूदुद्भिन्नसंभोगकुसुमस्मेरमञ्जरी ।
ततः कदाचित्ससार राजपुत्रो बहिः स्थितम् ॥ १२८ ॥
मन्त्रिपुत्रोऽपि देशेऽस्मिन्कथमेकश्चरेदिति ।
ज्ञात्वान्यमनसं कान्तं पृष्ट्वा चे श्रुततत्कथा ॥ १२९ ॥
उवाच किं त्वया नासौ सुहृन्मे प्रकटीकृतः ।
पूज्यः स धीमतां धुर्योऽज्ञासीचत्तन्मदिङ्गितम् ॥ १३० ॥
तत्कृते प्राहिणोम्यद्य विचित्रं स्विंष्टभोजनम् ।
उक्त्वेति विससर्जाशु राजपुत्री तदन्तिकम् ॥ १३१ ॥
विचित्रमाल्यताम्बूलं भोजनं च स्वयं कृतम् ।
मन्त्रिपुत्रस्तदादाय राजपुत्रमभाषत ॥ १३२ ॥
अहो त्वया कृतं जाड्यं यदहं प्रकटीकृतः ।
(विषंदिग्धमिदं सर्वं तया मे प्रहितं सखे) ॥ १३३ ॥
न सहन्ते हि रागिण्यो भर्तुः प्रेमपदं जनम् ।
इत्युक्त्वा तच्छुने प्रादात्सोऽपि तेनाभवद्यसुः ॥ १३४ ॥
ततस्तौ कोपकलुषौ तदालोक्य बभूवतुः ।
कर्णोत्पलस्य नृपतेरस्मिन्नवसरे प्रिये ॥ १३५ ॥
पुत्रे दैवाद्दिवं याते राजपुत्रं सखावदत् ।
अथ तस्यास्त्वया गत्वा भैत्वाया भूषणावलीम् ॥ १३६ ॥
समादाय नखैः कार्यं त्रिशिखं लक्ष्म विग्रहे ।
इति तद्वचसा सर्वं कृत्वा राजसुतो निशि ॥ १३७ ॥
गृहीताभरणः क्षिप्रं ततः प्राप्तस्तदन्तिकम् ।
प्रतिवेषोऽटवीं गत्वा मन्त्रिपुत्रस्तमब्रवीत् ॥ १३८ ॥
अधुना मौक्तिकलतां नयैतां विक्रयावनिम् ।
प्रदर्शनीया सर्वत्र दातव्या न तु कस्यचित् ॥ १३९ ॥

१. 'वि' क. २. 'तं' क. ३. 'मि' क. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः क-पुस्तके त्रुटितः. ५. 'सुप्ता' क. ६. 'भ्यधात्' क. ७. 'नर्घ्यां' क.

कस्येयमिति पृष्टेन निर्देश्योऽहं त्वया सखे ।
इति तेन विसृष्टोऽसौ विपणे समदर्शयत् ॥ १४० ॥
राजपुत्रोऽपि तत्कालं छन्नवेषादलक्षितः ।
तां दृष्ट्वा राजपुरुषैः पृष्टः कस्येयमित्यथ ॥ १४१ ॥
तं कूटव्रतमभ्येत्य गुरोरस्येत्युवाच तान् ।
सोऽपि पृष्टोऽवदद्राजा स्वयमेत्य शृणोतु मे ॥ १४२ ॥
इति तद्वचसा तूर्णं नृपं प्राप्तमुवाच सः ।
राजंस्तव पुरे छन्ना दन्तघाटकपुत्रिका ॥ १४३ ॥
डाकिनी भ्राम्यति सदा रजनीषु दिगम्बरा ।
इहाकृष्य विसृष्टोऽसावेकदा त्वत्सुतोऽनया ॥ १४४ ॥
तत्कोपाच्च त्रिशूलेन मया गात्रे समाहता ।
इदं चाभरणं तस्या मया सुबहुमौक्तिकम् ॥ १४५ ॥
(भ्रान्तं भीता पलाय्यासौ पितुर्वेश्म पुनर्गता) ।
निर्वास्यतां पुरात्पापा सा स्त्री न वधमर्हति ॥ १४६ ॥
इति कर्णोत्पलो राजा श्रुत्वा कोपानलाकुलः ।
स्त्रीभिर्विज्ञाय तद्गात्रे प्रत्यग्रां त्रिशिखाहतिम् ॥ १४७ ॥
पद्मावतीं स्वनगरान्निःसार्योद्भ्रान्तमानसाम् ।
विवासितां च तां पश्चात्तौ स्ववेषौ प्रजग्मतुः ॥ १४८ ॥
समलापा प्रतीपौघैः कुर्वाणा क्रन्दितैर्दिशः ।
आश्वराजस्य पुत्रस्तां सहितो मन्त्रिसूनुना ॥ १४९ ॥
ततो वाराणसीं गत्वा विललास तया चिरम् ।
संग्रामवर्धनोऽप्यस्याः पिता तद्दुःखवह्निना ॥ १५० ॥
स्फुटितात्मा व्यसुरभूद्दयितानुगतः क्षणात् ।
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपम् ॥ १५१ ॥
सुताशोकविपन्नौ तौ कस्य पापाय भूपते ।
ज्ञात्वाप्यब्रुवतो मूर्धा शतधा ते भविष्यति ॥ १५२ ॥

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः क-पुस्तके त्रुटितः. २. 'प्ता' क. ३. ड

इति तेन नृपः पृष्टो बभाषे गतसंभ्रमः ।
राजपुत्रः प्रिया चास्य न वाच्यौ मन्मथाकुलौ ॥ १५३ ॥
प्रभुभक्तिव्रतो धीमान्मन्त्रिपुत्रोऽप्यकल्मषः ।
कर्णोत्पलस्य नृपतेः पातकं तत्प्रमादिनः ॥ १५४ ॥
यो न पश्यति चारेण राजवृत्तान्तमन्धवत् ।
इति मौने परित्यक्ते राज्ञा तूर्णमलक्षितः ।
स वेतालस्तरोरग्रे तथैवोलम्बितः स्थितः ॥ १५५ ॥

इति प्रथमो वेतालः ॥ १ ॥

भूयो वृक्षमथारुह्य तमादाय ययौ नृपः ।
स च स्कन्धगतः प्राह नरेन्द्र श्रूयतामिति ॥ १५६ ॥
ब्रह्मसेनाग्रहारेऽभूत्कालिन्दीकूलसंश्रये ।
अग्निस्वामीति विप्रेन्द्रो दाता श्रुतिविदां वरः ॥ १५७ ॥
तस्य मन्दारवत्याख्या पुत्री दिव्योचिताभवत् ।
कान्ता मन्दारमालेव नेत्रषट्पदहारिणी ॥ १५८ ॥
रूपेण विश्रुतां दिक्षु तामायतविलोचनाम् ।
अयाचन्त द्विजवरा बहवः सत्कुलोचिताः ॥ १५९ ॥
ततः कदाचित्तरुणाः कान्तिमन्तो द्विजास्त्रयः ।
मिथो दर्पण संक्रान्ता इव तुल्याकृतिश्रियः ॥ १६० ॥
कन्याजनकमभ्येत्य सुन्दरीं तां ययाचिरे ।
ममैवासौ ममैवासाविति स्पर्धानुबन्धिनः ॥ १६१ ॥
एकस्मै चेद्ददास्येनां द्वौ मृतावेव विद्धि नौ ।
इति तेषां समाकर्ण्य पिता तां न ददौ भयात् ॥ १६२ ॥
तोषितां नयनानन्दसौन्दर्यामृतवाहिनीम् ।
सदा विलोक्य प्रययुस्त्रैव विहिताश्रयाः ॥ १६३ ॥
ततः कालेन सा धातुर्नैर्घृण्यात्पेशलाकृतिः ।
जगाम पञ्चतां बाला लोचनाब्जोत्सवैः सह ॥ १६४ ॥

१. 'च स्थित्वि' क. २. 'मेवायतलो' क. ३. 'उज्वलाः' क. ४. 'तेऽपि तां' क.

चित्तसंवर्धनं यच्च यच्च नेत्ररसायनम् ।
चिराय निरनुक्रोशः सहते तद्विधिः कथम् ॥ १६५ ॥
निर्यातजीवितां बालां पतितां कदलीमिव ।
तत्कान्तिचन्द्रिकाचन्द्रचकोरा शुशुचुर्द्विजाः ॥ १६६ ॥
एकस्ततो ययौ दुःखी जटाभस्मविलेपनः ।
अन्यस्तदस्थीन्यादाय तीर्थाय प्रययौ कृती ॥ १६७ ॥
श्मशाने चापरस्तस्थौ तद्भस्मशयनाश्रयः ।
रागिणां किमकार्यं हि स्त्रिया संहृतचेतसाम् ॥ १६८ ॥
प्रथमः पृथिवीं भ्रान्त्वा भस्मसेरशरीरकः ।
रुद्रशर्माभिधानस्य गृहं प्राप्तो द्विजन्मनः ॥ १६९ ॥
तत्रोपमन्त्रितस्तेन प्रस्तुतो भोक्तुमैक्षत ।
क्षिप्तं तज्जायया वह्नौ पुत्रं रोदनकोपतः ॥ १७० ॥
तस्मिन्निःशेषनिर्दग्धे भोजनाद्विरतो व्रती ।
उवाच चण्डालगृहं प्राप्तोऽहमशनाशया ॥ १७१ ॥
इत्याकर्ण्य गृहस्थोऽपि जग्राह निजपुस्तकम् ।
सिद्धमन्त्रं समुद्धृत्य ततः पुत्रमजीवयत् ॥ १७२ ॥
दृष्ट्वेति विस्मितः क्षिप्रं ध्यात्वा रात्रौ जटाधरः ।
तं मन्त्रमनयत्कान्ताजीवनायाशु पुस्तकात् ॥ १७३ ॥
सोऽथ संप्राप्य तरसा तत्स्मशानमभोजनः ।
ददर्श तीर्थादायातमेकं तत्र निवासिनम् ॥ १७४ ॥
तावपास्य प्रियाभस्मकूटोपान्तात्स मन्त्रवित् ।
रजश्चिक्षेप येनासौ समुत्तस्थौ द्विजात्मजा ॥ १७५ ॥
लावण्यललिताकारां मन्मथानलदीपिकाम् ।
पीयूषकालकूटाढ्यां दुग्धाब्धिलहरीमिव ॥ १७६ ॥
वदनप्रतिमा चन्द्रो रणन्नूपुरमेखलाम् ।
नलिनीमिव कामस्य विलोलनयनोत्पलाम् ॥ १७७ ॥

ते दृष्ट्वा विसयानन्दरसरसंघर्षशालिनः ।
ममैवेयं ममैवेयमित्यूचुस्ते ससंभ्रमाः ॥ १७८ ॥
मन्मन्त्रेणोत्थिता तन्वी मयाप्ता तीर्थसेवया ।
मयास्या रक्षितं भस्म तेषामित्यभवत्कलिः ॥ १७९ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।
राजन्धर्मेण सा कस्य दयिता सत्यमुच्यताम् ॥ १८० ॥
इति पृष्टो नृपस्तेन बभाषे शापकम्पितः ।
तस्यास्तं जनकं मन्ये यस्तां मन्त्रैरजीवयत् ॥ १८१ ॥
पुत्रकार्येण परेणास्याः शङ्के तीर्थेषु यत्कृतम् ।
वेताल तस्य धर्मेण तद्भस्मशयनः पतिः ॥ १८२ ॥
श्रुत्वेत्यलक्षितो गत्वा क्षिप्रं स्कन्धान्महीपतेः ।
स शिंशिपातरुप्रान्ते तथैवोल्लम्बितः स्थितः ॥ १८३ ॥

इति द्वितीयो वेतालः ॥ २ ॥

राजा पुनस्तमादाय ययौ तूर्णं महाजवः ।
स च स्कन्धस्थितः प्राह नृपते श्रूयतामिति ॥ १८४ ॥
श्रीमान्पाटलिपुत्रेऽभूनृपो विक्रमकेसरी ।
तस्योचितोऽभवत्पुत्रः श्रीपराक्रमकेसरी ॥ १८५ ॥
प्रियः क्रीडाशुकस्तस्य बभूव भुवि विश्रुतः ।
सर्वशास्त्रेषु कुशलः कलासु च विचक्षणः ॥ १८६ ॥
कान्ताप्रसादनोपायप्रगल्भो नर्मकोविदः ।
अतीतानागतज्ञानपरिनिष्ठितमानसः ॥ १८७ ॥
तं राजपुत्रः पप्रच्छ भार्या मे का भविष्यति ।
इति पृष्टः शुकः प्राह निजपक्षाङ्घ्रिभिर्मुहुः ॥ १८८ ॥
कुर्वन्मरकतावद्धमिव काञ्चनपञ्जरम् ।
राज्ञश्चन्द्रावलोकस्य मगधाधिपतेः सुता ॥ १८९ ॥
चन्द्रप्रभा नाम विभो भाविनी ते वधूरिति ।
तच्छ्रुत्वा राजतनयो वशगोऽभून्मनोभुवः ॥ १९० ॥

कामः संकल्पवसतिरिति सत्या जनस्थितिः ।
तस्या मगधपुत्र्याश्च सोभिका नाम सारिका ॥ १९१ ॥
बभूव विभ्रमसखी शुकस्य सदृशी गुणैः ।
तयापि तस्याः कथितो राजपुत्रः कथान्तरे ॥ १९२ ॥
श्रुत्वैव राजतनया येनाभूत्स्मरतापिता ।
कालेन मगधाधीशो याचितस्तां सुतां ददौ ॥ १९३ ॥
तस्मै नरेन्द्रपुत्राय महार्हविहितोत्सवः ।
स तया संगतः श्रीमान्रोहिण्येव निशाकरः ॥ १९४ ॥
विजहार मनोहारिकेसरोद्यानभूमिषु ।
अथैकपञ्जरासक्तः शुकः सारिकया सह ॥ १९५ ॥
तामुवाच प्रिये प्रेमभाजनं भज मामिति ।
सारिका प्राह पुरुषाः कृतघ्नाः क्रूरकारिणः ॥ १९६ ॥
न मह्यं रोचते तस्मात्त्वया प्रणयसंगमः ।
श्रुत्वेति सारिकावाचं शुकः प्रोवाच सर्वथा ॥ १९७ ॥
पापस्यायतनं नार्यो विपरीतं प्रभाषसे ।
इत्युत्पन्नविवादे ते समभ्येत्य नृपात्मजम् ॥ १९८ ॥
पप्रच्छतुः पणं दास्ये कृतस्त्रीपुरुषान्तरम् ।
ताभ्यां पृष्टः स्मितमुखो राजपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ १९९ ॥
श्रुत्वा स्त्रीपुंसयोर्दोषांस्ततो न्यायं प्रचक्ष्महे ।
इति तद्वचसा पूर्वं श्यामाङ्गी सारिकाब्रवीत् ॥ २०० ॥
चम्पकस्येव कलिकां विभ्राणां चञ्चुकन्दलीम् ।
अवन्तीवासिनः सूनुरर्थदत्तस्य संमतः ॥ २०१ ॥
बभूव धनदत्ताख्यो वणिजो धनदश्रियः ।
कालेन याते पितरि त्रिदिवं दयितासखे ॥ २०२ ॥
सोऽभवद्दुर्जनासक्तः किंचिदुन्मत्तशैशवः ।
स तैर्नित्यमकार्योऽपि साधु साध्विति वादिभिः ॥ २०३ ॥

१. 'मि' क.

मित्रैर्निःशेषविभवः कृतः स्त्रीद्यूतपानकैः।
एक एव ततः प्रायाद्वित्तहीनो दिगन्तरम् ॥ २०४ ॥
जडास्त्यजन्ति पर्यन्ते धूर्ता भोगाब्जषट्पदाः।
स प्राप चन्दनपुरं भ्रान्त्वा पृथ्वीं निराश्रयः ॥ २०५ ॥
संतापार्त इव व्यालः शीतं चन्दनकाननम्।
तत्र तस्मै परिज्ञाय पुत्रीं रत्नवतीं ददौ ॥ २०६ ॥
हिरण्यगुप्तो निष्पुत्रः प्रवरो धनिनां वणिक्।
सुखं स पूजितस्तेन स्थित्वा तत्र तया चिरम् ॥ २०७ ॥
श्वशुरं प्राह गच्छामि स्वदेशं मातुरन्तिकम्।
इति श्रुत्वा भृशं तेन वारितोऽपि वधूसखः ॥ २०८ ॥
अचिरात्पुनरेष्यामीत्युक्त्वा प्राप्तधनो ययौ।
स गच्छन्भार्यया सार्धं दास्या चानुगतः शनैः ॥ २०९ ॥
निर्जनामटवीं[1] प्राप्य श्वभ्रोपान्ते व्यचिन्तयत्।
करण्डकविनिक्षिप्तमादायास्या विभूषणम् ॥ २१० ॥
कुहरे प्रक्षिपाम्येनां बध्वा रज्ज्वा किमेतया।
ध्यात्वेति हृत्वालंकारं सदासीकां निपात्य ताम् ॥ २११ ॥
ययौ कुतः कृतघ्नानां हृदये करुणाकराः।
सापि बाला लताजालधृता नैव व्यपद्यत ॥ २१२ ॥
पञ्चतां त्वगमद्दासी भिन्नकर्मा हि संसृतिः।
ततः समुद्धृताभ्येत्य पान्थैः करुणकूजिनी ॥ २१३ ॥
नीता पौरैः परिज्ञाता पितुरेव निवेशनम्।
सत्रासकम्पतरला पृष्टा पित्रा जगाद सा ॥ २१४ ॥
हृतो मे भूषणैः सार्धं भर्ता दस्युजनैरिति।
श्रुत्वेत्याश्वासिता तेन दत्वान्यां भूषणावलीम् ॥ २१५ ॥
तस्थौ तमेव ध्यायन्ती स्निग्धमुग्धाशया पतिम्।
सोऽपि कालेन तत्सर्वं भक्षयित्वा विभूषणम् ॥ २१६ ॥

1. 'मारवीं' क.

कितवः पुनरभ्यायान्निःशङ्कः श्वशुरालयम् ।
मृतासौ नैव विज्ञाता दुहिता भवतो ध्रुवम् ॥ २१७ ॥
याचे धनं तत्कृतेऽहं स ध्यात्वेति समाविशत् ।
प्रविश्य दृष्ट्वा तां तत्र समायाँ भयकम्पितः ॥ २१८ ॥
हा हतोऽस्मीति संचिन्त्य शिलाहत इवाभवत् ।
सापि व्यालोक्य दुहिता सहसैवोपसृत्य तम् ॥ २१९ ॥
कर्णेऽवदन्न तातेन तज्ज्ञातं यत्त्वया कृतम् ।
विश्रब्धो भव मा भैषीस्त्वयेत्याश्वासितो रहः ॥ २२० ॥
उवास पूजितो हृष्टः श्वशुरावसथे चिरम् ।
ततः कदाचित्स द्यूतव्यसनादर्थलोलुपः ॥ २२१ ॥
विश्वासमगमत्तापि दृष्टवेपान्यसुन्दरीम् ।
तां हत्वा तदलंकारमादाय प्रययौ निशि ॥ २२२ ॥
इत्येवं पापचरिताः पुरुषा निर्घृणाशयाः ।
को नु दुष्टभुजङ्गानां तद्विधानां हि विश्वसेत् ॥ २२३ ॥

इति पुरुषदुष्टाख्यायिका ॥ ३ ॥

श्रुत्वेति सारिकावाक्यं राजपुत्रः सविस्मयः ।
चूडामणिं विदग्धानामपृच्छत्संस्मितः शुकम् ॥ २२४ ॥
पृष्टः शोणमणिच्छायचञ्चुर्मरकतप्रभः ।
रत्नाद्रिकुञ्जसिञ्जान इव क्रीडाशुकोऽवदत् ॥ २२५ ॥
हर्षवत्यभिधानायां धर्मस्य नृपतेः पुरि ।
बभूव धनदत्ताख्यः कुबेरसदृशो वणिक् ॥ २२६ ॥
सुतां वसुमतीं नाम स ददौ वसुमान्मयन् ।
कान्तां समुद्रदत्ताय तारुण्यतरुमञ्जरीम् ॥ २२७ ॥
दत्तो पुत्रीं प्रियां तस्मै ताम्रलिप्तनिवासिने ।
अपुत्रो नात्यजद्देहासुतत्वे परिकल्पिताम् ॥ २२८ ॥

१. 'सोऽपि तं' क. २. 'स' क. ३. 'दोषनः' क. ४. 'रत्नां' क. ५. 'तां' क. ६. 'स्त' क.

कदाचित्सा शशिमुखी तुङ्गवातायनस्थिता।
ददर्श पथि सुस्नातं युवानं द्विजपुत्रकम् ॥ २२९ ॥
तं दृष्ट्वा कामवातेन नदीवाकुलतां गता।
कुलकूलनिपाताय कृतारम्भावदत्सखीम् ॥ २३० ॥
सखि पूर्णेन्दुवदनो द्विजोऽयं प्रतिभाति मे।
भुजङ्गो येन जाते[2]यं विषव्याप्तेव मे तनुः ॥ २३१ ॥
वृथा मे यौवनमिदं याति ने[3]यं स्तनस्थली।
यदैतद्वक्षसि क्षिप्रं गाढालिङ्गनखर्वताम् ॥ २३२ ॥
उक्त्वेति मन्मथहता तया चानाय्य तं रहः।
भेजे रतिं को हि शक्तो धर्तुं रागवतीमनः ॥ २३३ ॥
सुचिरं रममाणायां तस्यां तेन विलासिना।
कौमारस्त्वत्पतिस्तूर्णमाययौ सोत्सुकश्चिरात् ॥ २३४ ॥
पूजितः श्वशुरेणासौ निशि शय्यानिकेतनम्।
विवेश माल्यधवलं मधुपानारुणेक्षणः ॥ २३५ ॥
साप्यन्यसक्ता तं प्राप्य शीतार्तेवार्तिपीडिता।
भुजोरुस्वस्तिकाक्रान्तकुचश्रोणीतटास्वपत् ॥ २३६ ॥
अवाङ्मुखी निःश्वसन्ती स्पर्शसंकुचिता मुहुः।
स तां प्रसादयामास मुग्धो मौनावलम्बिनीम् ॥ २३७ ॥
अन्यत्र बद्धसौहार्दाः सावलेपाः सदा क्रुधः।
अधिकं क्लीबमूर्खाणां यान्ति वल्लभतां स्त्रियः ॥ २३८ ॥
इति दुःखाकुला तन्वी पत्युः पार्श्वे बभूव सा।
कटुकौषधतुल्यं तं वेपमाना पितुर्भयात् ॥ २३९ ॥
(सि[5]पेवे कम्पयन्ती स्वं शिरः कथमपि क्रुधा)।
अत्रान्तरे स्वसंकेतं शून्योद्याने विधाय सा।

---

१. 'तदा श्या' क. २. 'तो' क. ३. 'चे' क. ४. 'गम्य' क. ५. एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

रागिणी तं द्विजसुतं प्रसुप्ता भर्तुरन्तिके ॥ २४० ॥
मधुमत्तं समालोक्य सुप्तं काष्ठमिवाचलम् ।
उत्थाय लघुसंचारा गन्तुमुद्यानमुद्यता ॥ २४१ ॥
अथ प्रविष्टस्तद्वेश्म चौरः स्वैरं ददर्श ताम् ।
निर्यान्तीमन्तिकात्पत्युः सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २४२ ॥
छन्नेनानुगता तेन शून्योद्यानमवाप सा ।
तं चौरशङ्कितैः कैश्चिद्द्रुमोल्लम्बितं द्विजम् ॥ २४३ ॥
तं दृष्ट्वा संविरुग्णेव पतिता विललाप सा ।
हा प्रिय श्रमपीयूष प्रणयामृतदीधिते ॥ २४४ ॥
क्वासि मे प्रियसर्वस्वं देहि कर्णामृतं वचः ।
इत्युक्त्वा पाशमुन्मुच्य कण्ठे जग्राह तं शवम् ॥ २४५ ॥
कृत्वा सकुसुमोत्तंसं तन्मुखं प्रचुचुम्ब च ।
ताम्बूलगर्भमादाय वेपमानकराधरा ॥ २४६ ॥
ततः सपदि वेतालः कृतावेशः सुनासिकाम् ।
तस्याश्चिच्छेद दशनैः सतीशिक्षां दिशन्निव ॥ २४७ ॥
छिन्ननासाथ शनकैः शय्यां भर्तुरुपेत्य सा ।
चुक्रोश हा हता तेन पापेनास्मीति सव्यथा ॥ २४८ ॥
प्रतिबुद्धः स सहसा किमेतदिति संभ्रमात् ।
ब्रुवाणः श्वशुरेणैत्य श्रुत्वा च परिभर्त्सितः ॥ २४९ ॥
नासिकां दुहितुश्छिन्नां दृष्ट्वा कोपात्स भूपतेः ।
प्रातर्नीत्वा तमास्थानं तनयां तामदर्शयत् ॥ २५० ॥
न मयास्याः कृतं किंचिदिति वादिनमेव तम् ।
अहो धार्ष्ट्यमिति प्राहुः सभ्याः कोपपराङ्मुखाः ॥ २५१ ॥
ततो राजाज्ञया तूर्णं प्रस्तुते तस्य निग्रहे ।
स चौरोऽभ्येत्य तत्सर्वं नरनाथं व्यजिज्ञपत् ॥ २५२ ॥
राज्ञा दयामयो रात्रिवृत्तान्तं विनिवेद्य सः ।

१. 'स्मरा' क. २. 'न्मो' क. ३. 'या' क. ४. 'सखा' क.

शवदन्तस्थितां नासां प्रत्ययार्थमदर्शयत् ॥ २५३ ॥
तामेव क्षिप्रमाधाय छिन्नकर्णां ततो नृपः ।
दण्डपालं स नगरे चौरं चक्रे सदोत्थितम् ॥ २५४ ॥
इति स्त्रियः किल्बिषस्य द्रोहस्य च निकेतनम् ।
कस्तासामपशुर्नाम प्रेमपाशवशं व्रजेत् ॥ २५५ ॥

इति स्त्रीदुष्टाख्यायिका ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा राजपुत्राग्रे जातिं स्मृत्वाभवच्छुकः ।
गन्धर्वश्चित्रसेनाख्यः सारिका च तिलोत्तमा ॥ २५६ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ क्ष्मापतिं पुनः ।
पापस्यायतनं नार्यः पुमांसो वेति कथ्यताम् ॥ २५७ ॥
श्रुत्वेत्यभाषत नृपः पापिनो विरला नराः ।
नार्यस्तु वेधसा यत्नात्किल्बिषैरेव निर्मिताः ॥ २५८ ॥
इत्याकर्ण्यैव वेतालः सहसादर्शनं गतः ।
राज्ञा चिरोत्सुकेनाथ पुनर्दृष्टस्तरुस्थितः ॥ २५९ ॥

इति तृतीयो वेतालः ॥ ५ ॥

मुक्ताट्टहासमादाय ततस्तं गतसंभ्रमः ।
ययौ जवेन नृपतिस्कन्धस्थः सोऽप्यभाषत ॥ २६० ॥
मोहः पृथ्वीपते कोऽयं तवापि हृदि जृम्भते ।
दुष्टश्रमणसंपर्कायत्प्राप्तोऽसि महीमिमाम् ॥ २६१ ॥
दूरेऽध्वनि विनोदाय शृणु राजन्कथामिमाम् ।
अनायासं हि पाथेयं यथेष्टं कथनं पथि ॥ २६२ ॥
अस्ति शोभावती नाम नगरी संपदां निधिः ।
भुवो भूषणमालेव भूरिरत्नविराजिनी ॥ २६३ ॥
बभूव शूद्रकस्तस्यां यशस्वी पृथिवीपतिः ।
भार्गवादिकथाः कार्श्यं यद्वीरचरितैर्ययुः ॥ २६४ ॥

१. 'स्तन' क. २. 'दापि कम्' ख. ३. 'सोत्सुकेना' क. ४. 'शादिता' क. ५. 'कन्धेस्तस्य' क. ६. 'ता' क. ७. 'र हारा' क. ८. 'गताः' क.

नेत्राम्बु शत्रुनारीणां पातयन्ती निरन्तरम् ।
धूमावली प्रतापाग्नेर्बभौ यस्यासिवल्लरी ॥ २६५ ॥
यस्योरुरत्नवलये दोष्णि कर्पूरपाण्डुरे ।
निपसादेव पृथिवी निःशेषाशेषसंस्थया ॥ २६६ ॥
चतुर्गुणगुणोपेतपृथुसत्त्वसखं मनः ।
यस्य संमा[3]गिवैश्वर्यमद्वितीयस्तु विक्रमः ॥ २६७ ॥
तस्य सोमप्रभा नाम लावण्यामृतशालिनी ।
बभूव वल्लभा चित्तकैरवसत्त्वशालिनी ॥ २६८ ॥
तं कदाचिन्महास्थाने स्थितं शक्रमिवापरम् ।
*व्यजिज्ञपत्प्रतीहारो मौलिपद्मविताञ्जलिः ॥ २६९ ॥*
मालवीयो महासत्त्वः करवालसखो द्विजः ।
देव वीरवरो नाम सेवार्थं द्रष्टुमिच्छति ॥ २७० ॥
इत्युक्त्वा प्राप स नृपभ्रूसमुल्लासशासनम् ।
अवेशयद्वीरवरं राजसिंहगुहां सभाम् ॥ २७१ ॥
स प्रविश्य महीपालं ददर्श धवलांशुकम् ।
स्फुरदुग्धाब्धिकल्लोलं विश्रान्तमिव मन्दरम् ॥ २७२ ॥
बिभ्राणं धवलोष्णीषमट्टहासं जयश्रियः ।
आवर्तमानं व्योम्नीव हेलाकुटिलितं यशः ॥ २७३ ॥
मौलिनीलमणिच्छायावलयैर्दूरसर्पिभिः ।
(दिशन्तं दिक्षु भूपानां मुखेषु श्यामिकामिव ॥ २७४ ॥
विलोलकुन्तलोद्योतैर्विराजद्गण्डमण्डलम्) ।
रणलीलासमुद्भूतैः पुलकैरिव नोज्झितम् ॥ २७५ ॥
हेमसिंहासनासीनं तारहारविराजितम् ।
मार्तण्डमिव मेरुस्थं दर्शावष्टेन्दुमण्डलम् ॥ २७६ ॥

---

१. 'दीव' क. २. 'शङ्का' क. ३. 'सलागमेव' ख. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः पुस्तके त्रुटितः.

इन्द्रनीलमहानीलशिलान्यस्ताङ्घ्रिपङ्कजम्।
करालकालीयशिरोन्यस्तपादमिवाच्युतम् ॥ २७७ ॥
तं वीक्ष्य सूचितामिख्यैः स प्रणम्यावदद्विभो।
खड्गद्वितीयः सेवान्ते करोमीत्युन्नताशयः ॥ २७८ ॥
सदा पञ्च प्रदीयन्तां रूपकाणां शतानि मे।
पुत्रः कुमारी भार्या चेत्येतावान्मत्परिग्रहः ॥ २७९ ॥
इति तद्गिरमाकर्ण्य तैद्वितीयं नरेश्वरः।
इयता किं करोतीति चारैः शुश्राव तत्कथाम् ॥ २८० ॥
शतद्वयेन संपूज्य स्नातौ हरिमहेश्वरौ।
शतद्वयं ब्राह्मणेभ्यो दीनेभ्यश्च प्रदाय सः ॥ २८१ ॥
गृहे विधत्ते निःशेषं शतेनैकेन तु व्ययम्।
कृत्वैतदास्ते त्वद्द्वारि दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥ २८२ ॥
श्रुत्वेति कथितं चारैः प्रदध्यौ विस्मितो नृपः।
सत्यं यत्पृथिवीमूल्यमेकस्यापि मणेरिति ॥ २८३ ॥
ततः कदाचिद्गम्भीरघनग्रस्त इवाखिले।
करालकालमहिषश्यामले दुर्दिनागमे ॥ २८४ ॥
बलाकामण्डलस्मेरकपालशकलाकुले।
विद्युच्चितानललोले श्मशान इव भीषणे ॥ २८५ ॥
मिथो मेघपिशाचानां विनिष्पेषैः सगर्जितैः।
पतन्तीष्वम्बुधारासु दन्तमालास्विवानिशम् ॥ २८६ ॥
नीहारजालच्छिन्नासु दिक्षु संघट्टितास्विव।
निवृत्तजनसंचारे कल्पापाय इवागते ॥ २८७ ॥
निषण्णो निशि भूपालो धवलाशयशेखरे।
सिंहद्वारे स्थितः कोऽसावित्युच्चैरभ्यभाषत ॥ २८८ ॥

१. 'पीठ' क. २. 'शः' क. ३. 'लोऽप्रिह' क. ४. 'पश्यति' क. ५. 'अन्ये चाहन्ये' क. ६. 'च स्वयम्' क. ७. 'महिषाकारतया' क. ८. 'लाकार' क. ९. 'के' क. १०. 'द्रुत' क. ११. 'ट' क.

देव स्थितोऽहं किं कार्यमिति वीरवरोऽब्रवीत् ।
अर्धरात्रे पुनः पृष्टस्तदेव प्राह निर्व्ययः ॥ २८९ ॥
ततः शुश्राव नृपतिस्तारमाक्रन्दितं मुहुः ।
रजन्या इव पर्जन्यराक्षसार्ते क्षपाकरे ॥ २९० ॥
हा नाथ कमलाकेलिकमलायतलोचन ।
हा हा प्रचण्डदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डल ॥ २९१ ॥
हा हा दिक्कामिनीकर्णकर्पूरापूरसद्यशः ।
इत्याकर्ण्याब्रवीत्कोऽत्र स्थित इत्यवनीश्वरः ॥ २९२ ॥
ततो वीरवरं दूरास्थितोऽहमिति वादिनम् ।
कः क्रन्दतीति कृपयादिदेश वसुधाधिपः ॥ २९३ ॥
तस्मिन्गते तदन्वेष्टुं वारिधारावृताम्बरे ।
नृपोऽप्यलक्षितः पश्चात्स्वयं खड्गसखो ययौ ॥ २९४ ॥
तस्याः स्फारानिलावर्तनर्निताशीत्करावली ।
मुखं चुचुम्ब नक्षत्रमालेव शशिशङ्कया ॥ २९५ ॥
कण्ठे हारानुकाराभिर्धाराभिर्धरणीभृतः ।
खड्गेऽपि लेभे भिन्नेभसक्तमुक्तावलीश्रियम् ॥ २९६ ॥
आक्रन्दितानुसारेण गत्वा वीरवरः स्त्रियम् ।
मत्वा तां मधुरालापां शुचः पप्रच्छ कारणम् ॥ २९७ ॥
कमलाकरमध्यस्था सा प्राह तमलक्षिता ।
शिक्षयन्तीव माधुर्ये कलहंसकुलं गिरा ॥ २९८ ॥
अहं देवी महीभर्तुः शूद्रकस्याभवल्लभा ।
स च देवस्तृतीयेऽह्नि पूर्णायुर्दिवमेष्यति ॥ २९९ ॥
तेन रोदिमि न त्वेषा भाप्ताहं तद्भुजे चिरम् ।
वराहशय्यापर्यङ्का विलाससुभगां स्थितिम् ॥ ३०० ॥

---

१. 'स विप्र.' क. २. 'स तं' क. ३. 'पुत्रेऽम्ब' क. ४. 'न्थिन.' क. ५. 'मही' क. ६. 'दंष्ट्रा' क.

इति वीरवरः श्रुत्वा तामपृच्छत्कृताञ्जलिः।
अप्यस्त्युपायः क्ष्मापालरक्षणे देवि कथ्यताम् ॥ ३०१ ॥
पृष्टेति पृथ्वी प्राहैनमस्त्येव यदि शक्यते।
पुत्रं शक्तिवरं बालं चण्डिकायै ददासि चेत् ॥ ३०२ ॥
स्वयमुत्कृत्य खड्गेन ततो जीवति पार्थिवः।
इति श्रुत्वा निजं गेहं ययौ वीरवरो निशि ॥ ३०३ ॥
अलक्षितेनानुयातो राज्ञा विस्मयशालिना।
गृहे विबोध्य दयितां शिशुं शक्तिवरं वरम् ॥ ३०४ ॥
पृथिवीभाषितं सर्वमुवाचाविचलाशयः।
तच्छ्रुत्वा बालकः प्राह धन्योऽहं प्रभुरक्षणात् ॥ ३०५ ॥
उत्सवो निधनं नाम भर्तृपिण्डोपजीविनाम्।
भृत्यैरेव स्वयं मूल्ये क्रियते कायविक्रयः ॥ ३०६ ॥
इति वादिनमाधाय स्कन्धे शक्तिवरं सुतम्।
सपुत्र्या भार्यया सार्धं स ययौ चण्डिकालयम् ॥ ३०७ ॥
तत्र दीपांशुकपिशसंचरद्योगिनीगणम्।
राज्ञः श्रेयोऽस्त्विति प्राह छित्वा पुत्रस्य मस्तकम् ॥ ३०८ ॥
अथोच्चचार चतुरं चण्डिका वचनं दिवि।
तुष्टा च भूभुजा प्राप्तमायुर्वर्षशतं पुनः ॥ ३०९ ॥
इति भूमिपतिश्छन्नो निशम्याचिन्तयत्स्मयात्।
अहो धैर्यममर्यादमहो सत्त्वं द्विजन्मनः ॥ ३१० ॥
इति ध्यायति भूपाले भ्रातरं वीक्ष्य कन्यका।
हतं वीरवती नाम पञ्चतां प्रययौ क्षणात् ॥ ३११ ॥
भार्या वीरवरस्यापि तेनैव रचितेऽनले।
शोकासहा धर्मवती प्रियं तत्याज जीवितम् ॥ ३१२ ॥
कृतार्थोऽस्मीति संचिन्त्य हृष्टो वीरवरस्ततः।
आत्मोपहारं दुर्गायै दातुमभ्युद्यतोऽवदत् ॥ ३१३ ॥

१. 'त' क. २. 'श' क.

जय देवि जगज्जन्मजरामरणकारिणि ।
जय संरब्धदैत्येन्द्रहृदयाम्भोजदारिणि ॥ ३१४ ॥
जय पातालकुहराकारविस्फारिताननि ।
उरुरावस्फुरत्खण्डब्रह्माण्डभयदीक्षिते ॥ ३१५ ॥
जय ताण्डवितोद्दण्डचण्डवातहताचले ।
रुडत्कङ्कालमालोग्रव्यालग्राह्यालकुण्डले ॥ ३१६ ॥
जय दानवहृत्पद्ममालाखक्षवशालिके ।
अकाण्डसंध्यासंभ्रमभूतवेतालमालिके ॥ ३१७ ॥
जय व्याकोशखड्गांशुश्यामीकृतदिगन्तरे ।
महिषासुरनिष्कृष्टचर्मणैवावृताखिले ॥ ३१८ ॥
इति स्तुत्वा भगवतीं शिरश्छित्वासिना निजम् ।
देव्यै निवेद्य सत्त्वाब्धिः स पपात महीतले ॥ ३१९ ॥
गणयित्वा क्षितिपतिस्तस्य तत्सर्वमूर्जितम् ।
बभूव विस्मयोत्साहैः स्पष्टरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ३२० ॥
एवंविधं विना भृत्यं किं श्रिया जीवितेन वा ।
(ध्यात्वेति निजमूर्धानं सोऽपि च्छेत्तुं समुद्ययौ) ॥ ३२१ ॥
जीवितेन मदीयेन जीवत्वेषः सपुत्रकः ।
देवि वीरवरो वीरः प्रोवाचेत्यथ शूद्रकः ॥ ३२२ ॥
सहसा खड्गधाराग्रसंगते तस्य मस्तके ।
देवी साक्षादुवाचेदं मा कृथाः पुत्र साहसम् ॥ ३२३ ॥
सत्त्वेनानेन ते राजंस्तूर्णं वीरवरो द्विजः ।
सपुत्रपुत्रीदयितः समुत्तिष्ठतु मद्वरात् ॥ ३२४ ॥
इति चण्डीगिरा तस्मिन्सानुगे सहसोत्थिते ।
अलक्षितः क्षणात्प्रायान्निजमन्तःपरं नृपः ॥ ३२५ ॥

---

१. 'या' क. २. 'स्तरा' क. ३. 'त्रि' क. ४. 'तलद्वाल' क. ५. 'कृत' क.
(. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

ततो वीरवरो गत्वा विसयाकुलितो गृहे ।
धृत्वा सदारिकां भार्यां राजद्वारं समाययौ ॥ ३२६ ॥
राजा महिष्यै हर्षाय वृत्तान्तं विनिवेद्य तम् ।
पुनः पप्रच्छ कोऽप्यत्र स्थित इत्यनभिज्ञवत् ॥ ३२७ ॥
अहं वीरवरो देव स्थितः सा स्त्री मयेक्षिता ।
न दृष्टा राक्षसी नूनं रुरोद निशि मायया ॥ ३२८ ॥
इति वीरवरेणोक्तमाकर्ण्य जगतीपतिः ।
प्रशशंसास्य तद्धैर्यमविकत्थनतां च ताम् ॥ ३२९ ॥
ततः प्रभाते भूपालः समास्थानमुपागतः ।
निवेद्य रात्रिवृत्तान्तं मन्त्रिभ्यो निश्[1]शृंखलस्ततः ॥ ३३० ॥
ददौ वीरवरायाशु लाटराज्यं ससागरम् ।
नर्मदाकूलसहितं स[2]गौडं दक्षिणापथम् ॥ ३३१ ॥
तं च शक्तिवरं दत्वा राजानं दक्षिणापथे ।
मेने तदुपकारस्य शतांशस्य प्रतिक्रियाम् ॥ ३३२ ॥
कथयित्वेति वेतालो भूपालं पृष्टवान्पुनः ।
शंस कोऽभ्यधिकस्तेभ्यो राजन्सत्ववतां वर ॥ ३३३ ॥
([3]श्रुत्वेत्याह महीपालः सर्वे वीराः किमुच्यते) ।
किं तु वीरव्रतस्यैषा धैर्यलक्ष्मीः कुलव्रतम् ।
भृत्योऽसौ तत्किमाश्चर्यं सेवा हि प्राणविक्रयः ॥ ३३४ ॥
तस्य पुत्रस्य तत्तुल्यो यदि तत्किमिवाद्भुतम् ।
नहि सौवर्णशैलात्काचखण्डः प्रजायते ॥ ३३५ ॥
किं चित्रं यदि सत्त्वाढ्या भार्या तस्य कुलोचिता ।
नहि श्रिता कल्पतरुं वल्ली काचिदकाञ्चनी ॥ ३३६ ॥
अत्र सत्त्ववतां धुर्यः श्रीमानेको नरेश्वरः ।
विक्रीतजीविते भृत्ये यस्य प्राणैः प्रतिक्रिया ॥ ३३७ ॥

१. 'खिन्नेन तम्' ख. २. 'मदकच्छं च भूरिदः' ख. ३. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः पुस्तके त्रुटितः.

श्रुत्वेत्यदर्शनं यातो वेतालः शिंशिपातरौ ।
अधोमुखो निरुच्छ्वासस्तथैवालम्बितः स्थितः ॥ ३३८ ॥

इति चतुर्थो वेतालः ॥ ६ ॥

ततस्तमादाय नृपः प्रययौ विपुलाशयः ।
स च स्कन्धस्थितः प्राह शृणु चित्रं महीपते ॥ ३३९ ॥
द्विजोऽभूदङ्गविषये विष्णुस्वामी महाधनः ।
बभूवुस्तस्य तनयास्तरुणाः सुखशालिनः ॥ ३४० ॥
कदाचिद्याजिना तेन ते विसृष्टा महोदधिम् ।
यज्ञाय कूर्ममाहर्तुं ययुरादेशकारिणः ॥ ३४१ ॥
ते समुद्रं समासाद्य प्राप्य कूर्मं महाकृतिम् ।
दुरामोदं न जगृहुः पिच्छिलाङ्गं जुगुप्सया ॥ ३४२ ॥
संप्राप्तेऽप्यगृहीतेऽस्मिन्कच्छपे वेशधारणात् ।
ध्रुवं नो याति जनको दीक्षामङ्गादधोगतिम् ॥ ३४३ ॥
गृहाण त्वं न शक्तोऽहं क्षमस्त्वं न त्वहं विभो ।
इति तेषामभूत्तत्र जल्पश्चिरमनल्पकः ॥ ३४४ ॥
नारीचङ्गोऽहमुचितो बीभत्सेऽस्मिन्नकर्मणि ।
स्नातभोजनचङ्गोऽहं शय्याचङ्गोऽधिकोऽप्यहम् ॥ ३४५ ॥
इति ते जातकलहा विटङ्कनगरेश्वरम् ।
प्रसेनजितमभ्येत्य पप्रच्छुर्निजगौरवम् ॥ ३४६ ॥
इति निशम्यतामद्य मातर्दातास्मि चोत्तरम् ।
इति राज्ञा समादिष्टास्तस्थुस्तत्रैव ते द्विजाः ॥ ३४७ ॥
अथैकः प्रस्तुतो भोक्तुं नवकर्पूरसौरभम् ।
शालिभोजनमम्लानं नाभ्यनन्दद्विकूणितः ॥ ३४८ ॥
ततस्तन्दुलमग्रासीद्दुष्टमन्विष्य भूपतिः ।
श्मशाननिकटक्षेत्रजातधान्यसमुद्भवम् ॥ ३४९ ॥

---

१. 'रक्षणात्' क.

सत्यं भोजनचङ्गोऽयमित्युक्त्वा विस्मितो नृपः।
दिदेश नारीचङ्गाय दासीं कुवलयेक्षणाम् ॥ ३५० ॥
समाल्यसौरभाहूतभृङ्गव्याकुलमौलिनीम्।
तस्य शय्यान्तिकं प्राप्य तस्थौ हासविलासिनी ॥ ३५१ ॥
नारीचङ्गोऽप्यथोत्थाय करस्थगितनासिकः।
ष्ठीवनव्याकुलस्तत्र निर्ययौ सहसा बहिः ॥ ३५२ ॥
हतश्छागलगन्धेन वताहं दुष्टयोषिता।
इति क्रन्दन्तमाकर्ण्य तं ददर्श महीपतिः ॥ ३५३ ॥
अजादुग्धैरियं बाला मात्रा हीना विवर्धिता।
इति पृष्टा नृपेणाहं दासी लज्जानतानना ॥ ३५४ ॥
स्त्रीचङ्गोऽयं भवत्येव निगद्येति नरेश्वरः।
सप्ततूलीकृतां शय्यां शय्याचङ्गाय दत्तवान् ॥ ३५५ ॥
सप्ततूलीजुपस्तस्य पर्यङ्कतलवर्तिना।
बालेन वलयाकारं गात्रेऽभूल्लक्ष्म लोहितम् ॥ ३५६ ॥
सव्यथं निःश्वसन्तं तं दृष्ट्वा बालं च भूपतिः।
सत्यं शयनचङ्गोऽयमित्युवाच सविस्मयः ॥ ३५७ ॥
ततस्तेषां नृपतिना दत्तैर्द्रविणसंचयैः।
संभोगसत्कारास्तत्रैव तस्थुस्ते द्विजपुत्रकाः ॥ ३५८ ॥
तत्पिता क्रतुभङ्गाच्च विधायानशनव्रतम्।
सभार्यः प्रययौ स्वर्गं जपयज्ञपवित्रितः ॥ ३५९ ॥
इत्यभ्युदीर्य वेतालो मोहयन्निव मायया।
मातापित्रोस्तेषु हत्या पतिता कस्य भूपते ॥ ३६० ॥
एतेभ्यः कोऽधिकश्चङ्ग इत्यपृच्छन्महीपतिम्।
पृष्टो नरेश्वरः प्राह द्वावप्रत्ययवीक्षकौ ॥ ३६१ ॥
शय्याचङ्गोऽधिकस्तेभ्यो यो बालेनाङ्कितस्तनौ।
तयोस्तयोः पातकं तत्पितृप्रत्ययसंभवम् ॥ ३६२ ॥

१. 'गर्भिनी' क.

इति मौनपरित्यागात्स राज्ञः सहसा गतः ।
पुनः पुनर्दृष्टनष्टस्तथैवोल्लम्बितः स्थितः ॥ ३६३ ॥

इति पञ्चमो वेतालः ॥ ७ ॥

(¹पुनस्तमादाय यथावस्थितो वसुधाधिपः ।
स च स्कन्धस्थितः प्राह शृणु राजन्कथामिमाम् ॥ ३६४ ॥
अस्ति धर्मस्य वसुधा लक्ष्म्याः क्षेत्रं स्थितिः स्थितेः ।
संपदां सदनं स्वर्गं जयत्युज्जयिनी पुरी ॥ ३६५ ॥
पुण्यसेनाभिधानस्य तस्यामासीन्महीपतेः ।
ब्राह्मणः सेवको धीमान्हरिस्वामीति विश्रुतः ॥ ३६६ ॥
देवस्वामी सुतस्तस्य बभूव श्रुतिपारगः ।
सोमप्रभा च तनया मूर्तेव श्रीर्मनोभुवः ॥ ३६७ ॥
विज्ञानिने ज्ञानिने वा देया शूराय वा त्वया ।
अहमित्यात्तनियमा पितरं सा व्यजिज्ञपत् ॥ ३६८ ॥
अत्रान्तरे दाक्षिणात्ये नृपे जेतुं समागते ।
पुण्यसेनो नरपतिः सहामात्यैरचिन्तयत् ॥ ३६९ ॥
सर्वथा सामसाध्योऽसौ रक्तामात्यो महाधनः ।
शूरश्च राजा तेनास्मै दूतो धीमान्विसृज्यताम् ॥ ३७० ॥
इति मन्त्रिगिरा राजा वर्चस्वी गुणवान्द्विजः ।
हरस्वामी विसृष्टस्तत्कटकं सहसाभ्यगात् ॥ ३७१ ॥
तत्र राज्ञा समाधाय संधिं तस्मिन्स्थिते क्षणम् ।
विप्रः कश्चित्तमभ्येत्य ययाचे रुचिरः सुताम् ॥ ३७२ ॥
सोऽब्रवीज्ज्ञानिविज्ञानिशूरेभ्यो नापरः सखे ।
योग्यः पुत्री ममोद्वोढुमिति नः समयो दृढः ॥ ३७३ ॥
तत्सुता ब्राह्मणयुवा विज्ञानं समदर्शयत् ।
क्षणेन दृष्टवान्येन हरिस्वामी जगत्त्रयम् ॥ ३७४ ॥

---

१. 'एतत्श्लोकान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

हृष्टस्ततः स्वतनयां विस्मितो वचसा ददौ ।
शुभे दिने सप्तमेऽस्तु विवाह इति संविदा ॥ ३७५ ॥
अत्रान्तरेऽपरो विप्रः शूरो धीमान्कृतश्रमः ।
देवस्वामिनमभ्येत्य तत्सुतामयाचत ॥ ३७६ ॥
ज्ञानिविज्ञानिशूराणां मध्यादेको लभेत ताम् ।
इत्यसौ तद्वचः श्रुत्वा धनुर्विद्यामदर्शयत् ॥ ३७७ ॥
अनेकमल्लसंचार्यं दृष्ट्वा तस्यानतं धनुः ।
देवस्वामी ददौ तस्मै विस्मितो भगिनीं गिरा ॥ ३७८ ॥
मात्रापि द्विजपुत्राय कस्मैचिज्ज्ञानशालिने ।
पुत्री वाक्येन दत्तासौ तत्प्रभावोदितस्मयात् ॥ ३७९ ॥
सप्तमेऽह्नि वृतस्तेषां लग्ने प्राप्ते गृहाधिपः ।
हरस्वामी स्वतनयां ददर्शोज्ज्वलभूषणाम् ॥ ३८० ॥
ज्ञानिविज्ञानिशूरेषु तुल्यं प्राप्तेष्वथोत्सवे ।
अन्विष्टापि प्रयत्नेन कन्या नैव व्यदृश्यत ॥ ३८१ ॥
ततस्तज्जनकः प्राह दुःखितः साश्रुलोचनः ।
ज्ञानिन्वद क्व यातासौ निरुपेयं तवागता ॥ ३८२ ॥
इति पृष्टः स चोवाच धूम्राक्षेणाद्य रक्षसा ।
सा नीता रूपलुब्धेन घोरां विन्ध्याटवीमितः ॥ ३८३ ॥
विज्ञानिना कल्पितेऽथ समारुह्य रथोत्तमे ।
शूरस्तं राक्षसं हत्वा कन्यकामानिनाय ताम्[1] ॥ ३८४ ॥
ततो लग्नक्षणे प्राप्ते त्वरिता भ्रान्तमानसः ।
सर्वे कृतोपकाराश्च तुल्याश्चेति व्यचिन्तयत् ॥ ३८५ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ धरणीपतिम् ।
कस्तेभ्यः कन्यकालाभयोग्य इत्युच्यतां विभो ॥ ३८६ ॥
पृष्टोऽब्रवीन्नरपतिः स पात्रं येन निर्जिता ।
सा कन्यान्यौ तु विधिना दिष्टौ तौ सिद्धिकारणम् ॥ ३८७ ॥

1. 'प्रा' क.

इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा क्षिप्रमलक्षितः ।
तस्मिन्विटपिपर्यन्ते तथैवोल्लम्बितः स्थितः ॥ ३८८ ॥

इति षष्ठो वेतालः ॥ ८ ॥

राजा पुनस्तमादाय प्रययौ वीतसंभ्रमः ।
स च स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः शृणु भूपते ॥ ३८९ ॥
शोभावत्यां पुरि श्रीमान्यशःकेतुः क्षितीश्वरः ।
गौर्या भक्तिपरश्चक्रे तीर्थयात्रामहोत्सवम् ॥ ३९० ॥
स्नातुं स्त्रियो समायाते जने गौरीसरस्तदा ।
चेरुः सरोजनयना नूपुराहूतसारसा ॥ ३९१ ॥
तां नीतां वक्त्रपद्मैश्च दोर्मृणालीवनैस्तथा ।
तासां भ्रूवीचिजालैश्च पुनरुक्तमभूत्सरः ॥ ३९२ ॥
वराङ्गनानां कुचयोः ससंक्रुतनखव्रणा ।
स्वच्छफेनावली चीरैः प्रीत्येवाबन्धि वारिणा ॥ ३९३ ॥
स्नानधौताञ्जनसिता तासां दृष्टिर्व्यरोचत ।
निष्कृष्टकालकूटाशा चटुलैवामृतच्छटा ॥ ३९४ ॥
स्नातोत्थिता वारिधाराहारिभिस्ताः स्तनैर्बभुः ।
दृष्टाप्रविसस्त्रासैश्चक्रवाकैरिवाङ्किताः ॥ ३९५ ॥
धवलो नाम तत्राथ रजकः स्नातुमागतः ।
युवा ददर्श रजकीं कन्यां मदनसुन्दरीम् ॥ ३९६ ॥
स्नात्वा बाहुलताक्षेपतैरलोत्क्षेपितैर्मुहुः ।
यस्या लावण्यसलिलैः प्रक्षालितमिवाम्बरम् ॥ ३९७ ॥
कटाक्षशफरोत्फाला या विभ्रमतरङ्गिता ।
रजकानामिव गृहे जाता मूर्तिमती नदी ॥ ३९८ ॥
मुहुर्लीलास्मितस्मेरच्छायाव्याजैर्दिदेश या ।
यात्रोत्सवे जनस्येव धौतपीतपटावली ॥ ३९९ ॥

१. 'दिग्भ्यः' क. २. 'कृ' क. ३. 'सञ्जितोत्सर्पिभिर्मु' क. ४. 'द्वारा' क. ५. 'वीर' क.

तां चन्द्रबिम्बवदनां विलोक्य स्तबकस्तनीम् ।
स्वगृहं रजको गत्वा बभूव स्मरतापितः ॥ ४०० ॥
पिता विदितवृत्तान्तस्तस्य दृष्ट्वा स्मरव्यथाम् ।
कन्यां ययाचे रजकं गत्वा शुद्धपटाभिधम् ॥ ४०१ ॥
आदरेण ततः पित्रा दत्तां मदनसुन्दरीम् ।
अवाप्य धवलो लेभे जीवितं विततोत्सवः ॥ ४०२ ॥
दत्तां कदाचित्तां पुत्रीं भर्तृगेहे चिरस्थिताम् ।
आनेतुं आहिणोत्पुत्रं स्वीयं शुद्धपटस्ततः ॥ ४०३ ॥
भ्रात्रा निमन्त्रिता साथ भर्त्रा सह समागता ।
पथि गौर्याश्रमं प्राप्य निषण्णा तत्सरस्तटे ॥ ४०४ ॥
द्रष्टुं ततो भगवतीं प्रविष्टो धवलः स्वयम् ।
उपहारं निजशिरः प्रददौ दैवनोदितः ॥ ४०५ ॥
भगिनीपतिमन्वेष्टुं प्रविष्टो वीक्ष्य तं पुरः ।
तथैव निजमूर्धानं चिच्छेदाकुलिताशयः ॥ ४०६ ॥
अथैका तावपश्यन्ती देवीं रजकसुन्दरी ।
द्रष्टुं प्रविष्टा तौ दृष्ट्वा पतितौ मर्तुमुद्यता ॥ ४०७ ॥
अशोकशाखिनः प्रान्ते पाशं सज्जीचकार सा ।
ज्वलितार्तस्य तद्दुःखवह्निना कुसुमश्रियः ॥ ४०८ ॥
मुहुः स्तनाग्रविन्यस्तसाञ्जनाश्रुकणावली ।
लतेव स्तबकासक्तभृङ्गाली सास्तवीत्सतीम् ॥ ४०९ ॥
श्रीकण्ठकण्ठनीलाब्जनवषट्पदमालिका ।
दंष्ट्रिर्जयति ते देवि दैत्यसंहारयामिनी ॥ ४१० ॥
त्रिलोचनमनःसिन्धुदर्पवीचिविलासिनी ।
कान्तिर्जयति ते गौरि शुम्भकैरवकौमुदी ॥ ४११ ॥

१. 'सोत्कं' क. २. 'दं' क. ३. 'न.' क. ४. 'तस्येव दुःखस्य च' क. ५. 'मस्तकाग्र' क. ६. 'ददाग्यती' क. ७. 'दायिनी' क. ८. 'का' क.

[1]व्याजृम्भि बाहुशार्दूलदंष्ट्रांशुविशमण्डलम् ।
अम्बिके जयति स्मेरं पादाम्बुजयुगे तव ॥ ४१२ ॥
श्रुत्वेति पार्वती तुष्टा शिरःसंघट्टने तयोः ।
[2]भ्रातृजीवितुं व्यादिदेश भक्तिः फलवलतेव यत् ॥ ४१३ ॥
भर्तुर्भ्रातुश्च सा शीर्षयोजने संभ्रमाकुला ।
दैवाद्विनिमयं चक्रे मुग्धा तत्र शरीरयोः ॥ ४१४ ॥
भ्रातरं भर्तृवदनं भर्तारं भ्रातृजाननम् ।
ततस्तावुत्थितौ दृष्ट्वा सा संदेहाकुलाभवत् ॥ ४१५ ॥
कथयित्वेति वेतालः पृष्टवानु[3]र्वरापतिम् ।
भर्तारं सेव्यतां बाला कं तयोः सा सुलोचना ॥ ४१६ ॥
श्रुत्वेति राजा प्रोवाच यस्या भर्तृमुखः पतिः ।
शिरः सर्वेन्द्रियाधारं सकलं हि कलेवरम् ॥ ४१७ ॥
इति मौनपरित्यागाद्राज्ञः क्षणमलक्षितः ।
वेतालो वृक्षमभ्येत्य तथैवोल्लम्बितः स्थितः ॥ ४१८ ॥

इति सप्तमो वेतालः ॥ ९ ॥

ततः पुनस्तमादाय जगाम जगतीपतिः ।
तत्स्कन्धस्थोऽपि वेतालः प्राह तं श्रूयतामिति ॥ ४१९ ॥
बभूव [4]चन्द्रसिंहाख्यस्ताम्रलिप्त्यधिपो नृपः ।
दिक्षु यद्विक्रमोत्साहलक्ष्या वीरकथाभवत् ॥ ४२० ॥
तस्य सेवाव्रतः सत्त्वशीलाख्यो राजवंशजः ।
आसीत्कार्पटिको द्वारि शीतातपसहश्चिरम् ॥ ४२१ ॥
ततः कदाचिन्मृगयारसाकृष्टः स भूपतिः ।
पार्ष्णिसंस्पर्शरोषेण दूरोऽश्वेनातियायिना ॥ ४२२ ॥
निर्मानुषं वनं प्राप्य स दूराध्वश्रमातुरः ।
नापश्यदनुगं कंचिदेकं कार्पटिकं विना ॥ ४२३ ॥

१. 'विजृम्भि' क. २. 'तत्रास्मिन् व्यादिदेश' क. ३. 'नयनीपतेः' क. ४. 'चण्डसेनः' तथास्तित्यत्परे.

तत्र संदश्य पानीयं वितीर्यामलकद्वयम् । . .
नृपं सार्धं समाश्वास्य मार्गं कार्पटिकोऽदिशत् ॥ ४२४ ॥
पुनः स्वनगरं प्राप्तो मन्त्रिभिर्विहितोत्सवः ।
तुष्टः कार्पटिकं श्रीमांश्चकारात्मसमं नृपः ॥ ४२५ ॥
ततः कदाचिद्दर्पेण स सिंहलपतेः सुताम् ।
मृगाङ्कलेखामुचितां विसृष्टो याचितुं ययौ ॥ ४२६ ॥
स प्रापाम्भोनिधिं तुङ्गतरङ्गालिङ्गिताम्बरम् ।
कैलासमिव चार्वर्कशिखरोल्लिखिताखिलम् ॥ ४२७ ॥
तत्रारुह्य प्रवहणप्रस्थिते सिंहलोन्मुखे ।
तस्मिन्महिषसंकाशः समुत्तस्थौ महाघनः ॥ ४२८ ॥
तदुद्भूतमहावात्या चण्डताण्डवितेऽम्बुधौ ।
प्रलयावर्तवित्रस्ताः क्वापीव ककुभो ययुः ॥ ४२९ ॥
ततः प्रवहणारूढा वणिजो ब्राह्मणास्तथा ।
चन्द्रसिंहमहीपालं चुक्रुशुर्भयकातराः ॥ ४३० ॥
तं स्वामिशरणाक्रन्दं श्रुत्वा कार्पटिकोऽम्बुधौ ।
अमृष्यमाणः सहसा ममज्जाकोशखड्गभृत् ॥ ४३१ ॥
ततो भग्ने प्रवहणे सर्वे ते जलचारिभिः ।
भक्षिताः सत्वशीलस्तु निजोत्साहेन रक्षितः ॥ ४३२ ॥
ध्वजयष्टिं जले दृष्ट्वा तत्पार्श्वेन प्रविश्य सः ।
अपश्यत्काञ्चनपुरं पाताले रत्नतोरणम् ॥ ४३३ ॥
मणिप्रासादमध्यस्थां तत्र तुष्टाव पार्वतीम् ।
भुजङ्गदैत्यकन्याभिः कृतपूजामहोत्सवाम् ॥ ४३४ ॥
जय गौरि गैलद्गर्वगीर्वाणगणवन्दिते ।
जय काललघुमासहेलाहुंकृतिशालिनि ॥ ४३५ ॥
जय सोत्सुकचण्डीशनेत्रपद्मदपद्मिनि ।
जय दैत्येन्द्रहृत्पद्मसंकोचघनकौमुदि ॥ ४३६ ॥

१. 'गौ' ख. २. 'नमन्मौलिगीर्वाण' ख. ३. 'कला' ख.

जय मायागुणप्रोतजगद्यन्त्रविनोदिनि ।
यत्र स्फोटसमुन्मेषप्र्याप्तविध्वंसरस्तति ॥ ४३७ ॥
इति स्तुत्वा भववधूं तत्पुराग्रे ददर्श सः ।
दासीसहस्रानुगतां कन्यां दिव्यविभूषणाम् ॥ ४३८ ॥
हरिणीहारिनयनां मत्तमातङ्गगामिनीम् ।
विलासलीलललसितां[2] स्मरोपवनमञ्जरीम् ॥ ४३९ ॥
लावण्यवारिपरिखां मेखलायन्त्रमालिकाम् ।
रुद्धनेत्रानलध्वस्तस्मररक्षापुरीमिव ॥ ४४० ॥
तां दृष्ट्वा स स्खलद्धैर्यो मुद्रितः पुष्पधन्वना ।
चित्रन्यस्त इव क्षिप्रमभूद्विस्मयनिश्चलः ॥ ४४१ ॥
सैं पूजयित्वा शर्वाणीं प्रविष्टां मणिमन्दिरे ।
अनुप्रविश्य तत्कान्तिं पपौ नयनचन्द्रिकाम् ॥ ४४२ ॥
तस्यां स्फाटिकपर्यङ्कनिषण्णायां स सादरम् ।
नीतः कार्पटिकः स्नातुं दासीभिर्विमलं सरः ॥ ४४३ ॥
स्नानार्थं नोदितस्तत्र ताम्रलीप्तान्तरस्थितात् ।
उत्तस्थौ भूमिपोद्यानक्रीडाकमलिनीतटात् ॥ ४४४ ॥
ततो नवमधुक्षीब इवानन्दितमानसः ।
कन्दर्पसर्पदष्टोऽभूत्स तत्रात्यन्तमूर्च्छितः ॥ ४४५ ॥
क्षिप्रमुद्यानपालेन विज्ञप्तोऽहं तदागमम् ।
चण्डसेननृपोऽभ्येत्य तं ददर्श तथास्थितम् ॥ ४४६ ॥
स कथंचित्परिज्ञाय नृपमुन्मील्य लोचने ।
मन्दमन्देन वचसा निजवृत्तान्तमभ्यधात् ॥ ४४७ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा तमुवाच स्मरातुरम् ।
समाश्वसिहि पातालं गच्छावः पुनरश्विना ॥ ४४८ ॥

१. 'प्रेमरेखरि' क. २. 'ति' क. ३. 'द्धनेत्रानलध्वस्त' क. ४. 'तां' क.
५. 'स्नातुरूपव्ययोऽस्यतामलिप्तपुरे स्थितम्' क.

इत्युक्त्वा सचिवन्यस्तराज्यः प्रणयि[१]वत्सलः ।
सह कार्पटिकेनैव चण्डसेनोऽम्बुधिं ययौ ॥ ४४९ ॥
तत्र प्रवहणारूढः सलिले तत्प्रदर्शिते ।
निमज्ज्य तेन सहितः क्षिप्रं पातालमाप्तवान् ॥ ४५० ॥
ततो गौर्याश्रमे कन्यां तामपश्यत्सुलोचनाम् ।
नवां स्मरमयूरस्य निवासकदलीमिव ॥ ४५१ ॥
सैंहिकेयपरित्रासाल्लक्ष्मीं हरिणलक्ष्मणः ।
चक्रिचक्रसमाक्रान्तामिव पातालमाश्रिताम् ॥ ४५२ ॥
तां दृष्ट्वा भूमिपालोऽभूद्गाढप्रमदविस्मयः ।
अहो स्थानेऽनुरक्तोऽयमिति लोलितशेखरः ॥ ४५३ ॥
सापि संपूज्य वरदां प्राप्तोद्वाहवरा सती ।
दृष्ट्वा राजानमवदन्निजदासीं सविस्मया ॥ ४५४ ॥
ब्रूहि सत्त्वोचिताकारं गत्वैनं पुरुषोत्तमम् ।
देव पूजां गृहाणेति तमादिष्टेत्यभाषत ॥ ४५५ ॥
इह स्थितेनैव मया गृहीता सुभ्रु सत्कृतिः ।
इति भूमिभुजाप्युक्ता कन्यकामेत्य सावदत् ॥ ४५६ ॥
निर्विकारेण सत्त्वेन तस्यावष्टम्भशालिना ।
सा भुजङ्गी ततः कृष्टा मन्त्रेणेवान्तिकं ययौ ॥ ४५७ ॥
सुवर्णवल्लरीरम्ये रत्नपादपकानने ।
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्ये विश्रान्तं सा तमब्रवीत् ॥ ४५८ ॥
पूजा देव गृहायातो गृहाण मम सादरम् ।
इत्यर्थितस्तया राजा जगाद सहितोऽमुना ॥ ४५९ ॥
द्रष्टुं गौरीमहं प्राप्तस्त्वां ज्ञात्वा त्वर्थिवत्सलाम् ।
इति श्रुत्वा परिज्ञाय तं कार्पटिकमानतम् ॥ ४६० ॥
मुहूर्तं लज्जया तस्थौ स्मृत्वा तां तस्य वञ्चनाम् ।
ततोऽब्रवीत्सा राजेन्द्र सुतादमसुरप्रभोः ॥ ४६१ ॥

---

१. 'य' प.

कालनेमेः पुरयुगं ममेदं भोगमोक्षदम् ।
सर्वसिद्धिप्रदं दीप्तं रत्नहाटकनिर्मितम् ॥ ४६२ ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिवर्जितं दिव्यसौरभम् ।
अहं पुरद्वयोपेता त्वदधीना नरेश्वर ॥ ४६३ ॥
इत्याकर्ण्य नृपः प्राह स्पृशन्कार्पटिकं दृशा ।
प्रेमविश्रम्भभूरेको मम मानसदर्पणः ॥ ४६४ ॥
सुहृत्पिता सुतो बन्धुः स्वामी सर्वमयं मम ।
कुलोन्नतः सत्त्वशीलस्तदस्मै त्वं मयार्पिता ॥ ४६५ ॥
(पुत्रीव सुभ्रु गुणिने मय्यस्ते प्रणयो यदि ।
निशम्य तां नरपतेर्गिरमौचित्यमन्थराम् ॥ ४६६ ॥
तथेति लज्जिता प्राह सा लिखन्ती दृशा भुवम् ।
कन्यामसुरराज्यं च दत्त्वा तस्मै नृपोऽब्रवीत्) ॥ ४६७ ॥
एकस्यामलकस्यैतत्फलमन्यद्भृणं मम ।
तावापृच्छ्यततस्तस्मिन्स निमज्य सरोवरे ॥ ४६८ ॥
उन्ममज्ज निजोद्यानलीलापुष्करिणीतटात् ।
कथां राज्ञे निवेद्येति वेतालः पुनरभ्यधात् ॥ ४६९ ॥
वद कः सत्त्ववानत्र नृपः कार्पटिको नु वा ।
इति पृष्टोऽब्रवीद्राजा किं चित्रं यदि भूपतिः ॥ ४७० ॥
कृते प्रतिक्रियां कर्तुं निमग्नो दृष्टवर्त्मना ।
श्लाघ्यः कार्पटिको येन भीताक्रन्दासहिष्णुना ॥ ४७१ ॥
अदेशिके निरालम्बे निमग्नो मकरालये ।
श्रुत्वेत्यलक्षितो यातो वेतालो विपुलच्छलैः ।
शिंशिपाप्रान्तमागत्य पुनरुल्लम्बितः स्थितः ॥ ४७२ ॥
इत्यष्टमो वेतालः ॥ १० ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः रा-पुस्तके त्रुटितः २. 'निशाम्य' इति भवेत्. ३. 'भिः' फ.

राजा ततस्तमादाय निरुद्वेगो ययौ जवात्।
स च तत्स्कन्धगः प्राह धिक्ते निर्वेद्यमीदृशम् ॥ ४७३ ॥
क राज्यं क सुधागर्भपूर्णेन्दुवदनाश्च ताः।
क चेदं मत्तवेतालं स्मशानमतिभीषणम् ॥ ४७४ ॥
क्षान्तिशीलेन पापेन जगच्चूडामणिर्भवान्।
पातितः संशये घोरे शृणु तावत्कथमिमाम् ॥ ४७५ ॥
वीरदेवोऽभवच्छ्रीमानुज्जयिन्यां महीपतिः।
तस्य पद्मरतिर्नाम भार्याभूच्चित्तचन्द्रिका ॥ ४७६ ॥
तपसा देवमासाद्य भवानीवल्लभं विभुम्।
लेभे सभार्यस्तनयं कन्यां चायतलोचनाम् ॥ ४७७ ॥
शूरदेवाभिधे तस्मिन्दारके मुक्तशैशवे।
अनङ्गरतिनाम्नी सा कन्यापि प्राप यौवनम् ॥ ४७८ ॥
तस्या बभूव संकल्पो यः शूरो विपुलाकृतिः।
लोके विस्तीर्णविद्यश्च स मे प्रणयभूरिति ॥ ४७९ ॥
नानादिगन्तभूपाला याचमाना नृपात्मजाम्।
प्रत्याख्याता ययुर्लोके कुतः सर्वगुणो जनः ॥ ४८० ॥
ततः कदाचिदाजग्मुश्चत्वारः सदृशा नराः।
विक्रान्ता विपुलाकारा विद्यासु च विचक्षणाः ॥ ४८१ ॥
ते समभ्येत्य राजानमयाचन्त प्रियां सुताम्।
प्रतीहारेण पृष्टाश्च निजाभिजनमूचिरे ॥ ४८२ ॥
एकोऽवदच्चित्रवस्त्रनिर्माणकुशलो धनी।
शूद्रोऽहं शौर्यसंपन्नो वपुः प्रत्यक्षमीक्ष्यताम् ॥ ४८३ ॥
द्वितीयः प्राह वैश्योऽहं भाषाज्ञः सर्वदेहिनाम्।
तृतीयः प्राह राजन्यः खड्गी नान्योऽस्ति मत्समः ॥ ४८४ ॥
चतुर्थश्चाब्रवीद्विप्रो जानेऽहं मृतजीवनम्।
शौर्यरूपगुणैर्विद्धि तुल्यानस्मान्महीपते ॥ ४८५ ॥

१. 'राजन्' क. २. 'शोमवती' क. ३. 'बालके' क. ४. 'प्रिनीम्' क.

इति श्रुत्वा वीरदेवः संदेहाकुलितोऽभवत् ।
मन्त्रिभिः सहितो दृष्ट्वा मिथो बिम्बागतानिव ॥ ४८६ ॥
उक्त्वेति पप्रच्छ नृपं वेतालो विपुलाशयः ।
कस्मै नरपते ब्रूहि सा कन्या दीयतामिति ॥ ४८७ ॥
राजावदद्वैश्यशूद्रौ नार्हावत्र न संशयः ।
अन्यवृत्तिर्द्विजः पापः क्षत्रियः क्षत्रियापतिः ॥ ४८८ ॥
इति श्रुत्वाथ वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
नृपो भूयस्तमादाय ययौ स्कन्धाच्च सोऽब्रवीत् ॥ ४८९ ॥
इति नवमो वेतालः ॥ ११ ॥

वीरबाहोर्नरपतेर्नगरं पुरमण्डले ।
निदर्शनं धनवतामर्थदत्तोऽभवद्वणिक् ॥ ४९० ॥
धनदत्ताभिधस्तस्य पुत्रो मूर्तलनन्दनः ।
सुता मदनसेना च मदनस्येव देवता ॥ ४९१ ॥
धनदत्तवयस्योऽथ धर्मदत्तो युवा वणिक् ।
तस्यानुजां कदाचित्तामपश्यद्वद्गृहागतः ॥ ४९२ ॥
दृष्टिर्युवनिरानन्दस्तस्यगुर्वी तरङ्गिते ।
यत्कान्तिसलिले मग्नान्समुद्धर्तुं न पार्यते ॥ ४९३ ॥
भ्रूलास्यवीचितरले हारहंससितोर्मिणि ।
लावण्यमानसे यस्याः कटाक्षैः शफरायितम् ॥ ४९४ ॥
उन्निद्रचन्द्रवदनां तां विलोक्य निजालयम् ।
गतो न लेभे स धृतिं सार्थभ्रष्ट इवाध्वगः ॥ ४९५ ॥
स वै निःश्वाससंतापग्लपिताधरपल्लवः ।
अशान्तसर्वेशिखिना कामेनेवान्तराश्रितः ॥ ४९६ ॥
अत्रान्तरे जलनिधिं संध्यारक्ते दिवाकरे ।
तापादिव क्लान्ततनौ प्रविष्टे पद्मिनीप्रिये ॥ ४९७ ॥

१. 'सह तां दृष्ट्वा मिथो' क. २. 'स्थुलन' क. ३. 'स्तुस्यो' क.

दिक्षु कालागरुस्यन्दनीलैस्तिमिरसंचयैः ।
अभिसारोचितं वेषमाश्रितास्विव तत्क्षणात् ॥ ४९८ ॥
उदिते पूर्वदिक्कान्तासीमन्तमणिमौक्तिके ।
शशाङ्के शंकरक्रुद्धकामसंजीवनौषधम् ॥ ४९९ ॥
ज्योत्स्नाविलासविलसत्प्रभाशुभ्रे नभस्तले ।
दुग्धाब्धिशायिनः शौरेः सुधालिप्त इवोरसि ॥ ५०० ॥
वणिक्पुत्रः स्मराक्रान्तः सुहृदाश्वासितो मुहुः ।
क्षणार्धनिद्रितोऽपश्यत्स्वप्ने तामेव कामिनीम् ॥ ५०१ ॥
ततः प्रभाते विजने स्थितां तामेव कन्यकाम् ।
ययाचे संगमं तस्या लज्जा रागेण सह्यते ॥ ५०२ ॥
तेन प्रणयिभृङ्गेन वल्लरीवाकुलीकृता ।
स्तनाग्रलग्नवदना बभाषे सा नता ह्रिया ॥ ५०३ ॥
अहमद्यैव तातेन वचसा प्रतिपादिता ।
सखे समुद्रदत्ताय वणिजे गुणशालिने ॥ ५०४ ॥
पूर्वमेव त्वयाभ्येत्य पिता मे किं न याचितः ।
अधुनाहं परवधूरगम्या विदुषस्तव ॥ ५०५ ॥
इति श्रुत्वा बलवता मन्मथेन समाहतः ।
सोऽवदद्वीक्ष्यमाणस्तां हठात्कण्ठग्रहोत्सुकः ॥ ५०६ ॥
मम प्राणैः पणः सुभ्रु त्वां विना समुपस्थितः ।
कार्याकार्यविचारो हि कस्य जीवितसंशये ॥ ५०७ ॥
त्यजते प्राप्तममृतं यदेतद्बुद्धिलाघवम् ।
को जानीते परे लोके कस्य किं नु भविष्यति ॥ ५०८ ॥
भज मामनवद्याङ्गि न चेत्त्वद्वदनामृतम् ।
स्वयं पिबामि किं प्राप्ते विधौ नक्षत्रचिन्तया ॥ ५०९ ॥
श्रुत्वेति चकिता तन्वी ग्रीवाचानन्तवीक्षितैः ।
लज्जयेव वितन्वाना ततो मायूरकञ्चुकम् ॥ ५१० ॥

१. 'गुप्दीम्' क. २. 'कस्य' क.

अदृष्टायां मयि तातस्य विनष्टे कन्यकाफले ।
कुलं पतति नः सर्वं तत्र मा कारणं भव ॥ ५११ ॥
प्राग्जन्मविहितः कोऽपि निबन्धो यदि मे प्रभो ।
तत्पित्रे स्वफलं दत्वा कृतोद्वाहास्मि ते वशे ॥ ५१२ ॥
वणिग्युवा निशम्येति प्राह सर्वं न मे वरम् ।
नवां मालां परित्यज्य निर्माल्ये रमते नु कः ॥ ५१३ ॥
अनन्यस्पृष्टमुचितं त्यक्तुं नेशोऽस्मि ते वपुः ।
को हि हस्तात्परित्यज्य कुर्यादन्वेषणश्रमम् ॥ ५१४ ॥
इत्याग्रहेण तेनोक्ता निर्जने भयविह्वला ।
अबला बलिना लब्धा निःश्वसन्ती जगाद सा ॥ ५१५ ॥
सत्यं वृत्तविवाहाहं त्वदन्तिकमदूषिता ।
समेष्यामि क्षपामेकामिति ते सुकृतैः शपे ॥ ५१६ ॥
श्रुत्वेति स ययौ तुष्टः प्रीतये हि मृगीदृशाम् ।
प्रणयादस्त्युपगमो यथा नैव तथा हठात् ॥ ५१७ ॥
अथ लग्नदिने प्राप्ते प्रवृत्ते विपुलोत्सवे ।
समुद्रदत्तस्तरुणीं परिणीय निनाय ताम् ॥ ५१८ ॥
ततो मुक्तोत्तरं स्मेरकुसुमोत्तंसमन्दिरे ।
भेजाते दम्पती शय्यां तनुस्वच्छोत्तरच्छदाम् ॥ ५१९ ॥
लज्जानतमुखीं तेन चाटुकारेण कामिना ।
करेण रुद्धां नो नीवीं याचितापि मुमोच सा ॥ ५२० ॥
ततः सा तस्य वणिजः स्मृत्वा प्राग्विहितं वचः ।
यत्नाद्विहाय सहजां लज्जां भर्तारमब्रवीत् ॥ ५२१ ॥
प्रौढा समुचितं बाला वैदग्ध्यं सहते कथम् ।
अफुल्लां चूतकलिकां नहि चुम्बति षट्पदः ॥ ५२२ ॥
इति नीवीहठाकृष्टप्रगल्भं विनिर्मय्य तम् ।
सा प्राह पूर्ववरणद्रोहकाङ्क्षीकृतेप्सितम् ॥ ५२३ ॥

१. 'न्यस्तलज्यतामग्रम्' क. २. 'स्वपि' क. ३. 'वार्य तम्' क.

वणिजो धर्मदत्तस्य हठसङ्गभयान्मया।
अद्याहं समेष्यामि त्वामिति प्राक्प्रतिश्रुतम् ॥ ५२४ ॥
असत्यं नोत्सहे कर्तुं तदनुज्ञातुमर्हसि।
इत्याकर्ण्य स तत्याज तामाशां च तदागमे ॥ ५२५ ॥
ततः सा तेन विजने संत्यक्ता प्रययौ निशि।
तारहारांशुधवला कमलेनेव कौमुदी ॥ ५२६ ॥
प्रयान्तीं धर्मदत्तस्य भाण्डशालां सुलोचनाम्।
सर्वस्वहारी चौरस्तां ददर्शोज्ज्वलभूषणाम् ॥ ५२७ ॥
विस्तीर्णवक्षःप्राकारो मेघश्यामो महाभुजः।
तमःशबरसंघातसेनापतिरिवाग्रतः ॥ ५२८ ॥
स्कन्धावलम्बिभिर्भृङ्गनीलैः कुटिलकुन्तलैः।
सदा संचरणप्रीत्या रात्रिचक्रैरिवाश्रितः ॥ ५२९ ॥
उद्भिन्नश्मश्रुलेखाग्रकेशमण्डलमण्डितः।
दिग्दन्तिमुक्ताचौर्येषु मदाम्बुभिरिवाङ्कितः ॥ ५३० ॥
विकोशासिप्रभाजालैर्दीर्घैरालम्बिताम्बरः।
तारा रत्नप्रहारार्थमिवारोहणरज्जुभिः ॥ ५३१ ॥
स दृष्ट्वा तां सुवदनां कूजद्भूषणमौक्तिकाम्।
दिवः सचन्द्रनक्षत्रां श्रियं संचारिणीमिव ॥ ५३२ ॥
नेत्रयोः कज्जलेनेव नीलाब्जेनेव कर्णयोः।
तनौ कृष्णांशुकेनेव तमसापि विभूषिताम् ॥ ५३३ ॥
करेणुं कुञ्जराकारस्तां राजकदलीमिव।
समालम्ब्यावदद्धन्यः कोऽसौ यो मृग्यते त्वया ॥ ५३४ ॥
सर्वस्वहारी चौरोऽहं क नु गच्छसि निर्भया।
[1](अथवा मण्डलोद्दण्डकोदण्डस्ते स्मरोऽनुगः ॥ ५३५ ॥
इत्युक्ता तेन सा प्राह चौरोऽसि यदि गृह्यताम्)।
रत्नभूषणमामुक्तमौक्तिकं किं नु मुञ्च माम् ॥ ५३६ ॥

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

श्रुत्वेत्याह विहस्यैनां नाहं ग्राम्यः शुचिस्मिते ।
यस्त्वां सरालंकरणां त्यक्त्वा यास्याम्यचेतनः ॥ ५३७ ॥
इत्युक्ता तेन संरुद्धा सा जगौ वल्गुवादिनी ।
वचसा येन निर्बद्धा तस्मादेष्यामि ते वशे ॥ ५३८ ॥
स श्रुत्वेत्याह चित्रं ते सरलः कोऽप्ययं क्रमः ।
क्षिप्त्वा दिक्षु क्षिपेत्को नु कण्ठस्थां रत्नमालिकाम् ॥ ५३९ ॥
गच्छामि पुनरेष्यामीत्येवं धूर्तो न वञ्च्यते ।
योषितां च नदीनां च पुनरागमनं कुतः ॥ ५४० ॥
यस्तु हस्तगतं रत्नं मोहात्त्यजति बालवत् ।
स मन्दपुण्यः सुभगे पुनस्तस्य न भाजनम् ॥ ५४१ ॥
इति वादिनमत्युग्रसाहसं तं चकार सा ।
निवेद्य निजवृत्तान्तं किंचिद्धि कलितग्रहम् ॥ ५४२ ॥
सोऽब्रवीद्धर्मदत्तस्य यथा तथ्यं वचः कृतम् ।
तथैव मे त्वया कार्यं गत्वा सत्यवती ह्यसि ॥ ५४३ ॥
इति चौरेण मुक्तासौ भाण्डशालान्तरस्थितम् ।
धर्मदत्तमवाप्याह प्राप्तास्मीति सविस्मयम् ॥ ५४४ ॥
सोऽवदत्परभार्या मे न गम्या त्वं सुलोचने ।
शमितोऽनङ्गदावाग्निधूम्राभ्रमलिनः क्षणः ॥ ५४५ ॥
प्रतिमुक्तापि सा तेन चोरमेत्य तदाभ्यधात् ।
सत्यैत्वात्सोऽपि तच्छ्रुत्वा तां तत्याज सभूषणाम् ॥ ५४६ ॥
ततः समुद्रदत्तं सा पुनरभ्येत्य वल्लभम् ।
यथा वृत्तं निवेद्यास्मै भेजे तेन सरोत्सवम् ॥ ५४७ ॥
नृपमुक्त्वेति पप्रच्छ वेतालो वचनोन्मुखः ।
ब्रूहि कोऽत्र महासत्त्वः श्रुत्वेत्याह च भूपतिः ॥ ५४८ ॥
तत्याज धर्मदत्तस्तां बहुकर्णगतां प्रियाम् ।
राजभीत्या सुखे नित्यं धनिनो हि पराङ्मुखाः ॥ ५४९ ॥

१. 'हित्वा' क. २. 'कोऽपि' क. ३. 'त्ववान्' क. ४. 'कालाग' क.

धृतां समुद्रदत्तोऽपि कथं तामन्यमानसाम् ।
किं न कुर्युर्गृहे रुद्धा विरक्तहृदयाः स्त्रियः ॥ ५५० ॥
सत्त्ववानेक एवात्र चौरोऽसौ तां मुमोच यः ।
प्राणान्हि पणमाधाय धने धावन्ति दस्यवः ॥ ५५१ ॥
इति श्रुत्वैव वेतालस्तौ पुनरलम्बत ।
भूयोऽप्यादाय तं राजा ययौ मारुतरंहसा ॥ ५५२ ॥

इति दशमो वेतालः ॥ १२ ।

ततः स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः प्रहसन्मुहुः ।
अहो राजन्निरुद्वेगो व्यवसायस्तवायतः ॥ ५५३ ॥
राजा धर्मध्वजो नाम बभूवोज्जयिनीपतिः ।
तिस्रस्तस्याभवन्भार्यास्तरुण्यः कान्तिभूषणाः ॥ ५५४ ॥
इन्दुलेखाभिधानैका कान्ता तारावली परा ।
अन्या मृगाङ्कवत्याख्या चेर्युन्नतकुचोद्धताः ॥ ५५५ ॥
कदाचिद्दक्षिणमरुत्तरङ्गितलतावने ।
वसन्ते संततोत्फुल्लचूतचम्पककेसरे ॥ ५५६ ॥
काले केसरिणि स्मेरसिन्दुवारसटोद्भटे ।
मानिनीमानमातङ्गदारणे कलिकानखे ॥ ५५७ ॥
शर्वरीकबरीपाशत्विषि षट्पदमण्डले ।
दिक्षु कालागरुस्यन्दपत्रभङ्गतुलास्थिते ॥ ५५८ ॥
सेव्यतां ललनाभोगः पीयतां पातलं मधु ।
न घ्नन्तो वसन्तोऽयं वदतीवेति कोकिले ॥ ५५९ ॥
राजा चूतरजःपुञ्जपिञ्जरे वल्लभासखः ।
विजहार निजोद्याने विराजितमधूत्सवः ॥ ५६० ॥
(अथ तत्रेन्दुलेखायाः केलिलोलदिशा दिशः ।
इन्दीवरदलोदारा बभूवुर्नन्दनोत्सवे) ॥ ५६१ ॥

---

१. 'धुर्णा' क. २. 'सुशीला शशाङ्कलोचिता' क. ३. 'मदोत्कटैः' क. ४. एतत्पद्यान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

अत्रान्तरे मृगदृशस्तस्या भ्रमणविभ्रमात् ।
कर्णोत्पलेन पतता क्षिप्रमूरुरभज्यत ॥ ५६२ ॥
निजमन्तःपुरं नीत्वा दासीभिः कथमप्यसौ ।
तस्थौ स्फटिकपर्यङ्के मूर्च्छामोहनिमीलिता ॥ ५६३ ॥
ततस्तिमिरमायूरतालवृन्तसमाहते ।
जगद्गृहे गृहपतौ गते दीप इवास्तिले ॥ ५६४ ॥
सीत्काराचार्यतां याते निशीथे हरिणीदृशाम् ।
संकुचत्पद्मकोशाग्रबद्धभृङ्गरवैरिव ॥ ५६५ ॥
उदिते व्योमनलिनीराजहंसे सितत्विषि ।
कान्तास्मितासृतासक्त इवालोके विलासिनि ॥ ५६६ ॥
रजनीराजतनयाकन्दुकेनेन्दुना मुहुः ।
यामिनीकामिनीहारैः करैरापूरितेऽम्बरे ॥ ५६७ ॥
उत्सवेन विलासस्य विभ्रमेण मदश्रियः ।
जीवितेन मनोजस्य शशिना भूषिते मधौ ॥ ५६८ ॥
आखण्डलद्विपाखण्डदन्तदण्डोरुडम्बरैः ।
रश्मिखण्डैः शशाङ्कस्य मण्डिते क्षितिमण्डले ॥ ५६९ ॥
तारावलीसखो राजा सौधे लीलारतालसः ।
कर्पूरशुभ्रः सुष्वाप द्वितीय इव चन्द्रमाः ॥ ५७० ॥
मधुमत्ता रतिक्लान्ततनुवल्ली श्रमाम्बुभिः ।
संमृष्टतिलका क्षिप्रं देवी निद्रां समाययौ ॥ ५७१ ॥
तस्याः शीताभिलाषिण्यास्तत्र गात्रे निरम्बरे ।
पतितैश्चन्द्रकिरणैरुत्तस्थौ स्फोटकावली ॥ ५७२ ॥
ततो भुजगदष्टेव प्लुष्टेव शिखिनोत्थिता ।
ययावाश्वासिता राज्ञा कदलीशयनं शनैः ॥ ५७३ ॥

१. 'का' क. २. 'दग्धेव' क.

मृगाङ्कवत्यथाहूता रतये भूभुजा निशि।
समाययौ विभ्रममूः क्वणन्नूपुरमेखला॥ ५७४॥
निःशब्दजनसंचारे कुतोऽपि मुसलध्वनिम्।
श्रुत्वा तदा जातकिणौ धुन्वाना करपल्लवौ॥ ५७५॥
दष्टा इवैत्य मधुपैरुत्फुल्लकमलाशया।
हा हतास्मीति चुक्रोश तारसीत्कारशालिनी॥ ५७६॥
श्रीखण्डरससंसिक्तकरामाशु स भूपतिः।
परिसान्त्व्य क्षपां क्षिप्रं क्षीणां वीक्ष्य समुत्थितः॥ ५७७॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपम्।
सुकुमारतरा राजन्का वासां कथ्यतामिति॥ ५७८॥
नृपोऽवदन्मृदुतनुः सुकुमारतरैव सा।
यस्या मुसलशब्देन जातौ पाणी किणाङ्कितौ॥ ५७९॥
इति श्रुत्वैव वेतालः सहसादर्शनं गतः।
वृक्षाग्रात्पुनरादाय ययौ राजा महाजवः॥ ५८०॥

इत्येकादशो वेतालः॥ ११॥

सोऽथ स्कन्धगतः प्राह कथां शृणु विशांपते।
अशेषसंशयच्छेत्ता देवदेवो मतोऽसि मे॥ ५८१॥
नृपोऽभूदङ्गविषये यशःकेतुरिति श्रुतः।
यद्यशःपुण्डरीकस्य मृणालं फणिनायकः॥ ५८२॥
पृथुवेपथुसिञ्जानैर्यति संधाय नूपुरैः।
यस्य किंनरकान्ताभिर्गीयते चरितावली॥ ५८३॥
यत्पराक्रममाकर्ण्य लङ्कालोडनसाक्षिणः।
स्मरन्ति रामचरितं ते जीर्णा रजनीचराः॥ ५८४॥
अमात्यो दीर्घदर्शीति तस्याभूदुचिताभिधः।
यन्मन्त्रैः शत्रुसर्पाणां नाभवन्क्वचिदुद्भवाः॥ ५८५॥

१. 'स्वेद संजात' ख. २. 'विजित्य' ख. ३. 'शीत्य' ख. ४. 'राजा पुनर्द्रुतम् (?) प्रस्थितश्चाथ पूर्वविक्रमः' ख.

तस्मिन्विन्यस्य पृथिवीभारं स वसुधाधिपः ।
सिषेवे चन्द्रवदनां श्यामां श्यामामिवोडुपः ॥ ५८६ ॥
तस्मिन्स्मररसासक्ते स श्रीमान्मन्त्रिपुंगवः ।
कोशदुर्गबलाधानव्यग्रोऽभूत्सततोत्थितः ॥ ५८७ ॥
दीर्घदर्शी श्रियं भुङ्क्ते नाममात्रं नृपो नृपः ।
जनप्रवादं श्रुत्वेति सोऽभूच्चिन्ताकुलस्ततः ॥ ५८८ ॥
मेधाविन्याथ संचिन्त्य भार्यया सह तां कथाम् ।
तीर्थयात्रापदेशेन ययावेको निशामुखे ॥ ५८९ ॥
(व्रजन्क्रमेण संप्राप्य तीरोपान्तं महोदधेः ।
निधिदत्ताभिधानेन सार्थवाहेन संगतः ॥ ५९० ॥
तेन संजातसौहार्दः सौवर्णद्वीपगामिना) ।
आरुह्य तत्प्रवहणं मध्यं प्राप महोदधेः ॥ ५९१ ॥
ततस्तत्र निवातेऽपि ददर्श सहसोत्थितम् ।
स्फटिकाचलशृङ्गाभं सलिलस्तम्भमुन्नतम् ॥ ५९२ ॥
पृथुं ददर्श तन्मध्ये कान्तं कनकपादपम् ।
पारिजातमिवोत्सृष्टं मन्थभीत्याब्धिना पुनः ॥ ५९३ ॥
विद्रुमस्तम्भसुभगे चित्ररत्नलतोज्ज्वले ।
(तस्मिन्माणिक्यपर्यङ्के स्थितां कन्यां ददर्श सः) ॥ ५९४ ॥
पद्मरागाधरां नीललोलालकविभूषिताम् ।
मूर्तां रत्नाकरस्येव देवतां मौक्तिकस्मिताम् ॥ ५९५ ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्लस्तस्या गीतमथाशृणोत् ।
तन्मुखाम्भोजलुब्धानां भृङ्गाणामिव गुञ्जितम् ॥ ५९६ ॥
येन यदा यद्विहितं प्राप्तुमसौ तत्तदा स्वयं याति ।
आक्रम्य नीयते वा कर्मगुणैरायतैस्तत्र ॥ ५९७ ॥
देहभृतां किल सततं सर्वत्र शुभाशुभं याति ।
आमोदः कुसुमानां कीटमणीनामिवालोकः ॥ ५९८ ॥

---

१.,३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः. २. 'स्कन्ध' क.

अस्मिन्कर्मक्षेत्रे येन यदुप्तं स एव तद्भुङ्क्ते ।
लभते नान्धेन धृतं चक्षुष्मानप्युपायेन ॥ ५९९ ॥
इति वीणास्वनजुषा गीतेन श्रवणामृतम् ।
विकीर्य तरुपर्यङ्कसहिता सा तिरोदधे ॥ ६०० ॥
ततस्तद्दर्शनाश्चर्यनिश्चलं दीर्घदर्शिनम् ।
कर्णधारो विहस्याह सहेलं बर्बराभिधः ॥ ६०१ ॥
किं विस्मितोऽसि कन्यैषा सदैवात्र प्रदृश्यते ।
ज्ञायते नाम शीलं वा कुलं वास्या न केनचित् ॥ ६०२ ॥
इति ब्रुवाणे शनकैः कर्णधारे महाद्भुतम् ।
पवनस्यानुकूल्येन द्वीपं प्राप स सार्थपः ॥ ६०३ ॥
कृतकृत्ये गृहं प्राप्ते तस्मिन्रत्नवति क्षणात् ।
तद्वेश्मनि चिरं स्थित्वा मन्त्री स्वनगरं ययौ ॥ ६०४ ॥
अत्रान्तरे यशःकेतुस्तद्वियोगामितामितः ।
आगतो दीर्घदर्शीति विज्ञप्तो द्वाररक्षिणा ॥ ६०५ ॥
ततो नरपतिः क्षिप्रं हृष्टस्तेन समागतः ।
मेने वराकं त्रैलोक्यराज्यं विस्तारिलोचनः ॥ ६०६ ॥
तमपृच्छत्परिष्वज्य परित्यज्य गतोऽसि किम् ।
गृहं बन्धुजनं भार्यां श्रियं मां च निरादरः ॥ ६०७ ॥
इति राजवचः श्रुत्वा पुण्यतीर्थार्थितां वदन् ।
समुद्रदृष्टमाश्चर्यं दिव्यकन्यामवर्णयत् ॥ ६०८ ॥
तां निशम्य नवोत्कण्ठानिर्भरोऽभून्महीपतिः ।
श्रुतो देव विशत्यन्तः प्राग्जन्मदयितो जनः ॥ ६०९ ॥
स दीर्घदर्शिने राज्यं न्यासीकृत्य स्मरातुरः ।
द्रष्टुं शशाङ्कवदनां भिक्षुवेषोऽम्बुधिं ययौ ॥ ६१० ॥
सरित्पुराकरारण्यग्रामशैलान्समुत्तरन् ।
समाच्छ्रीपर्वतं प्राप्य नत्वा देवीं हरिप्रियाम् ॥ ६११ ॥

१. 'मति' क. २. 'न्महाद्भुदे' क.

कुशनाम्नेन मुनिना दयितां प्राप्स्यसीत्यथ ।
कृताश्वासस्तदादिष्टं सार्थवाहं समभ्ययात् ॥ ६१२ ॥
लक्ष्मीदत्ताभिधानस्य तूर्णं प्रवहणं ततः ।
स समारुह्य जलधेर्मध्यं प्राप्य प्रियाशया ॥ ६१३ ॥
तत्र वैडूर्यशिखराकारकल्लोलमालिते ।
समुत्थिते जलस्तम्भे ददर्श मणिपादपम् ॥ ६१४ ॥
धात्रा वैचित्र्यनिर्माणरम्योपकरणश्रियम् ।
निधानमिव रक्षायै हस्ते न्यस्तं महोदधेः ॥ ६१५ ॥
तस्य कल्पतरोः स्कन्धे गायन्तीं दिव्यकन्यकाम् ।
निषण्णां रत्नपर्यङ्के ददर्शानङ्गमङ्गलाम् ॥ ६१६ ॥
लावण्यपुण्यनिर्मज्जद्गात्रलेखां महोदधेः ।
सुधाकल्लोलकलितां पुनर्लक्ष्मीमिवोद्गताम् ॥ ६१७ ॥
वीक्ष्य तां सोऽभवद्भूरिकम्पप्रमदविस्मयः ।
अहो रूपमहो कान्तिरित्यालोलितकन्धरः ॥ ६१८ ॥
लयं तालानुगं चित्रपदमाश्लिष्टस्वरम् ।
संगीयतां निमज्जन्तीं सवृक्षां वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ ६१९ ॥
जय भगवन्नुदधिकौस्तुभकमलापीयूषवारुणीसूते ।
रत्नाकर मम कान्तां लोचनपात्रामृतं वितर ॥ ६२० ॥
उक्त्वेति चिक्षेप नृपः सहसा सलिले तनुम् ।
(स्मरदावाग्निनिर्वाणविधेयवाहितसाहसः ॥ ६२१ ॥
सार्थवाहोऽपि तं वीक्ष्य निमग्नं मकराकरे ।
ममज्ज दुःखसलिले तद्वियोगोरुसागरे) ॥ ६२२ ॥
पूर्वमार्यां समन्वेष्टुं यशःकेतुरसौ नृपः ।
प्रविष्टोऽब्धिमिति क्षिप्रमुच्चचार वचस्ततः ॥ ६२३ ॥
तदाकर्ण्य समाश्वास्य कृतकार्यो वणिक्पतिः ।
प्रययावानुकूल्येन मरुतां स्वपुरं शनैः ॥ ६२४ ॥

१. 'रचितां' क. २. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

नृपोऽप्यम्भोधिमाविश्य काञ्चनोदारमन्दिरे।
(ददर्श निर्जनं रत्नप्राकारप्रवरं पुरम्) ॥ ६२५ ॥
शून्यामन्वेष्य यत्नेन माणिक्यभवनावलीम्।
हेमवेश्मन्यपश्यत्तां मणिपर्यङ्कशायिनीम् ॥ ६२६ ॥
ददर्शांशुकमुद्धाट्य ततोऽस्याः संमुखाम्बुजम्।
नलिन्या इव नीहारं विनिवार्य दिवाकरः ॥ ६२७ ॥
सा प्रबुद्धा नरपतिं वीक्ष्य विस्मितमानसा।
प्रदध्यौ छन्नवेषोऽयं चक्रवर्तिपदोचितः ॥ ६२८ ॥
ध्रुवं राजा यशःकेतुः श्रीमान्कमललोचनः।
विचिन्त्येत्यभवत्कम्पतरला स्मरवल्लरी ॥ ६२९ ॥
संबभार[2] समुद्भूतसंभूतपुलकाङ्कुरा।
अङ्गैरनङ्गसुभगैः कदम्बमुकुलश्रियम् ॥ ६३० ॥
ततो विदित[3]सत्कारस्तया लज्जाविलोलया।
पृष्टो निजकथामुक्त्वा पर्यङ्के निषसाद सः ॥ ६३१ ॥
नामाभिजनमाकर्ण्य यशःकेतुरिति स्फुटम्।
सस्वेदकम्पा लोलाम्बुबिम्बितेव विधोः कला ॥ ६३२ ॥
तेनाथ राजभृङ्गेण तैस्तैः किमपि वर्णनैः।
बालिका कलिकेवासौ कृता हर्षविकासिनी ॥ ६३३ ॥
ततस्तयोरभूत्स्पष्टं संभोगाभिमुखं मनः।
यूनोः प्रथमसङ्गेऽपि लज्जां न क्षमते स्मरः ॥ ६३४ ॥
अहं नाथ त्वदायत्ता विना कृष्णचतुर्दशीम्।
अष्टमीं चेति विदधे सा तेन सह संविदम् ॥ ६३५ ॥
पेशला सह तेनैषा प्रौढा समुचितं रतम्।
इतीवारोविणी राजा चकर्ष रशनां ततः ॥ ६३६ ॥
हृते तेन स्मररसात्सहसा जघनांशुके।
आलोकनभयात्तस्य सा गाढालिङ्गनं व्यधात् ॥ ६३७ ॥

१. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः. २. 'सा ब' क. ३. 'हि' क.

अविभागममर्यादमपास्तविनयक्रमम् ।
ततस्तयोः क्लिष्यापीड्किल्पविरतं रतम् ॥ ६३८ ॥
विस्रस्तमाल्यधम्मिल्लं स्वेदमज्जद्विशेषकम् ।
व्यामीलितार्धनयनं तस्याः कान्तममूद्वपुः ॥ ६३९ ॥
एवं प्रतिनिशं तेन रममाणा सुमध्यमा ।
ज्ञात्वा चतुर्दशीं मासां प्रययौ तदनुज्ञया ॥ ६४० ॥
नलिनीमण्डपे नास्मिन्प्रवेष्टव्यं त्वया विभो ।
उक्त्वेति तस्यां यातायामन्वगात्सोऽप्यलक्षितः ॥ ६४१ ॥
गत्वाथ खड्गी दूरस्थो ददर्श जलदत्विषा ।
राक्षसेन निगीर्णां तां राहुणेव विधोः कलाम् ॥ ६४२ ॥
दृष्ट्वा वृत्तान्तसंत्रासत्रामातीतेन रक्षसा ।
ग्रस्तां दुःखाच्च कोपाच्च खड्गेनाथ जघान तम् ॥ ६४३ ॥
तत्कृपाणाग्रनिकृत्तं शिरस्तस्यापतद्भुवि ।
शृङ्गं नीलाचलस्येव पिङ्गकेशदवानलम् ॥ ६४४ ॥
ततस्तस्योदरदरीदेहगर्तोद्विनिर्गता ।
क्षीणशापा निजकथां स्मृत्वा कान्तमुवाच सा ॥ ६४५ ॥
अहं मृगाङ्कवत्यास्या विद्याधरमहीपतेः ।
ज्येष्ठा मृगाङ्कसेनस्य पुत्री पुत्रसहस्रिणः ॥ ६४६ ॥
न भुङ्क्ते मां विना नित्यं स दिव्यरसभोजनम् ।
अप्यात्मसदृशैः पुत्रैर्बहुभिः परिवारितः ॥ ६४७ ॥
गौरीव्रते कदाचित्तु चतुर्दश्यामुपोषिता ।
अहं तेनाभवत्तातो दिनमेकमभोजनः ॥ ६४८ ॥
तत्कोपान्मां शशापासौ चतुर्दश्यां निशाचरः ।
अष्टम्यां च सदैव त्वां भुक्त्वा त्यक्ष्यत्यवीक्षिताम् ॥ ६४९ ॥
शून्ये च स्थास्यसि चिरं अष्टविद्या रसातले ।
अङ्गराजेन भर्त्रा ते हतो यावन्न राक्षसः ॥ ६५० ॥

---

१. 'विशीर्णां' क. २. 'मां' क.

इत्यहं गुरुणा शप्ता तच्च रक्षस्त्वया हतम् ।
नष्टशापा सविद्या च स्वस्ति गच्छाम्यहं विभो ॥ ६५१ ॥
इति श्रुत्वाङ्गनृपतिर्वियोगचकितोऽवदत् ।
गमिष्यसि मया सुभ्रु विहृत्य दिनसप्तकम् ॥ ६५२ ॥
इति तेनार्थिता मुग्धा प्रेम्णा सा हरिणेक्षणा ।
सिषेवे रुचिरोद्याने तं हेमकदलीवने ॥ ६५३ ॥
ततस्तया सह नृपस्तस्मिन्पुष्करिणीजले ।
निमज्य केलिरभसादुन्ममज्ज निजात्पुरात् ॥ ६५४ ॥
दीर्घदर्शिनमासाद्य निवेद्यास्मै निजां कथाम् ।
भेजे राज्यं प्रियाप्राप्तिविस्तारितमहोत्सवः ॥ ६५५ ॥
अत्रान्तरे नभो गन्तुमुद्यता दिनसप्तके ।
प्रयाते सा न सस्मार विद्यां मानुपसंगमात् ॥ ६५६ ॥
विद्याविहीनां तां ज्ञात्वा ननर्त जगतीपतिः ।
तां सेवमानः सुचिरं विललास सुलोचनाम् ॥ ६५७ ॥
तस्मिन्नेवोत्सवदिने दीर्घदर्शी व्यपद्यत ।
अज्ञातकारणः सर्वैर्निशीथे स्फुटिताशयः ॥ ६५८ ॥
कथयित्वेति वेतालः पृष्टवान्पृथिवीश्वरम् ।
मन्त्रिणः प्रलये तस्य हेतुं ब्रूहि महीपते ॥ ६५९ ॥
किं वा दृष्ट्वा नृपतिना तामानीतां मृगेक्षणाम् ।
प्राप्ता मयैव किं नेयमित्यभूत्तस्य चेतसि ॥ ६६० ॥
उत प्राप्तं मया राज्यं राजा तस्मिन्महार्णवे ।
मग्नोऽपि नष्टः किमिति किं तु दुःखार्दितोऽभवत् ॥ ६६१ ॥
राजन्कथय मे तत्त्वमिति पृष्टोऽब्रवीन्नृपः ।
स मन्त्री प्रलयं यातो येन तच्छ्रूयतां सखे ॥ ६६२ ॥
स्वभावरागिणा प्राप्ता राज्ञा दिव्येयमङ्गना ।
भ्रष्टगुरुतन्त्रकार्योऽयमित्यभूत्तस्य हृद्गतम् ॥ ६६३ ॥

इति श्रुत्वेति वेतालं क्षिप्रमन्तर्हितं पुनः ।
आदाय वृक्षशाखाग्राज्जगाम जगतीपतिः ॥ ६६४ ॥

इति द्वादशो वेतालः ॥ १४ ॥

ततोऽवदत्स्कन्धगतो घरेशं भीषणाकृतिः ।
शृणु राजन्कथामेकां यस्यां ते कोऽपि संशयः ॥ ६६५ ॥
वाराणस्यां शिवस्वामी द्विजन्माभून्महाजनः ।
ऐश्वर्यललितस्तस्य हरिस्वामी सुतोऽभवत् ॥ ६६६ ॥
तस्य लावण्यवत्याख्या मनस्तारण्यशालिनी ।
प्रिया बभूव त्रैलोक्यललामललिताकृतिः ॥ ६६७ ॥
स कदाचित्तया कान्तिसरिता सौधशेखरे ।
सुष्वाप केलिशयने सभोगसुभगोत्सवे ॥ ६६८ ॥
अत्रान्तरे रतश्रान्तां तां ददर्श नभश्चरः ।
सुप्तां मदनवेगाख्यः प्रियां जायां द्विजन्मनः ॥ ६६९ ॥
तस्या विवसनं दृष्ट्वा करिणीदन्तनिर्मलम् ।
स्तनोरुजघनाभोगं बभूव स मनोमुवः ॥ ६७० ॥
अलक्षितो जहाराशु तेतस्तामायतेक्षणाम् ।
अदृष्टपूर्वसरम्भकम्पमानां मनोजवः ॥ ६७१ ॥
प्रासः प्रबुद्धो दयितामपश्यन्नथ दुःखितः ।
अभवद्ब्राह्मणयुवा वियोगविषमूर्च्छितः ॥ ६७२ ॥
हा सुन्दरि सुधास्यन्दमन्दिरं क्वपि सुस्मितम् ।
पुनरिन्दुमिवानन्दबन्धु द्रक्ष्यामि ते मुखम् ॥ ६७३ ॥
इति प्रलापमुखरः सुहृत्स्वजनशोकदः ।
उन्मत्त इव बभ्राम तत्र तत्र स्मरातुरः ॥ ६७४ ॥
सप्राप्य कृष्णपक्षेन्दुतानवैकोपमागताम् ।
त्यक्त्वा स्वनगरं प्रायाद्देहं देहीश्वरो यथा ॥ ६७५ ॥

---

१. 'देवस्वा' क. २. 'स्वम्लानायते' क.

भोगो रोगो विषं वेश्म सर्पबन्धश्च बान्धवाः ।
दग्धारण्यं जगच्चेदं वियोगव्यास्तचेतसाम् ॥ ६७६ ॥
स सूर्यकिरणाक्लुष्टः क्रुष्यमाण इवानिशम् ।
भ्रान्त्वा सर्वाणि तीर्थानि क्षुत्क्षामः पांसुधूसरः ॥ ६७७ ॥
श्रीमतः पद्मनाभस्य सत्रशालां द्विजन्मनः ।
प्रविश्य दत्तं पत्न्या वै परमान्नमवाप सः ॥ ६७८ ॥
प्रस्तुते नलिनीतीरे न्यग्रोधस्य तरोरधः ।
भोक्तुं तत्र दिवानक्तं न दिशोऽप्यैक्षत क्षुधा ॥ ६७९ ॥
अत्रान्तरे श्येनहृतः पन्नगोऽगादमूर्च्छितः ।
विषौघश्यामलां लालां तस्य तत्याज भोजने ॥ ६८० ॥
तदनालोकितं भुक्त्वा पञ्चतां स ययौ द्विजः ।
विधौ हि वामतां याते सर्वमेति विपर्ययम् ॥ ६८१ ॥
तं त्यक्तजीवितं ज्ञात्वा सत्रदोऽन्नाधिपो निजाम् ।
साध्वीं विवासयामास वधूं तद्भोजनक्रुधा ॥ ६८२ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ नृपतिं पुनः ।
ब्रह्महत्या नरपते कस्य सा कथ्यतामिति ॥ ६८३ ॥
राजा जगाद सर्पोऽसौ श्येनेनात्यन्तपीडितः ।
परतन्त्रो विषोत्सर्गे कथं नामापराध्यति ॥ ६८४ ॥
श्येनोऽपि दैवनिर्दिष्टं भोक्तुमामिषमुद्यतः ।
बुभुक्षितो निर्विवेकी केन पापीति कथ्यते ॥ ६८५ ॥
अन्नदानपतिः सत्यं सभार्यः सोऽप्यकिल्बिषः ।
किं च जानन्नदेयः स सत्यं तत्पापभाजनम् ॥ ६८६ ॥
इति तावदहं मन्ये कथं वेताल मन्यसे ।
श्रुत्वेत्यन्तर्हितः सोऽथ तरौ पुनरलम्बत ॥ ६८७ ॥
इति त्रयोदशो वेतालः ॥ १५ ॥

---

१. 'पत्रशालाम्' ख. २. 'क.' ख. ३. 'सत्र' ख. ४. 'किं तु जानन्नदेहेदः स तत्पापभाजनम्' क. ५. 'तत.' ख.

ततस्तमादाय ययौ तथैव वसुधाधिपः ।
(स च स्कन्धस्थितः प्राह कथां भूमिपते शृणु) ॥ ६८८ ॥
वीरकेतुरभूच्छ्रीमानयोध्यायां महीपतिः ।
यत्प्रतापानलः कोऽपि राज्ञां जज्वाल मानसे ॥ ६८९ ॥
बभूव यस्य नगरे रत्नदत्ताभिधो वणिक् ।
तस्य रत्नवती नाम तनयाभून्मनोरमा ॥ ६९० ॥
रूपलावण्यललिता नवयौवनशालिनी ।
प्रत्याख्यातविवाहा सा बभूव द्वेषिणी नृषु ॥ ६९१ ॥
अत्रान्तरे नरपतिश्चौरविप्रकृते जने ।
वीरो वै निर्ययौ रात्रौ द्रष्टुं नगरचेष्टितम् ॥ ६९२ ॥
ततस्तमपि सोऽपश्याचौरं तालमिवोन्नतम् ।
निःशब्दजनसंचारं कचित्पार्श्वविलोकिनम् ॥ ६९३ ॥
कचिन्निभृतनिःश्वासं कचिद्धैकीकृताकृतिम् ।
यक्ष्माणमिव तृष्णाढ्यं दावाग्निमिव दुःसहम् ॥ ६९४ ॥
वियोगमिव सोच्छ्वासं कल्पान्तमिव दाहिनम् ।
सर्वस्वापहरं घोरं कल्पान्तमिव विप्लुतम् ॥ ६९५ ॥
संधिच्छेदेषु कुशलं प्रच्छन्नमिव दुर्जनम् ।
विलोक्य तं नृपोऽवादीत्स्वैरं विश्वासघातकम् ॥ ६९६ ॥
कस्त्वमस्मिन्निरालोके सखे चरसि निःसखः ।
श्रुत्वेत्युवाच स व्याजाद्देवीपुत्रोऽहमीदृशः ॥ ६९७ ॥
कस्त्वमित्यपि तेनोक्तस्तदेव क्षितिपोऽभ्यधात् ।
एहि तुभ्यं प्रयच्छामि द्रविणं गर्तसंचितम् ॥ ६९८ ॥
इत्युक्त्वा स्वगृहं चौरस्तं निनाय यथोद्यतः ।
बहिर्निधाय तं वेश्म प्रविष्टे धनहारिणि ॥ ६९९ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः २. 'लघु' ख. ३. 'द्भुतविनिःश्वासं ख. ४. 'शीक्र' ख. ५. 'दुर्भिक्षमिव' ख. ६. 'दारुणम् ख. ७. 'क्षपासंचरणं प्रियम्' ख. ८. 'पृच्छैश्चौरं' ख.

अभ्येत्य वत्सला प्राह नृपं तद्गृहचेटिका ।
केन त्वं मृत्युवदने प्रेपितो भद्र गम्यताम् ॥ ७०० ॥
विश्वासघातकश्चौरस्त्वामयं हन्तुमुद्यतः ।
इति श्रुत्वा ययौ राजा राजधानीमलक्षितः ॥ ७०१ ॥
प्रभाते तूर्णमुत्थाय सज्जीकृतबलाधिपः ।
चौरं सुदुर्जयं युद्धे स्वयं जग्राह तं नृपः ॥ ७०२ ॥
ततोऽपरक्तसंसिक्तो नीतो राजाज्ञया क्षणात् ।
निग्रहाय तया दृष्टो वणिक्पुत्र्या ससंभ्रमम् ॥ ७०३ ॥
तद्दृष्ट्वा सहसा जातरागा जनकमभ्यधात् ।
अयं वृतो मया तात वीरो मान्योऽधिको मम ॥ ७०४ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सनिर्बन्धं पुनः पुनः ।
कथंचित्स नृपं गत्वा तन्मोक्षायावदद्धनम् ॥ ७०५ ॥
ततो राजा विहस्याह यश्चौरस्यास्य रक्षिता ।
सोऽपि वध्यो मम व्यक्तं पापी पापसमाश्रयात् ॥ ७०६ ॥
इति क्ष्मापतिना तस्मिन्निषिद्धे तत्सुता ययौ ।
चौरगेवानुमरणे निर्बन्धे निहितेक्षणा ॥ ७०७ ॥
सा श्मशानमथासाद्य धृतं शूले ददर्श तम् ।
ऊर्ध्वाननाक्षमचिरादाप्तैश्वर्यमिवाधनम् ॥ ७०८ ॥
स किंचिच्छेषजीवोऽथ तां दृष्ट्वा श्रुततत्कथः ।
मुक्ताश्रुबिन्दुनिकरो विहस्यात्मानमत्यजत् ॥ ७०९ ॥
ततस्तेन समारूढां चितां तां वीक्ष्य शंकरः ।
केलिप्रियो वरं तस्यै श्मशाननिलये ददौ ॥ ७१० ॥
शंभोर्वरात्पुत्रशतं पित्रे योग्यमयाचत ।
अजीवयच्च भर्तारं श्रिया धर्मेण चावृतम् ॥ ७११ ॥
ततः स सहसावाप्तजीवितः प्राप्य तां प्रियाम् ।
सेनापतिः कृतो राज्ञा ननन्द सुभटाग्रणीः ॥ ७१२ ॥

१. 'भीषरोषेऽ' ग. २. 'वंद्द' ख.

कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ छलसंमुखः ।
राजन्रुरोद किमसौ जहास च ततोऽनु किम् ॥ ७१३ ॥
इति पृष्टो नृपः प्राह श्रुत्वा वणिजमुद्यतम् ।
प्रत्याख्यातुं विधिवशाद्राज्ञोऽकारणमान्धवम् ॥ ७१४ ॥
सर्वथा दैवलिखितं प्रमार्ष्टुं कस्य कः क्षमः ।
इति ध्यात्वा रुरोदासौ तत्स्त्रीवृत्तं जहास च ॥ ७१५ ॥
इत्याकर्ण्यैव वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
राजापि तं समालम्ब्य प्रययावचलाशयः ॥ ७१६ ॥

इति चतुर्दशो वेतालः ॥ १६ ॥

सोऽथ स्कन्धस्थितः प्राह श्रृणु विश्वंभराप्रभो ।
त्वां विना संशयानेतान्को हि नरश्छेत्तुमीश्वरः ॥ ७१७ ॥
नेपालविषये श्रीमान्यशःकेतुरभून्नृपः ।
पुत्री शशिप्रभा नाम तस्याभूद्रूपणं रतेः ॥ ७१८ ॥
तां वसन्तोत्सवे कान्तां कदाचिद्द्विजपुत्रकः ।
कुसुमावचयेऽपश्यन्मनःस्वामी सुलोचनाम् ॥ ७१९ ॥
यस्या लावण्यसलिलैरुह्यमान इवानिशम् ।
आलम्बते रोमलतां त्रिवलीकूलजां स्मरः ॥ ७२० ॥
तां वीक्ष्य कान्तिसर्वस्वकोशं कुसुमधन्वनः ।
बिम्बाधररुचिस्फारसिन्दूरेणेव मुद्रिताम् ॥ ७२१ ॥
सोऽभवन्मन्मथाक्रान्तः संक्रान्तः स्वेदवारिणि ।
संभ्रान्तो मोहगहने विश्रान्तः पुलकोत्तरे ॥ ७२२ ॥
अत्रान्तरे मदक्रोधान्निहताधोरणो गजः ।
आययौ मण्डलाकारकरकृष्टमहाद्रुमः ॥ ७२३ ॥
प्रेर्यमाणः स पवनैरिव प्रलयवारिदः ।
जगर्जोग्रं गलगुहागर्भगम्भीरविभ्रमम् ॥ ७२४ ॥

---

१. 'लसरो पुनरलम्ब' ख. २. 'स्त्रीरकीर्तिर' ख. ३. 'वे:' ख. ४. 'लावण्य' ख. ५. 'विद्याधरर' ख. ६. 'खे' ख. ७. 'अनार्यामां ग' ख.

ततस्तद्वयवित्रैस्तां कम्पासिञ्जानमेखलाम्।
दैवेन दत्तावसरः स युवा तामसादैयत् ॥ ७२५ ॥
रक्षिता द्विजपुत्रेण तत्र सा तरलेक्षणा।
स्थित्वा क्षणं विभ्रमभूर्जगामान्तःपुरं निजम् ॥ ७२६ ॥
सोऽपि स्मरशरासारमक्षौम्रपवनैरिव।
कम्पमानः प्रचलितं बभार विरहानलम् ॥ ७२७ ॥
क्षीणेन्दुरिव बिभ्राणः शरकाण्डविपाण्डुरम्।
सकान्ति प्रययौ मित्रसदनं जीविताशयः ॥ ७२८ ॥
अवाप्य मूलदेवाख्यं शशिना सह संस्थितम्।
वैहुधूर्तशतावासं प्रणनाम स निःश्वसन् ॥ ७२९ ॥
विभ्रष्टैवदनच्छायं मूलदेवोऽपि वीक्ष्य तम्।
हसन्कंदर्पसर्पेण दष्टोऽसीति तमब्रवीत् ॥ ७३० ॥
तद्वृत्तान्तमथाकर्ण्य स योगैघटिकां ददौ।
स्त्रीरूपकारिणीं तस्मै स्वयं वृद्धो बभूव ह ॥ ७३१ ॥
तं कान्तकन्यकारूपं समादाय द्विजात्मजम्।
वृद्धर्षिरूपः प्रययौ मूलदेवो महीपतिम् ॥ ७३२ ॥
यथोचितात्तसत्कारो यैशःकेतुमुवाच सः।
राजन्स्वपुत्रकार्येयमानीता कन्यका मया ॥ ७३३ ॥
तरुणः क्वापि यातोऽसौ तमन्वेष्टुं व्रजाम्यहम्।
न्यासभूतामिमां कन्यां जगद्रक्षाक्षम प्रभो।
रक्षेत्युक्त्वा क्षणं दम्भादभवन्मीलितेक्षणः ॥ ७३४ ॥
शशिप्रभामथाहूय नरनाथो निजात्मजाम्।
आदिदेश द्विजसुता रक्ष्येयमिति संभ्रमात् ॥ ७३५ ॥
मुनिवेषे प्रयातेऽथ तस्मिन्नन्तःपुरे स्थितः।

१. 'चित्रस्थां' ख. २. 'न्सयत्' ख. ३. 'मा' ख. ४. 'धूर्तं धू' ख. ५. 'ष्टं वदनं दृष्टं' ख. ६. 'गाङ्गटिकां' ख. ७. 'वीरकान्ति(कीर्ति)रुवाच सः' ख. ८. 'न्सपुत्रकार्येय' ख.

स कूटकन्यकारूपो मनःस्वामी व्यचिन्तयत् ॥ ७३६ ॥
अहो नु धूर्तधुर्येण किमप्युपकृतं मम ।
यन्मयेयं सुवदना दृष्टा तैरेव लोचनैः ॥ ७३७ ॥
इति ध्यात्वा सविस्रम्भं तां कदाचिदुवाच सः ।
सखि त्वं सततोच्छ्वासा किमुद्विग्नेव लक्ष्यसे ॥ ७३८ ॥
ब्रूहीति कन्यारूपेण पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
प्राह स्तनतटे हारं कुर्वाणा बाष्पनिर्झरैः ॥ ७३९ ॥
सखि दृष्टो मयोद्याने कुञ्जरत्रस्तया युवा ।
यदाकृतिसमुल्लेखे संकल्पोऽपि न पण्डितः ॥ ७४० ॥
तस्य लोचनसंचारचतुरेण[1] किमप्यहम् ।
विषेणेव भुजङ्गस्य मूर्च्छिता न लभे धृतिम् ॥ ७४१ ॥
स्वप्नेऽद्य तेन विहितो निर्वाच्यो मे रतोत्सवः ।
सखि सस्वेदपुलकैर्योऽङ्गैः किमपि सूच्यते ॥ ७४२ ॥
इत्याकर्ण्य मनःस्वामी धन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
अपास्य योगगुटिकां बभूव पुरुषाकृतिः ॥ ७४३ ॥
प्रत्यभिज्ञाय तं सद्यः सुधासिक्तेव लज्जिता ।
तदालिङ्गनसंजातकम्पा साभूदनङ्गभूः ॥ ७४४ ॥
मनोरथैर्यदभ्यस्तं हृदयेन यदार्थितम् ।
मन्मथेन यदादिष्टं तयोस्तदभवद्रतम् ॥ ७४५ ॥
तद्गाढसुरताश्लेषप्रलपिताप्यथ सात्यजत् ।
संतापशान्ति सहसा निर्वहन्ति मनःसुधाम् ॥ ७४६ ॥
सततं सेवमानस्तां स दिवा कन्यकाभवत् ।
राजपुत्री च कालेन गर्भमाधत्त पुष्पिता ॥ ७४७ ॥
अत्रान्तरे मातुलेयी स्वसा तस्याः सुमध्यमा[2] ।
पित्रा मृगाङ्कवत्याख्या वितीर्णा मन्त्रिसूनवे ॥ ७४८ ॥

---

१. 'चातुर्येण' ख. २. 'सुता' ख.

ततस्तद्भयवि[1]त्रस्तां कम्पासिञ्जानमेखलाम् ।
दैवेन दत्तावसरः स युवा तामसा[2]देयत् ॥ ७२५ ॥
रक्षिता द्विजपुत्रेण तत्र सा तरलेक्षणा ।
स्थित्वा क्षणं विभ्रमभूर्जगामान्तःपुरं निजम् ॥ ७२६ ॥
सोऽपि स्मरशरासारपक्ष्मा[3]ग्रपवनैरिव ।
कम्पमानः प्रचलितं बभार विरहानलम् ॥ ७२७ ॥
क्षीणेन्दुरिव बिभ्राणः शरकाण्डविपाण्डुरम् ।
सक्रान्ति प्रययौ मित्रसदनं जीविताशयः ॥ ७२८ ॥
अवाप्य मूलदेवाख्यं शशिना सह संस्थितम् ।
[4]बहुधूर्तशतावासं प्रणनाम स निःश्वसन् ॥ ७२९ ॥
विश्र[5]ष्टवदनच्छायं मूलदेवोऽपि वीक्ष्य तम् ।
हसन्कंदर्पसर्पेण दष्टोऽसीति तमब्रवीत् ॥ ७३० ॥
तद्वृत्तान्तमथाकर्ण्य स यो[6]गघटिकां ददौ ।
स्त्रीरूपकारिणीं तस्मै स्वयं वृद्धो बभूव ह ॥ ७३१ ॥
तं कान्तकन्यकारूपं समादाय द्विजात्मजम् ।
वृद्धर्षिरूपः प्रययौ मूलदेवो महीपतिम् ॥ ७३२ ॥
यथोचितात्तसत्कारो [7]यशःकेतुमुवाच सः ।
राज[8]न्स्वपुत्रकार्येयमानीता कन्यका मया ॥ ७३३ ॥
तरुणः क्वापि यातोऽसौ तमन्वेष्टुं व्रजाम्यहम् ।
न्यासभूतामिमां कन्यां जगद्रक्षाक्षम प्रभो ।
रक्षेत्युक्त्वा क्षणं दम्भादभवन्मीलितेक्षणः ॥ ७३४ ॥
शशिप्रभामथाहूय नरनाथो निजात्मजाम् ।
आदिदेश द्विजसुता रक्ष्येयमिति संभ्रमात् ॥ ७३५ ॥
मुनिवेषे प्रयातेऽथ तस्मिन्नन्तःपुरे स्थितः ।

---

१. 'विग्रस्तां' ख. २. 'न्सयत्' ख. ३. 'क्षा' ख. ४. 'धूर्तं धू' ख. ५. 'ष्टं वदनं ए''मं' ख. ६. 'गाहुटिकां' ख. ७. 'वीरकान्ति(कीर्ति)रुवाच सः' ख. ८. 'न्सपुत्र-क''दैव' ख.

स कूटकन्यकारूपो मनःस्वामी व्यचिन्तयत् ॥ ७३६ ॥
अहो नु धूर्तधुर्येण किमप्युपकृतं मम ।
यन्मयेयं सुवदना दृष्टा तैरेव लोचनैः ॥ ७३७ ॥
इति ध्यात्वा सविस्रम्भं तां कदाचिदुवाच सः ।
सखि त्वं सततोच्छ्वासा किमुद्विग्नेव लक्ष्यसे ॥ ७३८ ॥
ब्रूहीति कन्यारूपेण पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
प्राह स्तनतटे हारं कुर्वाणा बाष्पनिर्झरैः ॥ ७३९ ॥
सखि दृष्टो मयोद्याने कुञ्जरत्रस्तया युवा ।
यदाकृतिसमुल्लेखे संकल्पोऽपि न पण्डितः ॥ ७४० ॥
तस्य लोचनसंचारचतुरेण किमप्यहम् ।
विषेणेव भुजङ्गस्य मूर्च्छिता न लभे धृतिम् ॥ ७४१ ॥
स्वप्नेऽद्य तेन विहितो निर्वाच्यो मे रतोत्सवः ।
सखि सस्वेदपुलकैर्योऽङ्गैः किमपि सूच्यते ॥ ७४२ ॥
इत्याकर्ण्य मनःस्वामी धन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
अपास्य योगगुटिकां बभूव पुरुषाकृतिः ॥ ७४३ ॥
प्रत्यभिज्ञाय तं सद्यः सुधासिक्तेव लज्जिता ।
तदालिङ्गनसंजातकम्पा साभूदनङ्गभूः ॥ ७४४ ॥
मनोरथैर्यदभ्यस्तं हृदयेन यदार्थितम् ।
मन्मथेन यदादिष्टं तयोस्तदभवद्रतम् ॥ ७४५ ॥
तद्गाढसुरताश्लेषग्लपिताप्यथ सात्यजत् ।
संतापशान्तिं सहसा निर्वहन्हि मनःसुधाम् ॥ ७४६ ॥
सततं सेवमानस्तां स दिवा कन्यकाभवत् ।
राजपुत्री च कालेन गर्भमाधत्त पुष्पिता ॥ ७४७ ॥
अत्रान्तरे मातुलेयी स्वसा तस्याः सुमध्यमा ।
पित्रा मृगाङ्कवत्याख्या वितीर्णा मन्त्रिसूनवे ॥ ७४८ ॥

---

१. 'चातुर्येण' ख. २. 'सुता' ख.

तदुत्सवे मातुलेन राजपुत्री निमन्त्रिता ।
कूटसख्या तया सार्धं प्रययौ जनकाज्ञया ॥ ७४९ ॥
तत्र मन्त्रिसुतो दृष्ट्वा कान्तां तां कूटकन्यकाम् ।
बभूव मन्मथोन्मादविधुरो नष्टचेतनः ॥ ७५० ॥
तं तु मूर्खनृपो ज्ञात्वा वल्लभं मन्त्रिणः सुतम् ।
विप्रनिःक्षेपितां कन्यां तस्मै सभ्यगिरा ददौ ॥ ७५१ ॥
वितीर्यमाणा सा प्राह क्रमः कोऽयं महीपते ।
न्यासीकृताहं विप्रेण यदन्यस्मै समर्पिता ॥ ७५२ ॥
अथवा बलिनो राज्ञः स्वाधीनैवास्मि किं स्वयम् ।
तीर्थयात्रां मन्त्रिसुतः कृत्वा स्पृशतु मामिति ॥ ७५३ ॥
ततस्तां प्राप्य तीर्थानि ययौ मन्त्रिसुतः क्षणात् ।
स्त्रीरूपः स तु तद्गेहे तस्थौ तद्भार्यया सह ॥ ७५४ ॥
तयापि जातविश्वासो दर्शयित्वा निजाकृतिम् ।
लेभे तत्सुरतं हृष्टो मनःस्वामी दिवानिशम् ॥ ७५५ ॥
मूलदेवोऽथ राजानं ययाचे निजकन्यकाम् ।
शापभीतस्ततो राजा कम्पमानो निरुत्तरः ।
विविच्य मन्त्रिभिस्तस्मै पुत्रार्थं स्वसुतां ददौ ॥ ७५६ ॥
ततः कपटपुत्राय शशिने तां नृपात्मजाम् ।
दापयित्वा प्रतिययौ मूलदेवो महामतिः ॥ ७५७ ॥
स व्रजन्शशिना सार्धं राजपुत्र्या च वर्त्मनि ।
मनःस्वामिनमासाद्य तद्वृत्तान्तमथाशृणोत् ॥ ७५८ ॥
मनःस्वामी ततः प्राह धूर्तेश त्वदनुग्रहात् ।
अभीष्टं मम [2]संपन्नं दीयतां मे नृपात्मजा ॥ ७५९ ॥

१. 'समागमनतरक्षितम् ॥ ततः कदाचित्तं ज्ञात्वा मन्त्रिपुत्रं समागतम् । ययौ गृहीत्वा तत्कन्यां निशीथे समलक्षत ॥ अत्रान्तरे मूलदेवः शशिना सहितो नृपम् । मुनिस्त्वद्रूपमं॰ ॰शंसन् ययाचे निजकन्यकाम् ॥ शापभीतस्ततो' ख. २. 'संपूर्णं' ख.

गान्धर्वेण विवाहेन प्राप्तैषा सुन्दरी मया ।
अन्तर्वत्नी च संजाता मत्त एव सुमध्यमा ॥ ७६० ॥
इति श्रुत्वा शशी प्राह सेयं राज्ञा ममार्पिता ।
कन्यका जनकाधीना इति किं न श्रुतं मया ॥ ७६१ ॥
इत्थं तयोस्तद्विवादे मूलदेवोऽपि संशयन् ।
अवाप्य निर्णयस्थाने नो चेत्किंचिदयोमुखः ॥ ७६२ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपम् ।
सा भार्या कस्य धर्मेण संशयो वार्यतां मम ॥ ७६३ ॥
इति पृष्टो नृपः प्राह शशी धर्मेण तत्पतिः ।
छद्मकामी मनःस्वामी पित्रा तस्मै न सार्पिता ॥ ७६४ ॥
श्रुत्वेत्यन्तर्हितः सोऽथ तरौ पुनरलम्बत ।
सोऽपि स्कन्धस्थितः प्राह कथां शृणु महीपते ॥ ७६५ ॥
इति पञ्चदशो वेतालः ॥ १७ ॥

अस्ति श्रीकाञ्चनपुरी मूर्ध्नि गौरीगुरोर्गिरेः ।
रत्नप्राकारकिरणैरश्रान्तोल्लिखिताम्बरा ॥ ७६६ ॥
जीमूतकेतुस्तस्यामूद्विद्याधरपतिः पतिः ।
यस्याभूच्छेषयशसः प्रख्याता काप्यनन्तता ॥ ७६७ ॥
विद्याधरेन्द्रदुहिता भार्याभूत्तस्य संमता ।
कान्ता कनकवत्याख्या ख्यातिक्षेत्रं मनोभुवः ॥ ७६८ ॥
तेनाजनि सुतस्तस्यां कल्पवृक्षवराद्धरः ।
जीमूतवाहनो नाम समूहो गुणसंपदाम् ॥ ७६९ ॥
सोत्कण्ठं काञ्चनलताकुञ्जेष्वमरभूभृतः ।
गायन्ति त्यागसुभगं यस्य स्वर्गाङ्गणे यशः ॥ ७७० ॥
तं सर्वगुणसंपन्नमभिषिच्यात्मजं पिता ।
कल्पवृक्षं ददावस्मै नानासिद्धिसुधाफलम् ॥ ७७१ ॥

---

१. 'ल' ख. २. इतः प्राक् ख-पुस्तके 'तं स्थितेः परिरादाय संग्रामादस्तोयमः' एवं पाठ उपलभ्यते.

कान्ताकटाक्षचपलं चपलं यौवनं धनम् ।
जीवितं चेति स ध्यात्वा तमर्थिभ्यस्तरुं ददौ ॥ ७७२ ॥
तेन दारिद्र्यनाशाय जगति प्रतिपादितः ।
हेम्ना संपूर्य निखिलं क्षणात्सोऽन्तर्दधे द्रुमः ॥ ७७३ ॥
कुलक्रमागते तस्मिन्कल्पवृक्षे व्ययीकृते ।
अपूर्वत्यागिना तेन त्रिलोकी विस्मयं ययौ ॥ ७७४ ॥
(ज्ञात्वा तं प्रतिसामन्ता रहितं सुरशाखिना ।
तद्राज्यहरणोद्योगे बभूवुः संहता मिथः ॥ ७७५ ॥
जीमूतवाहनो ज्ञात्वा विधया तद्विचेष्टितम् ।
तद्वेधाकूणितमना राज्यं तत्याज निस्पृहः ॥ ७७६ ॥
स पित्रा सह मात्रा च तपसे सिद्धसेवितम् ।
मलयं खेचरवधूविलासनिलयं ययौ) ॥ ७७७ ॥
खेलद्भुजङ्गकटकं सिद्धमण्डलसेवितम् ।
चण्डीपतिमिवोत्सर्पन्नीलकण्ठप्रभावनम् ॥ ७७८ ॥
संचरत्सिद्धललनाचरणाम्भोजकान्तिभिः ।
बिभ्राणमिव पर्यङ्कसक्ताब्धेर्विद्रुमावलीम् ॥ ७७९ ॥
निर्भरस्मेरहाराङ्कमकरन्दोज्ज्वलांशुकम् ।
स त्वाद्यं भूभृतां धुर्यं चन्दनागरुभूषितम् ॥ ७८० ॥
सं प्राप्य सर्वसिद्धीनामाश्रयं विषयं श्रियः ।
पित्रोः सपर्यानिरतस्तस्थौ जीमूतवाहनः ॥ ७८१ ॥
कदाचिदथ विश्रम्भसारिणा सुहृदा सह ।
स्वैरं मधुकराख्येन चचारोपवनेषु सः ॥ ७८२ ॥
स तत्र कान्तं कुसुमकरन्दं नाम काननम् ।
प्रविश्यापश्यदुच्छ्वासिसौरभाः पुष्पवल्लरीः ॥ ७८३ ॥
यत्र खेचरनारीणां तारानूपुरराविभिः ।
अशोकाश्चरणाघातैरत्कुला भान्ति रागिणः ॥ ७८४ ॥

१. 'त्रिलोकीचर्यं' ख. २. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः. ३. 'वं' ख.

यत्र विद्याधरवधूमधुगण्डूषनिर्भरैः ।
जृम्भेवारम्भि वकुलैः पुष्पाननविकाशिभिः ॥ ७८५ ॥
यत्र दिव्याङ्गनातुङ्गस्तनोत्सङ्गतरङ्गिणः ।
मन्दारमकरन्दाढ्याः सुन्दरा वान्ति वायवः ॥ ७८६ ॥
यत्रोद्भूतालिपटलं विलोक्य घनविभ्रमम् ।
नृत्यन्ति हेमकदलीकुञ्जेषु शिखियोषितः ॥ ७८७ ॥
उत्कण्ठाकोमलं यत्र गीतं किन्नरयोषितः ।
शृण्वन्ति निश्चलाः साश्रुनयना हरिणाङ्गनाः ॥ ७८८ ॥
ददर्श तत्र कैलासशिखरस्फारविभ्रमम् ।
गङ्गायितपताकाङ्कं गौर्याः प्रासादमुन्नतम् ॥ ७८९ ॥
स्वयमेत्य सितच्छायास्पष्टीकृतदिगन्तरम् ।
(स्थितं दुहितृवात्सल्यादिव तत्र हिमाचलम्) ॥ ७९० ॥
देवीगर्भगृहे तस्मिन्गीतं वीणास्वनाश्रितम् ।
शुश्राव श्रोत्रपीयूषं हृदयानन्दनिर्झरम् ॥ ७९१ ॥
तच्छ्रुत्वा कौतुकाकृष्टः प्रविश्य गिरिजालयम् ।
कन्यामपश्यत्संसारसारं सरसिजेक्षणाम् ॥ ७९२ ॥
प्रवालपल्लवच्छायपादाम्बुजयुगं बभौ ।
रागसागरसंचारादिव लग्नारुणद्रवम् ॥ ७९३ ॥
लावण्यनलिनीबालमृणालयुगलोपमे ।
जङ्घाकाण्डद्वये तस्याः कान्तिहंसी व्यरोचत ॥ ७९४ ॥
विलासबर्हिकदलीदण्डावूरू बभार सा ।
पुष्पायुधपुरीकान्तदन्ततोरणविभ्रमे ॥ ७९५ ॥
पुलिने कान्तिसरितः पर्यङ्कशयने रतेः ।
मेखलापरिखं यस्या जघनं मान्मथं पुरम् ॥ ७९६ ॥

१. 'द्वै' ख. २. 'पुष्पाहृतालि' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

मग्नो नाभीह्रदावर्ते हरकोपानलाकुलः ।
कामोऽनुमीयते यस्या रोमालीधूम्रलेखया ॥ ७९७ ॥
तारहारांशुमुकुलैर्जातौ यस्याः पयोधरौ ।
चक्रवाकाविव मुखासक्तबालबिसाङ्कुरौ ॥ ७९८ ॥
यस्या वलयकेयूरनीलरत्नांशुभोगिभिः ।
तारुण्यचन्दनलताललिते बभतुर्भुजे ॥ ७९९ ॥
सखालवसन्तेन कृतेवाधरकान्तिभिः ।
श्यामा बभौ वनस्थाया यस्याः किशलयावलिः ॥ ८०० ॥
सुस्पष्टनासावंशोच्चललाटच्छत्रमाश्रिताः ।
यत्कटाक्षच्छटाः प्रापुरुत्पलोद्दामदायताम् ॥ ८०१ ॥
वदनाम्भोजभृङ्गालीं या बभारालकावलीम् ।
प्रशस्तिमिव कामेन न्यस्तां सौभाग्यभूपतेः ॥ ८०२ ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनस्तन्मयोऽभवत् ।
क्षिप्रं नवावतारेण स्मरेण तरलीकृतः ॥ ८०३ ॥
विस्तीर्णं सुकृतिप्राप्यं तारुण्यस्तनपादपम् ।
प्रशान्तविग्रह कथं न्यस्तचापमिव स्मरम् ॥ ८०४ ॥
लक्ष्मीविलासभवनं भुजस्तम्भविभूषितम् ।
सापि लावण्यनलिनी राजहंसं विलोक्य तम् ॥ ८०५ ॥
लज्जामज्जनुलता कम्पसंपत्तरङ्गिता ।
असूत्रमौक्तिकलता बभूव स्वेदबिन्दुभिः ॥ ८०६ ॥
क्षिप्रं पुलकिता तस्या विरराज कुचस्थली ।
विशद्भिरिव पुष्पेषुशरैराकीर्णकेसरा ॥ ८०७ ॥
ततः सहेलं तामेत्य प्राह जीमूतवाहनः ।
प्रागुपायनकर्पूरमिव दन्तांशुभिर्दिशन् ॥ ८०८ ॥
आचाररुचिरः कोऽयं क्रमस्तव सुलोचने ।
संप्राप्य तेन यत्पूर्वमागतं प्रणयी जनः ॥ ८०९ ॥

---

१. 'गु' ग.

उक्त्वेति तन्मुखाम्भोजन्यस्तलोचनषट्पदः ।
अपृच्छत्तत्सखीं लोलकुण्डलोद्योतिताननः ॥ ८१० ॥
रसाधारे गुणाधारः कुरुते कस्य नो मनः ।
कौतुकोत्कलिकालोलस्तमावमुमगो जनः ॥ ८११ ॥
विधेरपविनिर्माणत्रैलोक्यनयनोत्सवः ।
कुलालंकरणं कन्या कस्येयं ललिताकृतिः ॥ ८१२ ॥
इत्युक्ता तेन सा प्राह सखी प्रणयमन्थरम् ।
गम्भीरोदारमधुरं कलयन्ती तदाशयम् ॥ ८१३ ॥
सत्यमुन्नतसत्त्वानां दर्शनेन भवादृशाम् ।
ननो नृत्यति किं त्वस्याः क्षणं वाङ्न प्रवर्तते ॥ ८१४ ॥
लज्जानिकेतनं कन्या कथं नाथ तवाग्रतः ।
संभाषणे सुप्रतिमा लतेव प्रगल्भते ॥ ८१५ ॥
विश्वावसोः सिद्धपतेर्वंश[1]मुक्तालता सुता ।
इयं मलयवत्याख्या नित्यं गौरीम्[2]नुतिव्रता ॥ ८१६ ॥
निवेद्येति सखी क्षिप्रं तद्वयस्यादयाशृणोत् ।
जीमूतवाहनकथां प्राज्याभिनयशालिनीम् ॥ ८१७ ॥
ततो नवसमुन्मेषकुसुमेषुतरङ्गिताम् ।
कान्तां पिबन्निव दृशा प्राह जीमूतवाहनः ॥ ८१८ ॥
सहजेनाभिलपेण गुणैः कान्त्या च भूपिता ।
द्रयमालोक्यते क्षिप्रं यदेतज्जन्मनः फलम् ॥ ८१९ ॥
आनन्दमधुरा दृष्टिर्मनः प्रीतितरङ्गितम् ।
सतामेतावदौचित्यं बाह्यस्त्वाचारडम्बरः ॥ ८२० ॥
समागमं सुधावृष्टिं दृष्टिपातमनुग्रहम् ।
एवंविधस्य वपुषः को हि नाम न मन्यते ॥ ८२१ ॥
इति ब्रुवाणे सानन्दं तस्मिन्विद्याधराधिपे ।
आहूता सा प्रतीहार्या प्रतस्थे मातुरन्तिकम् ॥ ८२२ ॥

1. 'विश्वमु' ख. 2. 'व्रते स्थिता' ख.

न्यस्तं मयि मनः पाल्यमेतदत्यन्तपेशलम्।
इतीव कान्तं सा प्राह व्रजन्ती नूपुरारवैः॥ ८२३॥
ददौ त्रिकपरावृत्तिलक्षितैकस्तनी मुहुः।
तस्मै दर्श सा धम्मिल्लमधुपासारणच्छलात्॥ ८२४॥
वेपथुस्तम्भसंरुद्धा तन्वी कृच्छ्रेण सा ययौ।
सुकुमारेण मनसा सा वहन्ती महाभुजम्॥ ८२५॥
निजमन्तःपुरं प्राप्य निःश्वसन्ती श्लथांशुका।
पपात शयनोत्सङ्गे दष्टा मकरकेतुना॥ ८२६॥
तस्याः प्रववृधे क्षिप्रं स कोऽपि विरहानलः।
यः सिच्यमानो बाष्पाम्बुपूरैरुज्जृम्भतेऽधिकम्॥ ८२७॥
अत्रान्तरे जलनिधिं प्रविष्टे वासरेश्वरे।
बभूव रागिणी संध्या नलिनीवनशालिनी॥ ८२८॥
पद्मसंकोचचकिता बभ्रमुर्भ्रमरा भुवि।
संध्यया सपदि च्युतास्ताम्रोर्वीकजणा इव॥ ८२९॥
तिमिरैरञ्जनश्यामैः श्यामावदनकुन्तलैः।
चक्रवाकीवियोगाग्निधूमाभैरुत्थितं ततः॥ ८३०॥
नीलाम्बुजैरिवोत्सृष्टं भ्रमरैरिव मूर्छितम्।
नीलकण्ठैरिवोद्गीर्णं चचार सुचिरं तमः॥ ८३१॥
अथादृश्यत चण्डीशजटामण्डलमण्डनम्।
श्यामाकर्पूरतिलको रोहिणीरमणः शशी॥ ८३२॥
दिक्कान्ताकेलिमुकुले निशामौक्तिककुण्डले।
स्मरराजसितच्छत्रे शशिनि सोरजृम्भिते॥ ८३३॥
उत्फुल्लकुसुमामोदनन्दितेन्दीवरा मुहुः।
पद्मिनीविरहोच्छ्वासा इव बालानिला ववुः॥ ८३४॥
योषितां हृदयाकाण्डमङ्गयन्त्रोपले विधौ।
प्रौढिं प्रयाते पञ्चेषुवह्निकुण्टमहोत्सुके॥ ८३५॥

१. 'रक्त' ग. २. 'प गा' ग. ३. 'वदनो' ग.

श्रीखण्डरससंसिक्तकदलीदलशायिनी ।
बभूव गाढसंतापपक्रान्ता सिद्धपतेः सुता ॥ ८३६ ॥
न जलार्द्रैर्न वसनैर्न हारैर्न सरोरुहैः ।
तस्या न चन्द्रकान्तैश्च शशाम मदनानलः ॥ ८३७ ॥
सा लज्जातरला प्राह तां सखीं पार्श्ववर्तिनीम् ।
अयि त्वमेव मे तत्र कान्तदर्शनसाक्षिणी ॥ ८३८ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ।
अयं कन्याविरुद्धो मे क्रमः कामेन निर्मितः ॥ ८३९ ॥
([1]मत्यादिशन्ति संदेशं प्रयान्ति स्वयमेव वा ।
प्रियं प्रणयशालिन्यो निर्लज्जा बत योषितः) ॥ ८४० ॥
किं वा संदिश्यते तस्मै लीलया हृतचेतसे ।
युवासौ भाग्यसंपन्नो वाचः कस्य शृणोति वा ॥ ८४१ ॥
विश्वस्तोऽसीति कार्पण्यं वदतीति प्रगल्भता ।
एहीत्याज्ञावलेपोऽयं प्रियोऽसीति विलज्जता ॥ ८४२ ॥
न जीवामीत्यसदृशं त्वत्प्रियासीत्यलक्षितम् ।
आगच्छामीत्यनुचितं सरार्तास्मीति चापलम् ॥ ८४३ ॥
न जाने सखि किं वाच्यो दैवादासादितोऽपि सः ।
सर्वथा नष्टसार्थेऽस्मिन्मरणं शरणं मम ॥ ८४४ ॥
वयस्यामभिधायेत्थं सा निनायाशु निर्झरैः ।
संतापशोककठिनं कुचचन्दनमार्द्रताम् ॥ ८४५ ॥
जीमूतवाहनोऽप्यस्मिन्नन्तरे विरहाकुलः ।
तस्मिन्गौरीवरोद्याने चचारेन्दुमुखीं स्मरन् ॥ ८४६ ॥
स काममुजगाक्रान्तः कौमुदीविषमूर्च्छितः ।
संतापविह्वलो भेजे वातूलतरलां स्थितिम् ॥ ८४७ ॥
तं ध्यानमूकमभ्येत्य क्षामं मधुकरः सखा ।
उवाच विह्वलः कोऽयं तवापि मनसः सखे ॥ ८४८ ॥

1. एतदर्धश्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

भजन्ति सततं सन्तो विद्यार्जनपरिश्रमम् ।
येन न व्यसनापाते मुह्यन्ति मतिविप्लवैः ॥ ८४९ ॥
इति श्रुत्वा विनिःश्वस्य तप्तो जीमूतवाहनः ।
क्षणं विलोक्य वसुधां स्वस्थोऽस्मीति तमभ्यधात् ॥ ८५० ॥
प्रत्यग्रचन्दनदलैः कल्पिते सुहृदा ततः ।
निषण्णः शयने प्राप न स संतापतानवम् ॥ ८५१ ॥
अत्रान्तरे मलयवत्यभ्येत्य विरहासहा ।
गौर्याश्रमे तरुलताप्रान्ते पाशमकल्पयत् ॥ ८५२ ॥
ततः प्रणम्य गिरिजां हा हतेति विलप्य सा ।
विधाय साश्रुनयनास्तत्र बाला मृगाङ्गनाः ॥ ८५३ ॥
जीमूतवाहनो भूयादन्यस्मिन्मे स जन्मनि ।
विभुरित्यभिधायाभूत्सा पाशाभिमुखी क्षणात् ॥ ८५४ ॥
तच्छ्रुत्वा सुहृदाहूतस्तूर्णं जीमूतवाहनः ।
छन्नस्तरुलताजालैः शुश्राव च ददर्श च ॥ ८५५ ॥
ततो भगवती प्राह पुत्रि मा साहसं कृथाः ।
भविता चक्रवर्ती ते भर्ता जीमूतवाहनः ॥ ८५६ ॥
इति देवीवरं प्राप्य सा ददर्श पुरःस्थितम् ।
जीमूतवाहनं हर्षलज्जामुकुलितेक्षणा ॥ ८५७ ॥
अत्रान्तरे समभ्येत्य चेटिका तां व्यजिज्ञपत् ।
दिष्ट्या विवर्धसे देवि कल्पितस्ते महोत्सवः ॥ ८५८ ॥
त्वद्भ्रात्रा जनकादेशादद्य विद्याधरात्मजः ।
जीमूतकेतुपुत्राय दातुं त्वां सादरोत्थितः ॥ ८५९ ॥
तदेहि कल्पितोऽद्यैव विवाहो जनकेन ते ।
इति श्रुत्वैव सा तूर्णं प्रययौ चारुहासिनी ॥ ८६० ॥
जीमूतवाहनोऽप्याशु समेत्य पितुरन्तिकम् ।
उवाह गम्भीरोदारविवाहोचितभूषणम् ॥ ८६१ ॥

ततो महोत्सवानन्दिविद्याधरशतानुगः ।
परिणीय प्रियतमां सोऽभूत्संभोगतत्परः ॥ ८६२ ॥
प्रेयस्याः सोऽग्रजं तुल्यरूपं मित्रावसुं व्यधात् ।
विलासकेलिलीलासु मरूढप्रेमभाजनम् ॥ ८६३ ॥
कदाचिदथ विश्रम्भात्स मित्रावसुना सह ।
चचार जलधेर्वेलावनान्तमवलोकयत् ॥ ८६४ ॥
ददर्श तत्र शिखराकारं नागास्थिसंचयम् ।
युगक्षये महाभूतं कर्कैरिव पूरितम् ॥ ८६५ ॥
किमेतदिति तेनाशु पृष्टो मित्रावसुस्ततः ।
उवाच गरुडेनात्र भक्षिता भुजगोत्तमाः ॥ ८६६ ॥
सर्वक्षयभयात्तार्क्ष्यस्ततो वासुकिनार्थितः ।
विसृष्टं तेन वारेण सदैकं नागमत्त्यसौ ॥ ८६७ ॥
अयमस्थिचयस्तेषामद्रिकूटसमुच्छ्रयः ।
उक्त्वेति जनकाहूतस्तूर्णं मित्रावसुर्ययौ ॥ ८६८ ॥
जीमूतवाहनोऽप्येकः सर्पेषु करुणाकुलः ।
चचार तत्र निःसारं संसारं कलयन्धिया ॥ ८६९ ॥
ततो ददर्श करुणाक्रन्दशुष्काधराननाम् ।
वृद्धाङ्गनां कुमारेण सान्त्वमानां मुहुर्मुहुः ॥ ८७० ॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखं कान्तिधौतदिगन्तरम् ।
स्फुरत्स्फीतफणारत्नपुञ्जपिञ्जरिताम्बरम् ॥ ८७१ ॥
आनन्दमिव कासारं संतोषमिव जङ्गमम् ।
तं वीक्ष्य तनयं वृद्धा (विललापाश्रुगद्गदम् ॥ ८७२ ॥
हा पुत्र नयनानन्द सौन्दर्यामृतदीधिते ।
शङ्खपालमहावंशव्यक्तमुक्तामणीयित) ॥ ८७३ ॥
हा शङ्खचूड लावण्यनिधानमिदमेव ते ।
वपुर्गरुडचञ्चुप्रवज्रपातासहं कथम् ॥ ८७४ ॥

१. 'धौतदिगन्तरम्' ख. २. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

भीतेन नागराजेन प्रेषितोऽसि गरुत्मते ।
सुकुमारशरीरेऽस्मिन्कस्ते त्राणं भविष्यति ॥ ८७५ ॥
इति पुत्रमुखाम्भोजमाघ्राय विललाप सा ।
जीमूतवाहनोऽभ्येत्य तामुवाच कृपाकुलः ॥ ८७६ ॥
मातः स्थितोऽस्मि ते पुत्रपरित्राणकृतक्षणः ।
परोपकारः संसारे निःसारे प्राप्यते कुतः ॥ ८७७ ॥
अयमेव सदापाये काये सारसमुच्चयः ।
यत्प्रयाति परायासत्राणसत्पुण्यपात्रताम् ॥ ८७८ ॥
इत्याकर्ण्य परित्रस्ता सुपर्णाशङ्किनी ततः ।
पुत्रमासाद्य साकम्पा सा पुरः प्रणनाम तम् ॥ ८७९ ॥
नाहं भुजङ्गाधिपतिर्वितीर्य निजविग्रहम् ।
विद्याधरो रक्षिताहं त्वत्पुत्रस्येति सोऽभ्यधात् ॥ ८८० ॥
वृद्धावदत्तं त्वमथ (शङ्खचूडाधिको मम ।
बहुकल्पशतं धन्यां रक्ष सौम्यामिमां तनुम् ॥ ८८१ ॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां शङ्खचूडोऽतिविस्मितः ।
तमभ्यधात्स्मितमुखो ललाटरचिताञ्जलिः) ॥ ८८२ ॥
अभिनन्दितमेतत्ते दर्शनं सत्त्वशालिनः ।
पूर्णेन्दुरमृतोद्गारिकिरणः कस्य न प्रियः ॥ ८८३ ॥
अहो नु त्वं निजान्प्राणान्मदर्थं दातुमुद्यतः ।
सहामहे कथं नाम तृणार्थे रत्नविक्रयम् ॥ ८८४ ॥
कियन्तो न भयाम्भोधौ जाता याताश्च मद्विधाः ।
कौस्तुभस्येव भवतः क्व दृष्टः पुनरुद्भवः ॥ ८८५ ॥
सत्त्वोज्ज्वलं तवैवेतन्मुखेन्दौ शोभते वचः ।
अन्यकायस्य जगतामनास्थाने तु पातितम् ॥ ८८६ ॥

---

१. एतदादिरन्नवश्लोकपाठः क-पुस्तके त्रुटित. २. 'सागर.' ख. ३. 'सोऽहं वदे' ख. ४. 'अन्यकायस्य जगताम्...नैवमावितम्' ख.

मद्वियोगाग्निविधुरा समाश्वास्या विभो त्वया ।
[1]माता मे सा अदृष्टोऽपि साधुः सुचिरबान्धवः ॥ ८८७ ॥
इति नागकुमारस्य वचः श्रुत्वा कुलोचितम् ।
जीमूतवाहनः प्राह बत चित्रं प्रभाषसे ॥ ८८८ ॥
वृद्धेयं त्वां विना पुत्रं कुलालंकरणं सखे ।
कथं जीवति दुःखं हि जननीनां सुदुःसहम् ॥ ८८९ ॥
एतां त्रातुं निजात्मानं रक्ष त्वज्जीविता ह्यसौ ।
अस्याः प्राणपरित्यागे विद्धन्मा कारणं भवः ॥ ८९० ॥
शरीरेण मदीयेन द्वयं पाहि महामते ।
इत्युक्त्वा शङ्खचूडस्य पादयोर्निपपात सः ॥ ८९१ ॥
फणिसूनुस्तमवदन्निर्बन्धाकुलितस्ततः ।
श्रुत्वा विवेचितं नैव मादृशामीदृशं वचः ॥ ८९२ ॥
न नाम शङ्खधवलं शङ्खपालं महाकुलम् ।
[2]मयापि शङ्खचूडेन सत्त्वभङ्गात्कलङ्क्यते ॥ ८९३ ॥
आसन्नो गारुडः कालः सखि गच्छाम्यहं विभो ।
[3]वंधशैले प्रणम्याशु गोकर्णं शशिशेखरम् ॥ ८९४ ॥
उक्त्वेति मात्रानुगते याते तस्मिन्क्षणादभूत् ।
उचण्डाकाण्डकल्पान्तवातव्याकुलितं जगत् ॥ ८९५ ॥
[4]कालदोर्दण्डशङ्काभाश्छटाघटितदिक्तटाः ।
उत्तस्थुर्मकरौस्फारकरालाः सागरोर्मयः ॥ ८९६ ॥
ततश्चण्डांशुतप्तस्य सुमेरोरिव रश्मिभिः ।
अमूदौर्वानलेनेव पूरितं पिञ्जरं नभः ॥ ८९७ ॥
आगतं गरुडं ज्ञात्वा सूचितं पक्षमारुतैः ।
[5]आरुरोह मदाबद्धः शिलां जीमूतवाहनः ॥ ८९८ ॥

---

१ एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. २. 'न मया' ख. ३. 'विन्ध्यशै' ख. ४. 'कालांशैदण्डशङ्काभाः स्फटा घटितदिक्तटाः' ख. ५. 'रोत्फुल्लः क' ख.

रत्नांशुकेन संछन्नः स्थितस्तत्र व्यचिन्तयत्।
सत्त्वोपकाराय पुनर्जन्म भूयान्ममेति सः॥ ८९९॥
ततोऽदृश्यत दिग्दाहदारुणच्छविरम्बरे।
मलयाद्रिशिलालोलपक्षाक्षेप. खगेश्वरः॥ ९००॥
तस्योरुवेगसंघट्टस्फूर्जद्घनघनारवैः।
चुक्रोशाकालकल्पान्तसंत्रस्तेव जगत्त्रयी॥ ९०१॥
ततः स तस्य धैर्याब्धिविद्याधरशिरोमणेः।
जहार शिरसश्चूडं चूडारत्नेन मण्डितम्॥ ९०२॥
ततः शरीरमादाय तस्य तुण्डेन खेचरः।
गगने वलयाकारं चकार गतिविभ्रमम्॥ ९०३॥
तच्चञ्चुकचभ्रष्टं रक्तधारापुर.सरम्।
अङ्के मलयवत्यास्तु चूडारत्नमथापतत्॥ ९०४॥
तद्दृष्ट्वा वज्रसंरम्णा शिरीषलतिकेव सा।
जीमूतकेतवे तन्वी परित्रस्ता न्यवेदयत्॥ ९०५॥
स्वविद्यया परिज्ञाय स्वसूनोर्जीवितव्ययम्।
भार्यास्नुषाभ्यां सहितः सौपर्णी तां शिलां ययौ॥ ९०६॥
अत्रान्तरे शङ्खचूडस्तूर्णं तं देशमागतः।
गोकर्णमर्णवतटे प्रणिपत्य मनोजवः॥ ९०७॥
तत्रापश्यन्नसमुखोत्खातस्खलितशेखरम्।
विद्याधरेन्द्रमादाय तार्क्ष्यमुत्पतितं दिवि॥ ९०८॥
तं वीक्ष्य साश्रुनयनो निनाघातं निदारितः।
आत्मानं तद्वधे मत्वा कारणं विललाप सः॥ ९०९॥
हा सत्त्वविपुलौदार्यधैर्यगाम्भीर्यसागर।
हा पूर्णकरुणाकोश हा निष्कारणबान्धव॥ ९१०॥
इति शोचन्स विपदमनुसर्तुं गरुत्मतः।
जगाम जीवितत्यागदृढीकृतविनिश्चयः॥ ९११॥

१. 'भम' ख. २ 'शाद' ख.

आस्वाद्यास्वाद्य तार्क्ष्योऽपि व्योम्नि जीमूतवाहनम् ।
क्षिप्रं स्थगितसंरम्भं प्रदध्यौ विस्मयाकुलः ॥ ९१२ ॥
अहो नु सत्त्ववानेष कोऽपि धैर्यमहोदधिः ।
भक्ष्यमाणस्य यस्यास्ये जायन्ते पुलकाङ्कुराः ॥ ९१३ ॥
प्रसन्नवदनः क्षिप्रं जीवशेषोऽपि वर्तते ।
चिन्तयित्वेत्यपृच्छत्त्वं कोऽसीति विनतात्मजः ॥ ९१४ ॥
स तं प्राह किमेतेन तव भक्षय मामिति ।
अस्मिन्नवसरे शङ्खचूडोऽभ्येत्य तमब्रवीत् ॥ ९१५ ॥
हा हा मा मा कृथास्तार्क्ष्य साहसं किं न पश्यसि ।
अस्य विद्याधरेन्द्रस्य स्वस्तिकाङ्कमुरस्तटम् ॥ ९१६ ॥
अहं स नागस्ते भक्ष्यं पश्य जिह्वालताद्वयम् ।
विस्फूर्जद्द्विपफूत्कारं रत्नस्फीताः फणाश्च मे ॥ ९१७ ॥
इदानीमपि मे देहे मांसशोणितमस्ति भोः ।
न च पश्यामि ते तृप्तिं स त्वं दूरे स्थितः कुतः ॥ ९१८ ॥
इत्युक्त्वा विपुलं वक्षः प्रसार्योत्तानविग्रहः ।
तूर्णं मां भक्षयेत्याह स सुपर्णं पुनः पुनः ॥ ९१९ ॥
ततोऽस्मिन्नेव तं त्यक्त्वा विषण्णे पन्नगेश्वरे ।
जीमूतवाहनवधूर्गुरुभ्यामाययौ सह ॥ ९२० ॥
दृष्ट्वा मलयवत्यग्रे प्राणनाथं तथागतम् ।
मुमोहापूर्वशोकाग्निधूमेनेवान्धकारिता ॥ ९२१ ॥
जीमूतकेतुस्तनयं विलोक्य सह जायया ।
पपात मूलनिर्लून इव चन्दनपादपः ॥ ९२२ ॥
तार्क्ष्येणाश्वास्यमानेषु तेषु जीमूतवाहनम् ।
संस्पृश्य पाणिना माता शुशोच करुणस्वनम् ॥ ९२३ ॥
मुहूर्ताच्छेषजीवोऽपि सोऽब्रवीज्जननीं शनैः ।
मातर्विनश्वरस्यास्य किं शरीरस्य शोच्यते ॥ ९२४ ॥

---

१. 'अहं स नागराजस्ते भक्ष्यो जिह्वानलद्वयम्' ख.

भवेऽस्मिन्पवनोद्भ्रान्तवीचिविभ्रमभङ्गुरे।
जायते पुण्ययोगेन परार्थे जीवितव्ययः॥ ९२५॥
उक्त्वेति विसृजन्प्राणानविच्छायमुखच्छविः।
स्फारेण शोकतमसा जगत्संपूरयन्निव॥ ९२६॥
ततो मलयवत्यासीन्मरणे कृतनिश्चया।
शोकस्तम्भेन संरुद्धा न चचाल पपात वा॥ ९२७॥
अथ साक्षाद्भगवती गौरी तां भक्तवत्सला।
समाश्वास सुधासारैस्तद्भर्तारमजीवयत्॥ ९२८॥
चक्रवर्तिश्रियं चास्मै दत्त्वा क्षिप्रं तिरोदधे।
ततो देवाः सगन्धर्वास्तस्य सत्त्वमपूजयन्॥ ९२९॥
गरुडोऽप्यथ हृष्टात्मा वरदस्तेन याचितः।
प्रददौ सर्वनागानां पुण्यामभयदक्षिणाम्।
जीमूतवाहनो हृष्टः प्रययौ दयितासखः॥ ९३०॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ वसुधाधिपः।
सत्त्ववाञ्शङ्खचूडोऽत्र किं वा जीमूतवाहनः॥ ९३१॥
इति पृष्टो नृपः प्राह शङ्खचूडोऽत्र सत्त्वभूः।
यो बालोऽपि निजौचित्यान्न चचाल महाशयः॥ ९३२॥
जीमूतवाहनस्यैतदात्मदानं किमद्भुतम्।
बोधिसत्त्वः स हि पुरा दत्तवान्बहुशस्तनुम्॥ ९३३॥
तपस्तीव्रं यशः शुभ्रं श्लाघ्या श्रीः सत्त्वमद्भुतम्।
निर्व्याजदानं च नृणां पूर्वाभ्यस्तं हि जायते॥ ९३४॥
श्रुत्वेत्यलक्षितो गत्वा वेतालः शिंशपातरौ।
तेनैव कण्ठपाशेन तथैवोल्लम्बितः स्थितः॥ ९३५॥
इति षोडशो वेतालः॥ १८॥

---

१. एतदुत्तरं ग-पुस्तके 'अजीवयच्चास्थिशेषान् हतान् प्राक्पन्नगेश्वरान्। चक्रवर्तिश्रियं भेजे ततो जीमूतवाहनः॥ स प्राप्य काञ्चनपुरं हिमाद्रिशिखरे स्थितम्। पित्रोः समाश्रितो राज्ये रराज दयितासखः॥' एवंविधः पाठ उपलभ्यते.

पुनस्तमादाय ययौ जवेन जगतीपतिः ।
स्कन्धस्थितः स च प्राह कथेयं श्रूयतामिति ॥ ९३६ ॥
[1]रूठकाख्ये पुरे राजा श्रीमानासीद्यशोधनः ।
मांधातृरामनहुषा यत्कीर्त्या विस्मृता इव ॥ ९३७ ॥
स कदाचित्समभ्येत्य विज्ञप्तो वणिजा भयात् ।
ममास्ति कन्यकारत्नं देव तस्याखि भाजनम् ॥ ९३८ ॥
इति श्रुत्वा नरपतिर्द्रष्टुं तां प्राहिणोद्द्विजान् ।
ते दृष्ट्वोन्मादिनीं नाम्ना तामुन्मादं समाययुः ॥ ९३९ ॥
इमां भूमिपतिः प्राप्य प्रजाकार्यपराङ्मुखः ।
ध्रुवं नङ्क्ष्यति रागेण द्विजास्तत्रेति चिन्तयन् ॥ ९४० ॥
ते नरेश्वरमभ्येत्य कन्यां दुर्लक्षणां जगुः ।
अनादृतां ततो राज्ञा सेनान्ये तां पिता ददौ ॥ ९४१ ॥
कदाचिदथ मत्तालिमालावलयिते मधौ ।
उत्फुल्लफुल्लधवले कोकिलालापमालिनि ॥ ९४२ ॥
मकरन्दपिशङ्गासु दिक्षु दक्षिणमारुतैः ।
कौङ्कुमेनाङ्गरागेण विलिखन्तिव[2] कामिभिः ॥ ९४३ ॥
राजा गजेन्द्रशैलस्थश्चम्पकापीडशेखरः ।
अशोकमालसच्छायो मधुमास इवापरः ॥ ९४४ ॥
पुरे चैत्रोत्सवं द्रष्टुं चचार कमलेक्षणः ।
विलोक्यमानः कान्ताभिः कुसुमायुधशङ्कया ॥ ९४५ ॥
दुर्लक्षणेत्यनेनाहं मत्यास्यातेति मानिनी ।
उन्मादिनी ततो राज्ञः सौधाग्रनुमदर्शयत् ॥ ९४६ ॥
नेत्रांशुभिः कन्दलिता पाणिभ्यां जातपल्लवा ।
बभौ मूर्तेन चैत्रश्रीः सा मुग्धस्मितपुष्पिता ॥ ९४७ ॥
तारहारकरस्फीतफेनाढ्ये कान्तिसागरे ।
तस्याः कटाक्षैरभवद्भुनाभ्रान्तिविभ्रमः ॥ ९४८ ॥

१. 'कनकाख्यपुरे' ख. २. 'न्निव' ख.

बिम्बाधरारुणदलं लोललोचनषट्पदम् ।
सा बभार मुखाम्भोजं सुगन्धिसितशेखरम् ॥ ९४९ ॥
तां वीक्ष्य चन्द्रवदनां मदनोद्यानकौमुदीम् ।
अहो नु वञ्चितोऽस्मीति प्रदध्यौ वसुधाधिपः ॥ ९५० ॥
राजधानीं प्रविश्याथ स्मरज्वरनिपीडितः ।
नोद्यानेषु न वापीषु न सौधेष्वाययौ धृतिम् ॥ ९५१ ॥
दुर्लक्षणेति यैरुक्ता दुर्नयैर्नयबुद्धिभिः ।
उन्मादिनी ब्राह्मणास्ते निर्गच्छन्तु पुरान्मम ॥ ९५२ ॥
इत्यादिश्य नृपस्तस्थौ दह्यमान इवानिशम् ।
कदलीदलशय्यासु श्रीखण्डसलिलोच्छ्रितः ॥ ९५३ ॥
भिषग्भिः सेव्यमानोऽपि स्वास्थ्यं न प्राप भेषजैः ।
स्मरज्वरचिकित्सा हि दयितालिङ्गनामृतैः ॥ ९५४ ॥
विश्रम्भसाक्षिणैकेन सा तस्य विरहव्यथा ।
विराजनाम्ना विज्ञाता राजन्येन कथान्तरे ॥ ९५५ ॥
पृष्टोऽब्रवीन्नृपस्तेन सखे तां सुन्दरीं विना ।
सेनापतिवधूं प्राणाः क्वापि गन्तुं ममोद्यताः ॥ ९५६ ॥
यौवनोदयशीतांशुं तन्मुखं सुन्दरं दृशोः ।
धन्याः पश्यन्ति लावण्यरसायनतरङ्गितम् ॥ ९५७ ॥
भूपतेः परदारेषु संगमो मे न शोभते ।
प्रेमादान्नृपमूढानां मरणं हि प्रमेयता ॥ ९५८ ॥
(ईत्युक्त्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य क्षामविग्रहः ।
आनीयतां सेति वचो वयस्याह न चक्ष्महे) ॥ ९५९ ॥
अन्येद्युर्ज्ञातवृत्तान्तः सेनापतिरुपेत्य तम् ।
स्वैरं बलधरो नाम समणामं व्यजिज्ञपत् ॥ ९६० ॥

---

१. 'केसरम्' ग. २. 'जने' ग. ३. 'प्रमाणापदरूढानां मर' ख. ४. एतत्श्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके नोपलभ्यते.

मालनं सर्वरत्नानामेकस्त्वं देवतापरः ।
गृहाणोन्मादिनीं कान्तां रत्नरत्नसुत्तमम् ॥ ९६१ ॥
इति श्रुत्वा विहस्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।
अहो भक्तोऽपि मे भृत्योऽहितं नैव प्रभाषते ॥ ९६२ ॥
अयं लोको निरालोकः कलिकर्दमसंकुलः ।
नृपाणां साधुशीलानां चरितैर्हि प्रकाश्यते ॥ ९६३ ॥
तदहं पृथिवीपालो दण्डधारपदे स्थितः ।
अनीतिगहनावृत्तं व्यसनाधिं कथं भजे ॥ ९६४ ॥
कुलें जन्मगुणाः सन्ति धर्मे यशसि चादरः ।
मतिश्च परदारेषु सत्यं न सदृशं मम ॥ ९६५ ॥
इति ब्रुवाणं राजानं सेनापतिरभाषत ।
उन्मादिनीं करोम्येनां नर्तकीं सुरमन्दिरे ॥ ९६६ ॥
भजस्वैतां देवदासीं देव दोषो न विद्यते ।
इति तेनार्थ्यमानोऽपि तं निनिन्द रुषा नृपः ॥ ९६७ ॥
ततः सेनापतौ याते तामेवोन्मादिनीं स्मरन् ।
यशःशरीरममलं विवेश भ्रष्टजीवितः ॥ ९६८ ॥
तस्मिन्नुपरते राज्ञि सेनानीः शोकविह्वलः ।
वह्निं विवेश सद्भक्तिः पर्यन्ते हि प्रदृश्यते ॥ ९६९ ॥
अभिधायेति वेतालः क्ष्मापालं पृष्टवान्पुनः ।
सेनानीभूमिपालाभ्यां कोऽधिकः सत्त्ववानिति ॥ ९७० ॥
राजावदत्स्वामिभक्तिर्भृत्यानां किमिवाद्भुतम् ।
श्लाघ्यो नरेन्द्र एवैको प्राणांस्तत्याज न स्थितिम् ॥ ९७१ ॥
उद्दाममदसंरुद्धा लीलामीलितदृष्टयः ।
न शृण्वन्ति न पश्यन्ति राजानः कुञ्जरा इव ॥ ९७२ ॥
नारीणामिव सद्भावो दौर्जन्यं महतामिव ।
विवेको भूमिपालानां कदा केनोपमीयते ॥ ९७३ ॥

---

१. 'कीर्तिवासनात्' ख. २. 'न्भूपर' ख. ३. 'पक्षे' ख.

इति श्रुत्वैव वेतालं प्रयातं शिंशिपातरुम्।
पुनरादाय भूपालः प्रययौ पवनोपमः ॥ ९७४ ॥

इति सप्तदशो वेतालः ॥ १९ ॥

ततः स्कन्धस्थितो भूयः स बभाषे भुजो विभुम्।
शृणु राजन्कथामेकां कोऽन्यः कृन्तति संशयान् ॥ ९७५ ॥
चन्द्रप्रभाभिधानस्य नृपस्योज्जयिनीपतेः।
द्विजो बभूव नगरे देवस्वामी महाधनः ॥ ९७६ ॥
चन्द्रस्वामीति तस्याभूत्तनयः श्रुतिसागरः।
द्यूतव्यसनसंसक्तो निष्कलङ्काः क्व वा गुणाः ॥ ९७७ ॥
स वृद्धकितवैर्धूर्तैर्व्याजाद्बहुधनं जितः।
बद्ध्वा लताभिरनिशं ताडितो मौनमास्थितः ॥ ९७८ ॥
मृतोऽयमिति कालेन त्यक्तस्तैर्निर्धनः कृशः।
प्रययौ निशि निःशेषक्लेशसमाश्रयः ॥ ९७९ ॥
स शून्यं देवनिलयं कथंचित्प्राप्य निःसहः।
अपश्यत्तुङ्गखट्वाङ्गव्रतिनं भस्मभूषितम् ॥ ९८० ॥
दीनं तपस्विना तेन क्षुत्क्षामोऽथ निमन्त्रितः।
तद्विद्यानिर्मितं भेजे स विप्रः काञ्चनं पुरम् ॥ ९८१ ॥
तत्र बालमृगाक्षीभिः शशाङ्कशतकान्तिभिः।
कृतराजोपचारेण स लेभे स्नानभोजनम् ॥ ९८२ ॥
विलोलमेखलादाम विरावयति सुन्दरम्।
सुरतं सुरसुन्दर्यास्तत्र चित्रमवाप्तवान् ॥ ९८३ ॥
इति तद्विद्यया दिष्टमनुभूय समुत्थितः।
प्रभाते तद्विरहितः पृथुशोकाकुलोऽभवत् ॥ ९८४ ॥
ततस्तत्कृपया चक्रे प्रत्यहं तन्महाव्रती।
निशि यद्दृश्यते सर्वं वासरेषु न किंचन ॥ ९८५ ॥
ततः कदाचिदाराध्य स विप्रस्तमभाषत।
भगवन्देहि मे विद्यामिमामीप्सितसिद्धिदाम् ॥ ९८६ ॥

इति तेनार्थ्यमानोऽसौ प्रोवाच विततारायः ।
विद्येयं तीव्रनियमैरच्छिन्नरागादिबन्धनैः ॥ ९८७ ॥
प्राप्यतेऽन्तर्जलजपादामुखं विघ्नकारिणीम् ।
सलिलान्तः प्रविष्टस्त्वं स्वप्नं द्रक्ष्यसि तत्क्षणात् ॥ ९८८ ॥
पुनः संजातमात्मानं बन्धुपुत्रकलत्रिणम् ।
तटस्थितेन च मया स्मारितो यदि विद्यया ॥ ९८९ ॥
वह्निं प्रवेक्ष्यसि तदा विद्यामेनामुपेष्यसि ।
इत्युक्त्वा स ददौ तस्मै निजविद्यां नदीतटे ॥ ९९० ॥
द्विजोऽपि प्राप्य तां जप्तुं विवेश सलिलान्तरम् ।
तत्रापश्यत्स विस्मृत्य सर्वमात्मानमात्मना ॥ ९९१ ॥
हिरण्यपुर्यां संजातं शंकरस्य पुरोधसः ।
कालेन वर्धमानोऽसौ सह विद्याकलागुणैः ॥ ९९२ ॥
भार्यां शशिप्रभां नाम लेभे विश्रम्भसाक्षिणीम् ।
युवा[1] वसन्तसंतोषविश्रान्तिसदने वने ॥ ९९३ ॥
विजहार तया हारिवपुषा[2] हरिणीदृशा ।
दासीशतवृतां तत्र रममाणां ददर्श सः ॥ ९९४ ॥
तां दैवयोगाद्दयितां सर्पेण निहतां भुवि ।
तां वीक्ष्य विललापासौ कन्दर्पविषमूर्[3]स्थितिः ॥ ९९५ ॥
हा प्रिये हा मनःसिन्धुचन्द्रिके हा सुलोचने ।
लक्ष्मीरिवाविनीतस्य क्व मे यातासि सुन्दरि ॥ ९९६ ॥
इत्यश्रुगद्गदगिरा विलपन्तं चिराय तम् ।
आयुषोऽर्धं प्रयच्छास्यै देवदूतोऽभ्यधादिति ॥ ९९७ ॥
तच्छ्रुत्वा स ददौ तस्यै निजस्यार्धमथायुषः ।
अवाप्तजीवितां तेन तामालिङ्ग्य ननन्द सः ॥ ९९८ ॥
ततः कालेन तनयं लेभे कमललोचनम् ।
स्नेहस्य मन्दिरं कान्तं प्रतिबिम्बमिवात्मनः ॥ ९९९ ॥

---

१. 'स युवा सन्तुषंतोषविश्रा' ख. २. 'हारिहारिणा वपुषा दृशा' क. ३. 'मूर्छितः' ख.

इति मायाविकल्पोत्थं स तन्मायां व्यलोकयत्।
अत्रान्तरे तदा तेन व्रतिना स विबोधितः ॥ १००० ॥
स्मृत्वा वह्निप्रवेशाय सहसैव समुद्यतः।
बन्धूनां करुणाक्रन्दराविणामश्रुणोद्गिरः ॥ १००१ ॥
तनयोत्सङ्गया पत्न्या तया सार्धं मृगीदृशा।
प्रार्थ्यमानोऽपि यत्नेन वह्निमेव समाविशत् ॥ १००२ ॥
स्वस्यानुमरणोद्युक्तां दृष्ट्वा भार्याः समातरः।
हा पापोऽस्मीति संचिन्त्य मुहूर्तं जडतां ययौ ॥ १००३ ॥
अनिर्दग्धतनुस्तेन पावकेन हिमत्विषा।
उदतिष्ठन्नदीतीरादन्तर्जलजपास्थितः ॥ १००४ ॥
एतदद्दृश्यतुर्भागे दृष्ट्वा सर्वं सविस्मयः।
न्यवेदयद्यथावृत्तं व्रतिने लम्बिताञ्जलिः ॥ १००५ ॥
दुःखाकुलस्ततः प्राह व्रती हा धिग्विकल्पितः।
त्वया विभ्रंशिता सिद्धिस्ता विद्या विस्मृता इति ॥ १००६ ॥
सोऽवदन्निर्विकल्पेन त्वदादिष्टं कृतं मया।
न जाने केन विघ्नेन न दग्धोऽहं कृशानुना ॥ १००७ ॥
इत्युक्त्वा शपथं चक्रे स विप्रो व्रतिनः पुरः।
तपस्वी भ्रष्टविद्योऽथ तत्कारणमचिन्तयत् ॥ १००८ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम्।
राजन्कृते विधानेऽपि सा विद्या किं न दृश्यते ॥ १००९ ॥
इति पृष्टो नृपः प्राह कृतं तेन यथोदितम्।
किंतु भावोऽस्य तत्कालं बान्धवेष्वार्द्रतां ययौ ॥ १०१० ॥
तेन प्रणष्टा तत्कोपाद्गुरोरपि चिरस्थिता।
विद्यासौ भावदुष्टानां विनश्यन्त्येव सिद्धयः ॥ १०११ ॥
इत्याकर्ण्यैव वेतालः प्रययौ शिंशिपातरुम्।
आनिनाय च तं भूयो निरुद्वेगो महीपतिः ॥ १०१२ ॥
इत्यष्टादशो वेतालः ॥ २० ॥

१. 'केन' ख.

सोऽथ स्कन्धस्थितः प्राह राजानं वेगगामिनम् ।
शृणु नाथ कथामेकां निशा यावन्न शीर्यते ॥ १०१३ ॥
वेंक्कोलके[1] स्वपुरे सार्वभौमः क्षमापतिः ।
सूर्यप्रभाभिधानोऽभूद्यशःकुसुमकाननम् ॥ १०१४ ॥
आख्यातविक्रमे तस्मिंस्त्रिसिन्धुं रक्षति क्षितिम् ।
वणिजस्ताम्रलिप्ताया धनदत्तस्य पुत्रिका ॥ १०१५ ॥
विद्याधरी शापवशाज्जन्मानुपं भोगमास्थिता ।
हिरण्यवत्यां जायायामजायत सुलोचना ॥ १०१६ ॥
यत्कान्तिमधुना मत्तः प्रबलो विजयी स्मरः ।
सा यौवनं शनैः प्राप नाम्ना धनवती तनुः ॥ १०१७ ॥
कालेन त्रिदिवं याते तस्याः पितरि गोत्रजैः ।
हृतं द्रविणमाक्षिप्ता तद्भार्या राजसंश्रितैः ॥ १०१८ ॥
सा दुःखिता च भीता च गृहीत्वाभरणं निजम् ।
अलक्षिता निशि प्रायाद्दुहित्रा सह विह्वला ॥ १०१९ ॥
यान्ती तूर्णं निरालोके शोकैरिव तमोभरैः ।
विलुप्तदृष्टिः शूलस्थं जघानांसेन सा नरम् ॥ १०२० ॥
स चौरः स्कन्धनिर्घातसंजातविपुलव्यथः ।
चुक्रोश हा हतोऽस्मीति पर्यन्तश्वासगद्गदम् ॥ १०२१ ॥
वणिक्पत्न्या स दृष्टोऽथ प्राह चौरोऽस्मि पापकृत् ।
इयं तृतीया मे रात्रिः शूलस्थस्यैव वर्तते ॥ १०२२ ॥
तीव्रव्यथोऽपि जीवामि पातकैः पूर्वसंचितैः ।
अकृच्छ्रेण कथं यान्ति प्राणाः कलुषकर्मणः ॥ १०२३ ॥
इत्युक्त्वा तेन पृष्टासौ निजदुःखमभाषत ।
ततः प्रणयशोकार्ता येन स्वपुरमत्यजत् ॥ १०२४ ॥
अत्रान्तरे शशी नित्यक्षयशोकादिवाधिकम् ।
उदयौ पाण्डुरः स्थूलः कपालशकलच्छविः ॥ १०२५ ॥

---

1. 'वक्रोलके' वा; 'वक्रोलकं नाम पुरम्' इति कथासरित्सागरः.

गतेऽह्नि मित्रदयिते शान्ते संध्याचितानले ।
ताराास्थिसंचयं कर्तुमिवेन्दुरुत्सृजन्करान् ॥ १०२६ ॥
दिशः सितांशुकच्छन्ना ज्योत्स्नापूरैः प्रचक्रिरे ।
शोकादिवोद्धसलिलक्रियां कुमुदपाण्डुराः ॥ १०२७ ॥
ततश्चौरोऽवदद्दृष्ट्वा प्रकाशे तत्सुतां पुरः ।
कन्यैषा दीयतां मह्यं सुवर्णं वितरामि ते ॥ १०२८ ॥
मुमूर्षुर्विलसत्येष मा वदेति पृथुस्मिता ।
त्वया मात्रा विनिर्णेयमवाप्स्यति मदाज्ञया ॥ १०२९ ॥
केनापि सह संगम्य पुत्रं त्राणं परत्र मे ।
अस्ति काञ्चनलक्षं मे तेनेमां देहि कन्यकाम् ॥ १०३० ॥
इति श्रुत्वा सुतां तस्मै सा प्रादाद्वारिपूर्वकम् ।
ददौ तरुतलन्यस्तं तस्मै सोऽप्यखिलं धनम् ।
पुत्रार्थे तामनुज्ञाय कन्यां चौरो व्यपद्यत ॥ १०३१ ॥
ततो भर्तुर्वयस्यस्य गृहं प्राप्य सुपुत्रिका ।
सती कुमारदत्तस्य युक्त्या चौरं ददाह सा ॥ १०३२ ॥
अथ कालेन सा गत्वा निःशेषधनवर्जिते ।
सूर्यप्रभस्य नगरे तस्थौ हेमचयैः सुखम् ॥ १०३३ ॥
तत्रस्था यौवनवती कदाचित्सौधमास्थिता ।
कृती ददर्श पञ्चेपुसुभगं द्विजपुत्रकम् ॥ १०३४ ॥
सोमस्वामीति विख्यातः सुवेषां सुरतप्रियः ।
यस्यां विलासरसिकः स विप्रो यौवनोन्मदः ॥ १०३५ ॥
तस्या हारावलिता नर्तकी लोकविश्रुता ।
हृदये तां समाधत्त विना भूरिधनव्ययम् ॥ १०३६ ॥
तथाभूतं व्यसनिनं सा दृष्ट्वा तं द्विजात्मजम् ।
वणिक्पुत्री स्मराक्रान्ता बभूव ध्याननिश्चला ॥ १०३७ ॥
ततो विहाय सा लज्जां मात्रे सर्वं न्यवेदयत् ।

चौरसाज्ञां च तां स्मृत्वा तदाह्वानेऽदिशत्सखीम् ॥ १०३८ ॥
स च द्विजो मृषा यातः पुत्रार्थं तामभाषत ।
शतानि पञ्च रूप्याणां दीयतां व्ययिनो मम ॥ १०३९ ॥
इति श्रुत्वा सखी तस्मै दत्त्वा तच्छतकद्वयम् ।
एकक्षपाभ्युपगमादानिनाय द्विजं रहः ॥ १०४० ॥
तं दृष्ट्वा कान्तमानीतं निशि शय्यागृहस्थिता ।
हर्षोत्सिक्ता वणिक्पुत्री नवं भेजे रतोत्सवम् ॥ १०४१ ॥
अदृष्टपूर्वसंभोगा वेश्याशतविलासिना ।
नीता प्रौढेन सा तेन रतौ कामपि निर्वृतिम् ॥ १०४२ ॥
तस्मिन्प्रयाते प्रच्छन्नं निशान्ते साभवत्क्षणात् ।
स्रस्ताङ्गी क्लान्तवदना कृशा मुकुलितेक्षणा ॥ १०४३ ॥
ततः कालेन सा पुत्रमसूत रविवर्चसम् ।
कुन्तीव वर्णसंपूर्णराजलक्षणलक्षितम् ॥ १०४४ ॥
तस्मिञ्जाते वणिक्पुत्रीं स्वप्ने तज्जननी तथा ।
आदिदेश शिवः साक्षात्पुत्रोऽयं द्वारि भूपतेः ॥ १०४५ ॥
हेम्नः सहस्रमाधाय मञ्चके त्यज्यतां रहः ।
इति तद्वचसा सर्वं चक्राते ते यथाश्रुतम् ॥ १०४६ ॥
राजापि शंभुना स्वप्ने निर्दिष्टं प्राप्य तं शिशुम् ।
कौशेयवस्त्रसंछन्नं दिव्यरूपं सकाञ्चनम् ॥ १०४७ ॥
सूर्यप्रभस्य तनयः सोऽपि चन्द्रप्रभाभिधः ।
कालेन यौवनं प्राप कलाविद्याविशारदः ॥ १०४८ ॥
तं सर्वगुणसंपन्नं दृष्ट्वा पुत्रं स पार्थिवः ।
चक्रवर्तिश्रियं तस्मै दत्त्वा वाराणसीं ययौ ॥ १०४९ ॥
तपसा तत्र भूपाले प्रयाते शाश्वतं पदम् ।
चन्द्रप्रभः शोकवशो ज्ञात्वा चक्रे जलक्रियाः ॥ १०५० ॥
ततः स राज्यं मन्त्रिभ्यो विन्यस्य पितृवत्सलः ।

गयाश्राद्धे कृतोत्साहो ब्राह्मणैः सहितो ययौ ॥ १०५१ ॥
सौहार्दस्योपकारस्य गुरुभक्तेः कुलस्य च ।
महतां हि वियोगेषु गयाश्राद्धे प्रतिक्रिया ॥ १०५२ ॥
स वाजिकुञ्जरानीकैः संछादितदिगन्तरः ।
व्रजन्मन्दाकिनीं प्राप्य पितुश्चक्रे यथोचितम् ॥ १०५३ ॥
ततः सर्वेषु तीर्थेषु दत्त्वा बहुधनो धनम् ।
गयामवाप कालेन पुण्यां कुलविभूषणः ॥ १०५४ ॥
ततः शास्त्रोदितं कृत्वा धर्मारण्येऽवसत्त्र्यहम् ।
राजकूपं समासाद्य पिण्डं क्षेप्तुं समुद्ययौ ॥ १०५५ ॥
सूर्यप्रभस्य नृपतेः स्वगोत्रे नाम्न्युदीरिते ।
पुरोहिताग्रतस्तत्र त्रयो हस्ताः समुत्थिताः ॥ १०५६ ॥
तद्वीक्ष्य विस्मयाविष्टो मुहूर्तं स्थगितक्रियः ।
किमेतदिति पप्रच्छ राजा वृद्धगुरून्द्विजान् ॥ १०५७ ॥
ते प्राहुः शिवमालोक्य श्रुतिस्मृतिविचक्षणाः ।
एकश्चौरस्य हस्तोऽयं लाञ्छितः शस्त्रशङ्कुना ॥ १०५८ ॥
पवित्रकालंकरणः पाणिरन्यो द्विजन्मनः ।
अयं पद्मनिभो राज्ञः करः कङ्कणभूषितः ॥ १०५९ ॥
निश्चयं नाधिगच्छामः कस्मै पिण्डोऽर्प्यतामिति ।
राजा विप्रवचः श्रुत्वा सदेहाकुलितोऽभवत् ॥ १०६० ॥
वर्णयित्वेति वेतालः पप्रच्छ क्ष्मापतिं पुनः ।
राजन्कस्मै स धर्मेण पिण्डस्तेन प्रदीयताम् ॥ १०६१ ॥
इति पृष्टो नृपः प्राह स विप्रस्तस्य नो पिता ।
यो मूल्येन क्षपामेकां तन्मात्रा सगमं व्यधात् ॥ १०६२ ॥
राजापि तस्य सस्कारकर्ता सप्रासकाश्चनः ।
न पिता कर्मसंबन्धाद्राज्यभागी स केवलम् ॥ १०६३ ॥
चौर एव पिता तस्य यो दत्त्वा हेमसंचयम् ।

१. 'दर्शित तत्र' ख.

कन्यां तज्जननीं प्राप पिण्डस्यार्हति वापनेम् ॥ १०६४ ॥
श्रुत्वेत्यलक्षितः स्कन्धाद्वेतालः प्रययौ जवात् ।
वृक्षावलम्बिनं तूर्णमानिनाय च तं नृपः ॥ १०६५ ॥
इत्येकोनविंशो वेतालः ॥ २१ ॥

स शीघ्रगामिनं प्राह नृपं स्कन्धगतः पुनः ।
निःशब्देऽसिन्निरालोके दीर्घाध्वनि कथां शृणु ॥ १०६६ ॥
चन्द्रावलोक इत्यासीच्चित्रकूटपुरे नृपः ।
जहार भूरिरत्नौघः सदा रत्नाकरश्रियम् ॥ १०६७ ॥
स मृगव्यरसाकृष्टः कदाचिद्वातरंहसा ।
तुरगेण हृतः प्राप वनं रुचिरपादपम् ॥ १०६८ ॥
तत्र फुल्ललताजालकलितालिकुलोत्सवे ।
विशालतालहिन्तालतमालश्यामलावलौ ॥ १०६९ ॥
ददर्श दर्पणस्वच्छं सरो नीरजराजितम् ।
स्नातसिद्धवधूवृन्दकुचकुङ्कुमपिञ्जरम् ॥ १०७० ॥
समाश्वास्य कृताहारस्तत्र चालबिसाङ्कुरैः ।
ददर्श कन्यां त्रैलोक्यसारं सारङ्गगामिनीम् ॥ १०७१ ॥
कटाक्षमधुपां हासपुष्पां किसलयाधराम् ।
स्तनस्तबकिनीं मूर्तां काननस्येव देवताम् ॥ १०७२ ॥
तां वीक्ष्य मन्मथशरव्याकुलीकृतचेतनः ।
दृत्तशाप इवानेकसायकाभिहतैर्मृगैः ॥ १०७३ ॥
मुनेः कण्वस्य तां ज्ञात्वा तत्सख्याभिहितां सुताम् ।
इन्दीवरप्रभां नाम सुभगां मेनकात्मजाम् ॥ १०७४ ॥
गत्वा ययाचे प्रणतः स्थितं निजतपोवने ।
मुनीन्द्रं चन्द्रवदनां स चालै तां ददौ मुदा ॥ १०७५ ॥
ततः प्रतिनिवृत्तस्तामादाय तरुणीं नृपः ।
व्रजन्प्राप सरस्तीरं संध्ययालिङ्गितेऽहनि ॥ १०७६ ॥

---

१ 'मुदे' इत.

अस्तं च तिग्मकिरणे याते भुवनभूषणे।
अभूतां रोदसी भूरितिमिरैरावृताम्बरे ॥ १०७७ ॥
ततो हरकिरीटेन माद्यन्मदनबन्धुना।
शर्वरी शर्वरीशङ्खवलयेनेन्दुनोदितम् ॥ १०७८ ॥
केतकीदलतां कर्णे तनौ कर्पूरपूरताम्।
हारतां च ययौ ज्योत्स्ना कुचयोर्हरिणीदृशाम् ॥ १०७९ ॥
अथाश्वत्थतरोर्मूले बालपल्लवसंस्तरे।
एलावल्लीलताकुञ्जे राजा निन्ये नवां वधूम् ॥ १०८० ॥
सद्भावभोगसुभगं मन्दलज्जाभरं शनैः।
सिषेवे चारुसुरतं सविदग्धोऽतिमुग्धया ॥ १०८१ ॥
ततः प्रभाते विकटाकारदंष्ट्रोत्कटाननः।
ज्वालामुखाभिधोऽभ्येत्य प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥ १०८२ ॥
अस्मिन्ममाश्रमे पाप कन्यया दुर्विनीतया।
अहो निज इवोद्याने रमसे विगतत्रपः ॥ १०८३ ॥
व्यात्ताननगताटालविकटैर्दन्तसंपुटैः।
पिष्टो विभ्रष्टपुण्यस्त्वं राजन्न भवसि क्षणात् ॥ १०८४ ॥
चन्द्रावलोकः श्रुत्वेति तमेव शरणं ययौ।
देशकालाचनालोक्य प्रभवन्ति न पण्डिताः ॥ १०८५ ॥
नृपतौ प्रश्रयजुषि भयातः किंचिदार्द्रताम्।
ज्वालामुखोऽवदद्राजञ्शृणु येनाभिरक्ष्यसे ॥ १०८६ ॥
सत्त्ववर्षः स्वयं पित्रा जनन्या च धृतो दृढम्।
पादाभ्यां च कराभ्यां च त्वयैवोद्धृतमस्तकः ॥ १०८७ ॥
शिशुर्ममोपहाराय कृताभ्युपगमः स्वयम्।
विशस्यतां काननेऽत्र ब्राह्मणः सप्तमेऽहनि ॥ १०८८ ॥
नान्यथा तव मोक्षोऽस्ति सानुगस्येति तद्गिरा।
बाढमुक्त्वा नरपतिः सभार्यो दुःखितो ययौ ॥ १०८९ ॥

१. 'पाण्डुताम्' ख.

अवाप्य श्वशुराद्देहं सभार्यः स्वपुरं ययौ ।
प्रदध्यौ मन्त्रिचक्रेण राक्षसाय प्रतिश्रुतम् ॥ १०९० ॥
मुख्यामात्यस्ततो धीमा(न्[1]सुमतिर्नाम धीमतः ।
हेमं पुरुषमादाय महार्हं मणिभूषितम् ॥ १०९१ ॥
चचारात्मानमेतेन को ददातीति घोषयन् ।)
निशम्य ब्राह्मणः कश्चिद्बालोऽप्यङ्गीचकार तम् ॥ १०९२ ॥
सुवर्णपुरुषं पित्रे दापयित्वा महाशयः ।
उवाच मातरं दीनां निर्धनं पितरं च सः ॥ १०९३ ॥
राज्ञः सर्वोरमृत्यस्य श्रेयसे वितराम्यहम् ।
आत्मानं राक्षसायाद्य मूल्येनानेन भूरिणा ॥ १०९४ ॥
युष्मद्दारिद्र्यनाशाय कुशलं प्रस्तुतं मया ।
पवनाकम्पिदीपाग्रशिखालोलैर्निजासुभिः ॥ १०९५ ॥
इदं मेदोस्थिमांसासृग्बीभत्सं क्षणिकं वपुः ।
सत्यं परोपकारेण यात्येव स्पृहणीयताम् ॥ १०९६ ॥
इत्यादि कुत्सयन्कायं जनकं शनकैः शिशुः ।
चकार धीरं संनद्धो भूमिपालसमीहिते ॥ १०९७ ॥
ततः स मन्त्री राजानं कृत्वा विदिततत्कथम् ।
निनाय पित्रा मात्रा च सहाश्वत्थतलं द्विजम् ॥ १०९८ ॥
स्वयमेत्य नृपस्तत्र मण्डलं ब्रह्मरक्षसे ।
पुरोधसा विधायाशु तं बालं हन्तुमुद्ययौ ॥ १०९९ ॥
स च स्वाल्पकरो मात्रा प्रत्यक्षं वीक्ष्य राक्षसम् ।
पित्रा निरुद्धचरणः प्रदध्यौ हृदये शिशुः ॥ ११०० ॥
उद्दामकरवालेन राज्ञाथ निहतस्य मे ।
भूयात्परोपकारैकप्रवणं जन्म सर्वदा ॥ ११०१ ॥
विचिन्त्येति हि सस्मेरं जहास द्विजदारकः ।
ते नृपप्रमुखा येन मग्नुर्विस्मयाकुलाः ॥ ११०२ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके नोपलभ्यते. २. 'निघ्ने' ख.

तं कृताञ्जलयः सर्वे निवृत्ता वधसाहसात्।
किमेतदिति साशङ्काः प्रशशंसुः सराक्षसाः ॥ ११०३ ॥
कथयित्वेति वेतालो भूपालं बहुलच्छलः।
पप्रच्छ ब्राह्मणशिशोरकाण्डस्मितकारणम् ॥ ११०४ ॥
राजा जगाद यः कश्चिदबलः परिभूयते।
केनापि याति शरणं मातरं पितरं च सः ॥ ११०५ ॥
तदसंरक्षितस्त्राणं राजानमधिगच्छति।
ततोऽप्यप्राप्य निर्वाणं देवं स्मरति पूजितम् ॥ ११०६ ॥
ते सर्व एव तत्रास्य निधनाय समुद्यताः।
तान्वीक्ष्याचिन्तयद्बालः स सत्त्वविपुलाशयः ॥ ११०७ ॥
अहोऽतिदुःखसारस्य शरीरस्यास्य भङ्गिनः।
कृते कुकर्मप्रारम्भो मतेरिति जहास सः ॥ ११०८ ॥
इति श्रुत्वेति वेतालः प्रययौ शिंशिपां पुनः।
आनिनाय च तं भूयो लम्बमानं नरेश्वरः ॥ ११०९ ॥
इति विंशो वेतालः ॥ २२ ॥

ततः स्कन्धस्थितः प्राह वेतालः शृणु भूपते।
गतागतपरिश्रान्तः कथामेकां विनोदिनीम् ॥ १११० ॥
अमूत्पुरि विशालायामर्थदत्ताभिधो वणिक्।
अनङ्गमञ्जरी नाम पुत्री तस्याभवत्प्रिया ॥ ११११ ॥
स तां ददौ रूपवतीं ताम्रलिप्तानिवासिने।
धनाभिजनतुल्याय वणिजे मणिकर्मणे ॥ १११२ ॥
शक्तः क्षणमपि स्थातुं न यदा रहितस्तया।
तदा न तत्याज पिता स तां निजगृहात्सदा ॥ १११३ ॥
कदाचित्स्वपुरीं याते सा पत्यौ मणिकर्मणि।
जहर्ष कृष्णसर्पेण निर्मुक्तेव निरर्गला ॥ १११४ ॥
राज्यमेतत्सुधा चैषा चन्द्रोऽयमयमुत्सवः।
यत्क्षणं नयनेनेष्टो जनः पुण्येन दृश्यते ॥ १११५ ॥

ततः सा यौवनोन्मत्ता ग्रीष्मे चन्दनचर्चिता ।
उत्फुल्लमल्लिकादामधम्मिल्लहृतषट्पदा ॥ १११६ ॥
ददर्श हर्म्यमारुह्य सौन्दर्यकुसुमायुधम् ।
कमलाकरनामानं युवानं द्विजपुत्रकम् ॥ १११७ ॥
तं वीक्ष्य नयनानन्दबान्धवं सामवत्क्षणात् ।
नलिनीव विलीनेव दष्टेव मुषितेव च ॥ १११८ ॥
तदालोकनसंजातपृथुवेपथुमोहिता ।
नेदं युक्तमितीवोक्ता सिञ्जानमणिभूषणैः ॥ १११९ ॥
चन्द्ररागमुखीं पद्मरागरक्तकरोज्ज्वलाम् ।
सोऽपि तां चिरमालोक्य लावण्यमणिपुत्रिकाम् ॥ ११२० ॥
ययौ विलोलयन्मौलिं रूपातिशयविस्मितः ।
प्रविष्टामिव तद्वक्त्रे कर्षन्निव शनैर्दृशम् ॥ ११२१ ॥
ततः सा प्रौढतापेन ग्लपिता मदनाग्निना ।
दाहोपकरणं मेने मृणालकदलीवनम् ॥ ११२२ ॥
तुषारकिरणस्मेरां शर्वरीं मदनोज्ज्वलाम् ।
दावानलैर्वलयितामिव घोराममंस्त सा ॥ ११२३ ॥
स्तौति स्म पार्वतीमेत्य सा निजोद्यानवर्तिनी ।
तेन पुष्पशरेणेव संगमो मे भवत्विति ॥ ११२४ ॥
कृष्णपक्षेन्दुलेखेव शरन्निर्झरिणीव वा ।
कान्तिमात्रावशेषाभूत्केयूराहृतकङ्कणा ॥ ११२५ ॥
तां पाण्डुरमुखीं क्षामां स्मरज्वरभयातुराम् ।
सखी मालतिका नाम दृष्ट्वा शोकाकुलाभवत् ॥ ११२६ ॥
साथ गत्वा तदादिष्टा कमलाकरमन्दिरम् ।
तं ददर्श निजोद्याने प्रच्छन्ना विरहातुरम् ॥ ११२७ ॥
तामेव विलपन्तं तु सुहृदाश्वासितं मुहुः ।
तं समभ्येत्य सा प्राह सख्यास्तां मन्मथव्यथाम् ॥ ११२८ ॥

ध्यायति ग्लपते क्षिप्रं शेते मुह्यति वेपते ।
व्यावर्तते च सुभगा त्वां विना सा सुलोचना ॥ ११२९ ॥
चन्दनानीन्धनं यस्मिन्निन्दवो विषबिन्दवः ।
हारो वह्निविकारश्च तेन तापेन सार्दिता ॥ ११३० ॥
इति तद्वचसा सद्यः सुधासारैरिवोत्थितः ।
निशि मायाचदुद्यानं स तया चारसूचितः ॥ ११३१ ॥
सख्या गिरा तमायातं विज्ञायानङ्गमञ्जरी ।
उन्मिमील प्रदीपश्रीरिव स्नेहेन पूरिता ॥ ११३२ ॥
ततस्तमागतं दृष्ट्वा व्याकोशनयनोत्पला ।
लज्जां विहाय सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह सुन्दरी ॥ ११३३ ॥
अयं लब्धोऽसि सुभग क्व गमिष्यसि मे पुरः ।
अभिधायेति सास्रं तं तन्वी तत्याज जीवितम् ॥ ११३४ ॥
सहसा विगतप्राणां दृष्ट्वा तां कमलाकरः ।
विलप्य सुचिरं गाढं परिष्वज्याभवद्व्यसुः ॥ ११३५ ॥
ततः प्रभाते तद्दुःखमिलिते बन्धुमण्डले ।
अर्थदत्ते सुतां कोपलज्जाशोकैश्च निन्दति ॥ ११३६ ॥
तस्याः स मणिकर्णाख्यः कौमारः पतिराययौ ।
उत्कण्ठानिर्भरः पश्यन्प्रेयस्याः कुशलं जनम् ॥ ११३७ ॥
उद्यानमथ संप्राप्य तामन्यनरसंगताम् ।
दृष्ट्वैव जीवितत्यक्तां रागी प्रायात्स पञ्चताम् ॥ ११३८ ॥
सान्यरागेण निर्दग्धा विपन्नः स च तां विना ।
अहो नु कोऽप्ययं कामो विदग्धोऽप्याहितभ्रमः ॥ ११३९ ॥
ततो भगवती गौरी वणिजां कुलदेवता ।
गुणैरभ्यर्थिता सर्वान्कृपया तानजीवयत् ॥ ११४० ॥
अभिधायेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।
रागः कस्याधिको राजन्नेतेभ्यः कथ्यतामिति ॥ ११४१ ॥

नृपः प्राह वणिक्पुत्री विप्रश्च झषकेतुना ।
अवस्थां दशमीं नीतौ क्रमेण न तदद्भुतम् ॥ ११४२ ॥
गाढरागोऽत्र कौमारः पतिरस्या मुमोच यः ।
सहसा दयितान्प्राणान्वज्रेणेव विदारितः ॥ ११४३ ॥
इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
स चानिनाय तं यत्नादखिन्नो मेदिनीपतिः ॥ ११४४ ॥

इत्येकविंशो वेतालः ॥ २३ ॥

अथ स्कन्धगतः प्राह वेतालः शृणु भूपते ।
ब्रह्मस्थलाग्रहारेऽभूद्विष्णुस्वामी द्विजोत्तमः ॥ ११४५ ॥
चत्वारस्तस्य तनया बभूवुः श्रुतिशालिनः ।
मृते पितरि ते जग्मुर्मातुलानां निवेशनम् ॥ ११४६ ॥
सावज्ञमीक्षमाणास्तैर्निर्धनास्तत्र ते स्थिताः ।
अचिन्तयन्नहो दुःखं दारिद्र्यं मरणाधिकम् ॥ ११४७ ॥
गृध्राः प्रयान्ति च शवं नित्यं मांसोपजीविनः ।
निष्पत्रमपि दग्धं च नित्यमागारिकास्तरुम् ।
न तु दारिद्र्यसंस्पृष्टं कश्चित्स्पृशति पूरुषम् ॥ ११४८ ॥
शीतलैर्दीर्घनिद्रैश्च निरुच्छ्वाससुखैः शवैः ।
दरिद्रस्तापनिर्निद्रः सोच्छ्वासः स्पर्धते कथम् ॥ ११४९ ॥
एकः प्राह गतोऽप्याहं श्मशानं भूतर्मीपणम् ।
दौर्गत्यदुःखादात्मानं परित्यक्तुं समुद्यतः ॥ ११५० ॥
ततः केनापि कारुण्याद्बुधेनेवास्मि रक्षितः ।
अभुक्त्वा स्वकृतं कर्म मरणं प्राप्यते कुतः ॥ ११५१ ॥
इति ध्यात्वा ययुः स्वैरं सर्वे देशान्तरं पृथक् ।
पुनः संगमसंकेतस्थानमादिश्य ते ततः ॥ ११५२ ॥
ततः कालेन ते भ्रान्त्वा पृथिवीं बहुकौतुकाम् ।
अवाप्तविद्या मिलिताः परस्परमथोचिरे ॥ ११५३ ॥

---

1. 'विष्णुस्वामीत्यभूद्द्विजः' इति कथासरित्सागरे, 'देवस्वामी' ख.

अस्थिसंपादिनीं विद्यां जानामीत्यग्रजोऽभ्यधात् ।
तन्मांसयोजनज्ञोऽहमित्युवाच ततः परः ॥ ११५४ ॥
त्वग्रोमन्यासकुशलस्तत्रासीत्यपरोऽब्रवीत् ।
जीवितार्पणविज्ञाने दक्षोऽस्मीत्येव तत्परः ॥ ११५५ ॥
विद्याप्रभावं ते द्रष्टुं मिथस्तत्र सकौतुकाः ।
दैवादवापुः सिंहस्य कीर्णजीर्णास्थिसंचयम् ॥ ११५६ ॥
तं समग्रं समांसं च कृत्वा त्वग्रोमसंकुलम् ।
क्रमैश्चतुर्थो विद्यानां पञ्चाननमजीवयत् ॥ ११५७ ॥
दंष्ट्राविटङ्कवदनः क्षुत्क्षामः समजायत ।
जघान तीक्ष्णं करजैः पुरस्ताद्द्विजपुत्रकान् ॥ ११५८ ॥
कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ धरणीपतिम् ।
ब्रूहि राजन्द्विजवधोद्भूतं तत्कस्य पातकम् ॥ ११५९ ॥
इति पृष्टोऽब्रवीद्राजा यो मृगेन्द्रमजीवयत् ।
तस्य तत्पातकं घोरमन्येषां नास्त्यसंशयम् ॥ ११६० ॥
इति श्रुत्वेति वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ।
नृपोऽपि तं गृहीत्वा तु प्रायादतुलविक्रमः ॥ ११६१ ॥

इति द्वाविंशो वेतालः ॥ २४ ॥

भूयः स्कन्धगतः प्राह वेतालो बत भूपते ।
नासाद्यापि निर्बन्धाद्विरतोऽसि कथां शृणु ॥ ११६२ ॥
यज्ञस्थलाग्रहारेऽभूत्कलिङ्गविषये द्विजः ।
यज्ञसोमाभिधः सोमपानपूतः कुलोद्गतः ॥ ११६३ ॥
भार्यायां सोमदत्तायां तेनाजनि गुणी सुतः ।
शशाङ्कविशदाकारो बाल्येऽपि विपुलश्रुतः ॥ ११६४ ॥
कालेन यौवनं प्राप देवस्वामी स तत्सुतः ।
विद्याविनयसौभाग्यलावण्यामृतपूरितः ॥ ११६५ ॥
स कृतान्तस्य नैर्घृण्यात्कालस्य कालशासनात् ।
पूर्वकर्मोर्मिवैचित्र्यात्प्रययौ पञ्चतां युवा ॥ ११६६ ॥

नयनोत्सवलावण्यान्कुलाचारगुणाधिकान् ।
सहते नैव विबुधान्कालः कलिरिवाकुलः ॥ ११६७ ॥
पितरौ तस्य शोकार्तौ दृष्ट्वा तारप्रलापिनौ ।
चक्रन्दुरिव सोद्वेगाः प्रति सत्कारवैर्दिशः ॥ ११६८ ॥
ततस्तं बान्धवाः सर्वे समग्रगुणबान्धवाः ।
निन्युः स्मशानवाचालतमालवलयाकुलम् ॥ ११६९ ॥
संस्काराय तमानीतं द्विजसूनुं महाव्रती ।
श्मशानमठिकावासी ददर्श सुभगाकृतिम् ॥ ११७० ॥
वृद्धो नाम शिवो नाम कुर्वे क्लेशास्पदं मनः ।
ध्यानयोगसमाधाने तत्त्वे वादी विलोक्य सः ॥ ११७१ ॥
त्यक्त्वेदं भुक्तसंभोगं निजं जीर्णं कलेवरम् ।
प्रत्यग्रब्राह्मणतनुं प्रविशामीत्यचिन्तयत् ॥ ११७२ ॥
ततः प्रविश्य मठिकामेक एव कपालधृक् ।
ध्यात्वा स सार्द्रबाष्पौघगलगद्गदनिःस्वनम् ॥ ११७३ ॥
क्रन्दित्वा भस्मधवलो ननर्त व्यालवद्भुजः ।
दोलालज्जटापीडो द्वितीय इव धूर्जटिः ॥ ११७४ ॥
भुजङ्ग इव निर्मोकं देहं त्यक्त्वा स विग्रहम् ।
शरीरं द्विजपुत्रस्य शून्यागारमिवाविशत् ॥ ११७५ ॥
सुप्तोत्थित इव प्रासन्नतो जीवं द्विजात्मजः ।
बभूव हर्षविस्फारजनकोलाहलध्विरम् ॥ ११७६ ॥
प्रार्थ्यमानोऽप्यसौ दीनैर्बन्धुभिर्जनकेन च ।
तत्कालजातवैराग्यः स महाव्रतमग्रहीत् ॥ ११७७ ॥
अभिधायेति वेतालः पप्रच्छ नृपशेखरम् ।
स किं महाव्रती राजन्रुरोद च ननर्त च ॥ ११७८ ॥
इति पृष्टोऽब्रवीद्भूपः श्रूयतामत्र कारणम् ।
शरीरमिदमत्यन्तलालितं चिरसंगतम् ॥ ११७९ ॥

1. 'वेतालपमटापीडो' ख. 2. 'हं सोऽस्य' ख.

बाल्ये विवर्धितं मात्रा यौवने सेवितं सुखैः।
जीर्णमद्य त्यजामीति स रुरोदातिदुःखितः ॥ ११८० ॥
पुनः प्रविश्य सिद्धिर्मे जाता सद्व्रतशालिनः।
इति प्रहर्षोद्दर्पाच्च ननर्तावर्तितोत्सवः ॥ ११८१ ॥
इति श्रुत्वेति वेतालो ललम्बे शिंशिपातरुम्।
नृपोऽपि गत्वा तं तूर्णमानिनाय महाशयः ॥ ११८२ ॥

इति त्रयोविंशो वेतालः ॥ २५ ॥

पुनः स्कन्धस्थितः प्राह निर्बन्धोऽयं महामते।
मोक्तुं गच्छ श्रियं राजन्न चेदेकां कथां शृणु ॥ ११८३ ॥
दाक्षिणात्यो नरपतिर्धर्मानाम महाबलः।
शत्रुभिर्विजितः पत्न्या पुत्र्या च सहितो ययौ ॥ ११८४ ॥
तद्भार्या चन्द्रवत्याख्या कन्या लावण्यवत्यपि।
दूराध्वखेदिते चैन्द्रविलासे खेदितः शनैः ॥ ११८५ ॥
ताभ्यां सहैव भूपालः समुत्तीर्य महाटवीम्।
भिल्लपल्लीवनं प्राप छादितं द्वीपिचर्मभिः ॥ ११८६ ॥
मयूरपत्रवसनैर्गुञ्जास्रग्दामशेखरैः।
शबरैराचितं संध्यारक्तशृङ्गैरिवाद्रिभिः ॥ ११८७ ॥
तत्र तैः स महीपालो रत्नभूषणलोलुपैः।
निहतानेकशबरः पतितः संमुखो रणे ॥ ११८८ ॥
तस्मिन्हते भयात्तस्यायाद्दुहित्रा सह तद्वधूः।
शार्दूलपातवित्रस्ता हरिणीव सुलोचना ॥ ११८९ ॥
सा गत्वा दूरमुत्कम्पिकुचश्रोणीभरालसा।
पुत्र्या प्राप्तचलन्नेत्रनीलोत्पलरुचा सह ॥ ११९० ॥
वनं प्रविश्य त्वलीरवभ्रान्तलताकुलम्।
निषसाद सरस्तीरे कमलामोदमन्दिरे ॥ ११९१ ॥

१ 'दर्पाद्' ख.

अत्रान्तरे मृगकुलक्रीडारसकुतूहली ।
क्षत्रियश्चण्डसिंहाख्यः सपुत्रः प्राप तद्वनम् ॥ ११९२ ॥
नारीचरणमुद्रां तौ तत्र पांसुचयश्रियाम् ।
विस्मयं जग्मतुर्वीक्ष्य रम्यलेखाविभूषिताम् ॥ ११९३ ॥
लघुपादाम्बुजामेकां मत्वा दीर्घाङ्गुलिं पराम् ।
चण्डसिंहः सुतं प्राह हर्षोत्सिंहपराक्रमम् ॥ ११९४ ॥
कान्तायुगलमेतन्नो यदि दृक्पथमेष्यति ।
तदेषा दीर्घचरणा योग्या मे तव चापरा ॥ ११९५ ॥
इत्युक्त्वा नर्मवचने कृत्वा तौ सत्यसंविदौ ।
प्रापतुर्वीक्ष्य यत्नेन पूर्णेन्दुवदनायुगम् ॥ ११९६ ॥
तौ प्राप्य ललिते नार्यौ स्मृत्वा तां निजसंविदम् ।
लेभाते स्वगृहं गत्वा ताभ्यां स्मरमहोत्सवम् ॥ ११९७ ॥
कन्यां विशालचरणां चण्डसिंहोऽभजत्स्वयम् ।
चण्डसिंहसुतः प्राप तां कन्याजननीमपि ॥ ११९८ ॥
इति तौ सत्यवचसा बद्धौ विनिमयेन च ।
लब्ध्वा भार्यां सुताः काले प्रापतुस्तनयास्तथा ॥ ११९९ ॥
वर्णयित्वेति वेतालः पप्रच्छ पृथिवीपतिम् ।
ते तयोर्वंशसंभूताः के भवन्ति परस्परम् ॥ १२०० ॥
इति पृष्टो नृपः प्रायादजानन्प्रश्ननिर्णयम् ।
तेनाथ तुष्टो वेतालः प्रशंसासंभ्रममापत ॥ १२०१ ॥
अनेन राजन्धैर्येण तव प्रज्ञाबलेन च ।
रोमाञ्चकर्कशः कायः कस्य नाम न जायते ॥ १२०२ ॥
पापोऽसौ क्षान्तिशीलस्ते प्रस्तुतो विपुले छले ।
प्रपद्यनीयो यत्नेन क्षिप्रं बुद्धिमता त्वया ॥ १२०३ ॥
घोरे महामेतयागे स त्वां वक्ष्यति दुर्मतिः ।
अष्टाङ्गरुतभूस्पर्शः प्रणामः क्रियतामिति ॥ १२०४ ॥

१. 'महो' ख.

ततो वाच्यो मृदुगिरा स दुष्टः श्रमणः स्वयम्।
अहं समस्तसामन्तमौलिनीताङ्घ्रिपङ्कजः।
अशिक्षितप्रणामोऽहं तं त्वमेव प्रदर्शय ॥ १२०५ ॥
इति त्वयोक्तः स यदा प्रणामं दर्शयिष्यति।
तदा खड्गेन हन्तव्यो हन्ति त्वामन्यथा तु सः ॥ १२०६ ॥
स चक्रवर्तितां प्राप्तुं विद्याधरधराभुजाम्।
समीहिते पशुं कृत्वा त्वां त्रैलोक्यविभूषणम् ॥ १२०७ ॥
इति सर्वं तवाख्यानं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
प्रायादुक्त्वेति वेतालो निर्गत्य प्रेतविग्रहात् ॥ १२०८ ॥
राजापि शवमादाय क्षान्तिशीलान्तिकं ययौ।
यामिन्यां भागशेषायामुत्साहविपुलेक्षणः ॥ १२०९ ॥

इति चतुर्विंशो वेतालः ॥ २६ ॥

तमागतमथालोक्य क्षान्तिशीलः प्रणष्टधीः।
अनार्यो धर्ममर्यादां तस्योच्चैः प्रशशंस सः ॥ १२१० ॥
ततश्चितारजःशुभ्रमण्डले बहुलाञ्छने।
नृरक्तपूर्णकलशे महातेजोरुदीपके ॥ १२११ ॥
उत्तारिते शवे तेन दक्षिणाभिमुखो व्रती।
नररक्तकृतार्घेण नेत्रधूपेन मन्त्रवित् ॥ १२१२ ॥
अथाहूय स वेतालं बलिं पुष्पैर्निरन्तरैः।
उवाच श्रेयसे राजन्प्रणामः क्रियतामिति ॥ १२१३ ॥
नृपोऽब्रवीन्नास्म्यभिज्ञः प्रमाणं दर्शय स्वयम्।
श्रुत्वेत्यदर्शयत्सोऽसौ प्रणतिं दैवमोहितः ॥ १२१४ ॥
तमष्टाङ्गप्रणामस्थं निजघानासिना नृपः।
छित्वाथ शीर्षं तत्पूर्णमुत्कृत्यर्घार्थिर्थि व्यधात् ॥ १२१५ ॥
पुष्पवर्षे निपतिते वेतालः प्रददौ वरम्।
राज्ञः कथेयं त्रैलोक्यपूजनीया भवत्विति ॥ १२१६ ॥

१. 'ष्ट' ख. २. 'धूनी' ख.

ततः साक्षात्समभ्येत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
प्रशशंसुर्नरपतिं वरैश्च समपूजयन् ॥ १२१७ ॥
तं प्राह भगवान्विष्णुस्त्वं ममांशो महीपते ।
जातोऽसि विक्रमादित्य पुरा म्लेच्छशशाङ्कतः ॥ १२१८ ॥
त्वं त्रिविक्रमसेनोऽथ राजवंशविभूषणम् ।
भोगापवर्गसुभगां भुक्त्वा विद्याधरश्रियम् ॥ १२१९ ॥
त्रिपुरारिवरात्प्राप्य विद्याभृच्चक्रवर्तिताम् ।
निजं प्रविश्य नगरं प्रभाते स बभौ श्रिया ॥ १२२० ॥

इत्युर्वीवलये तुषारनिकरस्पष्टाट्टहासच्छविः
पाताले फणिनायकस्फुटफणाविस्फाररत्नोज्ज्वला ।
व्योम्नि ब्रह्मविमानहंसविकसत्कान्तिप्रकाशद्युति-
स्तस्याकल्पमनल्पपुण्यपदवी गङ्गेव कीर्तिर्बभौ ॥ १२२१ ॥

इति पञ्चविंशो वेतालः ॥ २७ ॥

इति विप्रः समाश्वास्य ददौ मे मन्त्रमुत्तमम् ।
येन सिद्धेन वेतालः स मया वाहनीकृतः ॥ १२२२ ॥
तत्प्रभावान्मया दृष्टस्त्वमिहस्थः समागतः ।
इत्युक्त्वा हर्षमतुलं लेभे विक्रमकेसरी ॥ १२२३ ॥
मृगाङ्कदत्तश्श्रुत्वा तां शशाङ्कवतीं स्मरन् ।
अजस्त्रयायिनीं प्राप सोऽटवीं निर्जलद्रुमाम् ॥ १२२४ ॥
ग्रीष्मोष्माश्लेषविषमं वर्त्मोचीर्य क्रमेण ते ।
तृष्णासंतापविधुरा ददृशुर्विशदं सरः ॥ १२२५ ॥
व्याप्तं विकासिभिः पद्मैः सरसैर्गुणशालिभिः ।
श्रुत्वा मृगाङ्कनानीतं हर्षोत्कण्टकितैरिव ॥ १२२६ ॥
स्खलनालोचनौपम्यपत्रैरुत्पलसंस्तरैः ।
कृष्णवक्षःस्थलप्रीतिं विदधानमिव श्रियः ॥ १२२७ ॥
हंसांसघट्टविस्फारफेनोर्मिवलयोज्ज्वलम् ।
इन्दुगर्भामृतोत्तुङ्गतरङ्गमिव सागरम् ॥ १२२८ ॥

प्रावृषेण्यघनश्यामैर्वराहैः सेवितान्तरम्।
चक्रवाकवियोगाग्निधूमपुञ्जैरिवावृतम् ॥ १२२९ ॥
लोलाम्बुजदलप्रान्तैर्मुक्ताभैर्जलबिन्दुभिः।
दर्शयन्तमिवाश्चर्यं संसारे तरलां स्थितिम् ॥ १२३० ॥
मुहुः करिकुलाकृष्टबिसदण्डविपाण्डुरम्।
कुमुदाकान्तचन्द्रांशुसहस्रैरिव पूरितम् ॥ १२३१ ॥
तद्विलोक्य जहुः क्लान्तिं ते हर्षविकचेक्षणाः।
दृष्टमात्रा दिशन्त्येव संतोषं विपुलाशयाः ॥ १२३२ ॥
पश्चिमे तस्य विस्तीर्णे तीरे शाखासहस्रिणम्।
विशालं फलपुष्पाढ्यं ददर्श वरपादपम् ॥ १२३३ ॥
ऐश्वर्यमिव सच्छायमभिमानमिवोन्नतम्।
सौहार्दमिव संश्लिष्टं संतोषमिव सौख्यदम् ॥ १२३४ ॥
तं वीक्ष्य संपदां पात्रं सेव्यसंतापवारणम्।
सर्वाशापूरणे शक्तमभिजातमिवेश्वरम् ॥ १२३५ ॥
मृगाङ्कदत्तसचिवाः सहसा श्रुतधिं विना।
हर्षादारुरुहुर्भूरिफलं भोजनवाञ्छया ॥ १२३६ ॥
शाखान्तरालं संप्राप्ताः क्षिप्रमन्तर्हितास्ततः।
मृगाङ्कदत्तो विक्रोशन्नापश्यत्सुहृदोऽथ तान् ॥ १२३७ ॥
स तद्विरहविधुरो मुमोह पतितः क्षितौ।
वीज्यमानः श्रुतधिना पल्लवैर्धृतिमाप्तवान् ॥ १२३८ ॥
ततः शरीरमुत्स्रष्टुं राजपुत्रं समुद्यतम्।
दुःखार्तस्य सरित्तीरे वागुवाचाशरीरिणी ॥ १२३९ ॥
देवो गणाधिनाथोऽयं म्लेच्छपादपरूपकृतिः।
एतदुल्लङ्घनात्तस्य शाखाः सुफलतां गताः ॥ १२४० ॥
तपसाराध्य हेरम्बं तत्प्रसङ्गं समुपेष्यसि।
अन्यथा दुर्लभा मुक्तिस्तेषां वर्षशतैरपि ॥ १२४१ ॥

१. 'श्य' ख. २. 'मन्यते' ख.

इति दिव्यवचः श्रुत्वा धृतिं प्राप नृपात्मजः ।
पूजयित्वा नृपवरं तुष्टाव प्रथमप्रभुम् ॥ १२४२ ॥

गजेन्द्र जयति स्फुरत्पृथुलकान्तिसंदैर्घ्यभृ-
च्छशीव विशदो रदस्तव मुखोदयाद्रेस्तटे ।
विलासरसफूत्कृताकुलकपोलभृङ्गावली
निशाप्रणयिसीकरप्रकरहारतारागणः ॥ १२४३ ॥

गणेश्वरमिति स्तुत्वा द्वादशाहमुपोषितः ।
स्वप्ने तद्वरमासाद्य वाञ्छितं प्राप्स्यसीत्यथ ॥ १२४४ ॥
प्रीतः प्रबुद्धः सचिवान्ददर्श प्रणतान्दश ।
तान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टो हृष्टः प्राह मुदान्वितान् ॥ १२४५ ॥
अहो नु विपुलो लाभः कोऽप्यरण्ये ममोदितः ।
यदहं सुहृदो लब्ध्वा प्रीतः दैवैः सहामरैः ॥ १२४६ ॥
दृढमुष्टे मेघबलस्थूलबाहो सुदुःसहः ।
व्याघ्रसेन क युष्माभिर्मद्वियोगोऽतिवाहितः ॥ १२४७ ॥
सप्तभिः सहितेनेति चतुर्षु नृपसूनुना ।
पृष्टेषु तेषु मतिमान्व्याघ्रसेनोऽभ्यभाषत ॥ १२४८ ॥
स्वस्ति देव वयं तत्र तेन नागेन शापिताः ।
क्षिप्ताः पारापताक्षेण दिक्षु मोहविमूर्च्छिताः ॥ १२४९ ॥
ततोऽहं निशि नीरन्ध्रे नीलशैलशिलाघने ।
तिमिरे शोकतिमिरैरभवं नष्टचेतनः ॥ १२५० ॥
सहसयामेव विरात्रियामा यमकाङ्क्षिणा ।
अटव्यां सा मया नीता दुर्नीतेनेव दुःखदा ॥ १२५१ ॥
ततः प्रभाते संप्राप्य सरो विकचपङ्कजम् ।
निपण्णोऽहं कृतस्नानस्तीरे चिन्तानलाकुलः ॥ १२५२ ॥
तत्रापश्यमथायातान्क्रन्दितोच्छूनलोचनान् ।
दृढमुष्टिं मेघबलं स्थूलबाहुं च संगतान् ॥ १२५३ ॥

तत्तो दुःखाचनुत्यागसंभृता मुनिसूनुना ।
वयं नीताः समाश्वास्य शुभच्छायं तपोवनम् ॥ १२५४ ॥
तत्र कण्वमुनिः साक्षात्कृशानुरिव तेजसा ।
ब्रह्मलोक इवानेकैः सेव्यमानो मुनीश्वरैः ॥ १२५५ ॥
अरौद्ररूपः सततं जितकालमनोभवः ।
अकृष्णचरितः पुण्यसमाधानपदाच्युतः ॥ १२५६ ॥
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गस्तेजसा पिङ्गलच्छविः ।
अब्जासन इवाब्जोत्थभङ्गमालारजःश्रितः ॥ १२५७ ॥
दृष्टोऽस्माभिः कुलगृहं शमसंतोषसंपदाम् ।
स हस्ततलविन्यस्तमुक्तायितजगत्त्रयः ॥ १२५८ ॥
सोऽस्मान्विलोक्य शोकार्तानाकर्ण्यास्मात्कथां च ताम् ।
उवाच करुणासिन्धुः पीयूषं विकिरन्निव ॥ १२५९ ॥
तेन दन्तांशुनिवहैः पूरिता विबभुर्दिशः ।
सोमपानसमुद्गीर्णैरिव शीतांशुसंचयैः ॥ १२६० ॥
विचित्रकर्मनिर्माणैर्भवन्त्येव भवे नृणाम् ।
संयोगैश्च वियोगैश्च सुखदुःखे विपर्ययाः ॥ १२६१ ॥
मा निमज्जत निष्पारे विस्फारे शोकसागरे ।
तूर्णं मृगाङ्कदत्तेन भविता वः समागमः ॥ १२६२ ॥
पुरा सुन्दरसेनस्य राजसूनोरमूच्चिरात् ।
भार्यया च सुहृद्भिश्च हारितैरिह संगमः ॥ १२६३ ॥
श्रुत्वेति पृष्टः सोऽस्माभिर्मुनिभिश्च सकौतुकैः ।
तत्कथां प्राह भगवान्कृत्वा निखिलमाह्निकम् ॥ १२६४ ॥
अलका नाम नगरी निषधेष्वस्ति विश्रुता ।
यस्यां पौरवधूवक्त्रैर्जायते दिनकौमुदी ॥ १२६५ ॥
यस्याः सुरगृहश्वेतपताकापङ्क्तिभिर्मुहुः ।
बहुधा विमकीर्णेव दृश्यते व्योम्नि जाह्नवी ॥ १२६६ ॥

१. 'नियोगधैर्य' ख. २. यस्यां सौधशिरः स्वच्छपताकापङ्क्तिभिर्मुहुः' ख.

शक्तिमानभवत्तस्यां महासेनाभिधो नृपः ।
शक्रयक्षास्पदोत्साहो महासेन इवापरः ॥ १२६७ ॥
पाणिन्नाघारुणान्तेषु कपोलेष्वरियोषिताम् ।
नेत्रेषु चाश्रुताम्रेषु यत्प्रतापोऽभजत्स्थितिम् ॥ १२६८ ॥
का निशा नेन्दुतिलका को नु गौरीगुरुर्गिरिः ।
यद्यशोभिरभूच्छुभ्रैः को वा देवो न धूर्जटिः ॥ १२६९ ॥
लक्ष्मीरक्षामणिस्तस्य गुणपालित इत्यभूत् ।
मन्त्री सर्वोपधाशुद्धः षाड्गुण्यनयभूषणः ॥ १२७० ॥
राज्ञः शशिप्रभा तस्य पौलोमीव शतक्रतोः ।
भार्या बभूव सौभाग्यवसन्तोपवनस्थली ॥ १२७१ ॥
स तस्यासदृशं लेभे सशरीरमिव स्मरम् ।
पुत्रं सुन्दरसेनाख्यं विलाससदनं द्युतेः ॥ १२७२ ॥
बभूवुः सचिवास्तस्य श्रीपरिष्वङ्गसाक्षिणः ।
चत्वारश्चारुकटका मुरारेरिव बाहवः ॥ १२७३ ॥
चण्डप्रभादिभिर्मित्रैः स तैः सह नृपात्मजः ।
कदाचित्पुरयात्रायां निर्ययौ द्रष्टुमुत्सवम् ॥ १२७४ ॥
पूजयित्वा द्विजवरान्मणिकाञ्चनमौक्तिकैः ।
सुहृदुत्साहितो दाता विचचार पुरोत्सवे ॥ १२७५ ॥
स तत्र विबभौ मत्तकुञ्जरेन्द्रघटा इव ।
संपूर्ण इव शीतांशुर्मेघमालाविनिर्गतः ॥ १२७६ ॥
गोरोचनापत्रभङ्गैस्तस्योरुयुगलं बभौ ।
हरेरिव चिरोत्सिष्टकैटभासृक्छटाङ्कितम् ॥ १२७७ ॥
रराज तारहारेण लक्ष्मीलीलास्मितेन सः ।
निर्झरेणेव गाङ्गेन स्फटिकाचलशेखरः ॥ १२७८ ॥
शौर्यद्विपालाननिभौ जयतोरणविभ्रमौ ।
प्रतापमन्दिरस्तम्भौ भुजौ तस्य विरेजतुः ॥ १२७९ ॥

1. 'पाणिप्रघारुणान्तेषु' ख.

स लोलकुण्डलासक्तलसन्मरकतांशुभिः ।
बभौ विभूषितो भोगिभोगैरिव महेश्वरः ॥ १२८० ॥
व्यूढोरस्कं हरिस्कन्धं प्रांशुं कमललोचनम् ।
तं वीक्ष्य पौरललना बभूवुर्मन्मथाकुलाः ॥ १२८१ ॥
मोट्टायितैः कुट्टमितैर्जृम्भितैः किलकिञ्चितैः ।
तासां तद्दर्शनोद्भूतैरयं किल सखीजनः ॥ १२८२ ॥
महोत्सवं समालोक्य कामिनीनयनोत्सवः ।
अपरेद्युर्मृगरणक्रीडायै सानुगो ययौ ॥ १२८३ ॥
तं व्रजन्तं ददर्शाथ यदृच्छासंगता पथि ।
प्रौढा कात्यायनी नाम तापसी कौतुकाकुला ॥ १२८४ ॥
आश्चर्यशालिनीं पृथ्वीं भ्रान्त्वा सा वीक्ष्य तं पुरः ।
विस्मयस्तब्धनयना लिखितेवाभवत्क्षणात् ॥ १२८५ ॥
अभिनन्द्य तमाशीर्भिः मह्वा गन्तुमुद्यता ।
अनेकसेवकासक्तदृशा तेन न वीक्षिता ॥ १२८६ ॥
सदर्पमिव तं मत्वा किंचिदुच्चैरुवाच सा ।
अहो नु रूपसंमत्तो राजपुत्रो मदाकुलः ॥ १२८७ ॥
हंसद्वीपपतेः पुत्रीं कान्तां दारवतीं यदि ।
प्राप्नोति तन्न जानीमः कीदृशोऽयं भविष्यति ॥ १२८८ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सेवका गर्वमन्थरम् ।
न्यवेदयन्समभ्येत्य राजपुत्राय विस्मिताः ॥ १२८९ ॥
स तामानाय्य पप्रच्छ प्रणम्य विनयानतः ।
यथोक्तमवदत्सा च पृष्टा तेन पुनः पुनः ॥ १२९० ॥
स्नानभोजनसन्मानैः पूजनीयेयमित्यथ ।
आदिदय मन्त्रिणं प्रायान्मृगयायै नृपात्मजः ॥ १२९१ ॥
ततः परिनिवृत्याशु राजधानीमुपेत्य ताम् ।
पप्रच्छ पुनरेकान्ते सचिवैः सह निर्वृतः ॥ १२९२ ॥

१. 'श्रोत्र' ग.

सा प्राह राजपुत्रास्ति हंसद्वीपनराधिपः ।
श्रीमान्मन्दरदेवाख्यो राजसागरमन्दरः ॥ १२९३ ॥
तस्य मन्दारवत्याख्या तनयास्ति सुलोचना ।
यां विधाय विधेर्मन्ये चिरादुच्छ्वसितं मनः ॥ १२९४ ॥
मासि मासि समभ्यस्य विधिः शङ्के शशिक्रियाम् ।
तन्मुखाशेषसादृश्यैर्नैवाद्यापि प्रगल्भते ॥ १२९५ ॥
चन्द्रस्पर्धैव लज्जायै दूरे जलजसंकथा ।
तन्मुखस्योपमापात्रं स्वबिम्बं यदि दर्पणे ॥ १२९६ ॥
सौन्दर्यवसनं लोके सा च संवननं दृशः ।
तथा च पश्य चित्रस्थं तदाकारं ददाम्यहम् ॥ १२९७ ॥
मयेयं लिखिता तत्र तत्सौन्दर्यानुरक्तया ।
एवंविधा सुधामूर्तिर्नेत्राभ्यां लभ्यते कुतः ॥ १२९८ ॥
इत्युक्त्वा कौतुकार्याय राजपुत्राय तां ददौ ।
चित्रस्थां वीक्ष्य तां सोऽपि चित्रन्यस्त इवाभवत् ॥ १२९९ ॥
साक्षादिव स्थितां दृष्ट्वा किंचिद्वक्तुमिवोद्यतः ।
स तां प्रदध्यावाक्रान्तौ विस्मयेन स्मयेन च ॥ १३०० ॥

यस्याः कान्तितरङ्गिणी स्तनतटे हारांशुकेनोज्ज्वले
भ्रूवीचीचटुले विलाससुभगे वक्त्रे रुचिस्यन्दिनि ।
लावण्यामृतविभ्रमे कृतमहावर्ते च नाभीह्रदे
मज्जन्तीव मयार्पिता स्मरमरादानन्दगुर्व्या दृशः ॥ १३०१ ॥

इत्युक्त्वा सर्ववृत्तीनां निर्दिशन्नेव नेत्रताम् ।
योगीव तन्मयः क्षिप्रं निर्विकल्पो बभूव सः ॥ १३०२ ॥
तं वीक्ष्य पुलकापूर्णं स्वेदबिन्दुविराजितम् ।
ध्यात्वा तत्सचिवाः प्राहुस्तापसीं विस्मयाकुलाः ॥ १३०३ ॥
आर्ये तत्सदृशी कन्या चित्रस्था कैः प्रतीयते ।
लिख्यतां राजपुत्रोऽयं सादृश्ये कुशलासि चेत् ॥ १३०४ ॥

१ 'सुधम्' ख.

इत्युक्ता तैर्लिलेखाथ तापसी भूमिपात्मजम् ।
अविसंवादिलावण्यं संक्रान्तमिव दर्पणे ॥ १३०५ ॥
ते दृष्ट्वा लिखितं चित्रे तुल्यं राजसुतं तथा ।
साधु साध्वित्यभाषन्त प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ १३०६ ॥
तापस्यां प्रतियातायां राजपुत्रस्ततोऽभवत् ।
अरतिस्मरतापानां करात्करमिवागतः ॥ १३०७ ॥
श्वासताम्राधरदलो ध्यानस्तिमितलोचनः ।
आपाण्डुगण्डः कदलीदलशय्यां ततोऽभजत् ॥ १३०८ ॥
विज्ञाय तत्सुहृद्वाक्यात्पुत्रं कामज्वरातुरम् ।
तापसीकथितं कन्यावृत्तान्तं च निशम्य तत् ॥ १३०९ ॥
महासेनोऽथ दूतेन हंसद्वीपाधिपं सुताम् ।
योग्यां सुन्दरसेनाय ययाचे दिक्षु विश्रुताम् ॥ १३१० ॥
लिखितं चित्रफलके राजपुत्रमदर्शयत् ।
महासेनविसृष्टोऽसौ दूतस्तत्र महीभुजे ॥ १३११ ॥
हंसद्वीपाधिपः पुत्र्यै चित्रस्थं भूमिपात्मजम् ।
प्रदिश्य तत्प्रयाणाय प्रति दूतं समादिशत् ॥ १३१२ ॥
मन्दारवत्यथालोक्य तं कान्तं प्रतिमापदम् ।
बभूवाभिनवोद्भिन्नमनोभवविभूषिता ॥ १३१३ ॥
ततस्तच्चिन्तनैकाग्रा तत्सौन्दर्यकथादरा ।
भेजे प्रलापिनी तापं हृदयान्ते सुखश्रिया ॥ १३१४ ॥
कान्तां विज्ञाय तां तुल्यवरव्यासक्तमानसाम् ।
आपादसहमानां च कालं परिणयोत्सवे ॥ १३१५ ॥
विससर्ज प्रवहणैर्महासेनपुरीं स्वयम् ।
पुत्रीं मन्दरदेवोऽथ हृष्टो दासीशतैर्वृताम् ॥ १३१६ ॥
रत्नपूर्णं प्रवहणं सा समारुह्य सोत्सुका ।
अवाप जलधेर्मध्यं तरङ्गावर्तभीषणम् ॥ १३१७ ॥

अथोदतिष्ठद्यालोलविद्युत्पिङ्गललोचनः ।
तमालजालमलिनो गर्जञ्जलदराक्षसः ॥ १३१८ ॥
तदुद्भूतमहावातवलयावर्तनर्तितः ।
कैलासशिखराकारतरङ्गः सागरोऽभवत् ॥ १३१९ ॥
तेन कल्पान्तसंरम्भगम्भीरेण नभस्वता ।
अभज्यत प्रवहणं राजपुत्र्याः कृतश्रमम् ॥ १३२० ॥
किमेतदिति निस्पन्दचेतनामोहविप्लवैः ।
वीचिहस्तैस्ततो न्यस्ता भवितव्यतयेव सा ॥ १३२१ ॥
तत्र संज्ञां समासाद्य चिराच्चरललोचना ।
एकाकिनी त्रासशोकशङ्कातङ्काकुलाभवत् ॥ १३२२ ॥
तालतालीवनश्यामे निर्जने जलधेस्तटे ।
बभ्राम चक्रवाकीव बाला तारमलापिनी ॥ १३२३ ॥
स्तनस्तबकिनी तस्याः साञ्जनैर्बाष्पबिन्दुभिः ।
आलीनभृङ्गमालेव बभूव तनुवल्लरी ॥ १३२४ ॥
वीक्ष्य शून्या दश दिशो निश्चलोत्पललोचना ।
त्रस्तेव बालहरिणी क्षिप्रमुत्कन्धराभवत् ॥ १३२५ ॥
हा तात हा प्रियतम क नु व्यमोऽसि पश्य माम् ।
इति चक्रन्द सा तन्वी दृषदामपि दारणम् ॥ १३२६ ॥
अत्रान्तरे महाम्भोधिवेलाविरचिताश्रमः ।
तं देशमागतः स्नातुं मतङ्गो मुनिपुंगवः ॥ १३२७ ॥
यमुनाभिधया पुत्र्या सहितस्तां ददर्श सः ।
विलापक्षामवदनां निःश्वासग्लपिताधराम् ॥ १३२८ ॥
तां वीक्ष्य करुणासिन्धुः सान्त्वयन्मुनिरब्रवीत् ।
समाश्वसिहि मा भैषीः पुत्रि मा विक्लवा भव ।
अस्यां वनौ न विपदश्चिरं तिष्ठन्ति सुन्दरि ॥ १३२९ ॥
इत्युक्त्वा तेन सा पृष्टा कारुण्याद्दुःखकारणम् ।

---

१. 'दृषं दिमपि' ख.

उवाच तत्समाश्वासमुधया लब्धजीविता ॥ १३३० ॥
हंसद्वीपपतेः पुत्री हताशा भगवन्नहम् ।
पित्रा सुन्दरसेनाय विसृष्टाम्भोधिवर्त्मना ॥ १३३१ ॥
अचिरप्रस्तुतोद्वाहा मग्ने प्रवहणे विभो ।
तीरेऽस्मिन्सलिलैः क्षिप्ता जीवामि कठिनाशया ॥ १३३२ ॥
निषधाधिपतेः पुत्रः प्राप्तो नाधन्यया मया ।
श्रीमान्सुन्दरसेनोऽसौ वरो दिव्यवरोचितः ॥ १३३३ ॥
इत्युदश्रुदृशस्तस्या निशम्य वचनं मुनिः ।
निनाय पुत्र्या सहितस्तामाश्वास्य निजाश्रमम् ॥ १३३४ ॥
भविष्यत्यचिरादेव तवेप्सितसमागमः ।
इति तत्र तदादिष्टा कंचित्कालमुवास सा ॥ १३३५ ॥
अस्मिन्नवसरे तीव्रमन्मथानलतापितः ।
दूतैः सुन्दरसेनोऽपि ज्ञात्वा पुत्रीं प्रतिश्रुताम् ॥ १३३६ ॥
राज्ञा मन्दरदेवेन कृतार्थोऽस्मीति वादिना ।
अक्षमः कालसहने सामात्यः पितुराज्ञया ॥ १३३७ ॥
प्रतस्थे विपुलानीकैर्विवाहोचितया श्रिया ।
हंसद्वीपं हरिखुरोट्टङ्कितावनिमण्डलः ॥ १३३८ ॥
स शशाङ्कपुरं प्राप्य क्रमेण जलधेस्तटे ।
राज्ञा महेन्द्रादित्येन पूजितः सादरं गृहम् ॥ १३३९ ॥
तमेवाग्रे समाधाय सोत्साहं सचिवैः सह ।
आरुरोह प्रवहणं तूर्णं परिणयोत्सुकः ॥ १३४० ॥
ततः संहारपिशुनैरकाण्डोचण्डमारुतैः ।
समुद्भूतैर्महाम्भोधावमज्यत सचेटकः ॥ १३४१ ॥
बाहुभ्यां तरणोद्युक्ताः पवनप्रेरितैर्जलैः ।
पृथक्तीरेषु विन्यस्ताः सर्वे प्रवहणाश्रयाः ॥ १३४२ ॥
एकेन सुहृदा सार्धं तीरं प्राप्य नृपात्मजः ।
अचिन्तयद्विलसितं भुजङ्गकुटिलं विधेः ॥ १३४३ ॥

हा सुन्दरि न लब्धासि यत्नैरेवंविधैरपि ।
कुतो वा हीनपुण्यानां संकल्पाः फलयोगिनः ॥ १३४४ ॥
तैः सुहृद्भिर्वियुक्तस्य निष्फलोद्योगदुःखिनः ।
ममास्मिन्व्यसनापाते निधानान्नापरं सुखम् ॥ १३४५ ॥
इति प्रलापमुखरः सुहृदाश्वासितो मुहुः ।
तापसाभ्यां समादिष्टं शनैः प्राप तपोवनम् ॥ १३४६ ॥
अत्रान्तरे महासेनो विज्ञाय निषधेश्वरः ।
रहितं राजपुत्रेण प्रतीपं सैन्यमागतम् ॥ १३४७ ॥
श्रुत्वा समुद्रवृत्तान्तं घोरं कुलिशदारुणम् ।
हा पुत्रेति विलप्योच्चैर्निपपात महीतले ॥ १३४८ ॥
भूपतौ शोकपतिते रुरोदेव वसुंधरा ।
अन्तःपुरवधूच्छिन्नहारमुक्ताश्रुबिन्दुभिः ॥ १३४९ ॥
देवी शशिप्रभा तत्र पुत्रशोकप्रलापिनी ।
चक्रे केलिकुरङ्गीणां मुहुः साश्रुलवा दृशः ॥ १३५० ॥
अस्मिन्नवसरे ज्ञात्वा हंसद्वीपाधिपः सुताम् ।
निमग्नां सागरावर्ते सोऽभ्ययादलकां स्वयम् ॥ १३५१ ॥
तूर्णं समुद्रमुत्तीर्य संनिधाने नराधिपे ।
पुत्रीवियोगविधुरे संप्राप्ते वल्लभासखे ॥ १३५२ ॥
महासेनपुरं तारं चचाराक्रोशनारवः ।
समानदुःखसङ्गेन बाष्पग्रन्थिर्हि भिद्यते ॥ १३५३ ॥
शनैराश्वासितास्तेऽथ वृद्धामात्यपुरःसरैः ।
बहवः सागरे तीर्णा दृष्टा इति निदर्शनैः ॥ १३५४ ॥
ततस्तौ नृपती तत्र सभार्यौ शोककर्शितौ ।
अभूतां नियताहारौ शिवार्चनपरायणौ ॥ १३५५ ॥
अत्रान्तरे राजपुत्रः सुहृदा सह दुःखितः ।
प्राप्तः सुन्दरसेनस्तं मतङ्गाश्रमकाननम् ॥ १३५६ ॥

प्रसन्नसुभगच्छायमञ्जुगुञ्जद्विहङ्गमे ।
मृदुलानिललोलाग्रफुल्लवल्लीमनोहरे ॥ १३५७ ॥
तत्राश्रमोपान्तनदीतीरे तरललोचनाः ।
जलकेलिकलालोला ददर्श मुनिकन्यकाः ॥ १३५८ ॥
तासां मध्ये ततोऽपश्यत्ताराणामिव रोहिणीम् ।
शोककञ्चुकसंवीतां कन्यां कुवलयेक्षणाम् ॥ १३५९ ॥
निर्दोषेणातिकान्तेन शतपत्रविकाशिना ।
अभिभूतेन्दुबिम्बेन वदनेन विराजिताम् ॥ १३६० ॥
निषिद्धमावयोरैक्यं श्रोत्राभ्यां नासया तथा ।
रोषादतीव रक्तान्तं बिभ्राणां लोचनद्वयम् ॥ १३६१ ॥
नागवल्लीकिशलयैर्भूषितामधरांशुभिः ।
लक्ष्मीमिवाब्धिसंक्रान्तबालविद्रुमपल्लवाम् ॥ १३६२ ॥
अत्युच्चकुचसंरुद्धं न पश्याम्येतदाननम् ।
इतीव चिन्तया मध्यं दधती क्षामतां गतम् ॥ १३६३ ॥
फुल्लोत्पलवरामोदां कुन्ददन्तां हिमसिताम् ।
अशोकपल्लवकरां मल्लीमुकुलकोमलाम् ॥ १३६४ ॥
केतकीकलिकाकोटितीक्ष्णान्तनयनच्छटाम् ।
स तां विलोक्य साकारामिव सर्वर्तुदेवताम् ॥ १३६५ ॥
बभूव विस्मयोत्तालनयनः सुहृदा सह ।
अग्राम्यमधुरं तस्याः प्रशंसन्नेष विभ्रमम् ॥ १३६६ ॥
साथ तत्र जलक्रीडाव्यग्रा ग्राहेण हारिणी ।
गृहीता मोहमगमत्रासकम्पिपयोधरा ॥ १३६७ ॥
तां विलोक्य तदाक्रान्तां मुनिकन्याः प्रचुक्रुशुः ।
हा हा मन्दारवत्येषा सखी ग्राहेण कृष्यते ॥ १३६८ ॥
इति प्रियतमानामश्रवणोत्फुल्लकाननः ।
क्षिप्रं सुन्दरसेनस्तु हत्वा ग्राहं ररक्ष ताम् ॥ १३६९ ॥

---

१. 'विस्मित' पा.

सखीभिर्वीज्यमानाथ सा बाला कदलीदलैः ।
लब्धसंज्ञा नृपसुतं पुरो दृष्ट्वा व्यचिन्तयत् ॥ १३७० ॥
अहो बत स एवायं यश्चित्रस्थो मया पुरा ।
दृष्टः सैवेयमम्लाना रेखा सौन्दर्यशालिनी ॥ १३७१ ॥
इति लज्जाकुले तस्याः कान्तिदर्शनसंशये ।
लेभे मनोभवः क्षिप्रं दोलारोहणविभ्रमम् ॥ १३७२ ॥
ततः सुन्दरसेनस्तां पप्रच्छ मुनिकन्यकाम् ।
लावण्यललिताकारा कस्येयमिति सादरम् ॥ १३७३ ॥
इयं मन्दरदेवस्य हंसद्वीपपतेः सुता ।
ख्याता मन्दारवत्याख्या प्रस्थिता पितुराज्ञया ॥ १३७४ ॥
वरं सुन्दरसेनाख्यं निषधाधीशितुः सुतम् ।
तरीतुं जलयानेन ततार जलधिं ततः ॥ १३७५ ॥
मग्ने प्रवहणे वातैर्दैवाच्छमविश्रिता ।
न्यस्तेयं वीचिहस्तेन मग्ने प्रवहणेऽब्धिना ॥ १३७६ ॥
प्राप्ता मतङ्गमुनिना कन्येव प्रतिपालिता ।
इति स श्रुतवृत्तान्तस्तस्यावानन्दसंप्लुतः ॥ १३७७ ॥
पृष्टो मन्दारवत्याथ तत्सखा प्राह तत्कथाम् ।
यथावृत्तं तदाकर्ण्य प्रपेदे निर्वृतिं पराम् ॥ १३७८ ॥
इति श्रुत्वा परिज्ञाय मिथो वृत्तान्तविस्तरम् ।
दयितौ जग्मतुर्मूर्च्छां तौ बाष्पपिहितेक्षणौ ॥ १३७९ ॥
स्वयं ततः समभ्येत्य भगवान्ज्ञाततत्कथः ।
मतङ्गमुनिरानन्दाद्ददौ तां नृपसूनवे ॥ १३८० ॥
अथ संप्राप्तदयितो राजपुत्रो मुनीश्वरम् ।
यमुनां च समामन्त्र्य प्रतस्थे सुहृदा सह ॥ १३८१ ॥
किंचिन्मार्गं समुल्लङ्घ्य ततः स जलधेस्तटे ।
आढ्यलोके प्रवहणं वणिजो वल्लभास्थः ॥ १३८२ ॥

वणिक्सोऽपि विलोक्यैव दूरात्तां हंसगामिनीम् ।
आरुह्यतां प्रवहणं प्रोवाचेति नृपात्मजः ॥ १३८३ ॥
तदाकर्ण्य प्रियां पूर्वमारोप्य स समीहते ।
यावत्स्वयं समारोढुं वणिक्तावज्जहार ताम् ॥ १३८४ ॥
क्रोशन्तीं तां समादाय याते तस्मिन्नदृश्यताम् ।
मूर्च्छान्धकारितः क्षिप्रं निपपात नृपात्मजः ॥ १३८५ ॥
हा प्रिये क नु यातासि वद दृष्टासि पश्य माम् ।
इत्युन्मत्त इवानेकं विललाप मुहुर्मुहुः ॥ १३८६ ॥
भृङ्गावलीषु कबरीमुत्पलेषु विलोकितम् ।
लीलां च बालवल्लीषु स शुशोच मृगीदृशः ॥ १३८७ ॥
तन्व्या संमापितोऽसीति स वदन्बालवल्लरीम् ।
मञ्जुसिञ्जानमधुपामालिलिङ्गानिलाकुलाम् ॥ १३८८ ॥
कान्ताकटाक्षमालेयमिति बर्हिशिखावलीम् ।
मोहाद्बाल इवाधावद्बालेन्दुफलकाम्यया ॥ १३८९ ॥
तस्मिन्प्रियावियोगाग्निदह्यमाने दिनेश्वरः ।
चित्रमस्ताद्रिमारुह्य ममज्ज जलधेर्जले ॥ १३९० ॥
अथाभूत्सांध्यरागेण मञ्जिष्ठपटशोभिना ।
चक्राह्वशोकशिखिना मूर्तेनेवावृतं जगत् ॥ १३९१ ॥
ततः सुन्दरसेनोऽमद्दुःखानिलसमुच्छ्रितैः ।
सान्द्रधूमैरिव ध्वान्तैर्बभूव पिहिता दिशः ॥ १३९२ ॥
ततश्चन्द्रोदयारम्भपाण्डुरा रजनी बभौ ।
वियोगिनीव ससिक्ता कर्पूरहरिचन्दनैः ॥ १३९३ ॥
अथादृश्यत शीतांशुर्नूतनोदयलोहितः ।
दह्यमानः स संतापैः प्रोषितावीक्षितैरिव ॥ १३९४ ॥
व्योमलक्ष्मीः शशिकरैः करिणीदन्तपाण्डुरैः ।
बभूव शारतेव मण्डिता विषमण्डलैः ॥ १३९५ ॥

तत्र सुन्दरसेनोऽभूत्कौमुदीधवलित्विषि ।
कटाह इव विन्यस्तः शोचन्हरिणलोचनाम् ॥ १३९६ ॥
ज्योत्स्नाट्टहासधवलो वेताल इव चन्द्रमाः ।
प्राणान्समुद्यतो हन्तुं ममेत्युक्त्वा पपात सः ॥ १३९७ ॥
तं मूर्च्छितं निपतितं दृष्ट्वा साश्रुविलोचनः ।
विललापातिकरुणं तद्वयस्योऽपि विह्वलः ॥ १३९८ ॥
ततः प्रभाते शनकैः संज्ञामासाद्य दुःखितः ।
राजपुत्रोऽविशद्घोरामटवीं विस्खलद्गतिः ॥ १३९९ ॥
ददर्श तत्र चमरीवालैराच्छादितां पुरः ।
पुलिन्दपल्लीं शार्दूलकृत्तिमालम्बिमीषणाम् ॥ १४०० ॥
गजेन्द्रमांसकूटेषु काकरक्षाविराविभिः ।
विकीर्णवृंदशबरैः पिशाचैरिव सेविताम् ॥ १४०१ ॥
लम्बमानोरुतूणीरां संसक्तमृगवागुराम् ।
सारमेयफूत्काराढ्यां पश्यन्भययौ द्रुतम् ॥ १४०२ ॥
तत्र दुर्गोपहाराय शबरैश्चापपाणिभिः ।
निहतानेकशबरो बद्धो राजसुतस्ततः ॥ १४०३ ॥
वयस्यसहितो नीतः स तैः कारागृहोदरम् ।
प्रविश्य सुचिरं वृद्धान्सचिवान्स्वान्ददर्श च ॥ १४०४ ॥
तांश्चण्डप्रमुखान्दृष्ट्वा निबद्धान्निगडैर्दृढैः ।
उवाच संगता दिष्ट्या वयमस्मिन्वधक्षणे ॥ १४०५ ॥
इति ब्रुवाणं शबरा निन्युस्तं चण्डिकालयम् ।
सहायैस्तैः सचिवैः सायकव्रणपीडितम् ॥ १४०६ ॥
तत्र कात्यायिनीं दृष्ट्वा स प्रणम्य निराकुलः ।
तुष्टाव विरहाक्षामः पदैरस्खलिताक्षरैः ॥ १४०७ ॥
जय देवि नमश्चन्द्रचूडाचूडाशशित्विषा ।
संपूर्यमाणपादाम्बुप्रवृद्धनखचन्द्रिके ॥ १४०८ ॥

इत्यादि पार्वतीं स्तुत्वा स्थिते तस्मिन्नसंभ्रमे।
हन्तुं पुलिन्दराजस्तान्विन्ध्यकेतुः समाययौ॥ १४०९॥
निर्विकारं तमालक्ष्य स तत्र निधनक्षणे।
हा धिङ् नः स्वामितनुभूरयमित्याह संभ्रमात्॥ १४१०॥
अहमाटविको राजा महासेनेन भूभुजा।
कृतः सुन्दरसेनोऽयं पुत्रस्तस्योर्जिताशयः॥ १४११॥
इत्युक्त्वा पादयोः सास्रं राजसूनोर्निपत्य सः।
तैः सुहृद्भिः परिवृतं तं निनाय निजालयम्॥ १४१२॥
तत्र विज्ञातवृत्तेन तेन प्रणयशालिना।
पूज्यमानः स्मरन्कान्तां कंचित्कालमुवास सः॥ १४१३॥
ततः कदाचिदासीनं शबरेन्द्रं तदन्तिके।
व्यजिज्ञपत्समभ्येत्य सेनानीर्विहिताञ्जलिः॥ १४१४॥
देवादेशान्निरुद्धोऽसौ सार्थो बहुधनो वने।
संयम्य समरे जित्वा समानीतश्च तत्पतिः॥ १४१५॥
पश्चात्स्थिता तस्य कन्या हरिणीहारिलोचना।
शङ्के शशाङ्को यत्कान्त्या क्षीणः क्षीणोऽपि पूर्यते॥ १४१६॥
श्रुत्वेति भिल्लराजेन राजपुत्रमतेन सः।
दर्शयेति समादिष्टः सेनानीरानिनाय तम्॥ १४१७॥
तस्यानुगां ततो दृष्ट्वा तां सौन्दर्यसुधानदीम्।
राजपुत्रः परिज्ञाय मुमोह विरहातुरः॥ १४१८॥
मन्दारवत्यपि पुरो विलोक्य हृदयप्रियम्।
सहसा शोकहर्षाभ्यां निष्पन्देवाभवत्क्षणात्॥ १४१९॥
ततः पुलिन्दराजेन स पृष्टो दुष्टचेष्टितः।
वणिक्प्रोवाच पापेन पर्याप्तं सदृशं फलम्॥ १४२०॥
मथितो राजपुत्रोऽयं हृतेयं राजकन्यका।
स्ववेश्मनि विधास्यामि विवाहं विभवोचितम्॥ १४२१॥

१. 'स्ववेश्म' ख.

इति निश्चितसंकल्पो बद्धोऽहं भवता वने ।
प्राप्नुवन्ति कथं नाम परद्रोहरताः सुखम् ॥ १४२२ ॥
पुलिन्दराजः श्रुत्वेति हन्यतामेष दुर्मतिः ।
इत्यादिदेश सेनान्यं भृकुटीभीमविक्रमः ॥ १४२३ ॥
राजपुत्रस्ततः प्राह धनमेवास्य गृह्यताम् ।
वणिजां द्रविणं प्राणाः शरीरं तृणमेव यत् ॥ १४२४ ॥
इति सुन्दरसेनेन रक्षितः करुणाब्धिना ।
निरम्बरो वणिक्प्रायात्कृतकोलाहलः श्वभिः ॥ १४२५ ॥
ततो दिदेश संदेशं विन्ध्यकेतुर्महीभुजे ।
महासेनाय तनयप्राप्तिपीयूषनिर्भरम् ॥ १४२६ ॥
शबराधिपलेखेन[1] निषधाधिपतिस्ततः ।
विज्ञाय सुतवृत्तान्तं तदग्रे सानुगो ययौ ॥ १४२७ ॥
हंसद्वीपाधिनाथेन सहामात्यसुतैस्तथा ।
स चक्रे कुञ्जरानीकैर्वनजन्मभुवि घनागमम् ॥ १४२८ ॥
ततः सुन्दरसेनोऽपि सानुगो दयितासखः ।
समेत्य दृष्ट्वा पितरं ववन्दे साश्रुलोचनः ॥ १४२९ ॥
ततः प्रविश्य ते सर्वे पुरीं कोलाहलाकुलाम् ।
अलकां हर्षसंपूर्णामिव चक्रुर्महोत्सवम् ॥ १४३० ॥
अथोचिता विवाहश्रीर्मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
मन्दारवत्या राजेन्द्रसूनोः क्षिप्रमवर्तत ॥ १४३१ ॥
चिरं महोत्सवे तस्मिन्नानन्दामृतनिर्भरः ।
हंसद्वीपपतिः पुत्रीं परिष्वज्य पुनः पुनः ।
स्वपुरीं प्रययौ हृष्टः सानुगो वल्लभासखः ॥ १४३२ ॥
इति सुन्दरसेनेन प्राप्तान्ते सुहृदश्चिरात् ।
प्रिया च सा सुवदना नेत्रामृततरङ्गिणी ॥ १४३३ ॥

---

१. 'धूम्रविभ्रमः' ख. २. 'वाक्येन' ख.

8263

इत्येवमद्भुता धातुर्विलासकुटिला गतिः ।
युष्माकमपि संकल्पः फलिष्यति न संशयः ॥ १४३४ ॥
इति कण्वेन मुनिना कृपयैवोपवर्णिताम् ।
कथामेतां समाकर्ण्य धैर्यं वयमुपागताः ॥ १४३५ ॥
इति मन्दारवत्याख्यायिका ॥ २८ ॥

---

तृतीयो गुच्छः ।

ततो मुनीन्द्रमामन्त्र्य विलङ्घ्य विकटाटवीम् ।
बहूपवाससंतप्ताः प्राप्ता वयमिमां भुवम् ॥ १ ॥
इहाप्यस्य तरोर्भुक्त्वा फलानि फलतां गताः ।
मुक्तास्त्वद्दर्शनात्सर्वे पश्यामस्त्वामनामयम् ॥ २ ॥
व्याघ्रसेनेन कथितां कथां श्रुत्वेति विस्मितः ।
मृगाङ्कदत्तः प्रययौ नत्वा हेरम्बपादपम् ॥ ३ ॥
विन्ध्याटवीमतिक्रम्य श्रुतधिप्रमुखैः सह ।
विन्ध्यशैलं परित्यज्य तथा गन्धवतीं नदीम् ॥ ४ ॥
करवीरं समासाद्य भूतवेतालसंकुलम् ।
महाकालं प्रणम्याशु ददर्शोज्जयिनीं निशि ॥ ५ ॥
पूर्णेन्दुविहितालोकैस्तां पुरीं वीक्ष्य दुर्गमाम् ।
दुर्गयन्त्रायुधोपेतां सुभटैः परिपालिताम् ॥ ६ ॥
संकल्पैरप्यनाधृष्यामलङ्घ्यां मारुतैरपि ।
अचिन्तयत्स सचिवैस्तां शशाङ्कवतीं स्मरन् ॥ ७ ॥
राजा कन्दर्पसेनोऽयं रक्तामात्यो महाधनः ।
इयं पुरी च दुर्भेद्या नात्रोपायः प्रगल्भते ॥ ८ ॥
अयं मे विपुलः क्लेशः प्रायो निष्फलतां गतः ।
अधन्यैः प्राप्यते नाम सा शशाङ्कवती कथम् ॥ ९ ॥

---

१. 'श्रुत्वा कथां संगमदत्तामाश्रितास्मो धनैर्वयम्' ख. २. 'ता मनोगताम्' ख.

[1]इति ध्यात्वा नृपसुतः स्मरशोकाकुलोऽभवत् ।
ततः सस्मार वेतालं तत्र विक्रमकेसरी ॥ १० ॥
[उपस्थितः स वै ध्यातः किं करोमीत्यभाषत ।
कथयामास च पुनः कथमाश्चर्यशालिनीम् ॥ ११ ॥
सखे कन्दर्पनामाहं विप्रो रत्नपु……… ।
प्रावृषेण्यघनश्यामे काले यातो महाटवीम् ॥ १२ ॥
तत्राथ मतिचक्रेण केलिसङ्केतमानिना ।
स प्रासादं विलोक्यैव नीतोऽहं व्योमगामिना ॥ १३ ॥
क्वचिद्द्विजालयोपान्ते मां विधाय गतास्तथा ।
देवीषु द्विजकन्यायास्तत्रोद्वाहमहोत्सवे ॥ १४ ॥
लग्ने पूर्वांशके प्राप्ते वरे दैवाङ्गनागते ।
सद्यो विभूषणजुषे मह्यं कन्यां ददुर्द्विजाः ॥ १५ ॥
अहं स मानसां नाम वामवापं मनोभुवः ।
हरनेत्राग्निदग्धस्य निर्वापणनदीमिव ॥ १६ ॥
तया प्रणयशालिन्या यावत्प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिम् ।
समेत्य मतिचक्रेण नीतस्तावद्विहायसा ॥ १७ ॥
द्वितीये देवताचक्रे व्योमभाष्येऽथ तत्पुरः ।
संप्रवृत्ते च तद्युद्धे पतितोऽहं त्वदन्तिकात् ॥ १८ ॥
न जाने चन्द्रवदना सा क्वास्ते का च भूरियम् ।
इत्युक्त्वा बाष्पसंपूर्णलोचनस्तं मुहुर्मुहुः ।
समाश्वास्य ययौ भ्रातस्तेनैव सहितः शनैः ॥ १९ ॥
ततो दूरतरं गत्वा मीनान्दहदश्रुजनैः ।
भिन्निष्कान्महाकायान्निर्गतान्तौ वराङ्गनाम् ॥ २० ॥
संत्रासविह्वलां बालां तां दृष्ट्वा हरिणेक्षणाम् ।
प्रत्यभिज्ञाय कन्दर्पः पप्रच्छाशु सुमानसाम् ॥ २१ ॥
किमिदं चन्द्रवदने स्मतुल्यं विचेष्टितम् ।

१. कोष्ठान्तर्गतस्य पाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

इति पृष्टावदद्बाला कन्दर्पं सा विलज्जिता ॥ २२ ॥
अयि त्वयि हृते नाथ तदा तैः खेचरैर्गणैः ।
इयं विरहदुःखार्ता निमग्ना वाहिनीजले ॥ २३ ॥
निगीर्णा तेन मत्स्येन ततः केनाद्य मोचिता ।
कथं वेत्ति न जानेऽहं प्रमाणमधुना भवान् ॥ २४ ॥
इति श्रुत्वैव सोत्कण्ठां कण्ठे जग्राह तां प्रियाम् ।
कन्दर्प इव कन्दर्पो विललास रतिं········ ॥ २५ ॥
सुमानसायास्तद्देशनिवासी मातुलो द्विजः ।
यक्षस्वामी निनायाशु हृष्टस्तां स्वगृहं ततः ॥ २६ ॥
दयितासंगतं दृष्ट्वा कन्दर्पं तत्र केसटः ।
विश्वस्य तां रूपवतीं सस्मार विरहातुरः ॥ २७ ॥
यज्ञस्वामी तमालोक्य वियोगं त्वङ्गतापितम् ।
उवाच मा कृथाः शोकमचिरात्प्राप्स्यसि प्रियाम् ॥ २८ ॥
अभूच्चण्डपुरे विप्रः सोमस्वामीति विश्रुतम् ।
बभूव तनया तस्य दक्षा कमललोचना ॥ २९ ॥
दृष्टिबद्धानुरागेव सा सौन्दर्यविशेषकम् ।
कुसुमायुधनामानं द्विजपुत्रमचिन्तयत् ॥ ३० ॥
सा तं सखीमुखेनाह मामद्यैव निशामुखे ।
तयान्यथाह तातेन वितीर्णा·········तद्वशा ॥ ३१ ॥
इत्यर्थितस्तया हृष्टो मित्रमध्वतर्याश्रुतम् ।
स विसृज्य जहाराशु गूढां कमललोचनाम् ॥ ३२ ॥
अविनीताभिधानोऽथ नीत्वा तां स्तबकस्तनीम् ।
मित्रद्रोहोद्यतः प्राह तां मन्मथशराहताम् ॥ ३३ ॥
भज मामनवद्याङ्गि विक्रीतं कुसुमायुधम् ।
महाकुलमाश्रित्य स सर्वत्र प्रगल्भते ॥ ३४ ॥
इति सा सहसैवोक्ता तेन················ ।
प्रत्युवाच प्राह को दोषस्त्वं ममाप्यधिकः प्रियः ॥ ३५ ॥

किंतूचितविधानेन त्वयोद्वाहमहं भजे ।
आनयोत्सवसामग्रीं त्वं विक्रीयाङ्गुलीयकम् ॥ ३६ ॥
इति श्रुत्वा गते तस्मिंस्ततः कमललोचना ।
विवेश त्रासात्स्वधिया मालाकारनिवेशनम् ॥ ३७ ॥
सोऽपि प्रतिनिवृत्तोऽस्य तामदृष्ट्वा विषण्णधीः ।
कुसुमायुधमभ्येत्य सानायातेत्यभाषत ॥ ३८ ॥
ततो विरहसंतप्तो दुःखितः कुसुमायुधः ।
बभ्राम विपुलोच्छ्वासो विवशेनेव वञ्चितः(?) ॥ ३९ ॥
ततः कदाचिदुद्याने मालाकारगृहान्तिके ।
तां कान्तां प्रत्यभिज्ञाय कृतोद्वाहो मुदं ययौ ॥ ४० ॥
स तां रतिमिव प्राप्य प्रहृष्टः कुसुमायुधः ।
नवसंभोगसाम्राज्यं मेने लीलावतीसखः ॥ ४१ ॥
इति कुसुमायुधाख्यायिका ॥ २९ ॥
त्वमप्येवं रूपवतीमवाप्स्यसि सखीप्रियाम् ।
यक्षस्वामी निगद्येति सान्त्वयामास केसटम् ॥ ४२ ॥
ततः सुमानसा तौ च दैवात्कन्दर्पकेसटौ ।
स्वपुरं प्रस्थिता गन्तुं गजेन्द्रं ददृशुः पथि ॥ ४३ ॥
तद्भयाद्विप्रयोगोऽभून्मिथस्तेषां तदा वने ।
अत्यन्तमुपलेभ्यो हि बहुदुःखो भवाम्बुधिः ॥ ४४ ॥
केसटोऽप्यथ संप्राप्य शोचन्वाराणसीं शनैः ।
कन्दर्पं प्राप्य कालेन विरहक्षामविग्रहम् ॥ ४५ ॥
सुमानसामिर्देवीभिः कन्दर्पः कृपया वनात् ।
···न्यरत्नपुरे तामिर्भर्तुः कुलगृहे सतीम् ॥ ४६ ॥
रत्ना····नगरीं नाम ज्येष्ठां कन्दर्पवल्लभाम् ।
तद्वियोगानलाक्रान्तां वह्निपाते समुद्यताम् ॥ ४७ ॥
सुमानसा निजकथां कथयित्वा प्रियो मतः ।
ध्रुवं समेष्यतीत्युक्त्वा तां सपत्नीमवारयत् ॥ ४८ ॥

अत्रान्तरे रूपवती तदा वृद्धद्विजालये ।
कुरूपं वीक्ष्य तत्पुत्रं पितुरेवाययौ गृहम् ॥ ४९ ॥
कालेन तत्र विरहक्षामौ दैवादथागतौ ।
कन्दर्पकेसटौ दृष्ट्वा सुधार्द्रेवाभवज्झषात् ॥ ५० ॥
प्रत्यभिज्ञाय तां कान्तां केसटः प्राप्य सुन्दरीम् ।
तस्यावाश्वासयंस्तत्र कन्दर्पं विरहातुरम् ॥ ५१ ॥
रूपवत्या स ते सख्याः परिणीयैव केसटः ।
लेखहारकसंदेशाज्ज्ञात्वा रत्नपुरे स्थिताम् ॥ ५२ ॥
सुमानसां विरहिणीं तां कन्दर्पपितुर्गृहे ।
तूर्णं तत्सहितः प्रायात्केसटो वल्लभासखः ॥ ५३ ॥
कन्दर्पः स्वगृहं प्राप्य समासाद्य सुमानसाम् ।
तां चानङ्गवतीं कान्तां विललास सुहृद्वर(?) ॥ ५४ ॥
प्रियाविरहितो गत्वा ताम्रलिप्तां च केसटः ।
विजहार स्वभवने संस्मरन्विरहानलम् ॥ ५५ ॥

इति केसटाख्यायिका ॥ ३० ॥

इति केसटकन्दर्पौ प्रापतुर्वल्लभौ पुरा ।
वणिक्पुत्र त्वमप्येवं ध्रुवं जायामवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥
मयापि स्ववधूः पूर्वं प्रयाता पञ्चतामपि ।
कपोलिकेन मायेन हिंसिता मन्त्रशक्तितः ॥ ५७ ॥
हृत्वा काम्पिल्कं दूरात्सजीवा सा पुराहृता ।
जीवतां संगमो नाम मन्येऽहं किल जायते ॥ ५८ ॥
इत्यभ्यागतविप्रेण सुचिरं परिसान्त्वितः ।
*श्रान्तो मही महीपाल त्वामहं शरणं गतः* ॥ ५९ ॥
राजा विषमशीलस्तन्निशम्य वणिजो वचः ।
गजेन दत्तां तां कान्तामदापयत्सुतामिव ॥ ६० ॥
वणिग्भार्यां समादाय याते वणिजि भूपतिः ।
कलिङ्गसेनासंभार्ये कलिङ्गेशं समभ्ययात् ॥ ६१ ॥

तत्तो विजित्य समरे कलिङ्गनृपतिं विभुः ।
राजा श्रीविक्रमादित्यः स्वीं''''प्राप''''''''श्रियम् ॥ ६२ ॥

इति कलिङ्गसेनालाभवर्णनम् ॥ ३१ ॥

इत्थं देवी प्रणयिना लब्ध्वा स्वं जगतीभुजा ।
तं पूर्वसाधितं प्राह सैरं विक्रमकेसरी ॥ ६३ ॥]
कन्दर्पसेनतनयां गुप्तान्त पुरसुन्दरीम् ।
सखे मृगाङ्कदत्ताय खेचर क्षिप्रमानय ॥ ६४ ॥
श्रुत्वेत्युवाच वेतालो महाकालाभिपालिते ।
देशे न प्रभवामोऽस्मिन्वयं तद्वरदुर्जये ॥ ६५ ॥
इति वादिनि वेताले तद्विसृष्टे तिरोहिते ।
मृगाङ्कदत्तः सचिवैः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ६६ ॥
स्वयं ततो महामात्यो गत्वा विन्ध्यनिवासिनः ।
दूरं दुर्गपिशाचस्य मातङ्गाधिपतेः पुरम् ॥ ६७ ॥
संगम्य मायाबटुना विधाय बलसमहम् ।
ततः किरातमानाय्य सुहृदं शक्तिरक्षितम् ॥ ६८ ॥
दशयोजनविस्तारकटकं बन्धुबन्धुरः ।
पूर्वं ययाचे दूतेन सुतामुज्जयिनीपतिम् ॥ ६९ ॥
तं सामविमुखं ज्ञात्वा दृप्तं समरसमुखम् ।
जेतुं राजसुतः सैन्यैः प्रतस्थे सागरोपमैः ॥ ७० ॥
अवाप्यावन्तिविषयं विष्टम्योज्जयिनीं ततः ।
मृगाङ्कदत्तः शुशुभे लङ्कामिव रघूद्वहः ॥ ७१ ॥
कोपात्कन्दर्पसेनेऽथ निर्गते युद्धदुर्मदे ।
ररास भूमिपालानां समरारम्भदुन्दुभिः ॥ ७२ ॥
करालकरवालोर्मिभीषणे रणसागरे ।
सावेगं शूरमकरा वाहिन्यां विविशुर्मिथः ॥ ७३ ॥
ततो वीरशिरःपद्मैराकीर्णामृद्गसुंधरा ।
सरसीवाप्तकल्लोला गजक्रीडाभिपातिता ॥ ७४ ॥

स संप्रहारस्तुमुलो बभूव सुभटैः कृतः ।
लीलामहोत्सवो मृत्योरच्छिन्नो दिनपञ्चकम् ॥ ७५ ॥
ततः श्रुतधिरभ्येत्य गूढं वीक्ष्य रिपोः पुरीम् ।
मृगाङ्कदत्तमवदन्नयोपायविचक्षणः ॥ ७६ ॥
अस्मिन्प्रवीरसंहारे जयो युद्धे ससंशयः ।
तस्माद्युक्तिमुपाश्रित्य यत्नः सिद्धौ विधीयताम् ॥ ७७ ॥
मया प्रच्छन्नवेषेण विचितेयं रिपोः पुरी ।
दृष्टा च प्रमदोद्याने तां शशाङ्कवतीं स्वयम् ।
हृत्वा तामेव गच्छामस्तुरङ्गैः शीघ्रगामिभिः ॥ ७८ ॥
मृगाङ्कदत्तः श्रुत्वेति तथेति प्राह सादरः ।
धीमानेकः सहायोऽस्ति बहूनामुदयश्रिये ॥ ७९ ॥
अत्रान्तरे सखीवाक्यात्स्मररूपं नृपात्मजम् ।
श्रुत्वा तं राजतनया बभूव मदनातुरा ॥ ८० ॥
सा मन्मथव्यथाक्रान्ता गत्वा गौरीवनं निजम् ।
निशि चन्द्रोदये चक्रे रमणाभिमुखं मनः ॥ ८१ ॥
स्वैरं मृगाङ्कदत्तोऽथ सचिवैः सह तां भुवम् ।
समेत्यालोकयामास सोत्कण्ठस्तां मृगीदृशम् ॥ ८२ ॥
वक्त्रौपम्येन शशिनः सौन्दर्येण मनोभुवः ।
कान्त्या पुरसुधायाश्च सृजन्तीमिव जीवितम् ॥ ८३ ॥
कटाक्षशेफलापातवशीकृतजगत्त्रयम् ।
आनाय्यासितचापस्य कामिन्येव जयश्रियम् ॥ ८४ ॥
बालां प्रवाललावण्यसोदरैरधरांशुभिः ।
रागदीक्षामिव नवां दिशन्तीमनिशं दिशाम् ॥ ८५ ॥
तन्वीं स्तनस्तबकिनीमारक्तकरपल्लवाम् ।
श्यामां यौवनदर्पेण वसन्तेनेव भूषिताम् ॥ ८६ ॥

---

१. 'भग्नोराय' ख. २. 'चापकलापाश्रयवशी' ख.

विलोकितैः कृष्णसारैः सभृङ्गैरिव केतकैः ।
सलीलरलहारैर्वा पूजयन्तीं दिगन्तरम् ॥ ८७ ॥
वहन्तीं त्रिवलीकूपे श्यामलां रोमवल्लरीम् ।
निजवक्त्रशशाङ्कस्य लक्ष्मरेखामिव च्युताम् ॥ ८८ ॥
रतिपर्यङ्कपट्टेन स्मरसिंहासनेन च ।
मदशैलनितम्बेन नितम्बेन विराजिताम् ॥ ८९ ॥
तामथ स्मरसंतापात्पाशं बद्धुं समुद्यताम् ।
अदृश्या पार्वती प्राह पुत्रि मा साहसं कृथाः ॥ ९० ॥
आसन्न एव ते भर्ता धन्यः प्राग्जन्मवल्लभः ।
इति गौर्या कृताश्वासां राजपुत्रो जगाद ताम् ॥ ९१ ॥
अयि बाले कुरङ्गाक्षि मदनोद्यानचन्द्रिके ।
दृशा विकिर पीयूषं यातु चन्द्रो विलज्जताम् ॥ ९२ ॥
श्रुत्वेति लज्जिता तन्वी चरणेन लिलेख सा ।
महीं साचीकृतापाङ्गी वीक्ष्यमाणा नृपात्मजम् ॥ ९३ ॥
वशे तवैव मत्प्राणा वदन्तीमिव सुन्दरीम् ।
तां जहार ततः सोऽश्वैः संकल्पैरिव शीघ्रगैः ॥ ९४ ॥
मायावद्दुपुरं प्राप्य सुहृद्भिः सहितोऽथ सः ।
पुलिन्दसुन्दरीवृन्दैर्हर्षादालोकितोऽविशत् ॥ ९५ ॥
कन्दर्पसेनस्तेनाथ विज्ञाय तनयां हृताम् ।
निष्कारणरणायासं वारयामास मन्दधीः ॥ ९६ ॥
ततः प्रतिनिवृत्तास्ते किरातेन्द्रमुखा नृपाः ।
मृगाङ्कदत्तमासाद्य ननन्दुर्जयशालिनः ॥ ९७ ॥
अथायोध्याधिनाथाय पित्रे भीमपराक्रमम् ।
स प्राहिणोत्कथयितुं निजवृत्तान्तमादरात् ॥ ९८ ॥
यदैव मन्त्रिवचसा तेन निर्वासितः पुरात् ।
ततस्तदैव सोऽज्ञासीन्मिथ्यादूषितमेव तम् ॥ ९९ ॥

---

1. 'साहिलं' ख. २. 'तन्वी तद्गीवा चर' ख.

स निगृह्य महामात्यं त्यक्त्वा राज्यसुखश्रियम् ।
नन्दिग्रामे स्थितिं चक्रे पुत्रसंदर्शनाशया ॥ १०० ॥
सोऽथ कालेन विज्ञाय सूनोः सुहृदमागतम् ।
पप्रच्छ हृष्टस्तद्वृत्तं सर्वं भीमपराक्रमम् ॥ १०१ ॥
धीमानमरदत्तेन राज्ञा पृष्टो जगाद सः ।
मृगाङ्कदत्तचरितं संसारे विपुलाद्भुतम् ॥ १०२ ॥
तदाकर्ण्य सहामात्यः स पुनः प्राप्य जीवितम् ।
राजा द्रष्टुं ययौ पुत्रं गजवाजिरथाकुलः ॥ १०३ ॥
मायावटुपुरं प्राप्य संप्राप्तविजयं सुतम् ।
शशाङ्कवत्या सहितं दृष्ट्वाश्चर्यमयोऽभवत् ॥ १०४ ॥
मृगाङ्कदत्तो जनकं प्रणम्य सह राजभिः ।
स्थित्वा तत्रोत्सवव्यग्रः कंचित्कालं प्रियासखः ॥ १०५ ॥
अयोध्यां प्रययौ हृष्टो विजयी सचिवैः सह ।
पुरा कपीन्द्रसहितः सीतां प्राप्येव राघवः ॥ १०६ ॥
राजधानीं प्रविश्याथ पूजयन्निखिलान्नृपान् ।
प्रणम्य मान्यान्विदुषो भेजे स विपुलोत्सवम् ॥ १०७ ॥
तैरेकादशभिर्मित्रैः श्रुताधिप्रमुखैर्बभौ ।
दिवाकर इव श्रीमान्द्वादशात्मा नृपात्मजः ॥ १०८ ॥
ततः कन्दर्पसेनेन विसृष्टस्तनयः स्वयम् ।
सुखेणाभ्याययौ कर्तुं स्वसुः परिणयोत्सवम् ॥ १०९ ॥
सुवर्णरत्नशकटैर्गजेन्द्ररथवाजिभिः ।
स राजपुत्रो विदधे विपुलारम्भमुत्सवम् ॥ ११० ॥
निर्वर्तितविवाहेऽस्य गौर्येव शशिशेखरः ।
शशाङ्कवत्या विहितो मृगाङ्कः पूर्णमङ्गलः ॥ १११ ॥
ततो महोत्सवोत्साहसुभगां सोऽभजत्स्थितिम् ।
माऽभानवसंभोगसंभावितमनोभवः ॥ ११२ ॥

तमामन्त्र्य प्रयातेषु पूजितेषु नृपेष्वथ ।
श्रीमानमरदत्तोऽपि संक्रामय्यात्मजे श्रियम् ॥ ११३ ॥
देव्या सह ययौ शंभोः प्रियां वाराणसीं पुरीम् ।
वैराग्यलक्ष्मीपर्यन्ते महतामेव जायते ॥ ११४ ॥
मृगाङ्कदत्तो निखिलां वीरो जित्वा वसुंधराम् ।
प्रियाविलासरसिकः सार्वभौमोऽभवन्नृपः ॥ ११५ ॥
सा शशाङ्कवती श्यामा स्फुरत्तरलतारका ।
तस्य राजचकोरस्य बभूवानन्दनिर्भरा ॥ ११६ ॥
एवं मृगाङ्कदत्तेन प्राप्ता त्रैलोक्यसुन्दरी ।
त्वमपि प्राप्स्यसि क्षिप्रं रम्यां मदनमञ्चुकाम् ॥ ११७ ॥
इति निशम्य पिशङ्गजटोदितां विपुलकौतुकहर्षमयीं कथाम् ।
प्रियतमापरिरम्भमनोरथे हृदि बबन्ध धृतिं नरवाहनः ॥ ११८ ॥

इति शशाङ्कवतीविवाहः ॥ २१ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां शशाङ्कवतीलम्बको नाम नवमः समाप्तः ।

---

## विषमशीललम्बकः ।

### प्रथमो गुच्छः ।

गौर्या द्यूतजिता नीता कर्णे केतकिपत्रताम् ।
शांभवी वः शशिकला भूयादानन्दसंपदे ॥ १ ॥
ततः प्रिया वियोगाग्निसंतापिततनुर्वने ।
भ्राम्यन्कण्वमुनेः प्रायादाश्रमं नरवाहनः ॥ २ ॥
मनःप्रसादजनने प्रशान्ताशेषविप्लवे ।
विवेक इव संतोषफले तस्मिंस्तपोवने ॥ ३ ॥
प्रणम्य तेजसां राशिं सहस्रांशुमिवापरम् ।
कण्वं दिव्यदृशा तेन तस्य चोपासितः क्षणम् ॥ ४ ॥
तं मुनीन्द्रस्ततः प्राह द्रुहिणस्पर्धया पुनः ।
कुर्वन्विमानं हंसालीमिव दन्तांशुसंचयैः ॥ ५ ॥
राजसूनो भय धृतिं वल्लभां तामवाप्स्यसि ।
संयोगान्ता भवन्त्येव वियोगाः पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥

विधातुरानुकूल्येन प्राप्यन्ते हारिता अपि।
वने धनसुहृद्बन्धुदयिताराजसंपदः ॥ ७ ॥
पुरा कैलासशिखरासीनः शीतांशुशेखरः।
समभ्येत्य जितैर्देवैः शतक्रतुपुरोगमैः ॥ ८ ॥
पुरारिर्निहितैर्देवद्वैर्दितिजदस्युभिः।
अवतीर्णैर्महाम्लेच्छैः स्वस्था देवास्तृणीकृताः ॥ ९ ॥
प्रमाणमत्र भगवानिति देवगिरा हरः।
भूभारशान्त्यै प्रथमं माल्यवन्तं समादिशत् ॥ १० ॥
सोऽथ त्रिनयनादिष्टः पार्वतीवचसा क्षितौ।
उज्जयिन्या नरपतेः श्रीमतः प्राप पुत्रताम् ॥ ११ ॥
राज्ञो महेन्द्रादित्यस्य स्वप्ने शर्वेण सूचितः।
सोऽभवद्विक्रमादित्यस्तनयो यशसां निधिः ॥ १२ ॥
नाम्ना विषमशीलोऽसौ द्वितीयेनापि विश्रुतः।
सर्वशास्त्रास्त्रविद्यानां लेभे भाजनतां विभुः ॥ १३ ॥
तस्मै महीपतिर्दत्त्वा श्रियं भूपतिविश्रुताम्।
ययौ वाराणसीं धीमान्कृतकृत्यः स्त्रिया सह ॥ १४ ॥
राजा विषमशीलोऽथ जनके प्रशमं श्रिते।
शशास वसुधां धन्वी म्लेच्छोच्छादनदीक्षितः ॥ १५ ॥
कुलक्रमागतस्तस्य बभूव विपुलाशयः।
रुद्रायुधः प्रतीहारः सचिवश्च महामतिः ॥ १६ ॥
स कदाचिद्गजपटामौलिलालितशासनः।
*समानीतः समभ्येत्य विज्ञप्तो मन्त्रिणा पुरः ॥ १७ ॥*
योऽसावनङ्गदेवाख्यो विसृष्टो दक्षिणापथम्।
देवेन सोऽयमायातः स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति ॥ १८ ॥
इत्युक्त्वा नृपतेराज्ञां प्राप्य रूपमवेशयत्।
स द्वितीयं वचो दूतं दर्पविस्फारिलोचनम् ॥ १९ ॥

स प्रणम्य महीपालं हेमसिंहासनस्थितम् ।
सुमेरुचूडामणितां प्रयातमिव भास्करम् ॥ २० ॥
विजिज्ञपदीक्षमाणः कौतुकाद्वसुधाधिपम् ।
किमयं वक्ष्यतीत्यन्वत्कण्ठाङ्कुरिताशयः ॥ २१ ॥
देव दक्षिणदिग्भूपैर्युष्मच्छासनमालिका ।
किरीटकोटौ विन्यस्ता लक्ष्मीरक्षामहौषधिः ॥ २२ ॥
क्रमेणाम्बुधिमुत्तीर्य यातोऽहं सिंहलेश्वरम् ।
वीरसेनं भवद्भक्तिशीलं कुलगृहं श्रियः ॥ २३ ॥
स मां स्वच्छासनं मूर्ध्नि निधायोत्फुल्ललोचनः ।
प्राहास्ति मम सर्वस्वं कन्यारत्नमनुत्तमम् ॥ २४ ॥
विक्रमादित्यदेवश्च रत्नानां भाजनं विभुः ।
समर्पितेयं वचसा मया तस्मै सुमध्यमा ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वा स सुतां राजा हरिणाक्षीमदर्शयत् ।
कान्तां विनयवत्यास्यामुपाख्यानं रतिश्रियः ॥ २६ ॥
कन्या नवसुधाधूतलावण्यवसुधा ततः ।
तामहं त्वत्समुचितां दृष्ट्वा जातोऽतिविस्मितः ॥ २७ ॥
तद्विवाहाहितोद्योगः सिंहलाधिपतिस्ततः ।
भवते प्राहिणोद्दूतं मयि न्यस्तं महामतिः ॥ २८ ॥
दूतेन सहितः क्षिप्रमहमारुह्य वारिधौ ।
वाहनं तीरनिकटे प्रागपश्यं द्विधागतम् ॥ २९ ॥
दोर्भ्यां दैवात्समुत्तीर्य सागरे च तटस्थितः ।
अपश्यं ललनां देव धनुर्धां चित्तजन्मनः ॥ ३० ॥
हेमरत्नविचित्राङ्गः सारङ्गस्तत्पुरो मया ।
दृष्टश्चिरादविज्ञातो मारीचहरिणः पुनः ॥ ३१ ॥
ताभ्यां कृतकरालम्बो नीतः काममहं भुवम् ।
दूतेन सहितस्तेन दिव्योद्याने विभूषिता ॥ ३२ ॥

तत्र दिव्यसरस्तीरे हरार्चनरता मया ।
दृष्टा वरवधूः कामा कन्या तरुणमञ्जरी ॥ ३३ ॥
सागरासलिलोद्भूतं पूजयित्वा महेश्वरम् ।
दासीसहस्रानुगता सुन्दरी गन्तुमुद्ययौ ॥ ३४ ॥
तस्यां गतायां तद्दासः केयमित्यतिकौतुकात् ।
मया यौवनदर्पान्धाः पृष्टा नो किंचिदूचिरे ॥ ३५ ॥
अभीष्टदेवताद्रोहे मुहुस्ताः शापिता अपि ।
अवधीर्यैव सावज्ञाद्विशालाः प्रययुः शनैः ॥ ३६ ॥
ततः श्रीविक्रमादित्यपादाब्जादथ शापिताः ।
झटित्येवासकम्पास्ता निवृत्ता गतिविभ्रमात् ॥ ३७ ॥
अथ प्रह्वाः समभ्येत्य कीर्तितं त्वां प्रणम्य सा ।
हृष्टा वराङ्गना प्राह मां स्तनाग्रकृताञ्जलिः ॥ ३८ ॥
सत्यं श्रीविक्रमादित्यो जयति त्रिजगज्जयी ।
यत्प्रसादादहं मुक्ता तस्मादपि महाभयात् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वेत्यहं तामपृच्छं कौतुकाविष्टमानसः ।
कथं मत्स्वामिना भद्रे रक्षितासीति सादरम् ॥ ४० ॥
सावदच्छृणु सर्वाशा योषा त्रिदशशाखिनाम् ।
यथा विषमशीलेन रक्षितास्मीति सादरम् ॥ ४१ ॥
अस्ति वैश्रवणभ्राता माणिभद्र इति श्रुतः ।
तस्याहं वल्लभा भार्या यक्षी मदनमञ्जरी ॥ ४२ ॥
तेनाहं सह कान्तेन कदाचित्केलिलालिता ।
रममाणा महीं भ्रान्त्वा विविधोद्यानमालिनी ॥ ४३ ॥
अथोज्जयिन्यां पुःपुः(?) किलासोपवने वने ।
प्रियेणालिङ्गिता गाढं सुप्ताहं मदविह्वला ॥ ४४ ॥
अदूरवर्तिना स्वैरं तत्स्मशाननिवासिना ।
चण्डकापालिकाख्येन दृष्टा कङ्कणमालिता ॥ ४५ ॥

मां दृष्ट्वा मन्त्रसिद्धोऽपि स निश्चेष्ट इवाभवत् ।
वृद्धोऽप्यत्यन्तवृद्धेन मन्मथेन विनिर्जितः ॥ ४६ ॥

तथा विषविपाकेषु विषयेष्वथ चेतसः ।
अपथ्येष्वातुरस्येव नाभिलाषः प्रशाम्यति ॥ ४७ ॥

ततो मयि प्रयातायां भर्त्रा सह निजां पुरीम् ।
खण्डकापालिकश्चक्रे मदर्थं मन्त्रसाधनम् ॥ ४८ ॥

तस्याप्रतिहतैर्मन्त्रैरहं सत्रासकम्पिता ।
कृष्यमाणा भुजङ्गीव भर्तारं शरणं गता ॥ ४९ ॥

सोऽप्यशक्तः परित्रातुं मां विषण्णमुखाम्बुजाम् ।
न्यवेदयत्कुबेराय कापालिकविचेष्टितम् ॥ ५० ॥

ततोऽब्रवीद्वैश्रवणो नाहं तद्वारणे क्षमः ।
किमसाध्यं स्फुरद्धाम्नां मन्त्राणां वीर्यशालिनाम् ॥ ५१ ॥

धनदेनापि संत्यक्तो मद्भर्ता शरणं ययौ ।
ब्रह्माणं सोऽपि तं प्राह दुर्जयोऽयं महाब्रवीत् ॥ ५२ ॥

किं तु श्रीविक्रमादित्यः समर्थस्तद्विनाशने ।
भयकाले भवद्भार्या तमाक्रन्दतु भूमिपम् ॥ ५३ ॥

इति प्रजापतिवचः श्रुत्वा प्राप्ते स्वमन्दिरम् ।
माणिभद्रे ततस्तेन कृष्टाहं मतिना निशि ॥ ५४ ॥

मन्त्रशक्तिसमाहूता श्मशानं प्राप्य भीषणम् ।
खण्डकापालिकं घोरमपश्यं कृतमण्डलम् ॥ ५५ ॥

प्रेतचक्रमहाकुण्डे क्षिपन्तं सर्षपाहुतीः ।
तं दृष्ट्वा ककुभः सर्वा ज्वालालोला व्यलोकयम् ॥ ५६ ॥

शफरी जालवद्देव तत्राहं तद्भयाकुला ।
अभवं मान्यवत्यक्ता कम्पातङ्कतरङ्गिता ॥ ५७ ॥

देव श्रीविक्रमादित्य राजन्विषमशील माम् ।
त्रायस्वाशरणां बालामिति प्रारं ततोऽभ्यधाम् ॥ ५८ ॥

अस्मिन्नवसरे सोऽपि वीरचर्याविनिर्गतः ।
विलोलकुण्डलः खड्गी राजा राजीवलोचनः ॥ ५९ ॥
उत्साह इव साकारः प्रत्यक्ष इव विक्रमः ।
गम्भीरमधुरोदारदृशा निर्वापयन्निव ॥ ६० ॥
मां समाश्वास्य दलयंस्तमो दन्तांशुसंचयैः ।
आदिदेशाशु पुरतो वेतालं तद्विनिग्रहे ॥ ६१ ॥
स तेनाग्निशिखाख्येन वेतालेनाशु घट्टितः ।
खण्डकापालिकः प्राणांस्तत्याज व्याजबाधकः ॥ ६२ ॥
राजधानीं गते राज्ञि भूतवेतालमण्डली ।
खण्डकापालिकं मोक्तुमाययौ हठनिर्भया ॥ ६३ ॥
ततो यमशिखो नाम वेतालो नेतुमुद्ययौ ।
तत्सर्वं तत्प्रकोपाच्च तारमग्निशिखोऽवदत् ॥ ६४ ॥
मा मा त्वमेक एवैनं नय दुर्नयभाजनम् ।
विक्रमादित्यपादाब्जैः शापितोऽसि मया सखे ॥ ६५ ॥
श्रुत्वेति स्थगितः सोऽथ प्रभावं पृथिवीपतेः ।
पप्रच्छाग्निशिखं तस्य कौतुकाकुलिताशयः ॥ ६६ ॥
सोऽवदड्डाकिनीकाख्यो निशीथे धूतकृत्पुरा ।
विक्रीणानो महामांसं श्मशानमिममागतः ॥ ६७ ॥
तन्मद्यमर्थनसो(?)थ ददौ निष्कम्पमानसः ।
रूपं बलं च सप्ताहं गृहीत्वा मम संविदा ॥ ६८ ॥
तत्कारणं मया पृष्टः सोऽवदत्कितवाग्रणीः ।
अस्म्यहं विजितो धूर्तैर्धूसराङ्गो दिगम्बरः ॥ ६९ ॥
देहीति वादिनां मध्ये वेद्यो धूतकृतामहम् ।
शिलीमूलः स्थितो मूको योगीवानिमिषेक्षणः ॥ ७० ॥
उत्कुण्ठितश्मश्रुकेशस्त्रैलताभिः समावृतः ।
स्पर्शेनाम्बुना सिक्तैर्निर्मितैः पूर्वमेवितैः ॥ ७१ ॥

बद्धपत्रासनिःस्पन्दः क्षिप्तः कूपे बलादहम् ।
नरकायासदुःखानामिव संजातमन्दिरे ॥ ७२ ॥
तत्र दृष्टौ मया घोरविग्रहौ ब्रह्मराक्षसौ ।
तावूचतुर्मामालोक्य मद्वृत्तान्तं निशम्य च ॥ ७३ ॥
आवाभ्यां वणिजः पूर्वं स्वमन्त्रेण प्रिये सुते ।
तुल्यं गृहीते निर्भुग्नमग्नौपयिवलक्रमे ॥ ७४ ॥
ततो विषमशीलस्य दृष्टैव पृथिवीपतेः ।
पतितावन्धकूपेऽस्मिन्नावां संत्यक्तकन्यकौ ॥ ७५ ॥
संवत्सरोऽवधिस्तेन निर्दिष्टो नौ गतश्च सः ।
सप्ताहशेषस्तत्त्वमस्मद्भोजनमानय ।
दत्ते सप्ताहमावाभ्यां भोजने मोक्ष्यसे भयात् ॥ ७६ ॥
श्रुत्वेति प्रतिपन्नं मां क्षुद्विनाशो मुदान्वितम् ।
तस्मादुज्जहतुः कूपात्ततोऽहं त्वामुपस्थितः ॥ ७७ ॥
त्वद्रूपत्वद्बलेनैव ताभ्यां भोजनमीप्सितम् ।
दत्त्वाभ्येत्य प्रदास्यामि बलं रूपं च ते निजम् ॥ ७८ ॥
इत्युक्त्वा मद्बलाकारो गत्वा राक्षसयोर्ददौ ।
स्वयूथ्यानेव निघ्नन्सप्ताहं तूर्णभोजनम् ॥ ७९ ॥
वद्गत्वा स समभ्येत्य प्रादाद्रूपं बलं च मे ।
पुनश्च याचितस्ताभ्यां भोजनं तर्जनक्रमैः ।
प्रतार्य मां कौतुकिनं नीत्वा कूपे ततोऽक्षिपत् ॥ ८० ॥
राक्षसाभ्यामहं तत्र गृहीतो भुजपञ्जरे ।
अकार्षं सुचिरं युद्धं कम्पिताखिलभूतलम् ॥ ८१ ॥
ततोऽहं तौ ददौ युद्धश्रमाद्विश्रान्तविग्रहः ।
कथयित्वा निजं वृत्तं स्थितो रुद्धाननः क्षणम् ॥ ८२ ॥
अथानवीत्स्मितमुखस्तत्रैको ब्रह्मराक्षसः ।
अहो नु धूर्तकारेण मायया वञ्चिता वयम् ॥ ८३ ॥

एवंविधा भवन्त्येव कितवाः साहसव्रताः।
टेण्टाकरालवृत्तान्तमत्रैव कथयाम्यहम् ॥ ८४ ॥
अभूट्टेण्टाकरालाख्यो द्यूतकृद्वञ्चनावधिः।
सदा महाकालगृहे रजन्यां स स्वयं किल ॥ ८५ ॥
तत्र दीपघृताभ्यक्तैरपूपैः कृतभोजनः।
महाकालानुगान्प्राह प्रतिमादीपसंस्थितान् ॥ ८६ ॥
अस्यां दीर्घत्रियामायां द्यूतक्रीडा समाययौ।
इत्युक्त्वा पञ्च चिक्षेप पुनश्चित्रा वराटिकाः ॥ ८७ ॥
ताभिः सकल्पनावाग्भिर्जितो यक्ष इति क्षणात्।
प्राह हेमसहस्रं च निर्बन्धात्तमयाचत ॥ ८८ ॥
निरुत्तरं समालोक्य कूपे त्वां प्रक्षिपाम्यहम्।
इत्युक्त्वा भयसंत्रस्तः सुवर्णं तमदापयत् ॥ ८९ ॥
ततः क्रमेण तेनैव त्रासयन्सततं गिरः।
प्रतिमागणवेतालानजयत्काञ्चनप्रदान् ॥ ९० ॥
ततः कदाचिद्भगवान्महाकालस्तमब्रवीत्।
पुत्र तुष्टोऽस्मि ते वीर व्रतेनानेन धीमताम् ॥ ९१ ॥
गच्छैतत्सरसस्तीर्थमत्र त्रिदशयोषितः।
क्रीडन्ति स्नातुमायातास्ताभ्यः कन्यामवाप्नुहि ॥ ९२ ॥
इति शर्वाज्ञया गत्वा दृष्टास्तास्त्रिदशाङ्गनाः।
जहार तासां वासांसि तास्तस्मै तां सुतां ददुः ॥ ९३ ॥
कन्यां कलावतीं नाम प्राप्य तां स्वर्गसुन्दरीम्।
ससन्द मत्स्योदरः स संकल्पोर्जितः ॥ ९४ ॥
पुरा पुरंदरास्थाने सा चक्रे मानुषस्थितिम्।
तेनाभवच्छक्रशापात्सुन्दरी मर्त्यसङ्गिनी ॥ ९५ ॥
कदाचिदथ सा स्वर्गनृत्ते कौतुकिनं प्रियम्।
तं निनाय सनिर्बन्धं कृत्वा कर्णोत्पलायिताम् ॥ ९६ ॥

स तत्र रम्भां नृत्यन्तीं ददर्शायतलोचनाम्।
गन्धर्वगीतानुगतां फलवाललयोर्जिताम्॥ ९७॥
ततो हासाय नृत्यन्तं छागं सुरपतेः पुरः।
अपश्यद्विपुलाकारमीश्वरा हि सितप्रियाः॥ ९८॥
गन्धर्वं मुनिशापेन तं दृष्ट्वा छागविग्रहम्।
अयं स मर्त्यश्चरतीत्यभवत्तस्य चेतसि॥ ९९॥
बहुकौतुकमालोक्य स्वर्गोद्योगमुवं गतम्।
टेण्टाकरालो दयितां शक्तो मेने ततोऽधिकम्॥ १००॥
ततस्तमेव रोमन्थदलकूर्चमजं पुनः।
आपणाग्रे सुखासीनमुज्जयिन्यां ददर्श सः॥ १०१॥
टेण्टाकरालस्तं दृष्ट्वा प्राह दर्शय मां सखे।
पुनर्नृत्यं सुरपुरे दृष्टस्त्वं हासकृन्मया॥ १०२॥
इत्युक्त्वा सावलेपं तं प्रत्युत्पानरुषा ततः।
जघान लगुडेनाजं येन सोऽभूत्सशोणितः॥ १०३॥
अथ शक्रपुरं गत्वा सुरेन्द्राय न्यवेदयत्।
धूतकारिनिकारं तं छागलः कोपकम्पितः॥ १०४॥
शापान्तमुक्त्वा मुक्तेऽथ छागे गन्धर्वतां गते।
इन्द्रः फलावतीं प्राह धिक्त्वां दुर्नयकारिणीम्॥ १०५॥
आनीतो दुर्विनीतोऽसौ त्रिदिवं मानुषस्त्वया।
तस्मादनल्पकं कालं योषा दारुमयी भव॥ १०६॥
नरसिंहाभिधानेन राज्ञा नागपुरे कृते।
सुरालये तत्र भित्तौ पुत्रिका त्वं भविष्यसि॥ १०७॥
तस्मिन्कालेन निःशेषं गते देवगृहे क्षयम्।
शापस्यान्तं समासाद्य पुनः स्वपदमेष्यसि॥ १०८॥
इति शप्ता गजमुखी दुःखिता शतमन्युना।
टेण्टाकरालमभ्येत्य सा निजं शापमभ्यधात्॥ १०९॥

शापवृत्तान्तमावेद्य तस्यां वृत्तं स्वकर्मणा।
श्रितां तां देवनिलयस्तम्भान्ते पुत्रिकाकृतिम्॥ ११०॥
छागदुःखानलाक्रान्तं स निन्दन्निजसाहसम्।
आदाय रत्ननिचयं ययौ नागपुरं जवात्॥ १११॥
कलशान्रत्नसंपूर्णान्भूमिगर्ते निधाय सः।
तस्थौ दम्भव्रतैस्तत्र प्रसिद्धिं परमां गतः॥ ११२॥
अशेषप्राणिभाषाज्ञ इति राज्ञा स पूजितः।
अदर्शयद्रत्नपूर्णं तस्मै कलशपञ्चकम्॥ ११३॥
तत्प्रत्ययात्स भूपालो मेने सर्वज्ञमेव तम्।
महेश्वरमिवाभ्येत्य सततं प्रणनाम च॥ ११४॥
कदाचिद्भूभुजा सार्धं देवायतनमेत्य सः।
दर्शनात्साश्रुनयनां दृष्ट्वा तां दारुपुत्रिकाम्॥ ११५॥
उवाच धूर्तो भूपालं शान्तं शान्तममङ्गलम्।
इमं सुरगृहं तूर्णं कणशः क्रियतामिति॥ ११६॥
तदाकर्ण्य महीपालः सामात्यस्तं ससंभ्रमः।
पप्रच्छ भगवन्ब्रूहि किमनिष्टं त्वयेक्षितम्॥ ११७॥
सोऽब्रवीद्देव नो वाच्यमेतच्छृणु तथापि ते।
आयुषा क्षितिरासन्ना स्थितेऽस्मिन्खे सुरालये॥ ११८॥
समुन्मूल्य क्षणेनैतद्विपुलं सुरमन्दिरम्।
अपरं क्रियतां राजन्नित्युक्त्वा विरराम सः॥ ११९॥
ततस्तद्वचनात्तूर्णं तमुत्पाट्य सुरालयम्।
अन्यं महीपतिश्चक्रे हेमरत्नाधिकद्युतिम्॥ १२०॥
अचिराच्छापमुक्ताय स्वर्गं प्राप्य कलावती।
विस्मिताय महेन्द्राय स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत्॥ १२१॥
पित्रा टेण्टाकराले च शापाद्यामाशु मोचिताम्।
श्रुत्वा गुरुप्रमानाप्य शक्रस्तस्मै ददौ श्रियम्॥ १२२॥

टेण्टाकरालचरितं प्रशंसामुखराननः ।
बृहस्पतिस्ततः प्राह विहस्य मरुतां पतिम् ॥ १२३ ॥
एवंविधा भवन्त्येव द्यूतकाराः पदं श्रियः ।
कुट्टिनीकपटो नाम बभूव द्यूतकृत्पुरा ॥ १२४ ॥
समस्तपापकोशस्य नरकक्षितिरक्षया ।
गतासोस्तस्य गणिका कालेन यमसद्मनि ॥ १२५ ॥
सुरार्चनादिनं चैकं विदधाति च शक्रताम् ।
भेजे पृष्टोऽथ तां पूर्वं दिनमेकं सुरेन्द्रताम् ॥ १२६ ॥
तत्र बुद्ध्या विनिश्चित्य दाता शर्वार्चनव्रतः ।
स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु चिरमासीत्सुरेश्वरः ॥ १२७ ॥
इति धूर्ता भवन्त्येव द्यूतकारमहाशयाः ।
एतद्गुरोर्वचः श्रुत्वा विस्मितोऽभूत्पुरंदरः ॥ १२८ ॥

इति टेण्टाकरालाख्यायिका ॥ १ ॥

द्यूतकारकथामेतामाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसात् ।
प्रयाते डाकिनीकेन वञ्चितः स्वयमाश्रमम् ॥ १२९ ॥
कदाचिदथ कालेन क्षुत्क्षामेन मया द्विजः ।
गृहीतो निशि चुक्रोश विक्रमादित्यमीश्वरम् ॥ १३० ॥
तच्छ्रुत्वा स नृपोऽभ्येत्य खड्गेनाशु जघान तम् ।
तत्क्षणं शरणायातं ररक्ष च कृपानिधिः ।
ततः प्रभृति दासोऽहं तस्य भूमिपतेर्विभोः ॥ १३१ ॥
इत्यभिहितस्तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा यमशिखः स्मयात् ।
मनसा विक्रमादित्यं प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥ १३२ ॥

इति खण्डकापालिकवधः ॥ २ ॥

इत्यहं तेन भूपालमौलिलीढाङ्घ्रिणा स्वयम् ।
रक्षिता वल्लभं प्राप्य परां निर्वृतिमागता ॥ १३३ ॥
इदं कीर्तिपताकेव राज्ञस्तस्य यशोनिधेः ।
त्रैलोक्यचारिणी नित्यमस्मिन्यक्षपुरे स्थिता ॥ १३४ ॥

सिंहलेन्द्रेण तनयां वितीर्णां शौर्यशालिनीम् ।
ज्ञात्वा विषमशीलाय सर्वे म्लेच्छशकाभिधाः ॥ १३५ ॥
हर्तुमभ्युद्यताः पापा विधेयं तत्र यत्क्षमम् ।
इत्यस्मिन्भक्तिचिन्तैषा स च तान्निहनिष्यति ॥ १३६ ॥
यक्षाङ्गनायामुक्त्वेति विगतायामदृश्यताम् ।
तद्दिव्यकान्तायुगलं स च हेमकुरङ्गकः ॥ १३७ ॥
तद्वृत्तान्तं मया पृष्टा सा यक्षी प्राह मां पुनः ।
पुरा घण्टनिघण्टाख्यौ दानवेन्द्रौ बभूवतुः ॥ १३८ ॥
त्रैलोक्यकण्टकौ मत्वा दुर्जयौ तौ प्रजापतिः ।
असृजत्कान्तिसर्वस्वमिमे त्रिदशकन्यके ॥ १३९ ॥
एतद्दर्शनसंजातगाढमन्मथपावकौ ।
ममैवेति ममैवेति भेदादिति गतौ क्षयम् ॥ १४० ॥
त्यक्ते वैश्रवणायैते कान्ते कमलयोनिना ।
उचिताय प्रदातव्ये विधायेत्यथ संविदम् ॥ १४१ ॥
माणिभद्रगृहे न्यस्ते कुबेरेण ततः स्वयम् ।
पालयाम्यहमेवैते गुणैः को न वशीकृतः ॥ १४२ ॥
एतयोर्विक्रमादित्यो देव एवोचितः पतिः ।
अयं च हेमहरिणो योग्यस्तस्यैव हर्षदः ॥ १४३ ॥
नक्षत्रं मृगशीर्षं तु कर्षन्तं केलिकौतुकात् ।
दृष्ट्वा जयन्तं तनयं शक्रश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ १४४ ॥
स ध्यात्वा तद्विनोदाय काञ्चनं विश्वकर्मणा ।
अकारयन्मणिमृगं पीयूषावाप्तजीवितम् ॥ १४५ ॥
सोऽयं पुरा दशास्येन विजित्य त्रिदशालयम् ।
सार्धमिन्द्रजिता नीतो लङ्कां रत्नाङ्कतोरणाम् ॥ १४६ ॥
कालेन निहते तस्मिन्रणे रामेण रावणे ।
दत्तो विभीषणेनायं मद्यमुत्सवसंगमे ॥ १४७ ॥

१ 'मि' ख.

तामिमं रत्नसारङ्गं कन्ये चेमे सुलोचने ।
विक्रमादित्यदेवाय नयेत्युक्त्वैव सा ददौ ॥ १४८ ॥
ततस्तामहमामन्त्र्य प्राप्तो वैदर्भभूपतिम् ।
स्वच्छासनवर्तं वीरं सर्वं चास्मै न्यवेदयम् ॥ १४९ ॥

इति यक्षीसमागमकथा ॥ ३ ॥

अत्रान्तरे संहतास्ते पापा म्लेच्छशकाधिपाः ।
ज्ञात्वा तदर्थमायान्तीं सिंहलाधिपतेः सुताम् ।
पथि तस्थुः सुसंरब्धाः सेनाच्छादितदिक्तटाः ॥ १५० ॥
ततो विदर्भराजेन तेषां विक्रमशक्तिना ।
बभूव सुचिरं युद्धं विस्मयाद्वीक्षितं सुरैः ॥ १५१ ॥
ततः सा यक्षतनया सह गुह्यकसेनया ।
सेनां विदर्भाधिपतेरविशद्विजयश्रिये ॥ १५२ ॥
अथ तेषु निरस्तेषु रणे भग्नेषु शत्रुषु ।
आगताः पृथिवीपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ॥ १५३ ॥
सिंहलेश्वरपुत्री च ते च त्रिदशकन्यके ।
आयातास्त्वद्विवाहाय सहिता सर्वराजभिः ॥ १५४ ॥
इतः स कटकावर्तो वर्तते योजनत्रये ।
प्रत्युद्गमनसत्कारस्तत्र देव विधीयताम् ॥ १५५ ॥
श्रुत्वेत्यनङ्गदेवेन कथितं पृथिवीपतिः ।
आदिदेश महोत्साहो यात्रासंरम्भदुन्दुभिः ॥ १५६ ॥
ततो गजेन्द्रजानीकसंछादितदिगन्तरान् ।
नातिदूरं निजपुराद्दत्वापश्यन्नरेश्वरान् ॥ १५७ ॥
नामानि देशभूपालैः सूचितैर्वन्दिभिः पुरा ।
प्रणम्यमानः सुमुखीं वरयित्रीं ददर्श सः ॥ १५८ ॥
तां सिंहलेश्वरसुतां वीक्ष्य सारङ्गलोचनाम् ।
विमलरूपं सारं मेने रतिसौभाग्यगर्वितम् ॥ १५९ ॥

परिणीयेन्दुवदनां ततस्तां पृथिवीपतिः।
हेममौक्तिकरत्नानां कूटानप्यचलोपमान्॥ १६०॥
दिव्येनोद्वाहविधिना प्रयाते दिव्यकन्यके।
कुलाधिदेवते कान्तं स्वसौभाग्ययोरिव॥ १६१॥
तं दिव्यहरिणं हारिरत्नकान्तिविचित्रितम्।
लब्ध्वा विवेश स्वपुरं सानुगो वल्लभासखः॥ १६२॥
अतः संभोगसुभगः.........तां यदृच्छया।
केनापि द्विजपुत्रेण ददर्शालेख्यपुत्रिकाम्॥ १६३॥
तां दृष्ट्वा चित्रफलके त्रैलोक्योन्मादनौषधिम्।
स्वप्ने तामेव चापश्यत्खेत्यङ्क (?) इव लम्बिनीम्॥ १६४॥
नग्नक्षपणकां ज्ञात्वा तां चित्रलिखितां प्रियाम्।
राज्ञो मलयसिंहस्य पुत्रीं मलयवासिनः॥ १६५॥
कान्तां मलयवत्याख्यां विलासतिलकं रतेः।
स्वयं गत्वा सहामात्यो लेभे हरिणलोचनाम्॥ १६६॥

इति कन्याचतुष्टयप्राप्तिः॥ ४॥

ततः कान्तां समादाय प्रत्याराते निजां पुरीम्।
राज्ञि श्रीविक्रमादित्ये बभूव जगदुत्सवः॥ १६७॥
देवी कलिङ्गसेनाथ तस्याग्रमहिषी रुषा।
ईर्ष्याकलुषिता चक्रे गणनां दयितागसाम्॥ १६८॥
सा प्राह देवसेनाख्यं पत्युर्विश्रमभाजनम्।
वीरं कार्पटिकं भ्रातः स्वामी ते बहुवल्लभः॥ १६९॥
दृष्ट्वा मत्सदृशीं पूर्वमुत्कीर्णां सालभञ्जिकाम्।
कलिङ्गराजं निर्जित्य जितकाशी जहार माम्॥ १७०॥
आशायां नृपतिसुताः कान्तो नवनवो युवा।
सेवते यत सौभाग्यं सन्तः कस्य वशे प्रियः॥ १७१॥
इति देवीवचः श्रुत्वा प्राह कार्पटिकस्तथा।
देवि स्वयं समायाति देवं दिव्याङ्गनाजनः॥ १७२॥

उच्चैःश्रवःकुले जातं पुरा राजा तुरङ्गमम् ।
ऊह्य श्रीविक्रमादित्यो मृगयारसिको ययौ ॥ १७३ ॥
हृतः पवनवेगेन तेनाश्वेन वने नृपः ।
अनुयातोऽहमेवैको योजनानां शतत्रयम् ॥ १७४ ॥
पादलेपं ददौ यक्षः प्राग्मह्यं मन्त्रतोषितः ।
तेन मे क्षणलङ्घ्यामूत्सुदूरापि वसुंधरा ॥ १७५ ॥
ततोऽस्तशिखरं याते दिनेशे प्राह मां नृपः ।
अस्ति वह्निशिखाख्यो मे वेतालश्चिरसेवकः ॥ १७६ ॥
गृहं तेन····विप्रस्य स्वानुमाक्रन्दिनं पुरा ।
मोचयित्वा निशाचर्या निर्गतोऽहं प्रसङ्गतः ॥ १७७ ॥
समरक्षं सुविपुलाद्वेतालं नयनामयात् ।
ततः प्रभृति दासो मे सर्वत्राज्ञापरोऽभवत् ॥ १७८ ॥
इत्युक्त्वा भूभुजा ध्यातं तमपश्यमहं पुरः ।
वेतालं प्रचलज्ज्वालाकरालानलमूर्धजम् ॥ १७९ ॥
अत्रान्तरे फलाहारान्महाजगरतां गतः ।
अहं स्वभावशक्तिर्हि द्रव्याणां केन लङ्घ्यते ॥ १८० ॥
ततः पल्लीपतिं क्षिप्रं शबराधिपतिं नृपः ।
तत्र तं प्रार्थयामास प्रणतं सिद्धिमुक्तये ॥ १८१ ॥
यस्य वानरदत्तेन फलेनापूर्वशक्तिना ।
यातो सप्तदशशती वत्सराणां किलायुषः ॥ १८२ ॥
सोऽप्यपश्यत्पुरा मार्गे उद्यानं वानरं पुनः ।
दीनावलोकिनं दुःखात्सतन्तं पादयोर्मुहुः ॥ १८३ ॥
विचिन्तयन्निङ्गितज्ञः स ततः पूर्वमाशयम् ।
दिशो विलोक्य तच्छायामपश्यद्विलम्बिनीम् ॥ १८४ ॥
तरुशाखानिरुद्धां तां वेष्टयन्तीं स वानरीम् ।
अमोचयत्कपिः प्रीतो ननर्त च ततो मुदा ॥ १८५ ॥

---

१ 'दासो मे' इति पाठो भवेत्. २. 'पूर्णमाशय' इति भवेत्.

तस्मै कृतोपकाराय सोऽथ शाखामृगः फलम्।
शबराय ददौ येन सोऽभवच्चिरजीवितः ॥ १८६ ॥
एवंविधः स शबराधीशो नृपतिनार्थितः।
दिव्यौषधेन केनापि चक्रे मां स्वस्थविग्रहम् ॥ १८७ ॥
घोराजगरभावान्मां मोचयित्वा स भूभुजे।
स्मरमुक्तावलीं कन्यां शबराधिपतिर्ददौ ॥ १८८ ॥

इति शबरराजपुत्रीलाभः ॥ ५ ॥

अत्रान्तरे गजक्रोडौ तत्र दर्पादभिद्रुतौ।
राजा जघान तौ चाशु मुक्तशापौ बभूवतुः ॥ १८९ ॥
इयं वातायने सुप्ता वणिक्पुत्रस्य वल्लभा।
मयाकृष्य कराग्रेण पुरानीता सुलोचना ॥ १९० ॥
इत्युदीर्य तयोरेको गजरूपो महाभुजः।
तां विन्यस्य ययौ श्योभ्रा परेण सहितः क्षणात् ॥ १९१ ॥
तयोः प्रयातयोर्मुक्तशापयोः सा वणिग्वधूः।
पुत्रीवाश्वासिता राज्ञा तत्याज विपुलं भयम् ॥ १९२ ॥

इति गजवराहशापमुक्तिः ॥ ६ ॥

अत्रान्तरे दिनारम्भे कन्यायुगमदृश्यत।
रूपयौवनलावण्यविलासकुलमन्दिरम् ॥ १९३ ॥
ततस्तदनुगाः पृष्टा मया कौतुकशालिना।
ऊचुः कटाहद्वीपेशसुतेयं कमलेक्षणा ॥ १९४ ॥
सप्तद्वीपपतेर्भार्या भाविनी भुवि विश्रुता।
अस्याश्च मातुलसुता द्वितीयेयं मृगेक्षणा ॥ १९५ ॥
गुरुभ्यां प्रहिते चैते विक्रमादित्यभूभुजे।
अब्धौ भग्ने प्रवहणे निगीर्णे जलचारिणा ॥ १९६ ॥
विधातुरानुकूल्याच्च मुक्ते धीवरदारितात्।
मत्स्यादयं स देवः श्रीविक्रमादित्य एव किम् ॥ १९७ ॥

इत्युक्तस्तत्परिजनैरहं तानवदत्तदा ।
अयमेव स भूपालः श्रीमान्कमललोचनः ।
यत्कृते यूयमायाता राजकन्यानुगानुगाः ॥ १९८ ॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा ते प्रणम्य महीभुजे ।
ददुर्विषमशीलाय हृष्टा राजसुताद्वयम् ॥ १९९ ॥

इति राजपुत्रीद्वयलाभः ॥ ७ ॥

ते कन्यके ततः प्राप्य विश्वकर्मसुरालयम् ।
प्रविश्यापश्यदत्यन्तकान्तामुत्कीर्णपुत्रिकाम् ॥ २०० ॥
तां दृष्ट्वा नयनानन्दसुधां भेजे सविस्मयः ।
देवो विषमशीलोऽपि मदनानलवक्रिते ॥ २०१ ॥
तेन पृष्टः स वेतालः केयमित्यतिकौतुकात् ।
उवाच शिल्पिना देव कृतेयं सालभञ्जिका ॥ २०२ ॥
कलिङ्गराजतनयामालोक्य सदृशाकृतिम् ।
सेयं कलिङ्गसेनाख्या रूपकारेण निर्मिता ॥ २०३ ॥
श्रुत्वेति वेतालवचस्तत्प्राप्तिन्यस्तमानसः ।
अभूत्कलिङ्गयात्रायां प्रस्थानाभिमुखो नृपः ॥ २०४ ॥
अत्रान्तरे समभ्येत्य वणिक्पुत्रो व्यजिज्ञपत् ।
तं देव मम नागेन हर्म्यस्था दयिता हृता ॥ २०५ ॥
तां विलासवतीं नाम नीतामालोक्य वल्लभाम् ।
कुञ्जरेन्द्रेण तेनाहं निखिलं व्याकुलोऽभवम् ॥ २०६ ॥
ततो मां दुःखसंतप्तं कश्चिदभ्यागतो द्विजः ।
आश्वासयन्प्राह सखे मा विषं····वृथा कृथाः ॥ २०७ ॥
भवन्त्यस्मिन्भवाम्भोधौ भ्राम्यतां कर्ममारुतैः ।
संयोगाश्च वियोगाश्च स्थायिनो न हि देहिनाम् ॥ २०८ ॥
अभवत्ताम्रलिप्तायां देसटस्य द्विजन्मनः ।
तनयः केसटो नाम कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥ २०९ ॥

कदाचित्तीर्थयात्रायां यातः पथि ददर्श सः ।
यन्यात्र(?) प्रस्थितान्विप्रान्विशेषोचितभूषितान् ॥ २१० ॥
तन्मध्यादवदद्वृद्धः केसटं सुन्दराकृतिम् ।
भद्र वृद्धस्य कार्येऽस्मिन्सहायो मे सखे भव ॥ २११ ॥
अस्ति मे तनयो वक्रनासिको विकटाननः ।
लम्बोदरो दीर्घग्रीवो दन्तुरः खलतिः कृशः ॥ २१२ ॥
तदर्थं धनलुब्धेन मया विप्रो महाधनः ।
सुतां रूपवतीं नाम याचितो घनशालिनीम् ॥ २१३ ॥
विवाहः प्रस्तुतोऽद्यैव निशि तत्र ममात्मजम् ।
दृष्ट्वा कुरूपसाकारं ना(?)न जाने किं करिष्यति ॥ २१४ ॥
अतस्त्वं मन्मथाकारः साहाय्यं कर्तुमर्हसि ।
मत्पुत्रार्थं परिणये प्राप्नुयाचेन कन्यकाम् ॥ २१५ ॥
तच्छ्रुत्वा बाढमित्याह केसटः स्वच्छचेतसाम् ।
कथं परोपकारेषु निषेधे वाक्प्रवर्तते ॥ २१६ ॥
ततः सोष्णीषकुसुमापीडकल्पितशेखरः ।
कुसुमायुधसच्छायो नीतस्तेन द्विजालयम् ॥ २१७ ॥
विवाहवसुधां प्राप्य स ददर्श द्विजात्मजाम् ।
रूपयौवनलावण्यैः पुनरुक्तविभूषणाम् ॥ २१८ ॥
सखीनां सह कन्याभ्यां कटाक्षकिरणैर्दृशः ।
फुल्लेन्दीवरमालाङ्कं विदधानामिवोत्सवे ॥ २१९ ॥
तां दृष्ट्वा केसटस्याभून्मनसि स्मयशालिनः ।
अहो मे दर्शनादस्या धन्यता नेत्रयोरभूत् ॥ २२० ॥
ततः केसटमालोक्य शृङ्गारमिव रूपिणम् ।
आजानुबाहुर्दीर्घाक्षं परिष्वक्तमिव त्विषा ॥ २२१ ॥
कर्णोपान्तमुपेत्यास्य तत्सख्यावूचतुः शनैः ।
मक्वानुरागवत्याख्या परा शृङ्गारवत्यपि ॥ २२२ ॥

धन्य रूपवती यस्यास्त्वं कान्तप्रवरो वरः ।
आवयोरपि कर्तव्यस्त्वया पाणिमहोत्सवः ॥ २२३ ॥
इति स्वैरं समाकर्ण्य निःश्वस्याचिन्तयन्मुहुः ।
भवतीभिर्ममान्यस्मिन्मन्ये जन्मनि संगमः ॥ २२४ ॥
ध्यात्वा त्वेवं समासन्ने लग्ने निशि नदीतटे ।
स्पष्टमम्भोविनिर्यातं सोऽपश्यत्पिशिताशनम् ॥ २२५ ॥
तं तु क्षामं तथालोक्य किं करोतीति कौतुकात् ।
अमक्षिता रूपवती तमेवानुययौ शनैः ॥ २२६ ॥
सापि प्राप्य नदीतीरे राक्षसं तमभाषत ।
तद्वाक्यविस्मितं रक्षः प्राह रूपवतीं ततः ॥ २२७ ॥
संत्रासातङ्कदुःखानां हस्ते न्यस्तेव वेधसा ।
मामत्सि राक्षसपते कान्तोऽयं मुच्यतां विभो ॥ २२८ ॥
एतद्वियोगाघस्तत्वं जीवितं निधनं मम ।
तच्छ्रुत्वा राक्षसः प्राह स्त्री न वध्या ममाबले ॥ २२९ ॥
सावदद्भर्तृहीनायाः का मे वृत्तिर्निशाचर ।
सोऽब्रवीत्सस्मितं सुभ्रु सदा वर्तस्व भिक्षया ॥ २३० ॥
सापि को मे ददातीति मोवाच रजनीचरम् ।
सोऽब्रवीच्छतधा यातु तत्तुभ्यं न ददाति यः ॥ २३१ ॥
ततो रूपवती प्राह भर्तृभिक्षां त्वमेव मे ।
देहीति तन्निषेधात्तु तद्रक्षः शतधा ययौ ॥ २३२ ॥
मोचयित्वेति भर्तारं गत्वा तत्सहिता गृहम् ।
निशां निनाय तद्वक्त्रविन्यस्तानिमिषेक्षणा ॥ २३३ ॥
मातर्जन्यावली यात्रारम्भे वृद्धद्विजन्मनः ।
अवाप्य परिणीतां तां नावा गन्तुं समुपययौ ॥ २३४ ॥
मत्पुत्रोऽस्याः कुरूपोऽसौ केसटं वीक्ष्य न प्रियः ।
भविष्यतीति सं ध्यात्वा छलात्तचां तमक्षिपत् ॥ २३५ ॥

१. 'एन' ख. २. 'सा' ख.

भ्राम्यमाणस्तरङ्गाद्यैः सोऽयं प्राप्य दिनैस्त्रिभिः ।
तीरं वियोगसलिले ममज्जापारदुस्तरे ॥ २३६ ॥
तां शशाङ्कवतीं ध्यात्वा यतो यत्नासशोषितः ।
विधिना दृष्टनष्टेन विप्रलब्ध इवाभवत् ॥ २३७ ॥
ततोऽस्तशिखरं याते पद्मिनीजीवितेश्वरे ।
संदेहं दिक्षु यातासु शोकैरिव तमश्चयैः ॥ २३८ ॥
भ्राजिष्णुरत्नाभरणं सोऽपश्यत्पतितं दिवः ।
पुरुषं यौवनोदारं विश्राममिव नेत्रयोः ॥ २३९ ॥
तं केसटोऽथ पप्रच्छ कोऽसीति प्रणयोदितम् ।
निवेद्य निजवृत्तान्तं कान्ताविरहपीडितः ॥ २४० ॥
संपृष्टः प्राह निःश्वस्य धैर्यमालम्ब्य विक्रियाम् ।
त्वजैतां शृणु मे तुल्यां कै.................... ॥ २४१ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४२ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४३ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४४ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४५ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४६ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४७ ॥
.................................. ।
.................................. ॥ २४८ ॥

१. एतत्त्रुटितं पुस्तकद्वय एवोपलभ्यते.

.................................................. ।
.................................................. ॥ २४९ ॥
.................................................. ।
.................................................. ॥ २५० ॥
.................................................. ।
.................................................. ॥ २५१ ॥
.................................................. ।
.................................................. ॥ २५२ ॥
.................................................. ।
............स सततं नासौ त्वयि निरादरः ॥ २५३ ॥

कलिङ्गसेना श्रुत्वेति दृष्ट्वा कार्पटिकोदितम्।
सौभाग्यगर्वशैथिल्यं तत्याज मृगलोचना ॥ २५४ ॥

ततः श्रीविक्रमादित्यः पालयन्निखिलां महीम्।
......कर्पूरधवलाश्चकार यशसा दिशः ॥ २५५ ॥

अत्रान्तरे शत्रुजितः कश्चिदेत्य नृपात्मजः।
चक्रे विषमशीलस्य सेवां द्वादशवार्षिकीम् ॥ २५६ ॥

चिरस्थितं राजपुत्रं सोऽथ कार्पटिकव्रतम्।
तं खण्डकपटाभिख्ये व्यधादेत्य पुरे नृपम् ॥ २५७ ॥

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं मणिकाञ्चनमन्दिरम्।
स सर्वकामदं प्राप्य तत्पुरं विस्मितोऽभवत् ॥ २५८ ॥

ततः प्रतिनिवृत्ताय पुनश्चासौ ददौ स्वयम्।
चतुरम्भोधिपर्यन्तं चतुर्भागं भुवो विभुः ॥ २५९ ॥

अत्रान्तरे समभ्येत्य पुनः कश्चिद्व्यजिज्ञपत्।
देवं श्रीविक्रमादित्यं रोमाञ्चोद्भूतविग्रहम् ॥ २६० ॥

कृष्णशक्तिरिति ख्यातो वाहं...द्विजपुत्रकः।
आगतः श्वशुरावासाद्भार्यामादाय तत्स्थिताम् ॥ २६१ ॥

तुरङ्गीमधिरुह्यायमस्या याने सुहृद्धृते ।
अभक्षयन्नरं साशु मद्भार्या गूढशाकिनी ॥ २६२ ॥
तां रक्ताक्तमहावक्त्रां दृष्ट्वाहं भयविह्वलः ।
देव त्वां शरणं प्राप्तः प्रमाणमधुना प्रभुः ॥ २६३ ॥
तच्छ्रुत्वा सस्मिते राज्ञि ध्वस्तायां च तदाज्ञया ।
शाकिन्यां तत्कथामध्ये प्राह मन्त्री नरेश्वरम् ॥ २६४ ॥
आलयः सर्वपापानां देव क्रूतराः स्त्रियः ।
अग्निगर्माभिधस्यासीत्प्रिया भार्या द्विजन्मनः ॥ २६५ ॥
सा चौररागिणी शूले चौरमुल्लम्बिनं पुरा ।
स्नेहदुःखसरावेशादालिलिङ्ग चुचुम्ब च ॥ २६६ ॥
तदा प्रविष्टो वेतालस्तस्याश्चिच्छेद नासिकाम् ।
छिन्ननासा च सा गत्वा पत्युर्वेश्मान्तमग्रहीत् ॥ २६७ ॥
अनेन निगृहीताहमपापेत्यार्तराविणी ।
पित्रा मात्रा च सा सार्धं गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥ २६८ ॥
राज्ञादिष्टेऽथ तद्भर्तुर्निग्रहे रभसं स्थितः ।
तद्वृत्तं दिव्यपुरुषः कथयित्वा ररक्ष तम् ।
इति पापाः स्त्रियो देव भवन्ति कलुषाशयाः ॥ २६९ ॥
इत्युक्ते तेन भूपालं मूलदेवोऽप्यभाषत ।
पापा नैकान्ततो देव सन्ति साध्व्योऽपि योषितः ॥ २७० ॥
मन्त्रसिद्धिं समाकर्ण्य धूर्तैर्लभ्यासि नो बलात् ।
इत्युद्वाहविधौ बद्धनियमां शङ्कितां सदा ॥ २७१ ॥
पुरा धूर्तः प्रसिद्धोऽहं युक्त्या धूर्तैरनिर्जिताम् ।
अवापं विप्रतनयां विवाहे छन्नवेषभृत् ॥ २७२ ॥
ततस्तां विहितोद्वाहामवदं मानमानिनीम् ।
हा वञ्चितासि गच्छामि सतिते(?) विजितं मया ॥ २७३ ॥
इति ब्रुवाणं मां प्राह प्रस्मितं सा स्मितमता ।

गच्छ मत्सूनुना बद्धो न चिरात्त्वं भविष्यसि ॥ २७४ ॥
इति प्रतिज्ञां श्रुत्वाहं तस्या यातो निजां पुरीम्।
याति काले कदाचित्सा छन्ना तामाययौ पुरीम् ॥ २७५ ॥
तस्थौ च तत्र गणिकामिषेणालक्षिता क्षितौ।
कामुकान्साथ संप्राप्तान्विधिवैव विपुलान्व्यधात् ॥ २७६ ॥
पूर्वे यामे स्नानविधिं द्वितीये भोजनक्रमम्।
तृतीये मण्डनारम्भं चतुर्थे तु कथान्तरम् ॥ २७७ ॥
निजैः परिजनैः कृत्वा कामिनामिति वञ्चनाम्।
शीलसंरक्षणपरा तस्थौ मत्संगमाशया ॥ २७८ ॥
नवां वाराङ्गनां प्राप्तां श्रुत्वाहं तामशङ्कितः।
प्रविष्टः कामुको भूत्वा तद्गृहं स्मरमोहितः ॥ २७९ ॥
सा मां प्रौढं परिज्ञाय संगमं विदधे मया।
ततश्च गर्भं संप्राप्य प्रच्छन्ना स्वपुरं ययौ ॥ २८० ॥
सासूताथ सुतं काले संप्रवृद्धिं कलानिधिम्।
मातुर्गृहात्समभ्येत्य मां द्यूतैः सोऽजयत्कृती ॥ २८१ ॥
स हारितानेकधनं बध्वा मां मातुरन्तिकम्।
निनाय सा च मां प्राह सा निजानां स्वसंगमम् ॥ २८२ ॥
तीर्णा मया प्रतिज्ञासौ प्रमाणमधुना भवान्।
इति ब्रुवाणां तां कान्तामभजं सत्यवादिनीम् ॥ २८३ ॥
इत्येवं सत्यशालिन्यो देव सन्ति पतिव्रताः।
मूलदेवो निगद्येति प्रणम्य प्रययौ नृपम् ॥ २८४ ॥
अथ श्रीविक्रमादित्यो हेलया निर्जिताखिलः।
म्लेच्छाम्काम्बोजयवनान्नीचान्हूणान्सबर्बरान् ॥ २८५ ॥
तुषारान्पारसीकांश्च त्यक्ताचारान्विशृङ्खलान्।
हत्वा भ्रूभङ्गमात्रेण भुवो भारमवारयत् ॥ २८६ ॥
इत्येवं सत्यसंपन्नाः प्राप्नुवन्ति समीहितम्।

नरवाहन कान्तां तामवाप्स्यसि धृतिं श्रियः ॥ २८७ ॥
इति निशम्य कथां स मुनेर्वचः प्रियतमाविरहानलतापितः।
वनमहीपु चचार निजां पुरीमनुसरञ्शनकैर्नरवाहनः ॥ २८८ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां विषमशीलनामा दशमो लम्बकः समाप्तः।

---

## मदिरावतीलम्बकः।

अनङ्गेनाबलासङ्गाज्जिता येन जगत्रयी।
स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोऽस्तु वः ॥ १ ॥
अनेकसौरभोद्गारव्याकुलीकृतषट्पदैः।
प्रक्षुभ्यत्कोकिलकुले रसत्समदसारसे ॥ २ ॥
चलत्समीरणोद्भूतघनकिञ्जल्कपिञ्जरे।
संजाताधिकसंतापस्तत्र वत्सेश्वरात्मजः।
निजदेशपरित्यागे वभूवं कुरिसादरः ॥ ३ ॥
स गत्वा विरहक्षामः पदैः श्लथविशृङ्खलैः।
कलहंसकुलालोलं प्राप भागीरथीतटम् ॥ ४ ॥
तरुणौ तत्र विश्रम्भसम्भोगाविव रूपिणौ।
अग्राम्यवस्त्राभरणौ ददर्श द्विजपुत्रकौ ॥ ५ ॥
रतिहीनमिवानङ्गं विलोक्य नरवाहनम्।
ॐ नमो मन्मथायेति ब्रुवाणौ तौ प्रणेमतुः ॥ ६ ॥
निजवृत्तान्तमावेद्य पृष्टौ राजसुतेन तौ।
चक्रतुः स्वकथाख्याने लज्जिताविव मानसम् ॥ ७ ॥
तयोरेकोऽब्रवीदेव श्रूयतां नौ विचेष्टितम्।
यत्त्वमे प्रेरयत्येषा प्रभुदर्शननिर्वृतिः ॥ ८ ॥
अस्ति शोभावती नाम कलिङ्गविषये पुरी।
तस्यां यशस्करो नाम बभूव ब्राह्मणोऽग्रणीः ॥ ९ ॥
तस्य मेखलिकाख्यायां ब्राह्मण्यां तनयः प्रियः।

---

1. 'बभूवोत्सरितादरः' इति पाठो भवेत्. २. 'दश' ख.

जातः सद्भावनामाहं कुलार्थं विहितव्रतः ॥ १० ॥
ततः कदाचिद्दुर्भिक्षे त्यक्त्वा स्वनगरं वयम् ।
संप्राप्ता कृच्छ्रवीवाख्यं पुरं सुरपुरोपमम् ॥ ११ ॥
ततः कृतास्पदे तत्र सदा विद्यार्जने रतः ।
अहं गुरुकुले मित्रमवापं क्षत्रियं दिनैः ॥ १२ ॥
सोमदत्ताभिधानस्य राजन्यस्य तमात्मजम् ।
मित्रं विजयसेनाख्यं प्राप्याहं निर्वृतोऽभवम् ॥ १३ ॥
ततः कदाचिदुद्याने तत्स्वसा मदिरावती ।
दृष्टा मया मनोजन्मसाम्राज्यविजयोत्सवः ॥ १४ ॥
दधाना बाहुयुगलं बिसकन्दसुकोमलम् ।
वापीव मञ्जुसिञ्जानमेखलाहंसमालिका ॥ १५ ॥
बिभ्राणाभिनवोद्भिन्नकुचावव्यक्तचूचुकौ ।
तारहारनदीजाताविव पङ्कजकोरकौ ॥ १६ ॥
तां विलोक्याहमानन्दसुधानिःस्यन्दवाहिनीम् ।
कदम्बकुसुमाकारः संजातपुलकोऽभवम् ॥ १७ ॥
सापि मामवलोक्यैव साचीकृतविलोचना ।
स्फुटां गतिं परित्यज्य भेजे विभ्रमवक्रताम् ॥ १८ ॥
नवस्मरशरावातकल्पितास्य निजं गृहम् ।
गत्वा बभूव शनकैर्ध्यानोच्छ्वासपरायणः ॥ १९ ॥
ततो विजयसेनेन नीतोऽहं निजमन्दिरम् ।
तामपश्यं स्मरसुवं मय्येवार्पितलोचनाम् ॥ २० ॥
तया प्रणयशालिन्या गुम्फितां कुसुमस्रजम् ।
कण्ठे न्यवेशयं हर्षात्तामिवामीलितेक्षणः ॥ २१ ॥
रहस्तस्यास्ततो धात्री मामुवाचामृतोपमम् ।
त्वमेव मदिरावत्या जीवितं किमतः परम् ॥ २२ ॥
इत्यहं तद्गिरा हृष्टः प्राप्तो मन्मथतामिव ।

---

१. 'नि' ख.

अकार्षं विपुलामाशां प्रियापरिणयोत्सवे ॥ २३ ॥
ततः कदाचिदश्रौषं तां पित्रा प्रतिपादिताम् ।
क्षत्रियायातिरूपाय वचसा गुणशालिनीम् ॥ २४ ॥
तच्छ्रुत्वाहं झटित्युग्रवज्राहत इव क्षितौ ।
पतितः प्रेमबन्धानामाशाभङ्गोऽतिदुःसहः ॥ २५ ॥
ततस्तस्याः सखी प्राह मामेत्य लघुचारिणी ।
पित्रा कुबुद्धिनान्यस्मै कल्पिता मदिरावती ॥ २६ ॥
अनन्तमभिधत्ते च सा त्वत्प्रीतिपरायणा ।
त्वमेव मे प्राणनाथो मिथ्याभ्रान्तः पिता मम ॥ २७ ॥
इति तद्वचसा सद्यः संप्राप्ता साचलत्स्तना(?) ।
समारूढ इवाकाशं सुधासिक्त इवाभवम् ॥ २८ ॥
अथ कालेन संप्राप्ते तस्या लग्नदिनोत्सवे ।
श्रुतो मयानेकजन्यजनकोलाहलः पुरे ॥ २९ ॥
अन्यत्र पथि यातस्य दर्शने बद्धकौतुकः ।
परिणेतुस्ततो गत्वा मया दर्पगताः स्त्रियः ॥ ३० ॥
विवाहं मदिरावत्या दृष्ट्वाहं समुपस्थितम् ।
तत्संगमे जीवितेन तुल्यमाशां यदात्यजम् ॥ ३१ ॥
ततोऽहं तरुमारुह्य पाशवेष्टितकन्धरः ।
ऊर्ध्वेक्षणं तमोघोरं प्रविष्टो नष्टचेतनः ॥ ३२ ॥
केनापि मुक्तपाशोऽथ फेनोद्गारिमुखः क्षितौ ।
पातितः सुचिरात्संज्ञां प्राप्यापश्यं द्विजं पुरः ॥ ३३ ॥
कृपयाश्वास्य मां तैस्तैरुपपत्तिकथाक्रमैः ।
उवाच मत्कथां श्रुत्वा स निष्कारणबान्धवः ॥ ३४ ॥
अहास निन्दितं विप्र साहसं कृतवानसि ।
शरीरत्यागपापिष्ठं कर्मैतन्मा कृथाः पुनः ॥ ३५ ॥
अपश्यमेव पुरुषः प्राप्नोत्यपि यथेप्सितम् ।

भवत्येवात्र संसारे दृष्टनष्टा मुहुर्मुहुः ।
संयोगाश्च वियोगाश्च तथा च शृणु तत्कथाम् ॥ ३६ ॥
अहं कुमारको नाम नेपालविषयाश्रयः ।
द्विजन्मा निखिलां पृथ्वीं भ्रान्तो विषयकौतुकात् ॥ ३७ ॥
ततः शङ्खमुखं नाम हिमवत्कच्छसंश्रयम् ।
अवापं विविधोद्यानं वसन्तस्येव मन्दिरम् ॥ ३८ ॥
शङ्खपालह्रदे तत्र यातयामे महोत्सवे ।
स्नानपूजारसव्यग्रसुन्दरीमन्दमण्डले ॥ ३९ ॥
अपश्यं कन्यकां कान्तां नवयौवनशालिनीम् ।
अदर्शामिव शर्वाणीमचन्द्रामिव रोहिणीम् ॥ ४० ॥
विभ्रमाणां कुलगृहं क्षेत्रं कान्तेः पदं तरोः ।
त्रिजगज्जयिनः शक्तिं मूर्तामिव मनोभुवः ॥ ४१ ॥
तां चन्द्रवदनां दृष्ट्वा कुरङ्गनयनामहम् ।
रम्भोरुं रम्भया तुल्यां गत्यैव गजगामिनीम् ॥ ४२ ॥
पुराहं राजपुत्रस्य याता क्रीडामयूरताम् ।
तस्यां मदान्धनन्यस्तलोचनायां महागजः ॥ ४३ ॥
प्रतिद्वीपरूपान्याया(?)ज्जनकोलाहलाकुलः ।
भ्रमद्भ्रमरसंभारमदाम्भोराजिराजितः ॥ ४४ ॥
मन्दराद्रिरिवोच्चस्त्कालकूटघटाकुलः ।
सरोविलोडनक्रीडाडम्बरे कवलीकृताः ॥ ४५ ॥
उद्गिरन्निव दन्तांशुच्छद्मना विषमण्डलीः ।
विलोलकर्णतालाग्र्यालम्बिसितचामरः ॥ ४६ ॥
कालमेघ इवोत्सर्पद्बलाकावलयाङ्कितः ।
यस्य गम्भीरसंरम्भगुरुभिर्गलगर्जितैः ॥ ४७ ॥
तां त्रासस्खलितामेत्य दोर्भ्यामहमधारयम् ।

१. 'जं' ख.

जग्राह निबिडं कण्ठे मां सा तद्भयविह्वला।
स्पर्शहर्षामृतासिक्तकम्पितोच्चकुचस्थलीम् ॥ ४८ ॥
भूयात्ते करिणीं सज्जौ मदलेशविलासिन।
कृतोपकारं तं नागमित्यहं मनसाभ्यधाम् ॥ ४९ ॥
ततः पृथुलफूत्कारशीकराबद्धदुर्दिनः।
आवर्तितः करोत्कारः क्षणात्प्राप्तो मदन्तिकम् ॥ ५० ॥
तद्भयाद्विद्रुते दूरं जनसंघे सहस्रधा।
नापश्यं पद्मवदनां क्वचित्तां तरलेक्षणाम् ॥ ५१ ॥
ततोऽहं तद्वियोगार्तो यातेऽस्तं नलिनीप्रिये।
चक्राह्व इव यामिन्यां विलापमुखरोऽभवम् ॥ ५२ ॥
अथ चन्द्रकरस्मेरकुमुदामोदशालिभिः।
विषवेगैरिवासिक्तो रजनीपवनैरहम् ॥ ५३ ॥
एवं प्रतिनिशं कान्तावियोगविधुराशयः।
भ्रान्तोऽपि निखिलां पृथ्वीं तां न पश्यामि सुन्दरीम् ॥ ५४ ॥
बद्धस्पृहोऽपि निधने धारयाम्येव जीवितम्।
प्रियलाभा भवन्त्येव सत्सु प्राणेषु देहिनाम् ॥ ५५ ॥
अद्य त्वमपि दुःखार्तो रक्षितो मरणान्मया।
अनुभूतव्यथः सर्वो जानाति परवेदनाम् ॥ ५६ ॥
धीरो भव भवे दैवात्कदाचिन्मदिरावतीम्।
अवाप्स्यसीति तद्वाक्यं श्रुत्वाहं धृतिमाश्रितः ॥ ५७ ॥
ततस्तेनैव सहितः पूज्यस्मरनिकेतनम्।
यातः परिणये रन्तुं यत्रायान्ति पुराङ्गनाः ॥ ५८ ॥
तत्र गर्भगृहे गूढं स्थिते मयि तदाशया।
विवाहे स्मरपूजायामाययौ मदिरावती ॥ ५९ ॥
उत्साहवाद्यनिर्घोषक्षुभिते जनसागरे।
विराजमाना लावण्यपीयूषैः श्रीरिवोदिता ॥ ६० ॥

---

१. 'ग' स्त. १. 'मायया' इति पाठो भवेत्.

निषिद्धान्यप्रवेशाय सा प्रविश्य स्मरालयम् ।
प्रणम्य प्राह सा वाक्यमुद्वाहोऽयं विधाय मे ॥ ६१ ॥
दृष्टः पुरा मया विप्रो यः स मे हृदयप्रभुः ।
स मे जन्मान्तरे भूयात्पतिः प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।
इत्युक्त्वा विदधे पाशं कण्ठे हारविभूषिते ॥ ६२ ॥
ततोऽहं सुन्दरीं दृष्ट्वा तां रागान्मर्तुमुद्यताम् ।
प्रहृष्टो दयितामानी पाशं तस्या न्यवारयम् ॥ ६३ ॥
साथ मां प्रत्यभिज्ञाय विहितालिङ्गनोत्सवम् ।
सकम्पा कामपि ययौ क्षीबतां मदिरावती ॥ ६४ ॥
निर्जनामटवीं त्यक्त्वा पुरं प्राप्तोऽचलाभिधम् ।
ततो गृहपतेर्गेहे तत्रत्यस्य च कस्यचित् ॥ ६५ ॥
विधिना विहितोद्वाहः संभोगसुभगोऽभवम् ।
तया प्रणयशालिन्या रममाणो मृगीदृशा ॥ ६६ ॥
तत्राङ्गनासुखं प्राप्तं तमपश्यं सुहृद्वरम् ।
दैवाद्यदृच्छया यातः स पृष्टः प्रणयान्मया ॥ ६७ ॥
प्राहाप्यहं वधूवेषो यातः शिबिकया गृहम् ।
तत्रोद्वाहोत्सवे व्यग्रजनकल्लोलसंकुले ।
दीर्घावगुण्ठनां प्राह सखी मां पाटलाभिधा ॥ ६८ ॥
मदिरावति कोऽयं ते विषादविषविभ्रमः ।
अस्मिन्नप्युत्सवे येन विकृतेवोपलक्ष्यसे ॥ ६९ ॥
जानेऽहं त्वां सदा बद्धप्रीतिं तस्मिन्द्विजात्मजे ।
धात्रा न लिखितः किं तु तव तेन समागमः ॥ ७० ॥
प्राप्तां भज विधेराज्ञां को हि नामातिवर्तते ।
ममाप्येवंविधा चिन्ता सततं सखि वर्तते ।
शृणु यन्मे पुरा वृत्तं नागयात्रामहोत्सवे ॥ ७१ ॥
शङ्खपालहृदे स्नातुं याता बहुजनागमे ।

१. 'रसां' ख.

अपश्यं कुञ्जरत्रस्ता पुरुषं मन्मथोपमम् ॥ ७२ ॥
तेन पद्मदलाक्षेण यूनाहं भयविह्वला।
गाढमालिङ्गिता येन मामद्यापि सरज्वरः ॥ ७३ ॥
तं मदं मदनस्यापि यौवनस्यापि यौवनम्।
तं विसरति मे मन्ये मनो जन्मान्तरेप्वपि ॥ ७४ ॥
ततोऽहं कुञ्जरभयात्तद्वियुक्तो निजं गृहम्।
कण्ठे गृहीत्वा सोत्कण्ठं लब्धजीव इवाभवम् ॥ ७५ ॥
सापि मां मन्मथाविष्टा दृष्ट्वाभ्यस्तं मनोरथैः।
स्नापितेवामृतस्यन्दैरभवत्स्मेरचन्द्रिका ॥ ७६ ॥
ततस्तयाहं गूढेन द्वारेणालक्षितो निशि।
निर्गतो लघुसंचारो मधुमत्तजनाद्गृहात् ॥ ७७ ॥
दूरं गत्वा वनं प्राप्तः······················।
सौजन्याद्विहितातिथ्यः कृतोऽहं मृगयाज्ञया ॥ ७८ ॥
दैवाद्दिष्टमिमं मार्गं विचिन्त्य दयितासखः।
इह त्वया संगतोऽहमानन्देनेव रूपिणा ॥ ७९ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा दृष्टोऽहं जाह्नवीतटे।
स्थितोऽद्य यावत्तावत्त्वं मया दृष्टो नृपात्मजः ॥ ८० ॥
अयं मम सखा बन्धुः सहजः स्वर्गमेव च।
राजसूनो मनःसिन्धुचन्द्रः प्राणा बहिश्चराः ॥ ८१ ॥
इति द्विजसुतेनोक्तं निशम्य नरवाहनः।
शनैर्बबन्ध सानन्दो दयितासंगमे धृतिम् ॥ ८२ ॥
अथ स निजसुहृद्भिः संगतो गोमुखाद्यैः
प्रणयविनतमौलिस्तौ समानम्य विप्रौ।
विरहविधुरधैर्यः संस्मरन्वल्लभायाः
प्रविशिथिलमयासीत्तां पुरीं राजपुत्रः ॥ ८३ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां मदिरावती नाम एकादशो लम्बकः समाप्तः।

१. 'क्षा' ग.

पद्मावतीलम्बकः ।

जाह्नवीधूर्जटिजटाकुन्दमाला पुनातु वः ।
राजहंसश्रियं धत्ते यद्वारि वलये शशी ॥ १ ॥
ततो विरहसंतप्तं प्रियां मदनमञ्चुकाम् ।
विलपन्तं सुहृत्प्राह गोमुखो नरवाहनम् ॥ २ ॥
धैर्यसागर कोऽयं ते मन्मथानलविह्वलः ।
एष ह्यसंवृतः सत्यं महतामपि दुःखदः ॥ ३ ॥
ब्रह्मदत्त इति ख्यातो वाराणस्याममूनृपः ।
कीर्तिरासागरं यस्य गता गङ्गेव भूभृतः ॥ ४ ॥
तस्य सोमप्रभा नाम भार्या सोमप्रभाभवत् ।
मन्त्री च धीमतां धुर्यः शिवभूतिरिति श्रुतः ॥ ५ ॥
स कदाचिन्नृपश्चन्द्रकान्तिधौते नभस्तले ।
सौधोत्सङ्गगतोऽपश्यन्निशीथे हंसमालिकाम् ॥ ६ ॥
तन्मध्ये काञ्चनमयं प्रवालचरणोज्ज्वलम् ।
ददर्श हंसमिथुनं शुक्ला रुचिरलोचनम् ॥ ७ ॥
पृष्टौ राज्ञा प्रोचतुस्तौ पूर्ववृत्तमथात्मनः ।
पुष्पशेखर इत्यासीद्दुर्विनीतो गणः पुरा ॥ ८ ॥
जयया कन्यया सार्धं संस्थितो दुर्विनीतया ।
दृष्ट्वा गणौ जहसतुर्मृगेश्वर[गुहे]श्वरौ ॥ ९ ॥
अकाण्डे प्रणयं तेषां विलोक्य त्र्यम्बकप्रिया ।
कोपाग्निधूमलतिकां बभार भ्रुकुटीं मुखे ॥ १० ॥
सावदद्दुर्विनीतोऽयं कन्ययैव सहानया ।
मर्त्यतां यातु निर्लज्जो विलासी पुष्पशेखरः ॥ ११ ॥
हासशीलावपि पुरावेतौ चापलसूचकौ ।
बहुशः कुत्सितां जातिं प्राप्य बोधः शुपास्यत(?) ॥ १२ ॥
इति शप्तेषु पार्वत्या तेष्वेकः प्रमथोऽब्रवीत् ।
कृपया धूर्जटी नाम देवि दासेषु मा क्रुध ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा गिरिजा प्राह पत त्वमपि भूतले ।
ईश्वरा गाढनिर्बन्धं यान्ति धार्ष्ट्यनिवारिताः ॥ १४ ॥
सुतास्नेहात्ततः प्राप्य जया गौरीं व्यजिज्ञपत् ।
देवीसेवाजुषां तेषां शापस्यान्तो विधीयताम् ॥ १५ ॥
इत्यर्थिता सा तपसा तया प्रोवाच पार्वती ।
एकत्र संगता जातिं स्मृत्वैष्यन्ति निजं पदम् ॥ १६ ॥
इत्युक्ते शंकरस्तूर्णं सतीसंदर्शनोत्सुकः ।
व्योम्ना मनोरथेनेव समभ्यायात्कुतूहलात् ॥ १७ ॥
सिषेवे हर्षपीयूषवर्षिणीं हिमवत्सुताम् ।
अशृणोदन्धकाक्षं तं निकामं तु परम्परा ॥ १८ ॥
ततस्तं विदधे क्रुद्धो भगवानस्थिपञ्जरम् ।
मुक्ताङ्गः सोऽपि तपसा भृङ्गिरित्यभवद्गणः ॥ १९ ॥
अत्रान्तरे यौ गिरिजाशप्तौ पिङ्गगुहेश्वरौ ।
द्विजस्य पुत्रतां यातौ यज्ञस्थलनिवासिनः ॥ २० ॥
ततस्तावतिदारिद्र्यान्मातामहगृहे स्थितौ ।
मातुलेन पशुप्रायौ नियुक्तौ पशुरक्षणे ॥ २१ ॥
अथैकं भक्षितं दृष्ट्वा ताभ्यामृक्षविदारितम् ।
छागलं मातुलः शापं ददौ रक्षस्तनुप्रदम् ॥ २२ ॥
ततस्तौ राक्षसौ घोरौ कदाचिद्धन्तुमुद्यतौ ।
पतितावत्स्य शापाच्च वने यातौ पिशाचताम् ॥ २३ ॥
कालेन दुर्दिने होमधेनुरक्षाकुमारकम् ।
भोक्तुं मुनेरुद्यतौ च शापाच्चाण्डालतां गतौ ॥ २४ ॥
कर्णनासाविरहितौ शबरैश्चौर्यकोपतः ।
श्वचौ गत्वा शिवगृहं धेनुं हन्तुं समुद्यतौ ॥ २५ ॥
अन्धीकृतौ भगवता दृष्टौ पौरजनैस्ततः ।
निराहारौ वायसतां किंचित्कर्मक्षयाद्गतौ ॥ २६ ॥

१. 'ए' ग.

मासतां च ततः प्राप्तौ क्रमेण च मयूरताम् ।
शिवार्चनरतौ काले जातिं स्मृत्वा च हंसताम् ॥ २७ ॥
प्राप्तौ ततोऽपि वैचित्र्यं हेमरत्नमयाकृती ।
तावावां पार्वतीग्राह्यौ मृगेश्वरसुहृदेश्वरौ[1] ॥ २८ ॥
स पुष्पशेखरस्त्वं च त्वत्प्रियेयं जयात्मजा ।
महामात्यश्च ते राजन्धूर्जटोऽयं गणाग्रणीः ॥ २९ ॥
तदेहि तूर्णं गच्छामः सिद्धिक्षेत्रं महागिरिम् ।
प्राग्मुक्तकेतुना यत्र मुक्ता लक्ष्मीस्ततः श्रिया ॥ ३० ॥
इति हंसवचः श्रुत्वा ब्रह्मदत्तः प्रियासखः ।
मन्त्रिणा सह ताभ्यां च व्योम्ना जातिस्मरस्तु सः ॥ ३१ ॥
आयस्थानं समासाद्य ते विज्ञानमयाः क्षणात् ।
शांभवं पदमभ्येत्य संगता मेनिरे निजाम् ॥ ३२ ॥

इति ब्रह्मदत्ताख्यायिका ॥ १ ॥

गोमुखेनेति कथितं निशम्य नरवाहनः ।
मुक्तकेतुकथाजातमपृच्छत्कौतुकाकुलः ॥ ३३ ॥
स पृष्टः प्राह सुहृदं मन्मथार्तं विनोदयन् ।
मुक्तकेतोः शृणु कथां देव विद्याधरप्रभोः ॥ ३४ ॥
अभूद्विद्युत्प्रभो नाम दैत्यानामधिपो बली ।
विद्युद्ध्वजः सुतस्तस्य तीव्रेण तपसाभवत् ॥ ३५ ॥
सोऽपि घोरेण तपसा प्रजापतिवरात्कृती ।
विना पाशुपतं प्राप दिव्याण्यस्त्राण्युदारधीः ॥ ३६ ॥
स पित्रा सहितो गत्वा सेव्यमानो महासुरैः ।
स्वयं शतक्रतुस्तस्य वज्रनिर्दारितासुरः ।
चचार समरे वीरो मरुद्भिरमितो वृतः ॥ ३७ ॥
ततो विद्युद्ध्वजोत्सृष्टैर्ब्रह्मास्त्रप्रमुखैर्युधि ।
महार्तिरभवन्देवा दावन्यस्ता इवाद्रयः ॥ ३८ ॥

---
1. 'मृगेश्वरगृहेश्वरौ' ख.

जम्भारिरथ संत्रासं संस्मृत्य त्रिपुरान्तकम्।
चक्रे पाशुपतास्त्रेण संहारं त्रिदशद्विषाम्॥ ३९॥
विद्युद्ध्वजस्य जनको महद्भिर्दानवोत्तमैः।
तेनास्त्रवह्निना दग्धः प्रययौ शाश्वतं पदम्॥ ४०॥
लब्धलक्ष्येषु देवेषु विध्वस्ते दैत्यमण्डले।
लज्जाविभुग्नवदनो वनं विद्युद्ध्वजो ययौ॥ ४१॥
तत्र वर्षायुतं कृत्वा तपः संतापितामरम्।
देवैरप्यमवध्युद्धे वरं प्राप स शूलिनः॥ ४२॥
[ [1]गत्वाथ त्रिदिवं व्योम्ना संग्रामे वज्रिणं जयी।
विद्राव्य सुरगन्धर्वकिन्नरानकरोद्वशे॥ ४३॥
परित्यज्य प्रयातेषु स्वपुराण्यथ तद्भयात्।
क्वापि देवनिकायेषु मत्तेषु दितिसूनुषु॥ ४४॥
अमृष्यमाणस्तां मानम्लानिं विद्याधराधिपः।]
वज्रकेतुस्तपस्तप्त्वा पुत्रं प्रापासुरान्तकम्॥ ४५॥
स मुक्तकेतुनामाभूत्तस्येश्वरवरात्सुतः।
देवा यस्य बलाधाने बभूवुः सततोद्यताः॥ ४६॥
भाविनीं वल्लभां तस्य गन्धर्वाधिपतिः सुताम्।
प्राप पद्मावतीं शर्वप्रसादात्पद्मशेखरः॥ ४७॥
अत्रान्तरे दैत्यजिता मधुहन्तारमच्युतम्।
श्वेतद्वीपं समभ्येत्य त्रिदशाः शरणं ययुः॥ ४८॥
तेनादिष्टाः स्मरहरं प्रयातास्त्रिपुरान्तकम्।
गीर्वाणाः शुश्रुवुस्तस्मान्मुक्तकेतुं परायणम्॥ ४९॥
सिद्धक्षेत्रे ततश्चक्रे मुक्तकेतुर्महत्तपः।
येनास्य सिद्धयः सर्वा बभूवुरभिसारिकाः॥ ५०॥
दर्पाद्विद्युद्ध्वजेनाथ त्रैलोक्ये व्याकुलीकृते।
शून्यारण्यतुले नीतं नन्दने छिन्नचन्दने॥ ५१॥

---

१. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः.

बन्दिग्रहगृहीतासु सुरनारीषु दानवैः ।
उच्छ्वासैर्दीपयन्तीषु तत्प्रतापानलं मुहुः ॥ ५२ ॥
अर्थितः सुरराजेन मुक्तकेतुः शिवाज्ञया ।
प्रतस्थे त्रिदिवं तूर्णं महादैत्यरणोत्सुकः ॥ ५३ ॥
स व्रजन्नभसा तूर्णं विद्याधरनृपात्मजः ।
ददर्श पार्वतीपूजाव्यग्रां गन्धर्वपुत्रिकाम् ॥ ५४ ॥
कान्तामभिनवोद्याने स तां पद्मावतीं युवा ।
निर्वर्णयन्क्षणमभूत्कौतुकोत्कलिकाकुलः ॥ ५५ ॥
राजधानीमनङ्गस्य पञ्चनाम्बुधुनीं रतेः ।
विश्रमाणां कुलगृहं लीलोद्यानं मदश्रियः ॥ ५६ ॥
स तामालोक्य शीतांशुसौन्दर्यस्येव देवताम् ।
बभार मानसं हर्षोत्तुङ्गवीचितरङ्गितम् ॥ ५७ ॥
अत्रान्तरे समुत्थाय राक्षसीयुगलेन सा ।
पातालद्रुमिकोपेन गृहीता कम्पिताकृतिः ॥ ५८ ॥
संत्रासविह्वलां बालां तां लोलनयनां ततः ।
ररक्ष गन्धर्वसुतां मुक्तकेतुर्निहत्य ताम् ॥ ५९ ॥
साथ तद्भयनिस्तीर्णा तं विलोक्य स्मरोपमम् ।
पुलकालंकृततनुः कम्पसंपद्युताभवत् ॥ ६० ॥
ततो बन्दिगिराकर्ण्य तौ नामाभिजनौ मिथः ।
ननन्दतुः संगमाशां विधाय विपुलां हृदि ॥ ६१ ॥
अथ नाकिगणाहूतो दैत्येन्द्रसमराबनिम् ।
प्रययौ मानसं तस्यां विन्यस्य स्मरतापितः ॥ ६२ ॥
तत्र विद्युद्ध्वजमुखैरसुरैः संप्रहारिभिः ।
प्रावर्तत महद्युद्धं मुक्तकेतोः सुरश्रिये ॥ ६३ ॥
देवदानवसंग्रामे तस्मिन्नतिभयंकरे ।
क्षुभ्यत्सप्ताब्धिकल्लोलमालिका विचचार भूः ॥ ६४ ॥

१. 'मं सहर्षो' क.

[1]................................ ।
................................ ॥ ६५ ॥
................................ ।
................................ ॥ ६६ ॥
................................ ।
................................ ॥ ६७ ॥
................................ ।
पततां तत्र नागानां हयानां स्फुटतामपि ।
निर्घोषैः कम्पिताशेषलोकैर्जगदपूर्यत ॥ ६८ ॥
वीरावीरशिरोभिस्त्वं प्रकराश्चक्रिरे पुरः ।
कमल............विकोशकमलाकरान् ॥ ६९ ॥
भिन्नेभमुक्तानिचयाखेपामग्रे चकासिरे ।
शौर्यलक्ष्मीपरिणये लाजानामिव मुष्टयः ॥ ७० ॥
केशसेवालजटिला रुधिरावर्तदुस्तरा ।
ससर्प रक्ततटिनी भूतवेतालमालिका ॥ ७१ ॥
अपूर्वः प्राप तां रक्तवाहिनीं वाहिनीपतिः ।
ननर्तेव चलत्तुङ्गतरङ्गभुजमण्डली ॥ ७२ ॥
अथ विद्युद्ध्वजः प्रौढदोर्दण्डाकृष्टकार्मुकः ।
मुक्तकेतुं स्फुरच्चापद्वारकेङ्कारमभ्ययात् ॥ ७३ ॥
तयोर्लघु विचित्रं तु तत्पुरो युद्धमुद्धतम् ।
निश्चलाः सुभटाः सर्वे ददृशुः प्रेक्षका इव ॥ ७४ ॥
ततः खड्गेन तपसा प्रोन्ममाथ प्रमाथिनः ।
शिरो विद्युद्ध्वजस्याशु मुक्तकेतुरसंभ्रमः ॥ ७५ ॥
तथा च धैर्येण समं प्रौढकर्णोत्पलं शिरः ।
पपात दानवेन्द्रस्य रणश्रीकेलिकन्दुकः ॥ ७६ ॥

---

१. इदं त्रुटितं पुस्तकद्वय एव.

ततः शक्रमुखा देवाः संप्राप्तविजयोत्सवाः ।
विविशुश्चिरसंघृष्टनन्दनाममरावतीम् ॥ ७७ ॥

इति विद्युद्ध्वजवधः ॥ २ ॥

संपूजितोऽथ शक्रेण स्तूयमानो नभश्चरैः ।
पितुश्चन्द्रावलपुरं मुक्तकेतुर्ययौ बली ॥ ७८ ॥
तत्र पद्मावतीं ध्यायन्विरहानलदुःसहाम् ।
बभूव पाण्डुरच्छायः शशीव दिनभूधरः ॥ ७९ ॥
पद्मावती च हिमवत्तटोपान्तवनस्थलीम् ।
समेत्य तस्थौ विरहव्यथया सुविसंस्थुला ॥ ८० ॥
सा समाश्वास्यमानेव वल्लीभिर्भृङ्गकूजितैः ।
मुहुर्मूर्च्छां न तत्याज मुक्तकेतुप्रलापिनी ॥ ८१ ॥
दीर्घं निःश्वस्य बाष्पाम्बुपूरप्लावितलोचना ।
पट्टे लिलेख दयितं तदाकारानुरागिणीम् ॥ ८२ ॥
ततो मनोहरा नाम सखी तां द्रष्टुमाययौ ।
विचित्योपवनोपान्तं शङ्कितां विजने स्थिताम् ॥ ८३ ॥
तया लिखितमालोक्य सा लतान्तरिता प्रियम् ।
मुक्तकेतुं परिज्ञाय स्वैरं साध्वित्यभाषत ॥ ८४ ॥
ततः सखी स्मितमुखी रहः प्राह मनोहरा ।
लज्जानताननाम्भोजां मीलितार्धविलोचनाम् ॥ ८५ ॥
अभिलाषोऽप्यनुचितो न ते लज्जाकरः सखि ।
मनो विधत्ते कमला नान्यत्र पुरुषोत्तमात् ॥ ८६ ॥
समाश्वसिहि गच्छामि श्वोऽहं द्रष्टुं तव प्रियम् ।
मन्ये त्वद्विरहायासात्सोऽपि न स्वस्थविग्रहः ॥ ८७ ॥
इत्युक्त्वा सा विमानेन गत्वा चन्द्रावलं पुरम् ।
मुक्तकेतुं निजोद्याने ददर्श मदनातुरम् ॥ ८८ ॥

सुहृदा संयताख्येन तुषारकणवर्षिणा ।
आश्वास्यमानं प्रत्यग्ररम्भापल्लवशायिनम् ॥ ८९ ॥
मुहुः पद्मावतीमेव विलपन्तमुपेत्य तम् ।
सखी विरहवृत्तान्तं सा तस्मै तव्यवेदयत् ॥ ९० ॥
सहसामृतवर्षेण ह्लाद्यमान इवाथ सः ।
तया तदुपदिष्टेन प्रययौ हिमवत्तटीम् ॥ ९१ ॥
तत्रोपवनपर्यन्ते सिद्धर्षिगणसेविते ।
गौरीमिवेश्वरप्राप्त्यै बद्धध्यानां ददर्श ताम् ॥ ९२ ॥
प्राप्य पद्मावतीं कान्तां स तां मन्मथतापिताम् ।
सरहर्परसाकृष्टस्तपोवनमुपाविशत् ॥ ९३ ॥
समुल्लङ्घ्याश्रमद्वारं प्रयातं वल्लमान्तिकम् ।
मुनिर्दृढव्रतो दृष्ट्वा भुवं गच्छेत्यथाशपत् ॥ ९४ ॥
दैवादमृतमासाद्य भग्नं मत्त्वेव भाजनम् ।
स शापदुःखात्प्रययौ शरणं तद्गुरुं मुनिम् ॥ ९५ ॥
स तं कुलपतिः प्राह वत्स मा दुःखितो भव ।
अवश्यंभाविनो भावा न भूत्वा यान्ति संक्षयम् ॥ ९६ ॥
पुरा देवासुररणे मोहनास्त्रे त्वयेरिते ।
अभूतां दानवपुरे वियुक्तौ किल दम्पती ॥ ९७ ॥
कान्तावियोगदुःखाच्छापादयं ते समुपस्थितः ।
अयं तु मुनिशापस्ते मयातः पुनरुक्तिताम् ॥ ९८ ॥
असावल्पापराधेऽपि पृथुकोपो दुराशयः ।
दृढव्रतस्ते मर्त्यस्य यातु वाहनपक्षिताम् ॥ ९९ ॥
इति श्रुत्वा मुनिवचो मुक्तकेतुरगाद्गतम् ।
चन्द्रचूडसमादिष्टं गणं प्राप्यानुगं क्षणात् ॥ १०० ॥

इति मुक्तकेतुशापः ॥ १६

च्युतो देवसभाभिख्ये पुरे सुरपुरोपमे ।
मेरुध्वजस्य नृपतेः स श्रीमान्प्राप्य पुत्रताम् ॥ १०१ ॥

मुक्ताध्वज इति ख्यातः सोऽभूद्विक्रमभूषणः ।
गणपध्वज इत्यासीद्गुणस्तस्यैव चानुजः ॥ १०२ ॥
मुक्ताध्वजोऽथ कालेन तं खगं प्राप्य वाहनम् ।
मुनीन्द्रयज्ञरक्षायै ययौ धन्वी पितुर्गृहात् ॥ १०३ ॥
सानुगोऽसौ मुनिमखे घ्नंस्ते दानवमण्डलम् ।
जघान घननिर्घोषैरस्त्रैरस्त्रविदां वरः ॥ १०४ ॥
दग्ध्वा पाशुपतास्त्रेण निखिलं दैत्यकाननम् ।
सानुजो राजतनयो जेतुं पातालमाविशत् ॥ १०५ ॥
विलोक्य मालिनां तत्र जित्वा पातालवासिनम् ।
प्रददौ तत्सुतां कान्तां तस्मै मुक्ताध्वजस्ततः ॥ १०६ ॥
अथ प्रणम्य श्रीकण्ठं प्रहृष्टो हाटकेश्वरम् ।
पूर्वाभ्याससमादिष्टां प्रययौ हिमवत्तटीम् ॥ १०७ ॥
तत्र जातिं निजां स्मृत्वा मुक्तकेतुतनुं ततः ।
प्रियां पद्मावतीं प्राप्य स्वप्ने शर्वेण सूचिताम् ॥ १०८ ॥
सापि स्वप्ने समादिष्टं पार्वतीपतिना वरम् ।
पार्वती विरहक्षामा सिक्तेवासीत्सुधारसैः ॥ १०९ ॥
गणे जाते तु कालेन शांकरं तत्पदं निजम् ।
मुक्तकेतुरभूत्कान्तासंभोगासक्तमानसः ॥ ११० ॥
संभोगाविधवां राजंस्तामादाय सुलोचनाम् ।
ययौ व्योम्ना विमानेन स सुरैरभिनन्दितः ॥ १११ ॥
चन्द्रावलपुरं गत्वा चन्द्रकेतुं प्रणम्य सः ।
जनकं विजये भेजे विद्याभृच्चक्रवर्तिताम् ॥ ११२ ॥
इति विद्याधरेन्द्रेण सा गन्धर्वनृपात्मजा ।
वियोगाब्धिं समुत्तीर्य प्राप्ता पद्मावती प्रिया ॥ ११३ ॥
अचिरात्त्वमपि प्राप्य प्रियां मदनमञ्जुकाम् ।
विधातुरानुकूल्येन देव निर्वृतिमाप्स्यसि ॥ ११४ ॥

इत्याकर्ण्य सुहृद्वचः प्रियतमासंप्राप्तिचिन्तापरः
केयूरार्पितकङ्कणः शिखिसखैर्निःश्वासवातैर्मुहुः ।
म्लानिं हारलतां नयन्दिनशशिव्यापाण्डुगण्डस्थल-
स्थसौ वालमृणालपल्लवमये श्रीवत्सराजात्मजः ॥ ११५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथायां पद्मावती नाम द्वादशो लम्बकः ।

---

पञ्चलम्बकः ।

वल्गत्कालीकटाक्षावलिकलित इव स्फारहाराहिराज-
स्फूर्जद्दंष्ट्राग्रधूमभ्रममलिन इव त्र्यम्बकस्याशु कण्ठः ।
भूत्यै वः क्षिप्तकर्णे प्रणयिकरधृतः केकिपिच्छाभिरामै-
र्गौरी लीलाकिराती भवति पुनरिव प्रेषिभिर्यन्मयूखैः ॥ १ ॥
अत्रान्तरे क्वापि यातं पुनः प्राप्तमथात्मजम् ।
दृष्ट्वा लेभे रतिं वीरो वत्सराजः प्रियासखः ॥ २ ॥
तं वल्लभावियोगार्तं ज्ञात्वा वत्सनरेश्वरः ।
बभूव सह देवीभ्यां शोकपावकमूर्च्छितः ॥ ३ ॥
तदा रुमण्वानवदत्कुपितः पृतनापतिम् ।
युष्माभिर्वान्धवैः किं मे रक्षितं नृपतेरिति ॥ ४ ॥
सोऽब्रवीद्देव सर्वत्र नास्माभिरनधिष्ठितम् ।
प्राकारगोपुराद्यालं कृतमव्यग्रमानसैः ॥ ५ ॥
वयं कस्य वराकस्य लोके परिभवास्पदम् ।
भवत्प्रतापसिन्दूररक्षातिलकमुद्रिताः ॥ ६ ॥
किं तु न प्रभवामोऽत्र देव व्योमविहारिणाम् ।
विद्याधराणां तैर्मन्ये कृतः कार्येषु विप्लवः ॥ ७ ॥
अथ वा राजपुत्रेण गोत्रस्खलनकोपिता ।
स्थिता मानवती क्वापि छन्ना मदनमञ्जुका ॥ ८ ॥

1. 'प्रेङ्खिभिर्य-' इति भवेत्.

अष्टावक्रस्य तनयां सावित्रीमङ्गिराः पुरा ।
धर्मपत्नीमवाप्यासीद्गृहाश्रमसुखस्थितिः ॥ ९ ॥
ध्यानस्थितं कदाचित्तं सा दृष्ट्वा दयितं प्रिया ।
अन्यां चिन्तयतीत्युक्त्वा ययौ कोपपराङ्मुखी ॥ १० ॥
सा गत्वा काननोपान्तं पाशं कण्ठे निवेशयत् ।
प्राणास्तृणं हि नारीणां प्रियप्रणयतानवे ॥ ११ ॥
सवित्र्या सा ततोऽभ्येत्य देव्या दिव्यशरीरया ।
सावित्री रक्षिता पाशादितीर्ष्याकलुषाः स्त्रियः ॥ १२ ॥

इति सावित्र्याख्यायिका ॥ १ ॥

इति सेनापतिवचः श्रुत्वा वत्सनरेश्वरः ।
यौगंधरायणसखो बभूव ध्याननिश्चलः ॥ १३ ॥
नरवाहनदत्तोऽपि प्रियाविरहमोहितः ।
नोद्यानेषु न वापीषु न हर्म्येष्वाययौ रतिम् ॥ १४ ॥
दोलासु चित्रशालासु वासवेश्मसु कानने ।
न बबन्ध धृतिं धीरः कः स्वस्थो विधिवे त्रिधौ ॥ १५ ॥
गुरुरुज्झाङ्कुशस्त्वेवं मित्रेणाश्वासितस्य च ।
पुटपाक इवासक्तस्तस्यामूच्छोकपावकः ॥ १६ ॥
स प्रविश्य पुरोद्यानं विमाने सुरभिष्वपि ।
शुशोच तत्कुचापीडफुल्लां कुरुबकावलीम् ॥ १७ ॥
दयितामधुगण्डूषचरणावावपुष्पितौ ।
अशोकबकुलौ दृष्ट्वा प्रियाकेलिशिखण्डिनम् ॥ १८ ॥
बर्ही बिभर्ति यस्तस्याः कटाक्षपटलीमिव ।
न हि तं फुल्लकमलं पूर्णचन्द्रां न वा निशाम् ।
स सेहे चन्द्रवदनावदनध्यानतत्परः ॥ १९ ॥
सरोजनयनां वापीं रथाङ्गपुलकस्तनीम् ।
हंसालीरसनां वीक्ष्य शुशोच स्मृतवल्लभः ॥ २० ॥

गोमुखाङ्कनिषण्णाङ्गं प्रियाविरहमोहितम् ।
उद्यानलिनीतीरमरुतस्तं सिषेविरे ॥ २१ ॥
मरुभूतिरथाभ्येत्य दन्तांशुनिवहैः सुधाम् ।
विकिरन्निव तं प्राह हर्षव्याकोशलोचनः ॥ २२ ॥
दिष्ट्या विवर्धसे देव दृष्टा मदनमञ्चुका ।
इयमास्ते सुवदना रक्ताशोकतरोरधः ॥ २३ ॥
श्रुत्वेति सहसोत्थाय प्रहृष्टो नरवाहनः ।
न सत्यं दर्शय कासावित्याहोत्कण्ठिताशयः ॥ २४ ॥
मन्यमानस्ततः स्वप्नं गत्वा तद्दिष्टवर्त्मना ।
स ददर्श प्रियां स्फारनेत्रपात्रं पिबन्निव ॥ २५ ॥
किमेतदिति सानन्दं पृष्टा तेन सुमध्यमा ।
साब्रवीन्नवलावण्यैः पूरयन्ती दिगन्तरम् ॥ २६ ॥
पुरा त्वत्संगमोपाये यक्षः संतोषितो मया ।
पूजाबलिप्रदानेन पार्न तस्मै तु नार्पितम् ॥ २७ ॥
तस्मादयं वियोगोऽभूदावयोः क्षपितश्च सः ।
इत्याह कृतकाकारस्तुल्या मदनमञ्चुका ॥ २८ ॥
स तु प्रियस्वरूपां ज्ञात्वा लब्धां वत्सनरेश्वरः ।
कौशाम्बीमुत्सवसेरसिन्दूरारुणितां व्यधात् ॥ २९ ॥
पुनर्विघ्नविनाशाय कल्पितोद्वाहमङ्गलम् ।
कूटविद्याधरी तस्थौ नरवाहनकामिनी ॥ ३० ॥
ततस्तद्वदनामोदसुगन्धमधुनिर्वृतः ।
ययौ वत्सेश्वरसुतः सेव्यमानः सुहृज्जनैः ।
यत्नात्स दयितां मेने स्पर्शे मदनमञ्चुकाम् ॥ ३१ ॥
निद्रानिमीलितदृशो वदनं मम वल्लभ ।
न द्रष्टव्यं त्वयेत्याह सा न हारादिव प्रियम् ॥ ३२ ॥
ततः सुरतसंमर्दे गाढनिद्रां सकौतुकः ।
ददर्शांशुकमुद्धाट्य तां विनिद्रो नृपात्मजः ॥ ३३ ॥

निर्मितामिव लावण्यैः कम्पितामिव यौवनैः ।
निष्पन्नामिव पीयूषैर्वीक्ष्यैतां निश्चलोऽभवत् ॥ ३४ ॥
अमानुषोचितस्फारं प्रभाभरितमाननम् ।
स तस्या हेमकमलच्छायं दृष्ट्वा स्मयं ययौ ॥ ३५ ॥
अहो दिव्यवपुः कान्ता केयमानन्दकौमुदी ।
बिभर्ति मत्प्रियारूपमिति सैरं विचिन्तयत् ॥ ३६ ॥
क सा प्रियेति दुःखार्तो निर्विशेषेऽतिविस्मितः ।
दिव्येति धन्यताभानी सोऽभूद्दोलाचलाशयः ॥ ३७ ॥
तत्कान्तिपानहृष्टोऽपि विना मदनमञ्जुकाम् ।
सयत्नत्याज स धृतिं प्रेमबन्धो हि रम्यता ॥ ३८ ॥
सहसा प्रतिबुद्धाथ पादसंवाहनोद्यतम् ।
समालोक्य तु सा माह हृष्टा विनयशालिनी ॥ ३९ ॥
अस्ति विद्याधराधीशो यशस्वी वेगवानिति ।
यस्याषाढपुरे रम्या राजधानी मनोजवा ॥ ४० ॥
तस्य मानसवेगाख्यः पुत्रो बलवतां वरः ।
सुता वेगवती चाहं त्वन्मुखेन्दुचकोरिका ॥ ४१ ॥
स कदाचिन्निजयशःशुभ्रं पलितमात्मनः ।
दृष्ट्वाभिषिच्य तनयं विरक्तोऽभूद्वने मुनिः ॥ ४२ ॥
याचितोऽपि मया भ्राता कुलविद्यापदस्थितिम् ।
मात्सर्यान्न ददौ लुब्धो न हि स्वजनवत्सलः ॥ ४३ ॥
ततस्तपोवनस्थस्य गत्वाहं पितुराश्रमम् ।
स्थिता सपर्यासंतोषप्रसादितमुनीश्वरी ॥ ४४ ॥
तत्र केलिकलालोला कदाचिन्मत्तबर्हिणम् ।
अङ्गहारामिव बाला करतालैरनर्तयम् ॥ ४५ ॥
नृत्यतस्तस्य विबभौ कलापो विविधच्छविः ।
व्योमयानादिव गतः शक्रचापः सहस्रधा ॥ ४६ ॥

बहुरूपं विधायाशु मणिमान्नाम राक्षसः ।
जहार मां ततस्तस्मै चुकोप मुनिमण्डलः ॥ ४७ ॥
स मां विमुच्य प्रोवाच मुनिक्रोधावधिर्मम ।
कौवेरोऽयं गतः शापो निगद्येति दिवं ययौ ॥ ४८ ॥
ततोऽहमपि कालेन तुष्टस्य पितुराज्ञया ।
अवापमखिला विद्यास्तत्प्रभावाविक्रमप्रमाः ॥ ४९ ॥
अत्रान्तरे स्मरोन्मत्तो विप्रलोक्य विशृङ्खलः ।
जहार तव मद्भ्राता प्रियां मदनमञ्चुकाम् ॥ ५० ॥
अलक्षितस्तामादाय निर्मर्यादः पतिव्रताम् ।
अयाचत रतिं पापः श्वसः स्वर्गाङ्गनामिव ॥ ५१ ॥
दशास्यस्येव शापोऽस्ति तस्याप्यन्यवधूरते ।
पावयैनामिति स्वैरं मामलज्जस्ततोऽवदत् ॥ ५२ ॥
तूर्णं मानसवेगेन प्रेरिताहं तव प्रियाम् ।
अवदं मानुषी किं त्वं शक्रतुल्ये निरादरा ॥ ५३ ॥
श्रीमान्मानसवेगोऽयं कस्य न नयनप्रियः ।
का हि दैवविपर्यस्ता मधुरं वेत्ति नामृतम् ॥ ५४ ॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा साध्वी मदनमञ्चुका ।
निःश्वस्य साश्रुनयना मत्पुरस्त्वद्यशोऽभ्यधात् ॥ ५५ ॥
श्रुत्वैव त्वद्गतमतिस्ततोऽहमभवं विभो ।
मनोभवभुजङ्गो हि यत्सत्यं श्रुतिलोचनः ॥ ५६ ॥
गौरीवरो ममाभूच्च यस्य नास्ति श्रुतिं गते ।
वशमेष्यसि कामस्य स ते भर्ता भविष्यति ॥ ५७ ॥
ततस्त्वां स्वैरमामन्त्र्य यद्वेणीं पतिव्रताम् ।
त्वामागतास्मि तद्रूपा प्राप्तुं परिणयप्रियम् ॥ ५८ ॥
पूर्णश्च मम संकल्पः प्रमाणमधुना भवान् ।

---

१. 'बलिहि' क.

.................................................. ।

..................एवं द्रष्टुं मदनमञ्चुकाम् ॥ ५९ ॥

इति वेगवतीप्राप्तिः ॥ २ ॥

इति तद्वचसा व्योमयानारूढो नृपात्मजः ।
ददर्श कुलशैलेन्द्रान्वल्मीकानिव भूतले ॥ ६० ॥
अल्पपात्रमिवाम्भोधिं नदीं शतपदीमिव ।
पश्यन्समीरणपथा स ययौ दयिताङ्कगः ॥ ६१ ॥
क्षणं वेगवतीवक्त्रशशाङ्कोद्भासितं नभः ।
बभूवामृतकल्लोलक्षाल्यमानमिवाभितः ॥ ६२ ॥
कुटिलावर्तविधुरं राजसूनोः सितांशुकम् ।
कर्पूरकर्णपूरत्वमगमद्गगनश्रियः ॥ ६३ ॥
तस्य सूर्यकरोच्चण्डकुण्डलाताण्डवैर्बभौ ।
आखण्डलधनुर्दण्डमण्डितेवाभ्रमण्डली ॥ ६४ ॥
वेगाद्गतिविलोलेन तस्या हारेण हारिणा ।
रराजोद्दण्डडिण्डीरपाण्डुराब्धिनिभं नभः ॥ ६५ ॥
अत्रान्तरे नरपतेः सहसान्तःपुरोदरे ।
उदतिष्ठद्गते तस्मिन्करुणो रोदनध्वनिः ॥ ६६ ॥
प्रियासखः क्व यातो मे पुत्रको नरवाहनः ।
सा गत्वा तं समुद्रस्य तीरे कनकपर्वते ॥ ६७ ॥
नीत्वास्थाप्य पुरं याता द्रष्टुं मदनमञ्चुकाम् ।
तत्र विद्याधरपतिं सा तमन्धगृहेऽक्षिपत् ॥ ६८ ॥
वीणादत्ताभिधानोऽथ श्रीमान्दिव्यकुमारकः ।
तमुज्जहार सत्त्वेन कुलं सुकृतवानिव ॥ ६९ ॥
कथितान्वयनामानं नरवाहनमाह सः ।
इह सागरदत्ताख्यो गन्धर्वाधिपतेः पतिः ॥ ७० ॥
गन्धर्वदत्ता तस्यास्ति पुत्री तस्या मृगीदृशः ।
विष्णुगीतिज्ञस्तत्राय देयाहमिति निश्चयम् ॥ ७१ ॥

वयं तच्च न विद्मेह गीताभ्यासपरायणाः ।
निःशब्दजनसंचारे वल्लकीपाणयः स्थिताः ॥ ७२ ॥
श्रुत्वेति गीतिकाभिज्ञं सत्यमस्तीतिवादिनम् ।
वीणादत्तो निनायाशु तत्पुरं नरवाहनम् ॥ ७३ ॥
तत्र गन्धर्वराजस्य सभायामभिपूजितः ।
शुश्राव वीणां तत्पुत्र्याः सारमञ्जुलमूर्च्छनाम् ॥ ७४ ॥
केशांशमिश्रया तन्त्र्या श्रुत्यंशो विस्तरीकृतः ।
इत्युक्त्वा राजपुत्रस्तां स्वयं जग्राह वल्लकीम् ॥ ७५ ॥
वाललेशं विचार्यासौ गायन्वैष्णवगीतकम् ।
वीणास्खलस्य वाद्येन गन्धर्वा विस्मयं ययुः ॥ ७६ ॥
प्रतिज्ञापाठमुच्चार्य वरपुत्रीं वरे स्थिताम् ।
ततो गन्धर्वदत्तां स ददर्श वरवर्णिनीम् ॥ ७७ ॥
दृशा कुवलयाकीर्णां त्विषा शशिसमाकुलाम् ।
भ्रुवा स्मरधनुर्व्याप्तं विदधानामिवाखिलाम् ॥ ७८ ॥
पित्रार्पितां तां लावण्यनलिनीं नरवाहनः ।
प्राप्य फुल्लोत्पलदृशं विजहार स्मराकृतिः ॥ ७९ ॥

इति गन्धर्वदत्ताप्राप्तिः ॥ ३ ॥

ततः कदाचिद्गन्धर्ववरोद्यानस्थितं दिवः ।
विद्याधरी समभ्येत्य प्राह तं कन्यकानुगा ॥ ८० ॥
पुत्री ममेयं विद्यानां धाम नाम्नाजिनावती ।
विद्याधरपतेश्चण्डसिंहस्य कुलभूषणम् ॥ ८१ ॥
असंशयं त्वया भाव्यं विद्याभृच्चक्रवर्तिना ।
तद्देया सुन्दरी तुभ्यमेतामर्हति नापरः ॥ ८२ ॥
इह स्थितिर्न युक्ता ते मायिनो गुलिकापराः ।
अवन्तिनगरीमेहीत्युक्त्वा तमनयत्क्षणात् ॥ ८३ ॥
राजा प्रसेनजित्तत्र तं वरोद्यानचारिणम् ।
दृष्ट्वा ज्ञातान्वयायासौ हृष्टः सतनयां ददौ ॥ ८४ ॥

भगीरथयशां नाम तां प्राप्य नरवाहनः ।
न पूर्वपरिणीतानां सस्मार सुहृदो न वा ॥ ८५ ॥
विशाललोचनदलं सुगन्धिस्मरकेसरम् ।
पिबतस्तन्मुखाम्भोजं भृङ्गता तस्य काप्यभूत् ॥ ८६ ॥

इति भगीरथयशःप्राप्तिकथा ॥ ४ ॥

याते संध्यासखे क्वापि कदाचिदथ भास्करे ।
निमीलति जगत्पद्मे त्रियाला""घलासिनी ॥ ८७ ॥
संकुचन्नलिनीखण्डसमुत्थैरलिमण्डलैः ।
मण्डितेष्वथ लोकेषु तिमिरच्छद्मना निशि ॥ ८८ ॥
ज्योत्स्नामृतनदीधौतव्योम्नि कान्तितरङ्गिणीम् ।
पाञ्चजन्यांशुविशदे मुरारेरिव वक्षसि ॥ ८९ ॥
कान्तासितैरिव श्वेतैर्यशोभिरिव मार्जितैः ।
आनन्दैरिव संसिक्तैर्जातैर्जगति सत्रैतः ॥ ९० ॥
सौधे भगीरथयशागाढालिङ्गननिर्वृतः ।
सुष्वाप पृथुमाणिक्यपर्यङ्के नरवाहनः ॥ ९१ ॥
ततः प्रभावती नाम तं विद्याधरसुन्दरी ।
हा दुःखं दुःखमित्युक्त्वा ससंभ्रममबोधयत् ॥ ९२ ॥
प्रतिबुद्धोऽथ ललनावदनं मदनोपमः ।
शरीररहितं ज्ञात्वा गवाक्षेण ददर्श सः ॥ ९३ ॥
तं दृष्ट्वा विस्मितोऽत्यन्तं राजपुत्रो व्यचिन्तयत् ।
अहो लीलालकमिदं पतितं ललनाननम् ॥ ९४ ॥
अथ विस्मयमापन्नोऽचिन्तयत्स्वयतः पुरा ।
चाताविदानवपतिश्चचारैको वनान्तरे ॥ ९५ ॥
अलक्तकारुणं पादं स ददर्श सनूपुरम् ।
शेषाङ्गहरितं तं च दृष्ट्वागृद्विस्मयाद्यसुः ॥ ९६ ॥
हर्षशोकाद्भुतस्त्रासात्सहसान्तः समुत्थिताः ।
सर्वेन्द्रियनिरोधेन संत्यजन्त्येव जीवितम् ॥ ९७ ॥

चिन्तयित्वेति वत्सेशतनयस्तां निरीक्षितुम्।
निर्ययौ सा च सहसा बभूवाकारसंयुता ॥ ९८ ॥
सा दुःखकारणं पृष्टा राजपुत्रेण सुन्दरी।
प्राह गान्धारनाम्नोऽहं विद्याधरपतेः सुता ॥ ९९ ॥
गङ्गाधरे जनपदे तत्पुरी पुष्करावती।
साहं प्रभावती तुभ्यं धात्रा दिष्टा त्वयि प्रिया ॥ १०० ॥
पूर्वभार्यां परित्यज्य कान्तां मदनमञ्चुकाम्।
तां च वेगवतीं बालां त्वमन्यललनारतः ॥ १०१ ॥
दुःखकारणमेतन्मे श्रुत्वेति नरवाहनः।
प्रियां स्मृत्वा शुचं लज्जामुत्कण्ठां च समं ययौ ॥ १०२ ॥
दीपप्रदक्षिणव्याजाचेनोद्वाहं विधाय सा।
तं निनाय वधूं द्रष्टुं रुद्धां मदनमञ्चुकाम् ॥ १०३ ॥
गच्छन्गगनमार्गेण दृष्ट्वा दिव्यनदीतटम्।
प्रौढां नितम्बविपुलां प्राह तां नरवाहनः ॥ १०४ ॥
प्रभावति प्रियतमे हेमवल्लीनिकुञ्जके।
अस्मिन्वरसरत्तीरे रन्तुं त्वामीहते मनः ॥ १०५ ॥
प्रभावती निशम्येति वल्लभं प्राह सस्मिता।
न संप्रति रतक्रीडां भजे लज्जावती त्वया ॥ १०६ ॥
स्मृतं मयाब्रवीचन्मां सखी मदनमञ्चुका।
मदर्थं राजपुत्रं चेदानेतुं यासि सुन्दरि।
न तत्कार्यं त्वरवशाद्वेगवत्या यथा कृतम् ॥ १०७ ॥
इति सख्यं मृषा क्वापि कृतवत्यसि चापलम्।
गुप्तं तदधुना सेव्यं जानीते न यथा सखी ॥ १०८ ॥
ज्ञात्वान्यकान्तासक्तं त्वां कदाचिज्जीवितं सती।
जहाति विषमः स्त्रीणामीर्ष्याविषकृतो ज्वरः ॥ १०९ ॥
पुरान्यनरसंसक्ता चण्डी मच्छकामिनी।
निर्गत्याम्येत्य सत्वरं ददौ पुत्राय मोदकम् ॥ ११० ॥

कदाचिदथ सा गत्वा रिक्तहस्तागता गृहम् ।
पुत्रेण याचिता प्राह सदा मे मोदकः कुतः ॥ १११ ॥
इदानीमत्र भुक्तोऽसि नासन्नो मोदकः कुतः ।
श्रुत्वेति बालस्तत्याज जीवितं श्रुटिताशयः ॥ ११२ ॥
सहसा प्रियविच्छेदं वज्रपातं सहेत कः ।
त्वत्सङ्गात्कुप्यति व्यक्तं मह्यं मदनमञ्चुका ॥ ११३ ॥
इति प्रभावतीवाक्यं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
अवापदापादपुरे गूढां मदनमञ्चुकाम् ॥ ११४ ॥
विशालविरहक्षामां पाण्डुगण्डां श्लथालकाम् ।
तां रूक्षवेणीमालोक्य जानकीमिव राघवः ॥ ११५ ॥
भेजे त्वरां च हर्षं च संभ्रमं च व्यथां तथा ।
दैन्यं क्रोधं च शोकं च लज्जां च नरवाहनः ॥ ११६ ॥
प्रभावत्याः प्रभावेण तद्रूपच्छन्नविग्रहः ।
विजहार ततः कान्तारतिसंभोगलालसः ॥ ११७ ॥
कण्ठावलम्बितं दृष्ट्वा चिरात्प्रियतमं सती ।
सद्यः सिक्तेव पीयूषैरभून्मदनमञ्चुका ॥ ११८ ॥
ततो मासद्वये जाते विज्ञायान्तःपुराश्रयैः ।
क्रुद्धो मानसवेगस्तमाययौ युद्धदुर्मदः ॥ ११९ ॥
राजपुत्रोऽपि तं लब्धानालब्धुं गुलिकाधरान् ।
हत्वा तत्खड्गमादाय तस्थौ समरसंमुखः ॥ १२० ॥
बाणासुरमिव क्रुद्धं ज्ञात्वा विद्याधरेश्वरम् ।
माता तं प्राह रक्ष्योऽयं प्राद्युम्निरिव धैर्यभूः ॥ १२१ ॥
वेगवत्याः पतिरसौ स्वसुस्तव नृपात्मज ।
जामाता तव धर्मेण रक्षणीयः प्रयत्नतः ॥ १२२ ॥
त्वत्सभायां विचारोऽद्य क्रियतां साधुसंसदि ।
वधो न शस्यते राजन्नपर्यालोचितागसः ॥ १२३ ॥

मातुः पृथिव्याः श्रुत्वेति तथेत्युक्त्वा समाययौ ।
बद्धा राजसुतं यत्नान्निनाय स्वसभास्थलम् ॥ १२४ ॥
तत्र वायुपथाभिख्यः कुलवृद्धः सभापतिः ।
त्राये मानसवेगं तं तां च पप्रच्छ धर्मवित् ॥ १२५ ॥
भगिनी दूषितानेन ममेत्याह स मानसः ।
विक्रीत इव मौनं स चक्रे वत्सेश्वरात्मजः ॥ १२६ ॥
वदैनं मूकतां प्राप्तं प्राह धीमान्सभापतिः ।
अहो विषादमौनं ते ह्यपराजयसिद्धये ॥ १२७ ॥
मौनं वादे क्षमां शक्तौ याच्ञां लुब्धे मदं गुरौः ।
लज्जां च व्यवहारेषु न शंसन्ति विपश्चितः ॥ १२८ ॥
श्रुत्वेति राजतनयः प्रोवाच गतसंभ्रमः ।
सतां सुखे च दुःखे च समानो धैर्यविक्रमः ॥ १२९ ॥
विभान्ति ये सदा न्यायैः सभा भाति च सज्जनैः ।
ते धर्मेण प्रकाशन्ते न सोऽस्तीह किमुच्यते ॥ १३० ॥
मया मानसवेगस्य विवादोऽयमुपस्थितः ।
आसनस्थो ममाग्रे च संयतो माययान्वहम् ॥ १३१ ॥
अर्थिनोः समता यत्र तत्र न्यायो विवेच्यते ।
प्राप्तौ विवादपदवीं समौ सामान्यभूमिपौ ॥ १३२ ॥
उपपन्नमिति श्रुत्वा तथेत्याह सभापतिः ।
इति राजसुतस्योक्त्या जितो विद्याधरात्मजः ।
स वैर्निवार्यमाणोऽपि हन्तुमैच्छन्नृपात्मजम् ॥ १३३ ॥
ततः सभापतिः क्रुद्धो विद्याभिरवधूय तान् ।
निजसेनां समाहूय ररक्ष नरवाहनम् ॥ १३४ ॥
विद्यामृतां कुले देवो मामवादः कपालभृत् ।
तद्रूपेण प्रभावत्या रक्षितः सोऽभवत्सुखी ॥ १३५ ॥

१. 'गुरेषः'.

ततः क्षणात्प्रभावत्या रक्षायै सानुरागया ।
ऋ१ष्यमूकगिरेः सानौ न्यस्तः सिद्धतपोवने ॥ १३६ ॥
तत्र बाहुलताजालश्यामले काननस्थले ।
विजहार तथा स्वैरं लीलासुरतलालसः ॥ १३७ ॥
ततः पम्पाभिधं प्राप्य सरो रामेण यत्र ताः ।
निःश्वासग्लपिताङ्गेन क्षपिता विरहक्षपाः ॥ १३८ ॥
साधुचित्तमिव स्वच्छं परार्थमिव शीतलम् ।
उन्मत्तमिव सावेगं शृङ्गारिणमिवोज्ज्वलम् ॥ १३९ ॥
चन्द्रस्येव निजावासं स्फटिकाद्रेरिवाशयम् ।
सुधाम्बुधेरिवापत्यं गगनस्येव दर्पणम् ॥ १४० ॥
अप्सरःकेशकुसुमैः किंनरीकुचकुङ्कुमैः ।
नागतिलककर्पूरैः सूचितस्नानविभ्रमम् ॥ १४१ ॥
भिन्नाञ्जनकणश्यामैर्भ्रमरैर्बद्धमण्डलम् ।
चक्रवाककुलोत्सृष्टरामशापाक्षरैरिव ॥ १४२ ॥
कृतावगाहमाकुम्भं विन्ध्यकुञ्जरयूथपैः ।
आश्रितं सागरधिया वज्रभीतैरिवाद्रिभिः ॥ १४३ ॥
तीरोपान्तलतालास्यगुरुभिः कमलानिलैः ।
अपि दिग्गजगण्डेभ्यः सुहृत्स्येवकृषट्पदम् ॥ १४४ ॥
रतिमानिव पुष्पेषुः स तद्वीक्ष्य प्रियासखः ।
जहर्ष गुणसङ्गेन को हि नाम न तुष्यति ॥ १४५ ॥
ततः प्रभावती प्राह निर्वर्ण्य सरसः श्रियम् ।
ऋष्यमूकतटोपान्ते कान्तसंतोषिताशया ॥ १४६ ॥
इह वानरराजेन हत्वा दुन्दुभिदानवम् ।
सुग्रीवो वालिनो भ्राता चिरं तस्थौ विवासितः ॥ १४७ ॥
एते सप्त महातालां विद्धा रामेण पत्रिणा ।
यैर्नीतं यद्यशः सप्तलोककर्णावतंसताम् ॥ १४८ ॥

---

१. 'कृष्य' इति क.

इत्यादि रामसंबद्धं कथयित्वा प्रभावती।
ललास सह कान्तेन विलासरतिलालसा ॥ १४९ ॥

इति प्रभावतीप्राप्तिकथा ॥ ५ ॥

अथादृश्यत वक्रेन्दुकान्तिक्षालितदिङ्मुखा।
धनवत्या समं मात्रा चारुनेत्राजिनावती ॥ १५० ॥
तत्संभोगसुखासक्तं राजपुत्रमभाषत।
तन्माता नेह ते युक्तं स्थातुं बहुरिपोरिति ॥ १५१ ॥
ततस्तद्धियया तूर्णं कौशाम्बीं नरवाहनः।
विद्याधरीभ्यां सहितः प्राप धीमानिव प्रियम् ॥ १५२ ॥
वयस्यैः संगतस्तत्र महृष्टैर्गोमुखादिभिः।
विवाहे सहसा यातां लेभे वेगवतीमपि ॥ १५३ ॥
विद्याधरीवृतं पुत्रं प्राप्तं वत्सनरेश्वरः।
ज्ञात्वा ननन्द देवीभ्यां सामात्यो विहितोत्सवः ॥ १५४ ॥

इत्यजिनावतीप्राप्तिकथा ॥ ६ ॥

अथाजग्मुश्चमूचन्द्रप्रभामण्डलमण्डिताः।
विद्याधराधिपा व्योम्नि वेगताण्डविकुण्डलाः ॥ १५५ ॥
श्वशुरास्तद्वयस्याश्च द्रष्टुं वत्सनरेश्वरम्।
हृष्टाः सभामाविविशुः पूजिता जगतीभुजा ॥ १५६ ॥
रत्नासनेषूपविष्टा विवर्णास्ते प्रभाजुषः।
सुमेरुशिखरारूढास्त्रिदशा इव सगताः ॥ १५७ ॥
वीरोऽमितगतिः श्रीमान्सदा वायुपथाभिधः।
तथा पिङ्गलगान्धारश्चण्डसिंहनासहस्रिणः(?) ॥ १५८ ॥
ते वत्सराजमाभाष्य कुशलं नतमौलयः।
प्रादुर्भुवैर्वितन्वाना यद् सोमप्रभां सभाम् ॥ १५९ ॥
अयं तव सुतः श्रीमान्विजयी नरवाहनः।
हरेण नः समादिष्टश्चक्रवर्ती भविष्यति ॥ १६० ॥

जगत्त्रयकृतास्माभिरस्य शासनमुद्रिता ।
कृते मानसवेगाच्च गौरीमुण्डाच्च दुर्भगात् ॥ १६१ ॥
वीरो विद्याविरतस्त्वविद्धं(?) नरवाहनः ।
नार्हति त्रिपुरारातिवरदृप्ता हि खेचराः ॥ १६२ ॥
सदास्माभिरितो गत्वा सिद्धक्षेत्रं यतव्रतः ।
सिद्धविद्यः पुरा जित्वा पुनरेष्यति ते सुतः ॥ १६३ ॥
इति तद्वचसा राज्ञा विसृष्टो नरवाहनः ।
सह तैस्तद्विमानेन सिद्धक्षेत्रं क्षणाद्ययौ ॥ १६४ ॥
मरुभूतिमुखैः सार्धं सिद्धक्षेत्रमवाप्य सः ।
तस्थौ मुनिरिवाक्षोभ्यो निस्तरङ्गोऽम्बुधिप्रभः ॥ १६५ ॥
ततश्चचाल वसुधा ववुर्वाताः शिलामुचः ।
पेतुरुल्काः सनिर्घोनाश्चुक्षुभुर्मकराकराः ॥ १६६ ॥
अथ चामूद्दिवा क्षोभाद्गुहाविवरदारुणः ।
स्फुटतामिव वेणूनां घोरश्चटचटारवः ॥ १६७ ॥
ततश्चकार कल्पान्तजलदध्वानदुःसहः ।
प्रचण्डो गौरीमुण्डस्य समराराबडिण्डिमः ॥ १६८ ॥
अदृश्यत सितच्छत्रशुभ्रीकृतनभस्तलः ।
सह मानसवेगेन गौरीमुण्डो गजाग्रगः ॥ १६९ ॥
तस्य व्योम्नि विकोशासिश्यामांशुपटलीभवेत् ।
मालानीलो व्यलक्ष्यैर्विहतो वरणाश्रयः ॥ १७० ॥
तत्र विद्याधरेन्द्राणां मालारत्नांशुचिम्बिते ।
रवौ सहस्रसूर्येव बभूव नभसस्तटी ॥ १७१ ॥
तेषां गम्भीरसरम्भं सभाव्य गतविभ्रमा ।
अलर्ध''''महासेनाश्चण्डसिंहादयः स्वयम् ॥ १७२
ततस्तरणिसंपातस्फुरद्रत्नकिरीटकाः ।
''ःयां निधे''''सामन्ताश्चकुर्व्योमजटोत्कटाम् ॥ १७३ ॥

गन्धर्वाणां सहस्रौघैर्विद्याभिर्गुलिकामृताम् ।
अभूत्प्रकटसस्फोटसंघट्टचिचटं नभः ॥ १७४ ॥
गौरीमुण्डस्मृता देवी गौरी हुंकारमोहिवान् ।
चकार चण्डसिंहाद्यान्संप्राप्तविजयानपि ॥ १७५ ॥
संक्रुद्धोऽथ समभ्येत्य गौरीमुण्डो महाजवः ।
जग्राह बाहुसंग्रामसंमुखं नरवाहनम् ॥ १७६ ॥
मायायोधी(?) तमादाय संविधूय गिरेस्तटे ।
चिक्षेप दूरसंतापमूर्च्छाविस्मृतसंभवम् ॥ १७७ ॥
वेगान्मानसवेगोऽपि तद्वयस्यान्दिगन्तरे ।
तत्याज गोमुखमुखा.................. ॥ १७८ ॥
विद्यया धनवत्या ते रक्षिता न ययुः क्षयम् ।
ततस्त्र्यम्बकनिर्दिष्टो ररक्ष नरवाहनम् ॥ १७९ ॥
वीरोऽमृतप्रभो नाम वह्निशैलान्नभश्चरः ।
नरवाहनदत्तोऽथ तपस्तेपे हराचले ॥ १८० ॥
पूर्वमाराध्य हेरम्बं तद्वराच्च महेश्वरम् ।
गौरीं च तत्प्रसादेन विद्यां प्राप नृपात्मजः ॥ १८१ ॥
स्वयं विनिर्मितं यत्नाद्विमानं पद्मयोनिना ।
सहस्रपत्रं वचसा शंकरस्यारुरोह सः ॥ १८२ ॥
ततो वक्रपुरे गत्वा मायामितगतेः सुताम् ।
सुलोचनानामत''''स्वसारङ्गलोचनाम् ॥ १८३ ॥
रममाणस्तया तत्र लेभे विद्याधरेश्वरः ।
प्रतीहारं स्वयं प्राप्तं सनन्दिनमिवेश्वरम् ॥ १८४ ॥
चण्डसिंहप्रभृतिभिर्दयिताभिश्च संगतः ।
यदस्यानजविद्याभिर्वयस्यानानिनाय सः ॥ १८५ ॥
कृतप्रणामांस्तान्दृष्ट्वा न्यपृच्छन्नरवाहनः ।
क युष्माभिरियान्कालः क्षपितः प्रेक्षितै रतिः ॥ १८६ ॥

उवाच गोमुखः पूर्वं देव तस्मिन्महारणे ।
क्षिप्तो मानसवेगेन प्राप्तोऽहं किं वटाटवीम् ॥ १८७ ॥
तत्राहं शोकविधुरो यत्नान्मर्तुं समुद्यतः ।
आश्वासितो ब्राह्मणेन स्वामिनं द्रक्ष्यसीत्यथ ॥ १८८ ॥
नागस्वामी स मामाह पुराहं पाटलापुरे ।
अवन्ध्यूर्जडधीर्नापि लिपिमात्रबुधोऽभवम् ॥ १८९ ॥
ततोऽहं लज्जितो भिक्षाव्रतो भस्मकपालभृत् ।
अवापं योषितादत्तं रक्ताब्जं सत्कृपावकः ॥ १९० ॥
अपरा मम तद्वीक्ष्य हस्ते प्राह सुराङ्गना ।
कथा स्त्रोप्य·····दत्वेदं शाकिन्या रक्तमम्बुजम् ॥ १९१ ॥
श्रुत्वेत्यहमपश्यं तं स्वकरे पौरुषं करम् ।
ततोऽहं तद्गिरा गत्वा सुरभिं शरणं गतः ॥ १९२ ॥
रक्षितो रजनीमेकां तयाहं शाकिनीभयात् ।
तद्गिरा श्रुतिसोमाख्यमाचार्यं शरणं गतः ॥ १९३ ॥
तेनापि रजनीमेकां रक्षितोऽस्मि परेऽह्नि ।
विग्रहः परिसंख्यायां प्राप्तोऽहं खेचरीगणैः ॥ १९४ ॥
ममैवायं ममैवायमिति तासां हरारवे ।
उक्तोऽस्मि पतितो दैवादायुःशेषेऽथ चापरम् ॥ १९५ ॥
ततो निशि च यक्षिण्या संगतः शापमुक्तया ।
कृतो निजप्रभावाचस्तेनाहं वेदयनागतम् ॥ १९६ ॥
प्रभुस्त्वेश्वरवरान्प्राप्तवान्नरवाहनः ।
न क्षरान्न्क्षति च स मामुवाचेति सोऽग्रजः ॥ १९७ ॥
ततोऽहं तदनुज्ञातो विद्यया दिव्यरूपया ।
त्वत्पादमूलमानीतो धन्योऽस्मि सफलः क्षणः ॥ १९८ ॥

इति गोमुखकथा ॥ ७ ॥

गोमुखेनेति कथितं मरुभूतिर्मभाषत।
अस्म्यहं पातितस्तेन मूर्च्छितः शून्यकानने ॥ १९९ ॥
सरितः शीतलाख्यायास्ततस्तीरे महामुनिम्।
अपश्यं तेन चास्म्युक्तः शुभं ते न चिरादिति ॥ २०० ॥
ततस्तत्तटिनीस्नाताः पीनोन्नतपयोधराः।
कान्ता दृष्ट्वा मया पृष्टः प्रोवाच क्षुभितो मुनिः ॥ २०१ ॥
एकस्या वस्त्रममलं तीरोपान्तात्त्वमानय।
ततो ज्ञास्यसि वृत्तान्तमिति श्रुत्वा हृतं मया ॥ २०२ ॥
यातास्वन्यासु चैवैका हेमकुम्भोपमस्तनी।
विस्तीर्णश्रोणिपुलिना नदीव प्राह रूपिणी ॥ २०३ ॥
मम मुञ्चांशुकं क्षिप्रमहं विद्याधरी मया।
शंभोर्वराच्चक्रवर्ती द्रष्टव्यो नरवाहनः ॥ २०४ ॥
इति श्रुत्वा प्रहृष्टोऽहं तया सुरतसंगतम्।
तमपश्यं मुनिवरं दुर्निवारो हि मन्मथः ॥ २०५ ॥
ततो विमुच्य सा गर्भं कदलीपल्लवाङ्गना।
मुनिं प्राह स्वयं जित्वा भुक्तेन सिद्धिमाप्स्यसि ॥ २०६ ॥
इति श्रुत्वा तथा कृत्वा मुद्गस्वेदमिति सोऽवदत्।
प्रत्याख्यातं मया सर्वं भुक्त्वा स त्रिदिवं ययौ ॥ २०७ ॥
तस्य सिद्धिं परां दृष्ट्वा पश्चात्तापमहं गतः।
तत्करभ्रष्टसिद्धान्नकणयुग्ममभक्षयम् ॥ २०८ ॥
तेनाहं सततं तप्तकाञ्चनष्ठीवतां गतः।
वराङ्गनागृहं यातः कस्य नोन्मादनं धनम् ॥ २०९ ॥
सुवर्णष्ठीविनं दृष्ट्वा तत्र मां वृद्धकुट्टिनी।
भस्त्रलोकार्धविभवा कालजिह्वेव भीषणा ॥ २१० ॥
विधाय वमनद्रव्यं मम वान्तं ततोऽन्यया।
तद्यरत्नयुगलं निर्गीर्यालिङ्गितो ययौ ॥ २११ ॥

१. 'रभा' ख. २. 'एवु' ख. ३. 'ता' ख.

ततो नष्टहिरण्योऽहं निर्गतो वञ्चितस्त्वया।
श्वजिह्वामिरिव स्त्रीणां लीढः को नैति रिक्तताम् ॥ २१२ ॥
आराध्य चण्डिकां देवीं तद्वरादहमागतः।
त्वत्पादमूलमानीतः सिद्धया तत्र विद्यया ॥ २१३ ॥
इति मरुभूतिकथा ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्दृष्टो हरिशिखोऽब्रवीत्।
उज्जयिन्यामहं देव पातितस्तेन मायिना ॥ २१४ ॥
दुःखाद्घोरे महाकालश्मशाने मर्तुमुद्यतः।
पुंसां प्रियवियोगाग्नेर्देहत्यागोऽतिशीतलः ॥ २१५ ॥
वह्निप्रवेशकामं मां दृष्ट्वा भूताधिपोऽवदत्।
कौलसङ्घो न मर्तव्यं त्वया जीवति ते प्रभुः ॥ २१६ ॥
महेश्वरवरात्सोऽस्ति सर्वविद्याधरेश्वरः।
वृतः समस्तविद्याभिः संप्राप्तश्चक्रवर्तिताम् ॥ २१७ ॥
इति श्रुत्वा प्रहृष्टोऽहमाहूतस्तत्तविद्यया।
त्वत्पादमूलं संप्राप्तः सुकृतीव शुभां गतिम् ॥ २१८ ॥
इति हरिशिखकथा ॥ ९ ॥

इति स्थित्वा निजकथाविनोदैर्नरवाहनः।
सज्जीकृतबलाम्भोधिर्निर्ययौ विजयोत्सुकः ॥ २१९ ॥
ततोऽग्रदुन्दुभिध्वानपूरिताशामुखे दिवि।
अभवत्पुष्करोद्भ्रान्तपुष्करावर्तकभ्रमः ॥ २२० ॥
त्रिस्तीर्णविद्यास्तेनैव वयस्या गोमुखादयः।
तद्विमानं महापद्ममारुह्यासन्रणोत्सुकाः ॥ २२१ ॥
ततः समाययौ वीरो गौरिमुण्डः क्रुधा ज्वलन्।
शिरा मानसवेगेन सेनासत्रतिना वरः ॥ २२२ ॥
तत्र युद्धमभूद्घोरं वित्रासितसुरासुरम्।
चण्डसिंहमुखैर्वीरैर्गौरीमुण्डानुयायिनाम् ॥ २२३ ॥

१. 'तालजङ्घो' ख. २. 'प्रलयोग्रा' ख. ३. 'न्द्र' ख.

नरवाहनदत्तोऽथ हत्वा तमपि दुर्मदम्।
घोरं मानसवेगाख्यं खड्गाग्रच्छिन्नमस्तकम्॥ २२४॥
गौरीमुण्डं वधप्राप्तं नावधीत्करुणामयः।
जग्राह तद्बलं सर्वं संप्राप्य मधुरस्मितः॥ २२५॥
गौरीमुण्डपुरं प्राप्य राजधानीं प्रविश्य सः।
निरुद्धामानिनायाशु प्रियां मदनमञ्चुकाम्॥ २२६॥

इति मानसवेगाधिवधः॥ १०॥

विद्याधरवरोद्याने दयिताभिः पिबन्मधु।
विजहार ततः श्रीमान्वयस्यैर्नरवाहनः॥ २२७॥
गौरीमुण्डस्य तनयां कान्तां मन्दिरिकाभिधाम्।
परिणीयामितगतिप्रमुखैः सेवितो बभौ॥ २२८॥
अत्रान्तरे विदित्वासौ चारैः समरसंमुखम्।
जेतुं मन्दरदेवाख्यं चक्रे मनसि विक्रमम्॥ २२९॥
स संनद्धबलाम्भोधिर्निर्गतो नरवाहनः।
चक्रवर्ती परां प्राप्य ससारं तस्य सुन्दरीम्॥ २३०॥
तस्याः सख्यश्च तस्यो या विद्याधरनृपात्मजाः।
समं विवाहः कर्तव्यः संविदासामभूदिति॥ २३१॥
एकैव परिणीताभूत्त्वां(?)वि····विमुखाः क्षणम्।
तद्वैमुख्या(?) विजहास दयितां नरवाहनः॥ २३२॥
कालकूटाधिनाथस्य तनयां कालिकाभिधाम्।
महादंष्ट्रस्य तु सुतां विद्युत्पुञ्जां मृगीदृशम्॥ २३३॥
मन्दरस्यात्मजामिन्दुवदनां चरमतङ्गिनीम्।
चित्रकूटेश्वरस्यापि पुत्रीं पद्मप्रभामिति॥ २३४॥
तद्वाक्याच्चाः सखीस्तस्याः परिणीयाभवत्सुखी।
तद्विलासरसावासनवयौवनमण्डितः॥ २३५॥

१. 'च' इति स्यात्. २. 'वेगा' पा. ३. 'पुञ्जां' पा.

अथ रिपुवधयात्रायातसेनासमुद्रः
प्रतिहतघनभेरीघोषसंपूरिताशः ।
त्रिनयनवरलक्ष्मीं प्राप्तसिद्धिप्रसिद्धः
पणिरिव ननु यायात्स्वां पुरीं राजपुत्रः ॥ २३६ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां पञ्चलम्बको नाम त्रयोदशो लम्बकः ।

---

## रत्नप्रभालम्बकः ।

नमोऽस्तु भावनामात्रनानावर्णविधायिने ।
व्यक्तचित्रकृते लक्ष्यत्रैलोक्याश्चर्यकारिणे ॥ १ ॥
नरवाहनदत्तोऽथ प्रौढयौवनमण्डितः ।
अभूद्विलासलतिकाविकाशकुसुमाकरः ॥ २ ॥
(स हेमकदलीकुञ्जे पारिजातलतावने ।
मन्दारामोदसुभगे विजहार सुहृद्वृतः ॥ ३ ॥
ततः प्राह समभ्येत्य हर्षपूर्णस्तपन्तकः(?) ।
आश्चर्यदर्शनाकोशनयनो नयनोत्सुकः ॥ ४ ॥
सखे व्योमावती नाम दृष्टा विद्याधरी मया ।
मनोजकुञ्जरस्येव निमज्जनसरोजिनी ॥ ५ ॥
त्वां द्रष्टुमिच्छति क्षिप्रमेहीत्याकर्ण्य तद्वचः ।
तूर्णं तद्देशमभ्यागात्कौतुकान्नरवाहनः ॥ ६ ॥
पतितं लाञ्छनमृगं स्वयमन्वेष्टुमागतम् ।
स ददर्श शशाङ्कस्य कान्तिं मूर्तिमतीमिव ॥ ७ ॥
त्रिवलीकुलसंसर्पिहारहंसा मनोभुवः ।
हरहुंकारहुतमुद्रिर्वापणनदीमिव ॥ ८ ॥
निमग्नामिव शृङ्गारे संक्रान्तामिव यौवने ।
बिम्बितामिव लावण्ये मिलितामिव विभ्रमे ॥ ९ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः कपुस्तके त्रुटितः. २. 'ता' ख. ३. 'सततो नि' ख.

तां विलोक्य मनोमीनविस्तीर्णगुणजालिकाम् ।
वैालिकां मन्मथस्येव यात्रामङ्गलमालिकाम् ॥ १० ॥
अर्च्यमान इवालोलकटाक्षोत्पलदामभिः ।
तया मनोभवधिया प्रोवाच नरवाहनः ॥ ११ ॥
कस्यासि कान्तिकल्लोलमाला कमललोचने ।
कैर्भागधेयैरस्माकं दर्शितामृतवाहिनी ॥ १२ ॥
श्रुत्वेति तद्वचो हृष्टा सावदद्दशनांशुभिः ।
चन्द्रोपमा म्लानिमिव क्षालयन्ती कपोलयोः ॥ १३ ॥
अस्ति युष्मद्यशःशुभ्रः श्रीमान्मलयभूधरः ।
यस्य प्रमाणं माहात्म्ये गौरीगुरुरिति श्रुतिः ॥ १४ ॥
नलिनासनहंसालीकलक्काणमनोहरा ।
स्वकीर्तिर्वैजयन्तीव भाति यस्य त्रिमार्गगा ॥ १५ ॥
कान्तिपिञ्जरितव्योम्नि तस्य काञ्चनशेखरे ।
अस्ति हेमप्रभो नाम विद्याधरधरापतिः ॥ १६ ॥
अलंकारप्रभा नाम दयिता तस्य सुन्दरी ।
दिशो विभाति यत्कान्तिभ्रान्तिसीमन्तिता इव ॥ १७ ॥
सा कदाचित्प्रियं दृष्ट्वा चिन्तास्तिमितलोचनम् ।
उवाच देव कोऽयं ते धीरस्य धृतिविप्लवः ॥ १८ ॥
भयप्रदोऽसि शत्रुभ्यो द्विजेभ्यः कनकप्रदः ।
प्रीतिप्रदोऽसि कान्ताभ्यो राजकुञ्जर गीयसे ॥ १९ ॥
इति प्रियावचः श्रुत्वा प्राह हेमप्रभो मुहुः ।
चिन्तानलपरिस्पन्दमुच्छ्वासैर्दीपयन्निव ॥ २० ॥
वंशमुक्तामणिः पुत्रो नास्त्यधन्यस्य मे शुभम् ।
निष्फला चन्दनस्येव न श्रीः प्रीणाति मे मनः ॥ २१ ॥
नेत्रामृतं श्रुतिसुधाहृदयानन्दनिर्भरः ।
पीयूषपेशलस्पर्शः किं किं नाम न पुत्रकः ॥ २२ ॥

१. 'वल्लिनो'ख. २. 'कान्ति'ख. ३. 'धा'ख. ४. 'धी'ख. ५. 'प्रिय.'ख. ६. 'ग'ख

अवाप्यते धनं धन्यैर्यशश्च विशदाशयैः ।
निरवद्यैस्तथा विद्यास्तनयस्तु सुदुर्लभः ॥ २३ ॥
राजा ब्रह्मघनो नाम चित्रकूटाधिपोऽभवत् ।
सेवकः सत्त्वशीलाख्यस्तस्याभूदुचिताशयः ॥ २४ ॥
स सुवर्णशतं लेभे राज्ञः प्रत्यहवेतनम् ।
निजभोजनपर्यन्तं तच्चार्थिभ्यः सदा ददौ ॥ २५ ॥
विवृतानि निधानानि तस्योदारमतेः पुरः ।
आसंस्तद्द्रविणैः सोऽर्थिसार्थसंख्यामपूरयत् ॥ २६ ॥
सगोत्रैः शत्रुभिर्दाता स राज्ञे विनिवेदितः ।
निधिपूर्ण इति क्षिप्रं नृपाहूतश्च सोऽवदत् ॥ २७ ॥
देव प्राप्तनिधानोऽहमिहापि त्वत्पुरो लभे ।
गृहाणेति समुद्घाट्य निधानं भूभुजे ददौ ॥ २८ ॥
एवं स सत्त्वसंप्राप्तविभवो नृपपूजितः ।
त्र्यम्बकव्रतसंपन्नो दाता पुत्रमयाचत ॥ २९ ॥
तमाह तुष्टो भगवान्वत्स सिद्धिमवाप्स्यसि ।
न तु द्रक्ष्यसि पुत्रस्य जन्मन्यस्मिन्मुखाम्बुजम् ॥ ३० ॥
इत्येवं सत्त्वशीलेन तुष्टेऽपि शशिशेखरे ।
न प्राप्तस्तनयो देवि कुलश्रीमणिदर्पणः ॥ ३१ ॥

इति सत्त्वशीलाख्यायिका ॥ १ ॥

अलंकारवती श्रुत्वा पत्युरित्युचितं वचः ।
उवाच देव धन्यस्य किं नाम तव दुर्लभम् ॥ ३२ ॥
व्रतिनां दानशीलानां भक्तानां पार्वतीपतौ ।
अधीनाः सिद्धयः सर्वाः कियन्मात्रं तु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥
राजा विक्रमतुङ्गोऽभूत्पुरे पाटलिपुत्रके ।
यत्सत्त्वकौमुदीधौता विभ्रमौ भुवनावली ॥ ३४ ॥

इन्दीवरप्रभा नाम तस्येन्दीवरलोचना ।
बभूव भार्या मर्यादा धातुर्लावण्यकौशले ॥ ३५ ॥
स कदाचिन्मृगक्रीडारणकेलिकुतूहली ।
विवेश विपिनं धन्वी विचित्रदृढसौष्ठवः ॥ ३६ ॥
तत्रापश्यन्मन्त्रसिद्ध्यै बिल्वहोमपरायणम् ।
द्विजं ज्वलितसप्तार्चिःपिङ्गीकृतदिगन्तरम् ॥ ३७ ॥
यदा काञ्चनतां याति श्रीफलं पावकान्तरे ।
तदा मन्त्रस्य सिद्धस्य लक्षणं कथितं बुधैः ॥ ३८ ॥
जुह्वतस्तस्य रुचिरं न फलं प्राप हेमताम् ।
ततो राजा समभ्येत्य ददर्शाहुतितत्परम् ॥ ३९ ॥
तं दृष्ट्वा ज्वलिते वह्नौ बिल्वमेकं स कौतुकात् ।
चिक्षेप तत्क्षुधा विप्रो भ्रुकुटीभीषणोऽभवत् ॥ ४० ॥
अस्नातस्त्वमनाचम्य सर्वस्पर्शो विशृङ्खलः ।
वह्नौ जुहोषि पापात्मन्नित्याह स महीपतिम् ॥ ४१ ॥
तत्फलं भूभुजा क्षिप्तं द्विजेन फलमण्डलम् ।
हुतं राज्ञः काञ्चनतां यावन्नैव द्विजन्मनः ॥ ४२ ॥
तद्विलोक्याद्भुतं विप्रो विस्मयस्थगिताकृतिः ।
बभूव मन्त्रगणनाविच्छेदाद्विचलाधरः ॥ ४३ ॥
ततः स्वयं जातवेदाः समुत्थाय महीभुजे ।
ददौ फलं स्वहस्तेन तदपृच्छच्च सोऽग्रजः ॥ ४४ ॥
भगवन्नियमस्थस्य न मेऽद्यापि प्रसीदसि ।
विकीर्णाचारमनसः कथं तुष्टोऽसि भूपतेः ॥ ४५ ॥
इत्युक्तः सोऽब्रवीद्वह्निः संकल्पोऽस्याभवदृढः ।
शिरश्छित्वा जुहोमीति दर्शनेन विना मम ॥ ४६ ॥
त्वं तु शुष्कक्रियातन्त्रः केवलं मन्त्रसाधकः ।
सिद्धिः सत्त्ववतामेव संकोचो व्रतिसंयमः ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा भगवानग्निः कृतकृत्यं नृपं व्यधात् ।
तस्यैव वाक्याद्विपं तं विद्यायान्तरधीयत ॥ ४८ ॥
ततः स्वनगरीं गत्वा महासत्त्वो महीपतिः ।
इन्दीवरप्रभासक्तश्चचारोद्यानभूमिषु ॥ ४९ ॥
धातुवादी ततोऽभ्येत्य धातुशर्माभिधो वचः ।
तमभ्यधादहं ताम्रं त्रिदवे देव काञ्चनम् ॥ ५० ॥
हेमकारं समाहूय द्राविते शुल्वपिण्डके ।
तेनैरं राज्ञा समादिष्टो बहु विक्षेप चूर्णकम् ॥ ५१ ॥
हृते यक्षकुमारेण तत्र चूर्णे मुहुर्मुहुः ।
न तत्कनकतां प्राप विघ्नेनादृश्यमूर्तिना ॥ ५२ ॥
नरेश्वरोऽथ चिक्षेप चूर्णं तत्कौतुकात्स्वयम् ।
तच्चूर्णपातात्सर्वं तत्प्रययौ जातरूपताम् ॥ ५३ ॥
इत्येवं शुद्धसत्त्वानामनपेक्षितसंयमाः ।
भवन्ति सिद्धयो देव त्वं च सत्त्ववतां वरः ॥ ५४ ॥

इति महासत्त्वाख्यायिका ॥ २ ॥

इति कान्तावचः श्रुत्वा हृष्टो विद्याधरेश्वरः ।
मनःप्रसादादासन्नं पुत्रलाभममन्यत ॥ ५५ ॥
ततः प्रयतवाक्चित्तः शुचिर्जयपराक्रमः ।
दर्शनात्तीर्थं तुष्टाव स सभार्यो महेश्वरम् ॥ ५६ ॥
ॐ नमः सप्तसंकल्पपूरणाकल्पशाखिने ।
कुमारगुरवे शुभ्रभोगमोक्षफलश्रिये ॥ ५७ ॥
नमश्चिद्गगनाभोगभासिने बोधभास्वते ।
अविभिन्नस्वभावाय भवाभावभयदायिने ॥ ५८ ॥
नमः प्रकाशव्याकोशहृत्कुशेशयशालिने ।
शिवाय शमिताशेषदोषायाविषयस्पृशे ॥ ५९ ॥

---

१. 'राज्ञा' ख. २. 'चिन्त्यस्य' ख.

अमन्दानन्दनिस्पन्दमदिराम्बुधिबिन्दवे ।
नमः कुन्दोदरस्पन्दस्वच्छन्दायेन्दुमौलिने ॥ ६० ॥
नमः कालकलाजालहेलाकवलकेलये ।
कालीकटाक्षवलनाकलिताय कपालिने ॥ ६१ ॥
नमश्चर्माम्बरभृते धर्माधर्मगुणच्छिदे ।
कुर्मो नर्मविनिर्माणसर्वसंसारकर्मणे ॥ ६२ ॥
नमो दक्षमखाक्षान्तिक्षणलक्ष्याक्षिवह्नये ।
क्षुभ्यत्क्षयक्षपाक्षिप्रसंक्षेपाय त्रिचक्षुषे ॥ ६३ ॥
नमः शिवाय भीमाय मङ्गलायास्थिधारिणे ।
श्मशानस्थाय जटिने वामार्घायोर्ध्वरेतसे ॥ ६४ ॥
महेश्वराय नग्नाय हराय वरदायिने ।
अनीलनीलकण्ठाय विचित्राय त्रिशूलिने ॥ ६५ ॥

निर्लेपनित्यनिरुपाधिनिरञ्जनाय
संविद्विकाशकुसुमोत्सवनन्दनाय ।
वैराग्यसिक्तशमपल्लवभक्तिवल्ली-
नादायमानमधुपाय नमः शिवाय ॥ ६६ ॥

इति विद्याधरेणाशु स्तुतः श्रीमानुमापतिः ।
वरमस्मै सभार्याय पार्वतीशो ददौ तदा ॥ ६७ ॥
अचिरेणाप्स्यसि सुतं हेमप्रभ कुलोचितम् ।
कन्यां च नरवाहस्य भाविनीं वल्लभामिति ॥ ६८ ॥
वरं हेमप्रभः प्राप्य सुहृष्टो दयितासखः ।
द्विजेभ्यः प्रददौ भूरिमणिकाञ्चनमौक्तिकम् ॥ ६९ ॥
ततः कालेन तनयं विद्येव विनयं सती ।
अलंकारप्रभासूत माहात्म्यमिति संततिः ॥ ७० ॥
स वज्रप्रभनामाभूत्कुमारो वंशभूषणः ।
यः प्राप वृद्धिं सहसा कुमार इव शक्तिमान् ॥ ७१ ॥

---

१. 'ध्यन्तिने' ख. २. 'च' ख. ३. 'व स' ख.

अथासूत पुनर्देवी तनयामतनुद्युतिम् ।
सत्संगतिरिव प्रीतिं भव्यगुणैरिवाश्रयम् ॥ ७२ ॥
रत्नप्रभाभिधानाभूत्कन्यकासौ मनोभुवः ।
रत्नमालेव विहिता वेधसा विहितैर्गुणैः ॥ ७३ ॥
वज्रप्रभोऽयं द्युतिमान्पुत्रा क्षीरोदवासिनः ।
पुत्रीममृतवर्णस्य प्रापामृतवतीं वधूम् ॥ ७४ ॥
विद्याधरेन्द्रतनयां स तामासाद्य सुन्दरीम् ।
बभार कान्तिं कामस्य रतिसंभोगशालिनः ॥ ७५ ॥
अथ हेमप्रभो दृष्ट्वा पुत्रमात्मगुणाधिकम् ।
यौवराज्येऽभिषिच्याशु परां प्रीतिमवाप्तवान् ॥ ७६ ॥
साहं रत्नप्रभा नाम कन्या हेमप्रभात्मजा ।
अश्रौषं त्वद्यशः शुभ्रं वर्ण्यमानं पितुर्गृहे ॥ ७७ ॥
ततो मां भृशसंतप्तामभिलाषवशीकृताम् ।
उवाच पार्वती स्वप्ने पुत्रि मा विह्वला भव ॥ ७८ ॥
प्रातस्त्वं नरवाहेन मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
स्वयं गत्वा तदुद्देशं पाणिग्रहणमाप्स्यसि ॥ ७९ ॥
इति स्वप्ने यथादिष्टं देव्या मात्रे न्यवेदयम् ।
तद्गिरा त्वामिहस्थं च प्राप्ताहं विधया प्रभो ॥ ८० ॥
उक्त्वेति लज्जाललितक्षामाक्षरविसंस्थुला ।
नतानना मही चक्रे दृशा नीलोत्पलाकुलाम् ॥ ८१ ॥
मुखाब्जसौरभाकृष्टगुञ्जद्भ्रमरविभ्रमम् ।
रत्नप्रभावचः श्रुत्वा जहर्ष नरवाहनः ॥ ८२ ॥
ततः समाययौ व्योम्ना हेम्ना संपूरयन्निव ।
दिशो महिम्ना वपुषः श्रीमान्हेमप्रभः स्वयम् ॥ ८३ ॥
मौलिरत्नोज्ज्वलालोको वत्सराजेन पूजितः ।
भेजे कुण्डलकेयूरकान्तिभिर्भैः स वत्सभाम् ॥ ८४ ॥

१. 'पुत्रे' ख. २. 'देव' ख. ३. 'प्रातः' ख. ४. 'त्वां' ख.

निजाभिजनमावेद्य वृत्तान्तं वत्सभूभुजे।
तं ययाचे ततः पुत्रं पुत्रीपरिणयश्रिये ॥ ८५ ॥
दत्तानुज्ञं स गुरुणा वयस्यैः सहितस्ततः।
यौगन्धरायणोपेतं निनाय नरवाहनम् ॥ ८६ ॥
अथ विद्याधरपुरे महोत्सवविभूषिते।
भेजे विवाहवसुधां प्रहृष्टो नरवाहनः ॥ ८७ ॥
ततो रत्नप्रभा देवी विवेश विशदद्युतिः।
क्षीरोदनिर्गतेव श्रीः सितचीनांशुकोज्ज्वला ॥ ८८ ॥
निःश्वाससौरभाहूतैर्भ्रमरैराकुलीकृता।
रतिदीक्षां गृहाणेति स्मरस्याज्ञाक्षरैरिव ॥ ८९ ॥
तारहारांशुपटलैस्तरङ्गितकुचस्थली।
वल्लभालोकनानन्दे मूर्तैरिव पुरस्थितैः ॥ ९० ॥
वह्निप्रदक्षिणे तस्या मुखं धूमलताकुलम्।
क्षणं बभार लोलालिमालाङ्ककमलश्रियम् ॥ ९१ ॥
प्रियपाणिग्रहे तस्या बभुर्दीर्घनखांशवः।
वरपत्न्योः करे लग्नाः पुष्पचापशरा इव ॥ ९२ ॥
अरुन्धती तनौ तस्या निर्गतं श्रवणोत्पलम्।
पत्युः कटाक्षमालायाः प्राप प्रथमदूतताम् ॥ ९३ ॥
निर्वर्तितविवाहोऽथ रत्नपर्यङ्कमास्थितः।
प्रियाविन्यस्तनयनो जहर्ष नरवाहनः ॥ ९४ ॥
कपोलफलके तस्याः स मुहुर्बिम्बितो बभौ।
त्यज लज्जामिति स्वैरं शशी वक्तुमिवागतः ॥ ९५ ॥
मुक्तावलीरत्नमध्ये बिम्बितां स दधद्वधूम्।
बभार विभ्रमं शौरेर्लक्ष्मीर्ललितवक्षसः ॥ ९६ ॥
ततो हेमप्रभादिष्टं प्रविश्य मणिमन्दिरम्।
कान्ताविलासरसिको बभूव नरवाहनः ॥ ९७ ॥

वज्रप्रभो बभूवास्य प्रीतये दयिताग्रजः ।
सर्वविभ्रमलीलासु हृदयस्येव दर्पणः ॥ ९८ ॥
विद्याधरेन्द्रमामन्त्र्य ततो रत्नप्रभासखः ।
यौगन्धरायणगिरा कौशाम्बीं सानुगो ययौ ॥ ९९ ॥
रत्नप्रभायुतं दृष्ट्वा वंशमुक्तामणिं सुतम् ।
तत्र भूषितमात्मानं मेने वत्सनरेश्वरः ॥ १०० ॥

इति रत्नप्रभाख्यायिका ॥ ३ ॥

अन्तःपुरं प्रविश्याथ मित्रादिष्टं नृपात्मजः ।
रत्नप्रभानुगो भेजे विलासरसनिर्वृतिम् ॥ १०१ ॥
ततो व्यजिज्ञपद्द्राक्समभ्येत्याशु कञ्चुकी ।
गोमुखप्रमुखाः सर्वे देव द्वारि स्थिता इति ॥ १०२ ॥
ततो रत्नप्रभा प्राह तूर्णमेव प्रवेशय ।
आर्यपुत्रस्य सचिवास्ते हि विश्रम्भसाक्षिणः ॥ १०३ ॥
इति तद्वचसा तेषु प्रविष्टेष्वविलम्बितम् ।
उवाच हासकरुणास्मेराङ्गो नरवाहनः ॥ १०४ ॥
प्रिये निरर्गलक्रीडासस्वच्छन्दालापविभ्रमे ।
विघ्नः कञ्चुकिवर्गोऽयं कामिनां केन निर्मितः ॥ १०५ ॥
रत्नप्रभा निशम्येति प्रोवाच ललितस्मिता ।
देव कञ्चुकिवर्गोऽयं राजलक्ष्मीविभूषणः ॥ १०६ ॥
अन्तःपुराणि रक्ष्यन्ति न कुब्जजडवामनाः ।
निजशीलं सुसत्त्वानां रक्षा हरिणचक्षुषाम् ॥ १०७ ॥
रत्नकूटाभिधद्वीपे राजा रत्नाधिपोऽभवत् ।
यस्याशीतिसहस्राणि कलत्रं तरलभ्रुवाम् ॥ १०८ ॥
हरेरिवामरस्तस्य गजः श्वेतो नभश्चरः ।
यमारुह्य जगद्भ्रान्त्वा लेभे भूपतिपुत्रिकाः ॥ १०९ ॥

१. 'लेभे' ग. २. 'प्रयासीं' ख.

ततः कदाचिदाकाशे ताडितो व्याडिना रुषा ।
तुण्डेन पक्षिणा नागः सोऽपतद्भृशविह्वलः ॥ ११० ॥
न शशाक महाकायः समुत्थातुं महीतलात् ।
स जनैश्चाल्यमानोऽपि व्यसनादिव नष्टधीः ॥ १११ ॥
ततः पञ्चसु यातेषु वासरेषु सुदुःखितः ।
नृपः शोचन्निराहारः शिरश्छेत्तुं समुद्ययौ ॥ ११२ ॥
ततस्त्वचकिताः प्राहुर्देवा गगनचारिणः ।
राजन्साध्वीकरस्पर्शादुत्तिष्ठति तव द्विपः ॥ ११३ ॥
इत्याकाशवचः श्रुत्वा हृष्टो रत्नाधिपो नृपः ।
आनिनायामृतलतां स तां प्रथमवल्लभाम् ॥ ११४ ॥
तत्पाणिना कृतस्पर्शो नोदतिष्ठत्स कुञ्जरः ।
कुर्वन्मदमषीपङ्कैरिव तां मलिनाननाम् ॥ ११५ ॥
ततः क्रमेण नृपतेः समस्तैस्तैर्वधूजनैः ।
स्पृश्यमानोऽपि वसुधां न तत्याज महागजः ॥ ११६ ॥
यथा यथा प्रयान्ति स्म विमुखा राजयोषितः ।
तथा तथा लज्जयेव नृपः पातालमाविशत् ॥ ११७ ॥
मन्त्रिपुत्रवधूवृन्दे तथैव विफले गते ।
आययौ हर्षगुप्ताख्यो वणिग्देशान्तरागतः ॥ ११८ ॥
तस्य शीलवती भार्या कटके कर्मचारिणी ।
मनोवाक्कायनिष्ठाभिः साध्वी पस्पर्श तं गजम् ॥ ११९ ॥
तया स्पृष्टः स सहसा समुत्तस्थौ गजाधिपः ।
सह लोकनिनादेन हिमवानिव जङ्गमः ॥ १२० ॥
ततः शीलवतीं राजा वणिजं चार्थसंचयैः ।
पूजयित्वा प्रियाः सर्वा मेने संकल्पदूषिताः ॥ १२१ ॥
अथानुज्ञां शीलवत्या राजदत्ताभिधां नृपः ।
परिणीय चकारास्यै मन्दिरं सागरान्तरा ॥ १२२ ॥

१. 'तां परमवल्लभाम्' ख. २. 'तया कृतकरस्पर्शो' ख. ३. 'सद्धर्मचा' ख.

असती हि विवाहे सा निर्दिष्टा गणकैर्यदा ।
तदा निष्पुरुषे द्वीपे धरा तस्याः स्थितिं व्यधात् ॥ १२३ ॥
सदा व्योम्ना गजेन्द्रेण तदन्तःपुरमेत्य सः ।
विजहार स्मरस्मेरो निवर्तितनृपक्रियः ॥ १२४ ॥
पौरकार्योन्मुखं गन्तुं प्रस्तुतं सा प्रभुं पतिम् ।
न गन्तव्यमिति प्राह हेलया हरिणेक्षणा ॥ १२५ ॥
स्थित्वा क्षणं तद्विलासरसिको नृपतिः पुनः ।
समेष्यामीति तामुक्त्वा जगामाकाशदन्तिना ॥ १२६ ॥
ततः फलहकासक्तो भग्नप्रवहणो नरः ।
तरन्समुद्रलहरीः क्षिप्तस्तं देशमाययौ ॥ १२७ ॥
स राजदत्तानिलयं प्रविवेश सविस्मयः ।
कौतुकाच्च तया पृष्टो बभाषे जातसंभ्रमः ॥ १२८ ॥
अहं पवनसेनाख्यः सुभगे माथुरो वणिक् ।
रत्नहेमार्जने यात्रा कृतः सर्वत्र निष्फलः ॥ १२९ ॥
ततो विच्छिन्नसर्वाशं मां वह्निपत्तनोचितम् ।
धनिनाम्बुधियात्रायां जीवदत्ताभिधो वणिक् ॥ १३० ॥
तत्र प्रवहणे भग्ने विस्फूर्जत्स्फारमारुतैः ।
अहं फलहकावाप्त्या दैवात्प्राप्तो महीमिमाम् ॥ १३१ ॥
राजदत्ता निशम्येति भूरिपानमदाकुला ।
विश्रान्तमुपरिष्टाचं कण्ठे सोत्कण्ठमग्रहीत् ॥ १३२ ॥
धनं कुलं परिचयं नर्माभ्यासं पथिस्थितम् ।
अनिरीक्ष्य प्रवर्तन्ते रतौ मत्ता हि योषितः ॥ १३३ ॥
अत्रान्तरे समभ्येत्य राजा रत्नाधिपः प्रियाम् ।
ददर्शागम्यदेशेऽपि तां केनापि समागताम् ॥ १३४ ॥
तां दृष्ट्वा मौढकोणेऽपि मत्वा दैवं सुदुर्जयम् ।
न तं जघान निःसारसंसारपरिहारधीः ॥ १३५ ॥

१. 'निनाय' ख. २. 'कथापरिभवं नामाभ्यासं रहःस्थि' ख.

वणिक्पर्वनसेनोऽपि[1] गत्वा फल(हैकाश्रयः ।
अथ प्रवहणं प्राप वणिजः कोषवर्मणः ॥ १३६ ॥

तेनोत्क्षिप्तः करुणया तस्यैवेर्ष्यावतो वधूम् ।
दैवात्स भगिनीं यातो निहतस्तेन दुर्मतिः ॥ १३७ ॥

रत्नाधिपोऽथ नृपतिर्नारायणपरायणः ।
राज्यं ब्राह्मणसात्कृत्वा गजेन तपसे ययौ ॥ १३८ ॥

ततो निपतितो व्योम्नः सहसा स महागजः ।
पृष्टो महीभुजा प्राह संप्राप्य निजमन्दिरम् ॥ १३९ ॥

अहं श्वेतप्रभो नाम गन्धर्वो मलयालयः ।
त्वं च देवप्रभो नाम नरनाथ ममाग्रजः ॥ १४० ॥

ईर्ष्यावतस्तव पुरा दयितां रूपशालिनीम् ।
महेश्वराग्रे गायन्तीं मुनिः कश्चिद्व्यलोकयत् ॥ १४१ ॥

तद्विलोकनसंक्रुद्धः स मुनिस्त्वां ततोऽशपत् ।
मर्त्यो भूत्वा प्रियतमां द्रष्टास्यन्यरतामिति ॥ १४२ ॥

शप्तं त्वामहमालोक्य गजेनापीडयन्मुनिम् ।
तच्छापादस्मि संप्राप्तो भ्रातः कुञ्जरतामिमाम् ॥ १४३ ॥

विष्णुप्रसादपर्यन्तः शापस्तेनायमावयोः ।
दिष्टः स च परिक्षीणः संकल्पात्कैटभद्विपः ॥ १४४ ॥

इत्युक्त्वा भूभुजा सार्धं प्राप्तो गन्धर्वतां द्विजः ।
सगतः सिद्धगन्धर्वैः प्रययौ मलयाचलम् ॥ १४५ ॥

शीलवत्यपि भूपालादाप्तैः कनकसंचयैः ।
देवतायतनं चक्रे ब्राह्मणेभ्यश्च संचयम् ॥ १४६ ॥)

इति शीलवत्याख्यायिका ॥ ४ ॥

इत्येवं निजशीलेन राजन्ते योषितः प्रभो ।
ईर्ष्यावतां केवलं तु स्त्रीरक्षा मनसो मदः ॥ १४७ ॥

---

१. 'पुत्रपर्वतोऽपि' ख. २. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

इति रत्नप्रभावाक्यं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
साधूक्तमिति संहृष्टो विलयादभ्यभाषत ॥ १४८ ॥
अथाह गोमुखस्तत्र कथाप्रस्तावकोविदः ।
अस्मिन्नेवान्तरे देव श्रूयतामिति कौतुकम् ॥ १४९ ॥
अस्ति श्रीकण्ठदयिता सतीवोज्जयिनी पुरी ।
मालतीस्फीतशान्तांशुमालाकलितकौमुदी ॥ १५० ॥
अस्यां विभान्ति क्षीरोदधवलाः स्फटिकालयाः ।
महाकालाट्टहासानां निहिता इव राशयः ॥ १५१ ॥
कुशस्थली कृतयुगे त्रेतायां पद्मवत्यपि ।
अम्बिका द्वापरे ख्याता कलावुज्जयिनी च या ॥ १५२ ॥
इन्द्रवर्मा नृपस्तस्यामभूदिन्द्र इवापरः ।
असंख्यमखसहर्षादथ वाम्यविक्रमः ॥ १५३ ॥
वणिङ्निश्चयदत्ताख्यो द्यूतकारो महाव्ययः ।
बभूव तत्पुरे सक्तो माल्यताम्बूलसौरभे ॥ १५४ ॥
महाश्मशानं गत्वासौ शिलास्तम्भे विलेपनम् ।
धृत्वा करतलागम्यमेकः पृष्ठं विलिम्पति ।
नित्यसंघर्षणात्स्तम्भः श्लक्ष्णतां स समाययौ ॥ १५५ ॥
कदाचिच्चित्रकारेण विहिता तत्र पार्वती ।
रूपकारेण चोत्कीर्णा बभौ साक्षादिवागता ॥ १५६ ॥
चतुःसमे तु लिम्पन्तं तत्र पृष्ठं समाकृति ।
मत्तया गौरीप्रणामाप्ता कापि विद्याधराङ्गना ॥ १५७ ॥
कान्तिनिश्चयदत्तं तं ददर्श स्मरशालिनी ।
पार्वतीभक्तिसंतोषान्मूर्तं फलमिवागतम् ॥ १५८ ॥
अभिलापवती साथ सुन्दरी तस्य विग्रहम् ।
करेण कङ्कणवता पस्पर्शालक्षिताकृतिः ॥ १५९ ॥
स तत्स्पर्शामृतासिक्तः परेऽह्नि प्राप्य तत्करम् ।
जग्राह दर्शनाकाङ्क्षी ततः सा प्रकटाभवत् ॥ १६० ॥

पृष्टा निश्चयदत्तेन साब्रवीत्क)मलानना ।
सौरभाकृष्टमधुपैः पुनरुक्तालकावली ॥ १६१ ॥
अहं चिन्तापराख्यस्य हिमवद्वासिनः सुता ।
अनुरागपरा नाम कन्या विद्याधरी प्रभो ॥ १६२ ॥
इति निश्चयदत्तस्तां ब्रुवाणां चारुहासिनीम् ।
विदग्धोपक्रमैस्तैस्तैः संगमाभिमुखीं व्यधात् ॥ १६३ ॥
तावदन्नाथ गच्छामि त्वं चेन्मे गृहमेष्यसि ।
तज्जाया ते भविष्यामि सत्यवाचो हि खेचराः ॥ १६४ ॥
इत्युक्त्वा सा ययौ दिक्षु किरन्ती कान्तिकौमुदीम् ।
तत्संगमाशया सोऽपि ययौ हैमवतीं दिशम् ॥ १६५ ॥
उत्तरापथमासाद्य संगतोऽन्यैर्वणिक्सुतैः ।
पदं कुरुप्वचीनानां मण्डलैर्विमलैर्ययौ ॥ १६६ ॥
विक्रीतस्ताडितः सोऽथ विषमं प्राप्य बन्धनम् ।
ययौ गौरीवरान्मुक्तः सह तैः सचिवैस्त्रिभिः ॥ १६७ ॥
एकस्ततः प्रस्थितोऽसौ काश्मीरं प्राप्य मोक्षदम् ।
तैरन्वितस्तां प्रतिभिश्चतुर्भिः पथि संगतः ॥ १६८ ॥
तैः खट्वाङ्गकपालाङ्कैः स गच्छन्नुत्तरां दिशम् ।
वनं विवेश विषमं घोरव्यालमृगाकुलम् ॥ १६९ ॥
तमूचुर्मारिका यक्षी घोररूपेह दृश्यते ।
या शृङ्गोत्पादिनी नाम सर्वलोकस्य संहृतिः ॥ १७० ॥
मारिकेभ्यो निशम्येति सह तैर्व्रतगर्वितैः ।
टाकिनीभूतवेतालं विवेश निशि काननम् ॥ १७१ ॥
ततः शुष्ककरीषाग्निं महादारुचयोच्छ्रितम् ।
विधाय जापिनस्तस्थुस्ते भस्मकृतमण्डलाः ॥ १७२ ॥

---

१. 'विन्ध्यपुर' ग. २. 'मालती' ख. ३. 'दृष्टा' ग. ४. 'कुरुपती' ग. ५. 'पुः शाम्भिवा' ग. ६. 'वत्तालम्' ग. ७. 'निभसद्भूदचयोपरि । विहर्य तस्थुस्ते भस्मकृतमण्डनाः' ग.

ततः समाययौ दीप्तः केशी नीलाश्मसच्छविः ।
असितादित्तटी दाववह्नित्यासेव जङ्गमा ॥ १७३ ॥
कायच्छायेव तमसो मृत्योर्मुक्तेव वेणिका ।
केशकन्थेव[३] कालस्य ततो यक्षीं[४] व्यदृश्यत ॥ १७४ ॥
पारीव लम्बितोद्दामस्तानवाहितसौष्ठवम् ।
नृत्यन्ती वादयन्तीव किन्नरं मण्डलान्तिके ॥ १७५ ॥
कल्पान्तोद्भ्रान्तचण्डीशलडङ्कमरुकस्वरा ।
मन्त्रमालां पैपाठोचैर्घटयन्तीव दिक्छटान् ॥ १७६ ॥
ततो व्रतिनमेकं सा स्फारनेत्रा व्यलोकयत् ।
दृष्टमात्रः स संजातशङ्को[६] वह्नौ पपात च ॥ १७७ ॥
तमर्धदग्धं भुक्त्वेव द्वितीयं सा व्यलोकयत् ।
क्रमेणान्येषु भक्तेषु वणिग्धूर्तो व्यचिन्तयत् ॥ १७८ ॥
न भक्षितोऽनया यावदहमल्पप्रया मया ।
तावद्युक्तिमुपाश्रित्य करिष्यामि यथोचितम् ॥ १७९ ॥
श्रुतश्चास्या मया मन्त्रः स विचिन्त्यैत्य संभ्रमम् ।
व्यग्रायां मांसभोगेऽस्यां तं जहाराशु किन्नरम् ॥ १८० ॥
पपाठ च ततो मन्त्रं तेनोधच्छून्नकन्दर्ला ।
पतिता तावदद्धीर त्वामस्मि शरणं गता ॥ १८१ ॥
ततो निश्चयदत्तस्तां ररक्ष शरणं गताम् ।
सापकारेऽपि वीराणां न हि भीते पराक्रमः ॥ १८२ ॥
स निवेद्यात्मवृत्तान्तं कृत्वा तामेव वाहनम् ।
विद्याधरसुतां द्रष्टुं ययौ व्योम्ना हिमाचलम् ॥ १८३ ॥
अथोदयौ सहस्रांशुर्जपाकुसुमपाटलः ।
(चक्रवाककुलोत्स्पृष्टं मूर्तं रागमिवोद्वहन् ॥ १८४ ॥

१. 'भ्र' ख. २. 'च' ख. ३. 'श्ये' ख. ४. 'क्षीलदृश्य' ख. ५. 'जजापो' ख. ६. 'ङ्गमाभ्यैर्भ्रमार च । व दृष्टिदग्धं मु' ख. ७. 'क्षपुनौ' ख. ८. 'ध' ख. ९. 'सविका' ख. १०. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठ' ख-पुस्तके त्रुटित'.

ततो निश्चयदत्तं सा प्राह यक्षी कृताञ्जलिः ।
नाहं शक्ता स्थिते भानौ गन्तुं लोकैकचक्षुषि) ॥ १८५ ॥
दिनं हि शर्वरीभूतं यक्षवेतालरक्षसाम् ।
रात्रौ पुनः समेष्ये त्वामित्युक्त्वा सा ययौ क्षणात् ॥ १८६ ॥
स तस्यां संप्रयातायां चचारैको वनान्तरे ।
ततो ददर्श मग्नाङ्गं मर्कटं शुष्ककर्दमे ॥ १८७ ॥
महौघविप्लवानीते रक्तलोचनसूचितम् ।
मामुद्धरेति क्रन्दन्तं समुद्धृत्य स कौतुकी ।
कोऽसीत्यपृच्छत्पृष्टस्तु कपिर्वक्तुं प्रचक्रमे ॥ १८८ ॥
वाराणस्याममूद्विप्रश्चन्द्रस्वामीति विश्रुतः ।
सोमस्वामीति विख्यातस्तस्याहं तनयः प्रभो ॥ १८९ ॥
श्रीगर्भनाम्नो वणिजो बन्धुदत्ताभिधा सुता ।
भार्या वराहदत्तस्य स्वैरिणी मामसेवत ॥ १९० ॥
गूढं तत्प्रेमविश्रम्भसंभोगसुभगस्थितेः ।
सुमहानपि कालो मे सुखिनः क्षणवद्ययौ ॥ १९१ ॥
ततः पति गृहानेतुं तां प्राप्ते निजभर्तरि ।
सा दुःखिता मद्वियोगात्प्रदध्यौ साश्रुलोचना ॥ १९२ ॥
वयस्या योगिनी दृष्ट्वा तस्या विरहवेदनाम् ।
मां चक्रे मन्त्रसूत्रेण मर्कटं गमनक्षमम् ॥ १९३ ॥
मन्त्रसूत्राङ्कितगलं सा समादाय मां कपिम् ।
दृष्टा भर्तुर्गृहं यातुं प्रतस्थे मन्मुखोन्मुखी ॥ १९४ ॥
पुरुषस्य ततः स्कन्धे स्थितं मां वनमर्कटाः ।
जहुस्तस्यां सकरुणं क्रोशन्त्यां पथि दुर्मदाः ॥ १९५ ॥
नाना(वनसहस्रेषु भ्रान्त्वा प्राप्तो महीमिमाम् ।
गच्छता कृच्छ्रमग्नोऽहं धर्मेशेन समुद्धृतः ॥ १९६ ॥

१. 'तमुद्द' ख. २. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

अनेन कण्ठसूत्रेण न विपत्तोऽस्ति संकटे ।
अतीतानागतज्ञश्च जातस्तिर्यग्गतावपि ॥ १९७ ॥
श्रुत्वेति जातसौहार्दे निजां तस्मै न्यवेदयत् ।
कथां निश्चयदत्तोऽथ तां श्रुत्वा प्राह मर्कटः ॥ १९८ ॥
सखे विद्याधरीं मा गा दूरे हि तुहिनाचलः ।
त्वया सह कृतासक्तिर्न तस्या शुचिर्लिता ॥ १९९ ॥
लतानां च नदीनां च स्त्रीणां राज्ञां च जायते ।
सखे काल्येषु कालेषु सत्यं नवनवो रसः ॥ २०० ॥
(नाभिनन्दति चेत्सा त्वां प्राप्तां मकरलोचना ।
तदीयान्विपुलः क्लेशः कल्पितु परिगण्यते) ॥ २०१ ॥
हसन्त्यन्यैर्वदन्त्यन्यैस्तिष्ठन्त्यन्यैश्च निर्जने ।
भुञ्जते रतिमन्यैश्च लक्ष्यन्ते न हि योषितः ॥ २०२ ॥
निर्मोकवद्यास्त्यजन्ति विलैवप्रलपन्ति याः ।
को हि ताभिर्भुजङ्गीभिः कण्ठग्रहणमिच्छति ॥ २०३ ॥
विश्रम्भसुभगो भोगः स्त्रीभिः कस्य न वल्लभः ।
किं त्वसौ विरसः पश्चान्मायाचटुलचेष्टितैः ॥ २०४ ॥
भवशर्मा द्विजः पूर्वं सुनदां नाम योषितम् ।
जघान रागकलुषो मूर्ध्नि यस्या मृशाकुलः ॥ २०५ ॥
तत्कोपान्मन्त्रसूत्रेण सा तं चक्रे महावृषम् ।
विश्रम्य तं ददर्शान्या सानुगा कापि योगिनी ॥ २०६ ॥
वार्यमाणानुयायिन्या तस्य सा कण्ठसूत्रकम् ।
व्यदारयत्ततो दैवादाययौ सुनदा पुरः ॥ २०७ ॥
सा दृष्ट्वा मुक्तसूत्रं तं क्रुद्धा तां प्राह योगिनी ।
मया बद्धस्त्वया मुक्तः प्रातस्ते भविता क्षयः ॥ २०८ ॥

---

१. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. २. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तकेऽधिकः. ३. 'विलसन्त्यविशान्ति याः' ख. ४. 'नागकलहे' ख. ५. 'भ्राम्यन्तं' ख. ६. 'न्ययोगिन्या' ख. ७. 'भञ्जत्' ख. ८. 'न्यथार' ख.

उक्त्वेति तस्यां यातायां योगिनी प्राह तं द्विजम्।
खड्गं गृहीत्वा संनद्धो भव धैर्यसमः सखे ॥ २०९ ॥
त्वत्कृते सा महावैरात्सुमदा प्रातरेष्यति।
विधाय कृष्णतुरगीरूपं युद्धाय दुःसहम् ॥ २१० ॥
अहं तु श्वेततुरगी भविष्यामि तया सह।
संप्रस्तुते प्रहारे च हन्तव्या सासिना त्वया ॥ २११ ॥
इति श्रुत्वा तथेत्याह खड्गमादाय स द्विजः।
ततः प्रातर्महायुद्धे तयोर्दन्तैः खुरैरपि।
प्रवृत्ते कृष्णवडवां निजघान स खड्गवान् ॥ २१२ ॥
मायामन्त्रादिचकितो हत्वा तामपरामपि।
स्वशिष्यां खड्गपट्टेन हत्वा स्वस्थोऽविशद्गृहम् ॥ २१३ ॥
इति मित्रेण कथितं पुरा मे भवशर्मणा।
ब्रह्मदत्तगृहे गूढकामिनीव्यसनस्थितेः ॥ २१४ ॥
इत्थं स्त्रियः सुविषमा रक्ताकृष्टिपिशाचिकाः।
स्त्रीनाम्नीं छेत्तुमिच्छामि श्रीवामपि सखे निजाम् ॥ २१५ ॥
इति निश्चयदत्तस्तं ब्रुवाणमवदत्कपिम्।
अनुरक्तैव सा साध्वी मम विद्याधराङ्गना ॥ २१६ ॥
खेचराणां गृहे तत्र कांचित्प्राप्स्यामि योगिनीम्।
मन्त्रसूत्रकृताद्बन्धात्त्वां हि या मोचयिष्यति ॥ २१७ ॥
एवं कथयतोरेव तयोः कमलिनीप्रियः।
संध्यां त्यक्त्वा जगामाशु प्रशमं रक्तदीधितिः ॥ २१८ ॥
संगता रविणा क्षिप्रं शशिनालिङ्गिता ततः।
मुहूर्तरागिणी संध्या भगार कुलटाव्रतम् ॥ २१९ ॥
अत्रान्तरे समायातां स समारुह्य यक्षिणीम्।
प्रतस्थे निश्चितं गन्तुं व्योम्ना विद्याधरीपुरीम् ॥ २२० ॥

१. 'ठिरवा' ख. २. 'मन्तुरत्त' ख. ३. 'गूढं कामिन्ये व्यसनागमे' ख.

तमाह मर्कटो दूरायत्तः कार्यस्त्वया सखे ।
अस्य मे मन्त्रसूत्रस्य दारणे प्रणयादिति ॥ २२१ ॥
तथेत्युक्त्वा स संप्राप क्षणात्तुहिनभूधरम् ।
मासि मासि शशाङ्कानामाकल्पमिव संचयम् ॥ २२२ ॥
अनुरागपरां मेने न च संगमनिर्वृतः ।
गान्धर्वेण विवाहेन स तां तत्र मृगेक्षणाम् ॥ २२३ ॥
तया सारससेरमत्तसंभोगसुन्दरम् ।
अवाप प्रेमसर्वस्वमतीतां कथयन्कथाम् ॥ २२४ ॥
प्रेयस्या दत्तविद्योऽथ सुहृदं मर्कटं ययौ ।
द्रष्टुं कदाचित्सोत्कण्ठः कण्ठसूत्रं व्यचिन्तयत् ॥ २२५ ॥
तस्मिन्गते निर्जनस्थां तां तारुण्यतरङ्गिणीम् ।
कश्चिद्विद्याधरसुतो ददर्श स्तबकस्तनीम् ॥ २२६ ॥
करिणीदन्तकान्तेषु तस्या गात्रेषु बिम्बितः ।
स सुधालहरीमग्नः शशाङ्कश्रियमाययौ ॥ २२७ ॥
भज मामिति तेनोक्ता सा लिलेख ह्रिया नता ।
हेलया चरणाग्रेण कटाक्षशबलां भुवम् ॥ २२८ ॥
मौनाद्दत्तवचनां स तामालिङ्ग्य ससाध्वसम् ।
कण्ठे जग्राह सोत्कण्ठं नीवीविस्रंसनाकुलः ॥ २२९ ॥
मा मा परवधूरस्मि त्वर्धोक्तिगलिताक्षरम् ।
स चुचुम्ब मुखं तस्या लज्जामीलितलोचनम् ॥ २३० ॥
क्षामाननाब्जपर्यस्तहारफेनप्रकम्पिनीम् ।
स दूषयित्वा प्रययौ तां मातङ्ग इवाब्जिनीम् ॥ २३१ ॥
तस्मिन्प्रयाते सा तस्यावतृषा तत्समागमे ।
स्वेदार्द्रस्रस्तधम्मिल्लच्छिन्नहाराङ्कितस्तनी ॥ २३२ ॥
अत्रान्तरे समासाद्य कपिं कान्तानिकेतनम् ।
तूर्णं निश्चयदत्तोऽपि प्रेमाकृष्टः समभ्ययात् ॥ २३३ ॥

१. 'श्यामान' ख.

तं दृष्ट्वा नोदतिष्ठत्सा पर्यङ्कार्धं न वात्यजत् ।
चाटुकारे कृतोद्वेगा नर्मोक्तिषु निरादरा ॥ २३४ ॥
चुम्बने कूणितमुखी सकोपा नीविमोक्षणे ।
आलिङ्गने परावृत्ता प्राह मिथ्याशिरोरुजम् ॥ २३५ ॥
स च गाढानुरक्तस्तत्राशासीचद्विचेष्टितम् ।
स्त्रीमतिः स्वप्नमायेव नाप्रबुद्धैर्विचार्यते ॥ २३६ ॥
ततः प्रातः समुत्थाय स ययौ मर्कटान्तिकम् ।
सर्वज्ञः स च तं प्राह सा विनष्टा वधूरिति ॥ २३७ ॥
असत्यशङ्किने तस्मै मन्त्रयोगेन मर्कटः ।
विद्याधरेणावभिन्नतनुं तां समदर्शयत् ॥ २३८ ॥
स विद्याधरसंसक्तां प्रत्यक्षं वीक्ष्य वल्लभाम् ।
रागनिद्रां परित्यज्य वैराग्यालोकमाप्तवान् ॥ २३९ ॥
तूर्णं निश्चयदत्तोऽथ तपसे कृतनिश्चयः ।
कपिना सह निर्द्वन्द्वं ययौ सिद्धतपोवनम् ॥ २४० ॥
दयिताविप्रलब्धानामैश्वर्यसुखदुःखिनाम् ।
नीचावमानदग्धानां नान्यत्राणं वनं विना ॥ २४१ ॥
ततः पुष्पोच्चयायाता तद्वनं सिद्धयोगिनी ।
कपेः स्वरूपसंप्राप्त्यै मन्त्रसूत्रमदारयत् ॥ २४२ ॥
सोमस्वामी निजं रूपं संप्राप्य मुनिवचतः ।
सह निश्चयदत्तेन क्षीणपापो दिवं ययौ ॥ २४३ ॥
इति शीलं विना देव रक्ष्यन्ते केन योषितः ।
गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा सर्वे मुदं ययुः ॥ २४४ ॥

इति निश्चयदत्ताख्यायिका ॥ ५ ॥

गोमुखाश्चर्यकथया प्रहृष्टं नरवाहनम् ।
रत्नप्रभासखं दृष्ट्वा मरुभूतिरभाषत ॥ २४५ ॥

---

१. 'प्रमदानु' ख.

अनेकतुरगोदारकुञ्जरानीकसंकुलः ।
विक्रमादित्यनामाभून्नृपः पाटलिपुत्रके ॥ २४६ ॥
प्रतिष्ठानाधिनाथेन नरसिंहेन भूभुजा ।
जितः प्रतिज्ञां विदधे स वीरस्तत्पराजये ॥ २४७ ॥
रुद्धप्रवेशं मे द्वारि सूच्यमानं पुरःसरैः ।
द्रक्ष्यन्ति सेवकाः सर्वे नरसिंहं न संशयः ॥ २४८ ॥
प्रतिज्ञायेति स ययौ तत्पुरं वेषयोपितः ।
गूढं कार्पटिको भूत्वा राजपुत्रशतैर्वृतः ॥ २४९ ॥
गृहं मदनमालायाः प्राप्य राजाप्सरोपमः ।
रममाणस्तया तस्थौ (तैल्काञ्चनकृतव्ययः ॥ २५० ॥
अयं कोऽपि महासत्त्वः पृथिवीपालनोचितः ।
ध्रुवमित्यनिशं ध्यात्वा सा तस्थौ) तत्प्रियव्रता ॥ २५१ ॥
प्रददौ नित्यमर्थिभ्यः स सुवर्णशतायुतम् ।
विद्यासु गुरुणा नूनं नकारं न हि शिक्षितः ॥ २५२ ॥
ततो मदनमालायास्तां भक्तिं गणयन्मुहुः ।
प्राह बुद्धिवरं नाम मन्त्रिणं वसुधाधिपः ॥ २५३ ॥
अकृत्रिममहो प्रेम धनत्यागो निरर्गलः ।
निर्विकारमहो सत्त्वमस्यास्तरलचक्षुषः ॥ २५४ ॥
शरीरविक्रयो यासां हेतुर्द्रविणसंचये ।
(भया तदर्थाः क्षपिताः पश्य प्रेम्णो विजृम्भितम् ॥ २५५ ॥
प्रत्यहं दिव्यरत्नेन श्रमणेनास्मि सेवितः ।
मपञ्चबुद्धिमापूर्वं मन्त्रसान्निध्यसिद्धये) ॥ २५६ ॥
तथेति प्रतिपन्नोऽहं मुक्तः स्नेहेऽसुरारिणा ।
यागे त्वामेष पशुतां श्रमणो नेतुमुद्यतः ॥ २५७ ॥
हन्तुं पापो वक्ष्यति त्वां प्रणतिः क्रियतामिति ।
त्वं दर्शयेति वाच्योऽसौ त्वया तद्वधसिद्धये ॥ २५८ ॥

---

१. 'यतः' ख. २. 'जयदीपमम्' ख. ३-४. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः खपुस्तके त्रुटितः.

तस्मिन्हते व्योमगतिर्भवितासीति शासनम् ।
स्वप्ने भगवतः प्राप्य तदकार्षं यथोदितम् ॥ २५९ ॥
ततः प्रभृति मे जातः कुबेरो वरदः सखा ।
तद्धनैः पूरयाम्येनामद्य वारविलासिनीम् ॥ २६० ॥
इत्युक्त्वा धनदं ध्यात्वा सुवर्णपुरुषान्ददौ ।
पञ्च तस्मै सदा येषां छिन्नमङ्गं प्रजायते ॥ २६१ ॥
तान्दत्वा व्योमगो गूढं स निजं नगरं ययौ ।
तद्वियोगाग्नितप्ता च सा तस्थौ निधनोद्यता ॥ २६२ ॥
छित्त्वा तान्बहुशो दत्त्वा द्विजेभ्यः काञ्चनोत्तरान् ।
षण्मासानवधिं चक्रे प्राणत्यागे प्रियं विना ॥ २६३ ॥
(अत्रान्तरे तत्कनकपूर्णाञ्ज्ञात्वा द्विजन्मनः) ।
भक्तिं मदनमालाया भूपतिः पुनराययौ ॥ २६४ ॥
चिरं संगमसंतोषप्रत्युज्जीवितया तया ।
रममाणश्चिरं तस्थौ स राजा गुप्तमन्दिरे ॥ २६५ ॥
नरसिंहोऽपि नृपतिस्तां पूर्वपरिसेविताम् ।
वाराङ्गनां समभ्यायाचतः स्मृत्वा स्मरातुरः ॥ २६६ ॥
द्वारपालेन विधृतो नाम्ना तेनैव सूचितः ।
(विक्रमादित्यदेवोऽत्र तिष्ठति ब्रुवतेत्यतिः) ॥ २६७ ॥
ततः प्रतिज्ञासाफल्यं मेने राजान्तरं स्थितः ।
मनोरथार्थमुत्तीर्य सौहार्दं तेन भूभुजा ॥ २६८ ॥
विधाय विक्रमादित्यस्तां निनाय निजां पुरीम् ।
(इति देव मृगाक्षीणां सहजप्रेमशालिनी ।
कुलेऽपि पण्यनारीणां भक्तिरव्यभिचारिणी) ॥ २६९ ॥

इति मदनमालाख्यायिका ॥ ६ ॥

---

१. 'धनदः' ख. २. 'गुरुषा' ख. ३. 'नोत्तरान्' ख. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतम् ख-पुस्तके त्रुटितः. ५. एतत्स्थाने ख-पुस्तके 'भार्या यदेव व्यवस्थेति नामार्थे मार्गेरी' इति पाठः. ६. 'अयमात्र पुरः स्थितः' ख. ७. 'रिपु' ख. ८. एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

इति प्रत्यक्षमङ्गे च कथिते मरुभूतिना ।
कथानुगं हरिशिखो राजपुत्रमभाषत ॥ २७० ॥
अभूद्वीरभुजो नाम वर्धमानपुरे नृपः ।
जायाशतादभूत्तस्य प्रिया गुणवराभिधा ॥ २७१ ॥
स पुत्रार्थी भिषग्वाक्यात्स्वयमादाय लुब्धकैः ।
वनच्छागं महाकार्यं सूदेन विदधे रसम् ॥ २७२ ॥
औषधीचूर्णसंयुक्तं वैद्योऽपि श्रुतवर्धनः ।
सर्वाभ्यो राजकान्ताभ्यो ददौ गुणवरां विना ॥ २७३ ॥
सा हि सर्वार्थिने पत्युर्न्यग्राभूत्पुत्रकाङ्क्षिणी ।
राजदारान्सुगुप्तांस्तु वैद्यो जानाति तां कथाम् ॥ २७४ ॥
ततो दुःखाकुलो राजा दयितां वीक्ष्य वञ्चिताम् ।
चुकोप कुपितं दृष्ट्वा तं च प्राह भिषग्वरः ॥ २७५ ॥
छागशृङ्गद्वयं शेषं कथितं सूपकारिणा ।
तद्रसेन सुतं देवी चूर्णयोगादवाप्स्यति ॥ २७६ ॥
इत्युक्त्वा शृङ्गयूषेण ददौ तस्यै स भेषजम् ।
तेन गर्भवती साभूद्दोहदापाण्डुरच्छविः ॥ २७७ ॥
अथ सर्वेषु जातेषु पुत्रेषु प्राप सा सुतम् ।
कान्तं शृङ्गभुजं नाम गुणविक्रमशालिनम् ॥ २७८ ॥
ततो गुणवरां दृष्ट्वा सपुत्रामधिकप्रियाम् ।
राज्ञः सर्वैरधूवर्क्तं चिन्ताव्याकुलतां ययौ ॥ २७९ ॥
संमन्त्र्य नृपं प्राहुस्ताः पृथग्भावाः कथान्तरे ।
सक्ता गुणवती राजन्नन्तःपुरपतेरिति ॥ २८० ॥
सर्वासामेकवाक्येन गाढं शङ्काकुलो नृपः ।
तीर्थयात्रापदेशेन निरासान्तःपुराधिपम् ॥ २८१ ॥
सर्वतीर्थमयं पुण्यं याते काश्मीरमण्डलम् ।
तस्मिन्देवीमपि क्रोधाद्गूढान्तर्न्यवेशयत् ॥ २८२ ॥

१. 'मन्यो' ख. २. 'रसान्तः' ख.

सत्यासत्यविभागेन मन्दशोकां महीपतिः।
तामाह मासानष्टौ त्वं सहस्वान्यगृहव्यथाम् ॥ २८३ ॥
राज्ये ममायुषि च ते प्रतिकूलं समुत्थितम्।
दैवज्ञेनाथ कथितं त्वत्क्लेशेन प्रणश्यति ॥ २८४ ॥
इति राजवचः श्रुत्वा सा तथेत्याह दुःखिता।
भर्तुरभ्युदयैकाग्रसंकल्पा हि कुलाङ्गनाः ॥ २८५ ॥
अत्रान्तरे महाकायो बहुरूपी निशाचरः।
आयादग्निशिखो नाम तं देशं लोककण्टकः ॥ २८६ ॥
दैवज्ञवचनाज्ज्ञात्वा खेलन्तो राजसूनवः।
चिक्षिपुस्तं समुद्दिश्य बाणांस्ते चाफला ययुः ॥ २८७ ॥
ततः शृङ्गभुजो वीरः शृङ्गमादाय काञ्चनम्।
रक्षो जघान तद्वीक्ष्य परे लज्जानतिं ययुः ॥ २८८ ॥
ईर्ष्याकलुषितस्तत्र मात्रा पूर्वं च बोधितः।
निर्वासभुजनामा तं सभ्रूभङ्गमभाषत ॥ २८९ ॥
अयं तातस्य दयितो भ्रातः कनकसायकः।
क्षिप्तस्त्वया शरीराग्रमग्नो नीतश्च रक्षसा ॥ २९० ॥
एतन्न क्षमते तातः शरं हैमं प्रयच्छ तम्।
नो चेत्त्वदुपरि भ्रातर्वयं मर्तुं समुद्यताः ॥ २९१ ॥
इत्याकृष्टः स वैर्द्वैपात्स्वानुबन्ध्यो निरुत्तरः।
ययौ शृङ्गभुजो रक्षोरक्तधारां समुन्नयन् ॥ २९२ ॥
ततो धूमपुरं नाम नगरं तस्य रक्षसः।
प्रविश्य तत्सुतां कान्तां ददर्श हरिणीदृशम् ॥ २९३ ॥
सापि तं वीक्ष्य सहसा यौवनस्येव यौवनम्।
अभिलाषवती मेने मन्मथस्यापि मन्मथम् ॥ २९४ ॥
परस्परकथां ज्ञात्वा तौ संजातमनोभवौ।
मिथो जीवितसर्वस्वप्रदे विविशतुः क्षणात् ॥ २९५ ॥

१. 'टा' ख. २. 'निर्वास भुजनामानं' ख. ३. 'जः' ख.

ततो रूपशिखामिख्या पितरं सा व्यजिज्ञपत् ।
दृष्टो मया समुचितो वरस्तस्मै प्रयच्छ माम् ॥ २९६ ॥
इति पुत्रीवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा तथेति सः ।
सुतामग्निशिखः प्राह तद्वचनसमुद्यतः ॥ २९७ ॥
राजपुत्रं समवदत्तैरं रूपशिखा ततः ।
भगिन्यो मम पञ्चाशत्सन्ति तुल्या विधाय ताः ॥ २९८ ॥
त्वां ततो वक्ष्यति ज्ञात्वा गृहाण दयितामिति ।
मुक्तावल्यो गले सन्ति सर्वासामेव किं त्वहम् ॥ २९९ ॥
कण्ठान्मूर्ध्नि विधास्यामि तत्क्षणान्मौक्तिकावलीम् ।
तया मां प्रत्यभिज्ञाय प्राप्स्यसि प्रौढकिल्बिषः ॥ ३०० ॥
न च त्वां वञ्चकस्तातः संशये पातयत्यसौ ।
तिलखारीशतं क्षेत्रे क्षिप्त्वा क्षिप्रमिति प्रभो ॥ ३०१ ॥
त्वं संक्षिपेति च पुनस्त्वां वक्ष्यति सुलोचनः ।
प्रेरयिष्यति घोरस्य भ्रातुर्धूमशिखस्य च ।
गृहं निमन्त्रणाय त्वां मृषा वैवाहकोत्सवे ॥ ३०२ ॥
इत्येतास्त्वद्विनाशाय मायास्तातेन कल्पिताः ।
मद्विद्यारक्षिताः सर्वास्तव धैर्यमहोदधे ॥ ३०३ ॥
इति प्रियावचः श्रुत्वा सर्वं शृङ्गभुजोऽभ्यधात् ।
यथोक्तं रूपशिखया तेन रक्षः स्वयं ययौ ॥ ३०४ ॥
ततः प्रभाते तां पित्रा परिणीय समर्पिताम् ।
तत्र तस्थौ दिशन्नीलविलासे मदनोत्सवम् ॥ ३०५ ॥
हेमकाण्डं ततः प्राप निजवल्लभयार्पितम् ।
भ्रातृभिर्यत्कृते दूरं द्वेषाद्युक्त्या विवासितः ॥ ३०६ ॥
कदाचिदथ सोत्कण्ठः पितुर्मातुश्च दर्शने ।
ययौ शृङ्गभुजः कान्तां समादाय तुरङ्गमैः ॥ ३०७ ॥

अलक्षितं गतं ज्ञात्वा स सभार्यं निशाचरः ।
प्रक्षोभितनभोवातः पश्चात्कोपाकुलो ययौ ॥ ३०८ ॥
ततः प्रभाते तां पित्रा परिणीय समर्पिताम् ।
समागतमतिक्रुद्धं दृष्ट्वा रूपशिखावदत् ॥ ३०९ ॥
अस्मानग्निशिखः कोपादयमायाति भीषणः ।
प्रेषितः पुष्करावर्तैः क्षतदूत इवावनिम् ॥ ३१० ॥
तदेषा वञ्चयाम्येनं मायया मन्दचेतसम् ।
पापकर्ममहाम्भोधिनिमग्नमिव संस्थितिः ॥ ३११ ॥
इत्युक्त्वा विद्यया साभूत्सहसा काष्ठहारिकः ।
जवाद्राक्षसमायान्तं पृच्छन्तं साभ्यभाषत ॥ ३१२ ॥
पञ्चतां राक्षसेन्द्रोऽथ दैवादग्निशिखो गतः ।
तदर्थमिदमानीतं काष्ठं यत्नेन काननात् ॥ ३१३ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मौर्ख्यादग्निशिखस्ततः ।
अमन्यत मृतोऽस्मीति स्वभावजडमानसः ॥ ३१४ ॥
ततो निजगृहं गत्वा स पप्रच्छ स्वयोषितः ।
अपि सत्यं मृतोऽस्मीति श्रुत्वा नेत्यूचिरे च ताः ॥ ३१५ ॥
ततः पुनः समभ्यायाद्धन्तुं जामातरं जवात् ।
तं दृष्ट्वा लेखहारोऽभूत्क्षिप्रं रूपशिखा पुनः ॥ ३१६ ॥
अपि दृष्टौ त्वया मार्गे दम्पती तुरगस्थितौ ।
इति पृच्छन्तमवदत्तमसौ लेखहारकः ॥ ३१७ ॥
दर्पादग्निशिखो युद्धे जीवशेषः कृतोऽरिभिः ।
वार्ता तद्भ्रातुरानीता मया लेखेन सत्वरम् ॥ ३१८ ॥
इति श्रुत्वा मूढमतिः स गत्वा स्वगृहं पुनः ।
पप्रच्छ हासविवशाः स्वस्य वृत्तान्तमङ्गनाः ॥ ३१९ ॥
इत्यसौ वञ्चितः पुत्र्या मूर्खः सुप्त इव द्विपः ।
हास्योपगानतां प्राप्तः मज्ञासु निरवमदः ॥ ३२० ॥

१. 'दं' ख. २. 'दा' ख. ३. 'स्ववि:' ख. ४. 'मा' ख.

अस्मिन्नवसरे प्राप्ते निजं शृङ्गभुजः पुरम् ।
भ्रात्रे हेमशरं दत्त्वा मुग्धं जनकमभ्ययात् ॥ ३२१ ॥
राजा तु ज्ञातवृत्तान्तः पुत्रं दृष्ट्वा वधूसखम् ।
हृष्टो महोत्सवं चक्रे सिन्दूरारुणिताङ्गणम् ॥ ३२२ ॥
याति काले नरपतिः प्रविश्यान्तःपुरं वचः ।
शुश्राव मधुमत्ताया मायायाः स्वमविभ्रमे ॥ ३२३ ॥
युक्त्या गुणवती तावन्मिथ्या संदूषिता सती ।
चिन्तनीयस्तु तत्पुत्रः श्रुत्वेति प्रययौ नृपः ॥ ३२४ ॥
भूगृहाचामथोद्धृत्य प्रसाद्य निजवल्लभाम् ।
संजातप्रत्ययो राजा यौवराज्ये सुतं व्यधात् ॥ ३२५ ॥
(अन्तःपुरेभ्यः कुपितः पुत्रेभ्यश्च न्यवारयत् ।
यत्नाद्गुणवरा देवी तत्पुत्रश्च नराधिपम् ॥ ३२६ ॥
अत्रान्तरे समभ्यायात्स विप्रोऽन्तःपुराधिपः ।
स्नात्वा पुण्येषु तीर्थेषु नानाप्रच्छन्नाकृतिः ॥ ३२७ ॥
संपूज्य तं महीपालः पश्यञ्शृङ्गभुजं सुतम् ।
विनिताशेषपापार्तं जहर्ष दयितासखः) ॥ ३२८ ॥
इत्येवं शीलशालिन्यो देव भर्तृहिते रताः ।
कुशलंकरणं कान्ताः सन्ति रूपशिखा यथा ॥ ३२९ ॥
इति रूपशिखाख्यायिका ॥ ७ ॥
श्रुत्वा हरिशिखेनेति कथितं नरवाहनः ।
रत्नप्रभासखः प्रायात्पितुरन्तःपुरं कृती ॥ ३३० ॥
तत्र प्रणम्य वत्सेशं देव्यौ च स मधूत्सवम् ।
भेजे वयस्यसहितो दयितानन्दनिर्भरः ॥ ३३१ ॥
निजमन्तःपुरं गत्वा रत्नपर्यङ्कमास्थितः ।
रत्नप्रभाङ्कविन्यस्तपूर्वदेहो रराज सः ॥ ३३२ ॥

---

१. 'प्य' ख. २. 'प्यत्त' ख. ३. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

मरुभूतिमथ क्षीवं विलोक्य स्खलिताक्षरम्।
गोमुखः प्राह राजेन्द्र गृहे किं नै स संयतः ॥ ३३३ ॥
*संक्रुद्धश्चासि मद्वाक्ये नीतिबाह्य इवेक्षसे।*
अथ वा दुर्ग्रहरतानुनेतुं क ईश्वरः ॥ ३३४ ॥
प्रतिष्ठानपुरे पूर्वं तपोदत्ताभिधो द्विजः।
गङ्गाकूले तपस्तेपे विद्यार्थी शंसितव्रतः ॥ ३३५ ॥
तस्य घोरेण तपसा सहस्राक्षो विषण्णधीः।
विप्ररूपः समभ्यायात्तदाश्रमनदीतटम् ॥ ३३६ ॥
तत्र दोर्भ्यां समादाय सिकताः स मुहुर्मुहुः।
बबन्ध सेतुं सावेगप्रवाहे[2] सरिदन्तरे ॥ ३३७ ॥
तं दृष्ट्वा स तपःस्थोऽपि विस्मितः स्मितशुभ्रया।
गिरा तमाह किमयं मिथ्या तव परिश्रमः ॥ ३३८ ॥
*सैकतः सेतुबन्धोऽयं तव हासाय निष्फलम्।*
औदार्यं निर्धनस्येव मूर्खस्येव नयक्रमः ॥ ३३९ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा स तं प्राह द्विजाकृतिः।
अहो परोपदेशेषु विद्वान्सर्वात्मना जनः ॥ ३४० ॥
विस्मयस्ते द्विजश्रेष्ठ निष्फले मम कर्मणि।
कथमश्रुतपाण्डित्यमब्रुवंस्त्वं समीहसे ॥ ३४१ ॥
इयं शशविषाणेच्छा व्योम्नि वा चित्रकल्पना।
अनक्षरोऽपि विन्यासो यद्विद्याध्ययनं विना ॥ ३४२ ॥
निशम्यैतत्तपोदत्तः साधूक्तमिति चेतसा।
निश्चित्य दुर्ग्रहात्तस्माद्विरराम महातपाः ॥ ३४३ ॥
इत्येवमुपदेशेन निवर्तन्ते विपर्ययात्।
साधवो न तु मूर्खोऽयं मरुभूतिः शृणोति मे ॥ ३४४ ॥
इति नर्मोपहासाय गोमुखेनोपवर्णिते।
हरन्दरिशिखः प्राह मरुभूतिं व्यलोकयन् ॥ ३४५ ॥

१. 'तपर्थं दत्त' ख. २. 'दर्शदन्तरे' ख. ३. 'चेतये' ख.

ततो निर्गत्य तरुणो जनानां विस्मयप्रदः ।
सान्तःपुरपुरानार्त्यं सुकुमारं चरं महत् ॥ ३७१ ॥
भेजे राज्यमहोत्साहः स युवा पूजयन्द्विजान् ।
अजरोऽयमिति प्राप प्रसिद्धिं विबुधोपमः ॥ ३७२ ॥
ततो यदृच्छयायातौ वयस्यौ निजसंपदाम् ।
वितीर्णविभवौ चक्रे पद्मदर्शीविचिन्तकौ ॥ ३७३ ॥
कदाचिदथ तं प्राह स भिषग्विजने नृपम् ।
तव राज्यं मया दत्तं नानेवाद्य न मन्यसे ॥ ३७४ ॥
इति वैद्यवचः श्रुत्वा भूपतिः प्राह सस्मितम् ।
स्वकर्ममुद्रितो लोकः कः कस्मै किं प्रयच्छति ॥ ३७५ ॥
प्राग्जन्मविहितं नाम वस्तु नान्यदवाप्यते ।
प्राप्तमन्यैः सुदूरस्थं करस्थं हारितं परैः ॥ ३७६ ॥
अहं जातिस्मरो वैद्य मत्कथां शासतीति तम् ।
भूमिपालः समामाप्य ययौ स्नातुं नदीतटम् ॥ ३७७ ॥
राजपुत्रैर्वृतस्तत्र स ददर्श जलान्तरे ।
पञ्च काञ्चनपद्मानि दृष्ट्वा वैद्यमुवाच च ॥ ३७८ ॥
भिषग्वर कुतो नाम हेमाब्जानामिहागमः ।
गच्छ केदारकं क्षिप्रं जानीहि चतुरो ह्यसि ॥ ३७९ ॥
ततो राजाज्ञया गत्वा नदीतीरेण सत्वरः ।
दूरे तीर्थवटासक्तं सोऽपश्यच्छैवमालयम् ॥ ३८० ॥
तत्र स्नातः स्मरारातिं प्रणम्य शशिशेखरम् ।
विश्रान्तो वृक्षशाखाग्रे नरास्थीनि व्यलोकयत् ॥ ३८१ ॥
अत्रान्तरे जलधरैर्मुक्ते धाराकदम्बके ।
शाखास्थितास्थिपतितं नद्यां तदपतज्जलम् ॥ ३८२ ॥
तत्क्षणे तीर्थमासाद्य प्रयातं हेमपद्मताम् ।
इति दृष्ट्वा तदाश्चर्यं तीर्थे क्षिप्त्वास्थिसंचयम् ॥ ३८३ ॥

त्वं च हेमप्रभकुले वैजयन्ती कुलोज्ज्वला।
धन्या धराशशी यस्याः प्रणयी नरवाहनः ॥ ३५८ ॥
विलासशीलो भूपालः श्रीकण्ठविषये पुरा।
बभूव चारुचरितः स्वच्छप्रकृतिमानसः ॥ ३५९ ॥
तस्य पद्मप्रभा नाम पद्मिनीव रवेः प्रिया।
बभूव कामवसतिर्लावण्यगुणशालिनी ॥ ३६० ॥
स कदाचिन्निजं दृष्ट्वा जराधवलमाननम्।
सतुषारमिवाम्भोजमभूच्चिन्ताग्नितापितः ॥ ३६१ ॥
शृङ्गारसुभगाभोगं शोभते तावदद्भुतम्।
यावद्भृङ्गाङ्गनाजालश्यामलः केशसंचयः ॥ ३६२ ॥
मृत्युसिंहमहादंष्ट्राकालकोपस्मितच्छटाः।
जरा हि नाम रूपस्य शमलस्येव चन्द्रिका ॥ ३६३ ॥
उष्ट्रस्येव विलासेन गीतेनेव खरस्य च।
वृद्धस्य स्मरभोगेन हास्यं कस्य न जायते ॥ ३६४ ॥
इति ध्यात्वा महीपालो यौवनार्थी रसायनम्।
वैद्यं तरुणचन्द्राख्यमपृच्छत्पुरतः स्थितम् ॥ ३६५ ॥
कालक्लृप्तां जरां मूर्खो (बलात्संत्यक्तुमिच्छति।
वैद्यः क्षणं विचिन्त्येति नराधिपमभाषत ॥ ३६६ ॥
देव भूमिगृहे गुप्ते मासानष्टौ स्थिताय ते)।
भेषजैर्यौवनं युक्त्या विधास्यामि स्थिरो भव ॥ ३६७ ॥
इत्युक्ते भूगृहे भूपं प्रविष्टं यौवनेच्छया।
हत्वा बलेन तरुणं सोऽन्यं नरमवेशयत् ॥ ३६८ ॥
बहिः स्थानान्तरस्थस्य (प्रतीहारेण कीर्तितान्।
अमात्यान्नामभिस्तस्य शनकैर्विदितान्व्यधात् ॥ ३६९ ॥
द्वारि संभाषणव्यग्र)मन्तःपुरकदम्बकम्।
तेनोपदिष्टमज्ञासीच्छुत्वान्ध इव नामभिः ॥ ३७० ॥

१. 'यथा' ख. २-२. 'एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः' ख पुस्तके त्रुटितः.

ततो निर्गत्य तरुणो जनानां विस्मयप्रदः ।
सान्तःपुरपुरामात्यं सुकुमारं चरं महत् ॥ ३७१ ॥
भेजे राज्यमहोत्साहः स युवा पूजयन्द्विजान् ।
अजरोऽयमिति प्राप प्रसिद्धिं विबुधोपमः ॥ ३७२ ॥
ततो यदृच्छयायातौ वयसौ निजसंपदाम् ।
विस्तीर्णविभवौ चक्रे पद्मदर्शविचिन्तकौ ॥ ३७३ ॥
कदाचिदथ तं प्राह स भिषग्विजने नृपम् ।
तव राज्यं मया दत्तं मामेवाद्य न मन्यसे ॥ ३७४ ॥
इति वैद्यवचः श्रुत्वा नृपतिः प्राह सस्मितम् ।
स्वकर्ममुदितो लोकः कः कस्मै किं प्रयच्छति ॥ ३७५ ॥
प्राग्जन्मविहितं नाम तत्तु नान्यदवाप्यते ।
प्राप्तमन्यैः सुदूरस्थं करस्थं हारितं परैः ॥ ३७६ ॥
अहं जातिस्मरो वैद्य मत्कथां ज्ञास्यसीति तम् ।
भूमिपालः समामाप्य ययौ स्नातुं नदीतटम् ॥ ३७७ ॥
राजपुत्रैर्वृतस्तत्र स ददर्श जलान्तरे ।
पद्म काञ्चनपद्मानि दृष्ट्वा वैद्यमुवाच च ॥ ३७८ ॥
भिषग्वर कुतो नाम हेमाब्जानामिहागमः ।
गच्छ केदारकं क्षिप्रं जानीहि चतुरो ह्यसि ॥ ३७९ ॥
ततो राजाज्ञया गत्वा नदीतीरेण सत्वरः ।
दूरे तीर्थतटासक्तं सोऽपश्यच्छैवमालयम् ॥ ३८० ॥
तत्र स्नातः स्मरारातिं प्रणम्य शशिशेखरम् ।
विश्रान्तो वृक्षशाखाग्रे नरासीनि व्यलोकयत् ॥ ३८१ ॥
अत्रान्तरे जलधरैर्मुक्ते धाराकदम्बके ।
शाखास्थितास्थिपतितं नद्यां तदपतज्जलम् ॥ ३८२ ॥
तत्क्षणे तीर्थमासाद्य प्रयातं हेमपद्मताम् ।
इति दृष्ट्वा तदाश्चर्यं तीर्थे शिरस्यास्थिसुचयम् ॥ ३८३ ॥

न्यवेदयद्यथादृष्टं गत्वा भूमिभुजे भिषक् ।
ततोऽब्रवीन्नृपो वैद्यं विविक्ते मित्रयोः पुरः ॥ ३८४ ॥
शरीरं शंभुनिलये त्यक्तं तस्मिन्मया पुरा ।
त्वं चैतौ च बभूवुर्मे सुहृदस्तीर्थसेवनात् ॥ ३८५ ॥
तान्यस्थीनि मदीयानि तीर्थे क्षिप्तान्यथो त्वया ।
अधुना कृतकृत्योऽहमित्युक्त्वा निर्वृतिं ययौ ॥ ३८६ ॥
इत्येवं पूर्वसंबन्धाद्भवन्ति प्रीतयो नृणाम् ।
आप्तसेवितोऽयं धन्यानां ध्रुवं भो नरवाहन ॥ ३८७ ॥
इत्यजराख्यायिका ॥ ८ ॥

तपन्तकस्येति वचः श्रुत्वा भक्तिपुरःसरम् ।
सर्वे साधूक्तमित्यूचुः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ ३८८ ॥
अथान्तःपुरपर्यन्ते श्रुत्वा विक्रोशतां स्वनम् ।
निर्गत्य पृष्ट्वा तत्रस्थान्प्रविश्य प्राह गोमुखः ॥ ३८९ ॥
देव कञ्चुकिनः पुत्रो यातो धर्मगिरिर्दिवम् ।
तं निशम्याप्तमोहोऽसौ नीतो निजजनैर्गृहम् ॥ ३९० ॥
इति श्रुत्वा सकरुणं विषण्णे नरवाहने ।
क्षणं रत्नप्रभायां च मरुभूतिरभाषत ॥ ३९१ ॥
अश्वत्थपत्रतरलान्यायूंषि किल देहिनाम् ।
किं तु नागार्जुनस्यासीत्तत्स्थैर्यकरणे श्रमः ॥ ३९२ ॥
चिरायुरिति भूपालश्चिरायुनगरेऽभवत् ।
रससिद्धोऽभवत्तस्य मन्त्री नागार्जुनाभिधः ॥ ३९३ ॥
राजन्नदीपधजुषो याते वर्षशताष्टके ।
भार्यापुत्राश्च बहवः कालेन त्रिदिवं गताः ॥ ३९४ ॥
ततो जीवहरं नाम यौवराज्ये स भूपतिः ।
विदधे तनयं सोऽपि मात्रे हृष्टो न्यवेदयत् ॥ ३९५ ॥
यावदद्यबहवः पुत्रा यौवराज्ये महीभुजा ।
अभिषिक्ताः पुरा तेन दिवं याताः क्षतायुषः ॥ ३९६ ॥

न्यवेदयद्यथादृष्टं गत्वा भूमिभुजे भिषक्।
ततोऽब्रवीन्नृपो वैवं विविक्ते मित्रयोः पुरः ॥ ३८४ ॥
शरीरं शंभुनिलये त्यक्तं तस्मिन्मया पुरा।
त्वं चैतौ च बभूवुर्मे सुहृदस्तीर्थसेवनात् ॥ ३८५ ॥
तान्यस्थीनि मदीयानि तीर्थे क्षिप्तान्यथो त्वया।
अधुना कृतकृत्योऽहमित्युक्त्वा निर्वृतिं ययौ ॥ ३८६ ॥
इत्येवं पूर्वसंबन्धाद्भवन्ति प्रीतयो नृणाम्।
प्राक्सेवितोऽयं धन्यानां ध्रुवं भो नरवाहन ॥ ३८७ ॥

इत्यजराख्यायिका ॥ ८।

तपन्तकस्येति वचः श्रुत्वा भक्तिपुरःसरम्।
सर्वे साधूक्तमित्यूचुः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ ३८८ ॥
अथान्तःपुरपर्यन्ते श्रुत्वा विक्रोशतां स्वनम्।
निर्गत्य पृष्ट्वा तत्रस्थान्प्रविश्य प्राह गोमुखः ॥ ३८९ ॥
देव कञ्चुकिनः पुत्रो यातो धर्मगिरेर्दिवम्।
तं निशम्याप्तमोहोऽसौ नीतो निजजनैर्गृहम् ॥ ३९० ॥
इति श्रुत्वा सकरुणं विपण्णे नरवाहने।
क्षणं रत्नप्रभायां च मरुभूतिरभाषत ॥ ३९१ ॥
अश्वत्थपत्त्रतरलान्यायूंषि किल देहिनाम्।
किं तु नागार्जुनस्यासीत्तत्स्थैर्यकरणे श्रमः ॥ ३९२ ॥
चिरायुरिति भूपालश्चिरायुनगरेऽभवत्।
रससिद्धोऽभवत्तस्य मन्त्री नागार्जुनाभिधः ॥ ३९३ ॥
राज्ञस्तदौषधजुषो याते वर्षशताष्टके।
भार्यापुत्राश्च बहवः कालेन त्रिदिवं गताः ॥ ३९४ ॥
ततो जीवहरं नाम यौवराज्ये स भूपतिः।
विदधे तनयं सोऽपि मात्रे हृष्टो न्यवेदयत् ॥ ३९५ ॥
तावदद्भवः पुत्रा यौवराज्ये महीभुजा।
अभिषिक्ताः पुरा तेन दिवं याताः क्षतायुषः ॥ ३९६ ॥

चिरायुरेव नृपतिर्नागार्जुनकृतौषधैः ।
द्विपष्टिवर्षतां प्राप्तो न कदाचिद्विनङ्क्ष्यति ॥ ३९७ ॥
राज्यकामोऽसि चेत्पुत्र त्वं नागार्जुनमेव तम् ।
गत्वा याचस्व मूर्धानं हृते तस्मिन्नराधिपः ॥ ३९८ ॥
दिवं प्रयास्यति क्षिप्रं त्वं तु राजा भविष्यसि ।
अनिषेधनतो नित्यं स च नागार्जुनोऽर्थिषु ॥ ३९९ ॥
इति मातुर्वचः श्रुत्वा लुब्धो राजकुमारकः ।
तथेत्युक्त्वा प्रतिययौ नागार्जुननिवेशनम् ॥ ४०० ॥
अत्रान्तरे प्रिये पुत्रे बाल एव दिवं गते ।
नागार्जुनो जगत्सर्वं साम्रतं कर्तुमुद्ययौ ॥ ४०१ ॥
ततो भीतः सहस्राक्षो विमृश्य सहसाश्विनौ ।
न्यवारयत सौहार्दाद्रसायनविधानतः ॥ ४०२ ॥
अत्रान्तरे राजसुतस्तं मूर्धानमयाचत ।
छिन्धीति वादिनस्तस्य ग्रीवां चिच्छेद सोऽसिना ॥ ४०३ ॥
कण्ठे कुलिशसारस्य राजपुत्रेण पातिताः ।
प्रययुः खण्डशः खड्गा बिसकन्दाङ्कुरा इव ॥ ४०४ ॥
स्वयं तेन वितीर्णे तु मस्तके राजसूनवे ।
चिरायुस्तच्छुचा राज्यं त्यक्त्वा मुनिरभूद्वने ॥ ४०५ ॥
तं च राजसुतं क्रूरं प्रेक्ष्य राजनयानुगाः ।
हत्वा नागार्जुनसुता द्वितीयं चक्रिरे नृपम् ॥ ४०६ ॥
इत्येवं देवराजेन करणाश्विभिर्निवारितः ।
पुंसाममरताधाने स गृहीतव्रतोऽमृतैः ॥ ४०७ ॥

इति नागार्जुनाख्यायिका ॥ ९ ॥

इति सत्त्ववचोवृत्तं कथितं मरुभूतिना ।
वसन्तकः समभ्येत्य नरवाहनमभ्यधात् ॥ ४०८ ॥

---

१. 'स' ख. २. 'इति तच्छ्रुत्वा सचला' ख. ३. 'त' ख.

मृगयारसिको गन्तुं देवो वत्सनरेश्वरः ।
प्रस्तुतस्त्वं च सोत्कण्ठो वनिनं द्रष्टुमिच्छसि ॥ ४०९ ॥
इत्याकर्ण्य प्रियतमामामन्त्र्य विरहाकुलाम् ।
वनं गजरथानीकैः सह पित्रा ययौ क्षणात् ॥ ४१० ॥
(निघ्नन्कुञ्जरशार्दूलवराहहरिणान्वने ।
विजहार तुरङ्गेण कान्तां रत्नप्रभां स्मरन् ॥ ४११ ॥
ततः स च जवोत्कृष्टतुरङ्गो) निश्चलासनः ।
ललास गुलिकाकेलितालटङ्कारसुन्दरः ॥ ४१२ ॥
तस्य कङ्कणझाङ्कारकरस्फाटिकनिर्मिता ।
गुलिका मूर्च्छिता यस्याः पपात विशदत्विषः ॥ ४१३ ॥
साब्रवीद्गतसौभाग्यदर्पस्ते राजपुत्रक ।
कर्पूरमञ्जरीं कान्तां प्राप्य किं न करिष्यसि ॥ ४१४ ॥
नरवाहो निशम्येति प्रसाद्य मुनियोपितम् ।
कर्पूरमञ्जरी कासाविति पप्रच्छ कौतुकात् ॥ ४१५ ॥
तावदज्जलधेः पारे कर्पूरद्वीपवासिनः ।
राज्ञः कर्पूरचन्द्रस्य सुता कर्पूरमञ्जरी ॥ ४१६ ॥
यस्याः कुवलयच्छायैर्लोचनांशुभिरङ्कितम् ।
शङ्के शशाङ्कं लावण्यशेषेण विदधे विधिः ॥ ४१७ ॥
गच्छ तां प्राप्स्यसि क्षिप्रमित्युक्त्वा सा तिरोदधे ।
प्रतस्थे गोमुखसखो नरवाहोऽपि तां दिशम् ॥ ४१८ ॥
चिरात्प्रतिनिवृत्तोऽथ वनाद्वत्सनरेश्वरः ।
(अपश्यन्दयितं पुत्रमभूच्छोकानलाकुलः ॥ ४१९ ॥
रत्नप्रभा ततोऽभ्येत्य वत्सराजं व्यजिज्ञपत् ।
ज्ञातं मयार्यपुत्रस्य वृत्तं प्रज्ञप्तिविद्यया ॥ ४२० ॥
तापसीवचसा ज्ञात्वा कान्तां कर्पूरमञ्जरीम् ।
स यातो वारिधेर्द्वीपं तत्समागमलालसः ॥ ४२१ ॥

१–२. 'एतन्मध्यस्थान्तर्गतपाठः' मूलपुस्तके त्रुटितः.

आर्यपुत्रस्य रक्षायै मयातिविषमेऽध्वनि ।
विद्या मायावती नाम प्रेषिता क्लेशमञ्जरी ॥ ४२२ ॥
इति सुधावचः श्रुत्वा हृष्टो वत्सनरेश्वरः) ।
अमृतेनेव ससिक्तः सहसा धृतिमाप्तवान् ॥ ४२३ ॥
नरवाहनदत्तोऽपि तुरङ्गेण सगोमुखः ।
व्रजन्नब्धप्रभां विद्यां विवेद श्रेयसे स्थिताम् ॥ ४२४ ॥
तत्प्रभावेण दिव्यानि फलानि प्राप्य निर्वृतः ।
सरश्च क्षुत्परिश्रान्तितृष्णाः स सहसात्यजत् ॥ ४२५ ॥
ततो दिनैः कतिपयैरवाप्य गहनं महत् ।
दिवाकरकराक्रान्तं तमभाषत गोमुखः ॥ ४२६ ॥
अभूदिरावती नाम त्रिदिवस्पर्धिनी पुरी ।
त्यागसेनाभिधो राजा तस्यां शक्रप्रभोऽभवत् ॥ ४२७ ॥
बभूवतुः प्रिये तस्य भार्ये रूपगुणाधिके ।
काव्यालंकारनाम्नी च देवी चाधिकसंगमा ॥ ४२८ ॥
स पुत्रार्थी फलयुगं तपसा पार्वतीवरात् ।
प्राप्य प्रत्ययमन्यायात्प्रियामधिकसंगमाम् ॥ ४२९ ॥
सा प्राप्य विधिना हृष्टा फलमेकं वरार्पितं ।
द्वितीयमपि चौर्येण भुक्त्वासूत सुतद्वयम् ॥ ४३० ॥
तमिन्दीवरसेनाख्यमनिच्छासेनमप्यसौ ।
विलोक्य काव्यालंकारा बभूव भृशदुःखिता ॥ ४३१ ॥
ततः प्रवृत्तौ तौ जेतुं पृथिवीं पितुराज्ञया ।
सामात्यैर्विपुलानीकैर्जग्मतुः कुलशालिनौ ॥ ४३२ ॥
विचिन्त्य काव्यालंकारा करलेखैर्दिदेश तान् ।
अमात्यान्नृपतेर्नाम्ना मध्यौ राजसुताविति ॥ ४३३ ॥
विचारयन्सुलेखार्थं करुणार्द्रेषु मन्त्रिषु ।
शङ्कितौ तौ प्रययतुर्नृपपुत्रौ महाटवीम् ॥ ४३४ ॥

१. 'यौ' ख.

विन्ध्याटव्यां परिश्रान्तौ तृष्णार्तौ पार्वतीस्मृते ।
बभूवतुः क्षणात्स्वस्थौ सिच्यमानाविवामृतैः ॥ ४३५ ॥
अवाप तत्र सहसा खङ्गं दुर्गावरात्कृती ।
येनेन्दीवरसेनोऽभूद्दुर्जयस्त्रिदशैरपि ॥ ४३६ ॥
अत्रान्तरे त्यागसेनो ज्ञात्वा पुत्रौ विवासितौ ।
काव्यालंकारया कूटं लेखैर्मन्त्रिसमर्पितैः ॥ ४३७ ॥
कारागृहे तां विन्यस्य निरस्यामात्यमण्डलम् ।
शोचन्नदध्यौ तनयावश्विनाविव रूपिणौ ॥ ४३८ ॥
अथेन्दीवरसेनोऽपि खड्गी शैलपुराधिपम् ।
राक्षसं शैलदंष्ट्राख्यं हत्वा मायाविनं रणे ॥ ४३९ ॥
अवाप खङ्गदंष्ट्राख्यां तनयां नवयौवनाम् ।
तथा मदनदंष्ट्राख्यां पुष्पेषोर्जैत्रमायुधम् ॥ ४४० ॥
तत्र लीलावतीकेलिसरसो विलसन्मुहुः ।
निनाय सुबहून्मासान्सेव्यमानोऽनुजेन सः ॥ ४४१ ॥
ततः खङ्गप्रभावाप्तविद्यया धिष्ण्यगामिनम् ।
सोऽनुजं प्रेषयामास स्ववृत्ताख्यापने पितुः ॥ ४४२ ॥
(तस्मिन्गते खङ्गदंष्ट्रा स्नात्वा तूर्णं समागता ।
प्रियं मदनदंष्ट्रायाः कण्ठलम्बितमैक्षत ॥ ४४३ ॥
ईर्ष्यावत्यथ तं खङ्गं वह्नौ कोपाज्जुहाव सा ।
खङ्गे निष्प्रभतां याते राजपुत्रोऽभवद्यसुः ॥ ४४४ ॥
अत्रान्तरे निजकथां जनकाय निवेद्य सः ।
अनुजस्तं समभ्येत्य ददर्श शवमग्रजम् ॥ ४४५ ॥
शवाभ्यां भ्रातृपत्नीभ्यां सह मर्तुं समुद्यतः ।
सुधावाकाशवचनं सुधाप्रतिनिदोपमम् ॥ ४४६ ॥
राज्ञे गौरीवरादस्मिन्पुनर्निर्मलतां गते ।
जीवत्येव निजां जातिं स्मृत्वा शापक्षयादिति ॥ ४४७ ॥

१. 'धो' ख. २. 'लेखास्तां' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

राजपुत्रस्तत्र खड्गं दग्धं गौरीवरात्पुनः ।
क्षिप्रं निर्मलमाधाय भ्रातरं समजीवयत् ॥ ४४८ ॥
अथेन्दीवरसेनस्तं प्राप्तजीवोऽभ्यभाषत ।
तुषारशैलशिखरे मुक्तापुरनिवासिनः ॥ ४४९ ॥
सुतोऽसि मुक्तसेनस्य त्वं च विद्याधरप्रभो ।
पद्मसेनाभिधानोऽहं रूपसेनस्तथा भवान् ॥ ४५० ॥
पद्मा चन्द्रावती चेमे प्राग्भार्ये मे बभूवतुः ।
परस्परेर्ष्याकलहैरेताभ्यां तापितः पुरा ॥ ४५१ ॥
अवदं पितरं नित्यं वनं यामीति दुःखितः ।
स मद्वियोगनिर्विण्णो मां शशापाहितभ्रमम् ॥ ४५२ ॥
येनाहं मर्त्यतां माप्तस्त्वं च मद्भक्तिसंश्रयात् ।
मर्त्यत्वं पृथिवीं जित्वा यदा पित्रे प्रदास्यसि ॥ ४५३ ॥
शापं तदा त्यक्ष्यसीति शान्तकोपोऽब्रवीत्स माम् ।
ततः परस्परं शापात्पत्न्यौ मे मत्कृते रुषा ।
अवाप्ते रक्षसो भावमित्युक्त्वा विरराम सः ॥ ४५४ ॥
ततो विद्याधरपुरं माप्तुस्ते सुलोचने ।
ते च जातिस्मराः सर्वे त्यागसेनपुरं ययुः ॥ ४५५ ॥
प्रणम्य पितरं तत्र सभार्यः सानुजोऽथ सः ।
विजित्य पित्रे पृथिवीं ददौ खड्गबलोत्कटः ॥ ४५६ ॥
अथ वैद्याधरीं जातिं निवेद्य जनकाय सः ।
व्योम्ना मुक्तापुरं गत्वा भेजे लक्ष्मीं सहानुजः ॥ ४५७ ॥
इत्येवं पृथुसत्त्वानां महतां क्लेशविप्लवः ।
भवन्ति धैर्ययोगेन क्षिप्रमेव प्रयान्ति च ॥ ४५८ ॥

इतीन्दीवरसेनाख्यायिका ॥ १० ॥

गोमुखेनेति कथितं निशम्य नरवाहनः ।
धीरः प्रतस्थे सोत्कण्ठवल्लभाध्यासितां दिशम् ॥ ४५९ ॥

ततो ददर्श रुचिरं सुमेरुशिखरोपमम् ।
संगमं नाम नगरं काञ्चनोच्चालतोरणम् ॥ ४६० ॥
न तत्र पुरुषः कश्चिद्दृश्यते ललनापि वा ।
केवलं यन्त्ररचिता भान्ति काष्ठमया नराः ॥ ४६१ ॥
स प्राप्यान्तःपुरं हैमं ददर्श स्फटिकासने ।
सजीवमेकं पुरुषं सेवितं यन्त्रचेटकैः ॥ ४६२ ॥
नरवाहनदत्तस्तं दृष्ट्वा विपुलविस्मयः ।
पप्रच्छ पृष्टः सोऽप्याह वितीर्णकनकासनः ॥ ४६३ ॥
राज्ञो महाबलाख्यस्य पुरे काञ्चीति विश्रुते ।
अहं वज्रधरो नाम तक्षकृत्कुशलः प्रभो ॥ ४६४ ॥
यन्त्रमायाकृतौ यस्य मयस्येव यशो भुवि ।
मम प्राणधरो नाम भ्राता कुशल······ ॥ ४६५ ॥
वेश्याविलासरसिको दिवसैर्निर्धनोऽभवत् ।
स यन्त्री किल काहंसैः कोशाद्दलानि भूपतेः ॥ ४६६ ॥
जहार वार्यमाणोऽपि मया निग्रहभीरुणा ।
परेऽह्नि तेषु बद्धेषु कोशपालेषु पक्षिषु ॥ ४६७ ॥
स ययौ यन्त्रचक्रेण राजभीत्या दिगन्तरम् ।
भीतोऽहमपि यन्त्रेण यत्र द्विगुणरंहसा ॥ ४६८ ॥
प्राप्तः शिवप्रसादेन शून्यं हैममिदं पुरम् ।
इह स्थितस्य मे देव वस्त्रालंकारभोजनम् ॥ ४६९ ॥
चिन्तितं संभवत्येव विना मानुषसंगमम् ।
निर्जनक्षितिखिन्नेन दिव्यभोगेऽपि तिष्ठता ।
निर्मिता यन्त्रपुरुषा मया चेतोविनोदिना ॥ ४७० ॥
इति यस्य वचः श्रुत्वा विस्मितो नरवाहनः ।
विषादृशक्तिश्चित्रेति ध्यात्वा स्वं गृहमभ्यगात् ॥ ४७१ ॥

इति वज्रधराख्यायिका ॥ ११ ॥

पूजितो ज्ञातवृत्तेन स्वादु भुक्त्वामृतोपमम् ।
सुष्वाप रत्नपर्यङ्के नरवाहः सगोमुखः ॥ ४७२ ॥
वीतनिद्रो निशि स्वैरं स्मरन्कर्पूरमञ्जरीम् ।
विनोदिनीं वज्रधरकथां सोऽपृच्छदुत्सुकः ॥ ४७३ ॥
सोऽब्रवीदर्थलोभाख्यो मन्त्री भूमिपतेरभूत् ।
धनी बाहुबलाख्यस्य यो लोभ इव जङ्गमः ॥ ४७४ ॥
तस्य मातापरा नाम भार्याभूद्वरवर्णिनी ।
लावण्यदर्पणे यस्याः संक्रान्त इव मन्मथः ॥ ४७५ ॥
देशान्तरगतं ज्ञात्वा वणिजं स तुरङ्गमान् ।
धनेन तस्मादाहर्तुं निजजायां विसृष्टवान् ॥ ४७६ ॥
कथं कुलाङ्गनावृत्ते परैः संभाषणं क्षमम् ।
इत्यनिच्छामपि सतीं प्रेषयामास मन्दधीः ॥ ४७७ ॥
गत्वा सुखधनं प्राह तरुणं सा भिषग्वरम् ।
धनेनाश्वान्प्रयच्छेति श्रुत्वा सोऽप्याह विस्मितम् ॥ ४७८ ॥
किं धनेन विशालाक्षि निधानं त्वं मनोभुवः ।
गृहाणाश्वसहस्रं (मे रात्रिमेकां भजस्व माम् ॥ ४७९ ॥
श्रुत्वेति लज्जिता तन्वी लतेव भ्रमराकुला ।
क्षणं नम्रानना साभू) न्नेत्रांशुशबलस्तनी ॥ ४८० ॥
सा मत्वा वणिजो वाक्यं सती (भर्त्रे न्यवेदयत् ।
अर्थलोभोऽपि तां प्राह को दोषस्त्वं भज क्षणम् ॥ ४८१ ॥
अथ सा वाजिलोभेन) भर्त्रा सम्प्रेषिता बलात् ।
आदायाश्वान्निशामेकां कान्तां भेजे वणिक्सुतः ॥ ४८२ ॥
सोऽभवद्वल्लभस्तस्या रसावमृतनिर्झरः ।
सद्यः प्ररूढविश्रम्भविलासरसनिर्भरः ॥ ४८३ ॥
हीनसत्त्वं ततो बाला सा तत्याज निजं पतिम् ।
ऐक्षवं रसमासाद्य को हि निम्बरसं पिबेत् ॥ ४८४ ॥

१-२. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

दिनमेकं वितीर्णां तां ज्ञात्वा तत्रैव सुन्दरीम्।
स्थितां क्रोधादर्थलोभो वणिजं योद्धुमाययौ ॥ ४८५ ॥
प्रवराश्ववरानीकैर्निर्लज्जः सज्जितो जवात्।
वणिजा तेन राजानं जगाम शरणं निजम् ॥ ४८६ ॥
राजापि स्वयमालोक्य तया न्यायं विचारधीः।
अर्थलोभस्य सर्वस्वं हृत्वा परमपूजयत् ॥ ४८७ ॥
इति वज्रधरेणोक्तां कथां श्रुत्वा नृपात्मजः।
प्रातर्यन्त्रविमानेन तद्युतेनाम्बुधिं ययौ ॥ ४८८ ॥

इत्यर्थलोभाख्यायिका ॥ १२।

कर्पूरद्वीपमासाद्य नरवाहः सगोमुखः।
व्रजन्विवेश वृद्धायाः क्षमामेकां निवेशनम् ॥ ४८९ ॥
कर्पूरमञ्जरीवृत्तं तेन पृष्टा च सावदत्।
राजहंसी यभूवैषा कन्यका पूर्वजन्मनि ॥ ४९० ॥
राजहंसेन सहिता नीडे चन्दनशाखिनः।
शावकानब्धिकल्लोलहृतान्दृष्ट्वा शुशोच सा ॥ ४९१ ॥
ततो जले तनुं त्यक्त्वा जाता जातिस्मरा सती।
स्मृत्वा हंसं तमस्नेह विवाहविमुखी स्थिता ॥ ४९२ ॥
इति वत्सेश्वरसुतः श्रुत्वा गोमुखसंमतः।
मिथ्याप्रलापमुखरो राजधानीं समभ्ययात् ॥ ४९३ ॥
हा हंसीत्यसकृत्तत्र विक्रोशन्तं विलोक्य तम्।
पप्रच्छुर्गोमुखं राजकन्यकान्तःपुरस्त्रियः ॥ ४९४ ॥
सोऽब्रवीद्राजहंसोऽयमभूज्जलनिधेस्तटे।
पोतशोकात्प्रिया चास्य तत्याज सलिले तनुम् ॥ ४९५ ॥
तद्वियोगादयमपि प्राक्षिपद्वपुरम्बुधौ।
जातिस्मरोऽद्य तामेव स्मरन्दर्शी प्रसर्पति ॥ ४९६ ॥
इति तद्वचनं दास्यो राजपुत्र्यै न्यवेदयन्।
या पाणिग्रहणविद्वेषं त्यक्तुं परिणयोत्सुका ॥ ४९७ ॥

ततो ययाचे तां कन्यां नृपमभ्येत्य गोमुखः ।
नामाभिजनमावेद्य नरवाहनस्य विश्रुतम् ॥ ४९८ ॥
दृष्ट्वा स्माराकृतिजुषां लक्षणैश्चक्रवर्तिनाम् ।
ददौ नरपतिः पुत्रीं स तस्मै विपुलोत्सवः ॥ ४९९ ॥
ततो विवाहवसुधां भार्यां कर्पूरमञ्जरीम् ।
मञ्जरीं यौवनतरोर्ददर्श नरवाहनः ॥ ५०० ॥
उत्सवं पुष्पधनुषो विभ्रमस्योद्भवावनिम् ।
संगीतशालां लीलाया निधानं रूपसंपदः ॥ ५०१ ॥
परिणीय मनोजन्मत्रैलोक्यजयमालिकाम् ।
रराज वत्सेशसुतः प्राप्य गौरीमिवेश्वरः ॥ ५०२ ॥
इति कर्पूरमञ्जरीविवाहः ॥ १३ ॥
अत्रान्तरे प्राणधरः समभ्येत्य स तक्षकृत् ।
ददौ यन्त्रविमानं तत्तस्मै वज्रधरानुजः ॥ ५०३ ॥
तदाकर्ण्य नरेन्द्रेण पूजितो दयितासखः ।
सगोमुखप्राणधरः प्रययौ नरवाहनः ॥ ५०४ ॥
पुनस्त्वां प्राप्तविद्योऽहं समेष्यामीति सादरम् ।
स वज्रधरमामाप्य कौशाम्बीं तूर्णमभ्ययात् ॥ ५०५ ॥
तत्र प्रणम्य वत्सेशं प्रहर्षविहितोत्सवम् ।
जनन्यौ च प्रियां प्राप्य विरहापाण्डुराननाम् ॥ ५०६ ॥
रत्नप्रभां स्फुरत्कामभौलिरत्नप्रभामिव ।
कर्पूरमञ्जरीं भेजे मदनोद्यानमञ्जरीम् ॥ ५०७ ॥
अथ विलसदमन्दानन्दनिष्यन्दसिन्धुः
प्रणयभुवि दधानश्चारु कर्पूरवल्लीम् ।
स्मरविजयपताकां तां च रत्नप्रभाख्या-
मुचितसचिवनर्मस्मेरवक्त्रो रराज ॥ ५०८ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां रत्नप्रभा नाम चतुर्दशो लम्बकः ।

अलंकारवतीलम्बकः।

पायाद्वो दयिताकेलिकोपे शंभोः प्रणामिनः।
चन्द्रलेखानिपक्तेव तत्प्रसादस्मितच्छटा ॥ १ ॥
ततः कदाचित्स्वपुरीपर्यन्तविपिनावनिम्।
मृगयारसिकः प्रायात्सानुगो नरवाहनः ॥ २ ॥
(राजपुत्रसहस्राणि परित्यज्य सगोमुखः।
विलोलहारः प्रययौ वाजिना वातरंहसा ॥ ३ ॥
स्फुटस्वरपदं दूराच्छ्रुत्वा कर्णरसायनम्।
गीतध्वनिं समाक्रान्तो विवेश त्र्यम्बकालयम् ॥ ४ ॥
प्रणम्य तत्र श्रीकण्ठं दिव्यकन्यां ददर्श सः।
दासीसहस्रानुगतां गायन्तीं शंकरस्तुतिम् ॥ ५ ॥
स्वप्रभाभरणारत्नभूषणानि बभार या।
कान्ता सुकविवाणीव पुनरुक्तं प्रमादजम् ॥ ६ ॥
तद्गीतश्रवणाश्चर्यलोलमौलेः पिनाकिनः)।
या चूडा चन्द्रलेखेव तन्वी निपतिता पुरः ॥ ७ ॥
विभ्रमारम्भवलितैर्विलासललितायतैः।
फुल्लोत्पलवनानीव कटाक्षैर्विततार या ॥ ८ ॥
तां विलोक्य सुधापद्ममनोजन्मजयश्रियम्।
नरवाहनदत्तोऽभूदमन्दानन्दसुन्दरः ॥ ९ ॥
सापि साङ्गमिवानङ्गं तं वीक्ष्य कमलेक्षणम्।
दर्पकम्पोत्तरङ्गाभूत्सरसीवानिलाकुला ॥ १० ॥
तयोरभिन्नयोद्भिन्नमन्मथारम्भविभ्रमे।
अवतीर्णाम्बराद्दिव्ययोषिदायात्तदन्तिकम् ॥ ११ ॥
अनुद्धतार्थवेषेण सूचितात्यन्तगौरवाम्।
जननीमिव सोमस्य स्फटिकस्वच्छविग्रहाम् ॥ १२ ॥

१. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. २. 'यंत्रा' ख.

तां तथा कन्यया तत्र दृष्ट्वाभ्येत्य संगताम् ।
प्रणनामादरालोलकुण्डलो नरवाहनः ॥ १३ ॥
सा कन्याजननी तेन पृष्टा विद्याधराङ्गना ।
निजाभिजनवृत्तान्तं प्रोवाच मृदुवादिनी ॥ १४ ॥
सुन्दराख्ये पुरे तुङ्गशृङ्गे तुहिनभूभृतः ।
अस्त्यलंकारशीलाख्यो विद्याधरधराधिपः ॥ १५ ॥
तस्याहमग्रमहिषी वल्लभा काञ्चनप्रभा ।
मयि जातोऽस्य मतिमान्धर्मशीलाभिधः सुतः ॥ १६ ॥
कन्या चेयं शशिमुखी नयनामृतवाहिनी ।
अलंकारवती नाम स्वप्रभालंकृताकृतिः ॥ १७ ॥
स धर्मशीलो भ्रातास्याः (प्रैययौ तपसे युवा ।
अस्माभिः प्रार्थ्यमानोऽपि विरक्तो भवविभ्रमे ॥ १८ ॥
राजालंकारशीलोऽपि तमेवानु) तपोवनम् ।
प्रययौ मयि विन्यस्य राज्यं कन्यामिमां च सः ॥ १९ ॥
नरवाहनदत्ताय भविष्यच्चक्रवर्तिने ।
इयं विद्याधरेन्द्राय दातव्या मत्सुता त्वया ॥ २० ॥
अलंकारवती शंभुनिर्दिष्टा श्रीस्तयाखिला ।
इति मां पतिरामाष्य ससुतः काननं ययौ ॥ २१ ॥
ततोऽहं भर्तृरहिता निःशशाङ्केव शर्वरी ।
शोकान्धतिमिराक्रान्ता स्थिता राज्ञे तदाज्ञया ॥ २२ ॥
चिन्तयन्त्या तव शुभं पुत्रीपरिणयाशया ।
कृच्छ्राद्द्वन्द्वशतायामो नीतः संवत्सरो मया ॥ २३ ॥
अद्येयं मत्सुता पृथ्वीं भ्रान्त्वा दृष्ट्वा मदाज्ञया ।
स्वयंभूशंभुनिलया प्रणम्य व्योमगामिनी ॥ २४ ॥
प्रथमं त्रिपुरारातिं नत्वा कश्मीरमण्डले ।
विजयं चामरेशं च तां च देवीं मैं[3]देश्वरीम् ॥ २५ ॥

१. 'या' ख. २. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ३. 'सुरेश्वरी' ख.

कौशाम्बीविपिनोपान्तशिवालयमिमं शनैः।
प्राप्ता दृष्टा त्वया देवनिर्दिष्टेयं तव प्रिया ॥ २६ ॥
त्वद्दिशागोचरायातां ज्ञात्वाहं विद्यया सुताम्।
पुत्र तूर्णमिहायाता द्रष्टुं त्वां चिरकाङ्क्षितम् ॥ २७ ॥
मद्भर्त्रा पूर्वमादिष्टो भविता शुभलग्नतः।
अनया तव पुत्र्या मे प्रातः परिणयोत्सवः ॥ २८ ॥
उक्त्वेति लज्जाविनतं पुत्रीवदनपङ्कजम्।
विलोकयन्ती संहृष्टा सा सती गन्तुमुद्ययौ ॥ २९ ॥
प्रस्थिता सा समालोक्य सहसा विरहाकुलम्।
उत्कण्ठानिर्भरं प्राह संस्मिता नरवाहनम् ॥ ३० ॥
राजपुत्र क्षपामेकां सहस्वौत्सुक्यविक्रियाम्।
समागमो मत्सुतायाः प्रातस्ते भवितानया ॥ ३१ ॥
स्निग्धैर्विनोदय मनो दिनमेकं सुहृज्जनैः।
सेहे संवत्सरं रामो जानकीविरहं पुरा ॥ ३२ ॥
राज्ञो दशरथस्यासीदयोध्याधिपतेः सुतः।
रामो गुणगणारामो विरामो वैरिसंपदाम् ॥ ३३ ॥
प्रेयस्या सीतया सार्धं लक्ष्मणेनानुजेन च।
वनं विवेश स वधूप्रेरितस्य पितुर्गिरा ॥ ३४ ॥
मारीचहेमहरिणाकारवञ्चितचेतसः।
तत्र सीतां जहारास्य भिक्षुवेषो दशाननः ॥ ३५ ॥
जानकीकरुणाक्रन्दक्रोधात्समरसंमुखम्।
जटायुषं गृध्रराजं हत्वा यातेऽथ रावणे ॥ ३६ ॥
विरहायासविधुरः प्रलापमुखराननः।
रामः कपीन्द्रं सुग्रीवं प्राप्य मित्रपदे व्यधात् ॥ ३७ ॥
वैरिणं भ्रातरं तस्य हत्वा बाणेन वालिनम्।
किष्किन्धाराज्यलक्ष्मीं च ददौ विरहनिःसहः ॥ ३८ ॥

१-२. 'तां' ख. ३. 'समन्तात्' ख. ४. 'हेमे' ख. ५. 'कैकेयीप्रे' ख.

सुग्रीवेण कृतज्ञेन रामं दृष्ट्वा स्मरातुरम् ।
दिक्षु सीतां समन्वेष्टुं विसृष्टे कपिमण्डले ॥ ३९ ॥
हनूमान्मारुतसुतो विलङ्घ्य मकराकरम् ।
सीतां स तां समालोक्य दग्ध्वा लङ्कामनाकुलः ॥ ४० ॥
न्यवेदयत्प्रियावृत्तं रामाय हतराक्षसः ।
राघवोऽप्यम्बुधिं बद्ध्वा सेतुं प्राप्य रिपोः पुरीम् ॥ ४१ ॥
सानुगं रावणं हत्वा भेजे जनकनन्दिनीम् ।
अथायोध्यां समभ्येत्य प्राप्य राज्यं सहानुजः ॥ ४२ ॥
मिथ्यापवादं सीतायाः शुश्राव रघुनन्दनः ।
तदाज्ञया लक्ष्मणस्तां वने गर्भभरालसाम् ।
तत्याज साश्रुनयनो वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ४३ ॥
तां तत्र मुनयो दृष्ट्वा शोचन्तीं लक्ष्मणे गते ।
ऊचुर्दिव्यदृशो ज्ञात्वा शुद्धचारित्रभूषणाम् ॥ ४४ ॥
टिट्टिभोऽब्धितटे जायां दृष्ट्वान्येन समागताम् ।
प्रतिश्रयार्थिना भर्तृधिया निर्व्याजमानसाम् ॥ ४५ ॥
ईर्ष्याशङ्काकुलस्त्यक्तुमुद्यतस्तां नमस्खलात् ।
श्रुत्वा साध्वीति वचनं शीलेऽस्याः प्रत्ययं ययौ ॥ ४६ ॥
तिरश्चामपि चारित्रशुद्ध्या निर्मलतां मनः ।
इति प्रयाति तत्कोपं रामस्याप्यात्मविप्लवः ॥ ४७ ॥
इति ब्रुवाणे करुणाकुलिते मुनिमण्डले ।
वाल्मीकेराश्रमं प्राप्य सीतासूत सुतद्वयम् ॥ ४८ ॥
तौ तेन मुनिना तत्र कृतराजोचितव्रतौ ।
सविद्यौ ययतुर्वाजिमेधे रामं समास्थितम् ॥ ४९ ॥
पुत्रौ कुशलवाविल्यावुक्तौ वाल्मीकिना स्वयम् ।
तौ प्राप्य रामो दयितां विशुद्धामानिनाय ताम् ॥ ५० ॥

---

१. 'रातीं' ख. २. 'धौ' ख. ३. 'क्षधं' ख. ४. 'स्वामभापत' ख. ५. 'पुत्रौ' ख.

इत्येवं राघवः कान्तावियोगं धैर्यसागरः ।
सेहे क्षणं त्वमप्येवं सहस्व स्वप्रियागमे ॥ ५१ ॥

इति रामाख्यायिका ॥ १ ॥

उक्त्वेति तस्यां यातायां व्योम्नादाय निजां सुताम् ।
नरवाहनदत्तोऽभूद्विरहध्याननिश्चलः ॥ ५२ ॥
तं च श्लथमतिं दृष्ट्वा निःश्वसन्तं सरातुरम् ।
गोमुखः प्राह धैर्याब्धेः कोऽयं ते मतिविभ्रमः ॥ ५३ ॥
एकैव शर्वरी मध्ये स्थिता ते तत्समागमे ।
एवंविधां विक्रियां किं यातोऽस्यत्रैवं मे शृणु ॥ ५४ ॥
पृथिवीरूप इत्यासीत्प्रतिष्ठानपुरे नृपः ।
अनङ्गतां स्मरो भेजे मेने यत्कान्तिनिर्जितः ॥ ५५ ॥
स नानादेशसंचारचतुरैः सद्मभिक्षुभिः ।
शुश्राव वर्णितां कान्तां मुक्ताद्वीपपतेः सुताम् ॥ ५६ ॥
राज्ञो रूपधराख्यस्य पुत्रीं रूपलताभिधाम् ।
श्रुत्वा ययाचे दूतेन सोऽथ दूरनिवासिनः ॥ ५७ ॥
मिथश्चित्रपटाकारदर्शनाज्जातमन्मथम् ।
नृपः पुत्रीं च विज्ञाय रम्यं रूपधरोऽवदत् ॥ ५८ ॥
दूतं मद्वचसा गत्वा राजानं तूर्णमानय ।
पृथिवीरूपमस्या मे स पुत्र्याः सदृशः पतिः ॥ ५९ ॥
इति तेन समादिष्टो दूतः संकल्पशीघ्रगः ।
समुत्तीर्याम्बुधिं प्राप्य प्रतिष्ठानपुरोवमम् ॥ ६० ॥
मुक्तापुराधिनाथेन दत्ता रूपलता सुता ।
स्वयमेहीति दूतस्तं क्षितिपालं व्यजिज्ञपत् ॥ ६१ ॥
ततः प्रतस्थे नृपतिर्गजवाजिरथाकुलः ।
अब्धिद्वीपं परिणयश्रिये श्रीपतिसंनिभः ॥ ६२ ॥
स प्रजगाटवीं प्राप्य शबरीरणकर्कशान् ।
स्वपान बाणजालेन निहत्यानेककुञ्जरान् ॥ ६३ ॥

समुद्रतटमासाद्य स पुत्रपुरभूभुजः ।
उदारचरितास्यस्य गृहे विश्रम्य पूजितः ॥ ६४ ॥
समारब्धानुकूलेन प्रेरितं मातरिश्वना ।
महत्प्रवहणं राजा राजकानुगतो ययौ ॥ ६५ ॥
कालेन जलधिद्वीपे प्राप्य मुक्तापुरं नृपः ।
ददर्श मुक्तासेरां स राजधानीं मनोरमाम् ॥ ६६ ॥
प्रत्युद्गतेन विधिवत्पूज्यमानोऽथ सादरम् ।
राज्ञा रूपधरेणासौ विवाहवसुधां ययौ ॥ ६७ ॥
ददर्श राजतनयां तत्र रूपलतां नृपः ।
अङ्गव्ययादनङ्गस्य शक्तिं मूर्तिमतीमिव ॥ ६८ ॥
परिणीयेन्दुवदनां तामायतविलोचनाम् ।
हृष्टः प्रवहणेनैव पुनरुत्तीर्य सागरम् ॥ ६९ ॥
प्रतिष्ठानपुरं प्राप्य तामग्रमहिषीपदे ।
अभिषिच्य मनोजन्मसंभोगसुभगोऽभवत् ॥ ७० ॥
इति रूपलता राज्ञा तेन सत्त्वोदितेन सा ।
प्रायाद्विद्याधरसुतां त्वमप्येवमवाप्स्यसि ॥ ७१ ॥

इति रूपलताख्यायिका ॥ २ ॥

गोमुखेनेति कथितं निशम्य नरवाहनः ।
बभूव दयितासङ्गसंकल्पध्याननिश्चलः ॥ ७२ ॥
राजधानीमथाभ्येत्य निःसहो निःश्वसन्मुहुः ।
नान्तःपुरे न हर्म्येषु नोद्यानेषु धृतिं ययौ ॥ ७३ ॥
सुहृद्भिः सहितो वीतनिद्रस्तत्कथया निशाम् ।
दीर्घां निनाय कृच्छ्रेण रत्नद्वीपे निषक्तदृक् ॥ ७४ ॥
ततः प्रभाते श्रीकण्ठं प्रणम्य पितरं तथा ।
वरोद्यानस्थितोऽपश्यत्कान्तिपिञ्जरितं नभः ॥ ७५ ॥

---

१. 'पत्तनं पुरभूभुज' ख. २. 'मौक्तिकसेरा राज' ख. ३. 'सद्यपि' ख.

ततोऽदृश्यत लोलाक्षी पित्रा सह नभस्तलात्।
अवतीर्णा स्वयं मात्रा भ्रात्रा चाधिकभूषिताम् ॥ ७६ ॥
तां चन्द्रवदनां दृष्ट्वा सानुगो नरवाहनः।
मेने पीयूषसिक्तस्य छायाममरशाखिनः ॥ ७७ ॥
वत्सराजेन संयम्य तां सुतां खेचरोत्तमः।
नरवाहनदत्ताय दिव्येन विधिना ददौ ॥ ७८ ॥
विद्याधरेन्द्रतनयां तां प्राप्य हरिणेक्षणाम्।
तद्धाम सुन्दरपुरं प्रययौ पितुराज्ञया ॥ ७९ ॥
मन्दारवल्लीललिते स तत्र दयितासखः।
सानुगः सुचिरं स्थित्वा कौशाम्बीं पुनराययौ ॥ ८० ॥
ततोऽभिनवसंभोगामवाप्यानन्ददीक्षितः।
अलंकारवतीं कान्तां ललास नरवाहनः ॥ ८१ ॥
कदाचिदथ पौरस्त्री काचिन्मुखरभूषणा।
भीता सभार्यं शरणं वत्सराजात्मजं ययौ ॥ ८२ ॥
परिसान्त्व्य शनैः पृष्टा तेन सा प्राह सुन्दरी।
सत्रासकारणं तन्वी कम्पमाना घनस्तनी ॥ ८३ ॥
देवाहं वसुसेनस्य तनया क्षत्रजन्मनः।
अशोकमालात्रैलोक्यरक्षोऽहं परिरक्ष माम् ॥ ८४ ॥
हठशर्माभिधानेन पापमाश्रित्य पापिना।
अनिच्छन्ती वृता देव कुरूपेण द्विजन्मना ॥ ८५ ॥
तेन निन्दितरूपेण परिणीता बलादहम्।
कान्तेन संगतान्येन रूपलुब्धा हि योषितः ॥ ८६ ॥
ततो यदृच्छयायातां पथि दृष्ट्वाथ मां रुषा।
आकृष्टखड्गः सावेगमागतो मद्वधोद्यतः ॥ ८७ ॥
तद्भीता शरणं देवीमलंकारवतीमहम्।

---

१. 'हरिता' ख. २. 'प्रै' ख. ३. 'धेनाहं प्रणमा' ख. ४. 'लोभ्या हि' ख. ५. 'ग्रस्त' ख. ६. 'द्विषोद्यम.' ख.

यातेत्याकर्ण्य तं विप्रमानिनाय नृपात्मजः ॥ ८८ ॥
स पृष्टो ब्राह्मणः प्राह मर्तुमाहितनिश्चयः ।
देवैनां हन्मि दुःशीलां स्त्रियं प्राणांस्त्यजामि वा ॥ ८९ ॥
अथाशरीरिणी वाणी प्रोच्चचार नभस्तलात् ।
इयं विद्याधरी शापात्पित्रोर्मर्त्यत्वमागता ॥ ९० ॥
तुषारशिखरे रम्ये पञ्चकूटाभिधे पुरे ।
अस्त्यशोकवरो नाम विद्याधरमहीपतिः ॥ ९१ ॥
अशोकमाला तस्येयं तनया स्नेहभाजनम् ।
विद्याधरैर्याच्यमाना विवाहं नाभ्यमन्यत ॥ ९२ ॥
यदा तदा रुषा पित्रा शप्तेयं रूपमानिनी ।
विरूपा मानुषी भूत्वा द्वेष्यं भर्तारमाप्स्यसि ॥ ९३ ॥
इति शापादियं बाला प्राप्ता तच्छासनं भुवि ।
शापोऽधुनास्याः प्रक्षीणो वागित्युक्त्वा शशाम सा ॥ ९४ ॥
ततो मर्त्यशरीरं सा परित्यज्य स्वविद्यया ।
अशोकमाला प्रययौ व्योम्ना विद्याधराङ्गना ॥ ९५ ॥
हठशर्मापि संस्मृत्य जातिं स्मृत्वा विरूपताम् ।
वैद्याधरं वपुः प्राप्य प्रोवाच नरवाहनम् ॥ ९६ ॥
अहं लम्बभुजाख्यस्य विद्याधरपतेः सुतः ।
युवा स्थूलभुजो नाम कन्यां प्राप्तां स्वयंवरे ॥ ९७ ॥
कान्तां सुरभिदत्ताख्यामनादृत्य स्मरातुराम् ।
गुरुशापाद्विरूपत्वं प्राप्तोऽहं मर्त्यतां गतः ॥ ९८ ॥
इत्युक्त्वा क्षीणशापोऽसौ द्विजः प्रायाद्विहायसा ।
प्रियं कलेवरं त्यक्त्वा जाह्नव्यां तुहिनाचले ॥ ९९ ॥
तद्वीक्ष्य विस्मितं प्राह गोमुखो नरवाहनम् ।
शृणु स्त्रीचरिताश्चर्यमत्रैव कथयाम्यहम् ॥ १०० ॥

---

१. 'शैलगिरे' ख.

महावराह इत्यासीद्वीरः शूरपुरे नृपः।
वराह इव विस्तीर्णां भुजेनोवाह यो भुवम् ॥ १०१ ॥
तस्यानङ्गवती नाम सुन्दरी तनयाभवत्।
तत्याज सायकान्मन्ये यत्कटाक्षार्थैः स्मरः ॥ १०२ ॥
शूरः स्वरूपो बलवान्भर्ता योग्यो ममेति सा।
निजोद्वाहविधौ चक्रे प्रतिज्ञां दृढनिश्चया ॥ १०३ ॥
तद्याचकेषु विमुखं यातेष्वखिलराजसु।
चत्वारो वीरपुरुषा दाक्षिणात्याः समाययुः ॥ १०४ ॥
ते तमेत्य महीपालं कन्यकां तां ययाचिरे।
क्रमेण कर्म जातिं च निवेद्य मदनेरिताः ॥ १०५ ॥
एकोऽब्रवीद्युवा शूरो दानशूरो वराकृतिः।
अहं पञ्चपुरो नाम मह्यं कन्या प्रदीयताम् ॥ १०६ ॥
अपरः प्राह वैश्योऽहं भाषाज्ञः सर्वपक्षिणाम्।
उवाचान्यः क्षत्रियोऽहं वीरः खड्गधराभिधः ॥ १०७ ॥
चतुर्थोऽप्यवदद्विप्रो जीवदत्तोऽहमग्रजः।
मृतसंजीवनाभिज्ञो दैवात्किं तु दुराकृतिः ॥ १०८ ॥
इति तैरर्थितां पुत्रीं प्रहृष्टः पृथिवीपतिः।
ईप्सितः कस्तवेत्याह सा च पृष्टा तमब्रवीत् ॥ १०९ ॥
द्विजसूनुर्विरूपोऽयं वैश्यशूद्रौ च सेवकौ।
अराजा क्षत्रियश्चायमित्युक्त्वा नाभ्यमंन्यत ॥ ११० ॥
प्रतीहारगृहे राज्ञा ततस्ते विहिताश्रयाः।
न्यवसन्पूजिताः किंचित्कालं परिणयाशया ॥ १११ ॥
ततः कदाचिन्मृगयासक्तस्य वसुधापतेः।
अदर्शयन्वने तस्य हत्वा सिंहान्पराक्रमम् ॥ ११२ ॥
तेषां शौर्यं समालोक्य सुतां प्राह महीपतिः।
भजैकं पुत्रि नैतेषां तुल्यं पश्यामि भूतले ॥ ११३ ॥

१. 'पुत्रः' ख. २. 'तनामज.' घ. ३. 'नन्दत' घ. ४. 'भाषान्' घ.

इत्युक्त्वा नृपतिः पुत्रीं पप्रच्छ गणकं ततः ।
ब्रूह्यनङ्गवतिः कस्य भाविनीयं वधूरिति ॥ ११४ ॥
नृपेण पृष्टो दैवज्ञः सोऽवदद्दिव्यलोचनः ।
सुता विद्याधरीयं ते शापान्मर्त्यपदं स्थिता ॥ ११५ ॥
याते मासत्रये शापं[1] त्यजत्येषा[2] सुलोचना ।
गणकस्येति वचनं श्रुत्वाश्चर्यं[4] महीपतिः ॥ ११६ ॥
चतुर्भिः सहितो[3] वीरः संदेहाकुलितोऽभवत् ।
ततो मासत्रये याते सा परित्यज्य सुन्दरी ॥ ११७ ॥
तनुं मर्त्योचितां बाला प्राप्य वैद्याधरं पदम् ।
ततः सुतावियोगार्तस्तत्रासीनः पुरे नृपे ॥ ११८ ॥
विस्मृते जीवदत्तस्य मन्त्रे च मृतजीवने ।
([5]वीरेषु तत्र यातेषु तत्संगमनिरासताम् ।
आश्वास्यमाने तेनैव दैवज्ञेन महीपतौ ॥ ११९ ॥
जीवदत्तस्तनुत्यागे दृढनिश्चयमानसः) ।
निजं खड्गेन दुःखार्तः शिरश्छेत्तुं समुद्ययौ ॥ १२० ॥
अथोच्चचार[6] वाग्व्योम्नो विप्र मा साहसं कृथाः ।
प्रसादाद्विन्ध्यवासिन्यास्तां प्राप्स्यसि मृगेक्षणाम् ॥ १२१ ॥
इति श्रुत्वा स तपसे गत्वा विन्ध्यं द्विजैः[7]स्ततः ।
कात्यायनीं निराहारस्तुष्टां स्वप्ने व्यलोकयत् ॥ १२२ ॥
प्रणताय वितीर्यास्मै खड्गरत्नं महर्न्निजम् ।
उवाच देवी तं पुत्र गच्छ प्राप्नुहि तां प्रियाम् ॥ १२३ ॥
अस्ति वीरपुरे श्रीमांस्तुपारगिरिशेखरे ।
विद्याभृत्समरो नाम सुता सा तस्य सुन्दरी ॥ १२४ ॥

---

१. 'देहं' ख. २. 'क्ष्य' ख. ३. 'तैर्वीरै' ख. ४. 'ताचारा' ख. ५. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके न दृश्यते. ६. 'दिवं वचो व्योम्नि' ख. ७. 'जात्मजः' ख. ८. 'खिदम्' ख.

दर्पादमन्यतं तया तुल्यरूपांन्स्वयंवरे।
पितानङ्गप्रभां पुत्रीं शशाप क्रोधमूर्च्छितः॥ १२५॥
विरूपं मानुषी भूत्वा ब्राह्मणं पतिमाप्स्यसि।
(ततोऽनुपुरुषासङ्गं बहुशश्च समेष्यसि)॥ १२६॥
परदारापहारेण प्राग्जन्मनि स च द्विजः।
त्वद्वियोगाग्निसंतप्तो भविष्यति मुहुर्मुहुः॥ १२७॥
जनकेनेति शप्तासौ भुवि राजसुताभवत्।
प्रसाद्य स्वपुरं दिव्यं गच्छ मामुहि तां प्रियाम्॥ १२८॥
(इति श्रुत्वा प्रबुद्धोऽसौ खड्गं वीक्ष्य सहस्रगम्।
तत्प्रभावोदितगतिर्ययौ व्योम्ना हिमाचलम्॥ १२९॥
तत्र विद्याधराञ्जित्वा समरे तां तदात्मजाम्।
प्रापानङ्गप्रभां मूर्तां प्रभामिव मनोभुवः॥ १३०॥
तत्र विद्याधरपुरे स्थित्वा संभोगतत्परः।
मनुष्यलोकं सोत्कण्ठो ययौ व्योम्ना तया सह॥ १३१॥
ततः शिखरिपर्यन्तविपुले कटकस्थले।
फुल्लचूतलताहूतविलोलालिकुलाकुले॥ १३२॥
विजहार द्विजवरस्तया राजीवनेत्रया।
तत्र लीलारतिश्रान्तः स निद्रामुद्रितेक्षणः॥ १३३॥
सुष्वाप तालपवनैर्व्यजनैरिव वीजितः।
अत्रान्तरे मृगयांक्रीडायै तां वनस्थलीम्॥ १३४॥
राजा हरिवरो नाम दाक्षिणात्यः समाययौ।
स तां विद्याधरीं दृष्ट्वा जीवविद्यां मनोभुवः॥ १३५॥
कम्पंत्तरङ्गतां भेजे ज्योत्स्नामिव सरित्पतिः।
(सापि तं वीक्ष्य राजानं रजनीराजसुन्दरम्॥ १३६॥

१. 'मानासं' ख. २. 'वं' ख. २-३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके न दृश्यते. ४. 'शीतप' क. ५. 'जीविनः' ख. ६. 'ठ' ख. ७. 'म्पोत्त' ख. ८. 'एत-त्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

तन्न्यस्तमानसा प्राप कामपि स्मरविक्रियाम् ।
स्वयं कृताभ्युपगमां ततस्तां स महीपतिः) ॥ १३७ ॥
निनाय स्वपुरं हृष्टो धन्योऽस्मीति व्यचिन्तयत् ।
तस्य तत्केलिसक्तस्य तद्विभ्रमविकासिनः ॥ १३८ ॥
कोऽप्यन्तःपुरसंक्तेपु बभूव प्रचुरोत्सवः ।
जीवदत्तः प्रबुद्धोऽपि तामपश्यन्मनःप्रियाम् ॥ १३९ ॥
वने शुशोच सुचिरं मृगीभिः साश्रुवीक्षितः ।
ततो ग्रामं शनैर्दृष्ट्वा तस्या दुःखात्पतिन्नताम् ॥ १४० ॥
प्रियांदत्ताभिधां दिव्यचक्षुषा लोनिक्षारिलाम् ।
शुश्राव दयितावृत्तं स तथैव निवेदितम् ॥ १४१ ॥
राज्ञा हरिवराख्येन सा नीतेति सविस्मयः ।
प्रणम्य दिव्यनेत्रां तां विरक्तः सोऽभवत्ततः ॥ १४२ ॥
रागानलेन दग्धानां वैराग्यं जायते कुतः ।
स विन्ध्यवासिनीं गत्वा तावत्तेपे तपस्ततः ॥ १४३ ॥
यावत्साक्षाद्भगवती तमुवाच कृताञ्जलिम् ।
गणस्त्वं मे विरूपाख्यः सहितोऽन्यैर्गणैस्त्रिभिः ॥ १४४ ॥
कन्याभिलापी मुनिना शप्तो मर्त्यत्वमागतः ।
अधुना क्षीणशापस्त्वं ते च प्राप्ताः पदं मम ॥ १४५ ॥
इति देवीवचः श्रुत्वा गणतां प्राप स द्विजः ।
साप्यनङ्गप्रभा तस्य राज्ञः प्रणयिनीपदम् ॥ १४६ ॥
संप्राप्य रागिणी चिरं चिससार सुलोचना ।
ततो लब्धवराभिख्यो नाट्याचार्यो नरेश्वरम् ॥ १४७ ॥
तत्र्यौगिनं कलाभिज्ञो द्रष्टुमभ्याययौ युवा ।
संपूजितो भृशं राज्ञा चानङ्गप्रभया रहः ॥ १४८ ॥

१. 'सौधेपु' ख. २. 'समी' ख. ३. 'यंवदाभि' ख. ४. 'त्रागिणं' ख. ५. 'तामनङ्गप्रभा' ख.

अशिक्षयन्नृपादेशान्नाट्यं तां[1] जातमन्मथाम् ।
चित्रं करणशिक्षां ये देहीत्यभिहितस्तया ॥ १४९ ॥
स तां स्वैरं शशिमुखीं भेजे सुरतकोविदः ।
सा गाढरागिणी तेन सह मायादलक्षिता ॥ १५० ॥
क वा तिष्ठन्ति सुचिरं निम्नगा इव योषितः ।
नाट्याचार्यो निजं देशं तया सह समागमः ॥ १५१ ॥
प्राप्य लेभे रतिसुखं तद्विलासरसोचितम् ।
कदाचिदथ कालेन युवा द्यूतकलौदरः[2] ॥ १५२ ॥
सुहृत्सुदर्शनो नाम तं नाट्याचार्यमाययौ ।
स तस्य केलिदूतेन धनं हृत्वा सुदर्शनः ॥ १५३ ॥
स्वयं कृताभ्युपगमां भेजेऽनङ्गप्रभां रहः ।
नाट्याचार्यं परित्यज्य निर्धनं विगतद्युतिम् ॥ १५४ ॥
द्यूतकारेण सहिता सा ललास घनस्तनी ।
कालेन द्यूतकारोऽपि चौरै[3]र्निर्द्रविणः कृतः ॥ १५५ ॥
त्यक्त्वा हिरण्यगुप्ताख्यमासाद्य वणिजं तदा ।
*(बभूव[4] प्रेमसर्वस्वं तस्य सा रतिलालसा)* ॥ १५६ ॥
द्यूतकृच्चद्वियोगाग्निदग्धः स च धराधिपः[5] ।
विरक्तौ संनिपातेन जग्मतुः परमं पदम् ॥ १५७ ॥
वणिजः प्रेमसर्वस्वं कालेनाम्भोधिगामिनः ।
वातभग्ने प्रवहणे संप्राप्ता धीवरेण सा ॥ १५८ ॥
तेन सागरतीरेण[6] चिरं दासेन कामिताम् ।
युवा विजयधर्माख्य[7]स्तां प्राप कुलपुत्रकः ॥ १५९ ॥
यदृच्छया गतो दृष्ट्वा तां सागरपुराधिपः ।
राजा सागरदत्ताख्यो रागिणीमभजत्ततः ॥ १६० ॥

---

१. 'संजातमन्मथः' ख. २. 'महाधनः' ख. ३. 'ता वरः' ख. ४. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ५. 'नृपोऽपि' ख. ६. 'दाशप्रवीरेण तेनादासेन कामिताम्' ख. ७. 'धर्माख्यो' ख.

कान्ता भूमिभुजा तेन विलासरसिकेन सा ।
सेविता सुचिरं प्रेम्णा कालेनासूत पुत्रकम् ॥ १६१ ॥
सुतः समुद्रदत्ताख्यस्तस्याः स शशिसुन्दरः ।
विद्याकलाकलितधीः कालेन प्राप यौवनम् ॥ १६२ ॥
कन्यां कमलिनीं नाम राज्ञः समरवर्मणः ।
स प्राप विभ्रममहीं कान्तः परिणयोत्सवे ॥ १६३ ॥
निर्जिताशेषवसुधं तं गुणोचितमात्मजम् ।
अभिषिच्य ततः प्रायाद्राजानङ्गप्रभासखः ॥ १६४ ॥
तौ प्रयागे निराहारौ दृष्ट्वा स्वप्ने महेश्वरम् ।
क्षीणशापौ प्रययतुर्निजं वैद्याधरं पदम् ॥ १६५ ॥

इत्यनङ्गप्रभाख्यायिका ॥ ३ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
जहास तस्या वृत्तान्तमलंकारवतीसखः ॥ १६६ ॥
कदाचिदथ तं प्राह राजपुत्रं सुहृद्युतम् ।
मरुभूतिः कृपाविष्टो दृष्ट्वा कार्पटिकं पुरः ॥ १६७ ॥
शीतवातातपसहो सदैव त्वत्परायणः ।
नाद्यापि परमां लक्ष्मीं प्राप्त इत्यद्भुतं महत् ॥ १६८ ॥
प्राग्दत्तं भुञ्जते सर्वे कर्तुं वा कस्य कः क्षमः ।
तथापि यत्कार्पटिकः पदं नाद्यापि संपदाम् ॥ १६९ ॥
इत्युक्ते राजपुत्रस्य पुरतो मरुभूतिना ।
गोमुखः प्राह सदृशं श्रूयतामेवमत्र च ॥ १७० ॥
अभूल्लक्षपुरे श्रीमाँल्लक्षदत्ताभिधो नृपः ।
लब्धदत्ताह्वयस्तस्य भक्तः कार्पटिकोऽभवत् ॥ १७१ ॥
चिरसेवापरिक्लिष्टं तं विज्ञाय स पार्थिवः ।
गूढं रत्नैः समापूर्य फलं तस्मै ददौ स्वयम् ॥ १७२ ॥

---

१. 'श्रेष्ठं' ख. २. 'द्द' ख. ३. 'ल्क्षदन्ताभिधो' ख. ४. 'न्ता' ख.

मातुलुङ्गफलं प्राप्य सोऽपि राज्ञा समर्पितम् ।
अभिदध्यौ तदद्यापि नाहं लक्ष्मीनिरीक्षितः ॥ १७३ ॥
इति चिन्तापरो गत्वा यदृच्छोपगताय सः ।
भक्तः कार्पटिकस्तस्य तत्फलं भिक्षवे ददौ ॥ १७४ ॥
राजा [1]नन्दिरिति ख्यातः स भिक्षुस्तन्महीभुजे ।
हस्तोपायनमास्थाने मातुलुङ्गफलं ददौ ॥ १७५ ॥
राजापि रत्नसंपूर्णं तत्परिज्ञाय सस्मितः ।
([2]पुनः कार्पटिकायैव स तस्मै प्रददौ फलम् ॥ १७६ ॥
राज्ञा दत्तं तदादाय दुःखितोऽसौ व्यचिन्तयत्) ।
अहो रत्नाकरजुषा मया प्राप्तः कपर्दकः ॥ १७७ ॥
इति ध्यात्वा मयाख्यस्य तद्ददौ राजसेविनः ।
([3]वस्त्रयुग्मेन संतुष्टो मन्यमानोऽधिकं धनम् ॥ १७८ ॥
अभयोऽपि फलं गत्वा भूभुजे तन्न्यवेदयत् ।
भूयः कार्पटिकायैव प्रादात्तच्च फलं नृपः ॥ १७९ ॥
तद्विलासवती नाम फलमादाय नर्तकी ।
मूल्येन तस्मादनयद्भूपालोपायनास्पदम्) ॥ १८० ॥
राजा पुनस्तदासाद्य सावेगं स्मितसुन्दरः ।
तं कार्पटिकमुद्दिश्य चिक्षेप मणिमत्फलम् ॥ १८१ ॥
वेगावपातस्फुटितफलोदरविनिर्गतैः ।
रत्नैरिन्द्रायुधच्छायैस्तस्योत्सङ्गमपूर्यत ॥ १८२ ॥
[4]क्षीणदुष्कृतो लक्ष्म्याः कटाक्षैरिव लक्षितः ।
तैर्महारत्ननिकरैः सोऽभवत्संपदां निधिः ॥ १८३ ॥
इत्यनिस्तीर्णदुष्कर्मसंकटैः श्रीर्न लभ्यते ।
तथापि सेवको देव यन्नाद्यापि पदं श्रियः ॥ १८४ ॥

इति कार्पटिकाख्यायिका ॥ ४ ॥

---

१. 'दन्दि' ख. २-३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

निशम्य गोमुखेनेति कथितं नरवाहनः ।
निजं कार्पटिकं चक्रे क्षणेन क्षितिपोपमम् ॥ १८५ ॥
ततः कदाचिदभ्यायात्सेवितुं नरवाहनम् ।
लम्बबाहुरिति ख्यातो विप्रः शस्त्रभृतां वरः ॥ १८६ ॥
वितीर्णे राजपुत्रेण तस्मै प्रत्यहवेतने ।
जाम्बूनदशते प्राह गोमुखो हृष्टमानसः ॥ १८७ ॥
एतद्विधाः प्रभुहितव्रतधीराः सुदुर्लभाः ।
येषां पुरुषरत्नानां पृथ्वीमूल्यं विडम्बना ॥ १८८ ॥
पुरा विक्रमतुङ्गाख्यो राजा विरजसा वरः ।
द्विजं वीरवरं नाम सेवकं विदधे धनैः ॥ १८९ ॥
श्रुत्वा निशि प्रलापिन्याः पृथ्व्याः स पृथिवीपतेः ।
पर्यन्तमायुषप्राप्तं वज्राहत इवाभवत् ॥ १९० ॥
स तद्गिरा गिरः सूनोश्छित्त्वा सुश्रेयसे प्रभोः ।
देवीमतोपयधेन शतायुरभवन्नृपः ॥ १९१ ॥
ततो ररक्ष तं देवी स्वसिरश्छेत्तुमुद्यतम् ।
जीवयित्वास्य (सुचिरं प्रसादामृतनिर्झरैः ॥ १९२ ॥
इत्येवं स्वामिनां भृत्या भवन्त्यभ्युदयश्रिये ।
अयं द्विजवरो देव वीरो भृत्यस्तवोचितः ॥ १९३ ॥

इति वीरवराख्यायिका ॥ ५ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
ननन्द सचिवैः सार्धमलंकारवतीसखः ॥ १९४ ॥
ततः कदाचिन्मृगयारसिको नरवाहनः ।
पराक्रमं लम्बबाहोर्ददर्श हरियोधिनः ॥ १९५ ॥
विपिने सरसस्तीरे स्वप्नमामरणैस्ततः ।
चतुर्भिर्दिव्यपुरुषैर्धन्यः प्राप समागमम् ॥ १९६ ॥

---

१. 'वरप्रसादेन' ख. २. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः.

नीतो नारायणं द्रष्टुं श्वेतद्वीपं विहायसा।
तैस्तूर्णजातसौहार्दैः सोऽपश्यच्छेषशायिनम्॥ १९७॥
श्रीपतिं पुण्डरीकाक्षं पद्मनाभमनामयम्।
दृष्ट्वा प्रणम्य वरदं तुष्टाव नरवाहनः॥ १९८॥

ॐ जय अजय अजित अव्यय अप्रमेय अनन्त अच्युत अपरिमित अचल अचिन्त्य अप्रतिहत अभय महाविभव निरतिशय निरञ्जन निर्लेप निष्प्रपञ्च निरुपम निर्विकार निर्गुण नित्योदित विश्वेश्वर विश्वरूप विश्वाश्रय विश्वसमुद्धरण शुद्ध सूक्ष्म ध्रुव शाश्वत शान्त सच्चित्स्वरूप परमानन्दमन्दिर स्वेच्छाशक्तिव्यक्तीकृतनिजप्रसर लक्ष्मीलतावसन्तातप मधुवधूगण्डपाण्डिमप्रद असुरमहिषीभ्रमविराम अखण्डितप्रसादमण्डिताखण्डल कौस्तुभप्रभारचितकमलाकुचकुङ्कुमपत्रभङ्ग अपरिष्वङ्गसंगमाकुलीभूतस्वर्भानुभामिनीलोकालोन्दुकमलालाञ्छनलेखायितवसुधाभिराममहावराह हिरण्यकशिपुकाननप्रलयानिल वामनलीलासंपद्वामनीकृतसुरैश्वर्य चरणनखमयूखायितस्वर्वाहिनीप्रवाह क्षत्रक्षपापरोद्दीपितकुठारानल दशवदनवदनकन्दुकविनोदानन्दित कालियकुलकामिनीकुञ्जर रुक्मिणीकपोलदन्तपत्रीकृतपाञ्चजन्यप्रभामयूर विद्रुमद्रुमायमाणकैटभरुधिरारुणोरुस्तम्भ ब्रह्मपद्माकरतुरगमुखखलीनखणखणायमानसामवेदोद्गिरा

इति स्तुत्वा हृषीकेशं तद्दत्ता दिव्ययोषितः।
प्राप्य राजसुतः प्रायात्स दिव्यपुरुषालयम्॥ १९९॥
रूपसिद्धिमुखास्तेऽथ समुद्रद्वीपवासिनः।
अपूजयन्देवपुत्राः स्वगृहे नरवाहनम्॥ २००॥
ततस्तद्विहितोदारगतिः प्राप्य निजां पुरीम्।
अलंकारवतीं भेजे हृष्टो विरहनिःसहः॥ २०१॥

इति नारायणदर्शनम्॥ ६॥

ततः कदाचिदाकर्ण्य तूर्यशब्दं पुरान्तिके।
किमेतदिति पप्रच्छ सचिवान्नरवाहनः॥ २०२॥

ततो हरिशिखः प्राह भद्रस्य वणिजो गृहे ।
कौशाम्बीवासिनो देव वर्तते विपुलोत्सवः ॥ २०३ ॥
लब्धो निजगृहोपान्तान्निधिस्तेन महाघनः ।
कृपया वत्सराजेन न चात्तस्तन्निवेदितः ॥ २०४ ॥
तत्प्रसादाद्गृहं तस्य वणिजः प्रस्तुतोत्सवे ।
सुतारस्तूर्यशब्दोऽयं रुणद्धि निखिलां पुरीम् ॥ २०५ ॥
उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखः प्राह सस्मितः ।
अस्त्येवमेव धन्यानां विधाता वाञ्छितप्रदः ॥ २०६ ॥
पुरा समुद्रशूरेण वणिजा द्वीपगामिना ।
भग्ने प्रवहणे प्राप्तो जलोच्छूनः शवोऽम्बुधौ ॥ २०७ ॥
तेनैवोत्तीर्य जलधेर्हेमद्वीपमवाप्य सः ।
शववस्त्राञ्चलासक्तां मणिमालामवाप्तवान् ॥ २०८ ॥
तां कण्ठसूत्रिकां पूर्वं स चौरो राजमन्दिरात् ।
हृत्वा जलौघाविःसृत्य ममज्ज जलधौ भयात् ॥ २०९ ॥
तां व्यसोस्तस्य चोरस्य स गृहीत्वा पुरान्तरम् ।
प्रविश्य पादपतले श्रान्तो निद्रां समाययौ ॥ २१० ॥
मणिमालां परिज्ञाय स राजपुरुषैर्बलात् ।
नृपतेरन्तरं नीतस्तत्कोपाकुलिताकृतेः ॥ २११ ॥
अत्रान्तरे रत्नमालां गृध्रस्तामहरच्छलात् ।
(हृतेयमिति भूपालपुरः प्रतिस्तुता जनैः ॥ २१२ ॥
आदिष्टे वणिजे राज्ञा वधे शब्दोऽभवद्दिवि ।
वणिक्समुद्रशूरोऽयं निर्दोष इति कर्मतः) ॥ २१३ ॥
ततः सपूजितो राज्ञा शनैस्तद्वाक्यगौरवात् ।
तीर्त्वा प्रवहणेनाब्धिं वेलातटमवाप्तवान् ॥ २१४ ॥
तत्रास्य शबराः सर्वं जगृहुर्धनसचयम् ।
स हृतद्रविणो गत्वा निषसाद तरोरधः ॥ २१५ ॥

१. 'नो' ख. २. 'द्व' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

नीडे महाद्रुमस्याधस्तामेव मणिसूत्रिकाम्।
लम्बमानां विलोक्याराद्धन्यस्तामवाप्तवान्॥ २१६॥
पृथ्वीमूल्यानि रत्नानि तस्मादिव खगालयात्।
स प्राप्य स्वगृहं प्रायाद्वणिग्वैश्रवणोपमः॥ २१७॥
इति लाभक्षयाभ्यासाद्धन्यानामेव पुण्यतः।
उदयान्ता भवन्त्येवमुक्त्वैव विरराम सः॥ २१८॥

इति समुद्रशूराख्यायिका॥ ७॥

अलंकारवतीवक्त्रपद्मचुम्बनषट्पदः।
ततः सुहृद्वृतः कालं निनाय नरवाहनः॥ २१९॥
अथ तं प्राह सेनानीस्तवासौ बालसेवकः।
राजा विक्रमतुङ्गाख्यो देव प्राप्तो जयश्रियम्॥ २२०॥
तव भ्रूभङ्गमात्रेण हेलया तव सैनिकैः।
समरे विजितास्तस्य रिपवः पञ्च पार्थिवाः॥ २२१॥
ते च विक्रमतुङ्गेन स्वयं बद्ध्वा महारणे।
त्वत्पादमूलमानीता मानिनो वसुधाधिपाः॥ २२२॥
श्रुत्वेति राजतनये प्रहृष्टे प्राह गोमुखः।
राजा विक्रमसेनस्ते सिद्ध्यै देवसेवकः॥ २२३॥
अत्रान्तरे वीरवृत्तं श्रूयतां कथयाम्यहम्।
बभूव हास्तिनपुरे चमरो नाम भूपतिः॥ २२४॥
स गोत्रशत्रुस्तस्यासीत्प्रतापो नाम पार्थिवः।
सहार्न्यैर्वसुधाधीशैः स तं जेतुं समुद्ययौ॥ २२५॥
विजयारम्भवार्तायां प्रतापेन महीभुजा।
पृष्टस्तं प्राह दैवज्ञो जयस्तव न दृश्यते॥ २२६॥
न कालोऽयं तवोद्योगे मा प्रमादे मनः कृथाः।
सुकाले विहितं सर्वमयत्नेनैव सिध्यति॥ २२७॥

---

१. 'सूत्र' ख. २. 'सुभटो' ख. ३. 'यन्त्रार्या' ख.

कौतुकाख्ये पुरवरे राजा बहुसुवर्णकः ।
बभूव सर्वजनतासंकल्पसुरपादपः ॥ २२८ ॥
यशोधर्माभिधानस्तं कदाचिच्चिरसेवकः ।
व्यजिज्ञपद्दुर्गतिर्मे क्ष्मापते वार्यतामिति ॥ २२९ ॥
पुनः पुनः प्रार्थ्यमानस्तेन राजा निरुत्तरः ।
दिवमालोक्य सुचिरादूचे सचिवसंसदि ॥ २३० ॥
जानामि सेवकस्त्वं मे दीर्घकालमनन्यगः ।
दातुमिच्छामि ते सर्वं किं तु सूर्यो रुणद्धि माम् ॥ २३१ ॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा मौनमूके समातले ।
यशोधर्मा विनिःश्वस्य विधिं मेने दिवाकरम् ॥ २३२ ॥
ततः कदाचित्स नृपं राहुग्रस्तेंऽशुमालिनि ।
व्यजिज्ञपत्कुरुक्षेत्रे हेमरत्नाम्बरप्रदम् ॥ २३३ ॥
त्वत्प्रसादनिषेद्धा मे देवोऽयं भास्करो रिपुः[1] ।
राहुणा शत्रुणाक्रान्तो देव[2]स्मिन्ने क्षणे धनम् ॥ २३४ ॥
इति नर्मवता तेन विज्ञप्तः स महीपतिः ।
प्रहस्य सानुगस्तस्मै तुष्टो भूरि धनं ददौ ॥ २३५ ॥
महाव्ययोऽयं सुचिरात्प्राप्य तद्द्रणक्षयम् ।
विविग्नहृदयः प्रायात्तपसे विन्ध्यवासिनीम् ॥ २३६ ॥
सा तुष्टा प्राह तं भोगान्धनं वासमवाप्नुहि ।
इति देव्या समुद्दिष्टो द्रष्टुं प्रायाद्वणिक्सुतौ ॥ २३७ ॥
एकं स संचयपरं ददर्श कृपणाशयम् ।
भोज्यलेशापराधेन प्राप्तः प्राप्तविसूचिकाम् ॥ २३८ ॥
धीरं निःसंचयं चान्यं सदा संभोगतत्परम् ।
स तौ दृष्ट्वा गिरिसुतां ययाचे भोगसंपदम् ॥ २३९ ॥

१. 'विभुः' ख. २. 'मे' ख. ३. 'नद्यव्ययोऽय' ख.

देवीवरात्प्राप्य भोगान्स संपूर्णमनोरथः ।
इत्येवं कालविहितं सर्वं भवति सिद्धये ॥ २४० ॥

इत्यन्तराख्यायिका ॥ ८ ॥

नायं जयस्य ते कालो गणकेनेति ते नृपाः ।
वारिता अपि युद्धाय राजानं चमरं ययुः ॥ २४१ ॥
चमरोऽपि सुसंनद्धो धीरं नाम च भूपतिम् ।
पुरस्कृत्य महानीको निर्ययौ समरोन्मुखः ॥ २४२ ॥
निहतानेकसुभटान्विदारितहयद्विपान् ।
स तान्नरेन्द्रान्संग्रामे बबन्ध वलिताम्बरः ॥ २४३ ॥
विजयश्रियमासाद्य स्वपुरे विहितोत्सवः ।
वद्धघूपातिनो भूपान्स तांस्तत्याज सत्त्ववान् ॥ २४४ ॥
इत्युत्साहपरा धीराः समरे व्यवसायिनः ।
लभन्ते विजयं देव यान्ति वा त्रिदिवं हताः ॥ २४५ ॥

इति चामराख्यायिका ॥ ९ ॥

गोमुखेनेति कथिते सुहृद्भिर्नरवाहनः ।
निरर्गलकथासक्तो ननन्द दयितासखः ॥ २४६ ॥
ततो नर्मकथाबन्धे हसन्हरिशिखोऽब्रवीत् ।
मरुभूतिरयं देव साक्षाल्लोभः किमुच्यते ॥ २४७ ॥
शुचि सांवत्सरीं योऽयं भृत्यानां मीलितेक्षणः ।
करोति पैठमौनानां मौनमस्ममयो यथा ॥ २४८ ॥
उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखः प्राह सस्मितः ।
नर्महासविलासो हि गोष्ठीष्वमृतनिर्झरः ॥ २४९ ॥
देव लुब्धा भवन्त्येव तथा च क्षितिपोऽभवत् ।
चिरदाता यथार्थेन नाम्नैव कथिताशयः ॥ २५० ॥

१. 'सभो' ख. २. 'ए' ख. ३. 'नरवाहनः' ख. ४. 'पाचमानानां' ख.

प्रसङ्गोऽर्थमुखश्चेति तस्यासन्सेवकास्त्रयः ।
तेषामवृत्तिक्षुण्णानां ययुः पञ्च वत्सराः ॥ २५१ ॥
दारिद्र्यदुःखाद्राजानं सदा याचितुमुद्यतौ[1] ।
प्रसङ्गाख्येन कालोऽयं नेत्यन्यौ विनिवारितौ ॥ २५२ ॥
अत्रान्तरे नृपसुते बाले दैवाद्दिवं गते ।
प्रसङ्गोऽभ्येत्य शोकार्तं नरनाथं व्यजिज्ञपत् ॥ २५३ ॥
देव यातः सुविपुलः कालस्त्वत्पादसेवनैम् ।
अस्माकं कर्मबन्धेन केनापि हतसंपदाम् ॥ २५४ ॥
नृपाद्वर्षशतेनापि नैवास्मादस्ति नः फलम् ।
एतत्सुतो दास्यतीति बद्धोऽस्माभिर्मनोरथः ॥ २५५ ॥
सोऽद्य बालस्तव सुतो नीतोऽस्मद्भाग्यसंक्षयात् ।
दैवेन त्वदनुज्ञाता गच्छामः स्वस्ति ते प्रभो ॥ २५६ ॥
इति तद्वचनेनासौ वृद्धः शोकाकुलो नृपः ।
ददौ तेभ्यो बहुधनं पुत्रकीर्तनमोहितः ॥ २५७ ॥
इत्यादि गोमुखेनोक्तं मरुभूतिविडम्बनम् ।
श्रुत्वा जहास मुदितो राजपुत्रः प्रियासखः ॥ २५८ ॥
इति लुब्धाख्यायिका ॥ १० ॥

पृष्टोऽलंकारवत्याख्यां कथां चित्तविनोदिनीम् ।
गोमुखः सादरं प्राह तस्यां सचिवसंसदि ॥ २५९ ॥
हिरण्यवर्ण इत्यासीद्वसुधाधिपशेखरः ।
यशस्वी काञ्चनपुरे पञ्चबाण इवापरः ॥ २६० ॥
स तु चित्रपटाकारदर्शनाज्जातमन्मथाम् ।
विदर्भराजतनयां लेभे मदनमञ्जरीम् ॥ २६१ ॥
रममाणस्तया तत्र हरिणीहारिनेत्रया ।
मेने वराकं त्रैलोक्यजयिनं रतिवल्लभम् ॥ २६२ ॥

१. 'सविवाद' ख. २. 'यौ' ख. ३. 'नात्' ख.

कदाचिदथ दुःस्वप्नं विलोक्याकुलितो नृपः ।
कार्तिकेयवने देवं कुमारं समतोषयत् ॥ २६३ ॥
विषादसम्यग्विहितां मतिं तस्य षडाननः ।
ज्ञात्वा प्रियवियोगस्ते भूयादिति शशाप तम् ॥ २६४ ॥
नृपोऽपि शापदुःखं तद्विस्मृत्य शनकैः प्रियाम् ।
कण्ठावलम्बिनीं कृत्वा धन्योऽस्मीति मुदं ययौ ॥ २६५ ॥
ततः कालेन सा गर्भदोहदा पाण्डुरच्छविः ।
बभूवासन्नचन्द्रेव लहरी दुग्धवारिधेः ॥ २६६ ॥
अथासूत सुतं कान्तं बालकं समवर्चसम् ।
चक्रवर्तिपदोदारलाञ्छनाकलिताकृतिम् ॥ २६७ ॥
दिनेषु षट्सु यातेषु ततो धर्षितदिक्तटाः ।
उद्यद्रजटालश्री विकटा मरुतो ववुः ॥ २६८ ॥
पांशुरूपान्धकारेण नद्धे भुवनमण्डले ।
प्रविश्य सूतिकावेश्म काली पिङ्गललोचना ॥ २६९ ॥
दंष्ट्राविकटवदना तडित्तरलकुण्डला ।
भयंकरी कापि योषित्तं जहार शिशुं बलात् ॥ २७० ॥
पुत्रस्नेहादनुययौ यातां तां च नृपप्रिया ।
सलिलान्तरनिर्मग्नां तामेवानुममज्ज ह ॥ २७१ ॥
राजापि तिमिरे शान्ते यातां क्वापि सपुत्रकाम् ।
ज्ञात्वा प्रियतमां शोकाद्भेजे शतगुणं तमः ॥ २७२ ॥
राजधानीं परित्यज्य हा प्रिये चित्तचन्द्रिके ।
क्व यातासीति विलपन्बभ्राम विपुलां महीम् ॥ २७३ ॥
स काननं समासाद्य कान्तं विद्याधरं पदम् ।
ददर्श तं च पप्रच्छ संतप्तः शोकभेषजम् ॥ २७४ ॥
स च विद्याधरः प्राह द्विजोऽहं तत्रैतिमही ।
बन्धुदत्ताभिधो राजंस्त्वद्गृहे कृतभोजनः ॥ २७५ ॥

१. 'पत्नी' ख. २. 'कान्ता बालार्कसमवर्चसम्' ख. ३. 'सरिम' ख.

त्वयैव कृतसाहाय्यः पुरा वेतालसाधकः ।
वैद्याधरीमहं प्राप्तः श्रियमेतां महीपते ॥ २७६ ॥
इतो गत्वा भगवतीमाराध्य हरवल्लभाम् ।
अचिरात्प्राप्स्यसि सतीं तामेव सुचिरात्प्रियाम् ॥ २७७ ॥
इत्युक्तस्तेन स शनैर्गत्वा विन्ध्यमहीधरम् ।
अतोषयद्भगवतीं तपसा शंकरप्रियाम् ॥ २७८ ॥
मयैव रक्षिता पत्नी तव सा ससुता प्रिया ।
इत्युक्त्वा पार्वती तस्मै ददौ तां तनयं तदा ॥ २७९ ॥
प्रहृष्टो दयितां प्राप्य प्राप पुत्रं च भूपतिः ।
हिरण्यवर्णः स्वपुरं गत्वा चक्रे महोत्सवम् ॥ २८० ॥
इति हिरण्यवर्णाख्यायिका ॥ ११ ॥

गोमुखेनेति कथिते प्रहृष्टे नरवाहने ।
तत्स्पर्धाबन्धसंरब्धो मरुभूतिरभाषत ॥ २८१ ॥
चन्द्रस्वामीति विप्रोऽभून्नगरे कमलाभिधे ।
भार्या देवमती नाम तस्याभूदुचितव्रता ॥ २८२ ॥
महीपालाभिधं तस्यां स प्राप तनयं प्रियम् ।
अलंकारं निजकुले कन्यां चन्द्रवतीं तथा ॥ २८३ ॥
कदाचिदथ दुर्भिक्षे भार्यामामन्त्र्य तां ययौ ।
श्वशुरावसथे न्यस्य तं पुत्रं कन्यकां च ताम् ॥ २८४ ॥
पथि ग्रीष्मोपसंतप्तं संप्राप्तो जीवनं वनम् ।
शुशोच दृष्ट्वा तृष्णार्तौ बालौ शुष्यन्मुखाम्बुजौ ॥ २८५ ॥
निधाय तौ तथैकान्ते तदर्थं जलकाङ्क्षया ।
स व्रजञ्शबराधीशमपश्यद्दारुणाकृतिम् ॥ २८६ ॥
तेन दुर्गोपहाराय नीते तस्मिन्निजालयम् ।
तौ बालकौ महाशोकवह्निसंतापमापतुः ॥ २८७ ॥

१. 'थैः' ख. २. 'र्थं' ख.

ततो यदृच्छयायातो वणिक्सार्थवराभिधः ।
निजं निनाय कृपया तौ गृहं श्रुततत्कथः ॥ २८८ ॥
चन्द्रवत्या समं स्वस्रा महीपालोऽथ तद्गृहे ।
श्रुतिस्मृतिक्रियासक्तश्चिरं तस्थौ द्विजाग्रणीः ॥ २८९ ॥
ततस्तारावलोकस्य नृपतेः सचिवो द्विजः ।
श्रीमाननन्तस्वामीति तं मित्रं प्राप सार्थपम् ॥ २९० ॥
स तद्गृहे द्विजसुतं दृष्ट्वा कन्यां च विस्मितः ।
दत्तः सार्थवरेणैव प्रीतः पुत्रपदे व्यधात् ॥ २९१ ॥
अनन्तस्वामिनानीतौ तारापुरनिवासिनौ ।
तद्गृहृभ्यां च यत्नेन सुताविति विवर्धितौ ॥ २९२ ॥
अस्मिन्नवसरे चन्द्रस्वामी शबरमन्दिरे ।
तुष्टाव भास्करं गाढनिगडाबन्धपीडितः ॥ २९३ ॥
तत्स्तोत्रतुष्टो भगवान्स्वप्ने शबरमंशुमान् ।
आदिदेश कृपाविष्टो द्विजोऽयं त्यज्यतामिति ॥ २९४ ॥
तदाज्ञया परित्यक्तस्तेन सोऽथ सुताशया ।
चिन्तासंतप्तहृदयो बभ्राम निखिलां महीम् ॥ २९५ ॥
स पृच्छन्पथिकान्सर्वाञ्शुश्राव जलधेस्तटे ।
बालौ केनापि वणिजा प्राप्ताविल्यस्फुटं पथि ॥ २९६ ॥
समुद्रद्वीपविषयनगरग्रामगह्वरम् ।
स विविच्य शनैः प्राप क्षपायां निर्जनं वनम् ॥ २९७ ॥
ददर्श मातृकास्तत्र देवतायोगिनीगणैः ।
सेविताः कलिसंसक्ता नृत्यगीतरसाकुलाः ॥ २९८ ॥
तत्रैका योगिनी प्राह निजां दृष्ट्वानुयायिनीम् ।
निरीक्ष्यमाणां विवं सा साभिलापं सविभ्रमाम् ॥ २९९ ॥
अयि किं त्वमदृष्टेऽसि विप्रेऽस्मिन्नभिलाषिणी ।
पुरा नपुंसकं प्राप सुन्दरी राजकन्यका ॥ ३०० ॥

१-२ 'ब' पु.

भर्तारं निशि शय्यायां तं दृष्ट्वा दु खिताभवत् ।
सा पित्रे प्रेषयामास दूतं सोऽप्याययौ रुषा ॥ ३०१ ॥
नपुंसकेन मत्कन्या दूषितेति रणोन्मुखः ।
भयात्तस्याथ जामाता मन्त्रेणाराध्य गुह्यकम् ॥ ३०२ ॥
अवाप्य पौरुषं लिङ्गं सिषेवे सुन्दरीं पुनः ।
त्वमप्यज्ञातशीलेऽस्मिन्मा कृथाः सादरं मनः ॥ ३०३ ॥
तामित्युक्त्वा समभ्येत्य पप्रच्छ ब्राह्मणं ततः ।
अप्यस्यां साभिलाषस्त्वं न वेति द्विज कथ्यताम् ॥ ३०४ ॥
सोऽब्रवीद्देवि मनसः स्वभावो ह्यभिलाषिता ।
किं त्वहं स्वविवेकेन रक्षाम्यनुचितादिति ॥ ३०५ ॥
तच्छ्रुत्वा वरदा देवी तस्मै नीलोत्पलं ददौ ।
सर्वार्थसिद्धिमेतेन प्राप्स्यसीत्यभिधाय सा ॥ ३०६ ॥
तत्प्राप्य स व्रजन्प्रातर्गत्वा तारापुरं शनैः ।
हा कष्टमिति शुश्राव जनकोलाहलं महत् ॥ ३०७ ॥
किमेतदिति पृष्ट्वासौ पौरेभ्यः स्वामिनो महत् ।
अनन्तस्वामिनः सूनुर्दत्तको नृपमन्त्रिणः ॥ ३०८ ॥
सर्पेण दष्टः श्रुत्वेति तमपश्यद्व्यसुं ततः ।
नीलोत्पलप्रभावेन जीवयित्वा स तं क्षणात् ॥ ३०९ ॥
कण्ठे जग्राह सोत्कण्ठं परिज्ञाय निजात्मजम् ।
ततो बन्धुमतीं नाम तनयां गुणशालिनीम् ॥ ३१० ॥
ददौ तारावलोकोऽस्मै राज्यार्धं च नरेश्वरः ।
प्राप्तराज्यं महीपालं चन्द्रस्वामी ततः सुतम् ॥ ३११ ॥
तं रहः प्राह जननीं द्रष्टुमेहि निजां पुरीम् ।
सा हि दीर्घवियोगेन किं नु जीवति वा न वा ॥ ३१२ ॥
तामादाय पुनः पुत्र समेष्यावः क्षणादिति ।
तव संप्राप्तराज्यस्य गुरुभक्तिर्विभूषणम् ॥ ३१३ ॥

लक्ष्मीलताकुठारो हि गुरुशापः सुदुःसहः।
चक्रस्य वणिजः पूर्वं पितुरादेशखण्डनात् ॥ ३१४ ॥
ज्वालाकुलं मूर्ध्नि चक्रं पपातात्यन्तदुःसहम्।
पितरौ सेवमानस्य धर्मव्याधस्य कोऽप्यभूत् ॥ ३१५ ॥
ज्ञानप्रकाशो येनास्य शिष्यतां मुनयो ययुः।
इति पित्रा समादिष्टः स ययौ मातुरन्तिकम् ॥ ३१६ ॥
याते तस्मिन्वियोगार्ता बन्धुमत्यभवत्ततः।
सा दुःखिता मातृगिरा सत्रागारमकारयत् ॥ ३१७ ॥
नानादेशगतामेकद्विजविश्रान्तिपादपम्।
ततः संगमदत्ताख्यो द्विजन्मा तीर्थशालिनीम् ॥ ३१८ ॥
भ्रान्त्वा वसुमतीं लेभे स तत्र स्नानभोजनम्।
बन्धुमत्या स पृष्टोऽथ वियोगे दुःखभेषजम् ॥ ३१९ ॥
उवाच पुण्ययोगेन निजं भर्तारमाप्स्यसि।
स्वयमेव मयाश्चर्यं दृष्टं शृणु पतिव्रते ॥ ३२० ॥
भ्रान्त्वा निखिलतीर्थानि हिमशैलसरोवरे।
उत्थितं दिव्यपुरुषं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ३२१ ॥
अपश्यं दिव्यनारीभिः सेव्यमानं सरोवरात्।
रममाणे ततस्तस्मिंस्तत्र लीलावतीसखे ॥ ३२२ ॥
केलिश्रान्ते क्षणं सुप्ते कोऽपि राजा समाययौ।
स समभ्येत्य निद्रालोः खड्गं तस्यान्तिके स्थितम् ॥ ३२३ ॥
गृहीत्वा तत्प्रभावेण तं जघान यदा ततः।
उत्क्षिप्तस्ते दिव्यरूपो निपतितो जगाद ॥ ३२४ ॥
स राजा तद्वधूयुग्मं प्राप्य मामवदत्ततः।
एष पाशुपताचार्यो मया सह पुरा व्यधात् ॥ ३२५ ॥

पापः प्रयातो नमसा दिव्यस्त्रीसङ्गसिद्धिदम् ।
अथ द्वादशमिर्लब्धः सोऽयं सवत्सरैर्मया ॥ ३२७ ॥
निधनार्होऽपि न हतः सिद्धयोऽपि हृतास्तु ताः ।
इत्युक्त्वा सरसो मध्ये दिव्यमाणिक्यमन्दिरम् ॥ ३२८ ॥
सहैवामरकान्ताभ्यां स विवेश नरेश्वरः ।
इति बन्धुमती श्रुत्वा चित्रमुक्तं द्विजन्मना ॥ ३२९ ॥
बबन्ध धैर्यं धर्मस्था सती दयितसगमे ।
कदाचिदपरोऽभ्येत्य तां द्विजः सत्रशालिकाम् ॥ ३३० ॥
भुक्त्वा निशात्तवृत्तान्तः प्राह बन्धुमतीं कथाम् ।
निषधेषु नलो नाम भूपालो ललिताकृतिः ॥ ३३१ ॥
अमृद्गुणगणोद्यानविकाशकुसुमाकरः ।
मृगयारसिकः सोऽथ कदाचित्कनकप्रभाम् ॥ ३३२ ॥
बबन्ध हंसांस्ते चाहुर्मुञ्चास्मांस्त्वं महीपते ।
सुता विदर्भराजस्य भीमस्यास्ति शुभध्यमा ॥ ३३३ ॥
दमयन्तीति विख्याता वयं तत्केलिसारसाः ।
ते वयं भवता मुक्ताः करिष्यामः प्रियं तव ॥ ३३४ ॥
भविष्यसि तृतीयेन तन्मुखाम्भोजषट्पदः ।
इति श्रुत्वैव तत्याज हंसान्व्याप्तो मनोभुवा ॥ ३३५ ॥
श्रुतेनेप्सितं वस्तु कस्य धैर्यं न कर्षति ।
ते गत्वा दमयन्त्यै तं कथयन्तो न्यवेदयन् ॥ ३३६ ॥
सौभाग्यमिव साकारं प्रत्यक्षमिव मन्मथम् ।
शनकैर्विरहक्षामौ तौ गुणाकर्णनान्मिथः ॥ ३३७ ॥
दिनैर्बभूवतुः प्रौढशरताकाण्डपाण्डुरौ ।
अथ राजसुता ध्यात्वा नलसंगमवाञ्छया ॥ ३३८ ॥
नृपेभ्यः प्राहिणोद्दूतान्पितुर्वाक्यात्स्वयंवरे ।
समागतेषु भूपेषु लोकपालाः समाययुः ॥ ३३९ ॥

१. 'सोद्विग्नो हंसारवात्तमनोभवम्' ख. २. 'वमने' ख. ३. 'पाश्रवणा' ख.

शक्राद्या नारदगिरा कन्यावरणलोलुपाः ।
साभिलाषां नले ज्ञात्वा दमयन्तीं दृढव्रताम् ॥ ३४० ॥
तद्रूपा एव विविशुः स्वयंवरसभां सुराः ।
निर्विशेषान्नलान्दृष्ट्वा दमयन्ती भुवि स्थिता ॥ ३४१ ॥
छायाद्वितीयमवृणोत्परिज्ञाय नलं धिया ।
ज्ञात्वा देवाः स्वमाकारं विधाय प्रददुर्वरान् ॥ ३४२ ॥
नलरूपाय संतुष्टाः स्मरणाच्च स संनिधिम् ।
दमयन्तीं समादाय स्वपुरं नैषधे गते ॥ ३४३ ॥
द्वापरेण कलिः सार्धं कन्यालोभात्समाययौ ।
वृतस्तया नलो राजा गच्छ वृथा स्वयंवरः ॥ ३४४ ॥
श्रुत्वेति देववचनं वृद्धः प्रायात्कलिर्नलम् ।
तदाविष्टः स नृपतिः सगोत्रेणाथ शत्रुणा ॥ ३४५ ॥
केनापि पुष्कराख्येन जित्वारण्यं विवासितः ।
दमयन्त्या स सहितः काननं प्राप्य निर्जनम् ॥ ३४६ ॥
गृहीतुं वाससा हंसान्क्षुत्क्षामः क्षिप्रमुद्ययौ ।
कलिद्वापरनिर्दिष्टास्ते हंसास्तूर्णमंशुकम् ॥ ३४७ ॥
जहुस्तस्य ततः सोऽपि दयितार्धाम्बरं श्रितः ।
तावेकवसनादूरं गत्वा प्राप्य वनान्तरम् ॥ ३४८ ॥
निषण्णौ स्थण्डिले तृष्णाशुष्यद्वदनपङ्कजौ ।
दमयन्त्यां प्रसुप्तायां नलः कलिविमोहितः ॥ ३४९ ॥
छित्त्वा शस्त्रेण वस्त्रार्धं प्रययौ दैवविप्लुतः ।
स गत्वा पुनरभ्यायात्पुनः प्रायात्स दुःखितः ॥ ३५० ॥
दोलाविलोलहृदयो रागान्मोहाच्च भूपतिः ।
त्रायस्वेति समाकर्ण्य शब्दं गत्वा वनान्तरम् ॥ ३५१ ॥
दावानलादुज्जहार कर्कोटं पन्नगोत्तमम् ।
स तद्वद्विपफूत्कारैर्यातः क्षिप्रं विवर्णताम् ॥ ३५२ ॥

---

१. 'मैत्रम्' ख. २. 'छित्त्वा वस्त्रं स प्रययौ मोहितो दैवविप्लुतः' ख. ३. 'ना' ख.

हृस्वोऽविटङ्कवदनः सोऽभवन्नृपशेखरः ।
ऋतुपर्णस्य नगरीमयोध्यां प्राप्य दुःखितः ॥ ३५३ ॥
प्राप्तनागांशुकस्तस्यौ सूदसारथ्यकर्मणि ।
दमयन्ती प्रबुद्धापि प्राणनाथविनाकृता ॥ ३५४ ॥
विललापातिकरुणं दृषदामपि दारुणम् ।
क्वासि मे हृदयाधीश फुल्लपद्मदलेक्षण ॥ ३५५ ॥
तां दुष्टाजगरेणाशु ग्रस्तां बा क्रोशतीं मुहुः ।
तामाकर्ण्यागतो व्याधो हत्वा दुष्टं मुमोच ताम् ॥ ३५६ ॥
ततः कामातुरो भूतकोपाद्भस्म चकार तम् ।
इति क्षामाक्षरं बाला शोचन्ती सा ययौ शनैः ॥ ३५७ ॥
कालेन वैदर्भपुरीं पितुः प्राप्य सुमध्यमा ।
एकवेणीव्रता तस्थौ नलसंगमवाञ्छया ॥ ३५८ ॥
सा ततः प्राहिणोद्विप्रानन्विचेतुं निषधाधिपम् ।
पृथिवीं ते च तद्गाथां गायन्तो बभ्रमुश्चिरम् ॥ ३५९ ॥
ऋतुपर्णपुरे धीमानेको विप्रश्चरन्मुहुः ।
जगौ विगुणयंस्तत्र नलस्याद्भुतचेष्टितम् ॥ ३६० ॥
मनोरथमपि च्छित्वा वाससोऽर्धं गतो ह्यसि ।
प्राणेश्वर प्रियां भार्यां क नु त्यक्त्वा विमोहिताम् ॥ ३६१ ॥
द्विजस्येत्यथ सारथ्यच्छन्नस्तुरगमन्दिरम् ।
श्रुत्वैव विकटाकारः सात्सोऽभूद्बाहुकाभिधः ॥ ३६२ ॥
सोऽब्रवीद्दैवदग्धानां दुष्कर्महतचेतसाम् ।
निकारं करुणापूर्णाः सहन्ते सरलाशयाः ॥ ३६३ ॥
बाहुकस्येति वचनं श्रुत्वा साश्रुदृशो वचः ।
अयोध्यां ब्राह्मणो गत्वा दमयन्त्यै न्यवेदयत् ॥ ३६४ ॥
सापि स्वयंवरव्याजादृतुपर्णं महीभुजम् ।
एकेनैव निनायाह्ना लङ्घितानेकयोजनम् ॥ ३६५ ॥

स वाजिहृदयज्ञेन बाहुकेनाश्ववाहिना ।
ध्यात्वायोध्याधिपं प्राप्तं नलं सूतमशङ्कत ॥ ३६६ ॥
ऋतुपर्णप्रदिष्टं च प्राप्याक्षहृदयं नलः ।
नागांशुकेन तत्याज बाहुकस्तां विरूपताम् ॥ ३६७ ॥
कर्कोटविषदग्धोऽथ तच्छरीराद्विनिर्गतः ।
कलिर्विभीतकतरुं विवेश भयविह्वलः ॥ ३६८ ॥
ततः स्वरूपसुभगं नलं पद्मदलेक्षणम् ।
दमयन्ती समासाद्य हृष्टा निर्वृतिमाययौ ॥ ३६९ ॥
नलोऽपि स्वपुरं गत्वा सानुगो वल्लभासखः ।
द्यूतेन पुष्करं जित्वा निजं राज्यमवाप्तवान् ॥ ३७० ॥
इति वैदर्भतनया दयितं प्राप सुन्दरी ।
त्वमप्येवं महीपालं द्विजेन्द्रं पतिमाप्स्यसि ॥ ३७१ ॥

इत्यन्तर्नलाख्यायिका ॥ १२ ॥

इति विप्रवचः श्रुत्वा भेजे बन्धुमती धृतिम् ।
कालेन तत्पतिस्तस्य पितरौ च समाययुः ॥ ३७२ ॥
प्रियां बन्धुमतीं प्राप्य राज्यं च स जनप्रियः ।
वरादनन्तनागस्य सहस्रायुरभूद्द्विजः ॥ ३७३ ॥

इति बन्धुमत्याख्यायिका ॥ १३ ॥

इति प्रियसखः श्रुत्वा कथितं मरुभूतिना ।
मुहुः केलिकलालोलस्तुतोष नरवाहनः ॥ ३७४ ॥
अथ सचिवकथाभिः कामिनीकेलिसक्तो
गुरुचरणसपर्याकल्पितोत्तंसशोभः ।
रिपुकुवलयवह्निश्चन्द्रचूडाङ्घ्रिसेवा-
विकसदमलसत्त्वो राजपुत्रो बभूव ॥ ३७५ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यामलंकारवती नाम पञ्चदशो लम्बकः ।

शक्तियशोलम्बकः ।

अनङ्गीकृतकामाय नमो वामार्धधारिणे ।
शिवायाश्चर्यरूपाय निष्कलाय कलामृते ॥ १ ॥
ततः कदाचिदास्थानस्थितं वत्सनरेश्वरम् ।
वणिग्व्यजिज्ञपत्प्रह्वः प्रतीहारेण सूचितः ॥ २ ॥
देवामवहुर्गतो मे दासो वसुधराभिधः ।
मयाद्य तस्य शिखरे कापि संपद्विलोकिता ॥ ३ ॥
मया सकौतुकं पृष्टः प्राह मद्यमदाकुलः ।
प्राप्तो मया नृपद्वारादनर्घ्यो रत्नकङ्कणः ॥ ४ ॥
रत्नत्रयवतस्तस्मादुपाधैको मणिर्मया ।
दत्तो रूपकलक्षेण वणिजा विजनस्थिते ॥ ५ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मयान्विष्टो वणिक्स्वयम् ।
हिरण्यगुप्तो धनवान्विपुलक्रयविक्रयः ॥ ६ ॥
वणिजा रत्नदत्तेन श्रुत्वेत्यावेदितं नृपः ।
तं विसृज्य प्रतीहारसंदिष्टावानिनाय तौ ॥ ७ ॥
ताभ्यां कङ्कणमासाद्य रत्नमुत्पाटितं च तौ ।
कृपया वत्सभूपेन मूर्खाविति न दण्डितौ ॥ ८ ॥
ततो नर्मसुहृत्प्राह हासशीलो वसन्तकः ।
अहो नु पुण्यहीनेन हारितोऽनेन कङ्कणः ॥ ९ ॥
दैवाद्वा कर्मयोगाद्वा लक्ष्मीः प्राप्तापि गोचरम् ।
प्रमादादल्पबुद्धीनां सहसैव विनश्यति ॥ १० ॥
वराको विप्रलब्धोऽत्र कटकेन सुदुर्गतः ।
स्मभवन्मन्दभाग्योऽसौ तत्रैव श्रूयतामिति ॥ ११ ॥
भारिकः शुभदत्ताख्यः पुरे पाटलिपुत्रके ।
काष्ठान्याहर्तुमगमद्वनं विपुलपादपम् ॥ १२ ॥

---

१. 'विपुले रत्नयुक्तेन कटकेन सुदुर्मते' ख.

दिव्यमाल्याम्बरधरं तत्र यक्षचतुष्टयम् ।
ददर्श विगतैस्तत्र प्राहुस्ते तमथादरात् ॥ १३ ॥
अरे चतुररूप त्वं मनुष्यः परिदृश्यसे ।
निर्जनेऽस्मिन्वने भद्र परिचर्यां कुरुष्व नः ।
(भोजनं तावदधुना देहि नानारसोचितम् ॥ १४ ॥
अमुष्माद्भद्रघटकाद्यदिष्टं तदवाप्यते ।
इति तद्वचसा तूर्णं घटकात्तत्प्रदर्शितात्) ॥ १५ ॥
यथोदितं समुद्धृत्य तेभ्यो भोगान्वरान्ददौ ।
तदाज्ञया स्वयं प्राप यथेच्छमशनं ततः ॥ १६ ॥
दिव्यं विलेपनं मालां शयनं च घटोद्धृतम् ।
तेभ्यो भुक्तोत्तरं दत्त्वा स परं विस्मयं ययौ ॥ १७ ॥
इत्थं तत्सेवया नित्यं कंचित्कालं निनाय सः ।
कालेन तुष्टास्ते यक्षास्तमेवास्मै ददुर्घटम् ॥ १८ ॥
नमोऽस्तु तस्य सेवायै सर्वसिद्धिसुवा यया ।
यक्षा अपि वशं यान्ति दुर्लक्षा विषमाशया ॥ १९ ॥
स भद्रघटमादाय भारिकः स्वगृहं ययौ ।
चिन्तामणिप्रभावस्तत्परामृद्धिमवाप्तवान् ॥ २० ॥
ततस्तदुद्धृतैर्भोगैः सुहृद्बन्धुजनैर्वृतः ।
महोत्सवं स विदधे सदा मधुमदाकुलः ॥ २१ ॥
विभूतिकारणं पृष्टः कौतुकात्स्वजनैरथ ।
दर्पाद्भद्रघटं स्कन्धे कृत्वा क्षीबो ननर्त सः ॥ २२ ॥
मददोषात्स्खलत्पातासौ सशब्दं वसुधातले ।
वल्गित्रिपतिते मत्ते ययौ शकलतां घटः ॥ २३ ॥
भग्ने मनोरथैः सार्धं घटे यक्षान्तिकं गते ।
सम्भवद्धघितः प्राप दशां स्वामेव भारिकः ॥ २४ ॥

---

१. 'ताभ्यां च प्राहुस्तमम्बरात्' ख. २. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

इत्येवं क्षीणभाग्यानामयोग्यानां प्रमादिनाम् ।
दृष्टनष्टा भवन्त्येव विद्युत्तुल्या विभूतयः ॥ २५ ॥
इति भद्रघटाख्यायिका ॥ १ ॥

इति वत्सेश्वरः श्रुत्वा सामात्यो दयितासखः ।
क्षणं स्मितसुधाधौतकपोलफलकोऽभवत् ॥ २६ ॥
ततो मध्यं समारूढे व्योम्नः कमलिनीप्रिये ।
वत्सराजो नृपशतैः सहोत्थाय सभातलात् ॥ २७ ॥
स्नात्वार्चयित्वा श्रीकण्ठं भुक्त्वान्तःपुरमभ्यगात् ।
नरवाहनदत्तोऽपि निशि शय्यागृहं ययौ ॥ २८ ॥
वयस्यैः सहितस्तत्र नर्मकेलिकथान्तरे ।
बहिः स्मितानां शुश्राव गीतं हरिणचक्षुषाम् ॥ २९ ॥
वाराङ्गनानां गीतेन संजातपुलकं ततः ।
मरुभूतिं समालोक्य हसन्प्राह तपन्तकः ॥ ३० ॥
देव वेश्याङ्गनागीतध्वनिना पश्य ते सुहृत् ।
आकृष्यमाणहृदयः कुरङ्ग इव लक्ष्यते ॥ ३१ ॥
श्रुत्वेति तद्वचः प्राह मरुभूतिः स्मितानन: ।
मृषा तपन्तकेनोक्तं जानेऽहं वैशिकीं स्थितिम् ॥ ३२ ॥
क्रूराणां क्षणरक्तानामवसाने तमःस्पृशाम् ।
संध्यानामिव वेश्यानां गुणिसङ्गकथैव का ॥ ३३ ॥
चपलाः क्षिप्ररुचयस्तूर्णं स्रस्तपयोधराः ।
निरम्बरदशा यान्ति पर्यन्ते वारयोषितः ॥ ३४ ॥
दर्शनेष्वेव सुखदा वेश्या वेशोज्ज्वलश्रियः ।
भोगवैरस्यकारिण्यः काठिन्यकटुकास्ततः[1] ।
श्रूयतां गणिकावृत्तं विचित्रं कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥
नगरे चित्रकूटाख्ये रत्नधर्माभवद्वणिक् ।
श्रीमानीशानधर्माख्यस्तस्याभूत्तनयः प्रियः ॥ ३६ ॥

1. 'कुटिला' ख.

कलाकलापकुशलो विद्यासु च कृतश्रमः ।
पित्रा महाधनेनासौ श्रीरक्षार्थं समर्पितः ॥ ३७ ॥
कुट्टिन्यै यमजिह्वायै वेश्यावञ्चनशिक्षणे ।
पुत्रप्रीत्या ददौ तस्यै शिक्षामूल्यं वणिग्वरः ॥ ३८ ॥
अशिक्षितेऽस्मिन्द्विगुणं ग्रहीष्यामीति संविदा ।
शिष्यतां प्रतिपन्नं तं सा गृहीत्वा वणिक्सुतम् ॥ ३९ ॥
संवत्सरेण विदधे वेश्यावञ्चनकोविदम् ।
ततः कदाचित्स युवा विसृष्टो द्रविणार्जने ॥ ४० ॥
पित्रा जलनिधेस्तीरे स्थितं हेमपुरं ययौ ।
पञ्चकोटीः समादाय रूप्याणां सचिवैर्वृतः ॥ ४१ ॥
प्रविश्य तत्पुरं प्राप देवायतनमुत्तमम् ।
ददर्श तत्र नृत्यन्तीं हरिणायतलोचनाम् ॥ ४२ ॥
तरुणीं सुन्दरीं नाम गणिकां रतिजीविनीम् ।
प्रदाय सुहृदा तस्यै ताम्बूलं मन्मथाकुलः ॥ ४३ ॥
धन्याहमिति वादिन्या गृहं तस्या विवेश सः ।
महार्हभूषणे तत्र कर्पूरागुरुधूपिते ॥ ४४ ॥
पुष्पोपहाररुचिरे वस्त्रपट्टवितानके ।
शय्यागृहे हिमस्वच्छन्यस्तचीनोत्तरच्छदे ॥ ४५ ॥
उपविष्टः समायातां लतां वाताकुलामि([1]व ।
सोऽपश्यत्सुन्दरीं छद्मामप्राम्यहितमण्डनाम् ॥ ४६ ॥
तस्यां समुपविष्टायां प्रवृत्ते पानकोत्सवे ) ।
यथेष्टवादो मित्राणां निर्मर्यादमवर्तत ॥ ४७ ॥
ततो मकरदंष्ट्राख्या सुन्दर्या जननी शनैः ।
स्वयं गृहीतताम्बूला हर्षपूर्णा समाययौ ॥ ४८ ॥
संशुष्कविकटाकारां जरतीपूतनामिव ।
रक्तक्षयकरीं चौरां पिशाचीमिव पञ्चकाम् ॥ ४९ ॥

---

१. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

प्रणनाम वणिक्पुत्रस्तां वलीनालिताङ्गिकाम् ।
कामिसर्वस्वसंहारसंख्यारेखाङ्कितामिव ॥ ५० ॥
तस्य त्यागप्रधानैः सा विपुलैर्गुणसंस्तवैः ।
जग्राह हृदयं तूर्णं सुहृदां च यथोचितैः ॥ ५१ ॥
ततो नीते विजनतां तस्मिन्क्रीडनमण्डपे ।
स लीलारसिको भेजे सुन्दर्याः सुरतोत्सवम् ॥ ५२ ॥
वैदग्ध्यमौग्ध्यसंदिग्धै रसारम्भैश्च विभ्रमैः ।
सद्भावभावितैर्भावैः स विवेश तदाशयम् ॥ ५३ ॥
ततः प्रभाते सानन्दौ गाढालिङ्गननिःसहौ ।
चक्रतुस्तौ समुत्थाय शृङ्गारोचितमाह्निकम् ॥ ५४ ॥
इत्थं प्रतिदिनं श्रीमान्स तयाराधितः शनैः ।
हेमरत्नाम्बराश्वादि तस्यै कोटिसमं ददौ ॥ ५५ ॥
स किंचिच्छेषसर्वस्वः कालेन सुहृदो गिरा ।
पित्रा लेखेन चाज्ञप्तो द्वीपं गन्तुं समुद्ययौ ॥ ५६ ॥
ततः कृतकबाष्पाम्बुप्लावितोचकुचस्थली ।
आश्लिष्यानेन मूढेन सव्यथेन मुहुर्मुहुः ॥ ५७ ॥
पाणिपङ्कजविन्यस्तकपोलकलिताकृतिः ।
आश्वासमाना बहुशो मात्राकृतकसंचयैः ॥ ५८ ॥
सा प्रस्थितं तमवदच्छेपार्थहरणोद्यता ।
त्वां विना नैव जीवामीत्युक्त्वा भृङ्गुम्फिताधरा ॥ ५९ ॥
आकृष्टः प्रेमपाशेन तया मौल्या पितुश्च सः ।
दोलाविलोलहृदयः प्रतस्थे भृशदुःखितः ॥ ६० ॥
ततः प्रविदधे कूपे कुट्टिनी रज्जुजालकम् ।
विसृज्य गूढं पुरुषान्सुतां तत्रैव चाक्षिपत् ॥ ६१ ॥
हा हा त्वद्विरहायासनिःसहा सहसात्यजत् ।
कूपे क्षिप्ता च सुन्दर्या चुक्रोशेत्यथ कुट्टिनी ॥ ६२ ॥

श्रुत्वा प्रतिनिवृत्तस्तां सुहृद्भिस्तूर्णमुद्धृताम् ।
कण्ठे गृहीत्वा सोत्कण्ठं स रुरोद वणिक्सुतः ॥ ६३ ॥
ततस्तत्रैव तां कान्तां सेवमानः कृशोदरीम् ।
अनल्पेनैव कालेन निःशेषविभवोऽभवत् ॥ ६४ ॥
चिरात्प्रतिगृहं प्रायात्स्वबाहुस्वस्तिकांशुकः ।
कृशो विच्छायवदनस्तदाहृतोऽतिलज्जितः ॥ ६५ ॥
ततस्तज्जनकः कोपाद्यमजिह्वामुपेत्य ताम् ।
उवाच वत मत्पुत्रस्त्वयासौ शिक्षितः कलाः ॥ ६६ ॥
वञ्चितः काञ्चनपुरे कुट्टिन्या प्रीतमायया ।
विनष्टाः पञ्च कोट्यो मे शिक्षामूल्यं प्रयच्छ मे ॥ ६७ ॥
इति श्रुत्वा वणिग्वाक्यं पृष्ट्वा वृत्तं च तत्सुतम् ।
यमजिह्वावदत्पुत्र पुनर्गच्छ धनाप्तये ॥ ६८ ॥
एको जालमयोगोऽस्ति सत्यं मोहात्स विस्मृतः ।
तत्प्रत्यर्थं गृहाणेदमित्युक्त्वास्मै ददौ कपिम् ॥ ६९ ॥
अनेन तद्द्विगुणं तया भक्षितमाप्स्यसि ।
धनमस्य प्रभावश्च प्रत्यक्षं परिदृश्यताम् ॥ ७० ॥
इत्युक्त्वा रूप्यकशतं मर्कटायैव सा ददौ ।
निर्गीर्य स ततः प्रादाद्यावद्यो यः समीहते ॥ ७१ ॥
आलं नाम तमादाय मर्कटं प्रत्ययाद्वणिक् ।
बहुलद्रविणापूर्णः पुनर्हेमपुरं ययौ ॥ ७२ ॥
आसाद्य सुन्दरीं तत्र रागिणीं धनगौरवात् ।
पुनर्मद्दोत्सवं चक्रे तद्गृहे रतिलालसः ॥ ७३ ॥
निर्गीर्णरूपकं तस्यै तं मर्कटमदर्शयत् ।
उद्गीर्य वक्त्रादसकृत्प्रददौ रूपकानि यः ॥ ७४ ॥
दृष्ट्वा तं सहिता मात्रा सुन्दरी समचिन्तयत् ।
अहो निधानरूपोऽयं चिन्तामणिनिभः कपिः ।

वहूपायैरसपूर्णैः किं धनैः क्लेशचिन्तितैः ॥ ७५ ॥
इति संचिन्त्य सा मात्रा शनैः प्रियमयाचत ।
मर्कटं तं च न ददौ निजोत्सङ्गगतं वणिक् ॥ ७६ ॥
प्रीत्या विपुलनिर्बन्धात्सुन्दर्या प्रार्थितश्चिरम् ।
ददौ कोटिशतेनास्यै रूपकष्ठीविनं कपिम् ॥ ७७ ॥
तत्सर्वस्वं समादाय क्रयविक्रयसंचितम् ।
वणिङ्निजपुरं प्रायात्ततो वैश्रवणोपमः ॥ ७८ ॥
अथाज्ञया पितुः श्रीमान्परिणीय कुलोचितम् ।
कैलां गुणवतीं नाम विललास कलानिधिः ॥ ७९ ॥
कुट्टिन्या याच्यमानोऽपि स चिरात्क्षीणरूपकः ।
मर्कटो न ददौ किंचिदस्थितं दीयते कुतः ॥ ८० ॥
स सान्त्वितोऽपि बहुशः कशाभिश्चाहतो मुहुः ।
महाधनव्ययरुषा ताडितश्च महाश्मना ॥ ८१ ॥
निर्जीवितः कृतस्ताभ्यामालो मर्कटपोतकः ।
इत्यालजालैर्गणिका वञ्च्यन्ते वञ्चयन्ति च ॥ ८२ ॥
इति राजसुतः श्रुत्वा कथितं मरुभूतिना ।
बभूव गणिकासङ्गसंकल्पशिथिलादरः ॥ ८३ ॥

इत्यालजालाख्यायिका ॥ २ ॥

अत्रैव गोमुखः प्राह प्रस्तावसदृशीं कथाम् ।
राजा विक्रमसिंहाख्यः प्रतिष्ठानपुरेऽभवत् ॥ ८४ ॥
बभूव शशिलेखाख्या प्रिया तस्य सुलोचना ।
अनन्तगुणनामा च सचिवो धीमतां वरः ॥ ८५ ॥
स कदाचिन्महीपालो बलिभिः पञ्चभिर्नृपैः ।
निरुद्धनगरो मानी स्वयं युद्धाय निर्ययौ ॥ ८६ ॥
स तैः समरभङ्गार्चैर्विजितो युधि शत्रुभिः ।
सहानन्तगुणेनैव छन्नो देशान्तरं ययौ ॥ ८७ ॥

---

१. 'कन्या गुणश्रियं ना' ख.

आसाद्य सुन्दरीं चैव रागिणीं घनगौरवात्।
शनैरुज्जयिनीं प्राप्य गणिकाया निवेशनम्।
रम्यं कुमुदिकाख्यायाः सोऽविशन्मन्त्रिणा सह॥ ८८॥
तं राजलक्षणोपेतं सिंहस्कन्धं महाभुजम्।
सिषेवे सा महीपालं प्रेमबन्धैः सविभ्रमैः॥ ८९॥
स राजा द्रविणं तस्या गृहादादाय भूरिदः।
याचकेभ्यो ददौ नित्यं निजवद्विपुलाशयः॥ ९०॥
अत्यन्तरागिणीं मत्वा नृपतिस्तां सविस्मयः।
मन्त्रिणं प्राह पश्येमां मदेकशरणामिति॥ ९१॥
([१]अमात्यः प्राह मा राजन्वेश्यासु प्रत्ययं कृथाः।
द्रव्यसंविभागमप्येता नैव कुर्वन्त्यकारणम्॥ ९२॥
इति[२]) श्रुत्वा नृपश्चक्रे परीक्षायै मृगीदृशः।
मिथ्यैवातुरमात्मानं कृतकल्पक्तजीवितम्॥ ९३॥
सोऽथ कूटमृतस्तेन मन्त्रिणा कृतसंविदा।
नीतः श्मशानं हा राजन्निति तारप्रलापिना॥ ९४॥
ततः सा गणिका दुःखात्कल्पिते प्रवरेऽनले।
कण्ठे गृहीत्वा तं कान्तं त्यक्तुमात्मानमुद्ययौ॥ ९५॥
यत्नोत्थितो नरपतिः संजातप्रमदाकुलः।
तां गाढरागिणीं ज्ञात्वा तं निनिन्द च मन्त्रिणम्॥ ९६॥
संजाताधिकविश्रम्भं सेवमानं धरास्वनी।
कान्ता क्ष्मापालतिलकं बभाषे मन्त्रिपुंगवः॥ ९७॥
([१]दैवानुमरणात्तस्यास्त्वदेकशरणा मतिः।
तथापि देव जानेऽहं कूटमेतद्विचेष्टितम्॥ ९८॥
इति मन्त्रिवरो राजा श्रद्दधे नैव सस्मितः[२])।
संजातप्रत्ययो रागः कस्य वाचा निवर्तते॥ ९९॥
पश्चान्तरे स भूपालः शुश्राव महिषीं निजाम्।

१-२. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

तस्मिन्रणे मानभङ्गशोकात्संत्यक्तजीविताम् ॥ १०० ॥
ततो दुःखाकुलं दृष्ट्वा क्षिप्रं श्रुत्वा च तत्कथाम् ।
प्रगल्भललना स्वैरं नृपं कुमुदिकावदत् ॥ १०१ ॥
राज्ञो न शोभते शोकस्तव [1]दोर्दर्पशालिनः ।
पराक्रमो हि वीराणां मानभङ्गे प्रतिक्रिया ॥ १०२ ॥
सन्त्येव मे सहस्राणि मत्तवारणवाजिनाम् ।
हेमार्थैतैः कृतोद्योगो जहि शत्रून्धनुर्धर ॥ १०३ ॥
इति तद्वचसा राजा हविषेव हुताशनः ।
स्फूर्जत्प्रतापः प्रययौ परांस्तु तुरगद्विपैः ॥ १०४ ॥
वलिना सुहृदा सार्धं राज्ञा धवलकीर्तिना ।
गत्वा जघान ताञ्शत्रून्सानुगाननुप्रविक्रमः ॥ १०५ ॥
श्रीमान्विक्रमसेनोऽथ राज्यं प्राप्य निजं पुनः ।
वराङ्गनानां विदधे प्रधानान्तःपुरे स्त्रियम् ॥ १०६ ॥
ततः सा प्राह भूपालं कृतज्ञ शृणु देव मे ।
संकल्पकल्पविटपी सर्वदैव प्रवर्तसे ॥ १०७ ॥
शत्रवो विजिताः सर्वे प्राप्ता श्रीर्यशसा सह ।
त्वया धैर्यसहायेन प्रणयिप्रियकारिणा ॥ १०८ ॥
अद्य चेत्करुणा चित्ते तवास्तिन्प्रेमलेशके ।
तन्मे वितर भूपाल सततामीप्सितं वरम् ॥ १०९ ॥
उज्जयिन्यां नरेन्द्रेण बद्धो मे हृदयप्रियः ।
द्विजन्मा श्रीधरो नाम स बलान्मुच्यतां त्वया ॥ ११० ॥
तदर्थमेव राजेन्द्र सेवितोऽसि मया चिरम् ।
इति श्रुत्वा महीपालस्तथेत्याह सविस्मयः ॥ १११ ॥
ततः स विपुलानीको विजित्योज्जयिनीपतिम् ।
मोक्षयित्वा द्विजसुतं पुनः स्वपुरमाययौ ॥ ११२ ॥
प्रहृष्टां संगतां तेन चिरायूना द्विजन्मना ।

1. 'दंण्ड' प.

दत्त्वा बहुगुणं हेम क्ष्मापतिर्विससर्ज ताम् ॥ ११३ ॥
अथानन्तगुणो मन्त्री विहस्य नृपमब्रवीत् ।
एतदर्थं पुरा देव सा भवन्तमसेवयत् ॥ ११४ ॥
दृशान्यत्र गिरान्यत्र चेतसान्यत्र कृत्रिमम् ।
प्रेम संदर्शयन्त्येव कुशला वेशयोषितः ॥ ११५ ॥
इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा भूपालो विस्मयाकुलः ।
एवमेतदिति प्राह तन्मतिं प्रशशंस च ॥ ११६ ॥
गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
कुटिलं गणयामास गणिकावृत्तमद्भुतम् ॥ ११७ ॥

इति वेश्याख्यायिका ॥ ३ ॥

तपन्तकस्ततः प्राह विचित्रं स्त्रीविचेष्टितम् ।
सोऽपि सर्वगतो धाता न परिच्छेत्तुमीश्वरः ॥ ११८ ॥
अद्यापि नैव विज्ञाताः कैश्चित्तत्त्वेन योषितः ।
आसेव्यमानाः सततं संसारगतयो यथा ॥ ११९ ॥
कौशाम्ब्यां बलवर्माख्यो वणिगासीन्महाधनः ।
चन्द्रश्रीर्नाम तस्याभूद्भार्या हरिणलोचना ॥ १२० ॥
कदाचिद्यौवनोन्मत्ता सा हर्म्यशिखरस्थिता ।
नरं शीलवरं नाम ददर्श रुचिरं तदा ॥ १२१ ॥
सखसख्या तं समानाय्य दूत्या प्रच्छन्नकामिनी ।
सिषेवे चौर्यसुरतं प्रत्यहं सा सुमध्यमा ॥ १२२ ॥
सततं रममाणायाः स्वैरं तेन विलासिना ।
एका निशेव सहसा तस्या मासत्रयी ययौ ॥ १२३ ॥
अत्रान्तरे जगामाशु कौमारथ पतिर्ज्वरात् ।
पद्यतां बान्धववधूकृतकोलाहले गृहे ॥ १२४ ॥
तत्क्षणं सा रतिसुखं शुचत्वोपपतिना सह ।
समेत्य भर्तुर्जग्राह मृतस्य चरणं शुचा ॥ १२५ ॥

१. 'दर्शं यदि' ख. २. 'ऽर्थोद्वहे समानाय्य दूत्या' ख.

स्वजनैर्वार्यमाणापि तेनैव सहसा चिताम् ।
आरुह्य तूर्णं तत्याज प्रियान्प्राणानकम्पिता ॥ १२६ ॥
इत्येवं गहनं स्त्रीणां ज्ञायते केन चेष्टितम् ।
गण्यते केन सर्पाणां करेण रदनावली ॥ १२७ ॥

इति स्त्रीवृत्ताख्यायिका ॥ ४ ॥

उक्ते तपन्तकेनेति ततो हरिशिखोऽब्रवीत् ।
एवमेव स्त्रियः क्रूरास्तुपकेशविषैरिव ॥ १२८ ॥
देवदासाभिधानस्य वाराणस्यां कुटुम्बिनः ।
बभूव तरुणी भार्या दुःशीला नाम रूपिणी ॥ १२९ ॥
कदाचित्करदानाय पत्यौ रुद्धे नृपालये ।
सा गूढकामिना भेजे निःशङ्कं सुरतं निशि ॥ १३० ॥
प्रत्यहं तोषयन्ती तं नानाभोजनपानकैः ।
मा भूयाद्बन्धमोक्षो मे भर्तुरित्याशशंस सा ॥ १३१ ॥
ततः कालेन मुक्तोऽसौ राजा स्वगृहमागतः ।
हृष्टो दुःखितया सद्यः कृतकानन्दया तया ॥ १३२ ॥
गृहीत्वाशु तमुत्सङ्गे सा प्रणम्याब्रवीत्पतिम् ।
नाथ स्वप्ने मयाद्यैव सा प्रणम्याब्रवीत्पतिम् ॥ १३३ ॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै भोजनं बहुलासवम् ।
सोऽपि भुक्त्वा बहुक्षीबो निद्रां भेजे रतिश्रमात् ॥ १३४ ॥
ऊर्ध्ववेश्मस्थितं सान्यं संज्ञयाहूय वल्लभम् ।
भर्तारं घातयामास दारकस्यैव पश्यतः ॥ १३५ ॥
तस्मिन्प्रयाते चुक्रोश चौरैरभिहतो ह्यसौ ।
ततः ससम्भ्रमाः सर्वे बान्धवास्तूर्णमाययुः ॥ १३६ ॥
देवदासं हतं दृष्ट्वा तद्भ्राता शोकविह्वलः ।
विललापाश्रुलुलितं चेष्टमानो महीतले ॥ १३७ ॥
स्वभार्यया हतं ज्ञात्वा बालकस्य गिरा ततः ।
तां च तत्कामुकं च द्राग्जघ्नुरन्विष्य बान्धवाः ॥ १३८ ॥

इत्येवं पापशीलानां स्त्रीणां कैशोयते गतिः ।
उक्ते हरिशिखेनेति गोमुखस्तमभाषत ॥ १३९ ॥

इति देवदासाख्यायिका ॥ ५ ॥

अस्यामेवाभवत्पुर्यां वत्सराजस्य सेवकः ।
विक्रान्तो वज्रसाराख्यस्तेजस्वी सुन्दराकृतिः ॥ १४० ॥
प्रिया नामाभवत्तस्य भार्या हरिणलोचना ।
तया सह निनायासौ कालं संभोगलालसः ॥ १४१ ॥
मगधावासिना पित्रा सा कदाचिन्निमन्त्रिता ।
तद्गृहे सुचिरं तस्थौ स्वैरिणी चपलाशया ॥ १४२ ॥
वज्रसारोऽथ कालेन शुश्राव सुचिराद्रहः ।
त्वद्भार्या संगतान्येन पुरुषेणेति दुःखितः ॥ १४३ ॥
स गत्वा श्वशुरावासं तामाहूय स्ववल्लभाम् ।
आगच्छन्स्वगृहं प्राप काननं पथि निर्जनम् ॥ १४४ ॥
तत्र तामीर्ष्ययाक्रान्तः पप्रच्छाकोपकम्पितः ।
अनार्ये किं त्वया पापं कृतं जनकसद्मनि ॥ १४५ ॥
श्रुता मयान्यसक्ता त्वमित्याकर्ण्य चकार सा ।
मौनेनैवाभ्युपगमं स्तोकानतविलोचना ॥ १४६ ॥
वज्रसारस्ततः क्रुद्धस्तां खड्गेन समुद्यतः ।
हन्तुं तत्कालसंरम्भवेगाकृष्टतदंशुकः ॥ १४७ ॥
स्वर्णाब्जकलिकागौरं गात्रं तस्या निरम्बरम् ।
विलोक्य विपुलश्रोण्याः साभिलाषो बभूव सः ॥ १४८ ॥
विनयव्रतशीलासु पुंसां साध्वीषु नो तथा ।
यथा निःसत्त्वमनसां दुःशीलास्वधिका रतिः ॥ १४९ ॥
स रन्तुमुद्यतो यावत्तावत्सा तमभाषत ।
न हि स्पृशामि ते गात्रं मिथ्यैव कोपशालिनः ॥ १५० ॥
किं त्वयाहं समाकृष्टा कृता कोपान्निरम्बरा ।

अयं मे व्यथते बाहुस्त्वदाकृष्टः करोमि किम् ॥ १५१ ॥
इति तद्वचसा क्षिप्रं स ययौ भृशमार्द्रताम् ।
लभ्यन्ते स्त्रीपिशाचीभिरुच्छिष्टा इव रागिणः ॥ १५२ ॥
(सोऽवदद्दयिते पापं तव मिथ्यापकारिणम्) ।
त्वं ताडय (लताभिर्मा तेन कोपः प्रयातु ते ॥ १५३ ॥
इति सा तद्वचः श्रुत्वा क्षिप्रमेव तदाहृतैः) ।
तं बबन्ध लतापाशैः सान्तर्हासं चलाम्बरा ॥ १५४ ॥
गाढबद्धस्य तत्राशु छित्त्वा सा कर्णनासिकम् ।
तच्छस्त्रेणैव सहसा प्रययौ तस्य मानिनः ॥ १५५ ॥
यदृच्छयागतैः सोऽथ विमुक्तः काष्ठभारिकैः ।
लज्जितः स्वगृहं यातो जीवत्यद्यापि दुर्भगः ॥ १५६ ॥

इति वज्रसारकथा ॥ ६ ॥

इत्येवं योषितां देव ज्ञायते केन चेष्टितम् ।
गोमुखेनेति कथिते मरुभूतिरभाषत ॥ १५७ ॥
राजा सिंहबलाभिख्यो वीरोऽभूद्दक्षिणापथे ।
भार्या कल्याणवत्याख्या तस्य प्रियतमाभवत् ॥ १५८ ॥
स कदाचिज्जितो भूपैः समरे संप्रहारिभिः ।
गूढं सभार्यः प्रययौ श्वशुरावसथोन्मुखः ॥ १५९ ॥
स व्रजन्मालवपुरं वने त्रस्तां निजप्रियाम् ।
दृष्ट्वा जघान खड्गेन दस्युशार्दूलकुञ्जरान् ॥ १६० ॥
श्वशुरस्य गृहे प्राप्य तत्र विन्यस्य तां प्रियाम् ।
गजानीकाभिधानस्य सुहृदः प्रययौ गृहान् ॥ १६१ ॥
तेन संपूजितो राजा जेतुं सिंहबलो रिपून् ।
जगामादाय तद्दत्तां गजवाजिवरूथिनीम् ॥ १६२ ॥
पितुर्गृहेऽपि तद्भार्या दृष्ट्वा वातायनान्तरम् ।
आनिनाय रहो दूत्या मन्मथेनाकुलीकृता ॥ १६३ ॥

१.-२. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटित.

तमागतं निष्प्रतिभं भीमं नीचं निराश्रयम् ।
निरुत्तरं विलोक्यैव लज्जिता शुचमाययौ ॥ १६४ ॥
अहो नु योषितः पापा यदयं तादृशं पतिम् ।
धीरं विस्मृत्य नीचेऽस्मिन्नभिलापमुपागता ॥ १६५ ॥
इति संचिन्त्य सा युक्त्या तं निरस्य नराधमम् ।
निनिन्द मुहुरात्मानं जहास नरकातरम् ॥ १६६ ॥
अत्रान्तरे पराञ्जित्वा राजा सिंहबलो युधि ।
राज्यमासाद्य दयितां निनाय स निजां पुरीम् ॥ १६७ ॥
इत्येवमाशयः स्त्रीणां दुर्विज्ञेयः सुरैरपि ।
इति श्रुत्वा शनैर्निद्रामवाप नरवाहनः ॥ १६८ ॥
इति सिंहबलाख्यायिका ॥ ७ ॥

ततः प्रातः समुत्थाय राजपुत्रः सुहृद्वृतः ।
कृताह्निको वरोद्यानं प्रययौ फुल्लपादपम् ॥ १६९ ॥
तत्र मत्तालिमालाङ्ककुमुदस्मेरविभ्रमे ।
अवतीर्णां दिवः कान्तां ददर्श वरकन्यकाम् ॥ १७० ॥
कन्याशतैरनुगतां सतारामिव रोहिणीम् ।
नवलावण्यपीयूषप्लाविताखिलदिङ्मुखाम् ।
मुग्धाश्चकोरवनिता यत्कान्तिनिवहं ययुः ॥ १७१ ॥
तां वीक्ष्य कार्तिकीचन्द्रवदनां मदनावनिम् ।
विलितो राजतनयो हर्षोत्कर्षोक्तमप्यभूत् ॥ १७२ ॥
नेत्रपेयं वपुस्तस्याः पश्यन्ननिमिषेक्षणः ।
पप्रच्छ मन्मथाक्रान्तस्तां नामाभिजनश्रियम् ॥ १७३ ॥
तेन कामाभिरामेण रामा हृदयहारिणा[2] ।
सा पृष्टा प्राह सोत्कम्पकुचविन्यस्तलोचना ॥ ॥ १७४ ॥
शिखरे काञ्चनाशैले तुषारधरणीभृतः ।

---

१. 'तिष्ठः प्रियम्भू' ग. २. 'णा' ख.

स्फटिकाह्वयशाः श्रीमानस्ति विद्याधरेश्वरः ॥ १७५ ॥
(तस्य शक्तियशा नाम सुताहं पार्वतीवरात् ।
जाता हेमप्रभाख्यायां देव्यां देवाधिपप्रिया ॥ १७६ ॥
कालेन मम शर्वाण्या सदाराधनतुष्टया ।
यौवनश्रियमालोक्य वितीर्णः प्रवरो वरः ॥ १७७ ॥
वत्सभूपालतनयो भाविविद्याधरेश्वरः) ।
नरवाहनदत्तस्ते भविष्यत्यचिरात्पतिः ॥ १७८ ॥
इति देव्या समादिष्टा प्रहृष्टा पितुराज्ञया ।
विद्याभिस्त्वद्वराशाभिस्त्वामहं द्रष्टुमागता ॥ १७९ ॥
व्रजामि तावदचिरात्संगमो नौ भविष्यति ।
इत्युक्त्वा सानुगा व्योम्ना प्रययौ मञ्जुभाषिणी ॥ १८० ॥
स्वप्नदृष्टमिवाशेषं मन्यमानस्तदद्भुतम् ।
नरवाहनदत्तोऽभूचिन्तालोचननिश्चलः ॥ १८१ ॥
स शनैर्विरहाक्रान्तः स्मरसंतापनिःसहः ।
विनोदिनीं कथां कांचित्कथयेत्याह गोमुखम् ॥ १८२ ॥
स प्राह काञ्चनपुरीपतिरासीत्सुमानसः ।
राजा विराजमानानां श्रेयसां यशसां निधिः ॥ १८३ ॥
([1]तं कदाचित्समास्थानस्थितं शबरकन्यका ।
कान्ता मुक्तालता नाम प्रतीहारेण सूचिता ॥ १८४ ॥
पञ्जरस्थं समादाय शुकं मरकतच्छविम् ।
अन्तः प्रविष्टा प्रोवाच प्रणम्य जगतीपतिम् ॥ १८५ ॥
शुकोऽयं देव योग्यो मे विज्ञानमधुरध्वनिः[2]) ।
इत्युक्त्वा भूमिपालस्य पञ्जरं निदधे पुरः ॥ १८६ ॥
ततः कृताह्निको राजा शुकमाहूय तं रहः ।
पप्रच्छ सर्वशास्त्रज्ञं विज्ञानावाप्तिकारणम् ॥ १८७ ॥
राज्ञा स पृष्टः प्रोवाच श्रूयतामद्भुतं विभो ।

---

१.–२. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

(अस्ति हैमवती नाम संसारविपुलाटवी ॥ १८८ ॥
तत्र रोहीतकतरौ शुक्लक्षसमाश्रये)।
जनितोऽहं प्रवयसा शुकेनात्यन्तपेशलः ॥ १८९ ॥
दैवान्मां जननीहीनमवर्धयत वत्सलः।
मपिता बन्धुहीनेषु याति स्नेहो ह्यनल्पताम् ॥ १९० ॥
कदाचिन्मृगयासक्तैर्वने तस्मिन्विलोडिते।
हृतेभक्रोडहरिणैः पुलिन्दैः पिशिताशिभिः ॥ १९१ ॥
जरत्प्रियादेनैकेन तमारुह्य महीरुहम्।
ग्रीवामोटननिर्जीवा नीतास्तेनाखिलाः शुकाः ॥ १९२ ॥
ततः स्वकर्मणः शेषात्पतितः पर्णसंचये।
स्नातुं प्राप्तेन नीतोऽहं मुनिना करुणाब्धिना ॥ १९३ ॥
मारीचनाम्ना तेनाहं स्थापितः कृपयाश्रमे।
दृष्टः पुलस्त्यमुनिना सहासं दिव्यचक्षुषा ॥ १९४ ॥
आत्मनो दुर्नयस्येदं भुङ्क्ते फलमयं शुकः।
इति ब्रुवाणं पप्रच्छुः पुलस्त्यं मत्कथां द्विजाः ॥ १९५ ॥
सोऽभ्यधादभवच्छ्रीमाद्रत्नाकरपुरे नृपः।
ज्योतिःप्रभाख्यो भूपालमौलिलालितशासनः ॥ १९६ ॥
सोमप्रभोऽभवत्तस्य चन्द्रांशः स्वप्नसूचितः।
पुत्रः कान्तिनिधिर्लोकलोचनानन्दनिर्झरः ॥ १९७ ॥
यौवराज्ये धृतः पित्रा सोऽथ दिग्विजयोद्यतः।
निर्ययौ विपुलानीकैररातिविभवाशनिः ॥ १९८ ॥
सह प्रियकराख्येन मन्त्रिपुत्रेण धीमता।
विजित्य पृथिवीं सर्वां विपुलं प्राप काननम् ॥ १९९ ॥
कान्तां वनश्रियं तत्र लीलयैव विलोकयन्।
ददर्श किंनरं दिव्यरत्नाम्बरविभूषितम् ॥ २०० ॥
तं कौतुकादनुसरन्स्फटिकस्वच्छविग्रहम्।

---

1. एतच्चापान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

ततः पवनवेगेन तुरगेण धुतांशुकः ॥ २०१ ॥
अमानुषीं भुवं प्राप्य विश्रम्य सरसि क्षणात् ।
कैलासशिखराकारमपश्यन्नयम्बकालयम् ॥ २०२ ॥
तत्रोपवीणयन्तीं च दिव्यकन्यां विलोक्य सः ।
पप्रच्छाकालतपसः कारणं यौवनावनीम् ॥ २०३ ॥
सा प्राह हिमशैलेन्द्रशिखरे काञ्चनाह्वये ।
पद्मकूटाभिधानोऽस्ति श्रीमान्विद्याधराधिपः ॥ २०४ ॥
मनोरथप्रभा नाम सुताहं स्नेहशालिनः ।
तस्य रत्नप्रभाख्यायां पत्न्यां जाता यशस्विनः ॥ २०५ ॥
कालेन यौवनवती कदाचित्स्नातुमागता ।
सरस्तत्र स्मराकारमपश्यं मुनिपुत्रकम् ॥ २०६ ॥
ततोऽहं तं विलोक्यैव पुष्पायुधवशीकृता ।
अभवं कम्पकलिकालतेव पवनाकुला ॥ २०७ ॥
अथ तत्सचिवः पृष्टो मत्सख्या पद्मलेखया ।
उवाच वुधदत्ताख्यस्तज्जन्मकर्मशः कथाम् ॥ २०८ ॥
अस्ति दीधितिमान्नाम मुनीन्द्रो विजितेन्द्रियः ।
तं सरः स्नातुमायान्तं सरोलक्ष्मीर्व्यलोकयत् ॥ २०९ ॥
तं दृष्ट्वैव सकामायां मानसस्तनयः क्षणात् ।
जातोऽयं रश्मिमान्नाम तस्यां साक्षादिव स्मरः ॥ २१० ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सखी नाम कुलं च मे ।
तस्मै न्यवेदयज्ज्ञात्वा स्मरसंयोगमावयोः ॥ २११ ॥
ततोऽहं पितुरादेशादाहूता शशिलेखया ।
मुषितेवायतध्याना सशल्येवाहितव्यथा ।
भूतग्रस्तेव सोन्मादा ततोऽहमभवं क्षणात् ॥ २१२ ॥
मां विना मुनिपुत्रोऽपि स मनोभवतापितः ।
बभूव चाब्जनलिनीवलयालंकृतस्थितिः ॥ २१३ ॥

१. 'बुधदत्त' ख.

(ततः सखीं विसृज्यासौ ताम्यन्मानसमायया।
आनीतो निजमुद्यानं निशीथे संगमाशया ॥ २१४ ॥
तत्र फुल्लल्लताजालगुञ्जन्मधुकराकुले।
प्रौढचन्द्रकरस्मेरः स्मृत्वा मां जीवितं जहौ ॥ २१५ ॥
ततोऽहं तूर्णमायाता तमपश्यं तथागतम्।
रूपद्वेषादिवाभ्येत्य हृतं मकरकेतुना ॥ २१६ ॥
हा प्रियेति विलप्याहं यावद्य पतिता भुवि।
अवतीर्य दिवस्तावदनैषीत्कोऽपि तत्तनुः ॥ २१७ ॥
ततः प्रवेष्टुकामां मामनले शोकसंस्थिताम्।
प्राप्स्यसीमं पुनरपि प्राह मां कोऽपि खेचरः ॥ २१८ ॥
तदाशालम्बनधृतिस्ततः शीतांशुशेखरम्।
इति स्थिताहं वरदं ध्यायन्ती पार्वतीपतिम् ॥ २१९ ॥
इति सोमप्रभः श्रुत्वा तत्र विद्याधरीवचः।
तां प्राह विस्मितः कासौ पद्मलेखा सखी तव ॥ २२० ॥
इति सा राजपुत्रेण पृष्टा प्रोवाच सुन्दरी।
सिंहविक्रमनामास्ति श्रीमान्विद्याधराधिपः ॥ २२१ ॥
अस्ति तस्येन्दुवदना तनया मकरन्दिका।
दग्धोऽपि हरकोपेन यत्कान्त्या जीवितः स्मरः ॥ २२२ ॥
अपांशुलेस्तनात्सा मे सखी प्राणा बहिश्चराः।
तया मद्दुःखमाकर्ण्य विवाहे नियमः कृतः ॥ २२३ ॥
तां बोधयितुमद्यैव पद्मलेखा सखी मया।
विसृष्टा तत्पितुर्वाक्यात्सुतानियमदुःखिनः ॥ २२४ ॥
इत्युक्तवत्यां विद्याभृत्कन्यकायां समाययौ।
तस्मिन्नेव क्षणे क्षिप्रं तद्विसृष्टैव सा सखी ॥ २२५ ॥
विद्याधरेणानुगता पद्मलेखा समेत्य ताम्।
उवाच सखि नोद्वाहं मन्यते मकरन्दिका ॥ २२६ ॥

१. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः. २. 'जीवितः स्मरः' इत्यपि पाठः.

अयं देवजयो नाम विद्याधरकुमारकः ।
तया विसृष्टस्त्वां वक्तुमिहैवागम्यतामिति ॥ २२७ ॥
ततो देवजयेनापि तदेवोक्ता व्यचिन्तयत् ।
मनोरथप्रभा किंचिद्ध्यानस्तिमितलोचना ॥ २२८ ॥
सख्या परिणयेनैवं मद्दुःखान्नियमः कृतः ।
रूपवान्राजपुत्रोऽयं तस्याः समुचितः पतिः ॥ २२९ ॥
गृहीत्वैनं प्रयाम्येव तदन्तिकमहं यतः ।
एतन्मुखेन्दुमालोक्य सा प्रतिज्ञां विमोक्ष्यति ॥ २३० ॥
मत्वेति राजपुत्रेण सह देवजयेन सा ।
मनोरथप्रभा प्रायात्सचलेखानुगा सखीम् ॥ २३१ ॥
अन्तःपुरे तामासाद्य ततः सा मकरन्दिकाम् ।
([1]परिष्वज्य मिथो भेजे सा मुग्धा स्फटिकासनम् ॥ २३२ ॥
सोमप्रभं विलोक्यैव सुन्दरं मकरन्दिका) ।
बभूवानन्दनिष्पन्दमकरीकृतमानसा ॥ २३३ ॥
राजपुत्रोऽपि तां वीक्ष्य हरिणायतलोचनाम् ।
लक्ष्यतां पञ्चबाणस्य प्रययौ विस्मयाकुलः ॥ २३४ ॥
तयोः परस्परस्मेरस्मरसंरम्भनिर्भरः ।
यूनोरभून्महत्स्वेदप्रकम्पपुलकोत्सवः ॥ २३५ ॥
अत्रान्तरे राजसूनोर्मन्त्रिपुत्रः प्रियंकरः ।
तुरङ्गखुरमुद्राङ्कां शनकैः प्राप पद्धतिम् ॥ २३६ ॥
अस्मिन्नेवान्तरे शीघ्रसंचारो लेखहारकः ।
ज्योतिःप्रभस्य संदेशाद्राजपुत्रं समाययौ ॥ २३७ ॥
तूर्णमेहीति स पितुः श्रुत्वाज्ञां मन्त्रिसूनुना ।
संगतो दयितामेव ध्यायन्मूढ इवाभवत् ॥ २३८ ॥
अचिरात्त्वां समेष्यामीत्येवं हि कृतसंविदम् ।
विद्याधरेन्द्रसुतया सानुगः स्वपुरं ययौ ॥ २३९ ॥

1. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

ततः सा विप्रहोन्मत्ता शनकैर्मकरन्दिका।
निजकर्मविपाकाच्च तत्पिताप्यभवच्छुकः ॥ २४० ॥
सोऽयमेव शुकस्तस्याः पिता विद्याधरेश्वरः।
पुलस्त्येनेति भवतो श्रुत्वाहं जातिमस्मरम् ॥ २४१ ॥
असौ निषादी मत्पुत्री दत्ता तुभ्यमियं तया।
सोमप्रभो राजपुत्रः शिवादिष्टः समेष्यति ॥ २४२ ॥
अथैनां निजरूपं तदास्थितां मकरन्दिकाम्।
मनोरथप्रभापि त्वामद्यैव समुपैष्यति।
सरोजिन्या मुनिवरस्त्वं हि लक्ष्मीसुतः प्रभो ॥ २४३ ॥
इत्युक्त्वा स शुकः प्राप निजं वैद्याधरं वपुः।
जातिस्मरो विधायैव तं राजानं सुमानसम् ॥ २४४ ॥
अत्रान्तरे समाक्रान्तश्चिन्तयन्मकरन्दिकाम्।
आदिष्टः शंभुना स्वप्ने तद्वृत्तान्तं निवेद्य तम् ॥ २४५ ॥
तेनैवासौ समभ्यायादेशं सोमप्रभोऽथ तम्।
मुक्तां निषादभावाचामवाप्य मकरन्दिकाम् ॥ २४६ ॥
मनोरथप्रभा ज्ञात्वा विद्यया तद्विचेष्टितम्।
समेत्य भेजे राजानं तं यातं मुनिपुत्रताम् ॥ २४७ ॥
ततो मिथो ननन्दुस्ते गत्वा तुहिनभूधरम्।
इत्येव खेचरासङ्गो नृणां भवति कर्मतः ॥ २४८ ॥
त्वं च तां शक्तियशसं विद्याधरनृपात्मजाम्।
अचिरात्प्राप्स्यसि विभो गौर्यादिष्टं न संशयः ॥ २४९ ॥
एवमुत्तमसत्त्वानां गाढं प्रणयरागिणाम्।
कुलाचारोपपन्नानां भवत्येव समागमः ॥ २५० ॥
स तामसमनारीभिः कुलाचारविपर्ययात्।
संगमान्वविरमः शीलध्वंसादिदुर्णयैः ॥ २५१ ॥

इति सुमानसाख्यायिका ॥ ८ ॥

---

१. 'आपन्ना' पा.

शूरवर्माभिधानस्य कुलपुत्रस्य मानिनः ।
अलशायिन्यभिख्याभूद्भार्या नीचकुलोद्भवा ॥ २५२ ॥
ग्रामान्तरगते तस्मिन्सा तन्मित्रेण संगता ।
मृगदत्ताभिधानेन सिषेवे सुरतोत्सवम् ॥ २५३ ॥
शूरवर्मा समभ्येत्य ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् ।
तत्याज नो वधार्हेति निकारे गतविक्रियः ॥ २५४ ॥
उक्त्वेति राजतनयं पुनः प्रोवाच गोमुखः ।
श्रूयतामधुना देव कथां चित्तविनोदिनीम् ॥ २५५ ॥
दाक्षिणात्ये जनपदे विबुधव्रातसेवितम् ।
मिहिलारोप्यनामास्ति पुरं सुरपुरोत्तमम् ॥ २५६ ॥
वर्धमानकनामाभूत्तत्रातिधनदो वणिक् ।
प्रस्थितो द्वीपयात्रायां स विवेश महावनम् ॥ २५७ ॥
तत्रास्य विषमग्रावविदीर्णपदविक्लवः ।
धुर्योऽवसन्नो वृषभो वृषाङ्कवृषसंमितः ॥ २५८ ॥
याते वणिग्वरे त्यक्तस्तन्नियुक्तैः स रक्षिभिः ।
नैवौषधिचयाहारः कालेन स्वास्थ्यमाययौ ॥ २५९ ॥
पीनदर्पाकृतिजले तस्मिन्संजीवकाभिधे ।
निर्झरोपान्तपारीषु स्वच्छन्दसुखवारिणि ॥ २६० ॥
उदकार्थं समभ्यायात्पिङ्गलाख्यो मृगाधिपः ।
वनं यत्केसरैः स्फारैः साट्टहासमिवाभवत् ॥ २६१ ॥
स शुश्राव वृषस्योर्मं शृङ्गाघातं स्फुटं तटे ।
टाङ्कारनादमुखरं हुंकारनिविडध्वनिम् ॥ २६२ ॥
श्रुत्वा तदुअनिनदं विषमं स्वगितक्रमः ।
स तस्थौ फुल्लरोमाञ्चैः पीनलाङ्गूलपल्लवः ॥ २६३ ॥
करटो दमनश्चैव सचिवौ तस्य जम्बुकौ ।
दूरतश्चित्तसंक्षोभं विलोक्य तैरमूचतुः ॥ २६४ ॥

१–२. 'श' ख. ३. 'वनौ' ख.

पूर्वसंस्कारयोगेन सत्त्वान्मुनिवरेण वा ।
संस्फुटोच्चरति प्रायः पशूनामपि भारती ॥ २६५ ॥
ततोऽब्रवीद्दमनकः सखे किमयमीश्वरः ।
अदृष्टशब्दमात्रेण क्षोभाकुल इवेक्ष्यते ॥ २६६ ॥
तच्छ्रुत्वा धीमतां धुर्यो हसन्करटकोऽब्रवीत् ।
निरर्थचिन्तायोगेन किं प्रयोजनमावयोः ॥ २६७ ॥
अप्रयोजनकर्ता यः सर्वथा दुःखभाजनम् ।
अकार्यदुर्ग्रहग्रस्तः कीलाकर्षकवानरः ॥ २६८ ॥
श्रूयते नगराभ्यासे गृहनिर्माणकारिणः ।
अर्धस्फुटितकाष्ठाग्राः परं स्थपतयो ययुः ॥ २६९ ॥
गतेषु तेषु विपुलः कपिसार्थः समाययौ ।
वल्लीतानैकविन्यस्तसंभाविभवनिर्मितः ॥ २७० ॥
तत्रैकश्चापलात्कीलं स्फाटिकस्तम्भमस्तकात् ।
स्पृशन्नुवाच केनायमस्थाने विनिवेशितः ॥ २७१ ॥
तस्मिन्नभ्युद्धृते यन्त्रकीलके मुष्कपीडनात् ।
स संघटितसर्वाङ्गः सहसा निधनं ययौ ॥ २७२ ॥

इति वानराख्यायिका ॥ ९ ॥

निशम्येति वचस्तस्य ययौ दमनकः प्रभोः ।
समीपं संशयस्थाने सेवाकालो हि धीमताम् ॥ २७३ ॥
स विज्ञाय प्रभोश्चेतः शब्दमात्रविसंस्थुलम् ।
प्राह प्रायो भवन्त्येव बाढशब्दा घनादिषु ॥ २७४ ॥
मांसपूर्णेति विज्ञाय भेरीप्रध्वानमन्थरम् ।
क्रोष्टापदत्यसमुत्पाट्य पुरा काष्ठं च चर्म च ॥ २७५ ॥
इत्युक्त्वा स्वामिनं धीमान्ययौ शब्दानुगः शनैः ।
विलोक्य वृषभं तत्र साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ २७६ ॥

१. 'संन्यासेन वा' ख. २. 'भग्नानेकवनाश्रितः' ख. ३. 'यदा काले हि' ख.

अहो मूढ न जानीषे स्वामिनं पिङ्गलं हरिम् ।
तत्पादसेवाबाह्यस्य का नु रक्षा वने तव ॥ २७७ ॥
तच्छ्रुत्वा कम्पितमनास्ततः संजीवकोऽभवत् ।
दत्ताभयोऽथ तेनैव नीतः पिङ्गलकान्तिकम् ॥ २७८ ॥
स प्रणम्य प्रसादार्द्रदृशा तेनावलोकितः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने विगतसंभ्रमः ॥ २७९ ॥
स कालेनान्तरङ्गोऽभून्मृगराजस्य सेवकः ।
आसान्न एव प्रह्वेण नृपाः कान्ताश्च सादराः ॥ २८० ॥
तयोर्विश्रम्भमालोक्य बाह्यत्वादतितापितौ ।
क्षुत्क्षामौ पेततुर्दुःखैः सचिवौ जम्बुकौ हरेः ॥ २८१ ॥
ततो दमनकः प्राह सचिवो मन्दबुद्धिना ।
संजीवसिंहयोः प्रीतिर्विनाशायात्मनः कृता ॥ २८२ ॥
उपायश्चिन्तनीयोऽत्र जाने तावद्विभेदने ।
([१]उपायक्रमसाध्यं यद्बलसाध्यं न तद्भवेत् ॥ २८३ ॥
श्रूयते कृष्णसर्पो हि धिया काकेन पातितः ।)
वृक्षमूलाश्रयः सर्पः पुरा वायसपोतकान् ।
भक्षयामास तद्दुःखकृशाभूद्वायसप्रिया ॥ २८४ ॥
गोमायुकः सुहृत्पृष्टस्तया तामाह दुःखिताम् ।
समाश्वसिहि सर्पोऽयं विनंक्ष्यति बको यथा ॥ २८५ ॥
कपटव्रतमास्थाय मत्स्यान्प्राह पुरा बकः ।
प्रस्तुतो धीवरैर्युष्मद्ध्रदे प्रातर्महाक्षयः ॥ २८६ ॥
युष्मद्विनाशे नष्टोऽहं यूयं वृत्तिर्यतो मम ।
इत्युक्तिचकितान्मत्स्यान्रक्षार्थं नेतुमुद्यतः ॥ २८७ ॥
[२]बकस्तान्भक्षयन्कालं स निनाय यथारुचि ।

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटित. २. 'विश्वस्तास्तद्दयात्का' ख.

अतिलौल्योद्धृतेनाथ कर्कटेन निपातितैः ॥ २८८ ॥
उपायश्चिन्त्यतां सर्पवधे श्रुत्वेति वायसी ।
जहार राजनिलयात्सहसा हेमसूत्रिकाम् ॥ २८९ ॥
आदाय सकुलायामनग्रशाखावलम्बिनीम् ।
चकार दद्दशुस्तां च नराः सर्पदुरासदाम् ॥ २९० ॥
विधाय दलशो बाणैर्व्याजमारोहणोद्यताः ।
हृष्टा विलोक्य तत्काकी स्वयं भूषणमत्यजत् ॥ २९१ ॥
इति काकबकाख्यायिका ॥ १० ॥

अस्माभिरप्युपायांशः कर्तव्यो वृषभेदने ।
उपायेन हतः पूर्वं शशकेनापि केसरी ॥ २९२ ॥
अभूत्समस्तहरिणव्रातसंहारतत्परः ।
सिंहं समेत्य सारङ्गाः क्षयार्ता इदमब्रुवन् ॥ २९३ ॥
प्राणयात्राकृते स्वामिन्कोऽयं सर्वक्षयादरः ।
वारेण प्रेषयामस्ते मृगमेकं सदा क्षयम् ॥ २९४ ॥
एवमस्त्विति सिंहस्य विज्ञाय हरिणा मतम् ।
प्रेषयामासुरव्यग्रा एकैकं कृतसंविदः ॥ २९५ ॥
अथ कालेन शशको वारेण प्रेषितो हरेः ।
अचिन्तयद्बुधः कालं दंष्ट्रापातेऽप्यसंभ्रमः ॥ २९६ ॥
आहारकालेऽतिक्रान्ते क्षुत्क्षामे कुञ्जरद्विषि ।
गमिष्यामीति सोऽगच्छच्छशकः कुपितं हरिम् ॥ २९७ ॥
गर्जता तेन पृष्टोऽसौ वेलातिक्रान्तिकारणम् ।
अब्रवीदिव सिंहेन संनिरुद्धोऽस्मि वर्त्मनि ॥ २९८ ॥
श्रुत्वेति कोपादास्फाल्य लाङ्गुलं धूतकेसरः ।
सोऽवदद्दर्शय क्वासौ किं मत्तोऽप्यधिको हरिः ॥ २९९ ॥

---

१. एतदग्रे ख-पुस्तके 'बकाख्यायिका' इत्युपलभ्यते. २. 'गर्भकाख्यायिका' इति ख-पुस्तकस्थः पाठः. ३. 'ससंभ्रमात्' ख.

अग्रेसरोऽथ शशको भूत्वा करटिवैरिणः ।
वैदूर्यस्फटिकस्वच्छं महाकूपमदर्शयत् ॥ ३०० ॥
प्रतिबिम्बाकृतिं दृष्ट्वा स्वां तत्राकुलकेसरः ।
स कूपमग्नः प्रययौ प्रलयं शशवञ्चितः ।
भवन्त्येवमुपायेषु धीमतां कार्यसिद्धयः ॥ ३०१ ॥

इति शशकाख्यायिका ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा पिङ्गलं द्रष्टुं यातो दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
इदं दमनको वाक्यमेकान्ते विरतोऽब्रवीत् ॥ ३०२ ॥
कुलक्रमागता भृत्या हितवाक्येषु मूकताम् ।
यत्नायान्ति सदोत्सेकाः स्वामिनः सावलिप्तता ॥ ३०३ ॥
संजीवकोऽयं वृषभः स्वामिद्रोहे समुद्यतः ।
यथा वक्राञ्चितग्रीवः संग्रामार्थीव लक्ष्यते ॥ ३०४ ॥
अयं चामेषजो दोषो यदेतत्ककुदुद्भवः ।
कृमयो नित्यसंग्राममर्मणेषु विषमास्त्रव ॥ ३०५ ॥
अविज्ञातस्वभावैर्हि संगतिर्विपदां पदम् ।
हता मत्कुणदोषेण यूका मन्दविसर्पिणी ॥ ३०६ ॥
दुग्धाब्धिफेनधवलक्ष्मापशय्यातलाश्रया ।
यूका ददर्श पवनानीतं टिट्टिभमत्कुणम् ॥ ३०७ ॥
तं दृष्ट्वा सात्रवीद्देयो न ते तीक्ष्णमुखाश्रयः ।
तच्छ्रुत्वा सोऽवददीनमेकरात्रिं वसाम्यहम् ॥ ३०८ ॥
दत्ताश्रयोऽथ कृपया तया स सहसा नृपम् ।
अदशद्येन तत्कोपाद्धता यूकैव सेवकैः ॥ ३०९ ॥

इति यूकाख्यायिका ॥ १२ ॥

कुलक्रमागतत्यागो जन्मापूर्वैश्च संगतिः ।
मौर्ख्याचण्डरवस्येव विनाशायैव भूपतेः ॥ ३१० ॥

---

१. 'प्राणे' ख.

नगरोपान्तनिलयः पुरा चण्डरवाभिधः ।
जम्बुको वृत्तिलोमेन प्रविवेश पुरान्तरम् ॥ ३११ ॥
स रात्रौ श्वगणाक्रान्तः पलायनकृतश्रमः ।
नीलीकरससंपाताद्विचित्रं वर्णमाययौ ॥ ३१२ ॥
शृगाला दुद्रुवुर्दृष्ट्वा तं स्वजातिविलक्षणम् ।
दर्पान्मोहात्समभ्येत्य व्याघ्रादिष्वधिकोऽभवत् ॥ ३१३ ॥
तदुपाहृतमांसाद्यैः पुष्टिविस्मृतदुर्गतिः ।
क्रोष्टुकानां विलोक्यैव कदाचिद्वाचमुद्धताम् ।
प्रतिजग्राह नादेन स्वजातिसदृशेन सः ॥ ३१४ ॥
तच्छ्रुत्वैव परिज्ञाय तं लज्जाकुटिलाननाः ।
वञ्चिताः स्म खलेनेति जघ्नुस्तं व्याघ्रचित्रकाः ॥ ३१५ ॥
इति चण्डरवाख्यायिका ॥ १३ ॥

उपपत्तिसहैर्वाक्यैर्विरक्तहृदयं नृपम् ।
विधायेति हरिं गत्वा चक्रे शङ्काकुलं वृषम् ॥ ३१६ ॥
सोऽब्रवीद्धूर्तमध्ये हि दुर्लभं जीवितं सखे ।
मुग्धसिंहाश्रयं जघ्नुरुष्ट्रं काकादयः पुरा ॥ ३१७ ॥
विकटाक्षं पुरा सिंहं संग्रामक्षतविग्रहम् ।
क्षुधार्ताः सचिवा ऊचुर्द्वीपिगोमायुवायसाः ॥ ३१८ ॥
अशक्ता विग्रहे स्वामिन्नवसन्ना वयं वने ।
निराहारा न चास्माकं स्वामित्यागः शुभावहः ॥ ३१९ ॥
एष सार्थपरिभ्रष्टो य उष्ट्रस्त्वामुपागतः ।
महाकायः स पर्याप्तमस्तत्संपस्व भोजनम् ॥ ३२० ॥
तच्छ्रुत्वा मृदबुद्धिस्ममाश्रितद्रोहकीर्तनात् ।
तमङ्गीकारपदवीं धूर्ता निन्युः शनैर्हरिम् ॥ ३२१ ॥
अथोष्ट्रमंतिधौ प्राह व्याजकल्पितसंविदा ।
वायसो मच्छरीरेण स्वामिन्वृत्तिः प्रकल्प्यताम् ॥ ३२२ ॥

१. 'पुष्टम.' ख.

नेत्युक्तवाक्ये शार्दूले तदेव प्राह जम्बुकः ।
प्रतिषिद्धे पुनस्तस्मिन्द्वीपिन्यपि निराकृते ॥ ३२३ ॥
अचिन्तयत्करभकः संरम्भस्पृष्टमानसः ।
नैवेह भक्ष्यते कश्चिदौचित्यं दर्शयाम्यहम् ॥ ३२४ ॥
स्वामिन्मच्छरीरेण क्रियतां प्राणवर्तनम् ।
इत्युक्तमात्रे जघ्नुस्तं द्वीपिजम्बुकवायसाः ॥ ३२५ ॥

इत्युष्ट्राख्यायिका ॥ १४ ॥

इत्युक्तो वृषभस्तस्मै सिंहापकृतिचिन्तकः ।
तन्मतं तस्य विज्ञाय स्वैरं दमनकोऽब्रवीत् ॥ ३२६ ॥
शक्तः सिंहप्रतीकारे न कश्चिदिति चिन्त्यताम् ।
अविन्तितान्यदर्पस्य लज्जाब्धेरपि टिट्टिभात् ॥ ३२७ ॥
आसन्नप्रसवा पूर्वं टिट्टिमं दयितावदत् ।
प्रसवस्थानमन्यन्मे कल्प्यतां निर्भयं विभो ॥ ३२८ ॥
पूर्वस्थितिः समुद्रोर्मिभीषणा मे न रोचते ।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य टिट्टिभः प्राह विस्मितः ॥ ३२९ ॥
नैवापकर्तुं शक्तो मे समुन्नद्धोऽपि सागरः ।
भर्तुरित्युद्धतं श्रुत्वा प्रौढा प्रोवाच टिट्टिभी ॥ ३३० ॥
आसन्नाकुशला नूनं न शृण्वन्ति हितं वचः ।
श्रूयते मित्रवचनानादरात्कच्छपो हतः ॥ ३३१ ॥
हंसद्वयसखः पूर्वं कच्छपः स्थानदोषतः ।
दन्तावष्टब्धकाष्ठाग्रो नीतस्ताभ्यां विहायसा ॥ ३३२ ॥
ह्रदान्तराभिगमने तौ हंसौ कूर्ममूचतुः ।
मौनावलम्बिना भाव्यं त्वयैव बहुशः पथि ॥ ३३३ ॥
ततः पौरजना दृष्ट्वा विदितं शकटाकृतिम् ।
अहो किमिदमित्यासन्महाकोलाहलाकुलाः ॥ ३३४ ॥
किमेतदिति कूर्मोऽपि प्राह विस्मृततद्वचः ।
दारुस्खलितदन्तत्वात्पतितो निहतो जनैः ॥ ३३५ ॥

अनागतभयाभिज्ञो विपत्प्राप्तौ च बुद्धिमान् ।
द्वावेतौ संपदां पात्रं विपदां दैववादिनः ॥ ३३६ ॥
अनागतविधिश्चैव प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
यद्भविष्यश्च मत्स्याः प्राक्शुश्रुवुर्धीवरीं गिरम् ॥ ३३७ ॥
जालं क्षिपामः प्रत्यूषे ह्रदेऽस्मिन्निति तद्भयात् ।
अनागतविधिः प्रायात्त्यक्त्वान्यौ गन्तुमर्थितौ ॥ ३३८ ॥
ततः प्रभाते जालौघकृष्टे मत्स्यकदम्बके ।
प्रत्युत्पन्नमतिश्चक्रे कृतकं मृतवद्वपुः ॥ ३३९ ॥
निःशङ्कैर्धीवरैर्न्यस्तः स शनैः प्रययौ जलम् ।
यद्भविष्यस्तु लगुडैर्जर्जराङ्गो व्यपद्यत ॥ ३४० ॥
इत्युक्त्वा टिट्टिमी भर्तुर्वाक्यात्तत्रैव शावकान् ।
असूत तांस्तरङ्गौघैर्जहार च सरित्पतिः ॥ ३४१ ॥
गृहिणीभर्त्सितश्चक्रे दुःखितः पक्षिसंगमम् ।
टिट्टिभं तन्महानादं गरुत्मानशृणोत्ततः ॥ ३४२ ॥
तत्प्रेरितेन हरिणा निरस्तो मकराकरः ।
लज्जाविकुण्ठवदनष्टिट्टिम्यै शावकान्ददौ ॥ ३४३ ॥

इति कच्छपमत्स्यटिट्टिभाख्यायिका ॥ १५ ॥

एवं शक्तविनोदेन महतामपि नोदयः ।
किमुतैकान्तभक्षाणामस्माकं मूढचेतसाम् ॥ ३४४ ॥
श्रुत्वेति भेदनोपायं ययौ करटकान्तिकम् ।
दमनकोऽभ्येत्य हृष्टोऽखिलमुवाच तम् ॥ ३४५ ॥
पैशुन्योऽसि ततस्तेन पुनः प्राह च जम्बुकः ।
हृदये तैक्ष्ण्यमादायावदथामृतसंनिभः ॥ ३४६ ॥
एकद्रव्यार्थिनं हन्यां किं मामत्र विगर्हसे ।
पराभिपाताद्भ्राति विभूतिं विबुधो जनः ॥ ३४७ ॥

---

१. 'पाता च' ख. २. 'न्याक्रान्तिसंगमेन' ख.

अलक्ष्यप्रतिभाद्भेदो मांसं चतुरको यथा ।
करभः शङ्कुकर्णाख्यः क्रोष्टा चतुरकश्च सः ॥ ३४८ ॥
साविव्यं कुशलौ सिंहं वज्रदन्तमुपाश्रितौ ।
ततो युद्धार्दिततनौ कदाचिद्वारणद्विपि ॥ ३४९ ॥
वृत्तिच्छेदाच्चतुरकः शङ्कुकर्णमभाषत ।
सखे वक्रं कया बुद्ध्या स्वामिने किं न दीयते ॥ ३५० ॥
शरीरेणातिपुष्टेन किमनेन प्रयोजनम् ।
एवमस्त्विति तेनोक्तः सिंहमभ्येत्य सोऽब्रवत् ॥ ३५१ ॥
बृहत्प्रस्थाङ्कमानेन शरीरं संप्रयच्छति ।
करभो वः स्वया बुद्ध्या प्रसादः क्रियतां विभो ॥ ३५२ ॥
तद्वाक्यादथ शार्दूलः शङ्कुकर्णं विदार्य तम् ।
ययौ स्नानाय धृत्वास्य द्वितीयं परिचारकम् ॥ ३५३ ॥
तमाह क्रव्यवदनं जम्बुकं चतुरस्ततः ।
भक्षयावो बृहन्मांसमिति श्रुत्वाब्रवीच्च सः ।
तच्छ्रुत्वा चतुरः प्राह तदा मे दृष्टिमर्पय ॥ ३५४ ॥
अथ संभक्षिते मांसे संप्राप्ते च मृगाधिपे ।
आलुलोके भयाक्रान्तः स क्रोष्टा चतुराननम् ॥ ३५५ ॥
भक्षयित्वा किमद्यापि वदनं मम वीक्ष्यसे ।
चतुरः प्राह तच्छ्रुत्वा तं जघान मृगेश्वरः ॥ ३५६ ॥
अत्रान्तरे महासार्थभ्रष्टं करभकं परम् ।
कैटाहवादिनं दृष्ट्वा चतुरः सिंहमब्रवीत् ॥ ३५७ ॥
बृहत्प्रस्थं समादाय सोऽयं करभ आगतः ।
धिक्कष्टमन्धकर्णत्वं वनमन्यदितो व्रज ॥ ३५८ ॥
तस्मिन्गते यथेष्टं स भक्षयन्वासयन्बहून् ।
प्रमोदमाप दुर्लक्ष्यः स्वार्थसिद्ध्यै सतां धियः ॥ ३५९ ॥
इति चतुरास्यायिका ॥ १६ ॥

१. 'अष्टकं व्यादवं' ख.

श्रुत्वेति कर्कशं तस्य वक्रं बुद्धिविचेष्टितम् ।
पैशुन्यभेदचकितो धर्म्यं करटकोऽब्रवीत् ॥ ३६० ॥
लक्ष्मीः परोपतापेन कष्टार्नन्यधनक्षयैः ।
भूतदाहेन चागारं गच्छन्ति बत दुर्जनाः ॥ ३६१ ॥
सखे विरम पापात्त्वं शृणु मत्तोऽनुशासनम् ।
अथ वा मूर्खशास्तारो हतः सूचीमुखो यथा ॥ ३६२ ॥
हेमन्तकर्पिताः पूर्वं वानराः काष्ठसंचयम् ।
आहृत्य गत्वा खद्योतं मध्ये सर्वेष्वपातयन् ॥ ३६३ ॥
दृष्ट्वा सूचीमुखः पक्षी तच्चेष्टां मूर्खचेष्टितम् ।
प्राह व्यर्थश्रमेणालं खद्योतोऽयं न पावकः ॥ ३६४ ॥
इति शिक्षां ब्रुवाणस्य कश्चिच्छुश्राव नो वचः ।
यदा तदा स कर्णान्ते वानरानवदत्पुनः ॥ ३६५ ॥
तत्रैको वचनं श्रुत्वा तस्य निर्बन्धभाषितम् ।
गृहीत्वा तं जघानाशु शिलायां भर्त्सयन्कपिः ॥ ३६६ ॥
एवं तवोपदेष्टारो न वयं कुशलास्पदम् ।
येनेयं स्वामिनो लक्ष्मीः पैशुन्यात्संशये धृता ॥ ३६७ ॥
इति सूचीमुखाख्यायिका ॥ १७ ॥

अबुद्धियोगादधमाः सर्वदा विपदास्पदम् ।
पिता धूमेन निहतः सुतेनाधर्मबुद्धिना ॥ ३६८ ॥
धर्मबुद्धिरबुद्धिश्च द्वावेव सुहृदौ पुरा ।
वणिक्पुत्रावलभतां सहस्रपरमं धनम् ॥ ३६८ ॥
ततो गृहीत्वा दशमं भूमौ भागं निधाय तम् ।
जग्मतुस्तौ ततो गूढमबुद्धिः प्रजहौ धनम् ॥ ३७० ॥
स एव हृत्वा प्रोवाच हृतं मे धर्मबुद्धिना ।
साक्षी पश्यति तत्रस्थो वृक्ष इत्यब्रवीत्सभाम् ॥ ३७१ ॥

१. 'प्राप्य' ख.

तच्छ्रुत्वा विस्मिताः सर्वे धर्माधिकारिणो द्विजाः ।
प्रातर्विचार इत्येवं चक्रुः प्रतिभुवा स्थितम् ॥ ३७२ ॥
अबुद्धिरथ कृत्वा तं वृक्षस्य सुषिरान्तरे ।
पितरं गूढवचनैस्त(दुक्तो न्यजयत्परम् ॥ ३७३ ॥
धर्मबुद्धिर्जितस्तत्र विचिन्त्य क्षणमात्मना ।
हृतं तन्निधिपालेन तं तु दासी)त्यभाषत ॥ ३७४ ॥
ततो विधाय बहुलं तुषपर्णतृणानलम् ।
धूमेनापूरयामास विवरं मार्गशाखिनः ॥ ३७५ ॥
धूमातिकथितप्राणो दुर्बुद्धेर्जनकस्ततः ।
निर्गत्य प्राह पुत्रेण हा हतोऽस्मीति विह्वलः ॥ ३७६ ॥
धिगुपायानपायैकपर्यन्तान्मूर्खकल्पितान् ।
पुरा स्वयं समानीतैर्नकुलैर्भक्षिता बकाः ॥ ३७७ ॥
बाध्यमाना भुजङ्गेन बकाः श्रुत्वा कुलीरकान् ।
उपायं नकुलाह्वाने मत्स्यमांसं ददुः पथि ॥ ३७८ ॥
आहुता नकुला जग्मुर्मत्स्यमांसानुसारिणः ।
सर्पे तस्मिन्हते ज्ञात्वा मार्गे जग्मुर्बकानपि ॥ ३७९ ॥
एवं कुनयेनाहं निहतो दुष्टबुद्धिना ।
वदन्निति जगामास्तं धूमस्फुटितलोचनः ॥ ३८० ॥
ततो यथार्थं विज्ञाय दुष्टबुद्धिर्हतो द्विजैः ।
एवं त्वमपि दौरात्म्यात्पैशुन्यान्नाशमेष्यसि ॥ ३८१ ॥
इति वणिक्पुत्रबकाख्यायिका ॥ १८ ॥
अस्माकमपि नाश्वासस्त्वयि मिथ्यासुहृद्द्रुहि ।
यस्योपजीव्ये न प्रीतिः कुतस्तस्योपजीवके ॥ ३८२ ॥
पुरा लोहसहस्राङ्कां न्यासीकृत्य तुलां वणिक् ।
वणिग्गेहे चिरं भ्रान्त्वा दिगन्तात्पुनराययौ ॥ ३८३ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठ ख पुस्तके त्रुटित. २. एतत्स्थाने ख-पुस्तके तु 'बका-ख्यायिकागर्भा वणिक्पुत्रान्तराख्यायिका' इत्युपलभ्यते.

तं याचमानं स्वतुलामब्रवीन्मधुरं वणिक् ।
भक्षिता मूषकैः सार्धं तच्छ्रुत्वा सोऽभ्यभाषत ॥ ३८४ ॥
मूषका भक्षयन्त्येव लोहं मधुरपेशलम् ।
निशम्येति वचस्तुष्टस्तस्मै तथ्यमकल्पयत् ॥ ३८५ ॥
तत्पुत्रं सोऽप्यथैकान्ते हृत्वा निक्षेपहारिणः ।
श्येनेन ते हृतः सूनुरित्याह विकृताननः ॥ ३८६ ॥
ततो विवादे संप्राप्ते नगराधिपतेः पुरः ।
कथं श्येनो हरेद्बालं विस्मितानित्युवाच सः ॥ ३८७ ॥
यत्र लोहसहस्रस्य भक्षयन्त्याखवस्तुलाम् ।
श्येनः कुञ्जरहृत्तत्र किं चित्रं यदि बालहृत् ॥ ३८८ ॥
१
................................................. ।
................................................. ॥ ३८९ ॥

इति लोहतुलाख्यायिका ॥ १९ ॥

अत्रान्तरे पिङ्गलको दृष्ट्वा संकोचकुञ्चिताम् ।
ग्रीवां वृषस्य साशङ्कं नखराग्रैरदारयत् ॥ ३९० ॥
हत्वा तमनुतापार्तः स्वैरमायासितो हरिः ।
कर्कशा राजचर्येति दमनेन धृतिं ययौ ॥ ३९१ ॥

इति सिंहवृषाख्यायिका ॥ २० ॥

मिहिलारोप्यनगरे पुरासीद्वायसाधिपः ।
शाल्मलिस्कन्धवसतिर्लघुपातीति विश्रुतः ॥ ३९२ ॥
स कदाचिद्ददर्शाग्रे कपोतेशं सहानुगम् ।
चित्रग्रीवाभिधं जाले पतितं पाशजीविनाम् ॥ ३९३ ॥
जालं हरन्तमालोक्य कौतुकात्तं विहायसा ।
वायसोऽनुययौ द्रष्टुं तस्य बुद्धिचिकीर्षितम् ॥ ३९४ ॥

---

१. अत्र त्रुटितश्लोकस्थानेऽपि 'तच्छ्रुत्वा पौरमुख्यैस्तत्तत्रान्तैस्तस्य दापिता । सम्पूर्णतुला तेनापि स तस्यार्पितोऽर्भकः ॥' इति कथासरित्सागरे दृष्टत्वेन त्रुटितमिदं स्थापितम्. २. 'मनुतापार्तः स्वैरमायासितो' ख. ३. 'मदनेन' ख.

चित्रग्रीवोऽपि संप्राप्य सुहृदं वृद्धमूषकम्।
हिरण्याख्यं महापाशच्छेदने[1] तमनोदयत्॥ ३९५॥
छिन्नपाशं हिरण्येन ततस्तं वीक्ष्य वायसः।
सख्यं यत्नेन विदधे तेन विस्रब्धमाखुना॥ ३९६॥
[2]प्ररूढतां ययौ प्रेम प्रीतिभुक्तिपुरःसरम्।
याति काले रहः काकः कदाचिन्मित्रमब्रवीत्॥ ३९७॥
वृत्तियुक्तमपि स्थानमिदं मम न रोचते।
सखे जातारतिर्देहे पुष्टिर्हि प्रथमा रतिः॥ ३९८॥
तदेहि मन्थरो नाम मित्रं मे कच्छपाभिधः[3]।
जाह्नव्यामस्ति गच्छामो विहाराय तदन्तिकम्॥ ३९९॥
[4](..................................कच्छपम्।
कुशलानामयं पृष्ट्वा चक्रतुर्विविधाः कथाः)॥ ४००॥
अपापः खिन्नः प्राप्तोऽस्मि युक्तो वायसेन[5] सः।
पृष्टो हिरण्यः प्रोवाच निजागमनकारणम्॥ ४०१॥
परिव्राड् गूढकर्णोऽस्ति प्रख्यातो नगरान्तिके।
तदाश्रमेऽहं सततं पूर्णां वृत्तिमकल्पयम्॥ ४०२॥
नागदन्ताग्रसंसक्तभिक्षाभोजनसंस्थितेः।
[6].....नारदपरिष्कारं स्निग्धाव(न्न)मृदुभोजनैः॥ ४०३॥
याति काले ततस्तस्य परिव्राडाययौ परः।
स भुक्त्वा निशि विश्रब्धं प्रोवाच विविधाः कथाः॥ ४०४॥
गूढकर्णस्तु मामेव चिन्तयञ्जर्जरं मुहुः।
अवादयत्कथाविघ्ने बृहस्स्फिक्कुपितोऽब्रवीत्॥ ४०५॥
अहो विद्यावयोवृद्धो निःसङ्गोऽपि भवान्सखा।
कथास्वनादरो दर्पान्मदान्ध इव लक्ष्यते॥ ४०६॥

---

१. 'च्छेदाय' ख. २. 'प्ररूढेऽथ तयोः प्रेम्णि' ख. ३. 'भिप.' स्यात्. ४. कोष्ठान्तर्गतपाठः क-पुस्तके त्रुटितः. ५. 'रुवति वायसे' क. ६. क-पुस्तके त्रुटित·.

तच्छ्रुत्वा लज्जितः किंचिद्गूढकर्णोऽप्यभाषत।
न दर्पादन्यचित्तोऽहं श्रूयतामत्र कारणम्॥ ४०७॥
सततं मूषकः पापो भैक्ष्यपात्रादलक्षितः।
समश्नाति भिया तस्य जर्जरं वादयाम्यहम्॥ ४०८॥
बृहत्स्फिग्गूढकर्णस्य श्रुत्वेति प्राह सस्मितः।
यत्नेनावहितस्यापि भक्षयत्येष भोजनम्॥ ४०९॥
अवश्यं कारणेनात्र भवितव्यं तपोधन।
करोति शाण्डिलीमाता नाकस्मात्तिलविक्रयम्॥ ४१०॥
पुरापश्यमहं पान्थः स्थितो ब्राह्मणवेश्मनि।
ब्राह्मणी कुपिता पत्युः सर्वोत्रव्ययकारणात्॥ ४११॥
लुब्धामवोचतां भर्ता भद्रे नाशोऽतिसंचये।
संचयेनातिलुब्धो हि निहतो जम्बुकः पुरा॥ ४१२॥
अरण्ये प्राप गोमायुः परस्परहतान्पुरा।
लुब्धकक्रोडहरिणान्यत्रारूढं च कार्मुकम्॥ ४१३॥
अयत्नोपनतं प्राप्य हर्षपूर्णोऽथ जम्बुकः।
तान्सचयं विधायैव कार्मुकं भोक्तुमुद्यतः॥ ४१४॥
चापचर्वणसक्तस्य तस्य यन्त्रेपुणा दृढम्।
दारितस्य ययुः प्राणास्तस्मान्नाशोऽतिसंचयः॥ ४१५॥
पत्युः श्रुत्वेति वचनं पर्वयागानुकारिणी।
स्नानाय तं विसृज्याशु पाकसक्तामवरक्षणात्॥ ४१६॥
तच्छिलान्कुशराहेतोः शिष्येण स्थापितान्पुरः।
अभ्येत्य श्वा क्रियायोग्यांश्चक्रे जिह्वावलेहनैः॥ ४१७॥
तिलानां विक्रयं कर्तुमुद्यतामपरैस्तिलैः।
दृष्ट्वा परो गृहस्त्यागी विचिन्त्य क्षणमब्रवीत्॥ ४१८॥

---

१. 'भहीषा' ख.

करोति ब्राह्मणवधूर्नाकस्माच्तिलविक्रयम् ।
तस्मादाखुस्त्वथैवैष न शक्तः कारणं विना ॥ ४१९ ॥

इति जम्बुकाख्यायिका ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा मद्बिलद्वारं स विदार्यातिकोविदः ।
येनाहममवं द्रष्टा तत्सुवर्णं जहार मे ॥ ४२० ॥
ततो मे शक्तिहीनस्य क्षीणवृत्तेर्गतत्विषः ।
त्यक्तस्य भृत्यस्वजनैरिदमासीन्मनोगतम् ॥ ४२१ ॥
अहो नु धनहीनानां मरणं सुगतिः परा ।
गतासुः सेव्यते गृध्रैर्न तु केनापि निर्धनः ॥ ४२२ ॥
इति चिन्तापरीतोऽहमनेन लघुपातिना ।
संगतो जाह्नवीकूले प्राप्तो भद्र त्वदन्तिकम् ॥ ४२३ ॥
तच्छ्रुत्वाश्वासयामास हिरण्यं कच्छपाधिपः ।
उद्योगशीलो विभवं प्राप्स्यसीति पुनः पुनः ॥ ४२४ ॥
एवं प्रब्रुवतां तेषां लुब्धकत्रस्त(?) (आययौ ।
चित्राङ्गो नाम सारङ्गं प्रशंसन्निव मित्रताम्) ॥ ४२५ ॥
तेषां विश्रम्भसौहार्दे वर्धमाने परस्परम् ।
मृगः कदाचित्संकेतवेलायां न व्यलम्बत ॥ ४२६ ॥
ततस्ते शङ्किता मित्रं बद्धं विज्ञाय वायसात् ।
अचोदयत्कुरङ्गस्य बन्धच्छेदाय मूषकम् ॥ ४२७ ॥
नीतोऽथ मूपकस्तत्र वायसेन विहायसा ।
दृष्ट्वा कुरङ्गं प्रोवाच देशकालज्ञता क्व ते ॥ ४२८ ॥
इति श्रुत्वाब्रवीदेनं प्राप्तोऽहं दैवशासनात् ।
क्रीडार्थं राजपुत्राणां दृष्टबन्धोऽप्यहं पुरा ॥ ४२९ ॥
देशकालवलज्ञो हि दृष्टोपायोऽपि पण्डितः ।
सखे पराङ्मुखे दैवे समर्थोऽपि करोति किम् ॥ ४३० ॥

---

१. 'गर्भतिला' क. २. 'कथयतां' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ४. 'व्यदृश्यत' ख.

एवं तयोः कथयतोर्मकरोऽपि सुहृत्प्रियः।
आययौ शनकैर्यत्र मृगमूषकवायसाः॥ ४३१॥
दृष्ट्वा कच्छपमायान्तं मूषकः कुपितोऽब्रवीत्।
धिक्त्वामदेशकालज्ञं यत्प्राप्तोऽसि छलैरिति॥ ४३२॥
ततः कुरङ्गपाशाग्रे कृत्ते सत्वरमाखुना।
लुब्धकः सहसा प्राप्य बबन्धाभ्येत्य कच्छपम्॥ ४३३॥
ते च जग्मुर्भयात्तस्य गत्वा चाचिन्तयत्क्षणम्।
ततः संमन्त्र्य चक्रुस्ते व्याजेन पतितं मृगम्।
नेत्रे विपाटयन्तं तं तस्यैवोपरि वायसम्॥ ४३४॥
तं दृष्ट्वा लुब्धके[1] मुग्धे त्यक्त्वा कच्छपमञ्जसा।
अभिद्रुते कुरङ्गाय कूर्ममाखुरमोचयत्॥ ४३५॥
स तस्मिन्मूषके याते सारङ्गोऽपि सवायसः।
जगाम तूर्णमित्थं बुद्धिः सर्वार्थसाधिनी॥ ४३६॥
इति मूषककाककूर्मकच्छपाख्यायिका॥ २२॥

न्यग्रोधशाखिनिलयो वायसाधिपतिः पुरा।
बभूव वर्णमेघाख्यस्तमालश्यामलच्छविः॥ ४३७॥
तस्योलूकपतिर्वैरी रिपुमर्दः कुलक्षयम्।
चकार निशि सर्वो हि देशकालाश्रयाद्बली॥ ४३८॥
स सैन्यकृतशोकार्तः पञ्च पप्रच्छ वायसान्।
([2]प्रधानामात्यसंस्थासु नियुक्तान्सुनिकोविदान्)॥ ४३९॥
देशत्यागमुवाचैकः कालहारं तथापरः।
बलिना संधिमन्योऽथ तूर्णमन्यपराक्रमम्॥ ४४०॥
पञ्चाङ्गं पञ्चमो मन्त्रमर्पैरः शत्रुनाशनम्।
दुर्जया हि सदा [6]घूकाः शत्रवो वाकृतेन नः॥ ४४१॥

१. 'के मुग्धो' ख. २.-३. एतच्चिह्नान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः. ४. 'दर-प्युं' ख. ५. 'ले' ख. ६. 'वायसे नभः' ख.

श्रुत्वेति वायसपतिर्मन्त्रिणं चिरजीविनम् ।
पप्रच्छ कारणं पृष्टः सोऽप्याह श्रूयतामिति ॥ ४४२ ॥
मित्राणि शत्रुतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम् ।
वाक्कृतेनैव वाग्दोषाच्छ्रूयते गर्दभो हतः ॥ ४४३ ॥
द्वीपिचर्मावनद्धाङ्गो रजकेन पुरा खरः ।
पोषाय परसस्येषु ग्रीष्मे त्यक्तः स दुर्बलः ॥ ४४४ ॥
सस्यगोप्ताथ तं दृष्ट्वा चकितो द्वीपिरूपिणम् ।
दुद्राव छन्नकोदण्डः कम्बलच्छन्नविग्रहः ॥ ४४५ ॥
सस्यपुष्टशरीरोऽथ तं मत्वा गर्दभीं खरः ।
उद्दण्डमेहनोऽधावदस्युचालखुरद्वयः ॥ ४४६ ॥
मां द्वीपिनं त्रासतीति तं मनोहरया गिरा ।
घट्टयन्निव संमत्तोऽब्रवदरसामोचितं खरः ॥ ४४७ ॥
गर्दभं च गिरा ज्ञात्वा जघान स धनुर्धरः ।
वाग्दोषेणेति निहतो गर्दभो बुद्धिलाघवात् ॥ ४४८ ॥

इति रासभाख्यायिका ॥ २३ ॥

उलूकं पक्षिणं राज्ये विहङ्गान्कर्तुमुद्यतान् ।
दृष्ट्वा वंशकरः काक[1] पुरा प्रोवाच दुःखितः ॥ ४४९ ॥
अमङ्गलो दिनान्धश्च यत्रोलूकः क्षितीश्वरः ।
का तत्र कुशले वार्ता खल्वि गच्छाम्यहं दिशः ॥ ४५० ॥
प्रसिद्धो हि महीनाथः कार्यः सर्वसुखावहः ।
प्रसिद्धाशंसिनो नाम शशकाः सुखभागिनः ॥ ४५१ ॥
अनावृष्टिहते काले पुरा द्वादशवार्षिके ।
विशप्तः क्षुत्कृशैर्नागैश्चतुर्दन्ताधिपो द्विपः ॥ ४५२ ॥
विनष्टा एव कालेऽस्मिन्पयसो विरहाद्वयम् ।
इत्युक्त्वा द्रष्टुमगमत्तुदकं निखिलां महीम् ॥ ४५३ ॥

1. 'प्रन्व' क.

तत्तश्चन्द्रसरो ज्ञात्वा जलपूर्णं तथा द्विपः।
संहृष्टो घाततारांशुमृणालवल्याकुलम् ॥ ४५४ ॥
तत्रोपकण्ठे शशकान्गजेन्द्रचरणैर्हतान्।
दृष्ट्वा शशपति(र्दूतं विलयं प्राहिणोद्गजे ॥ ४५५ ॥
स कपोलतलालीनमत्तालिवलयं द्विपम्।
विसृष्टः शशिनासीति जगादाभ्येत्य निर्भयः ॥ ४५६ ॥
यल्लाञ्छितः) शशाङ्कोऽहं पाल्यास्ते शशका मम।
तेषां क्षयमिमं कृत्वा मत्कोपान्न भविष्यसि ॥ ४५७ ॥
इत्युक्तिचकितस्याथ द्विपस्यादर्शयज्जले।
प्रतिमाचन्द्रममलं गजस्तं प्रणनाम च ॥ ४५८ ॥
स च चन्द्रसरो दृष्ट्वा करस्पर्शचलज्जलम्।
शशवाक्याद्ययौ नागो ननन्दुः शशकास्ततः ॥ ४५९ ॥
इति नागशशाख्यायिका ॥ २४ ॥

स्वामिनो व्यपदेशेन सुखमित्यश्नुते जनः।
अयं तु क्षुद्रनृपतिर्जिताजितविनाशनः ॥ ४६० ॥
कपिञ्जलशशौ पूर्वं वेश्मदानविनोदिनौ।
मार्जारं दधिकर्णाख्यं न्यायं पप्रच्छतुः पुरा ॥ ४६१ ॥
मिथ्याविनीतः सद्धर्मादेष्टा शान्तिपरायणः।
जपस्थ इव मुक्ताक्षः सोऽब्रवीत्पेशलस्वनः ॥ ४६२ ॥
अहिंसा परमो धर्मो मोक्षः परहितं नृणाम्।
प्राणिद्रोहप्रसक्तानामन्धे तमसि संस्थितिः ॥ ४६३ ॥
श्रुत्वेत्याश्वासपदवीं तदा तावागतौ ततः।
अभक्षयत्क्षुद्रनृपो दुष्टः सर्वविनाशकृत् ॥ ४६४ ॥
इति मार्जाराख्यायिका ॥ २५ ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख पुस्तके त्रुटितः. २. 'नाग' इति पदं ख पुस्तके नोपलभ्यते. ३. 'स्थग' ख.

तस्मादुलूको नार्होऽयमिति तद्वचसा पुरा ।
नष्टराज्योऽभवद्वैरी काकानामित्यमङ्गलः ॥ ४६५ ॥
छलेन पातय रिपून्सर्वोपायपरिक्षये ।
छलेन भ्रंशितः स्थानाद्धूर्तैः शत्रुभिरग्रजः ॥ ४६६ ॥
स्कन्धे छगलमादय व्रजन्तं ब्राह्मणं पथि ।
(वञ्चनायाब्रुवन्धूर्ताः संघशः कृतसंविदः) ॥ ४६७ ॥
अहो श्वा मृगहा नूनमयं कस्य द्विजर्षभ ।
स्कन्धेन वोढो मार्गेषु नृपोपायनमेष वा ॥ ४६८ ॥
एकस्मिन्नित्यपक्रान्ते दूरमन्यावथोचतुः ।
अहो विचित्रं पश्यावः स्कन्धेन यदयं द्विजः ॥ ४६९ ॥
श्वानं वहति किं नु स्यादयं व्याधो द्विजाकृतिः ।
तयोः श्रुत्वेति विप्रस्तं निधाय भुवि शङ्कितः ॥ ४७० ॥
पस्पर्श पाणिना पुच्छविषाणवृषणादिषु ।
उन्मत्ता विलपन्त्येते छागो नायमिति स्वयम् ॥ ४७१ ॥
पुनः स्कन्धे समादाय तं ययौ चतुरो द्विज ।
ततः परे समभ्येत्य कक्षानियमिताम्बराः ।
ऋजुर्द्विजोऽयमस्पृश्यः श्वपाक इव पापभाक् ॥ ४७२ ॥
अहो महाजने नायं लज्जते कुलपांसनः ।
श्वानं वहति यः स्कन्धे पथि याति च संस्पृशेत् ॥ ४७३ ॥
इत्याकर्ण्य भृशोद्विग्नस्त्यक्त्वाजं दुःखितो द्विजः ।
बहूनामेकवाक्येन संजातप्रत्ययोऽभवत् ॥ ४७४ ॥
मायावी राक्षसो नूनमजोऽयं स्यान्न संशयः ।
इति संचिन्त्य तत्याज तं द्विजो धूर्तवञ्चितः ॥ ४७५ ॥
छागमादाय भुक्त्वा ते धूर्ता मुमुदिरे परम् ।
इति व्याजेन शत्रूणां कुर्यात्सपदि वञ्चनाम् ॥ ४७६ ॥

इति छागाख्यायिका ॥ २६ ॥

---

१. 'दछागा' ख. २. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

उक्त्वेति वायसामात्यश्चिरंजीवी निजं प्रभुम् ।
विसृज्य कृतकच्छन्नपक्षस्तस्थौ मृतोपमः ॥ ४७७ ॥
अभ्येत्य वायसावासं चतुरः सानुगो निशि ।
उलूकः पतितं काकं ददर्श चिरजीविनम् ॥ ४७८ ॥
केचिदाहुरवध्योऽयं वध्योऽयमिति चापरे ।
मन्त्रिणो घूकराजस्य मुख्यामात्योऽब्रवीत्ततः ॥ ४७९ ॥
कृपणः शरणं यातो रक्ष्योऽयं विपदि स्थितः ।
ददौ सार्थपतिः पूर्वं चौरायापि स्वयं धनम् ॥ ४८० ॥
वृद्धं पुरा सार्थवाहं भार्या हरिणलोचना ।
बाला पिशाचसदृशं न सेहे द्रष्टुमुल्बणम् ॥ ४८१ ॥
कदाचिदथ शर्वर्यां चौरं वीक्ष्य स्वमन्दिरे ।
चकिता सहसा वृद्धमालिलिङ्ग घनस्तनी ॥ ४८२ ॥
सदा पराङ्मुखीं दृष्ट्वा स्वयं कण्ठावलम्बिनीम् ।
कान्तां वृद्धोऽवदच्चौरमकाण्डामृतनन्दितः ॥ ४८३ ॥
नेक्षतेऽपाङ्गलोलाक्षी सैवमालिङ्गति स्वयम् ।
हर चौर धनं सर्वं प्रियकृद्दयितोऽसि मे ॥ ४८४ ॥

इति दयिताख्यायिका ॥ २७ ॥

इति चौरोऽपि वणिजा कारणेन सुहृत्कृतः ।
अयं काकस्तु शत्रूणां सर्वं वक्ष्यति चेष्टितम् ॥ ४८५ ॥
पुरा राक्षसचौराभ्यां श्रूयते रक्षितो द्विजः ।
तुल्यं कालं द्विजगृहं जग्मतुश्चौरराक्षसौ ॥ ४८६ ॥
शरीरधनहिंसार्थमहंपूर्विकया तयोः ।
विवादोऽभूत्तिशि महान्भूपतुल्यौ द्विजं ततः ॥ ४८७ ॥
अयं ते धनदत्मातस्त्रव चायं शरीरकृत् ।
विमन्त्र्योरिदं श्रुत्वा बलमग्रेजपान तौ ॥ ४८८ ॥

इति चौरराक्षसाख्यायिका ॥ २८ ॥

---

१. 'या मां नेक्षते लोलाक्षी सैव' ग. २. 'चौराख्यायिका' ग.

अरिमर्दं तदाकर्ण्य काकानुक्रोशमालिनी ।
तद्वचोविरतौ प्राहुरपरे घूकमन्त्रिणः ॥ ४८९ ॥
अहो कुमन्त्रिणानेन संशये स्वामिनो धृताः ।
लक्ष्मीः शत्रुप्रयुक्तेऽस्मिन्काके कारुण्यचेतसा ॥ ४९० ॥
वञ्च्यते धूर्तवचनैः प्रभवः सरलाशयाः ।
जायां सजारां शिरसा रथकारः पुरावहत् ॥ ४९१ ॥
कृत्वा प्रयोजनमिषं निर्गत्य शिबिराल्लघु ।
भार्यां जारवतीं द्रष्टुं विवेश रथकृत्पुनः ॥ ४९२ ॥
गूढे शयनपर्यङ्कतले तस्मिन्नधःस्थिते ।
प्रियोपपतिना चक्रे सुरतं तेन तद्वधूः ॥ ४९३ ॥
सा ज्ञात्वा पादसंस्पर्शान्निजं पतिमलक्षितम् ।
उवाच धर्मपत्न्या मे तत्परो नास्ति वल्लभः ॥ ४९४ ॥
तज्ज्ञात्वा मूढहृदयो रथकारो मुदान्वितः ।
उवाह शिरसा भार्यां सजारां हासयन्नपि ॥ ४९५ ॥

इति रथकाराख्यायिका ॥ २९ ॥

इत्थं विमूढहृदया वञ्च्यन्ते प्रियवादिभिः ।
चिरजीवी च काकोऽयं संधेयो नेति मे मतिः ॥ ४९६ ॥
ततो मुखाद्वमद्रक्तः कृत्तकृत्स्नपक्षतिः ।
स्वज्ञलूलूकनृपतिं चिरजीवी व्यजिज्ञपत् ॥ ४९७ ॥
देव त्यजाम्यहं प्राणान्कृतघ्नैर्वायसैर्हतः ।
त्वत्कृते तद्वधायाहं जातिं वाञ्छामि कौशिकीम् ॥ ४९८ ॥
काकस्येति वचः श्रुत्वा घूकामात्योऽवदद्बुधः ।
उलूकजातिर्न प्राप्या त्वया वक्रेण वायस ॥ ४९९ ॥
त्यक्ताप्यहो रविमुखैः स्वयोनिं मूषिका ययौ ।
गङ्गातीरे मुनिः कश्चिन्मूषिकां श्येनपातिताम् ॥ ५०० ॥

१. 'अमाल(?)श्चौ तदाकर्ण्य वाचोऽनुक्रोशशालिनः' ख. २. 'तद्वधे विर' ख. ३. 'ज्ञात्वा' ख.

कृपालुः कन्यकां चक्रे तपसा ववृधे च सा।
तां यौवनस्थामालोक्य मुनिर्दातुं समुद्यतः॥ ५०१॥
आजुहाव सहस्रांशुं कन्येयं गृह्यतां विभो।
प्रभावतो गरीयांस्त्वमित्युक्तो रविरब्रवीत्॥ ५०२॥
मत्प्रभावाधिका मेघा ये कृत्स्नं छादयन्ति माम्।
आहूतास्तेऽप्यथ प्राहुरस्मत्तोऽभ्यधिकोऽनिलः॥ ५०३॥
सोऽप्यब्रवीदथाहूतो गिरिर्मत्तो बलाधिकः।
आहूताः पर्वताः प्राहुर्भूपकैर्निर्जिता वयम्॥ ५०४॥
गृहाण कन्यामित्याखुर्निर्दिष्टो मुनिनावदत्।
कन्या बिले मम कथं प्रविशेदिति सादरः॥ ५०५॥
ततः सा मूषिकैवाभूद्बिलयोग्या मुनेर्गिरा।
इत्यात्मजातिमुत्सृज्य न यान्त्यभ्यधिकं खलाः॥ ५०६॥
सूर्यं भर्तारमुत्सृज्य पर्जन्यं मारुतं गिरिम्।
स्वयोनिं मूषिका प्राप्ता स्वजातिर्दुरतिक्रमा॥ ५०७॥

इति मूषिकाख्यायिका॥ ३०॥

उक्त्वेति विरते तस्मिन्नमात्ये नीतिशंसिनि।
उलूकः काकमादाय स्वमेव शिबिरं ययौ॥ ५०८॥
तं शत्रुसंश्रयासन्ननाशं वीक्ष्य स्वयं प्रभुम्।
उलूकमन्त्री प्रययावागामिभयशङ्कया॥ ५०९॥
चिरजीवी समाश्वास्य छिद्रं दुर्गं समीक्ष्य च।
आहूय वायसपतिं ददाहोलूकमण्डलम्॥ ५१०॥
दग्धोलूकगुहां पूर्णामभिषिच्य निजं प्रभुम्।
चिरजीवी निजजनैः पूज्यमानो मुदं ययौ॥ ५११॥
ततः पप्रच्छ सद्भृत्यं राज्यमासाद्य वायसः।
कथं शत्रुगृहे कालस्त्वया नीतोऽतिदुःसहः॥ ५१२॥
सोऽब्रवीद्विपुलं दुःखमवासं कालकाङ्क्षिणा।
शत्रुः स्कन्धेन वोढव्यः प्राज्ञैः सपदि सर्पवत्॥ ५१३॥

सर्पस्तडागमासाद्य वृत्तिच्छेदकृशः पुरा ।
धूर्तः प्रोवाच मण्डूकान्पुरा दष्टो मया द्विजः ॥ ५१४ ॥
तच्छापादेव यातोऽस्मि सर्वमण्डूकवाहनम् ।
मण्डूकराजस्तच्छ्रुत्वा चक्रे तं वाहनं मुदा ॥ ५१५ ॥
स्कन्धे गृहीत्वा मण्डूकं स नानागतिकोविदः ।
ययाचे भोजनं मन्दं वपुः कृत्वा मृदुस्वरः ॥ ५१६ ॥
शनैः शनैस्तदादेशात्सर्वमण्डूकसंक्षयम् ।
चक्रे शत्रुगृहेष्वेवं तिष्ठेत्कार्यवशागतः ॥ ५१७ ॥

इति मण्डूकाख्यायिका ॥ ३१ ॥

वृद्धवाक्यं हितं राज्ञा श्रोतव्यं तत्त्वया सदा ।
श्रूयते हंसनिचयो वृद्धवाक्येन रक्षितः ॥ ५१८ ॥
हंसानामधिपः पूर्वं क्षीरोदो नाम शाल्मलौ ।
उवास तमुवाचार्थं स भृत्यो वृद्धसारसः[1] ॥ ५१९ ॥
व्याधैरुप्तमिदं वीजं विनाशाय कुलस्य नः ।
निरस्यतां तदित्याह कश्चिच्छुश्राव नो वचः ॥ ५२० ॥
ततः कालेन वृद्धेषु हंसेषु खगजीविभिः ।
वृद्धहंसोऽब्रवीदत्र तिष्ठन्तु कृतकं मृताः ॥ ५२१ ॥
तथेति निश्चितैस्तैस्तु जालादुद्धृत्य धीवराः ।
राशीभूतान्खगांश्चक्रुरुड्डीय प्रययुश्च ते ॥ ५२२ ॥

इति हंसाख्यायिका ॥ ३२ ॥

चिरजीवीवचः श्रुत्वा मेघवर्णः श्रिया युतः ।
ननन्द शत्रुनाशेन राज्येन सह बान्धवः ॥ ५२३ ॥

इति काकोलूकाख्यायिका ॥ ३३ ॥

वानरः शिशुमारश्च पुरा मित्रे बभूवतुः ।
उदुम्बरफलाहारौ विस्रम्भप्रीतिसेवनात् ॥ ५२४ ॥

---

१. 'वायसः' ख.

मि[1]त्रैकसेविनो जाया शिशुमारस्य दुःखिता।
बभूवास्वस्थहृदया क्षय[2]रोग(नि[3]पीडिता ॥ ५२५ ॥
तां वीक्ष्य शिशुमारोऽपि दुःखितस्तत्सखीगिरा।
वानरस्यैव हृदयं विवेद व्याधिभेषजम् ॥ ५२६ ॥
स गत्वा वानरं प्राह करे गाढं) निपीड्य तम्।
मित्र जाया ममास्वस्था हृदयं देहि भेषजम् ॥ ५२७ ॥
श्रुत्वेत्यशनिसंकाशं विषण्णो वानरोऽब्रवीत्।
किं पूर्वमेव नोक्तं मे([4]........................ ॥ ५२८ ॥
.........................पश्चाद्दो[5]षैः पलाण्डुवत्।
पलाण्डु[6]दोषमादाय प्राहुर्नगररक्षिणः ॥ ५२९ ॥
रूपकाणां शतं देहि लगुडा[7]नां सहस्र वा।
पलाण्डोर्भक्ष[8]येदं वा शतं कटुरसोत्कटम् ॥ ५३० ॥
स[9] तच्छ्रुत्वाददे भोक्तुं पलाण्डुं तेन तापितः।
से[10]हे प्रहारांस्तैर्व्यस्तो रूपकानां शतं ददौ[11] ॥ ५३१ ॥
इति चौराख्यायिका) ॥ ३४ ॥

उदुम्बरं समारुह्य दास्यामि हृदयं तव।
इत्युक्त्वा वृक्षमारुह्य भयं त्यक्त्वा तमब्रवीत् ॥ ५३२ ॥
व्रज दुष्टाशय सखे विज्ञातोऽसि चिरान्मया।
नास्मि गर्दभवन्मूर्खो वञ्चनीयो भवद्विधैः ॥ ५३३ ॥
व्याधिक्षामं पुरा सिंहं जम्बुकः सचिवोऽब्रवीत्।
केन नश्यति ते व्याधिरवसन्ना वयं प्रभो ॥ ५३४ ॥

---

१. 'पृष्ठैक' ख. २. 'क्षुधा' ग. ३. एतत्कोष्ठकान्तर्गतः पाठः ग-पुस्तके त्रुटितः. ४. इयं कोष्ठकान्तर्गतचौराख्यायिका पुस्तकद्वयलब्धापि खण्डितापुस्तकायां, कथासरित्सागरे तु नोपलभ्यते. ५. 'देव' ग. ६. 'स्कन्धं चौरमादय' ग. ७. 'गी सहसया' ग. ८. 'वंचयेद्वा' ख. ९. 'तेन श्रुत्वा' ग. १० 'सोऽहं प्रहरं' ग. ११. 'त्रिते' ग.

सिंहोऽब्रवीद्यदि भवेत्कुतश्चिस्सरसोद्धृतम् ।
गार्दभं कर्णहृदयं तेन शाम्यति मे गदः ॥ ५३५ ॥
तच्छ्रुत्वा जम्बुको गत्वावददुरजकगर्दभम् ।
भारपीडाकृशोऽत्र त्वं वनमेवैहि धृतिमत् ॥ ५३६ ॥
तिष्ठन्ति तत्र गर्दभ्यस्तच्छ्रुत्वा स समाययौ ।
तस्य पृष्ठे ययावुग्रः स सिंहस्तनदुःसहः ॥ ५३७ ॥
मुक्तः कृच्छ्रेण दुद्राव ततः सपदि रासमः ।
क्रोष्टा विलोक्य शार्दूलं निनिन्द मृदुवादिनम् ॥ ५३८ ॥
गर्हयित्वा मृगपतिं प्रोवाचाभ्येत्य गर्दभम् ।
अपक्रान्तोऽसि किं मूर्ख गर्दभ्यो हारितास्त्वया ।
प्रथमं सर्वसिद्धीनां सोढा विघ्नं सुखी भवेत् ॥ ५३९ ॥
इति तस्य गिरायातं खरं हत्वा मृगेश्वरे ।
स्नानाय याते तत्कर्णहृदयं जम्बुकोऽहरत् ॥ ५४० ॥
क्व यातं तत्समभ्येत्य ब्रुवाणे वारणद्विषि ।
क्रोष्टावदत्र जानीषे प्रकृतः सरलाशयः ॥ ५४१ ॥
अकर्णहृदयो मूर्खो यदि न स्यादयं खरः ।
गतोऽपि दृष्टत्रासोऽपि किं पुनर्व्यसनं विशेत् ॥ ५४२ ॥

इति खराख्यायिका ॥ ३५ ॥

गच्छाधुना न ते मित्रमहं कुटिलचेतसः ।
शिशुमारो निशम्येति वानरं माह दुःखितः ॥ ५४३ ॥
न ददाति प्रतिश्रुत्य यः सत्यपदविच्युतः ।
निरालम्बी तमो याति स शिलाशतताडितः ॥ ५४४ ॥
वानरस्तद्वचः श्रुत्वा प्रोवाच मतिरस्ति ते ।
न पुण्यं सत्यमात्रेण सत्यात्माप्योऽस्ति केवलात् ॥ ५४५ ॥

---

१. 'हृ' ख. २. 'ह्येहि' ख. ३. 'पपाताशु' ख. ४. 'दृस्तस्य दु सहम्' ख. ५. 'तत्कृच्छ्रेण स दुद्राव' ख. ६. 'पाविनम्' ख. ७. 'मे' ख.

पुरा खर्परघाताङ्कललाटः पुरुषो नृपम् ।
अवाप्य विपुलां वृत्तिं लेभे विक्रमलाञ्छितः ॥ ५४६ ॥
कालेन पृष्टो राज्ञा च स प्रहारस्य कारणम् ।
पूर्वमद्दृष्टप्रपातेन खर्पराघातमभ्यधात् ॥ ५४७ ॥
तज्ज्ञात्वा राजपुरुषैर्निरस्तः प्रच्युतः क्षणात् ।
इति केवलसत्त्वेन न भवन्ति हितश्रियः ॥ ५४८ ॥

इति सत्याख्यायिका ॥ ३६ ॥

इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यमनुतापहताशयः ।
शिशुमारो ययौ मन्दं ननन्द च चिरं कपिः ॥ ५४९ ॥

इति वानरशिशुमाराख्यायिका ॥ ३७ ॥

गौडेषु देवशर्माख्यो बभूव ब्राह्मणः पुरा ।
स हृष्टो गर्भिणीं जायां निजामवददुत्सुकः ॥ ५५० ॥
भविष्यत्येव पुत्रस्ते मम वंशविवर्धनः ।
इति श्रुत्वाब्रवीज्जाया भाविषु प्रत्ययः कथम् ॥ ५५१ ॥
आशां विधाय भावेषु यो हि भावेषु हृष्यति ।
स सज्जेत सक्तुघटं भङ्क्त्वैव स्वयमग्रतः ॥ ५५२ ॥
भिक्षार्जितं सक्तुघटं निधाय ब्राह्मणः पुरा ।
अचिन्तयद्नाघृष्यां तस्य मूल्यं चतुर्गुणम् ॥ ५५३ ॥
तन्मूल्ये छागिकाः कृत्वा ताभिः प्राप्स्यामि गोधनम् ।
क्रयं तेन समाधाय परिणेष्यामि कन्यकाम् ॥ ५५४ ॥
महाधनस्य पुत्रो मे सोमशर्मा भविष्यति ।
रोदिष्यति सुते तस्मिन्स्तनपानाय तत्क्षणम् ॥ ५५५ ॥
ताडयिष्यामि लगुडैर्गृहिणीमतिकोपनः ।
इति भ्रमेण लगुडोत्क्षेपैर्घटमताडयत् ॥ ५५६ ॥
भग्नं सक्तुघटं दृष्ट्वा ततो लज्जां समाययौ ।

१. 'अनाहत्य'-ख.

इत्याशां नैव कुर्वन्ति बुधा भाविषु भाविषु ।
श्रुत्वेति ब्राह्मणीवाक्यं तूष्णीमासीद्द्विजः क्षणम् ॥ ५५७ ॥

इति घटाख्यायिका ॥ ३८ ॥

जाते ततः सुते विप्रः कदाचिन्निर्गतो गृहात् ।
रक्षायै नकुलं धृत्वा पुत्रस्य गृहयोषितम् ॥ ५५८ ॥
अथ सर्पं महाभोगं बालहिंसार्थमुत्थितम् ।
नकुलः खण्डशः कृत्वा रक्ताक्तो निर्ययौ गृहात् ॥ ५५९ ॥
तमभ्येत्य द्विजो दृष्ट्वा शिशुं मत्वा हतं सुतम् ।
अयोमुखेन कोपान्धो जघान नकुलं क्षणात् ॥ ५६० ॥
गेहं प्रविश्य निहतं वीक्ष्य सर्पं भयंकरम् ।
स्थितं च बालकं स्वस्थं शुशोचानुशयाकुलः ॥ ५६१ ॥
असम्यग्वीक्षितं द्रष्टुं पण्डितो नानुवर्तते ।
अनुकारात्परिभवं याति नापितवन्नरः ॥ ५६२ ॥
वणिक्क्षीणधनोऽपश्यत्स्वप्ने भिक्षुत्रयं पुरा ।
तैश्च स व्याहृतः सोऽस्मान्हत्वा द्रविणमाप्स्यसि ॥ ५६३ ॥
स प्रबुद्धो वणिक्प्रातर्दृष्ट्वा भिक्षुत्रयं पुरः ।
अताडयत्ताडिताश्च बभूवुर्धनराशयः ॥ ५६४ ॥
तद्वृत्तं नापितो दृष्ट्वा वणिग्वेश्मनि दुर्मतिः ।
धनार्थी स्वगृहं गत्वा जघान किल भिक्षुकान् ॥ ५६५ ॥
तं भिक्षुकवधाद्राजा शूलि जग्राह नापितम् ।
अत्यनालोच्यकार्येषु प्रवृत्तिर्दुःखकारणम् ॥ ५६६ ॥

इति नापिताख्यायिका ॥ ३९ ॥

([1]इति जायावचः श्रुत्वा ब्राह्मणोऽभूदवाङ्मुखः ।
ब्राह्मणार्थेन नकुलाहतः सर्गोऽभवत्सुखी ॥ ५६७ ॥

इति नकुलाख्यायिका) ॥ ४० ॥

---

१. एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः क-पुस्तके नोपलभ्यते.

एवं मतिमतामस्ति तिरश्चामपि कौशलम्।
हासंकारं त्वबुद्धीनां शृणु पुंसां विचेष्टितम् ॥ ५६८ ॥
वणिङ्मूर्खः पुरा चक्रे द्वीपेष्वगरुविक्रयम्।
कपर्दकेन तत्सर्वं ददौ विक्रयमित्यसौ ॥ ५६९ ॥
चतुः पञ्चाबुधः कश्चिद्दीर्घलोमनिवृत्तये।
वह्नौ चिक्षेप तेनास्य स निःशेषमदह्यत ॥ ५७० ॥
भुक्त्वा भर्जतिलान्कापि पुरा मूर्खेण केनचित्।
भ्रष्टा एव तिला उप्तास्तेनास्योज्झहसुर्जनाः ॥ ५७१ ॥
अबुधो भाण्डदारिद्र्यादेकस्मिन्निदधे घटे।
वह्निं जलं च कार्यार्थं येनासौ हास्यतां ययौ ॥ ५७२ ॥
हत्वा गुरोः सुसुप्तस्य कश्चित्सुस्पष्टनासिकाम्।
वक्रां नासां स्वभार्यायाश्छित्वा तां समरोपयत् ॥ ५७३ ॥
अन्विष्टा त्वत्कृते कन्या वृत्ता जातस्तवात्मजः।
मिथ्या गिरैवेर्त्यक्ती धूर्तैर्निर्द्रविणः कृतः ॥ ५७४ ॥
कश्चिद्व्यधाच्च जायाया लब्ध्वालंकरणं बहु।
रशनामबुधः कण्ठे हारं च जघनस्थले ॥ ५७५ ॥
वह्निना शोधितं हेम कश्चिद्दृष्ट्वा सकर्पटम्।
मलिनं ज्वलने कश्चिदबुधः शुद्धये व्यधात् ॥ ५७६ ॥
खर्जूरीफलमाहर्तुं यातैः कैश्चिदबुद्धिभिः।
दुरारोहतया छिन्नाः सर्वे खर्जूरपादपाः ॥ ५७७ ॥
कस्यचिद्दिव्यनेत्रस्य निधानशतदर्शिनः।
मा गच्छत्विति भूपालो नेत्रे मौर्ख्यादपाटयत् ॥ ५७८ ॥
दृष्ट्वा गोपालकः कश्चिद्गामेकां सिंहभक्षिताम्।
खण्डेन किं गोकुलेनेत्यन्यांश्चिक्षेप भूधरान् ॥ ५७९ ॥

---

१. 'हासकारि' ख. २. 'भ्रष्टति' ख. ३. 'वे' ख. ४. 'दृष्ट्वा' ख. ५. 'त्र' ख. ६. 'बुधो' ख. ७. 'जीवितः' ख.

ग्रामीणो नगरे भुक्त्वा भोज्यं कश्चित्सुसंस्कृतम् ।
प्रधानं लवणं कृत्वा तन्मुष्टिं सममक्षयत् ॥ ५८० ॥
एकस्मिन्नेव गोक्षीरं ग्रहीष्यामि दिने बहु ।
इति मासेन गां मूर्खो दुदोह न च सा ददौ ॥ ५८१ ॥
कपित्थैस्तरुगैः कोऽपि खल्वाटो मूर्ध्नि ताडितः ।
सेहते स व्यथां मूर्खो माधुर्यरसगौरवात् ॥ ५८२ ॥
इत्यनेकमूर्खाख्यायिका ॥ २१ ॥
गोमुखेनेति कथिते कथां पृष्टो विनोदिनीम् ।
नरवाहनदत्तेन सुहृत्प्राह तपन्तकः ॥ ५८३ ॥
मालवे विषये विप्रः श्रीमानासीद्यशोधरः ।
लक्ष्मीधरश्रीधराख्यौ तस्यामूतां प्रियौ सुतौ ॥ ५८४ ॥
कदाचित्पितुरादेशात्तौ विद्यार्थितया गतौ ।
देशान्तरं विनोद्योगं विद्या कथमवाप्यते ॥ ५८५ ॥
अटवीं तौ समासाद्य दूराध्वश्रमपीडितौ ।
पृथुपादपसुच्छाये सरस्तीरे न्यषीदताम् ॥ ५८६ ॥
ततः स्नात्वा फलाहारौ यातेऽस्तं तिग्मरोचिषि ।
भिन्नाञ्जनचयश्यामैस्तिमिरैः पूरितेऽम्बरे ॥ ५८७ ॥
महातरुं समारुह्य तस्मात्तुर्व्याघ्रशङ्कया ।
तौ बालपल्लवैः कृत्वा शयनं विटपान्तरे ॥ ५८८ ॥
अथोदिते गजवधूनवदन्ताङ्कुरत्विषि ।
कुप्यत्तन.कञ्चुकाग्रे शशाङ्के यामिनीस्तने ॥ ५८९ ॥
सरोमध्यात्समुत्थाय क्रमेण परिचारिकाः ।
संमार्ज्य तां च वसुधामाकीर्य कुसुमोत्करैः ॥ ५९० ॥
आस्तीर्य हेमपर्यङ्कं शय्यां स्वच्छोत्तरच्छदाम् ।
निधाय रत्नपात्रेषु दिव्यमाल्यविलेपनम् ॥ ५९१ ॥

१. 'सेहे तीव्रव्यथां' ख. २. ख-पुस्तके तु 'अनुगाख्यायिका' इत्येवमुपलभ्यते.
३. 'दृढ' ख. ४. 'हताहा-' ख. ५. 'तं.' ख.

पानं च [1]पृथुकर्पूरसहकाराधिवासितम् ।
ममज्जुर्लघुसंचारास्तस्मिन्नेव सरस्तटे ॥ ५९२ ॥
ततो दिव्याम्बरधरः कान्तो रुचिरकुण्डलः ।
मन्दारमालधवलः कोऽप्युच्चस्थौ महाभुजः ॥ ५९३ ॥
अथ पर्यङ्कशयने तत्र तस्य विलासिनः ।
[2]निषण्णस्य मुखाम्भोजान्निर्ययौ कापि कामिनी ॥ ५९४ ॥
[3]सुतारहारधवला रणन्मुखरमेखला ।
[4]मंदविस्खलितक्वाणा कलहंसीव शारदी ॥ ५९५ ॥
तस्यामभ्यु[5]दितायां च द्वितीयाप्याययौ वधूः ।
[6]विर्भूषणाङ्गी ललिता लावण्येन विभूषिता ॥ ५९६ ॥
ततः पूर्वोदितां कान्तां स दिव्याभरणोज्ज्वलाम् ।
जग्राह कण्ठे सोत्कण्ठं [7]सविलासं ससंभ्रमम् ॥ ५९७ ॥
[8]समेत्य सुरतश्रान्ते तस्मिन्निद्रामुपागते ।
पादसंवाहनं चक्रे सा परा तस्य सुन्दरी ॥ ५९८ ॥
लक्ष्मीधरश्री[9]धरौ च तद्दृष्ट्वा कौतुकाकुलौ ।
अवतीर्य तरुस्कन्धात्तदन्तिकमुपागतौ ॥ ५९९ ॥
विनिद्रनयना साथ कान्तकण्ठावलम्बिनी ।
तौ दृष्ट्वा लघुसंचारा समुत्तस्थौ सराकुला ॥ ६०० ॥
भर्तुः पिधाय वदनं निद्रालोर्वाससा शनैः ।
सा श्रीधरमुपेत्याह निर्लज्जं भज मामिति ॥ ६०१ ॥
सोऽब्रवीद्दिव्यरूपेण कान्तेनानेन सुन्दरि ।
[10]रमस्व परदारेषु मातर्नो मादृशां गतिः ॥ ६०२ ॥

---

१. 'दृष्ट्वा संपूर्णं नरालंकारवासिताम्' ख. २. 'षस्य ततस्तस्मान्नि-' ख. ३. 'श्वाता' ख. ४. 'मेदमंथव' ख. ५. 'स्थितायां च निरगादपरा वधूः' ख. ६. 'निर्भू' ख. ७. 'विलासरसविभ्रमाम्' ख. ८. 'शतैस्तस्तु' ख. ९. 'राज्यौ तां दृष्ट्वा' ख. १०. 'रमणं' इति स्यात्.

इति तद्वचसा किंचिल्लज्जानतविलोचना ।
सावदत्कम्पसंरम्भनिःश्वासस्खलिताक्षरा ॥ ६०३ ॥
नाहं न गम्या ते कान्त प्रच्छन्नशतकामिता ।
दृष्टपञ्चनरा गम्या किं न नाम श्रुतं त्वया ॥ ६०४ ॥
इहवासेविता नित्यं मया प्रच्छन्नकामुकाः ।
येषां रागकथावन्धेष्वासं हस्तादिदं मया ॥ ६०५ ॥
इत्युक्त्वांशुकपर्यन्तवद्धं सा समदर्शयत् ।
रागाङ्गुलीयकशतं नानाधातुविनिर्मितम् ॥ ६०६ ॥
तद्दृष्ट्वा श्रीधरः कर्णौ पिधायापसृतस्ततः ।
सा विबोध्य पतिं प्राह कोपकम्पतरङ्गिता ॥ ६०७ ॥
अनेन नाथ पान्थेन गाढं निद्रावृते त्वयि ।
कृताहं नष्टचारित्रा मुखं विष्टभ्य पाणिना ॥ ६०८ ॥
इति प्रियावचः श्रुत्वा खड्गमाकृष्य दुर्मदः ।
सकोपः श्रीधरं हन्तुमुद्ययौ भ्रुकुटीमुखः ॥ ६०९ ॥
अपरास्य सती भार्या सा निर्भूषणविग्रहा ।
असतीव्रतमावेद्य कोपानलमवारयत् ॥ ६१० ॥
सोऽप्यङ्गुलीयकशतं तस्या दृष्ट्वा पराञ्चले ।
प्रसाद्य विप्रं विदधे तां पापां कृत्तनासिकाम् ॥ ६११ ॥
सतीव्रतप्रत्ययाय दृशा दग्ध्वा महातरुम् ।
तत्रापरापि तज्जाया दृशैव समजीवयत् ॥ ६१२ ॥
ततः सोऽपि द्विजसुतौ प्राह प्रीतिरसाकुलः ।
काश्मीरे भवशर्माख्यो द्विजोऽहमभवं पुरा ॥ ६१३ ॥
अहं कदाचित्सद्धर्मश्रमणादाहितव्रतः ।
निवारितो ब्रह्मचर्यादनयैव बलान्निशि ॥ ६१४ ॥

---

१. 'कोप' ख. २. 'कथां तां भिक्षु दत्तं ह–' ख. ३. 'नानाहु' ख. ४. 'कम्पोत्तर' ख.

बौद्धादरादहं जातो जलेऽस्मिन्सिद्धिभाजनम् ।
व्रतभङ्गात्तु प्राप्तो गन्तुं तत्परमं पदम् ॥ ६१५ ॥
इति ब्रुवाणः स तया बध्वा चारित्रशुभ्रया ।
नीतः स्वतपसा क्षिप्रं विमानेन सुरावनीम् ॥ ६१६ ॥
लक्ष्मीधरश्रीधरौ च स्थितौ तत्रैव विस्मितौ ।
भ्रातर्ददृशतुर्दिव्यरूपं यक्षकुमारकम् ॥ ६१७ ॥
तद्दिष्टदिव्यसंभोगौ तस्माद्विद्यामवाप्य तौ ।
जग्मतुस्तौ समामन्त्र्य निजगेहं महाशयौ ॥ ६१८ ॥

इति श्रीधराख्यायिका ॥ ४२ ॥

कथां तपन्तकेनेति कथितां नरवाहनम् ।
श्रुत्वा प्रहृष्टं प्रोवाच गोमुखोऽपि विनोदिनीम् ॥ ६१९ ॥
उत्पलाख्येन वणिजा लक्ष्मीदत्ताभिधः सुतः ।
पुरा विवासितः प्रायान्मालिन्या सह भार्यया ॥ ६२० ॥
निर्जलामटवीं प्रा(प्य प्रियां तृष्णानिपीडिताम् ।
दृष्ट्वा स्वभुजमुत्पाट्य स तां रक्तमपाययत् ॥ ६२१ ॥
दिनैर्बहुभिरासाद्य) श्रान्तः शीतजलां नदीम् ।
स्नात्वा चकार तत्तीरे प्राणवृत्तिं वधूसखः ॥ ६२२ ॥
ददर्श तत्र निर्लूनकरपादं विनासिकम् ।
अन्तरूढं तरङ्गौघैर्नरमुत्तानशायिनम् ॥ ६२३ ॥
तं कंचिज्जीवमालोक्य संजातकरुणोऽथ सः ।
विगाह्य तटिनीं क्षिप्रमानिनाय वणिक्सुतः ॥ ६२४ ॥
प्रत्यग्रनिग्रही तस्य वस्त्रचीरेण रुग्णिका ।
बध्वा तस्य चिरं चक्रे विपिने भेषजक्रियाम् ॥ ६२५ ॥

---

१. 'भ्रातः सौगतं परमं' ख. २. 'शुद्धचारित्रशुभ्रया' ख. ३. 'रा' ख. ४. 'ष धा- मयौ' ख. ५. एतत्कोष्टान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ६. 'पादान्तनासिकं' ख. ७. 'दृश्यमानं' ख. ८. 'मुत्तुङ्गशायिनम्' ख.

पत्यौ प्रयाते स्नानाय मानिनी काममोहिता ।
ततः कदाचित्संरूढच्छेदतुण्डं तमब्रवीत् ॥ ६२६ ॥
भज मां चिरसंकल्पं मम पूरय निर्जने ।
स्त्रीणां हि ललितं चेतो न शाम्यति रतं विना ॥ ६२७ ॥
इत्यर्थितस्तया रुग्णो भुजाभ्यां गाढपीडिताम् ।
तां निर्दयपरामर्दैः सुचिरं समतोषयत् ॥ ६२८ ॥
स्नात्वा प्रतिनिवृत्तोऽथ वणिक्पुत्रो ददर्श ताम् ।
मिथ्यैव विहितव्याधिं तथा दीर्घं प्रलापिनीम् ॥ ६२९ ॥
तटिनीप्रान्तसंजातां मह्यमेनां महौषधीम् ।
समाहरेति स तया प्रेरितो गन्तुमुद्ययौ ॥ ६३० ॥
तत्करालम्बिना वल्लीदाम्ना हासपदं गतः ।
तथैव त्यक्तपाशोऽसौ नदीमध्ये पपात च ॥ ६३१ ॥
स ततः सलिलोत्फालैर्गमनालिङ्गनक्षमैः ।
अविभावित(?)विक्रम्यैर्न्यस्तो हर्षपुरीतटे ॥ ६३२ ॥
तस्मिन्नवसरे राज्ञि हर्षपुर्यां दिवं गते ।
अभिषेकगजेन्द्रेण स गृहीतो वणिग्वरः ॥ ६३३ ॥
तत्राभिषेकपुण्याहे निर्गत्य द्विरदाधिपः ।
यमारोपयति स्कन्धे स राजेति स्थितिः सदा ॥ ६३४ ॥
स तेन कुञ्जरेन्द्रेण नीतो राज्यश्रिया युतः ।
योषित्सु न मतिं चक्रे स्मरन्भार्याविचेष्टितम् ॥ ६३५ ॥
पृथ्वीराज्यं समासाद्य प्रजापालनतत्परः ।
स तत्र कालमनयत्सर्वार्थिसुरपादपः ॥ ६३६ ॥
सापि तं रुग्णमादाय स्कन्धे रागवशीकृ[तौ ।
बभ्राम निखिलां पृथ्वीं भिक्षावाहितभोजना ॥ ६३७ ॥
अहो पतिव्रता कापि पश्येयं या पतिं निजम् ।
स्कन्धे वहति कु]त्साङ्गं जनास्तामित्यपूजयन् ॥ ६३८ ॥

१. 'रूपवरं रुग्णं त' ख. २. 'रतानन्दैः' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

कालेन सा हर्षपुरीं प्राप्ता तस्मै महीभुजे ।
प्रदर्शिता मन्त्रिवरैस्तत्सतीव्रतविस्मितैः ॥ ६३९ ॥
सोऽपि तां प्रत्यभिज्ञाय तं च रुग्णं स्मयाकुलः ।
राजा स सर्वं वृत्तान्तं सचिवेभ्यो न्यवेदयत् ॥ ६४० ॥
तौ निरस्य विरक्तोऽथ लक्ष्मीसेनोऽभवन्मुदा ।
विपुले राज्यसारेऽपि ललनाविपुलाशयः ॥ ६४१ ॥

इति लक्ष्मीसेनाख्यायिका ॥ ४३ ॥

गोमुखेनेति कथितं श्रुत्वा वत्सेश्वरात्मजः ।
प्रभाते निजमुद्यानं ययौ विरहनिःसहः ॥ ६४२ ॥
ततो विद्याधराधीशः समेत्य प्रमदाकुलः ।
तां सुतां शक्तियशसं ददौ तस्मै सुलोचनाम् ॥ ६४३ ॥
अथ दिव्योचितोत्साहविपुलोत्सवशालिनीम् ।
तया नरेन्द्रपुत्रस्य विवाहश्रीरवर्तत ॥ ६४४ ॥
परिणीयेन्दुवदनां प्रहृष्टः पितुराज्ञया ।
विललास सरस्मेरो विलासोपवनेषु सः ॥ ६४५ ॥
विद्याधरीप्रणयिनं सुतमाकलय्य
वत्सेश्वरः किमपि हर्षसुधार्द्रचेताः ।
देवीसखस्त्रिनयनार्चनकल्पवृक्ष-
सूतेः फलस्य कुसुमोद्गतिमभ्यमंस्त ॥ ६४६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां शक्तियशो नाम षोडशो लम्बकः ।

---

महाभिषेकलम्बकः ।

नवकुचकाञ्चनकलशाः श्रोणीसिंहासनाः सितच्छत्राः ।
अभिषेकाय तरुण्यो यस्य स मकरध्वजो जयति ॥ १ ॥
अथ विद्याधरोऽभ्येत्य प्रतीहारेण सूचितः ।
व्यजिज्ञपत्प्रभारीनं प्रणम्य नरवाहनम् ॥ २ ॥

१. 'रै: प्रणमितं' पा.

अपि स्मरसि मे देव संप्राप्य विजयश्रियम् ।
न दृश्यते स्थितः पश्चात्सर्दर्पैरिव पार्थिवैः ॥ ३ ॥
यदा त्वं गौरीमुण्डेन पातितोऽसिगिरेस्तटे ।
पुरा मया तदा देव रक्षितोऽसि हराज्ञया ॥ ४ ॥
दूरपातमहामूर्च्छामदसंस्कारसंविदा ।
मन्ये मां नाभिजानासि चिरवृद्ध इवागमम् ॥ ५ ॥
पुरारूतावलम्बोऽपि हृदि प्रत्यग्रसंभ्रमे ।
अपराध इवार्यस्य मन्येऽहं विस्मृतोऽद्य ते ॥ ६ ॥
अमृतप्रभनामाहं प्रपन्नस्तव शासनम् ।
वामदेवेन मुनिना प्रेषितो भवदन्तिकम् ॥ ७ ॥
मुनिस्त्वामाह रत्नानि गृहाणाभ्येत्य मन्दिरा ।
चक्रवर्तिश्रिये देव तूर्णमित्युत्तमप्रियः ॥ ८ ॥
इति विद्याधरवचो निशम्य नरवाहनः ।
तं परिज्ञाय नभसा वामदेवाश्रमं ययौ ॥ ९ ॥
तं प्रणम्य मुनिं तत्र तदादिष्टो गुहान्तराद् ।
सोऽथ विघ्नघ्नोत्पातं राज्यप्रसवभूतये ॥ १० ॥
ध्वजं छत्रं सुधाबिम्बं खड्गांश्च रथकुञ्जरान् ।
दण्डरत्नं च संप्राप्य स निजं कटकं ययौ ॥ ११ ॥
अथ श्रीमान्प्रशस्तेऽह्नि विमानं सचिवैः सह ।
प्रियाभिश्च समारुह्य जययात्रां दिदेश सः ॥ १२ ॥
ततो विद्याधरानीकसंछादितनभस्तलः ।
जेतुं मन्दरदेवं स त्रिनेत्राद्रितटे ययौ ॥ १३ ॥
तत्र सेना बभौ तस्य स्फटिकप्रतिबिम्बिता ।
पूरितेव निजानीकैः सेवायै गर्भभूभृता ॥ १४ ॥
तत्र गीर्वाणतटिनीतीरविश्रान्तसैनिकः ।
विजहार मृगाक्षीभिः पारिजातलतावने ॥ १५ ॥

१. 'भ्रम' ख. २. 'साय' ख. ३. 'वनोपान्ते' ख. ४. 'सैनं' ख.

पुष्पेषुर्नंदितः कोऽयमस्य शस्त्रैः समुद्यमः ।
इति ताः स्पृहया वीक्ष्य जगद्गुहाकाङ्क्षनाः ॥ १६ ॥
ततस्तं प्रस्थितं जेतुं वायुवेगः कृताञ्जलिः ।
व्यजिज्ञपदितो देव न पन्थाश्चक्रवर्तिनाम् ॥ १७ ॥
इहास्ते त्रिपुराराति: सदा संनिहितो हरः ।
विभूतयः सुरेन्द्राणां यत्प्रसादात्तविप्रुषः ॥ १८ ॥
तमुल्लङ्घ्य विरूपाक्षं व्योम्नि यो याति मोहितः ।
पतति भ्रष्टविद्योऽसौ क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ १९ ॥
शंकरेणैव विहिता गुहेयं चक्रवर्तिना ।
गिरिं विदार्य शूलेन स ते मार्गः शिवप्रदः ॥ २० ॥
इति विद्याधरपतिः सचिवानां च भाषितम् ।
श्रुत्वा प्रणम्य चण्डीशं गुहारन्ध्रेण निर्ययौ ॥ २१ ॥
त्र्यम्बकेन धृतां तत्र कालरात्रिं प्रणम्य सः ।
पुरं मन्दरदेवस्य प्रतस्थे विजयोत्सुकः ॥ २२ ॥
देवमायं महाकालं जित्वा विद्याधरेश्वरम् ।
तन्महावाहिनीपूर्णसेनाब्धिः प्रबभौ विभुः ॥ २३ ॥
ततोऽदृश्यत संरब्धो विद्याधरबलाग्रजः ।
प्रलयाम्बुधरध्वानधीरः सपदि मन्दरः ॥ २४ ॥
अथ युद्धमभूद्घोरं विद्याधरधराभुजाम् ।
मौलिरत्नविनिष्पाति खड्गज्वालाजटोत्कटम् ॥ २५ ॥
तद्रक्ततटिनीसिक्तफुल्लाशोकवनच्छविः ।
पद्मरागाचलः क्षिप्रं बभूव स्फटिकाचलः ॥ २६ ॥
ततो धनवतीविद्यामोहिते वाहिनीद्वये ।
स्वयं मन्दरदेवस्य पुरोऽभून्नरवाहनः ॥ २७ ॥
चतुर्विद्याधरपतौ (सायकाग्नीक्ष्णपक्ष्मणः ।
नरवाहननामाङ्काः कटाक्षाः समरश्रियः ॥ २८ ॥

१. 'नादित.' ग. २. 'स्वं' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

ततो मन्दरदेवस्य ) विद्याभिरभिपूरितम् ।
बभूव वक्त्रं कल्पान्तहुतभुग्भीमविभ्रमम् ॥ २९ ॥
नरवाहनदत्तोऽथ केशपाशमिव श्रियः ।
खड्गमाकृष्य जग्राह तमुद्भ्रान्तशिरोरुहम् ॥ ३० ॥
भ्रातरं खड्गसंपातमभ्रान्तरितजीवितम् ।
दृष्ट्वा मन्दरदेवीति नरवाहनमभ्यधात् ॥ ३१ ॥
भो भो प्रतापचण्डांशो कीर्तिज्योत्स्नासुधाकर ।
नरवाहनदत्त त्वं त्रातुमर्हसि मेऽग्रजम् ॥ ३२ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा तं तत्याज नृपात्मजः ।
सन्तः प्रणयभङ्गेषु भीतानां नहि शिक्षिताः ॥ ३३ ॥
स्वस्रा मन्दरदेवोऽथ मोचितो लज्जया नतः ।
ययौ तपोवनं मानी मुनेः स्वपितुराश्रमम् ॥ ३४ ॥
विपत्सु च कुलीनानां वियोगेषु च धीमताम् ।
पराजये च शूराणां वृत्तिरेका तपोवनम् ॥ ३५ ॥
ततो धनवतीध्यानादुत्थिते रक्षिते बले ।
नरवाहनदत्तस्य जजृम्भे जयडिण्डिमः ॥ ३६ ॥
जम्भारिविजयोद्युक्तं तं समभ्येत्य नारदः ।
त्रिदशैर्नास्ति वो वैरमित्युक्त्वा विमुखं व्यधात् ॥ ३७ ॥
अभिषिच्यामितगतिं कैलासे गुलिकाभृतम् ।
कान्तां मन्दरदेवीं तां पित्रा दत्तामवाप्तवान् ॥ ३८ ॥
सन्मुखेनेक्षणच्छायाशबलेनाननाब्जमः ।
नीलोत्पलदलालोलहेमाब्जेनेव भूषितम् ॥ ३९ ॥
दत्तामकम्पनाख्येन पित्रा तां प्राप्य सुन्दरीम् ।
तद्वयस्याश्चतस्रोऽन्याः प्रापैकोद्वाहनिश्चयाः ॥ ४० ॥
ततः प्रणम्य श्रीकण्ठं प्रयातो वीक्ष्य शूलिनम् ।
ऋषभस्य गिरेः शृङ्गमभिषेकश्रिये ययौ ॥ ४१ ॥

तत्र विद्याविकल्पोत्था दिव्याभिप्रायशालिनी ।
राजधानी बभूवास्य रत्नप्राकारतोरणा ॥ ४२ ॥
अथाययुः समुद्रेभ्यो रत्नकुम्भैः सुलोचनाः ।
हेमकुम्भोपमकुचा गृहीत्वाप्सरसो जलम् ॥ ४३ ॥
ततो वायुपथाहूतस्तं विद्याभिर्विहायसा ।
सामात्यः सह देवीभ्यामाययौ वत्सभूपतिः ॥ ४४ ॥
यत्नात्पित्राभ्यनुज्ञातः कथंचिद्विनताननः ।
रत्नसिंहासनं भेजे भूपितो नरवाहनः ॥ ४५ ॥
रोहणाद्रेरिवोत्सङ्गं नानारत्नविभूपितम् ।
स बभार महामौलिं क्रीडाशैलमिव श्रियः ॥ ४६ ॥
अथाभिषेकपुण्याहे विस्तीर्णे मङ्गलोदके ।
आसनार्धं प्रभोर्भेजे देवी मदनमञ्जुका ॥ ४७ ॥
रतिरस्य स्मृतिभुवो दयितेयमयोनिजा ।
कान्ताः श्रुत्वेति नमसो नावमानं ययुः पराः ॥ ४८ ॥
ततः कुण्डलिनः शूरा मौलिपिञ्जरिताम्बराः ।
तस्य विद्याधराधीशाः प्रणता विविशुः सभाम् ॥ ४९ ॥
मणिकुट्टिमसंप्राप्तप्रांशुरश्मिभृताम्बराः ।
त्रैलोक्यमिव रुन्धानास्ते वसुर्गुलिकाधराः ॥ ५० ॥
प्रबलश्रियमालोक्य सुतं वत्सनरेश्वरः ।
ब्रह्माण्डं संकटं मेने हर्षसंपूर्णमानसः ॥ ५१ ॥
देवी वासवदत्तापि शच्या पुत्रश्रिया पदम् ।
प्राप्ता कुमारविजयानन्दिनीव सती बभौ ॥ ५२ ॥
मङ्गलोदधिकल्लोलश्रीलताकुसुमाकरः ।
दर्पपीयूषजलदः कोऽप्यभूत्स महोत्सवः ॥ ५३ ॥
ततस्तनयमामन्त्र्य कौशाम्बीं प्रमदाकुलः ।
ययौ व्योम्ना सहामात्यो वत्सराजः प्रियासखः ॥ ५४ ॥

इति स निखिलभूभृन्मौलिविश्रान्तकीर्ति-
मदकलसुरनारीगीयमानप्रतापः ।
अभिनवजयलक्ष्मीनम्रविद्याधरेन्द्र-
प्रकटमुकुटपीठस्पष्टपादो रराज ॥ ५५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां महाभिषेको नाम सप्तदशो लम्बकः ।

सुरतमञ्जरीलम्बकः ।

सुभगाविभ्रमोद्भ्रान्तभ्रूविलासचलाः श्रियः ।
आकल्पं स्थिरतां यान्ति यद्वशात्स शिवोऽस्तु वः ॥ १ ॥
स विद्याधरसामन्तमस्तकन्यस्तशासनः ।
भेजे समस्तकान्ताभिः स्मरलीलामहोत्सवम् ॥ २ ॥
प्रियाविलाससरसिके सानन्दे नरवाहने ।
सेवाक्षणमिवासाद्य वसन्तः प्रत्यदृश्यत ॥ ३ ॥
पल्लवेषु च वल्लीनां मानसेषु च सुभ्रुवाम् ।
कपोलेषु च मत्तानां (रागः कोऽपि व्यवर्तत ॥ ४ ॥
नमोऽस्तु स्थाणवे तस्मै मुष्टो येन मनोभवः ।
सहकारमदग्धेनमित्यूचु: प्रोषितास्त्रिया ॥ ५ ॥
नवसंभोगसंगीततरङ्गमलसद्रवः ।
लुलोठ पिककण्ठेषु मान्मथो जयडिण्डिमः ॥ ६ ॥
सहसाङ्कुरितो लेभे मदनः कामपि श्रियम् ।
तटीषु वचनान्तानां ) हृदयेषु च रागिणाम् ॥ ७ ॥
कूजन्मधुकरश्रेणीवितता चूतमञ्जरी ।
बभार तारङ्कारस्मरकार्मुकविभ्रमम् ॥ ८ ॥
स्तबकाः सिन्दुवारस्य तरलभ्रमराकुलाः ।
ययुः सितासितरुचो मधुलक्ष्मीकटाक्षताम् ॥ ९ ॥

१. 'तरुणीनि' ख. २. 'श्व यः' ख. ३ 'कन्या' ख. ४. 'प्रमदे' ख. ५. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

तरुणीचरणाघातफुल्लेनाशोकशाखिना ।
अमन्यत स्मरस्यैव प्रतापो विभ्रमक्षतिः ॥ १० ॥
कान्तागण्डूषविकसद्बकुलोद्धतरेणुभिः ।
यशोभिरिव पुष्पेषोः पाण्डुराः ककुभोऽभवन् ॥ ११ ॥
तस्मिन्नानन्दमधुरे मालतीकलिकाकुले ।
काले विलासिनीलीलानुकूले कलितानिले ॥ १२ ॥
फुल्लवल्लीनिकुञ्जेषु लवङ्गामोदनिर्भरे ।
पपौ मधु मृगाक्षीभिर्मित्रैश्च नरवाहनः ॥ १३ ॥
मधौ मधुमदालोलाः प्रियाः सुहृदयाः सुहृत् ।
फलं राज्यतरोरेतच्छेषमाडम्बरं श्रियः ॥ १४ ॥
पुष्पाकरश्रियं वीक्ष्य दक्षिणानिलवीजिताम् ।
परागौघदुकूलाङ्कां गोमुखः प्राह भूपतिम् ॥ १५ ॥
भ्रमद्भ्रमरसंह्रादभीमभ्रुकुटिविभ्रमः ।
अयं विरहिणां कालः कालो देव विजृम्भते ॥ १६ ॥
अस्मिन्विकसिताशोकचूतचम्पककिंशुके ।
कामकेलिकलाकाले वियुक्तः को नु जीवति ॥ १७ ॥
राजपुत्रः पुरा शूरः शूरसेनाभिधो वधूम् ।
सुषेणां स्वैरमामन्त्र्य राजसेवापरो ययौ ॥ १८ ॥
गते तस्मिन्वनान्तेषु संततोत्फुल्लशालिना ।
संतोषितालिजालेन वसन्तेन विजृम्भितम् ॥ १९ ॥
मधौ मधुरसंलापे कोकिलालिकुलाकुले ।
सुषेणा वल्लभं स्मृत्वा बभूव गतजीविता ॥ २० ॥
शूरसेनोऽपि तामेत्य दृष्ट्वा निपतितां प्रियाम् ।
मुमोह को हि सहते सहसा दयिताक्षयम् ॥ २१ ॥

---

१. 'जीजिताम्' ख. २. 'गैरनुकूलात-' ख. ३. 'पित' ख. ४. 'भार' ख. ५. 'धि' ख. ६. 'सुखिमा जीवितं विना' ख. ७. 'दयतां पतिः' ख.

8263



परस्परानुरागामिदग्धौ वीक्ष्य च चण्डिका।
कुलदेवी तयोर्जीवं दिदेशामृतसीकरैः॥ २२॥

इति शूरसेनाख्यायिका॥ १॥

श्रुत्वेति गोमुखवचो मधुलक्ष्मीं विलोकयन्।
ललास दृष्टिचषकैः पिबन्मदनमञ्जुकाम्॥ २३॥
ततो निशि निशाकान्तकान्तिसंतानर्निर्झरैः।
पूरिते भुवनाभोगे स सुष्वाप प्रियासखः॥ २४॥
स चन्द्रकान्तपर्यङ्के शशीव निजमण्डले।
रतिश्रमोन्मिपन्निद्रः[1] स्वप्नेऽनिष्टं व्यलोकयत्॥ २५॥
विबुद्धः शङ्कमानोऽथ पितुर्दैवपराभवम्।
स लेभे न पुनर्निद्रां विरक्तामिव योषितम्॥ २६॥
चिरं चिन्तयतस्तस्य शोकाग्निव्याप्तचेतसः।
नवोढेवाविदग्धस्य धृतिर्दूरतरं ययौ॥ २७॥
मैत्रीव साधुशीलानां स्त्रीणां परकथेव च।
सा तस्य शर्वरी शोकात्प्रययौ दीर्घदीर्घताम्॥ २८॥
प्रातर्विसृष्टा प्रकृतिचिया तेन तदीक्षितुम्।
प्राह वत्सेश्वरोदन्तं तूर्णमेत्य नमश्वरी॥ २९॥
याते चण्डमहासेने सभार्ये कीर्तिशेषताम्।
विधाय पालकं वीरं तत्पदे क्षितिपालकम्॥ ३०॥
गोपालकं निवेश्याशु भ्रूभङ्गेनात्मनः पदे।
कालंजरमृगूत्सङ्गे दिवं वत्सेश्वरो ययौ॥ ३१॥
स दिव्यपुरुषादिष्टं गत्वा यौधिष्ठिरं पदम्।
भेजे ययातिशर्यातिहरिश्चन्द्रेन्द्रतुल्यताम्॥ ३२॥
भ्रूभङ्गेन विवासिता रिपुवधूभ्रूभङ्गलीलाश्रमा
दृष्ट्वा[2] श्रीः स्वयमर्पिता स्वसुहृदां मत्तेभकुम्भस्तनी।

१. 'ष्ठु' ख. २. 'हिदतन्द्रः' ख. ३. 'ष्टा' ख.

तरुणीचरणाघातफुल्लेनाशोकशाखिना।
अमन्यत स्मरस्यैव प्रतापो विभ्रमक्षतिः॥ १०॥
कान्तागण्डूषविकसद्बकुलोद्धतरेणुभिः।
यशोभिरिव पुष्पेषोः पाण्डुराः ककुभोऽभवन्॥ ११॥
तस्मिन्नानन्दमधुरे मालतीकलिकाकुले।
काले विलासिनीलीलानुकूले कलितानिले॥ १२॥
फुल्लवल्लीनिकुञ्जेषु लवङ्गामोदनिर्भरे।
पपौ मधु मृगाक्षीभिर्मित्रैश्च नरवाहनः॥ १३॥
मधौ मधुमदालोलाः प्रियाः सुहृदयाः सुहृत्।
फलं राज्यतरोरेतच्छेषमाडम्बरं श्रियः॥ १४॥
पुष्पाकरश्रियं वीक्ष्य दक्षिणानिलवीजिताम्।
परागैर्घनदुकूलाङ्गां गोमुखः प्राह भूपतिम्॥ १५॥
अनङ्गमरसंह्लादमीनभ्रुकुटिविभ्रमः।
अयं विरहिणां कालः कालो देव विजृम्भते॥ १६॥
अस्मिन्विकसिताशोकचूतचम्पककिंशुके।
कामकेलिकलाकाले वियुक्तः को नु जीवति॥ १७॥
राजपुत्रः पुरा शूरः शूरसेनाभिधो वधूम्।
सुषेणां स्वैरमामन्त्र्य राजसेवापरो ययौ॥ १८॥
गते तस्मिन्वनान्तेषु संततोत्फुल्लशालिना।
संतोषितालिजालेन वसन्तेन विजृम्भितम्॥ १९॥
मधौ मधुरसंलापे कोकिलालिकुलाकुले।
सुषेणा वल्लभं स्मृत्वा बभूव गतजीविता॥ २०॥
शूरसेनोऽपि तामेत्य दृष्ट्वा निपतितां प्रियाम्।
मुमोह को हि सहते सहसा दयिताक्षयम्॥ २१॥

---

१. 'जीविताम्' ख. २. 'गैरनुकूलाङ्ग-' ख. ३. 'पित' ख. ४. 'भार' ख. ५. 'खि' ख. ६. 'सुखिता जीवितं विना' ख. ७. 'दयितां पतिः' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्नतिः केवला
कालः केवललोलुपः स निखिलां लोकावलीमश्नुते ॥ ४२ ॥

श्रीमत्तत्पृथुहारनिर्भरसुरः शौर्यापरादेशतं
तौ स्तम्भप्रतिमं भुजावपि जगत्प्राकाररक्षार्गले।
कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क्व तातस्य त-
द्दृष्टाहं पुनरिन्दुवृन्दयशसो धिक्वे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकाग्निसंतप्ते नरवाहने।
रत्नदुर्गामुखप्रमुखा देव्यस्ता बाष्पलोचनाः ॥ ४४ ॥
तेषां करुणमाक्रन्दं श्रुत्वाश्रुललितेक्षणाः।
बभूवुर्भुवनोद्यानकेलिबालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥
ततो निभृतसंचारा विनयानतहृदयः।
विविशुः शोकविवशा विद्याधरधराधराः ॥ ४६ ॥
तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरागारुणांशुकैः।
शोकाग्निना दह्यमाना मूर्तेनेवाभवन्द्विषः ॥ ४७ ॥
ततः कृतोदकस्नानो वृतो विद्याधरेश्वरैः।
मातरं साश्रुनयनः शुशोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥
तं शोकवडवावह्निक्षिप्यमाणमिवाम्बुधिम्।
वीक्ष्य पिङ्गलगान्धारः प्राह वायुपथस्तथा ॥ ४९ ॥
देव धैर्यव्ययः कोऽयं तवापि महतां कुले।
नहि निःसारसंसारविकाराः प्रभविष्णवः ॥ ५० ॥
नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविभिः।
सर्वेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रूभङ्गभङ्गुराः ॥ ५१ ॥
एकेऽद्य श्वस्तदपरे तत्परेऽह्नि तथापरे।
यान्ति नि सीम्नि संसारे कः स्थाता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

---

१. 'दस' ख. २. 'विरलि–' ख. ३. 'ता' ख. ४. 'मि' ख.
५ 'पीव्यमा' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्नतिः केवलं
कालः केवललोलुपः स निखिलां लोकावलीमश्नुते ॥ ४२ ॥
श्रीमत्तत्पृथुहारनिर्भरसुरः शौर्यापरादेस्तटं
तौ स्तम्भप्रतिमं भुजावपि जगत्प्राकाररक्षार्गले ।
कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क्व तातस्य त-
दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुधुन्दयशसो धिङ्मे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकाग्निसंतप्ते नरवाहने ।
रुरुदुर्गोमुखमुखा देव्यस्ता बाष्पलोचनाः ॥ ४४ ॥
तेषां करुणमाक्रन्दं श्रुत्वाश्रुलुलितेक्षणाः ।
बभूवुर्भुवनोद्यानकेलिबालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥
ततो निभृतसंचारा विनयानतदृष्टयः ।
विविशुः शोकविवशा विद्याधरधराधराः ॥ ४६ ॥
तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरागारुणांशुकैः ।
शोकाग्निना दह्यमाना मूर्तेनेवाभवन्दिशः ॥ ४७ ॥
ततः कृतोदकस्नानो वृतो विद्याधरेश्वरैः ।
मातरं साश्रुनयनः शुशोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥
तं शोकवडवावह्निक्वथ्यमानमिवाम्बुधिम् ।
वीक्ष्य पिङ्गलगान्धारः प्राह वायुपथस्तथा ॥ ४९ ॥
देव धैर्यव्ययः कोऽयं तवापि महतां कुले ।
नहि निःसारसंसारविकाराः प्रभविष्णवः ॥ ५० ॥
नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविभिः ।
भवेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रूभङ्गभङ्गुराः ॥ ५१ ॥
एकेऽद्य श्वोऽन्यदपरे तत्परेऽह्नि तथापरे ।
यान्ति नि मीलि संसारे कः स्नाता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

१. 'रम' ग. २. 'निष्कि-' ख. ३. 'ता' ख. ४. 'मि' ख.
५ 'दीप्तमा' ख.

देवीभ्यां विहृतं हुतं द्विजमुखे नित्यं स्मृतः शंकरः
कर्तव्यं स्पृहणीयमन्यदुचितं शेषं किमस्त्यायुषः ॥ ३३ ॥

उक्त्वेति देवं कामारिं ध्यात्वा विगलिताग्रहः ।
धैर्येण सह पौराणां प्रययौ पौरवत्सलः ॥ ३४ ॥

चन्द्रार्धमौलिविहितस्तुतिगीतिकाङ्क्षा-
मङ्के निधाय स तथाभिमतां विपञ्चीम् ।
देवः प्रियाग्रचरमित्रकृतानुयात्रः
सोऽस्ताचलादिव सहस्रकरः पपात ॥ ३५ ॥

तस्मिंल्लोकत्रयीनेत्रशतपत्रावलिप्रिये ।
यातेऽस्तं जगतां मित्रे शोकान्ध्यमभजन्प्रजाः ॥ ३६ ॥

इति वत्सेश्वरभृगुपतनकथा ॥ २ ॥

विद्याधरीवचः श्रुत्वा मूर्च्छितो नरवाहनः ।
पपात सुहृदामग्रे वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥

( विद्याधरीभिरमितः कदलीपल्लवानिलैः ।
वीज्यमानः शनैः संज्ञामवाप्य विललाप सः ॥ ३८ ॥

हा विलासरसावास हा गाम्भीर्यमहोदधे ।
हा रासभुवनोद्यानफुल्लकीर्तिलतावन ॥ ३९ ॥

हा दाक्षिण्यनिधे देव हा तात सुतवत्सल । )
क्वासि मे वचनं देहि वत्सेत्यमृतनिर्भरम् ॥ ४० ॥

अहो नु निरनुक्रोशः सज्जनक्रकचोऽन्तकः ।
कथाशेषः कृतो येन त्वमपि क्ष्माविशेषकः ॥ ४१ ॥

स त्वं वत्समहीपतेरगणितं रूपेण चन्द्रस्मयः
पेटे न स्तुतिरर्चिता न रचितश्चित्रं गुणेष्वञ्जलिः ।

---

१. 'पुटे' ख. २. 'तरट.' ख. ३. 'हस.' ख. ४. 'साभिषेक' ख. ५. 'ट' ख. ६. एतश्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ७. 'नै तनित.' ख. ८. 'प्रगेन' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्नतिः केवलं
कालः केवललोलुपः स निखिलां लोकावलीमश्नुते ॥ ४२ ॥

श्रीमच्चत्पृथुहारनिर्भरसुरः शौर्याद्रेस्तटं
तौ स्तम्भप्रतिमं भुजावपि जगत्प्राकाररक्षार्गले ।
कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क तातस्य त-
द्दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुवृन्दयशसो धिक्चे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवति शोकाग्निसंतप्ते नरवाहने ।
रुरुदुर्गोमुखमुखा देव्यस्ता बाष्पलोचनाः ॥ ४४ ॥
तेषां करुणमाक्रन्दं श्रुत्वाकुलितेक्षणाः ।
बभूवुर्मुनिवनोद्यानकेलिबालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥
ततो निभृतसंचारा विनयानतदृष्टयः ।
विविशुः शोकविवशा विद्याधरधराधराः ॥ ४६ ॥
तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरागारुणांशुकैः ।
शोकाग्निना दह्यमाना मूर्तेनैवाभवन्दिशः ॥ ४७ ॥
ततः कृतोदकस्नानो वृतो विद्याधरेश्वरैः ।
मातरं साश्रुनयनः शुशोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥
तं शोकवडवावह्निकथ्यमानमिवाम्बुधिम् ।
वीक्ष्य पिङ्गलगान्धारः प्राह वायुपथस्तथा ॥ ४९ ॥
देव धैर्यव्ययः कोऽयं तवापि महतां कुले ।
नहि निःसारसंसारविकाराः प्रभविष्णवः ॥ ५० ॥
नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविभिः ।
सर्वेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रमभङ्गुराः ॥ ५१ ॥
एकेऽद्य श्वस्तदपरे तत्परेऽह्नि तथापरे ।
यान्ति निःसीम्नि संसारे कः स्नाता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

---

१. 'रा' ख. २. 'विकटि–' ख. ३. 'ला' ख. ४. 'भि' ख.
५ 'वीक्ष्य' ख.

देवीभ्यां विहृतं हुतं द्विजमुखे नित्यं स्मृतः शंकरः
कर्तव्यं स्पृहणीयमन्यदुचितं शेषं किमस्त्यायुषः ॥ ३३ ॥
उक्त्वेति देवं कामारिं ध्यात्वा विगलिताग्रहः।
धैर्येण सह पौराणां प्रययौ पौरवत्सैलः ॥ ३४ ॥
चन्द्रार्धमौलिविहितस्तुतिगीतिकाङ्क्षा-
मङ्के निधाय स तथाभिमतां विपञ्चीम्।
देवः प्रियाग्रचरमित्रकृतानुयात्रः
सोऽस्ताचलादिव सहस्रकरः पपात ॥ ३५ ॥
तस्मिंल्लोकत्रयीनेत्रशतपत्रावलिप्रिये।
यातेऽस्तं जगतां मित्रे शोकान्ध्यमभजन्प्रजाः ॥ ३६ ॥
इति वत्सेश्वरभृगुपतनकथा ॥ २ ॥
विद्याधरीवचः श्रुत्वा मूर्च्छितो नरवाहनः।
पपात सुहृदामग्रे वज्राहत इवाचलः ॥ ३७ ॥
( विद्याधरीभिरभितः कदलीपल्लवानिलैः।
वीज्यमानः शनैः संज्ञामवाप्य विललाप सः ॥ ३८ ॥
हा विलाससरसावास हा गाम्भीर्यमहोदधे।
हा सप्तभुवनोद्यानफुल्लकीर्तिलतावन ॥ ३९ ॥
हा दाक्षिण्यनिधे देव हा तात सुतवत्सल।)
क्वासि मे वचनं देहि वत्सेत्यमृतनिर्भरम् ॥ ४० ॥
अहो नु निरनुक्रोशः सज्जनक्रकचोऽन्तकः।
कथारोपः कृतो येन त्वमपि क्ष्माविशेषकः ॥ ४१ ॥
स त्वं वत्समहीपतेरगणितं रूपेण चन्द्रस्मयः
पर्दे न स्तुतिरधिता न रचितश्चित्रं गुणेष्वञ्जलिः।

१. 'मुखे' ख. २. 'तदहः' ख. ३. 'भ्रमः' ख. ४. 'यातविपञ्चि' ख. ५. 'र' ख. ६. एतच्छ्लोकान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ७. 'नै रमितः' ख. ८. 'लागेन' ख.

देव्यो येन सतीव्रतेन च कृता दूरान्नतिः केवलं
कालः केवललोलुपः स निखिलं लोकावलीमश्नुते ॥ ४२ ॥
श्रीमद्वत्सपृथुप्रतापनिर्भरभुरः शौर्यापरादेश्वरं
तौ सम्भ्रमतिमं भुजावपि जगत्प्राकाररक्षार्गले ।
कीर्तिः स्वर्गनदी सुवर्णकमलं वक्त्रं क्व तातस्य त-
द्दृष्ट्वाहं पुनरिन्दुकुन्दयशसो धिङ्मे चिरं जीवितम् ॥ ४३ ॥
इत्युक्तवति शोकाग्निसंतप्ते नरवाहने ।
स्खलद्गीर्भिस्त्वसुता देव्यस्ता बाष्पलोचनाः ॥ ४४ ॥
तेषां करुणमाक्रन्दं श्रुत्वाश्रुलुलितेक्षणाः ।
बभूवुर्भुवनोद्यानकेलिबालकुरङ्गकाः ॥ ४५ ॥
ततो निभृतसंचारा विनयानतदृष्टयः ।
विविशुः शोकविवशा विद्याधरधराधराः ॥ ४६ ॥
तेषां कुण्डलकेयूरपद्मरागारुणांशुकैः ।
शोकाग्निना दह्यमाना मूर्तेनेवामवन्द्रिराः ॥ ४७ ॥
ततः कृतोदकस्नानो वृतो विद्याधरेश्वरैः ।
मातरं साश्रुनयनः शुशोच नरवाहनः ॥ ४८ ॥
तं शोकवडवावह्निकिरुप्यमानमिवाम्बुधिम् ।
वीक्ष्य पिङ्गलगान्धारः प्राह वाग्मुपयस्तथा ॥ ४९ ॥
देव धैर्यव्ययः कोऽयं तवापि महतां कुले ।
नहि निःसारसंसारविकाराः प्रगविष्णवः ॥ ५० ॥
नहि शोकः प्रियभ्रंशे कर्तव्यो वृद्धसेविभिः ।
भवेऽप्यभावसद्भावे भावा भ्रूभङ्गभङ्गुराः ॥ ५१ ॥
एकेऽद्य श्वस्तदपरे तत्परेऽह्नि तथापरे ।
यान्ति निःसीम्नि संसारे कः स्नाता योऽनुशोचति ॥ ५२ ॥

---

१. 'रस' ख. २. 'तितदि–' ख. ३. 'वा' ख. ४. 'रि' ख. ५. 'धीस्यमा' ख.

ध्रुवं न कुर्युर्मुनयस्तपांसि विजने वने ।
यदि न स्युरमी भावाः पर्यन्तविशरारवः ॥ ५३ ॥
लक्ष्मीरम्भाकुठारस्य भोगाम्भोदनभस्वतः ।
विलासवनदावाग्नेः को हि कालस्य विस्मृतः ॥ ५४ ॥
न गुणा हीनविद्यानां श्रीमतां क्षीणसंपदाम् ।
कृतान्तपण्यशालायां समानः क्रयविक्रयः ॥ ५५ ॥
(अन्धस्य दर्पणेनेव गीतेनेव हतश्रुतेः ।
गतस्य कोऽर्थः शोकेन नेक्षते न शृणोति यः) ॥ ५६ ॥
अकस्मात्संगतो नाम यथकस्माद्विनङ्क्षति ।
शोकः किं तत्र सर्वे हि यान्ति चायान्ति जन्तवः ॥ ५७ ॥
अश्रुतिर्बन्धुतां धत्ते कथं नष्टस्य नश्वरः ।
स्कन्धेन पङ्गुना पङ्गुर्वत वर्त्मनि नीयते ॥ ५८ ॥
जायते क्षणदृष्टेषु स्नेहो दुःखाय देहिनाम् ।
ममायमिति मुग्धानां नासौ तेषां न तस्य ते ॥ ५९ ॥
प्रयाति चपला लक्ष्मीः स्रवत्यायुरलक्षितम् ।
इति वस्तुस्वभावेऽस्मिन्कोऽनुशोचति तत्त्वधीः ॥ ६० ॥
गतान्शोचति को नाम यः प्रातः शोच्यते परैः ।
छिन्नहस्तो विहस्तश्च कथं बध्नाति कङ्कणम् ॥ ६१ ॥
रक्ष्यते जीवतां पुंसां येषां कालो भयंकरः ।
निस्तीर्णकालभङ्गास्तु न शोच्या विगतासवः ॥ ६२ ॥
न तज्जगति पश्यामो विचिन्त्य निखिलं धिया ।
दुष्प्रापं यत्प्रयत्नेन न लीढं कालजिह्वया ॥ ६३ ॥
नृगनाभागसगरा निर्गीर्णा येन हेलया ।
जृम्भमाणे महाकाले तस्मिन्को नाम मुच्यते ॥ ६४ ॥

१. 'लता' ख. २. 'कील' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः. ४. 'श्रुतिबंधुत्वं' ख.

विकोशाशापलाशेऽस्मिन्संसारामसरोरुहे ।
कालभृङ्गः पिबत्येव जनकिञ्जल्कमञ्जसा ॥ ६५ ॥
तेजो नास्ति गुणाः सा श्रीस्तत्सुखं ताश्च केलयः ।
कालसंकल्पकलया नीयन्ते स्मृतिशेषताम् ॥ ६६ ॥
विकचत्कवलक्रीडा यस्य ब्रह्माण्डपिण्डकैः ।
सर्वैकपाय कालाय नमस्तस्मै महाशिने ॥ ६७ ॥
इति तद्वचनन्यस्तशोकाग्निर्नरवाहनः ।
भर्गग्रस्तविपत्ताप दुग्धाब्धेरुपमां शनैः ॥ ६८ ॥
गोपालचरितं ज्ञातुं विसृष्टा पुनरागता ।
विद्या विद्याधरेन्द्राय ततः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥
देव वत्सेश्वरादिष्टं दत्त्वा राज्यमुदारधीः ।
पालकाय स्वयं भ्रात्रे गोपालस्तपसे गतः ॥ ७० ॥
प्रणयात्प्रार्थ्यमानोऽपि स पौरैरनुयायिभिः ।
जटावल्कलभृद्याह न्यस्तसंसारवासनः ॥ ७१ ॥
स्मेरचामरहासिन्यो वल्लभाः कस्य न श्रियः ।
किंतु ताः पवनालोलकदलीदलचञ्चलाः ॥ ७२ ॥
मुक्तिनो जातनिर्बन्धकर्मबन्धो हि वासना ।
विशरारुः समाहारः सर्वाग्रहपरिग्रहः ॥ ७३ ॥
तृष्णातन्तुरनायन्तो बिसानामिव देहिनाम् ।
सहजोऽन्तस्सितस्तस्य चिरात्रामूलमुद्धृतिः ॥ ७४ ॥
आशालतावलयितं बद्धमूलमविद्यया ।
को हि पातयितुं शक्तः सुखेन भवपादपम् ॥ ७५ ॥
धनपुत्रकलत्रेषु स्वयमेवार्जितेष्वहो ।
अवसन्ना विनश्यन्ति क्षुद्राः क्षौद्ररसेष्विव ॥ ७६ ॥

---

१. 'तेजनास्ते' ख. २. 'पि मानवः' ख. ३. 'बन्धु' ख.

अस्मिञ्शरीरकुसुमे भृङ्गवज्जीविते स्थिते ।
चपलेषु न भावेषु तादृशा ममतोचिताः ॥ ७७ ॥
परिच्छिन्नाशिनः किं मे कोटिभिर्भूरिसंचयैः ।
न पश्यामि गतः किंचित्कोऽयं सर्वग्रहो मम ॥ ७८ ॥
अपर्याप्तसमस्तेच्छाः सक्ता दारैर्धनैः सुतैः ।
कालव्यालसमाक्रान्ता नीयन्ते हन्त जन्तवः ॥ ७९ ॥
तरङ्गतरलैरर्थैर्भोगैर्भ्रूभङ्गभङ्गुरैः ।
मुहूर्तशेषैस्तारुण्यैरविलक्ष्यो रैराम कः ॥ ८० ॥
आत्मयज्ञात्तपुण्यानामात्मतीर्थोपसेविनाम् ।
त्यक्तापमानस्पर्शानां नैव शोचन्ति बान्धवाः ॥ ८१ ॥
जरन्मृगः शृङ्गमिव त्वचं वृद्ध इवोरगः ।
पक्षीवोन्मथितं शालं बन्धमुज्झति तत्त्ववित् ॥ ८२ ॥

भावाः स्वभावविशरारव एव ताव-
त्तत्क्लेशलेशदृढरागि मनश्च तेषु ।
तत्सर्वथा बहुवियोगविपाकुलानां
शान्त्यै मणिस्तनुभृतां विततो विवेकः ॥ ८३ ॥

इत्युक्त्वा पौरपुरतो बान्धवांस्तपसे गतः ।
कश्यपस्याश्रमं श्रीमानसिताचलकन्दरम् ॥ ८४ ॥
इति विद्यानिगदितं निशम्य नरवाहनः ।
जगाम मातुलं द्रष्टुं सुहृद्भिः सह सानुगः ॥ ८५ ॥
दयिताध्यासितपदं विमानं कमलासनम् ।
आरुह्य व्योममार्गेण सोऽविशत्कश्यपाश्रमम् ॥ ८६ ॥
प्रणम्य कश्यपं तत्र गोपालसचिवं ययौ ।
तं विलोक्य जटापुञ्जव्यञ्जितोरुतपःप्रभम् ॥ ८७ ॥

---

१. 'स्तब्ध' ख. २. 'ननाम' ख. ३. 'तालं' ख. ४. 'यद' ख.
५. 'जनवि-' ख.

प्रसन्नतरुसच्छाये निर्वैरहरिकुञ्जरे ।
प्रणम्य साश्रुनयनः प्रोवाच नरवाहनः ॥ ८८ ॥
मातुल स्नेहजलधिं जनकं जननीं च ताम् ।
क्व पुनर्वत पश्येयमित्युक्त्वा कश्मलं ययौ ॥ ८९ ॥
तं शोकविवशं वीक्ष्य विद्याभृच्चक्रवर्तिनम् ।
गोपालः प्राह मा मैवं कथास्त्वं धैर्यभूधरः ॥ ९० ॥
राजन्दलितकर्पूरपरागविशदं यशः ।
जगत्सु गीयते यस्य न शोच्यः स पिता तव ॥ ९१ ॥
सा च चारित्रसावित्री सौभाग्यगिरिपुत्रिका ।
याता वासवदत्ता ते धन्या कीर्तिसरस्वती ॥ ९२ ॥
मातुलस्येति वचसा मन्दशोकः सहानुगः ।
तत्रैव तस्थौ विद्याभिः कल्पितोदारमन्दिरः ॥ ९३ ॥

इति गोपालसंन्यासकथा ॥ ३

ततो विद्याधराधीशैर्मुनीन्द्रैश्च सह स्थितम् ।
व्यजिज्ञपत्समभ्येत्य प्रणतो वाहिनीपतिः ॥ ९४ ॥
कन्या लावण्यपीयूषलहरी हरिणेक्षणा ।
विक्रोशन्ती हृतासीति सोचिता सा मया विभो ॥ ९५ ॥
को हि देव भवद्वीर्यैरक्षितो व्योममण्डले ।
कर्तुं लङ्घितमर्यादः सहसा विप्लवं क्षमः ॥ ९६ ॥
स मया ललनाचौरः पृष्टः प्राह विहाय ताम् ।
सरम्भलुलितोत्तालमाल्यशेखरषट्पदः ॥ ९७ ॥
अहं मदनवेगस्य पुत्रो विद्याधरप्रभोः ।
जातः कलिङ्गसेनायामितो नाम नभश्चरः ॥ ९८ ॥
इयं मतङ्गदेवेन पुत्री सुरतमञ्जरी ।
विद्याधरी पुरा मह्यं दत्ता वाचैव सुन्दरी ॥ ९९ ॥

---

१. 'गच्छ त्व' ख. २. 'मदिता' ख. ३. 'न्दरवेगस्य' ख.

कालेन पालकस्याद्य सुतायोज्जयिनीपतेः।
अवन्तिवर्धनाख्याय वितीर्णा तेन मानिना॥ १००॥
ततो मया माययेयं हृता मानुषरागिणी।
स्त्रीकृते को हि सहते वीरो न्यक्कारमात्मनः॥ १०१॥
इत्युक्तवाक्यः स ययौ मौनतां परदारहृत्।
पालकस्य स्नुषा चासौ मुक्ता सुरतमञ्जरी॥ १०२॥
श्रुत्वा हरिशिखस्येति वचनं वाहिनीपतेः।
गोपालानुमते प्राह नरवाहो नभश्चरान्॥ १०३॥
तदमात्यं च सुनयव्रतं भरतरोहकम्।
वृत्तं सुरतमञ्जर्यास्ततो विज्ञायतेऽखिलम्॥ १०४॥
इति प्रभुगिरा गत्वा स समादाय खेचरः।
सभायां न्यस्तवांस्तौ च नरनाथं प्रणेमतुः॥ १०५॥
मातुलेयं परिष्वज्य सोऽपृच्छत्तस्य मन्त्रिणम्।
स च पृष्टोऽवदत्कन्यावृत्तं भरतरोहकः॥ १०६॥
अस्ति वत्सेश्वरादिष्टः पालको लोकपालकः।
वीर प्रशास्ति वसुधां वसुधामशतप्रदः॥ १०७॥
ततः कदाचित्संप्राप्तपुर्यामुदकदान्तिके।
महोत्सवे पौरजनो बभूवाबद्धकौतुकः॥ १०८॥
हत्वा चण्डमहासेनो दैत्यमङ्गारकं पुरा।
प्रत्यब्दं तद्गिरा चक्रे वारिदानोत्सवस्थितिम्॥ १०९॥
ततो महोत्सवारम्भे भूपिताशेषमण्डले।
यात्राकुलेषु लोकेषु प्रहृष्टो निर्ययौ गजः॥ ११०॥
स निर्गतो लम्बमानचरणालानशृङ्खलः।
मारपीडामयेनेव मौगीन्द्रानुगतो बभौ॥ १११॥
स लेभे लोलमत्तालिवलयश्यामलैः रदैः।
मन्थोत्थकालकूटार्चुंसितकमन्दरविभ्रमम्॥ ११२॥

१. 'दिना' ख. २. 'प्रायामुन्दकता' ख. ३. 'सं' ख. ४. 'प्र' ख.

तच्चण्डडिण्डिमध्वानपिण्डिते जनमण्डले ।
अकालमलयभ्रान्तिर्भीमः कोलाहलोऽभवत् ॥ ११३ ॥
ततः कुतूहलाकृष्टा निर्ययुस्तरलेक्षणाः ।
पुरभङ्गपरित्रस्ता ग्रहाणामिव देवताः ॥ ११४ ॥
मुसाम्बुरुहहारिण्यस्ता वैसुर्नयनोत्पलाः ।
विलोडनभयात्त्रासा नलिन्य इव सेवितुम् ॥ ११५ ॥
विद्रुतेष्वथ लोकेषु तत्र चण्डालदारिका ।
तस्य तस्यावसामान्यलावण्यतटिनी पुरः ॥ ११६ ॥
भ्रूलतालास्यललितं स्तनस्तबकसुन्दरम् ।
उद्यानमिव पुष्पेषोर्विश्रामाणामिव यौवनम् ॥ ११७ ॥
गुञ्जाहारानुकारीभिर्भूषिताधरकान्तिभिः ।
गौरी लीलाकिरातीव कचाक्षशिखिपिच्छिका ॥ ११८ ॥
दीर्घवेणीलता मौर्वीतनुमध्या मनोभुवः ।
त्रिवली मुष्टिमुद्रेव क्रीडाकोदण्डचन्द्रिका ॥ ११९ ॥
भयानभिज्ञा सा तत्र तस्थौ कौतुकनिश्चला ।
वल्लरीव निवातस्था कुटिलालकषट्पदा ॥ १२० ॥
तां जिघृक्षुः स सहसा कदलीमिव कुञ्जरः ।
ससर्पोद्दण्डशुण्डालो राहुश्चन्द्रकलामिव ॥ १२१ ॥
ह्रियमाणां गजेन्द्रेण वीक्ष्य तां चकितेक्षणाम् ।
अस्तं रूपं गता कान्तिरिति पौराः प्रचुक्रुशुः ॥ १२२ ॥
मातङ्गानामियं लक्ष्मीः कामिनीति मतङ्गजः ।
रन्तुं करेण पस्पर्श सहसा त्यक्तविक्रियः ॥ १२३ ॥
अतिचन्द्रामृतः कोऽपि परिरम्भो मृगीदृशाम् ।
पशवोऽपि यमासाद्य भवन्ति सुखनिश्चलाः ॥ १२४ ॥
(तत्स्पर्शमीलिताक्षं तं विलोक्य करिणं जनाः ।
अहो चित्रमहो चित्रमित्यूचुः कौतुकाकुलाः) ॥ १२५ ॥

१. 'ष्ट' ख. २. 'रचन' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः ख-पुस्तके त्रुटितः.

अवन्तिवर्धनस्तत्र राजपुत्रोऽप्युत्सुकः ।
दृष्ट्वा चण्डालकन्यां तामभवत्स्मरतापितः ॥ १२६ ॥
ततस्तद्विरहायासपाण्डुरः प्रतिवासरम् ।
कृष्णपक्षकृतालम्बः शशीव क्षामतां ययौ ॥ १२७ ॥
पालकोऽथ सुतं ज्ञात्वा सभार्यः पृथिवीपतिः ।
गाढाभिलाषं मातङ्ग्यां चिन्ताशोकाकुलोऽभवत् ॥ १२८ ॥
राजानं दुःखसंतप्तं तनयस्नेहयन्त्रितम् ।
प्राहावन्तिवती देवी धिगेवं कुलपांसनम् ॥ १२९ ॥
राजा राजकुले जातो विद्याभिरभिसंस्कृतः ।
अतीव कोऽप्ययोग्येषु विधत्ते साभिलाषताम् ॥ १३० ॥
पापः कोऽप्येष जठरे मया भारश्चिरं धृतः ।
अस्य शीलेन नः सर्वं संशये पतितं कुलम् ॥ १३१
शीलं राज्ञां दिशां चन्द्रस्तारुण्यं हरिणीदृशाम् ।
लतानां मधुमासश्च विभूषणमकृत्रिमम् ॥ १३२ ॥
विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः ।
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥ १३३ ॥

तां राजपुत्रीं नागेन दृष्ट्वा विप्रहृदे जने ।
ररक्ष करिणं हत्वा कोऽपि चण्डालदारकः ॥ १३९ ॥
ततः परस्परप्रेमविलोकनमहोत्सवे ।
तयोर्मर्मा मनोग्रन्थिविदग्धो मकरध्वजः ॥ १४० ॥
सेवाभिरौपधैर्मन्त्रैः प्रीतिः कालेन जायते ।
दृष्टमात्रस्तु वल्लभ अतीव दयितो जनः ॥ १४१ ॥
स चण्डालकुमारोऽथ गत्वा तद्विरहाकुलः ।
श्मशाने वह्निमादाय जीवितं त्यक्तुमुद्ययौ ॥ १४२ ॥
तमुवाच ततस्तत्र भगवान्पावकः स्वयम् ।
कानीनस्त्वं मम सुतो न त्वं चण्डालदारकः ॥ १४३ ॥
कपिलाख्या ब्राह्मणस्य पुत्री कपिलशर्मणः ।
मया समागता पूर्वं त्वामसूत रविप्रभम् ॥ १४४ ॥
त्यक्तस्तया कन्ययैव कुन्त्या वैकर्तनिर्यथा ।
चण्डालेनासि संप्राप्य गोक्षीरेण विवर्धितः ॥ १४५ ॥
गच्छ याचस्व तां कन्यां भूपालं ब्राह्मणो भव ।
प्राक्कर्मजोऽयं संसर्गदोषः क्षुष्टो मयाद्य ते ॥ १४६ ॥
श्रुत्वेति पावकवचो गत्वा सेनाजितं नृपम् ।
कन्यामयाचत प्रौढश्चुकोपास्मै ततो नृपः ॥ १४७ ॥
ततस्तु जन्मवृत्तान्तं यथोक्तं स्वयमग्निना ।
देवदूतो दिवः प्राह तच्चामन्यत भूपतिः ॥ १४८ ॥
ततः कुरङ्गीं संप्राप्य चिरं विरहतापिताम् ।
पित्रार्पितामिति प्रायो देवा यान्त्यपि दुष्कुले ॥ १४९ ॥

इति कुरङ्ग्याख्यायिका ॥ ४ ॥

राजा मलयसिंहोऽभूत्पुरे राजगृहाभिधे ।
तस्य मायावती नाम तनयाभूत्सितस्मिता ॥ १५० ॥

---

१. 'गा राजपुत्री नागेन दृष्टा वि' ख. २. 'नो य' ख.

अवन्तिवर्धनस्तत्र राजपुत्रोऽप्यमुत्सुक ।
दृष्ट्वा चण्डालकन्या तामभवत्स्मरतापित ॥ १२६ ॥
ततस्तद्विरहायासपाण्डुर प्रतिवासरम् ।
कृष्णपक्षकृतालम्ब शशीव क्षामता ययो ॥ १२७ ॥
पालकोऽथ सुत ज्ञात्वा सभार्य पृथिवीपति ।
गाढाभिलाप मातङ्ग्या चिन्ताशोकाकुलोऽभवत् ॥ १२८ ॥
राजान दु खसतप्त तनयस्नेहयन्त्रितम् ।
प्राहावन्तिवती देवी धिगेव कुलपासनम् ॥ १२९ ॥
राजा राजकुले जातो विद्याभिरभिसंस्कृत ।
अतीव कोऽप्ययोग्येपु विधत्ते साभिलापताम् ॥ १३० ॥
पाप कोऽप्येप जठरे मया भारश्चिर धृत ।
अस्य शीलेन न सर्व सशये पतित कुलम् ॥ १३१
शील राज्ञा दिशा चन्द्रस्तारुण्य हरिणीदृशाम् ।
लताना मधुमासश्च विभूपणमकृत्रिमम् ॥ १३२ ॥
विदेशेपु धन विद्या व्यसनेपु धन मति ।
परलोके धन धर्म शील सर्वत्र वै धनम् ॥ १३३ ॥
इति जायावच श्रुत्वा प्राह पालकभूपति ।
देवि चण्डालकन्यैपा दिव्यजातिरिवेक्ष्यते ॥ १३४ ॥
रूपमुत्तममम्लाना कान्ति सप्रतिभ वच ।
गणनीया गुणश्रीश्च सूचयन्ति न नीचताम् ॥ १३५ ॥
धात्रा शापावतीर्णासौ क्वापि स्वर्गवधूर्ध्रुवम् ।
रज्यते जातिदोपेण मर्त्यसस्पर्शदूपणात् ॥ १३६ ॥
नगरे सुप्रतिष्ठाख्ये राज्ञ सेनाजित पुरा ।
पुत्री कुरङ्गिका नाम विहर्तु वनमाययौ ॥ १३७ ॥
अत्रान्तरे मदगजस्त्रुटितालानशृङ्खल ।
धावत्प्रमाद् तामेत्य नीलाद्रिरिव जङ्गम ॥ १३८ ॥

तीं राजपुत्रीं नागेन दृष्ट्वा विप्रहृदे जने ।
ररक्ष करिणं हत्वा कोऽपि चण्डालदारकः ॥ १३९ ॥
ततः परस्परप्रेमविलोकनमहोत्सवे ।
तयोर्बभौ मनोग्रन्थिविदग्धो मकरध्वजः ॥ १४० ॥
सेवाभिरौपधैर्मन्त्रैः प्रीतिः कालेन जायते ।
दृष्टमात्रस्तु वशद अतीव दयितो जनः ॥ १४१ ॥
स चण्डालकुमारोऽथ गत्वा तद्विरहाकुलः ।
श्मशाने वह्निमादाय जीवितं त्यक्तुमुद्ययौ ॥ १४२ ॥
तमुवाच ततस्तत्र भगवान्पावकः स्वयम् ।
कानीनस्त्वं मम सुतो न त्वं चण्डालदारकः ॥ १४३ ॥
कपिलाख्या ब्राह्मणस्य पुत्री कपिलशर्मणः ।
मया समागता पूर्वं त्वामसूत रविप्रभम् ॥ १४४ ॥
त्यक्तस्तया कन्ययैव कुन्त्या वैकर्तनिर्यथा ।
चण्डालेनासि संप्राप्य गोक्षीरेण विवर्धितः ॥ १४५ ॥
गच्छ याचस्व तां कन्यां भूपालं ब्राह्मणो भव ।
प्राक्कर्मजोऽयं संसर्गदोषः क्षुप्तो मयाद्य ते ॥ १४६ ॥
श्रुत्वेति पावकवचो गत्वा सेनाजितं नृपम् ।
कन्यामयाचत प्रौढश्रुकोपास्ते ततो नृपः ॥ १४७ ॥
ततस्तु जन्मवृत्तान्तं यथोक्तं स्वयमग्निना ।
देवदूतो दिवः प्राह तच्चामन्यत भूपतिः ॥ १४८ ॥
ततः कुरङ्गीं संप्राप्य चिरं विरहतापिताम् ।
पित्रार्पितामिति प्रायो देवा यान्त्यपि दुष्कुले ॥ १४९ ॥

इति कुरङ्गाख्यायिका ॥ ४ ॥

राजा मलयसिंहोऽभूत्पुरे राजगृहाभिधे ।
तस्य मायावती नाम तनयाभूत्सितस्मिता ॥ १५० ॥

---

१. 'सा राजपुत्री नागेन दृष्ट्वा वि' ख. २. 'नो य' ख.

वसन्ते संततामोदनन्दितेन्दीवराकुले ।
सा कदाचिद्वरोद्याने विजहार मनोहरे ॥ १५१ ॥
ततो यदृच्छया यातः सुप्रहाराभिधो युवा ।
ददर्श धीवरः कान्तां तां तारुण्यतरङ्गिणीम् ॥ १५२ ॥
दृष्ट्वैव तद्गुणक्षिप्तकंदर्पबडिशेन सः ।
तूर्णं हृतमनोमीनः शून्यो ह्रदं इवाभवत् ॥ १५३ ॥
स तु ध्यानपरो गत्वा मुमूर्छास्वस्थविग्रहः ।
पृष्टो जनन्या स्वं वृत्तं शनैर्लज्जानतोऽवदत् ॥ १५४ ॥
धीवरी धीवरी साथ ज्ञात्वा रक्षिमिकाभिधा ।
मत्स्योपायनहस्ता तां सेवितुं कन्यकां ययौ ॥ १५५ ॥
चिरेण सेवया तस्यास्तुतोष नृपपुत्रिका ।
प्रीतिजालैर्मनोमत्स्यः कस्य नाम न कृष्यते ॥ १५६ ॥
करवाणि प्रियं सत्यं तवेत्युक्तवतीं च ताम् ।
धीवरी प्राह पुत्रो मे त्वां विना याति पञ्चताम् ॥ १५७ ॥
राजपुत्री निशम्येति ध्यात्वोवाच तथेति ताम् ।
प्रतिश्रुतं हि महतां पश्चात्तापैर्न लुप्यते ॥ १५८ ॥
ततः स्नातस्तयाहूतो भूषितः सुरभीकृतः ।
न्यस्तः स धीवरयुवा शय्यायां गुप्तमन्दिरे ॥ १५९ ॥
सहिता गुह्यराजेन राजपुत्री ततोऽविशत् ।
निशि शय्यागृहं स्निग्धा चन्द्रकान्तिरिवाम्बरम् ॥ १६० ॥
तमालिलिङ्ग सा तत्र हर्षपीयूषवर्षिणी ।
अदृष्टपूर्वसंस्पर्शकातरं भृशविह्वलम् ॥ १६१ ॥
चिरान्मनोरथप्राप्त्या प्रशान्तविरहानलः ।
स भेजे क्षीणधैर्यत्वात्क्षणं मोक्षोपमां दशाम् ॥ १६२ ॥
श्रमात्सुरतासक्तः स निद्रां क्षिप्रमाययौ ।
अधन्यः को हि दैवेन फलकाले न वञ्चितः ॥ १६३ ॥

---

१. 'गुप्त' ख. २. 'मत्स्यमिकयम्' ख.

निद्रानिश्चेष्टमालोक्य तं राजतनया ययौ ।
लघुसंचारनिभृता करस्थगितनूपुरा ॥ १६४ ॥
अहमभ्रष्टकौमारा प्राप्तकामश्च धीवरः ।
उभयोः कुशलं दिष्ट्या ध्यात्वेति प्रीतिमाप सा ॥ १६५ ॥
नष्टधीर्धीवरः कान्तां प्रबुद्धो वीक्ष्य निर्गताम् ।
उक्त्वा हा वञ्चितोऽस्मीति बभूव सहसा व्यसुः ॥ १६६ ॥
विज्ञाय तं तथाभूतं राजपुत्री सुदुःखिता ।
तस्यानुशरणं वह्निप्रवेशे निश्चयं व्यधात् ॥ १६७ ॥
ततो विदितवृत्तान्तः शोकलज्जाकुलो नृपः ।
तनयावत्सलश्चक्रे शंकराराधनव्रतम् ॥ १६८ ॥
तस्य सत्यव्रतस्याग्रे प्रोच्चचार वचो दिवः ।
नरेन्द्र सुमहारोऽयं पूर्वं विप्रो न धीवरः ॥ १६९ ॥
पुरा नागस्थलग्रामे द्विजन्माभून्महीधरः ।
तस्यायं तनयो गङ्गातीरे तत्याज जीवितम् ॥ १७० ॥
प्राणप्रयाणसमये दृष्ट्वाग्रे मत्स्यजीविनम् ।
स स्पृहावासनातुल्यां जातिं प्राप्तोऽद्य गर्हिताम् ॥ १७१ ॥
तस्यानुपतिता वह्निं तद्भार्येयं सुता तव ।
आयुषोऽर्धेन पुत्र्यास्ते जीवत्वेष द्विजाकृतिः ॥ १७२ ॥
इत्याकर्ण्य नभोवाणीं स तया लम्भितायुषे ।
तस्मै ददौ तां तनयामिति प्राग्जन्मसूचिकाम् ॥ १७३ ॥

इति धीवराख्यायिका ॥ ५ ॥

पुरायोध्याधिनाथेन भूभुजा वीरबाहुना ।
वीरचर्याप्रसक्तेन प्राप्तश्चौरो महार्थहृत् ॥ १७४ ॥
एकचारी स निहतः शूलेन गरशूलहृत् ।
दृष्टः पूर्वं वणिक्पुत्र्या रामदत्तास्यया पुरा ॥ १७५ ॥

१. 'ष्ट' ख. २. 'महाधन.' ख.

सा निबद्धा दृढस्नेहा दृढबन्धानुरागिणी।
दुर्गोपहारमात्मानं तं विना कर्तुमुद्ययौ ॥ १७६ ॥
प्रसन्नवत्सला देवी प्राह तामथ पार्वती।
मा कृथा साहसं पुत्रि स चौरो गुलिकाधरः ॥ १७७ ॥
विद्याधरी पूर्वभार्या तस्य त्वं हृदयप्रिया।
शापः क्षीणोऽद्य युवयोर्भज विद्यां कुलोचिताम् ॥ १७८ ॥
इति देवीवरात्प्राप्तविद्या गत्वा च सा निशि।
अजीवयत्स्थितं शूले चौरं प्रक्षीणकिल्बिषम् ॥ १७९ ॥
ततो विद्याधरपदं प्राप्य तौ बभतुर्दिवि।
इति नीचदशां यान्ति खेचरा अपि कारणात् ॥ १८० ॥

इति चौराख्यायिका ॥ ६ ॥

पालकः कथयित्वेति सुतस्नेहादयाचत।
दूतैरुत्पलदत्ताख्यं चण्डालं तां सुमध्यमाम् ॥ १८१ ॥
याचितः प्राह मातङ्गो भुङ्क्ते यदि मे गृहे।
अष्टादशसहस्राणि द्विजानां राजशासनात् ॥ १८२ ॥
तदियं दीयते कन्या राज्ञे सुरतमञ्जरी।
इति तत्प्रेरितो राजा भोक्तुं विप्रानचोदयत् ॥ १८३ ॥
भीता नृपादधर्माच्च द्विजास्ते शरणं ययुः।
उज्जयिन्यां महाकालं चण्डालान्नविकूणिताः ॥ १८४ ॥
ततः कृशांस्तानवदद्व्योमात्राणं त्रिलोचनः।
द्विजेन्द्रो न स चण्डालः शापाद्विद्याधरो हि सः ॥ १८५ ॥
युष्माभिर्दृष्टमात्रोऽसौ स्वां तनुं प्रतिपत्स्यते।
न दूष्य इति रुद्रस्य शासनाच्चे ययुर्द्विजाः ॥ १८६ ॥
ततस्तद्दर्शनादेव स विद्याधरतां गतः।
उवाच पालकं हृष्टः स तामादाय सुन्दरीम् ॥ १८७ ॥

१. 'पर्मेस' ग.

अहं मतङ्गदेवाख्यो राजा विद्याधरेश्वरः ।
नियुक्तो गौरिमुण्डेन नरवाहवधे पुरा ॥ १८८ ॥
ततोऽहं तद्वधोद्युक्तः प्रच्छन्नः शूलपाणिना ।
शप्तश्चण्डालतां यातो द्विजसंघागमावधि ॥ १८९ ॥
सोऽहं विमुक्तशापोऽद्य पुत्री सुरतमञ्जरी ।
दत्तेयं तव पुत्राय मया कर्पूरहासिनी ॥ १९० ॥
इति तेनार्पितां प्राप्य तां हृष्टावन्तिवर्धनः ।
विललास सरावासमानसो रतिलालसः ॥ १९१ ॥
विद्याधरोऽपि तां दत्वा सुतां सुरतमञ्जरीम् ।
नभो विगाह्य प्रययौ लोलहारांशुमण्डलः ॥ १९२ ॥
याति काले सरसेरा रत्नपर्यङ्कशायिनी ।
केनापि मायिनाभ्येत्य सा हृता नेत्रकौमुदी ॥ १९३ ॥
ततस्तद्विरहायाससतप्तेऽवन्तिवर्धने ।
पालकान्तःपुरे तारं चचाररोदनध्वनिः ॥ १९४ ॥
अथ देव त्वदादेशादयं धूमशिखः क्षणात् ।
अवन्तिवर्धनं मां च गृहीत्वागात्त्वदन्तिकम् ॥ १९५ ॥

इति सुरतमञ्जरीकथा ॥ ७ ॥

वचो भरतरोहस्य श्रुत्वेति नरवाहनः ।
मोचितां राजपुत्राय ददौ सुरतमञ्जरीम् ॥ १९६ ॥
तामादाय गते तस्मिन्विद्यया पालकात्मजे ।
दूतं मुमोच दुर्वृत्तं कृपया नरवाहनः ॥ १९७ ॥
ततः कदाचिदास्थानसमासीनं तमभ्यधात् ।
प्रियासुहृन्मन्त्रिवृतं कश्यपः श्रेयसां निधिः ॥ १९८ ॥
चक्रवर्तिपदं प्राप्य राजन्विद्याधरश्रियम् ।
नयोपामगुणोद्योगैः कुर्वीथा नित्ययौवनम् ॥ १९९ ॥
मदेन नष्टा बहवः शूरा ये चक्रवर्तिनः ।
वह्निज्वाला जलेनेव श्रीर्मदेनोपशाम्यति ॥ २०० ॥

कौतुकेनेव कामिन्यो गीतेनेव मृगाङ्गनाः ।
दर्पाङ्कुरेण नश्यन्ति पेशला नृपतिश्रियः ॥ २०१ ॥
मन्त्रगुप्तिरविश्वासो विक्रान्तिर्मित्रसंग्रहः ।
विनयश्चेति भूपानां लक्ष्मीरक्षासमुच्चयः ॥ २०२ ॥
दानशीलाः क्षमावन्तः समानाः सुखदुःखयोः ।
धैर्यद्वितीया राजानो वसुधानन्दनिर्झराः ॥ २०३ ॥
आसीच्चन्द्रावलोकाख्यः शिबीनामुर्वरापतिः ।
तस्य तारावलोकोऽभूत्तनयो यशसां निधिः ॥ २०४ ॥
यद्यत्प्रार्थयते यो यस्तत्तस्मै प्रददाम्यहम् ।
इत्यसौ राजतनयो व्यधात्पटहघोषणम् ॥ २०५ ॥
कुलक्रमागतस्तस्य बभूव जयकुञ्जरः ।
यस्य दन्तार्गलयुगं रक्षा भुवनमण्डले ॥ २०६ ॥
तच्छत्रुप्रेरिताः प्राप्य ब्राह्मणास्तं ययाचिरे ।
गजं कुवलयापीडं मानपीडाकरं द्विषाम् ॥ २०७ ॥
तमकृत्रिममायूरच्छत्रं भ्रमरकुण्डलैः ।
याचितः प्रददौ तेभ्यो राजपुत्रो जयद्विपम् ॥ २०८ ॥
दत्ते तस्मिन्महानागे रक्षागेहे जयश्रियः ।
पौराणां जातदुःखानां सोऽभवच्छोच्यतां नृपः ॥ २०९ ॥
(ततो विवासितः सर्वैरमात्यैर्जनकेन च ।
ययौ तपोवनं दाता स सभार्यः सपुत्रकः ॥ २१० ॥
अरण्ये याचितोऽभ्येत्य ब्राह्मणैः पुत्रकावपि ।
रात्मक्ष्मणनामानौ मार्द्री च दयितां ददौ ॥ २११ ॥
ततस्तुष्टे सुरपतौ विस्मिते द्युसदां गणे ।
श्वेतं कुञ्जरमादाय तमेत्य श्रीरयाचत ॥ २१२ ॥
प्रति विद्याधरेन्द्राणां भज त्वं चक्रवर्तिताम् ।
इति तच्छासनात्प्राप सानुगः स महत्पदम् ॥ २१३ ॥

१. 'एतच्छ्लोकद्वयान्तर्गतपाठ.' ख-पुस्तके त्रुटित.

इत्येवं सत्त्वयुक्तानां नम्राणां सत्यवादिनाम् ।
क्षमाप्रसन्नमनसां स्वयमाया)न्ति संपदः ॥ २१४ ॥

इति तारावलोकाख्यायिका ॥ ८ ॥

इति मुनिवरवाक्यादाप्तसंतोषपोषो
गगनचरसहस्रैर्वन्द्यमानः प्रसन्नः ।
शिखिगिरगरलालीश्यामलाम्भोदमाला-
कलितललितलोकाकामिनी(भिर्ललास)[3] ॥ २१५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बृहत्कथामञ्जर्यां सुरतमञ्जरी नामाष्टादशो लम्बकः ।

---

## उपसंहारः ।

चक्रवर्तिपदं प्राप्य विद्याधरधराभुजाम् ।
अधुना निजवृत्तान्तं ब्रूते स नरवाहनः ॥ १ ॥
परत्वेनात्मचरितं ख्यापयंश्चन्द्रमौलिना ।
निबद्धकविताचक्राद्वत्सराजात्मजः स्वयम् ॥ २ ॥
कश्यपस्याश्रमे श्रीमानसिताचलकन्दरे ।
मातुलस्य मुनीनां च भार्याणां चाब्रवीत्पुरः ॥ ३ ॥
पुत्रोऽहं वत्सराजस्य हर्षेणाहं महत्पुरी ।
वर्धमानकथां श्रुत्वा शक्तिवेगेन वर्णिताम् ॥ ४ ॥
तां चतुर्दारिकाख्यां ततो वज्रप्रभोदिताम् ।
सूर्यप्रभस्य विजयं श्रुत्वा विद्याधरप्रभोः ॥ ५ ॥
भाविनीं च निशम्याहमात्मनश्चक्रवर्तिताम् ।
विद्याधरी खेचरेभ्यः सोत्साहचरितोऽभवम् ॥ ६ ॥
ततः कलिङ्गसेनायाः सुतां मदनमञ्चुकाम् ।
अवापं मन्मथः सोऽहं रतिं जन्मान्तरं गताम् ॥ ७ ॥

---

१. 'प्रतापः' ग. २. 'गलगरलालिश्या-' ख. ३. एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठः पुस्तकेनोपलभ्यते.

लब्ध्वा जिनेन्द्रसेनाख्यां राजपुत्रीमहं ततः ।
केनापि भूतेनाश्रौषं हृतां मदनमञ्चुकाम् ॥ ८ ॥
अथ तद्विरहार्तोऽहं नीतो विद्याधरश्रिया ।
पिशङ्गजटनामाथ मुनिराश्वासयन्मुहुः ॥ ९ ॥
शशाङ्कवत्यामासक्तमनसो विपुलां कथाम् ।
ऊचे मृगाङ्कदत्तस्य वियोगानङ्गशालिनी ॥ १० ॥
ततः कण्वमुनिः प्राह मामन्यस्मिंस्तपोवने ।
राज्ञो विषमशीलस्य दिव्यं चरितमद्भुतम् ॥ ११ ॥
ततो द्विजसुताभ्यां च कथितां बद्धकौतुकाम् ।
अवाप्तिमिन्दिरावत्याः श्रुत्वाहं स्वपुरीं गतः ॥ १२ ॥
तत्र प्रियावियोगार्तं गोमुखः प्राह मां सुहृत् ।
मुक्ताकेतुः खेचरेन्द्रः प्राप पद्मावतीं यथा ॥ १३ ॥
अत्रान्तरे वेगवती नाम विद्याधरात्मजा ।
निनाय मत्प्रिया यत्र स्थिता मदनमञ्चुका ॥ १४ ॥
हत्वा मानसवेगं तमा····हृतां प्रिया मम ।
प्राप्य विद्याधरीं तां च प्रयातोऽहं निजां पुरीम् ॥ १५ ॥
रत्नप्रभा ततः प्राप्ता मया विद्याधरप्रभोः ।
सुता हेमप्रभाख्यस्य तुहिनाचलवासिनः ॥ १६ ॥
ततोऽलंकारशीलस्य विद्याधरपतेः सुता ।
लब्धालंकारवत्याख्या मयालंकरणं रतेः ॥ १७ ॥
ततश्च शक्तियशसं ततः स्फटिकपुत्रिकाम् ।
अवापं त्यक्तचापस्य मन्मथस्यायुधं नवम् ॥ १८ ॥
ततो मन्दरदेवाख्यं जित्वा विद्याधराधिपम् ।
गौरीमुण्डं च विस्तीर्णामभजं चक्रवर्तिताम् ॥ १९ ॥
वत्सराजं ततः श्रुत्वा यातं शक्रोपमं दिवम् ।
संगतो मातुलेनास्मिन्कश्यपस्य तपोवने ॥ २० ॥

अतीतमात्मचरितं प्रोवाचेत्यसिताचले ।
सुहृदां च मुनीनां च पुरतो नरवाहनः ॥ २१ ॥

इत्यनुक्रमणिका ॥ १ ॥

कथापीठे कथावक्त्रलम्बो लावानकस्ततः ।
नरवाहनजन्माख्यः स्याच्चतुर्दारिका ततः ॥ २२ ॥
सूर्यप्रभस्ततो ज्ञेयस्ततो मदनमञ्चुका ।
वेलालम्बस्ततः प्रोक्तः स्याच्छशाङ्कवती ततः ॥ २३ ॥
लम्बो विषमशीलाख्यस्तथा नु मदिरावती ।
पद्मावती नाम लम्बस्ततः स्यात्पञ्चलम्बकाः ॥ २४ ॥
रत्नप्रभा च तदनु ततोऽलंकारवत्यपि ।
ततः शक्तियशा नाम लम्बको बहुकौतुकः ॥ २५ ॥
महाराज्याभिषेकश्च पश्चात्सुरतमञ्जरी ।
इत्यष्टादशभिर्युक्तां लम्बैः शर्वोदितां कथाम् ।
काणभूतिर्गुणाढ्याय गणाच्छ्रुत्वा न्यवेदयत् ॥ २६ ॥

इति लम्बकसंग्रहः ॥ २ ॥

इत्येतां विपुलाश्चर्यां स राजा सातवाहनः ।
गुणाढ्याच्छिष्यसहितः समासाद्य बृहत्कथाम् ॥ २७ ॥
परामृतरसक्षीबो घूर्णमान इवानिशम् ।
सप्तलक्षाणि नामानीत्यभूत्सानुशयो मुहुः ॥ २८ ॥
सेयं हरमुखोद्गीर्णा कथानुग्रहकारिणी ।
पिशाचवाचि पतिता संजाता विघ्नदायिनी ॥ २९ ॥
अतः सुरनिषेव्यासौ कृता संस्कृतया गिरा ।
समां भुवमिवानीता गङ्गा श्वभ्रावलम्बिनी ॥ ३० ॥
काश्मीरको गुणाधारमकण्डश्चाभिधोऽभवत् ।
नानार्थिजनसंकल्पपूरणे कल्पपादपः ॥ ३१ ॥

यस्य मेरोरिवोदारकल्याणापूर्णसंपदः ।
अगणेयमभूद्गेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम् ॥ ३२ ॥
सूर्यग्रहे त्रिभिर्लक्षैर्दत्त्वा कृष्णाजिनत्रयम् ।
अल्पप्रदोऽस्मीत्यभवत्स लज्जानतकंधरः ॥ ३३ ॥
स्वयंभूनिलये श्रीमान्यः प्रतिष्ठाप्य देवताः ।
दत्वा कोटिचतुर्भागं देवद्विजमठादिषु ॥ ३४ ॥
पूजयित्वा स्वयं शंभुं प्रसरद्बाष्पनिर्भरः ।
गाढं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत ॥ ३५ ॥
क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सु विश्रुतः ।
प्रयातः कविगोष्ठीषु नामग्रहणयोग्यताम् ॥ ३६ ॥
श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधवारिधेः ।
आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः ॥ ३७ ॥
श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः ।
धन्यतां यः परं यातो नारायणपरायणः ॥ ३८ ॥
कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषितः ।
प्रार्थितो रामयशसा सरसः स्वच्छचेतसा ॥ ३९ ॥
कथामेतामनुध्यायन्दिनेषु विपुलेक्षणः ।
विदधे विबुधानन्दसुधास्यन्दतरङ्गिणीम् ॥ ४० ॥
स श्रीदेवधराख्यस्य द्विजराज्यपदस्थिते ।
सर्वज्ञस्याज्ञया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ॥ ४१ ॥

इति व्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रविरचिता बृहत्कथा संपूर्णा ॥

उत्पलद्वीप—१२०, ७५; १२२, ९०; १३२, २१३.
उत्पलाक्ष्य—५९२, ६२०.
उदयतुङ्ग—२५१, ४४६.
उदयन—३७, ५३; ४५, १४२; ४६, १४; ४८, ३२; १८२, ३००.
उदयवती—२५३, ४६२.
उदारचरित—५१५, ६५.
उन्मादिनी—७०, २४, २६; ७१, ३१; ३६३, ९३९, ९४६; ३६४, ९५२; ३६५, ९६६, ९६८; ३६६, ९७६.
उपकोशा—१२, ६९, ७०; १३, ७६; १४, ८८, ९६; १५, १०४; १६, ११०; २४, २०९.
उपवर्ष—९, २४, २५, २६; १२, ६९; १५, १०२; २४, २१०.
उपेन्द्रशक्ति—२७६, ७५०.
उर्वशी—७८, ११५, ११७, ११८, १२०, १२३.
ऋतुपर्ण—५३९, ३५३, ३६०, ३६५; ५४०, ३६७.
एणकर्ता—२२८, १५७.
कम्बुकस्थान—१३३, १३३.
कटाहद्वीप—६०, १८३.
कण्व—८११, २, ४; ६१८, ११.
कदलीगर्भा—१९१, ४०७.
कनकपुरी—११६, २०, २२; ११७, २८; १२२, ९३; १३१, २०६; १३५, २५०, २५६; १३६, २५७.
कनकमञ्जरी—२८२, ३३४, ३३५; २८३, ३४३, ३४५; २८४, ३५१; २८५, ३६३; २८६, ३७७; २८७, ३८७.
कनकवर्ष—११६, २६.
कनकरेखा—११६, १९; १३०, १९६; १३१, २०४; १३५, २५५.
कनकवती—३४९, ७६८.
कन्दर्प—४०३, १२, २१; ४०४, २३, २५; ४०५, ४३; ४०५, ४५, ४६, ४७; ४०६, ५०, ५१, ५३, ५४; ५६.
कन्दर्पसेन—२२२, ८५; २२३, ९९; ४०२, ८; ४०७, ७२; ४०९, ९६; ४१०, १०९.
कपालविस्फोट—१२७, १५३.
कपालस्फोट—१२४, ११९; १२७, १५६.
कपिलशर्मा—६११, १४८.
कपिला—६११, १४४.
कपिलानगरी—७९, १२६.
कमलनगर—५३३, २८३.
कमललोचना—४०४, ३९, ३२; ४०५, ३७.
कमलाकर—२२८, १६३; २३८, २८३, २८६; २४०, ३०६; २४२, ३३३; २४३, ३३६, ३४२; २४४, ३४९; २४५, ३६१; २४६, ३७७; २४७, ३८८; २४८, ४०५; ३७७, ११९७, ११२७; ३७८, ११३५.
कमलाक्ष—२५१, ४४७.
करट—५६१, २६४.
करटक—५६२, २६७; ५६८, ३४५; ५७०, ३६०.
करम्भ—८, २०.
कर्णोत्पल—२९५, ९५; २९८, ११५; २९९, १४७; ३००, १५४.
कर्पूरचन्द्र—५०२, ४१७.
कर्पूरद्वीप—५०८, ४८९.
कर्पूरमञ्जरी—५०२, ४१४, ४१५, ४१६,

४१७, ४२१; ५०७, ४७३; ५०८, ४९०; ५०९, ५००, ५०७.
कलहकारी—११३, ११४.
कलावती—१४८, १३३; २२२, ८६; ४१८, ९४; ४२०, १२२.
कलिङ्गदत्त—१५८, ८; १६०, ३६; १६१, ८१; १६७, १११; १७१, ११८; १७४, २०२; १८१, २८७; १८७, ३५८, ३६१; १९७, ४७३.
कलिङ्गसेन—१८१, २८५; १९७, ४७४.
कलिङ्गसेना—१६९, १३७; १७२, १८७; १७४, १९४; १८०, २६१; १८१, २८१; १८६, ३४८; १८७, ३५६; १८८, ३६६, ३७४; १८९, ३०५; २००, ५०५, ५०७, ५०८, ५१३, ५१५, ५१६; २०१, ५२०; २०२, ५२७; २०३, ५४४; २०४, ५५६, ५६४; २०५, ५६५, ५७१, ५७४; २०६, ५८५; २०८, ६०५, ६०६, ६०७; ४२४, १६८; ४२७, २०३; ४३१, २५४; ६०७, ९८; ६१७, ७.
कल्याणवती—५५३, १५८.
कश्यप—६०६, ८४, ८६, ८७; ६१५, १९८; ६१७, ३; ६१८, २०.
काञ्चनपुर—३२३, ४१३; ५२१, २६०.
काञ्चनपुरी—१२०, ७१, १२८, १७१, १७५, १३१, २०३; ३४९, ७६१; ५५५, १८३.
काञ्चनप्रभा—५११, १६.
काञ्चनमाला—५६, ११६.
काणी—५०६, ४६४.
काणभूति—७, ४, ५, १२; २५, २, ३, २२१; २६, १८; २९, ५२; ३२, ८४, ३३, २; ६१९, २६.
कात्यायन—६, ७०; ७, २, ८, ११; २०, १६१; २३, २०५; २०६, ५८२.
कात्यायनी—३२०, १२८.
कान्तिमती—१३८, १५; १४५, ९८; २१९, ४१, ५२; २२०, ५४.
कान्यकुब्जा—२१८, ३५.
कामचूडामणि—१५६, २३८.
काम्पिल्ल—१२०, ७३, ७४.
कालक—१४३, ८१; २७९, ७८४.
कालकूट—४६८, २३३.
कालजिह्व—२५२, ४५२, ४५४.
कालनेमि—२९, ७०, ७३.
कालरात्रि—९९, ३७१, ३७२, ३७५, ३७६, ३८९, ३९४.
कालसंध—४६७, २१६.
कालिका—४६८, २३३.
काव्यालंकार—५०३, ४२८, ४३१, ४३३; ५०४, ४३७.
काशी—१२३, १०२.
काश्मीर—५९१, ६१३.
काश्यप—१२८, १२९.
किमशाभिध—३८, ५७.
कीर्तिसेना—१७६, २११, २२०, २२४, २३६; १७८, २४१, २५३; १७९, २६०, २६३, २६४, २६५.
कुट्टनीकपट—४२१, १२४.
कुण्डिननगर—१९२, ५५.
कुमारद्व—४३७, ३७.
कुमारदत्त—३७०, १०१२.
कुमुदिका—१४८, १३४; ५४८, ८८; ५४९, १०१.

गूढकर्ण—५७३, ४०२, ४०५; ५७४, ४०७, ४०९.
गूढसेन—१६९, १४३.
गोपाल—४८, २८; ५७, १४०, १४१; ५८, १५६; ६७, २६९; ७३, ५५; ७४, ७१, ७४; ७६, ९१; ७७, १०३; ८२, १६५; ६०५, ६९, ७०; ६०६, ८७; ६०७, ९०; ६०८, १०३.
गोपालक—५९, १६४; ६६, २४९, २५१; ७५, ८९; ७७, १०७; ९१, २८०; ९३, ३०३; १९०, ४७३.
गोपालरागिणी—२१८, ४०.
गोमुख—११३, १३३; २०४, ५६२; २०५, ५७४; २०६, ५७७, ५८५, ५८६, ५८८; २०७, ५९६; २१४, ७१; ४४०, ८३; ४४१, २; ४४३, ३३; ४५२, २१; ४६४, १७६; ४६५, १८७; ४६६, १९९; ४६७, २२१; ४७७, १०२; ४८१, १४९; ४८८, २४४, २४५; ४९६, ३३३, ३४५; ५००, ३८९; ५०२, ४१८; ५०३, ४२४, ४२६; ५०५, ४५९; ५०७, ४७२; ५०८, ४८९, ४९३, ४९४; ५०२, ४९८, ५०४; ५१०, ३; ५१४, ५३; ५१५, ७२; ५१७, १००; ५२३, १६६, १७०; ५२५, १८५, १८७, १९४; ५२७, २०६; ५२८, २२३; ५३०, २४६, २४९; ५३१, २२८, २५९; ५३३, २८५; ५४७, ८४; ५५०, ११७, ५५२, ११९; ५५३, १५७; ५५५, १८२; ५६१, २५५; ५८९, ५०३; ५९२, ६१९; ५९४, ६४२; ६००, १५; ६०१, २३; ६०३, ४४; ६१८, १३.
गोविन्दकूटपुर—१२७, १६३.
गोविन्ददत्त—३०, ५६, ५८.
गोविन्दस्वामी—१२२, १००; १२३, ११२.
गौडदेश—५८३, ५५०.
गौरीमुण्ड—४६३, १६१, १६८, १७०; ४६४, १७५; ४६७, २२२, २२३; ४६८, २२६, २२८; ६१५, १८८; ६१८, १९.
चक्रधर—८५, २०२.
चण्डकेतु—२३६, २५०, २५२, २५६; २३७, २६२, २६७.
चण्डपुर—४०४, २९.
चण्डप्रभ—३८९, १२७४.
चण्डमहासेन—४६, ४, ४७, २४, २५; ४८, ३१; ६६, २९९; ६०८, १०९.
चण्डरव—५६५, ३१०; ५६६, ३११.
चण्डशक्ति—२२१, ७७.
चण्डसिंह—३८३, ११९२, ११९४, ११९८; ४५६, ८१; ४६२, १५८; ४६३, १७२; ४६४, १७५, १८५; ४६७, २२३.
चण्डसेन—३२३, ४४६; ३२४, ४४९; ३९९, १४०५.
चण्डाल—६११, १४५; ६१४, १८४.
चण्डालकन्या—६१०, १२६, १३४.
चण्डालकुमार—६११, १४२.
चण्डालदारक—६११, १३९, १४३.
चण्डालदारिका—६०९, ११६.
चतुरक—५६९, ३४८, ३५०, ३५४, ३५६, ३५७.
चतुर्दारिका—६१७, ५.

चन्द्रगुप्त—२.४, २१७.
चन्द्रप्रभ—१०.१, ४०१; १.३७, ९३; १.३८, ९८; १.४२, ६३, ६६, ६८; १.४३, ७५; १.४५, १०१; ३.६६, १७६; ३.७१, १०४८, १०५०.
चन्द्रप्रभा—१.२९, १८५; १.३५, २५६; ३०२, १९०.
चन्द्रलेखा—१.२९, १८५.
चन्द्रवती—३.८२, ११८५; ५.२३, २८३; ५.३४, २८९.
चन्द्रश्री—५.५०, १२०.
चन्द्रसार—२.११, २६; २.१४, ६१.
चन्द्रसिंह—३.२१, ४२०; ३.२२, ४२०.
चन्द्रस्वामी—३.६६, १७७; ४.८४, १८१; ५.३३, २८२; ५.३४, २९३; ५.३५, ३११.
चन्द्राक्षलामा—२.२५, ११९.
चन्द्रादित्य—२.८४, ८४३.
चन्द्रावती—५.०५, ४५१.
चन्द्रावलपुर—४.४३, ७८.
चन्द्रावलोक—३.७३, १०६७; ३.७४, १०८५.
चन्द्रावलोकाख्य—६.१६, २०४.
चन्द्रिकावती—१.३९, ३६.
चमर—५.२८, २२४; ५.३०, २४१, २४२.
चम्पक—२.४, २१५, २१६, २१७.
चरमति—२.५७, ५१६.
चित्रकथ—२.२१, ७७, २.२५, ११८; २.२९, १७१.
चित्रकूटनगर—५.४३, ३६.
चित्रकूटपुर—३.७३, १०६७.
चित्रकूटाचल—१.६७, ११३.
चित्रगर्भ—५.७२, ३१३; ५.७३, ३१५.
चित्राङ्गद—१.०९, ७८; २.०२, ५४०; ५.७५, ४२५.
चिन्तामणिरत्न—४.८२, १६२.
चिरंजीवी—५.७७, ४४३; ५.८०, ४७७, ४७८; ५.८१, ४९६, ४९७; ५.८२, ५१०, ५११; ५.८३, ५२३.
चिरदाता—५.३०, २५०.
चिरायु—५.००, ३९३; ५.०१, ३९७, ४०५.
जटायु—५.१२, ३६.
जनमेजय—१.३९, ३७; १.४२, ६४.
जयदत्त—१.०४, १६.
जयसेन—४७, २४.
जानकी—५.१२, ३६.
जालपाद—१.३४, २३४, २३८, २४४; १.३५, २४६, २४७.
जिनेन्द्रसेना—२.०९, ७; २.१०, १४; २.१४, ६३; ६.१८, ८.
जिह्वा—१.८९, ३२७, ३२८, ३३०.
जीमूतकेतु—१.०७, ५१; ३.४२, ७६७; ३.६०, ९०५; ३.६१, ९२२.
जीमूतवाहन—१.०७, ५२, ५५, ६०, ६१; १.०९, ८४; १.१०, ८७, ९७; १.११, १०३, १०८; ३.४२, ७६६; ३.५२, ८०८; ३.५३, ८१७, ८१८; ३.५६, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८६१; ३.५७, ८६६; ३.५८, ८७६; ३.५९, ८८८, ८९८; ३.६१, ९१२, ९२०, ९२३; ३.६२, ९३०, ९३१, ९३३.
जीवदत्त—४.७९, १३०; ५.१८, १०८; ५.१९, ११९, १२०; ५.२१, १३९.
जीवहर—५.००, ३९५.
ज्योतिःप्रभ—५.५६, १९६; ५.५२, २२५.

ज्वालामुख—३७४, १०८२, १०८६.
टिट्टिभ—५१३, ४५.
टेण्टाकराल—४१८, ८४, ८५; ४१९, १००, १०२, १०५; ४२१, १२३.
डाकिनीक—४१६, ६७; ४२१, १२९.
तक्षशिला—२२५, ११८.
तक्षशिलापुरी—१५८, ७; १७५, २१५.
तन्तुकच्छ—१४८, १३४.
तपन्तक—४६९, ४; ४९७, ३५७; ५००, ३८८; ५४३, ३०, ३२; ५५०, ११८; ५५१, १२८, ५८९, ५८३; ५९२, ६१९.
तपोदत्त—४९६, ३३५, ३४३.
तपोवन—६१८, ११.
तरुणचन्द्र—४९८, ३६५.
ताम्रलिप्ता—५९, १६७, १७३; ६०, १८५; ६५, २४६; २२६, ११९; ४९७, २०९.
तारादत्ता—१६०, ३४, ३७; १६५, ८९.
तारावली—१४०, ३९; २२५, १२७; ३३२, ५५५; ३३३, ५७०.
तारावलोक—५३४, २९०; ५३५, ३११; ६१६, २०४.
तुहिनाचल—६१८, १६.
तेजोवती—७९, १२६; ८४, १८७, १९८; १८३, ३०२; १८६, ३३७, ३३८.
त्यागसेन—५०३, ४२७; ५०४, ४३७; ५०५, ४५५.
त्रिशूलकटङ्क—१५०, १६०.
त्रिपञ्चनामा—१२७, १५२.
त्रिविक्रमसेन—२८९, १९.
दधिकर्ण—५७८, ४६१.
दन्तघाटक—२९५, ९६, १०१; २९६, १०३; २९९, १४३.
दमधि—२३१, १९६.
दमन—५६१, २६४; ५७२, ३९१.
दमनक—५६२, २६६, २७३; ५६३, २८२; ५६५, ३०३; ५६७, ३२६; ५६८, ३४५.
दमयन्ती—५३७, ३३४, ३३६; ५३८, ३४०, ३४१, ३४३, ३४६, ३४९; ५३९, ३५४, ३६४; ५४०, ३६९.
दर्दुर—२३९, २९३; २४०, ३०८; २४१, ३१३.
दशरथ—५१२, ३३.
दामोदर—१३९, ३८; १५०, १६७.
दारवती—३९०, १२८८.
दारिका—२७९, ७८५.
दीधितिमान्—५५७, २०९.
दीपकर्ण—२६, १९; २८, ३४.
दीप्तशिख—२६४, ६०१, ६०४; २७७, ७६६.
दीर्घतपा—१२०, ७३, ७६.
दीर्घदर्शी—३३४, ५८५; ३३५, ५८८; ३३६, ६०१, ६०५, ६१०; ३४०, ६५५, ६५८.
दुःशीलनामा—१९३, ४३०.
दुःशीला—५५१, १२९.
दुःखलब्धा—८८, २३९; ९१, २७३.
दुरारोह—१४८, १३४.
दुर्गपिशाच—२३६, २४९; २६२, ५८१.
दृढमुष्टि—२२१, ७६; ३८७, १२४७, १३५३.
दृढवर्मा—१९१, ४०२; १९४, ४४०.
दृढमत—४४८, ९४, ९९.
देवजय—५५९, २२७, २२८, २३१.

देवदत्त—२०४, १६; २२३, २११; २२४, २४४; २२५, २४६.
देवदर्शन—२६५, ६०८, ६११.
देवदास—२२, २८४, २५०, २५२, २५४; २३, २५७, २५५; २६२, ४०, ४३; ५५२, १२५, १२७.
देवदूत—६११, १४८.
देवप्रभ—२८०, १४०.
देवभूति २५६, ५००.
देवमती—४२२, २८२.
देवशर्मा—४८८, ५५०.
देवधमातुर—४४८, १०१.
देवसेन—३०, २३; ८८, २१५; ८९, २५०; ९१, २७१; २७६, २२१, २२३; २७९, २५८, २६०; ४४४, १६६.
देवसोम—८, २०.
देवस्मिता—४१, १७३; ६०, १८५; ६१, १८८; ६२, २०५, २०७, २१०, २१२; ६३, २२१, २२४; ६४, २२८.
देवसानी—२१७, २६७; २१८, २७८; ३६६, ५७६; ३८०, ११६५.
धनगुप्त—४१, १६७, १७०, १७५.
धनदत्त—३०२, २०१; ३०५, २२६; ३२७, ४११, ४१२; ३६१, १०१५.
धनपालित—१७६, २२०.
धनवती—३६१, १०१७; ४६२, १५०; ५१६, २७; ५२७, ३६.
धर्मगिरि—२००, ३५०.
धर्मगुप्त—४१, १४१; ७२, ११६, ८०, ११३.
धर्मगोप—२२२, १०१.
धर्मदत्त—१६०, ३५; २२७, ४५२; ३३०, ५२४, ५२७; ३३१, ५४३; ५४४.
धर्मध्वज—३२२, ५५४.
धर्मबुद्धि—४३०, २६५, २७१. ५७२, ३७४.
धर्मशील—४२२, १६, १८.
धर्मसेन—२२६, १३१.
धवल—३१९, २५५; ३२०, ४०२, ४०५.
धवलकीर्ति—४३९, १०५.
धातुवर्मा—४७३, ५०.
धीवर—६१२, १४२, १४५; ६१३, १६६.
धीवरी—६१२, १४५, १४७.
धूमपुर—४९२, २५३.
धूलजिल्ल—४९३, ३०२; ६१५, १५५.
धूर्जट—४४३, २५.
धूर्जटी—४४१, १३.
नन्द—१५, १०१; १६, ११२, ११३; १७, १२०, १२१; १८, १२५; २०, १६७; २२, १८५, १९१.
नन्दन—२०९, ५.
नरवाद—४७४, ६८; ४७०, ७५; ४२७, ३५५; ५०२, ४१५, ४१८; ५०७, ४७२; ५०९, ४५८; ६०८, १०३, ६१५, १८८.
नरवाहन—१२६, ३६०; १५७, २४३, ३; २०७, ५५७; २०८, ६०४, ६०६; २०९, २; २१०, १८, २२; २११, २३; २१२, ५१; २१४, ६०, ६३; २१५, ७३, २, २१६, १४; २१७, ५७, २५; २२०, ५६, ५१; २२१, ६५, ७०, ४११, ११८; ४२४, २८७, २८८, ६; ४४०. ८२;

४४१, २; ४४३, ३३, ४५२, २४, ३०; ४५५, ६७, ७०; ४५६, ७३, ७९; ४५७, ८५, ९१; ४५८, १०२, १०४; ४५९, ११६; ४६०, १३४; ४६२, १६०, ४६३, १६१, १६४; ४६४, १७६, १७९, १८६; ४६५, १९७; ४६६, २०४; ४६७, २१९; ४६८, २२४, २२७, २३०, २३२; ४६९, २, ६; ४७०, ११; ४७५, ८२; ४७६, ८६, ८७, ९४, ९७; ४७७, १०४; ४८८, २४५; ४९५; ३३०; ४९७, ३५७; ४९८, ३५८; ५००, ३८७, ३९१; ५०१, ४०८; ५०३, ४२४, ५०५, ४५९; ५०६, ४७१; ५०८, ४८९; ५०९, ५००, ५०४; ५१०, २, ९; ५११, १३, २०; ५१२, ३०; ५१४, ५२; ५१५, ७२; ५१६, ७७, ७८, ८१; ५१७, ९६, १००; ५२५, १८५, १८६, १९५; ५२६, १९८, २००, २०२; ५२८, २१९; ५३०, २४६; ५३३, २८१; ५४०, ३७४; ५४३, २८; ५५४, १६८; ५५५, १७८, १८१; ५८९, ५८३; ५९२, ६१९; ५९४, २; ५९५, ९; ५९६, २७, २८; ५९७, ३१, ३३, ३६; ५९८, ४५; ५९९, ३; ६००, १३; ६०२, ३७; ६०३, ४४, ४८; ६०६, ८५; ६०७, ८८; ६१५, ११६, ११७; ६१७, १; ६१९, ३१.

[illegible]—११४, ११९; १३७, १०; २०३, ५४३; २०४, ५५५, ५५७, ५६०; २०५, ५७५; ५५१, १४; ५०३, ४२४; ५०६, ४६३ ५९७, ३०.

नरसिंह—४१९, १०७; ४८९, २४७, २४८; ४९०, २६६.

नल—५३७, ३३१, ३३८; ५३८, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४९; ५३९, ३५८, ३६०; ५४०, ३६६, ३६९, ३७०.

नलकूबर—१७४, १९८; १८०, २६६; २०४, ५६३.

नागलक्ष्मी—१६०, ३९.

नागशूर—२५५, ४९०.

नागस्थलग्राम—६१३, १७०.

नागस्वामी—४६५, १८९.

नागार्जुन—५००, ३९२, ३९३; ५०१, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०६.

नारीचञ्च—३१५, ३४५, ३१६, ३५०, ३५२.

निधिदत्त—३३५, ५९०.

निधिपाल—२०३, ५४७.

निश्चयदत्त—४८१, १५४, १५८; ४८२, १६१, १६३; ४८३, १८२; ४८४, १८५; ४८५, १९८; ४८६, २१६; ४८७, २३३; ४८८, २४०, २४३.

निषध—५३७, ३३१.

निष्ठुर—४०, ८७.

नीलकण्ठ—२८०, ८०३.

नेपाल—३४५, ७१८.

पञ्चकूटपुर—५१७, ९१.

पद्मपुर—५१८, १०६.

पद्माल—२५१, ४६६.

पद्मकूट—५५७, २०४.

पद्मगर्भ—२७२, ७०५.

पद्मदर्श—४९९, ३७३.

पद्मदर्शन—२७७, ७६४.
पद्मप्रभा—४६८, २३४; ४९८, ३६०.
पद्मरति—३२६, ४७६.
पद्मलेश्या—५५७, २०८; ५५८, २२०, २२४, २२६; ५५९, २३१.
पद्मसेन—५०५, ४५०.
पद्मा—५०५, ४५१.
पद्माख्यविषय—९४, ३१९.
पद्मावती—६९, १२; ७४, ७५; ७५, ७८, ८१; ७६, ९३, १००, १०२, ७७, १०७, १११; ८१, १५३, १६०; ९१, २८०; ९३, ३०१; १८८, ३६७; २०४, ५५४; २९५, ९८; २९६, १०५; २९९, १४८; ४४४, ४७; ४४५, ५५; ४४७, ७९, ८०; ४४८, ९०, ९३; ४४९, १०८, ११३; ६१८, ९३.
पद्मिनी—२७२, ७०५; २७७, ७६३.
परपुष्टा—१३९, ३७.
पराश्रमकेसरी—३०२, १८५.
परोपकारी—११६, १८; १३०, १९६; १३१, २०५.
पवनदत्त—४७९, १२९.
पवनसेन—४८०, १३६.
पवित्रधन—२६३, ५९४.
पाटला—११, ५३; १२; ६६, ६८; ४३९, ६८.
पाटलिपुत्र—१०, ३७, १२, ६८; ३०२, १८९;
पाटलिपुत्रक—७९, ११६; १०४, २१. ४७१, ३४; ४८९, २४६; ५४१, १२.
पाटलिपुर—९२, २८४.
पाटलिपुरी—२४, २०८.
पाणिनि—१२, ७१.
पारावत—२३२, २१०.
पारावताक्ष—२३३, २२४.
पालक—४८, २८; ५६, १३९; ५७, १४०; ५८, १५२, १५३, १५४, १५६; ६०८, १००, १०२, १०७; ६१०, १२८; ६१४, १८१, १८७; ६१५, १९७.
पालकभूपति—६१०, १३४.
पालित—६१, १५०, १९९; १९७, ४७७.
पावक—६११, १४३, १४७.
पाशुपताचार्य—२०३, ५४८.
पिङ्गल—५६१, २६१; ५६३, २७७; ५६५, ३०२.
पिङ्गलक—५७२, ३९०.
पिङ्गलगान्धार—४६२, १५८.
पिङ्गला—१०५, ३०; १०६, ३८.
पिशङ्गजट—२२०, ६५; २२१, ६७; ६१८, ९.
पुण्ड्रवर्धनपुर—८८, २३७; ९२, २८५.
पुण्यसेन—७२, ५३; ३१७, २६६, ३९९.
पुत्र—१०, ४४.
पुत्रक—१०, ४०, ४२, ४६, ४७, ४८; १२, ६०, ६१, ६७, ६८.
पुरूरवा—७७, ११४.
पुलस्त्य—५५६, १९४.
पुलिन्दक—५०, ६२; ५८, १६२.
पुष्कर—५३८, ३४६; ५४०, ३७०.
पुष्पदाम—२२५, १२२, १२६; २२६, १३४; १३६; २२९, १६८; १६९.
पुष्करावती—१६९, १४३.
पुष्करावतीपुरी—४१८, १००.
पुष्पदन्त—६, ९९; ७, १, ७, ८, २९, ५४; ३२, ८३; ३३, २.

पुष्पशेखर—४४१, ८;११; ४४३, २९.
पृथिवीरूप—५१४, ५५, ५९.
पृथूदर—२६४, ५९९.
पौरपुर—६०६, ८४.
पौरव—१३९, ३३; १४२, ६४.
प्रकम्पदंष्ट्र—१२४, ११७.
प्रकण्ड—६१९, ३१.
प्रचण्डशक्ति—२७८, ७७७; २७९, ७८१; २८७, ८७६, ८७८, ८७९.
प्रज्ञासिकौशिक—१२७, १६०.
प्रताप—५२८, २२५, २२६.
प्रतापमुकुट—१२४, १२४;१२६, १५०; २९३, ७२.
प्रतिष्ठान—४८९, २४७;
प्रतिष्ठानपुर—६, ७१; १६, ११४; ५४३, ८४.
प्रद्युम्नसनदि—५६८, ३३७, ३३९.
प्रद्योत ७६, ९३; ८३, १७६.
प्रभट—१४२, ६४.
प्रभाव—१३८, १७.
प्रभावती—४५७, ९२; ४५८, १००, १०५; १०६; ४५९, ११४, ११७; ४६०, १३५; ४६१, १३६, १४६; ४६२, १४९.
प्रयाग—१२३, १०३.
प्रवृत्त—५३१, २५१, २५२, २५३.
प्रसेनजित्—१०९, ४९८; ३१५, ३४६; ४५६, ८४.
प्रह्लाद—१४५, १०६; १४८, १३३; १५६, २३८.
प्राणधर—५०६, ४९५; ५०९, ५०३, ५०४.
प्रियदत्त—५५६, १९९.
प्रियंवद—५५९, ३३९.
प्रिया—५५२, १४१.
प्रियादत्ता—५२१, १४१.
प्लक्षपुर—५२३, १७१.
बन्धुदत्त—५३२, २७५.
बन्धुदत्ता—४८४, १९०.
बन्धुमती—५३५, ३१०; ५३६, ३१७, ३१९; ५३७, ३२९, ३३१; ५४०, ३७२, ३७३.
बर्बर—३३६, ६०१.
बलधर—३६४, ९६०.
बलवर्मा—५५०, १२०.
बलसेन—५१६, ८४.
बली—१४५, १०६; १४६, ११६; १४८, १३५.
बाहुक—५३९, ३६२, ३६४; ५४०, ३६६, ३६७.
बाहुबल—५०७, ४७४.
बाहुशाली—३९, ७४; ४०, ८८.
बिम्बकि—४१, ९३; ४४, १३६.
बुद्धिवर—४८९, २५३.
बुद्धिशरीर—२९३, ७५; २९५, ९३.
बुधदत्त—५५७, २०८.
बुधदेव—४६, ८.
बृहत्स्फिक्—५७३, ४०५; ५७४, ४०९;
ब्रह्मदण्डी—२३४, ३३०; २३५, ३३९.
ब्रह्मदत्त—९३, ३०३; ९४, ३०८, ३११, ३१७; ४४१, ४; ४४३, ३१; ४८६, २१४.
ब्रह्मधन—४७१, १४.
ब्रह्मगिरि—२१७, १६.
ब्रह्मसेनाप्रहार—३००, १५७.
ब्रह्मस्थलप्रहार—३७९, ११४५.
भगीरथयशा—४५७, ८५, ९१.

भद्र—५२७, २०३.
भद्रबाहु—२२३, १०१, १०३; २२५, ११६.
भद्रा—८७, २३२; ८८, २३६; ९०, २६७, २६९, २७०, २७१.
भरतरोह—६१५, १९६.
भवशर्मा—४८५, २०५; ४८६, २१४; ५९१, ६१३.
भविष्य—५६८, ३३७, ३४०.
भारिक—२०६, ५७८, ५८१.
भावनिका—४१, ३७, ३९.
भास—१३८, १७.
भीम—५२७, ३३३.
भीमपराक्रम—२२१, ७७; २२२, ८१; २२३, ९२; २२९, १७६; २३०, १७८; २३७, २७३; २३८, २७५; ४१०, १०१.
भीमभट—२७९, ७८१, ७९१; २८०, ७९५, ७९६, ७९९; २८१, ८०५, ८१०; २८२, ८२३; २८३, ८३७, ८३९; २८४, ८४२, ८४८, ८५७, ८६०; २८६, ८६६, ८६८, ८७०, ८७४.
भूतिवर्मा—२९, ५३.
भूनन्द—२६६, ६२४; २६८, ६५७; २७०, ६७५; २७१, ६९३.
भोगदत्त—२५६, ५००.
भोगवर्मा—२१, १७६, १७७, १७८.
भोजनचन्द्र—३१५, ३४५; ३१६, ३५०.
भद्रदंष्ट्र—५२, ८१; ५३, १०२; ५५, ११६; ५५४, ४८.
भद्रन्दिका—५५८, २२२, २२६; ५५९, २३२, २३३; ५६०, २४०, २४१, २४६.
मगध—१७६, २२१.
मङ्गुमतिका—२३७, २६३.
मङ्गुमती—२५०, ४२९, ४३०.
मणिकर्ण—३७६, ११९२, ११९४; ३७८, ११३७.
मणिदर्पण—२०९, ६.
मणिभद्रालय—६४, २३६.
मणिमान्—४५४, ४७.
मतङ्ग—२१२, ४२, ४५; ३९३, ११२७.
मतङ्गदेव—६०७, ९९; ६१५, १८८.
मथुरा—५१, ५६; २०८, ६०२.
मदनदंष्ट्र—५०४, ४४०, ४४३.
मदनमञ्चुका—२०४, ५५७; २०५, ५७५; २०६, ५८४; २०८, ६०९; २१४, ६५, ६७; २१५, ७२, ७५, ८२; २१६, १५, १६; २२०, ६१; २२१, ६६, ७०; ४११, ११७; ४३१, ९२; ४४९, ११४; ४५०, ८; ४५२, २३, २८, ३१; ४५३, ३८; ४५४, ५०, ५५; ४५५, ५९, ६८; ४५८, १०१, १०३, १०७; ४५९, ११३, ११४, ११८; ४६८, २२६; ५९८, ४७; ६०१, २३; ६१७, ७; ६१८, ८, १४.
मदनमञ्जरी—४१४, ४२, ५३१, २६१.
मदनमाला—३८२, २५०; ४२०, २६४.
मदनलेखा—१२६, १४१.
मदनवेग—१८०, २७०, २००, ५०६; २०१, ५२१; ३४१, ६६६; ६०७, ९८.
मदनसुन्दरी—२१९, ३९६; ३२०, ४०२.
मदनसेना—१३९, ३४; ३२७, ४६१.
मदिरावती—४२५, १४, २२; ४२६,

२६, ३१; ४३८, ५७, ५९; ४३९, ६४, ६९.
मधुकर—३५०, ७८२; ३५५, ८४८.
मन स्वामी—३४५, ७१९; ३४७, ७३६, ७४३; ३४८, ७५५, ७५८, ७५९; ३४९, ७६४.
मनोरथप्रभा—५५७, २०५; ५५९, २२८, २३१; ५६०, २४३, २४७.
मनोरथसिद्धि—२३९, २८७; २४५, ३६३; २४७, ३९६.
मनोरमा—२७९, ७८३, ७८९; २८६, ८६९.
मनोवती—१०९, ७५, ७९, ८३, ८४; १४८, ११४.
मनोहरा—४४७, ८३, ८५.
मन्त्रगुप्त—२२३, १०३.
मन्थर—५७३, ३९९.
मन्दरदेव—३९१, ११९३; ३९२, १२१६; ३९४, १२३७; ४६८, २२९; ५९५, १३; ५९६, २२, २७; ५९७, २९, ३४; ६१८, ११.
मन्दरदेवी—२९७, ३१, ३८.
मन्दारवती—३००, १५८; ३९१, १२९४; ३९२, १२११; ३९६, ११९८; ३९७, १२७४, ११७८; ४००, १४१९; ४०१, १४३१.
मणिरिका—४६८, २२८.
मय—१३८, १९; १४२, ६१, ६६; १४३, ७५; १४५, ९८, १००, १०२, १०३, १०४; १४८, १३८, १४०, १४१, १४२, १४४, १५६, २४०; १६९, ११९, १४१; १७४, १९५, १९६; १८७, १७५.
मरुभूति—११३, १३२; ११४, १४१; २०४, ५६१; २०७, ५९६; ४५२, २२; ४६३, १६५; ४६६, १९९; ४८८, २४५; ४९१, २७०; ४९६, ३३३, ३४४, ३४५; ५००, ३५१; ५०१, ४०८; ५२३, १६७, १७०; ५३०, २४७; ५३१, २५८; ५३३, २८१; ५४०, ३७४; ५४३, ३०, ३२; ५४७, ८३; ५५३, १५७.
मलयप्रभ—२५६, ५११.
मलयमाली—२५९, ५३६.
मलयवती—१०७, ५९, १०९, ८४; १११, १०७; ३५३, ८१६; ३५६, ८५२; ३६०, ९०४; ३६१, ९२१; ३६२, ९२७; ४२४, १६६.
मलयसिंह—४२४, १६५; ६११, १५०.
महल्लिका—१४८, १३३.
महादंष्ट्र—४६८, २३३.
महाबल—५०६, ४६४.
महामति—४१२, १६.
महार्थ—१३८, १७; १४५, १०५.
महावराह—५१८, १०१.
महासेन—६५, २४८; ८३, १७६; १५१, १७६; १५३, १९८, १९९, २०१; १५५, २२१; १५६, २३०; १८२, २९८; ३८९, ११६७; ३९२, ११७०, ११११, ११९६; ३९५, ११४७, ११५१; ४००, १४११; ४०१, १४३६.
महिपाल—२१९, ४२.
महीधर—२११, ३०; ६१३, १५०.
महीपाल—५३३, २८१; ५३४, २८९, ५३५, ३११; ५४०, ३७१.
महेन्द्रवर्मा—११, ५१; ४७, १४.

महेन्द्रादित्य—४१२, १२.

माणिभद्र—४१४, ४२.

मातङ्गी—६१०, १२८.

मातापरा—५०७, ४७५.

मातुल—६०६ ८५; ६०७, ८९, ९३; ६१७, ३; ६१८, २०.

माधव—११७, ३५, ३७; ११८, ४७, ५०, ५२.

मानसवेग—२०८, ६०५; ४५३, ४१; ४५४, ५३, ५४; ४५९, ११९; ४६०, १२५, १३१; ४६३, १६१, १६९; ४६४, १७८; ४६५, १८७; ४६७, २२२; ४६८, २२४; ६१८, १५.

मानसा—४०३, १६.

मायावटु—२३५, २४७; २३६, २४९, २६१; २३७, २६३, २६४; २४३, ४२२; २५०, ४२४, ४२६; ४२९, ४३३; २६२, ५८२; ४०७, ६८; ४०९, ९५; ४१०, १०४.

मायावती—५८, १६०; ६११, १५०.

मारीच—५५६, १९४.

मालतिका—३७७, ११२६.

मालवदेश—३९, ७०.

मालाधर—२५८, ५१२.

मालिनी—५९२, ६१०.

माल्यवत्—२५, १; २९, ५४; ३०, ६०.

मित्रावसु—१०७, ५९; १०९, ८५; ११०, ८८; १११, ९९; ३५७, ८६३, ८६४, ८६६, ८६८.

मिहिर—९५, ३२७.

मिहिरतोम—५६१, २५६; ५७२, ३९२.

मुक्तकेतु—४४३, ३०, ३३, ३४; ४४४, ४६, ४९, ५०; ४४५, ५३, ५९, ६३; ४४६, ७३, ७५; ४४७, ७८, ८१, ८४, ८८; ४४८, १००; ४४९, १०८, ११०.

मुक्ताध्वज—४४९, १०२, १०३, १०६.

मुक्तसेन—५०५, ४५०.

मुक्ताकेतु—६१८, १३.

मुक्ताद्वीप—५१४, ५६.

मुक्तापुर—५०५, ४४९.

मुक्तालता—५५५, १८४.

मुखरक—२६५, ६१५; २७२, ६९६, ७०५; २७३, ७१०, ७१६.

मूलदेव—३४६, ७२९, ७३०, ७३२; ३४८, ७५६; ७५७; ३४९, ७६३; ४३२, २७०; ४३३, २८४.

मृगदत्त—५६१, २५३.

मृगाङ्कदत्त—२२१, ७१, ७४; २२२, ८४, ९०; २२९, १७०, १७२, १७४; २३०, १८७, २३३, २१४, २१७, २२३; २३४, २२७; २३५, २४२, २४४, २४७; २३६, २५५, २५९; २३७, २६३, २६४, २६७, २७०, २७३; २५०, ४३०, ४३५; २६२, ५८०; २७८, ७६६, ७७५, ७७८; २७९, ७८१; २८६, ८७५; २८७, ८७९, ८८०, ८८१, ९; २८८, १०; ३८५, १२२४; ३८६, १२३६, १२३७; ३८८, १२६२; ४०२, ३; ४०७, ६४, ६६; ७१, ४०८, ७६, ७९, ८२; ४०९, ९७; ४१०, १०२, १०५; ४११, ११५, ११७; ६१८, १०.

मृगाङ्कलेखा—३२२, ४२६.

मृगाङ्कवती—४१,६३; ४२, ११८; ३२२, ५५५; ३३४, ५७४; ३३९, ६४६; ३४७, ७४८.
मृगाङ्कसेन—३३९, ६४६.
मृगावती—३५, २८; ३६, ३६; ३८, ६४; ४५, १४१.
मृगेश्वर—४४१, ९; ४४२, २८.
मेखलिका—४३४, १०.
मेघमाली—२३९, १८९; २४२, ३२८, ३२९; २४८, ४०५.
मेघबल—२२१, ७६; ३८७, १२४७, १२५३.
मेघवर्ण—५८३, ५२३.
मेरुध्वज—४४८, १०१.
म्लेच्छशंक—४२२, १३५.
यक्षस्वामी—४०४, २६, २८; ४०५, ४२.
यज्ञकेतुः—३१९, ३५०.
यज्ञसोम—३८०, ११६३.
यज्ञस्थलाग्रहार—३८०, ११६३.
यमजिह्वा—५४४, ३८; ५४६, ६६, ६८.
यमदंष्ट्र—३५, २१; ९०, २६४.
यमशिख—४१६, ६४.
यमुना—२१२, ४४; ३९३, १३२८.
यशःकेतु—३३४, ५८२; ३३६, ६०५; ३३७, ६२३; ३३८, ६२९, ६३२; ३४५, ७१८; ३४६, ७३३.
यशस्कर—४३४, ९.
यशोधन—३६३, ९३७.
यशोधर—५८९, ५८४.
यशोधर्मा—५२९, २२९, २३२.
युगन्धर—३४, १२; ३६, ३९; ४५, १४१.
योगकरण्डक—९४, ३०८.
योगकरण्डिका—६०, १८६; ६२, २०७; ६३, २२३; ६४, २३१.
योगनन्द—७, १; १७, १२४, १२७; २३, २०४, २०६; २४, २०९, २१२, २१७.
योगेश्वर—५१, ६६; १९५, ४४८; १९७, ४७२.
यौगन्धर—१९७, ४७०.
यौगन्धरायण—३६, ३९; ४५, १४४; ४६, ३; ४७, १६, १७; ४८, ३०; ५०, ५९; ५१, ६९, ७३; ५६, १३३; ५८, १६३; ६६, २५७; ६८, ३; ७२, ५०; ७३, ५५; ७४, ७१; ७६, ९६; ७७, १०४; ७८, १२५; ८२, १७१; ८३, १७४; ९१, २८१; ९३, ३०७; ९४, ३०९; १०२, ४१२; १०६, ४७; ११३, १३२; ११४, ३; १८७, ३५४, ३६०; १८८, ३६७; १९५, ४५०, ४५१; १९७, ४७४; २००, ५१०, ५१४; २०३, ५४५; २०४, ५६१; २०८, ६०६, ६०७; ४२१, १३; ४७६; ८६; ४७७, ९९.
रक्षिभिका—६१२, १५५.
रक्तमाली—२२५, १२७; २२९, १६८.
रत्नकूटाभिधद्वीप—४७७, १०८.
रत्नगुप्त—११३, १२९.
रत्नचन्द्रमति—२५३, ४७०, ४७३.
रत्नदत्त—१५८, ११; ३४२, ६९०; ५४१, ७.
रत्नधर्मा—५४३, ३६.
रत्नपुर—११७, ३५.
रत्नप्रभ—१४९, १४८.
रत्नप्रभा—४७५, ७३, ७७, ८३;

४७६, ८८; ४७७, ९९, १००, १०१, १०३, १०६; ४८१, १४८; ४८८, २४५; ४९५, ३३०; ६९७, ३५६, २५७; ५००, ३११; ५०२, ४११, ४२०; ५०९, ५००, ५०८; ५५७, २०५; ६१८, १६.
रेवती—२४३, ६३०.
रत्नाकरपुर—५५६, ११६.
रत्नाधिप—४७७, १०८; ४७९, ११४; ४८०, ११८.
रत्ना—१६७, ११७; १६८, ११५; १२१, १२२; १६९, १३३, १३५.
रत्नामित्र—१४०, ३९.
रत्नोदय—१४२, ६४.
रश्मिमाल्—५५७, २१०.
राजगृहालिय—६११, १५०.
राजदत्ता—४७८, १२२; ४७९, १२८, १३२.
राधा—२७२, ७८३.
राम—५१२, ३३, ३७.
रामदत्तरत्ना—६१३, १५५.
रामन—५१२, ३६.
रिपुमर्द—५७६, ४३८.
रुचिरदेव—२०९, ६; २१०, २२; २११, २४; २१४, ६२.
रुद्रशर्मा—६६, २६०; ६७, २६५; ३०१, १९९.
रुद्रपुर—४१२, १६.
रुक्मान्—३६, ३१; ४५, १४४; ६६, २५७; ६८, ३; ७४, ७४; १११, १३३; ४१०, ४.
रुष्ट—३६३, ३३७.
रूपधर—५१४, ५८; ५१५, ६७;
रूपधरा—५१४, ५७.
रूपलता—५१४, ५७, ६१; ५१५, ६८, ७१.
रूपवती—२२८, १५८; ४२८, २१३; ४२९, २२३, २२६, २२७, २३२.
रूपशिखा—४२३, २९६, २९८, ३०४; ४२४, ३०९, ३१६; ४२५, ३२९.
रूपसेन—५०५, ४१०.
रूपिणी—५२, ७८; ५३, १०१; ५४, ११३, ११४; ५५, ११७.
लक्ष्मण—५१२, ३४.
लक्ष्मीदत्त—३३७, ६११; ५९२, ६२०.
लक्ष्मीधर—५८९, ५८४; ५९०, ५५५; ५९२, ६१७.
लक्ष्मीसंक्रान्ति—२०९, ६.
लक्ष्मीसेन—५९४, ६४१.
लघुपाती—५७२, ३९२; ५७५, ४२३.
लब्धदत्त—५२३, १७१.
लब्धवर—५२१, १४७.
लम्बजिह्व—१२७, १५३.
लम्बबाहु—५२५, १८६, १९५.
लम्बभुज—५१७, १७.
ललितलोचना—२२०, ५४, ५९.
ललिता—३८, ५८.
लवपुर—३६९, १०१४.
लावण्यवती—३४१, ६६७.
लावानकपुर—९५, ३१३.
लासिका—२७२, ७८९, ७९२.
लीलावती—१४५, १०३.
लोहजङ्घ—५२, ८१; ५६, १२०, १२१.
वंचकर—५७७, ४४९.
वज्रकूट—१३७, ८.
वज्रकेतु—४४४, ४५.
वज्रदन्त—५६९, ३४१.

वज्रधर—५०६; ४६४; ५०७, ४७३; ५०८, ४८८; ५०९, ५०५.
वज्रप्रभ—१३७, ८; ४७४, ७१; ४७५, ७४; ४७७, ९८; ६१७, ५.
वज्रमुकुट—२९३, ७४.
वज्रसार—५५२, १४०, १४३, १४७.
वत्स—२५, ४; २६, १०; १३७, ११.
वत्सनरेश्वर—५०, ५८, ८१, १५३. २००, ५०८, ४५०, ३; ४५१, १३; ४५२, २९; ४६२, १५४, १५६; ४७७, १००; ५०२, ४०९, ४१९; ५०३, ४२३; ५४१, २.
वत्सनृपति—५६, १३८. ७४, ६९; ७७, १०८.
वत्सभूप—५४१, ८.
वत्सभूपति—७५, ८६; १०३, १२; १८९, ३७७; ५९८, ४४.
वत्सभूपाल—५५५, १७८.
वत्सभूभुज—१७६, ८५.
वत्समहीपति—६०२, ४२.
वत्सराज—५०, ६३; ७४, ७०; ७६, ९७; ७९, १३४; ८३, १७७; १३६, २६२; १३७, ४; १५७, २; १८१, २८५; १८२, २१४; १८६, ३४१; १८७, ३५६, ३५७; १९५, ४५४; २००, ५१०; २०१, ५१७, ५१९; २०५, ५६५, ५६८; २११, २३; ४५०, २; ४६२, १५५; ४७५, ८४; ५०२, ४१०; ५१६, ७८, ५२७, २०४; ५४३, १७, ५५२, १४०; ५९८, ५४; ६१७, ४; ६१८, १०.
वत्सेश—४९, ४६; ५८, १५७; ६८, ९; ७९, ५०; ७९, १११; ११३, ११४; ११३, २; १८७, ३५५; २००, ५०७; २१४, ६५; ४२५, ३३१; ५०९, ५०६.
वत्सेशसुत—५०९, ५०२.
वत्सेशात्मज—४५९, ११४; ५१६, ८२.
वत्सेश्वर—४५, २; ४६, ७, १०; ४९, ४४; ५१, ७३; ५७, १४०, १४२; ६५, १४८; ६७, २६९; ९१, २७५; ९४, ३०८; ३१५; १०६, ४०; ११२, ११३; १३६, २६०; १८६, ३४४, ३४७; १९५, ४४९; १९६, ४५८; २००, ५१६; २०१, ५२१, ५२३; २११, २४; ५४३, २६; ५९४, ६४६; ६०१, ३१; ६०५, ७०; ६०८, १०७.
वत्सेश्वरसुत—४५२,३१; ५०८, ४९३.
वत्सेश्वरात्मज—२१४,६१; ४६०, १२६; ४८१,१४८; ५२३, १६६; ५२५, १९४; ५५०, ११७; ५९४, ६४२.
वररुचि—६, ७०; ९, ३४; १५, १०२; २०, १६३; २५, २२३; २०६, ५७८, ५८०.
वराहदत्त—४८४, १९०.
वर्णसेप—५७६, ४३७.
वर्धमानक—५६१, २५७.
वर्धमानपुर—११६, १८; १३१, २०४; ४९१, २७१.
वर्ष—८, ९२, २३; ९, २४; १६, ३०; ३४; १०, ३६; १२, ७१.
वसन्त—५१, ६८.
वसन्तक—३६, ३१; ४५, १४४; ५०, ६३; ५१, ७१, ७५; ५६, १३३; ५८, १६१; ५९, १६६; ६५, १४७; ६७, २७१; ६८, २७४; ७४, ७१,

२८; ५९९, २; ६०३, ४६, ४८; ६०७, ९८; ६१४, १८०, १८५; ६१५, १९२, १९९; ६१७, १, ५; ६१८, ९, १४, १६, १९.
विद्याधरपति—६१८, १७.
विद्याधराधीश—५९८, ४९; ६०७, ९४.
विद्याधरी—६०२, ३७, ३८; ६०७, ९९; ६१४, १७८; ६१७, ६; ६१८, १५.
विद्याधरेन्द्र—५९९, ५५; ६०५, ६९; ६१६, २१३.
विद्याधरेश्वर—६१५, १८८.
विद्युज्जिह्व—२५२, ४५३.
विद्युत्केशी—१२६, १४९.
विद्युत्प्रभ—४४३, ३५.
विद्युत्प्रभा—१२६, १४९.
विद्युत्फुरा—४६८, २३३.
विद्युद्दत्ता—२०, १५८.
विद्युद्द्योता—१९६, ४६६.
विद्युद्ध्वज—४४३, ३८, ४४४, ४०, ४१, ५१; ४४५, ६३; ४४६, ७३, ७५.
विद्युन्मती—१३४, २३७; १३५, २४७.
विद्युन्माला—१३९, ३५.
विधूम—३५, २९.
विनयद्युति—२५९, ५४२.
विनयवती—२२६, १३४; २२८, १५६; ४१३, २६.
विनयवान्—२२९, १७३.
विनष्टमल्य—६६, २६०.
विनीतमति—२५१, ४४८; २५२, ४५६, ४५९, ४६१; २५३, ४६४, ४६९; २५४, ४८५, ४८६; २५५, ४९८; २६१, ५६८, ५६९; २६२, ५७१, ५७२, ५७५.
विन्दुमती—१३२, २१६, २२१; १३३, २२७, २२९.
विन्दुलेखा—१३३, २२७, २३०, २३२; १३५, २५४, २५५.
विन्ध्यकेतु—४००, १४०९; ४०१, १४२६.
विन्ध्याटवी—२३२, २१०; २३३, २१५.
विभूतिवसु—२६७, ६३३.
विभूतिसोम—४९७, ३४६.
विमलधी—२२१, ७६.
विमलबुद्धि—२३४, २२८; २४९, ४२१.
विमलाकर—२३८, २८२.
विरूपाक्ष—२०३, ५४७, ५४९.
विलासवती—४२७, २०६.
विशाखिल—६९, १८.
विशाला—३७६, ११११.
विश्वदत्त—४३, १२२, १२३.
विश्वावसु—१०७, ५९; ३५३, ८१६.
विषमशील—४१२, १३, १५; ४१४, ४१; ४१५, ५८; ४१७, ७५; ४२२, १३५; ४२७, १९९, २०१; ४३१, २५६; ६१८, ११.
विष्णुदत्त—१२२, ९९; १८९, ३७९; १९०, ३९१, ३९७, ३९८.
विष्णुमती—३४, १४.
विष्णुस्वामी—९९, ३७५; १००, ३८६; ३१५, ३४०; ३७९, ११४५.
विहितसेन—७९, १२६.
वीणादत्त—४५५, ६९; ४५६, ७३.
वीतभय—१५१, १७५, १५६, २३१.
वीरकेतु—२४३, १८९.

वीरदेव—३२६, ४७६; ३२७, ४८६.
वीरपुर—५१९, १३४.
वीरबाहु—३२७, ४९०.
वीरभुज—४९१, २७१.
वीरवती—३१२, ३११.
वीरवर—३०९, २७०, २७१; ३११, २८९, २९३, २९७; ३१२, ३०१, ३०३, ३१२, ३१३; ३१३, ३२२, ३२४; ३१४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३१; ५२५, १८९.
वीरसेन—४४, १३४; ४१३, २३.
वेगवती—४५३, ४१; ४५५, ६३; ४५८, १०१, १०५; ४५९, १२२; ४६२, १५३; ६१८, १४.
वेगवान्—४५३, ४०.
वेला—२१२, ४६.
वैदूर्यकान्ति—२३२, २११.
वैशालिका—२०९, ५.
वैश्वानर—३०, ५५.
वैश्वानराभिध—९५, ३२०.
व्याघ्रसेन—२२१, ७६; ३८७, १२४७, १२४८; ४०२, ३.
व्याडि—८, १७; १२, ७१; १६, ११२, ११७; १७, १२०, १२२, १२८.
व्योमावती—४६९, ५.
शक—४२३, १५०.
शकटाल—१६, ११८; १७, १२१, १२१, १२४, १३०, १३१; १८, १३४, १४१; २०, १६२, १६३, १६८; २१, १७०, १७३; २२, १८४, १८९; २३, २०४; २४, २११, २१५, २१६, २१८.
शक्तिदेव—११५, १४; ११६, १७, २४; १२०, ७६; १२१, ८९; १२२, ९१, ९२, ९९; १२८, १६६; १२९, १८१; १३०, १९८; १३१, २०४, २०६; १३२, २१२, २१९; १३३, २२४, २२७, २३०; १३५, २५०; १३६, २५७, २५९.
शक्तिमती—२७, २०; ६४, २२५; ६५, २३७.
शक्तियशा—५५५, १७६; ५६०, २४९; ५९४, ६४३; ६१८, १८.
शक्तिरक्षित—२३०, १८२; २३२, २०७; ४०७, ६८.
शक्तिवर—३१२, ३०२, ३०४, ३०७; ३१४, ३३२.
शक्तिवेग—१३६, २५९; ६१७, ४.
शंकरदत्त—११७, ३८.
शंकरदेव—१०५, ३०.
शंकरस्वामी—९, २४.
शङ्कुकर्ण—५६९, ३४८, ३५०, ३५३.
शङ्खचूड—११०, ८९; १११, ९९; ३५७, ८७४; ३५८, ८८१, ८८२; ३५९, ८९१, ८९३, ३६०, ९०७; ३६१, ९१५; ३६२, ९३१, ९३२,
शङ्खदत्त—२८०, ७९५, ७९९; २८१, ८०९; २८३, ८४०; २८४, ८४१; २८५, ८५८; २८६, ८६९.
शतानीक—३४, ६; ३५, २२, २६.
शत्रुघ्ननामा—२०७, ५१२.
शय्याचक्र—३१५, ३४५; ३१६, ३५५, ३५७, ३६२.
शर्ववर्मा—२८, ४२; २९, ४५.
शवराधिप—२३५, २४६.
शशाङ्कवती—२२२, ८६; २२९, १७१, १७४; २३०, १८३; २६२, ५८२; २८७, ८८०; २८५, १२३४; ४०२,

७, ९; ४०८, ७८; ४१०, १०४, १११; ४११, ११६; ६१८, १०.
शशिखण्डाख्य—१२९, १८४.
शशिप्रभ—१५८, ९.
शशिप्रभा—१२९, १८५; ३४५, ७१८; ३४६, ७३५; ३६७, ९९३; ३८९, १२७१; ३९५, १३५०.
शशिलेखा—१२९, १८५; ५४७, ८५; ५५७, २१२.
शशी—३४६, ७२९; ३४८, ७५७; ३४९, ७६१, ७६४.
शाकलपुर—१३७, १३.
शाण्डिल्य—३४, १५.
शातनामा—२७, ३०.
शातवाहन—२५, १; २६, ११, १८; २८, ३३, ३४; ३२, ८६, ९३; ३३, १, २; ६१९, २७.
शान्तिकर—१०५, ३३.
शान्तिकराभिध—१०५, ३१.
शान्तिमती—२३१, १९६.
शिखर—२११, ३२; २१२, ४५.
शिव—११७, ३५, ३६; ११८, ४५, ४८, ५०.
शिवदत्त—२८२, ८२४.
शिवधर्मा—८३, १८४.
शिवभूति—४४१, ५.
शिववर्मा—२१, १७५, १७७.
शिवस्वामी—३४१, ६६६.
शिवि—३२, ८१.
शीलवती—४७८, ११९, १२१, १२२; ४८०, १४६.
शीलहर—५५०, १२१.
शुक—१४५, १००.
शुद्धकीर्ति—२३६, १०८.
शुद्धपट—३२०, ४०३.
शुभदत्त—५४१, १२.
शुभनय—२५८, ५२५.
शूद्रक—३०८, २६४; ३११, २९९; ३१३, ३२२.
शूद्रपट—३२०, ४०१.
शूरदेव—३२६, ४७८.
शूरपुर—५१८, १०१.
शूरवर्मा—५६१, २५२, २५४.
शूरसेन—४३, १२४; ४४, १३१; २०८, ६०२; ६००, १८, ३१.
शृङ्गभुज—४९१, २७८; ४९२, २८८, २९३; ४९३, ३०४, ३०७; ४९५, ३३१, ३३८.
शृङ्गारवती—४२८, २२३.
शृङ्गोत्पादिनी—४८२, १७०.
शेखरद्युति—२५८, ५२७.
शैलदंष्ट्र—५०४, ४३९.
शैलपुर—५०४, ४३९.
शोकवती—१५२, १८३.
शोभावती—३०८, २६३; ३१९, ३९०; ४३४, ९.
श्मशान—६११, १४२.
श्येनजित्—१८२, ३००; १८६, ३४१, ३४२.
श्रावस्ती—१९९, ४९८.
श्रीकण्ठविषय—९५, ३२८; ४९८, ३५५.
श्रीगर्भनामा—४८४, १९०.
श्रीदण्ड—४३, ११७; ४४, १३४, १३५.
श्रीदत्त—३९, ७२, ७५; ४१, ९३, ९५, ९७; ४३, १२०.
श्रीदर्शन—२६५, ६०९, ६१३, ६१४; २७२, ६९६, ६९७; २७३, ७१२, ७१६; २७४, ७२१, ७२५, ७२८; २७५, ७३३, ७३५, ७४१; २७६,

७४६, ७५०, ७५३, ७५५; २७७, ७६४.
श्रीदेवधराख्य—६२०, ४१.
श्रीधर—५४२, ११०; ५८९, ५८४; ५९०, ५९९, ६०१; ५९१, ६०७, ६०९; ५९२, ६१७.
श्रीपर्वत—२२०, ५२.
श्रीसेन—२७२, ६९९.
श्रुतधर—६, ७०; ८, १५; ९, ३१, ३२, ३३.
श्रुतवि—२३१, १९७, २३२, २०३; २३४, २२७; २३५, २४८; २४२, ४२१, ४२३; २५०, ४२४, ४२६, ४२८; २८८, ८; ३८६, ११३६, ११३८; ४०२, ४; ४०८, ७६; ४१०, १०८.
श्रुतवर्धन—४११, २७३.
श्रुतशर्मा—१४०, ५०; १४१, ५६; १४२, ६९, ७२; १४६, ११३, ११९; १४८, १३१; १४९, १५५.
श्रुतसेन—१९६, ४५८, ४६४.
श्रुतार्था—२५, ४, ५.
श्रुतिशर्मा—१२८, २५, २६; १५०, १६०, १६१, १६७; १५६, २२२, २३६, २३७.
श्रुतिसोम—४६५, ११३.
श्वेत—४७७, १०९.
श्वेतप्रभ—४८०, १४०.
संयत—४२८, ८९.
संगमक—३९, ६८; ४४, १३८.
संगमदत्त—५२६, ३१८.
संगमनगर—५०६, ४६०.
संग्रामवर्धन—२९५, ९६; २९६, १०२; २९९, १५०.
सर्जीवक—५६१, २६०; ५६२, २७८, २८१; ५६५, ३०४.
सत्यनय—१२०, ७५; १२२, ९४, ९६; १२८, १९४; १२२, २१३, २१५; ६१३, १६९.
सत्वशील—३२१, ४२१; ४७१, २४, ३१.
सद्भाव—४२५, १०.
समर—५१९, १२४.
समरभङ्ग—५४७, ८७.
समरभट—२७९, ७८९; २८५, ८६२; २८६, ८६८.
समुद्रदत्त—१२४, १२१; ३०५, २२७; ३२९, ५१८; ३३१, ५४७; ३३२, ५५०; ५२३, १६२.
समुद्रमत्स्य—१२१, ७७; १३२, २१०.
समुद्रशूर—५२७, २०७, २१३.
सरोजिनी—५६०, २४३.
सहस्रानीक—३५, १८; ३८, ६२; ४५, १४५.
साकलिकपुरी—११, ५२.
सागरदत्त—६४, २३६; ४५५, ७०; ५२२, १६०.
सार्थवर—५३४, २८८, २९१.
सावित्री—४५१, ९, १२.
साहसिक—२०१, ४००.
सिंहपराक्रम—११२, १२३; ३८३, ११९४.
सिंहलद्वीप—२६०, ५५२.
सिंहलेन्द्र—४२२, ११५.
सिंहवती—११३, १२९.
सिंहवर्मा—९३, २०१.
सिंहवल—५५३, १५८, १६२; ५५४, १६७.
सिंहविक्रम—२६०, ५५२; ५५८, २२१.
सिद्धार्थक—१३८, १७.

सिद्धिकरी—६१, १९०; ६२, २०६; ६४, २२७.
सीता—५१२, ३४, ३५.
सुखधन—५०७, ४७८.
सुग्रीव—५१२, ३७.
सुदर्शन—५२२, १५३.
सुनीथ—१४५, १००, १०१, १०२, १०४; १४९, १५०.
सुन्दरक—९९, ३७६, ३७७, ३७८.
सुन्दरपुर—५११, १५.
सुन्दरसेन—३८८, १२६३; ३८९, १२७२; ३९२, १३१०; ३९४, १३३१, १३३३, १३३६; ३९५, १३५६; ३९६, १३६९; ३९७, १३७१, १३७५; ३९८, १३९२; ३९९, १३९६; ४००, १४११; ४०१, १४२५, १४२९, १४३३.
सुन्दरी—१४८, १३५; १५६, २२९; ५४४, ४३, ४६, ४८; ५४५, ५२, ६२; ५४६, ७३, ७५; ५४७, ७७.
सुप्रतिष्ठाख्य—६१०, १३७.
सुप्रतीप—३४, १३; ३६, ३९.
सुप्रहार—६१२, १५२; ६१३, १६९.
सुभट—१३९, ३६.
सुमङ्कीकर—१४५, १०४.
सुमति—३७५, १०९१.
सुमदा—४८५, २०५, २०७; ४८६, २१०.
सुमानस—५५५, १८३; ५६०, २४४.
सुमानसा—४०५, ४३, ४८; ४०६, ५१, ५४.
सुमेद—१४९, १५०; १५६, २४०.
सुरतमञ्जरी—६०७, ९९; ६०८, १०२, १०४; ६१४, १८३; ६१५, १९०, १९३, १९६.
सुरभिदत्ता—१६०, ३५; ५१७, ९८.
सुरम्भ—१३९, ३५; १४२, ६४.
सुलोचना—१३९, ३३; १५४, २१६; १६८, १२८, १३०; १६९, १३३, १३५; ५९४, ६४३.
सुवचन—२११, २८.
सुत्रासाः—१४९, १५१; १५०, १५७, १६०.
सुषेण—१६७, ११३.
सूचीमुख—५७०, ३६२, ३६४.
सूर्यतपा—१२०, ७०.
सूर्यप्रभ—१३७, १०, ११; १३८, १६, २४; १३९, २९; १४०, ४६; १४१, ५७; १४२, ६५, ६७, ६९, ७३; १४५, १०४, १०८; १४६, ११४, १२०; १४७, १२१, १२४, १३१; १४८, १३५, १४२, १४४; १४९, १४६, १५१; १५०, १५७, १६३, १६८; १५१, १६९, १७४, १७५; १५६, २३१, २३५, २३६; १५७, २४१, २४३, २४५, २; ३६९, १०१४; ३७०, १०३३; ३७१, १०४८; ३७२, १०५६; ६१७, ५
सेनाजित्—१८१, २८८, २८९; ६१०, १३७; ६११, १४७.
सोमक—५९, १६८.
सोमदत्त—६, ६९; ८, १४; ९५, ३२०; ३२१; १८३, ३०९; ४३५, १३.
सोमदत्ता—३८०, ११६४.
सोमप्रभ—५५६, १९७; ५५८, २२०; ५५९, २२३, ५६०, २४२.

सोमप्रभा—७२, १३६; १६९, १३९; १७३, १८९; १७४, १९६; २०३; १७५, २१५; १७६, २१६; १८०, २६६; १८१, २८९; १८२, २९९; १८६, ३४४; १८७, ३५२; १८९, ३७६; १९५, ४४७; २०१, ५२७; २९३, ७३; ३०९, २६८; ३१७, ३६७; ४४१, ५.
सोमशर्मा—२५, ४, ५; ५८६, ५५५.
सोमशूर—२६१, ५६८; २६२, ५७२.
सोमश्रम—२५५, ४८९.
सोमस्वामी—३७०, १०३५; ४०४ २९; ४८४, १८९; ४८८, २४३.
सौदामिनी—२६४, ५९५, ५९९, ६०४.
स्कन्ददास—८९, २५३, २५५; ९१, २७३.
स्थूलबाहु—२२१, ७६; ३८७, १२४७, १२५३.
स्थूलभुज—५१७, ९७.
स्वयंप्रभा—१७४, १९७; १७५, २०७, २१५.
हंसद्वीप—३९२, १३१०; ३९४, १३३१.
हंसावली—२३८, २८६; २३९, २९०, २९८; २४१, ३१४; २४२, ३२८, ३३१, ३३३; २४३, ३३९, ३४३, ३४५, ३४७; २४४, ३५५; २४५, ३६५; २४६, ३७६, ३७८; २४७, ३९०, ३९२, ३९९; २८४, ८४३, ८४७; २८५, ८५४; २८६, ८७१.
हठशर्मा—५१६, ८५; ५१७, ९६.
हनूमान्—५१३, ४०.
हमीलक—१९८, १३३.
हरदित्त—२०४, ५६२.
हरस्वामी—११९, ५८, ६१, ६२, ६४; ३१७, ३७१, ३७४; ३१८, ३८०.
हरिगुप्त—२२, १९१.
हरिवर—५२०, १३५; ५२१, १४२.
हरिशर्मा—१८३, ३१३; १८४, ३२२.
हरिशिख—११३, ११३; ४६७, २१४; ४९१, २७०, ४९५, ३३०; ४९६, ३४५; ५२७, २०३, २०६; ५३०, २४७, २४९; ५५१, १२८; ५५२, १३९; ६०८, १०३.
हरिस्वामी—३१७, ३६६; ३४१, ६६६.
हर्षगुप्त—४७८, ११८.
हर्षपुरी—५९३, ६३२, ६३३; ५९४, ६३९.
हलभूति—९४, ३२५; १०१, ३९८, ४०२, ४०५; १०२, ४०८, ४०९, ४११.
हस्तिनपुर—५२८, २२४.
हिरण्य—५७३, ३९६, ४०१; ५७५, ४२४.
हिरण्यगुप्त—१२, ७५; १४, ८६, ९५; १५, ९७, १०३, १०८; ५२२, १५६; ५४१, ६.
हिरण्यदत्त—१०९, ८२.
हिरण्यवती—३६९, १०१६.
हिरण्यवर्ण—५३१, २६०; ५३३, २८०.
हिरण्याख्य—५७३, ३९५.
हेमपुर—५४४, ४१.
हेमपुरी—१३१, २०२, २०७.
हेमप्रभ—२५७, ५१६; ४७०, १६, २०; ४७४, ६८, ६९; ४७५, ७६, ७७, ८३; ४७६, ९७; ४९८, ३५८ ६१८, १६.
हेमप्रभा—११६, १८, ५५५, १७६.

# बृहत्कथामञ्जर्याः परिशिष्टम् ।[1]

पुनः स्कन्धस्थितः प्राह निर्बन्धोऽयमहो नु ते ।
मुञ्चस्व गत्वा श्रियं राजन्नो चेदेकां कथां शृणु ॥ १ ॥
श्रीमान्वेत्रवतीपूरमेखलायां महीपतिः ।
नगर्यां विदिशाख्यायां क्ष्मापतिः शूद्रकोऽभवत् ॥ २ ॥
तस्मै कदाचिदास्थाने चण्डालपतिपुत्रिका ।
उपायनीचकारैकं रत्नं सर्वविदं शुकम् ॥ ३ ॥
राज्ञा कृतफलाहारः स पृष्टः स्वकथां निधिः ।
ऊचे दीर्घास्ति वेणीव देव विन्ध्याटवी भुवः ॥ ४ ॥
तस्यां पम्पासरस्तीरे मदोद्धत इवोन्नतः ।
शुककोटिनिवासोऽस्ति जीर्णः शाल्मलिपादपः ॥ ५ ॥
तस्मिन्वृद्धशुकस्याहं जातश्चिरगतेः सुतः ।
प्रसवक्लेशनिर्जीवा जननी पञ्चतां ययौ ॥ ६ ॥
तातेन द्विगुणस्नेहात्सद्यगर्भादनुज्झितः ।
धृतोऽहं जननीस्नेहाच्छुष्कौपधिफलाम्बुभिः ॥ ७ ॥
एकदा शबरानीकैः सन्निपातैरिवोत्कटैः ।
कानने मृगयासक्तैः सर्वप्राणिमये कृते ॥ ८ ॥
अप्राप्तवन्यपिशितस्तं समारुह्य शाल्मलिम् ।
एकश्चकार शबरः स्थविरः शुकसंक्षयम् ॥ ९ ॥
तातं विधाय निर्जीवं पक्षाच्छादितमत्तनुम् ।
क्षितिक्षिप्तैः शुकैरन्यैस्समादाय जगाम सः ॥ १० ॥
अहं तु तातपक्षान्तर्लम्बमानतनुश्च्युतः ।
निचये जीर्णपर्णानां पुण्यशेषेण रक्षितः ॥ ११ ॥

---

१. सर्गोऽयमस्मत्पुस्तके न प्राप्त इति तदर्थमुदारैः श्रीमद्भिः टी. एस्. कुप्पु-स्वामी-शास्त्रिभिः कृपया प्रेषितो मुद्रितोऽस्माभिः.

ततस्तत्सरसि स्नातुं प्राप्तेन मुनिसूनुना ।
हारीतनाम्ना नीतोऽहं कृपया स्वतपोवनम् ॥ १२ ॥
जाबालिर्जनकस्तस्य तत्राब्जज इवापरः ।
स सर्वान्विस्मितः प्राह मामालोक्य महामुनिः ॥ १३ ॥
स्वस्यैव कर्मणः पाकं स्नेहादनुभवत्यसौ ।
श्रुत्वैतन्मुनयः सर्वे पप्रच्छुर्मम चेष्टितम् ॥ १४ ॥
सोऽब्रवीदुज्जयिन्याख्या पुरी रम्यास्त्यवन्तिषु ।
विधातुर्विविधाश्चर्यनिधानानामिवावधिः ॥ १५ ॥
तारापीडाभिधस्तस्यां बभूवावनिवासवः ।
देवी विलासवत्यस्य शुकनासश्च मन्त्रवित् ॥ १६ ॥
निरपत्यतयार्तायाः पत्न्याः शोकेन दुःखितः ।
स्वप्नेऽपश्यत्स तद्वक्त्रं प्रविशन्तं निशाकरम् ॥ १७ ॥
विलासवत्यथानन्दमिवासूत जनप्रियम् ।
चन्द्रसंदर्शनात्स्वप्ने चन्द्रापीडाभिधं सुतम् ॥ १८ ॥
पत्नी च शुकनासस्य पुत्रं प्राप मनोरमा ।
वैशम्पायननामानं स्वप्नेऽब्जप्राप्तिसूचितम् ॥ १९ ॥
कुमारस्याप्तविद्यस्य जनन्याः शासनादभूत् ।
कन्यका पत्रलेखाख्या ताम्बूलदलवाहिनी ॥ २० ॥
यौवराज्याभिषेकार्द्रः कुमारः सोऽथ शक्तिमान् ।
वर्षत्रयं महासेनः पृथ्वीं बभ्राम दिग्जयी ॥ २१ ॥
कदाचिदुत्तराशान्ते मृगयार्थी चचार सः ।
अब्धिजन्मानमारुह्य हयमिन्द्रायुधाभिधम् ॥ २२ ॥
स दृष्ट्वा किंनरद्वन्द्वं मनोहरतराकृति ।
वेगाज्जिघृक्षयाऽऽसील्लङ्घितां विपुलां भुवम् ॥ २३ ॥
तस्मिन्वने तु दीर्घाध्वश्रान्तः कैलासभूभृतः ।
प्रापाच्छोदं सरः पार्श्वे स्फटिकस्वच्छसुन्दरम् ॥ २४ ॥

आश्वासिताश्वः सलिलैस्तत्र शुश्राव सुस्वरम् ।
दूराद्गीतध्वनिं त्यक्तग्रासैराकर्णितं मृगैः ॥ २५ ॥
गत्वा सुदूरं सोऽपश्यच्चतुर्मुखशिवालये ।
कन्यां मूर्तिमतीं शंभोश्चूडाचन्द्रकलामिव ॥ २६ ॥
दृष्ट्वोपवीणयन्तीं तां ततस्तद्विरतौ शनैः ।
सोऽपृच्छज्जन्मवृत्तान्तं निवेद्य स्वकथां पुरः ॥ २७ ॥
सा नाम्ना प्राह हंसोऽस्ति गन्धर्वाधिपतिर्गिरौ ।
हेमकूटे स मां गौर्यां महाश्वेतामजीजनत् ॥ २८ ॥
सरः स्नातुमिदं मात्रा सह संप्राप्तया मया ।
दृष्टौ मुनिसुतौ कान्तौ पुण्डरीककपिञ्जलौ ॥ २९ ॥
पुण्डरीकः स मे कर्णे स्वकर्णाद्दिव्यमञ्जरीम् ।
चकार कौतुकार्तायाश्चित्ताद्धैर्यं जहार च ॥ ३० ॥
आहूता छत्रधारिण्या ततोऽहं मातुराज्ञया ।
नाज्ञासिषं स्वभवनं प्राप्य काहमिदं च किम् ॥ ३१ ॥
तदीयसुहृदाभ्येत्य मन्मथव्यग्रता तदा ।
तथा मे कथिता तस्य गताहं तत्पदं यथा ॥ ३२ ॥
गत्वा व्यसुं प्रियं दृष्ट्वा तत्राहं मरणोद्यता ।
भविता प्रियलाभस्ते मीर्मैत्युक्त्वा सुधांशुना ॥ ३३ ॥
पुण्डरीके गृहीतेन्दौ प्रयाते सकपिञ्जले ।
स्थितास्मि न सहे दाहं तद्ध्यानव्रतसंयुता ॥ ३४ ॥
सुहृच्चित्ररथाख्योऽस्ति गन्धर्वेन्द्रः पितुर्मम ।
मदिरायां प्रिया तस्य जाता कादम्बरी सुता ॥ ३५ ॥
तया मद्दुःखतुल्यत्वाद्विवाहे नियमः कृतः ।
तां प्रेषिता बोधयितुं सखी तरलिका मया ॥ ३६ ॥
इति स्मृतिनवीभूतशोकया कथिते तया ।
श्रुत्वा संक्रान्ततत्पीडश्चन्द्रापीडोऽनयन्निशाम् ॥ ३७ ॥

प्रातर्ज्ञात्वा महाश्वेता ततस्तरलिकागिरा।
अत्यन्तदुर्ग्रहामेव सखीं चित्ररथात्मजाम्॥ ३८॥
गन्धर्वनगराश्चर्यदर्शनप्रणयार्थिनम्।
चन्द्रापीडं समादाय कादम्बर्यास्पदं ययौ॥ ३९॥
चन्द्रापीडोऽपि गन्धर्वपुरे रत्नगृहे स्थिताम्।
कादम्बरीं नयनयोर्ददर्श प्रमदप्रदाम्॥ ४०॥
तयोः सकौतुकाकृष्टविलोकनरतोत्सवे।
मनः परस्परप्रेमसूत्रस्यूतमिवाभवत्॥ ४१॥
प्रेमोद्यानात्कुमारोऽथाकृष्टः स्वनगरीं ययौ।
पितुः शासनलेखेन पवनेनेव षट्पदः॥ ४२॥
त्वरया न्यस्तसैन्यार्धि दृष्ट्वा प्राप्तं सुतं नृपः।
किं वैशम्पायनं त्यक्त्वा संप्राप्तोऽसीत्यभर्त्सयत्॥ ४३॥
पश्चात्सैन्ये समायाते तत्रैवावस्थितं वने।
वैशम्पायनमाकर्ण्य शुकनासः शशाप तम्॥ ४४॥
चन्द्रापीडं प्रभुं त्यक्त्वा जनकं मां च दुर्जनः।
स्थितस्तत्रैव पक्षीव शुकपाठी शुकस्तु सः॥ ४५॥
कादम्बरीवियोगार्तः सुहृदं दूरवर्तिनम्।
चन्द्रापीडस्तमन्वेष्टुं प्रययौ शासनात्पितुः॥ ४६॥
महाश्वेताश्रमं प्राप्य साश्रुधारामधोमुखीम्।
वैशम्पायनवृत्तान्तमपृच्छत्साब्रवीच्च तम्॥ ४७॥
आविष्ट इव संश्लेषं ययाचे चपलः स माम्।
गुरुवचात्दुक्लीतः शापेन शुकतां मया॥ ४८॥
त्वन्मित्रमिति विज्ञाय पश्चान्मोहान्ध्यमाश्रिता।
श्रुत्वैतद्दुःसहतरं चन्द्रापीडोऽभवद्व्यसुः॥ ४९॥
कादम्बरी मियं श्रुत्वा महाश्वेताश्रमे स्थितम्।
सहिताभ्याययौ पूर्वस्थितया पत्रलेखया॥ ५०॥

विजीवितं प्रियं दृष्ट्वा मोहं कादम्बरी ययौ ।
इन्द्रायुधं समादाय पत्रलेखाविशत्सरः ॥ ५१ ॥
तदैव सरसस्तस्मादुदतिष्ठत्कपिञ्जलः ।
अभ्येत्य स महाश्वेतां प्रीत्या पृष्टस्तयाब्रवीत् ॥ ५२ ॥
उत्क्षिप्तः पुण्डरीकोऽसौ पुष्टः पश्चान्मया दिवि ।
मामुवाच शशाङ्कोऽहं शप्तस्त्वत्सुहृदामुना ॥ ५३ ॥
मत्तुल्यव्यथयैवार्ति यास्यस्यपरजन्मनि ।
मया च प्रतिशप्तोऽयं त्वमप्येवं भविष्यसि ॥ ५४ ॥
शापान्तावधि तस्यापि देहमस्य स्वमण्डले ।
संरक्षन्ती महाश्वेता जामाता तत्पतिर्मम ॥ ५५ ॥
श्रुत्वाहमेतच्चन्द्रोक्तं पुण्डरीकपितुर्मुनेः ।
श्वेतकेतोः पदं गन्तुं प्रवृत्तस्तत्कथार्पकः ॥ ५६ ॥
वैमानिकः खे व्रजता मया वेगेन लङ्घितः ।
अशपन्मां जवोदग्रं तुरगस्त्वं भविष्यसि ॥ ५७ ॥
ततोऽहमब्धौ पतितः क्षणादश्वः समुत्थितः ।
इन्द्रायुधाभिधः प्राप्तश्चन्द्रापीडस्य वाहताम् ॥ ५८ ॥
अधुना मुक्तशापोऽहं गच्छामि श्वेतकेतवे ।
वक्तुं वृत्तान्तमित्युक्त्वा ययौ व्योम्ना कपिञ्जलः ॥ ५९ ॥
कादम्बरीं लब्धसंज्ञां प्रवेष्टुं वह्निमुद्यताम् ।
वर्षन्निवामृतं चन्द्रः प्रोवाच गगनस्थितः ॥ ६० ॥
त्वं चन्द्रकान्तपर्यङ्के देहं रक्षास्य निर्व्यथा ।
अचिरात्प्राप्तजीवोऽयं भविष्यति पतिस्तव ॥ ६१ ॥
श्रुत्वैतद्गदितं खे च संशयाश्वासिताशया ।
चन्द्रापीडशरीरस्य परिचर्यारताभवत् ॥ ६२ ॥
देशं ततस्तं सहितः शुकनासेन शोकवान् ।
पत्न्या विलासवत्या च तारापीडः समाययौ ॥ ६३ ॥

वैशम्पायनतां यातः पुण्डरीकः क्षितावयम् ।
इति जाबालिकथितं श्रुत्वा जातिः स्मृता मया ॥ ६४ ॥
कपिञ्जलोऽथ मामेत्य समाश्वास्याविशन्नमः ।
महाश्वेताश्रमं गन्तुमुद्यतोऽहं च्युतः श्रमात् ॥ ६५ ॥
बद्धश्चाण्डालजालेन प्राप्तः कुत्सितपक्कणम् ।
चण्डालकन्यया तत्र क्षिप्तोऽहं हेमपञ्जरे ॥ ६६ ॥
न वेद्मि हेतुना केन देवसोपायनीकृतः ।
शुकेनेत्थं कथितया कथया सह सा क्षपा ॥ ६७ ॥
क्षयं ययौ स्मयेनेव स्मेरविस्मेरतारका ।
कादम्बरीं स्मरन्क्षीब इव राजा समीक्ष्य ताम् ॥ ६८ ॥
पप्रच्छ प्रातराहूय चण्डालीं तामुवाच सा ।
देवः कुमुद्वतीकान्तस्त्वं शंकरशिरोमणिः ॥ ६९ ॥
कादम्बरी विरहिणी स्मर्यतां स्मरसुन्दर ।
माताहं पुण्डरीकस्य पद्मलक्ष्मीरसंशया ॥ ७० ॥
वैशम्पायनतां यातः शापादेष गुरोः शुकः ।
अद्यापि चपलः शापमीत्यायं परिरक्षितः ॥ ७१ ॥
प्राप्ता चण्डालता राजजनस्पर्शभयान्मया ।
इत्युक्त्वा साविशद्व्योम तेजपिञ्जरिताम्बरा ॥ ७२ ॥
जीवं च दयिते स्मृत्वा जहतुः शुकशूद्रकौ ।
चन्द्रापीडः क्षणे तस्मिन्सहसावाप्तजीवितः ॥ ७३ ॥
कण्ठे कादम्बरीं चक्रे रत्नशय्यासनोत्थितः ।
पुण्डरीकश्च तत्काले निर्गतश्चन्द्रमण्डलात् ॥ ७४ ॥
महाश्वेतां समभ्येत्य चक्रे हर्षसुधाप्लुताम् ।
हंसचित्ररथावेत्य गन्धर्वाधिपती तत· " ७५ ॥
दुहित्रोश्चक्रतुः प्रीत्या विवाहोत्स
। कथयित्वेति वेतालः पप्रच्छ भर

अनुरागोऽधिकः कस्य राजन्नेतेषु कथ्यताम् ।
राजा तमब्रवीन्मन्ये चन्द्रापीडोऽनुरागवान् ॥ ७७ ॥
सुहृद्वृत्तान्तमाकर्ण्य यस्य चेतस्तदास्फुटत् ।
इति श्रुत्वैव वेतालो गत्वा पुनरलम्बत ॥ ७८ ॥

इति चतुर्विंशो वेतालः ।

# शुद्धिपत्रम् ।

| पृष्ठे | श्लोके | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| ११ | ५२ | वृद्धा गृहे | वृद्धागृहे |
| १५ | ९८ | विद्यात्तेऽस्मिन्, | विद्यतेऽस्मिन् |
| १९ | १५३ | देवदेवीनां | देव देवीनां |
| २१ | १७० | शकटालः | शकटाल |
| २८ | ३६ | मणिच्छापा | मणिच्छाया |
| ३५ | १९ | प्रोल्लाम | प्रोल्लास |
| ३६ | ३३ | च धीरणम् | ऽवधीरणम् |
| ४० | ८५ | कोऽपि कम्पितः | कोपकम्पितः |
| ४१ | ९३ | भूपतिर्बिम्बकेः सुतां | भूपतेर्बिम्बकेः सुता |
| ४३ | १२० | श्रीदत्तकृपया | श्रीदत्त कृपया |
| ४३ | १२७ | ब्राह्मणीमध्ये | ब्राह्मणी मध्ये |
| ४४ | १३५ | ...शबरार्जिताम् | श्रियं च शबरार्जिताम् |
| ४४ | १३६ | बिम्बकः | बिम्बकेः |
| ४५ | १४० | विशोकाक्षः | विकासाक्षः |
| ५० | ६३ | कायशेषे | कार्यशेषे |
| ५१ | ७६ | शक्रपुरी रम्या | शक्रपुरीरम्या |
| ५५ | १२३ | लक्ष्यता | ऽलक्ष्यतां |
| ५७ | १४७ | मेघं संसर्गे | मेघसंसर्गे |
| ५८ | १५९ | भद्रवतीजलम् | भद्रवती जलम् |
| ६० | १७७ | विरहो हि | विरहे हि |
| ६० | १८५ | त्वे संगमाशया | त्वत्संगमाशया |
| ६१ | १८८ | नुवाच ताप | नुवाच च ताप |
| ६१ | १९४ | पाशानिःशेष | पाशं नि शेष |
| ६२ | २०५ | सिता संगमं | सितासंगमं |